प्रेमचंद रचनावली

15

प्रेमचंद रचनावली

15

उपहार स्वरूप
Gifted by
राजा राममोहन राय पुस्तकालय
प्रतिष्ठान द्वारा
RAJA RAMMOHUN ROY
LIBRARY FOUNDATION
BLOCK DD-34, SECTOR-1, SALT LAKE,
CALCUTTA-700 064

कहानियां : 1932-1936

संपादक मण्डल

प्रो॰ जाबिर हुसेन (अध्यक्ष)
डॉ॰ सुशील त्रिवेदी, डॉ॰ इन्द्र सेंगर
मधुकर सिंह, बलराम
कांती प्रसाद शर्मा, रीमा पाराशर

संपादक

राम आनंद

जनवाणी प्रकाशन प्रा॰ लि॰
पंजीकृत कार्यालय एवं शोरूम
30/22ए, गली न॰ 9, विश्वास नगर, दिल्ली-110032

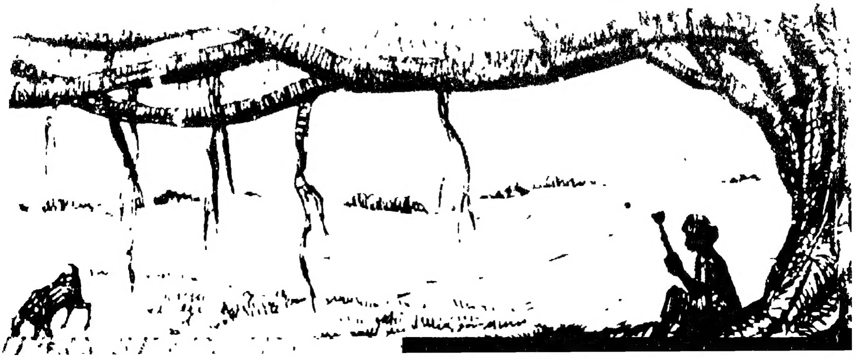

प्रेमचंद रचनावली

खण्ड : पंद्रह

भूमिका एवं मार्गदर्शन

डॉ० रामविलास शर्मा

CHANDRA STATE CENTRAL LIBRARY
AGARTALA
TRIPURA

प्रकाशकीय

'प्रेमचंद रचनावली' का प्रकाशन **जनवाणी** के लिए गौरव की बात है। कॉपीराइट समाप्त होने के बाद प्रेमचंद साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित-प्रचारित हुआ। पर उनका सम्पूर्ण साहित्य अब तक कहीं भी एक जगह उपलब्ध नहीं था। लगातार यह जरूरत महसूस की जा रही थी कि उनके सम्पूर्ण साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन हो।

श्रेष्ठ और कालजयी साहित्यकारों के समग्र कृतित्व का एकत्र प्रकाशन कई दृष्टियों से उपयोगी होता है। इसी आलोक में **'प्रेमचंद रचनावली'** की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख बहुत आवश्यक है। इस रचनावली में पहली बार सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्य सर्वाधिक शुद्ध और प्रामाणिक मूल पाठ के साथ सामने आया है। सम्पूर्ण रचनाओं का विभाजन पहले विधावार तत्पश्चात् कालक्रमानुसार किया गया है। रचनाओं के प्रथम प्रकाशन एवं उनके कालक्रम संबंधी प्रामाणिक जानकारी प्रत्येक रचना के अन्त में दी गई है जिससे प्रेमचंद के कृतित्व के अध्ययन और मूल्यांकन में विशेष सुविधा होगी। इसकी अधिकांश सामग्री प्रथम संस्करणों या काफी पुराने संस्करणों से ली गई है। प्रेमचंद साहित्य के अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के लिए इस रचनावली का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें प्रेमचंद की अब तक उपलब्ध सम्पूर्ण तथा अद्यतन सामग्री का समावेश कर लिया गया है। रचनावली के बीस खण्डों का क्रमबद्ध प्रारूप इस प्रकार है—

खण्ड 1-6 : मौलिक उपन्यास; **खण्ड 7-9** : लेख, भाषण, संस्मरण, संपादकीय, भूमिकाएं, समीक्षाएं, **खण्ड 10** : मौलिक नाटक, **खण्ड 11-15**: सम्पूर्ण कहानियां (302), **खण्ड 16-17** : अनुवाद (उपन्यास, नाटक, कहानी), **खण्ड 18** : जीवनी एवं बाल साहित्य; **खण्ड 19** : पत्र (चिट्ठी-पत्री); **खण्ड 20** : विविध।

रचनावली की विस्तृत भूमिका मूर्धन्य आलोचक डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखी है, जो इस रचनावली की सबसे बड़ी उपलब्धि है। डॉ॰ शर्मा ने अपनी साहित्य-साधना के व्यस्त क्षणों में भी हर कदम पर हमारा मार्गदर्शन किया। रचनावली का जो यह उत्कृष्ट रूप सामने आया है यह सब उन्हीं के आशीर्वाद का प्रतिफल है। इस कृपा और सहयोग के लिए मैं उनके प्रति नतमस्तक हूं।

बिहार विधान परिषद् के माननीय सभापति, हिन्दी और उर्दू के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो॰ जाबिर हुसेन ने प्रेमचंद रचनावली के संपादक-मण्डल का अध्यक्ष होना स्वीकार किया और रचनावली के संपादन कार्य में हमारा उचित मार्गदर्शन किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं। साथ ही संपादक-मण्डल के विद्वान सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

श्री केशवदेव शर्मा ने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद सम्पादन कार्य में जिस गहरी लगन, समझदारी और आत्मीयता से सहयोग किया है उसके लिए उनके प्रति अनेकशः धन्यवाद। उनका अहर्निश सानिध्य मुझे स्फूर्ति प्रदान करता रहा। डॉ॰ गीता शर्मा एवं डॉ॰ अशोक कुमार शर्मा, वेद प्रकाश सोनी तथा डॉ॰ विनय के प्रति भी उनके हार्दिक सहयोग के लिए आभारी हूं।

भाई राम आनंद साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रेमचंद द्वारा स्थापित प्रकाशन संस्थान **'सरस्वती प्रेस'** से जुड़ गए थे। लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने स्व॰ श्रीपत राय (प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र) के मार्गदर्शन में अप्राप्य प्रेमचंद साहित्य पर शोध कार्य किया। वे स्व॰ श्रीपत राय के संपादन में प्रकाशित होने वाली विख्यात कथा-पत्रिका **'कहानी'** के सहायक संपादक रहे। श्रीपत राय के देहांत के बाद उन्होंने **'कहानी'** का स्वतंत्र रूप से संपादन किया और उसे नया रूप तथा गरिमा प्रदान की। उन्होंने जिस गहरी सूझ-बूझ, लगन, धैर्य और निष्ठा से इस रचनावली के संपादन कार्य को इतने सुरुचिपूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से संपन्न किया, इसके लिए वे हम सबों के साधुवाद के पात्र हैं।

श्री हरीशचन्द्र वार्ष्णेय, श्री प्रेमशंकर शर्मा, श्री उदयकान्त पाठक ने प्रूफ-संशोधन और सम्पूर्ण मुद्रण कार्य में विशेष जागरूकता और मनस्विता का परिचय दिया; इनके साथ विमलसिंह, आर॰ के॰ यादव, सुनील जैन, शिवानंदसिंह तथा संस्था के अन्य सभी सहकर्मियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं क्योंकि इन सबके सहयोग और सद्भाव के बिना यह काम पूरा होना लगभग असंभव था।

मेरी भ्रातृजा रीमा और भ्रातृज संदीप, संजीव, मनीष, विक्रांत, चेतन की लगन और सूझबूझ ने भी मुझे सदैव प्रेरित और उत्साहित किया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

रचनावली के मुद्रण का कार्य श्री कान्तीप्रसाद शर्मा की देखरेख में हुआ है। उनकी सूझबूझ और श्रमनिष्ठा के लिए वे हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

सर्वश्री विजयदान देथा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', रामकुमार कृषक, स्वामी प्रेम जहीर, डॉ॰ कुसुम वियोगी, रामकुमार शर्मा आदि सभी मित्रों के सुझावों के लिए भी आभारी हूं।

इस कार्य में पूज्य माताजी श्रीमती जसवन्ती देवी का आशीर्वाद और पिताश्री प्रेमनाथ शर्मा का दीर्घकालीन प्रकाशन-व्यवसाय का अनुभव और आशीर्वाद मेरे विशेष प्रेरणा स्रोत रहे। इनके साथ मातृतुल्या भाभी श्रीमती ललिता शर्मा, अग्रज राजकुमार शर्मा, चमनलाल शर्मा, धर्मपाल शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी इन्दु शर्मा के साथ भाई हरीशकुमार शर्मा एवं सुभाषचन्द्र शर्मा के साथ ही चाचाश्री दीनानाथ शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने पग-पग पर मेरा मार्ग-दर्शन किया। और सबसे अंत में सहधर्मिणी श्रीमती गीता शर्मा ने जो सहयोग और संबल प्रदान किया उसके लिए आभार अथवा धन्यवाद जैसा शब्द बहुत कम होगा। सारा श्रेय उन्हीं का है।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सहयोग से दुर्लभ पुस्तक 'महात्मा शेखसादी' लगभग सत्तर वर्ष बाद एक बार फिर इस रचनावली के मार्फत पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। मैं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं। उन समस्त संस्थानों, पुस्तकालयों, विभागों, संस्थाओं, लेखकों, संपादकों, अधिकारियों और व्यक्तियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने इस रचनावली के आयोजन में सहयोग किया।

अन्त में विद्वान पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे इस रचनावली की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें ताकि आगामी संस्करणों में उन्हें दूर किया जा सके।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी जगत् इस बहु-प्रतीक्षित रचनावली का हार्दिक स्वागत करेगा।

अरुण कुमार
(प्रबंध निदेशक)

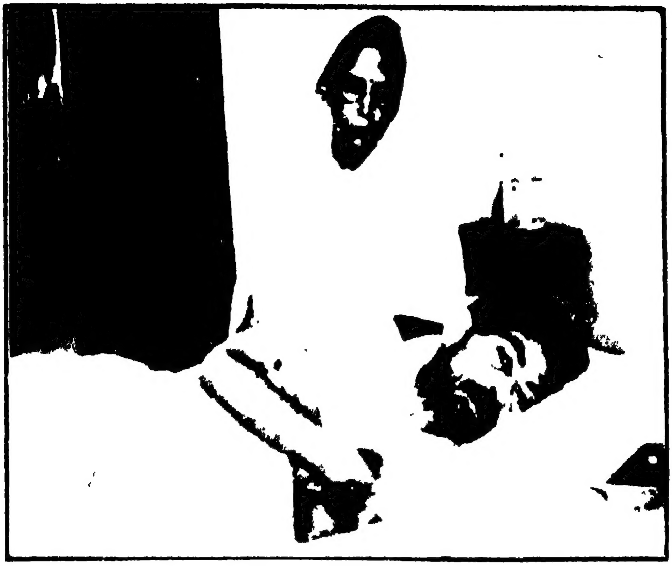

अन्तिम बीमारी

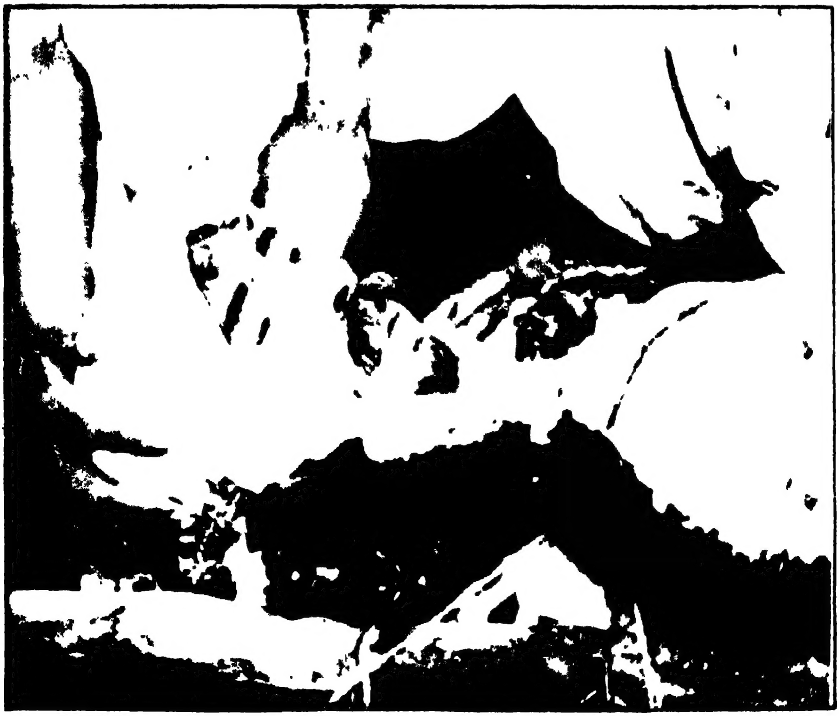

अन्तिम यात्रा की तैयारी

प्रेमचंद के वसन

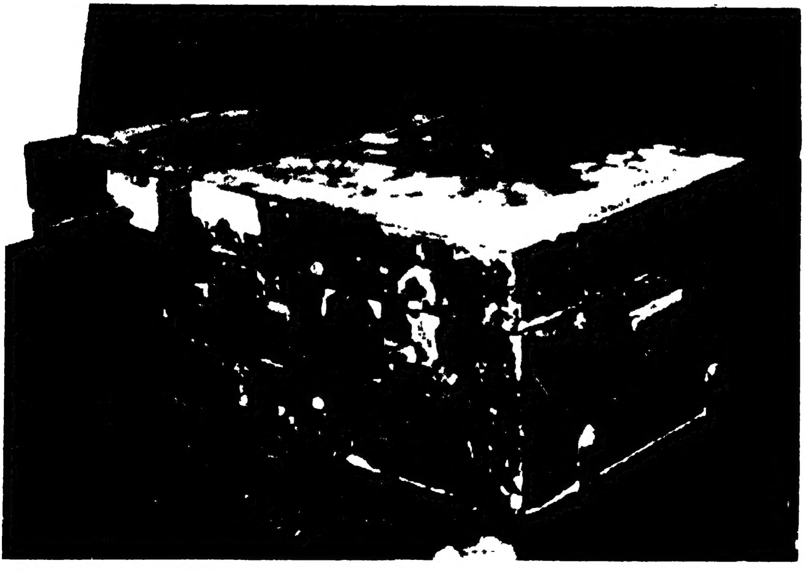

प्रेमचंद का बक्सा और चश्मा

कथाक्रम

चमत्कार	11
गिला	21
नया विवाह	30
सती-2	40
कुत्सा	46
बीमार बहिन	49
झांकी	50
ठाकुर का कुआं	54
कुसुम	57
डामुल का कैदी	70
बेटोंवाली विधवा	87
अनुभव	101
तगादा	106
मृतक भोज	112
स्मृति का पुजारी	125
कायर	135
नेउर	143
रंगीले बाबू	150
गिल्ली-डंडा	155
वेश्या	161
रसिक सम्पादक	176
बालक	181
ज्योति	187
कैदी	195
ईदगाह	203
दिल की रानी	213
वैराग्य	227
नशा	232
शान्ति-2	237

कातिल	249
बारात	257
मनोवृत्ति	262
जादू	267
रियासत का दीवान	270
दूध का दाम	283
पण्डित मोटेराम की डायरी	290
मुफ्त का यश	302
बासी भात में खुदा का साझा	308
खुदाई फौजदार	314
बड़े भाई साहब	322
स्वांग	328
कातिल की मां	336
कोई दुःख न हो तो बकरी खरीद लो	342
रोशनी	350
देवी-2	356
जीवन का शाप	368
गृह-नीति	377
पेपुजी	386
लॉटरी	389
कफन	401
दो बहनें	407
रहस्य	417
कश्मीरी सेब	428
मिस पद्मा	429
होली की छुट्टी	434
तथ्य	445
क्रिकेट मैच	452
एक अपूर्ण कहानी	463
जुरमाना	464
मोटर के छींटे	467
यह भी नशा, वह भी नशा	470

चमत्कार

बी. ए. पास करने के बाद चन्द्रप्रकाश को एक ट्यूशन करने के सिवा और कुछ न सूझा। उनकी माता पहले ही मर चुकी थी, इसी साल पिता का भी देहान्त हो गया और प्रकाश जीवन के जो मधुर स्वप्न देखा करता था, वे सब धूल में मिल गये। पिता ऊँचे ओहदे पर थे, उनकी कोशिश से चन्द्रप्रकाश को कोई अच्छी जगह मिलने की पूरी आशा थी; पर वे सब मनसूबे धरे रह गये और अब गुजर-बसर के लिए वही तीस रुपये महीने की ट्यूशन रह गई। पिता ने कुछ सम्पत्ति भी न छोड़ी, उलटे वधू का बोझ और सिर पर लाद दिया और स्त्री भी मिली, तो पढ़ी-लिखी, शौकीन, जबान की तेज जिसे मोटा खाने और मोटा पहनने से मर जाना कबूल था। चन्द्रप्रकाश को तीस रुपये की नौकरी करते शर्म तो आयी; लेकिन ठाकुर साहब ने रहने का स्थान देकर उसके आँसू पोंछ दिये। यह मकान ठाकुर साहब के मकान से बिलकुल मिला हुआ था—पक्का, हवादार, साफ-सुथरा और जरूरी सामान से लैस। ऐसा मकान बीस रुपये से कम पर न मिलता, काम केवल दो घंटे का। लड़का था तो लगभग उन्हीं की उम्र का; पर बड़ा कुन्दजेहन, कामचोर। अभी नवें दरजे में पढ़ता था। सबसे बड़ी बात यह कि ठाकुर और ठाकुराइन दोनों प्रकाश का बहुत आदर करते थे, बल्कि उसे लड़का ही समझते थे। वह नौकर नहीं, घर का आदमी था और घर के हर एक मामले में उसकी सलाह ली जाती थी। ठाकुर साहब अँगरेजी नहीं जानते थे। उनकी समझ में अँगरेजीदां लौंडा भी उनसे ज्यादा बुद्धिमान, चतुर और तजरबकार था।

2

सन्ध्या का समय था। प्रकाश ने अपने शिष्य वीरेन्द्र को पढ़ा कर छड़ी उठायी, तो ठाकुराइन ने आ कर कहा—अभी न जाओ बेटा, जरा मेरे साथ आओ, तुमसे कुछ सलाह करनी है।

प्रकाश ने मन में सोचा—आज कैसी सलाह है, वीरेन्द्र के सामने क्यों नहीं कहा? उसे भीतर ले जाकर रमा देवी ने कहा—तुम्हारी क्या सलाह है, बीरू को ब्याह दूँ ? एक बहुत अच्छे घर से सन्देशा आया है।

प्रकाश ने मुस्कराकर कहा—यह तो बीरू ही से पूछिए।

'नहीं, मैं तुमसे पूछती हूँ।'

प्रकाश ने असमंजस में पड़कर कहा—मैं इस विषय में क्या सलाह दे सकता हूँ? उनका बीसवाँ साल तो है; लेकिन यह समझ लीजिए कि पढ़ना हो चुका।

'तो अभी न करूँ, यही सलाह है ?'

'जैसा आप उचित समझें। मैंने तो दोनों बातें कह दीं।'

'तो कर डालूँ ? मुझे यही डर लगता है कि लड़का कहीं बहक न जाय।'

'मेरे रहते इसकी तो आप चिन्ता न करें। हाँ, इच्छा हो, तो कर डालिए। कोई हरज भी नहीं है।'

'सब तैयारियाँ तुम्हीं को करनी पड़ेंगी, यह समझ लो।'

'तो मैं इनकार कब करता हूँ।'

रोटी की खैर मनोनवाले शिक्षित युवकों में एक प्रकार की दुविधा होती है, जो उन्हें अप्रिय सत्य कहने से रोकती है। प्रकाश में भी यही कमजोरी थी।

बात पक्की हो गयी और विवाह का सामान होने लगा। ठाकुर साहब उन मनुष्यों में थे, जिन्हें अपने ऊपर विश्वास नहीं होता। उनकी निगाह में प्रकाश की डिग्री, उनके साठ साल के अनुभव से कहीं मूल्यवान् थी। विवाह का सारा आयोजन प्रकाश के हाथों में था। दस-बारह हजार रुपये खर्च करने का अधिकार कुछ कम गौरव की बात न थी। देखते-देखते ही फटेहाल युवक जिम्मेदार मैनेजर बन बैठा। कहीं कपड़ेवाला उसे सलाम करने आया है, कहीं मुहल्ले का बनिया घेरे हुए है; कहीं गैस और शामियानेवाला खुशामद कर रहा है। वह चाहता, तो दो-चार सौ रुपये बड़ी आसानी से बना लेता, लेकिन इतना नीच न था। फिर उसके साथ क्या दगा करता, जिसने सब कुछ उसी पर छोड़ दिया था। पर जिस दिन उसने पाँच हजार के जेवर खरीदे, उस दिन उसका मन चंचल हो उठा।

घर आकर चम्पा से बोला—हम तो यहाँ रोटियों के मुहताज हैं और दुनिया में ऐसे आदमी पड़े हुए हैं जो हजारों-लाखों रुपये के जेवर बनवा डालते हैं। ठाकुर साहब ने आज बहू के चढ़ावे के लिए पाँच हजार के जेवर खरीदे। ऐसी-ऐसी चीजें कि देख कर आँखें ठण्डी हो जायँ। सच कहता हूँ, बाज चीजों पर तो आँख नहीं ठहरती थी।

चम्पा ईर्ष्या-जनित विराग से बोली—ऊँह, हमें क्या करना है ? जिन्हें ईश्वर ने दिया है, वे पहनें। यहाँ तो रोकर मरने ही के लिए पैदा हुए हैं।

चन्द्रप्रकाश—इन्हीं लोगों को मौज़ है। न कमाना, न धमाना। बाप-दादा छोड़ गये हैं, मजे से खाते और चैन करते हैं। इसी से कहता हूँ, ईश्वर बड़ा अन्यायी है।

चम्पा—अपना-अपना पुरुषार्थ है, ईश्वर का क्या दोष ? तुम्हारे बाप-दादा छोड़ गये होते, तो तुम भी मौज करते। यहाँ तो रोटियाँ चलनी मुश्किल हैं, गहने-कपड़े को कौन रोये। और न इस जिन्दगी में कोई ऐसी आशा ही है। कोई गत की साड़ी भी नहीं रही कि किसी भले आदमी के घर जाऊँ, तो पहन लूँ। मैं तो इसी सोच में हूँ कि ठकुराइन के यहाँ ब्याह में कैसे जाऊँगी। सोचती हूँ, बीमार पड़ जाती तो जान बचती।

यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं।

प्रकाश ने तसल्ली दी—साड़ी तुम्हारे लिए लाऊँ। अब क्या इतना भी न कर सकूँगा ? मुसीबत के ये दिन क्या सदा बने रहेंगे ? जिन्दा रहा, तो एक दिन तुम सिर से पाँव तक जेवरों से लदी रहोगी।

चम्पा मुस्कराकर बोली—चलो, ऐसी मन की मिठाई मैं नहीं खाती। निबाह होता जाय, यही बहुत है। गहनों की साध नहीं है।

प्रकाश ने चम्पा की बातें सुनकर लज्जा और दुःख से सिर झुका लिया। चम्पा उसे इतना पुरुषार्थहीन समझती है।

3

रात को दोनों भोजन करके लेटे, तो प्रकाश ने फिर गहनों की बात छेड़ी। गहने उसकी आँखों में बसे हुए थे—इस शहर में ऐसे बढ़िया गहने बनते हैं, मुझे इसकी आशा न थी।

चम्पा ने कहा—कोई और बात करो। गहनों की बात सुनकर जी जलता है।

'वैसी चीजें तुम पहनो, तो रानी मालूम होने लगो।'

'गहनों से क्या सुन्दरता बढ़ जाती है ? तो ऐसी बहुत-सी औरतें देखी हैं, जो गहने पहनकर भद्दी दीखने लगती हैं।'

'ठाकुर साहब भी मतलब के यार हैं। यह न हुआ कि कहते, इसमें से कोई चीज चम्पा के लिए भी लेते जाओ।'

'तुम भी कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो ?'

'इसमें बचपन की क्या बात है ? कोई उदार आदमी कभी इतनी कृपणता न करता।'

'मैंने तो कोई ऐसा उदार आदमी नहीं देखा, जो अपनी बहू के गहने किसी गैर को दे दे।'

'मैं गैर नहीं हूँ। हम दोनों एक ही मकान में रहते हैं। मैं उनके लड़के को पढ़ाता हूँ और शादी का सारा इन्तजाम कर रहा हूँ। अगर सौ-दो सौ की कोई चीज दे देते, तो वह निष्फल न जाती। मगर धनवानों का हृदय धन के भार से दबकर सिकुड़ जाता है। उनमें उदारता के लिए स्थान ही नहीं रहता।'

रात के बारह बज गये हैं, फिर भी प्रकाश को नींद नहीं आती। बार-बार वही चमकीले गहने आँखों के सामने आ जाते हैं। कुछ बादल हो आये हैं और बार-बार बिजली चमक उठती है।

सहसा प्रकाश चारपाई से उठ खड़ा हुआ। उसे चम्पा का आभूपणहीन अंग देखकर दया आयी। यही तो खाने-पहनने की उम्र है और इसी उम्र में इस बेचारी को हर एक चीज के लिए तरसना पड़ रहा है। वह दबे पाँव कमरे से बाहर निकलकर छत पर आया। ठाकुर साहब की छत इस छत से मिली हुई थी। बीच में एक पाँच फीट ऊँची दीवार थी। वह दीवार पर चढ़कर ठाकुर साहब की छत पर आहिस्ता से उतर गया। घर में बिलकुल सन्नाटा था।

उसने सोचा—पहले जीने से उतरकर ठाकुर साहब के कमरे में चलूँ। अगर वह जाग गये, तो जोर से हँसूँगा और कहूँगा—कैसा चरका दिया, या कह दूँगा, मेरे घर की छत से कोई आदमी इधर आता दिखायी दिया, इसलिए मैं भी उसके पीछे-पीछे आया कि देखूँ, यह क्या करता है। अगर सन्दूक की कुंजी मिल गयी तो फिर फतह है। किसी को मुझ पर सन्देह ही न होगा। सब लोग नौकरों पर सन्देह करेंगे, साहब ! नौकरों की हरकत है, इन्हें छोड़कर और कौन ले जा सकता है ? मैं बेदाग बच जाऊँगा! शादी के बाद कोई दूसरा घर लूँगा। फिर धीरे-धीरे एक-एक चीज चम्पा को दूँगा, जिसमें उसे कोई सन्देह न हो।

फिर भी वह जीने से उतरने लगा तो उसकी छाती धड़क रही थी।

4

धूप निकल आयी थी। प्रकाश अभी सो रहा था कि चम्पा ने उसे जगाकर कहा—बड़ा गजब हो गया। रात को ठाकुर साहब के घर में चोरी हो गयी। चोर गहने की सन्दूकची उठा ले गया।

प्रकाश ने पड़े-पड़े पूछा—किसी ने पकड़ा नहीं चोर को ?

'किसी को खबर भी हो ! वह सन्दूकची ले गया, जिसमें ब्याह के गहने रखे थे। न-जाने कैसे कुंजी उड़ा ली और न-जाने कैसे उसे मालूम हुआ कि इस सन्दूक में सन्दूकची रखी है !'

'नौकरों की कार्रवाई होगी। बाहरी चोर का यह काम नहीं है।'

'नौकर तो उनके तीनों पुराने हैं।'

'नीयत बदलते क्या देर लगती है ! आज मौका देखा, उठा ले गये !'

तुम जाकर जरा उन लोगों को तसल्ली तो दो। ठाकुराइन बेचारी रो रही थीं। तुम्हारा नाम ले-लकर कहती थीं कि बेचारा महीनों इन गहनों के लिए दौड़ा, एक-एक चीज अपने सामने जँचवायी और चोर दाढ़ीजारों ने उसकी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया।'

प्रकाश चटपट उठ बैठा और घबड़ाता हुआ-सा जाकर ठाकुराइन से बोला—यह तो बड़ा अनर्थ हो गया माताजी, मुझसे तो अभी-अभी चम्पा ने कहा।

ठाकुर साहब सिर पर हाथ रखे बैठे हुए थे। बोले—कहीं सेंध नहीं, कोई ताला नहीं टूटा, किसी दरवाजे की चूल नहीं उतरी। समझ में नहीं आता, चोर आया किधर से!

ठाकुराइन ने रोकर कहा—मैं तो लुट गयी भैया, ब्याह सिर पर खड़ा है, कैसे क्या होगा, भगवान् ! तुमने दौड़-धूप की थी, तब कहीं जाके चीजें आयी थीं। न-जाने किस मनहूस सायत से लग्न आयी थी।

प्रकाश ने ठाकुर साहब के कान में कहा—मुझे तो किसी नौकर की शरारत मालूम होती है।

ठाकुराइन ने विरोध किया—अरे नहीं भैया, नौकरों में ऐसा कोई नहीं। दस-दस हजार रुपये यों ही ऊपर रखे रहते थे, कभी एक पाई भी नहीं गयी।

ठाकुर साहब ने नाक सिकोड़कर कहा—तुम क्या जानो, आदमी का मन कितना जल्द बदल जाया करता है। जिसने अब तक चोरी नहीं की, वह कभी चोरी न करेगा, यह कोई नहीं कह सकता। मैं पुलिस में रिपोर्ट करूँगा और एक-एक नौकर की तलाशी कराऊँगा। कहीं माल उड़ा दिया होगा। जब पुलिस के जूते पड़ेंगे, तो आप ही-कबूलेंगे।

प्रकाश ने पुलिस का घर में आना खतरनाक समझा। कहीं उन्हीं के घर में तलाशी ले, तो अनर्थ ही हो जाय। बोले—पुलिस में रिपोर्ट करना और तहकीकात कराना व्यर्थ है। पुलिस माल तो न बरामद कर सकेगी। हाँ, नौकरों को मार-पीट भले ही लेगी। कुछ नजर भी उसे चाहिए, नहीं तो कोई दूसरा ही स्वाँग खड़ा कर देगी। मेरी तो सलाह है कि एक-एक नौकर को एकान्त में बुलाकर पूछा जाय।

ठाकुर साहब ने मुँह बनाकर कहा—तुम भी क्या बच्चों की-सी बात करते हो, प्रकाश

बाबू ! भला, चोरी करने वाला अपने आप कबूलेगा। तुम मारपीट भी तो नहीं करते। हाँ, पुलिस में रिपोर्ट करना मुझे भी फजूल मालूम होता है। माल बरामद होने से रहा, उलटे महीनों की परेशानी हो जायेगी।

प्रकाश—लेकिन कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा।

ठाकुर—कोई लाभ नहीं। हाँ, अगर कोई खुफिया पुलिस हो, जो चुपके-चुपके पता लगावे, तो अलबत्ता माल निकल आये; लेकिन यहाँ ऐसी पुलिस कहाँ ? तकदीर ठोंककर बैठ रहो और क्या।

प्रकाश—आप बैठ रहिए; लेकिन मैं बैठने वाला नहीं। मैं इन्हीं नौकरों के सामने चोर का नाम निकलवाऊँगा ?

ठाकुराइन—नौकरों पर मुझे पूरा विश्वास है। किसी का नाम निकल भी आये, तो मुझे सन्देह ही रहेगा। किसी बाहर के आदमी का काम है। चाहे जिधर से आया हो; पर चोर आया बाहर से। तुम्हारे कोठे से भी तो आ सकता है।

ठाकुर—हाँ, जरा अपने कोठे पर तो देखो, शायद कुछ निशान मिले। कल दरवाजा तो खुला नहीं रह गया ?

प्रकाश का दिल धड़कने लगा। बोला—मैं तो दस बजे द्वार बन्द कर लेता हूँ। हाँ, कोई पहले से मौका पाकर कोठे पर चला गया हो और वहाँ छिपा बैठा रहा हो, तो बात दूसरी है।

तीनों आदमी छत पर गये, तो बीच की मुँडेर पर किसी के पाँव की रगड़ के निशान दिखाई दिये। जहाँ पर प्रकाश का पाँव पड़ा था, वहाँ का चूना लग जाने के कारण छत पर पाँव का निशान पड़ गया था। प्रकाश की छत पर जाकर मुँडेर की दूसरी तरफ देखा, तो वैसे ही निशान वहाँ भी दिखाई दिये। ठाकुर साहब सिर झुकाये खड़े थे, संकोच के मारे कुछ कह न सकते थे। प्रकाश ने उनके मन की बात खोल दी—इससे तो स्पष्ट होता है कि चोर मेरे ही घर में से आया। अब तो कोई सन्देह ही नहीं रहा।

ठाकुर साहब ने कहा—हाँ, मैं भी यही समझता हूँ; लेकिन इतना पता लग जाने से ही क्या हुआ। माल तो जाना था, सो गया। अब चलो, आराम से बैठें ! आज रुपये की कोई फिक्र करनी होगी।

प्रकाश—मैं आज ही वह घर छोड़ दूँगा।

ठाकुर—क्यों, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं।

प्रकाश—आप कहें; लेकिन मैं समझता हूँ मेरे सिर बड़ा भारी अपराध लग गया। मेरा दरवाजा नौ-दस बजे तक खुला ही रहता है। चोर ने रास्ता देख लिया। संभव है, दो-चार दिन में फिर आ घुसे। घर में अकेली एक औरत सारे घर की निगरानी नहीं कर सकती। इधर वह तो रसोई में बैठी है, उधर कोई आदमी चुपके से ऊपर चढ़ जाय, तो जरा भी आहट नहीं मिल सकती। मैं घूम-घामकर कभी नौ बजे आया, कभी दस बजे। और शादी के दिनों में तो देर होती ही रहेगी। उधर का रास्ता बन्द हो जाना चाहिए। मैं तो समझता हूँ, इस चोरी की सारी जिम्मेदारी मेरे सिर है।

ठाकुराइन डरीं—तुम चले जाओगे भैया, तब तो घर और फाड़ खायगा।

प्रकाश—कुछ भी हो माताजी, मुझे बहुत जल्द घर छोड़ना ही पड़ेगा। मेरी गफलत से

चोरी हुई, उसका मुझे प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा।

प्रकाश चला गया, तो ठाकुर ने स्त्री से कहा—बड़ा लायक आदमी है।

ठाकुराइन—क्या बात है। चोर उधर से आया, यही बात उसे लग गयी।

'कहीं यह चोर को पकड़ पावे, तो कच्चा खा जाय।'

'मार ही डाले !'

'देख लेना, कभी-न-कभी माल बरामद करेगा।'

'अब इस घर में कदापि न रहेगा, कितना ही समझाओ।'

'किराये के बीस रुपये और दे दूँगा।'

'हम किराया क्यों दें ? वह आप ही घर छोड़ रहे हैं। हम तो कुछ कहते नहीं।'

'किराया तो देना ही पड़ेगा। ऐसे आदमी के साथ कुछ बल भी खाना पड़े, तो बुरा नहीं लगता।'

'मैं तो समझती हूँ, वह किराया लेंगे ही नहीं।'

'तीस रुपये में गुजर भी तो न होता होगा।'

5

प्रकाश ने उसी दिन वह घर छोड़ दिया। उस घर में रहने से जोखिम था। लेकिन जब तक शादी की धूमधाम रही, प्रायः सारे दिन यहीं रहते थे। चम्पा से कहा—एक सेठजी के यहाँ पचास रुपये महीने का काम और मिल गया है; मगर वह रुपये मैं उन्हीं के पास जमा करता जाऊँगा। वह आमदनी केवल जेवरों में खर्च होगी। उसमें से एक पाई भी घर के खर्च में न आने दूँगा। चम्पा फड़क उठी। पति-प्रेम का यह परिचय पाकर उसने अपने भाग्य को सराहा, देवताओं में उसकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी।

अब तक प्रकाश और चम्पा के बीच में कोई परदा न था। प्रकाश के पास जो कुछ था, वह चम्पा का था। चम्पा ही के पास उसके बक्से, संदूक, आलमारी की कुंजियाँ रहती थीं; मगर अब प्रकाश का एक संदूक हमेशा बन्द रहता। उसकी कुंजी कहाँ है, इसका चम्पा को पता नहीं। वह पूछती है, इस सन्दूक में क्या है, तो वह कह देते हैं—कुछ नहीं, पुरानी किताबें मारी-मारी फिरती थीं, उठा के सन्दूक में बन्द कर दी हैं। चम्पा को सन्देह का कोई कारण न था।

एक दिन चम्पा पति को पान देने गयी तो देखा, वह उस सन्दूक को खोले हुए देख रहे हैं। उसे देखते ही उन्होंने सन्दूक जल्दी से बन्द कर दिया। उनका चेहरा जैसे फक हो गया। सन्देह का अंकुर जमा; मगर पानी न पाकर सूख गया। चम्पा किसी ऐसे कारण की कल्पना ही न कर सकी, जिससे सन्देह को आश्रय मिलता।

लेकिन पाँच हजार की सम्पत्ति को इस तरह छोड़ देना कि उसका ध्यान ही न आवे, प्रकाश के लिए असम्भव था। वह कहीं बाहर से आता तो एक बार सन्दूक अवश्य खोलता।

एक दिन पड़ोस में चोरी हो गयी। उस दिन से प्रकाश अपने कमरे ही में सोने लगा। असाढ़ के दिन थे। उमस के मारे दम घुटता था। ऊपर एक साफ-सुथरा बरामदा था, जो बरसात में सोने के लिए ही शायद बनाया गया था। चम्पा ने कई बार ऊपर सोने के लिए

कहा, पर प्रकाश ने न माना। अकेला घर कैसे छोड़ दे ?

चम्पा ने कहा—चोरी ऐसों के यहाँ नहीं होती। चोर घर में कुछ देख कर ही जान खतरे में डालता है। यहाँ क्या रखा है ?

प्रकाश ने क्रुद्ध होकर कहा—कुछ नहीं है, बरतन-भाँड़े तो हैं ही। गरीब के लिए अपनी हाँड़ी ही बहुत है।

एक दिन चम्पा ने कमरे में झाड़ू लगायी, तो सन्दूक को खिसकाकर दूसरी तरफ रख दिया। प्रकाश ने सन्दूक का स्थान बदला हुआ पाया, तो सशंक होकर बोला—सन्दूक तुमने हटाया ?

यह पूछने की कोई बात न थी। झाड़ू लगाते वक्त प्रायः चीजें इधर-उधर खिसक ही जाती हैं। बोली—मैं क्यों हटाने लगी ?

'फिर किसने हटाया ?'

'मैं नहीं जानती।'

'घर में तुम रहती हो, जानेगा कौन ?'

'अच्छा, अगर मैंने ही हटा दिया, तो इसमें पूछने की क्या बात है ?'

'कुछ नहीं, यों ही पूछना था।'

मगर जब तक सन्दूक खोलकर सब चीजें देख न ले, प्रकाश को चैन कहाँ ? चम्पा ज्यों ही भोजन पकाने लगी, उसने सन्दूक खोला और आभूषणों को देखने लगा। आज चम्पा ने पकौड़ियाँ बनायी थीं। पकौड़ियाँ गरम-गरम ही मजा देती हैं। प्रकाश को पकौड़ियाँ पसन्द भी थीं। उसने थोड़ी-सी पकौड़ियाँ एक तश्तरी में रखीं और प्रकाश को देने गयी। प्रकाश ने उसको देखते ही सन्दूक धमाके से बन्द कर दिया और ताला लगाकर उसे बहलाने के इरादे से बोला—तश्तरी में क्या लायीं अच्छा, पकौड़ियाँ हैं ?

आज चम्पा को सन्देह हो गया। सन्दूक में क्या है, यह देखने की उत्सुकता हुई। प्रकाश उसकी कुंजी कहीं छिपाकर रखता था। चम्पा किसी तरह वह कुंजी उड़ा देने की चाल सोचने लगी। एक दिन एक बिसाती कुंजियों का गुच्छा बेचने आ निकला। चम्पा ने उस ताले की कुंजी ले ली और सन्दूक खोल डाली। अरे ! ये तो आभूषण हैं। उसने एक-एक आभूषण को निकाल कर देखा। ये गहने कहाँ से आये ! मुझसे कभी इनकी चर्चा नहीं की। सहसा उसके मन में भाव उठा—कहीं ये ठाकुर साहब के गहने तो नहीं हैं। चीजें वही थीं, जिनका वह बखान करते रहते थे। उसे अब कोई सन्देह न रहा; लेकिन इतना घोर पतन ! लज्जा और खेद से उसका सिर झुक गया।

उसने तुरन्त सन्दूक बन्द कर दिया और चारपाई पर लेटकर सोचने लगी। इनकी इतनी हिम्मत पड़ी कैसे ? यह दुर्भावना इनके मन में आयी ही क्यों ? मैंने तो कभी आभूषणों के लिये आग्रह नहीं किया। अगर आग्रह भी करती, तो क्या उसका आशय यह होता कि वह चोरी करके लावें ? चोरी—आभूषणों के लिए ! इनका मन क्यों इतना दुर्वल हो गया ?

उसके जी में आया, इन गहनों को उठा ले और ठाकुराइन के चरणों पर डाल दे। उनसे कहे—यह मत पूछिए, ये गहने मेरे पास कैसे आये। आपकी चीज आपके पास आ गयी, इसी से सन्तोष कर लीजिए।

लेकिन परिणाम कितना भयंकर होगा !

6

उस दिन से चम्पा कुछ उदास रहने लगी। प्रकाश से उसे वह प्रेम न रहा, न वह सम्मान-भाव। बात-बात पर तकरार होती। अभाव में जो परस्पर सद्भाव था, वह गायब हो गया। तब एक दूसरे से दिल की बात कहता था, भविष्य के मनसूबे बाँधे जाते थे, आपस में सहानुभूति थी। अब दोनों ही दिलगीर रहते। कई-कई दिनों तक आपस में एक बात भी न होती।

कई महीने गुजर गये। शहर के एक बैंक में असिस्टेण्ट मैनेजर की जगह खाली हुई। प्रकाश ने अर्थशास्त्र पढ़ा था; लेकिन शर्त यह थी कि नकद दस हजार की जमानत दाखिल की जाय। इतनी बड़ी रकम कहाँ से आवे। प्रकाश तड़प-तड़पकर रह जाता था।

एक दिन ठाकुर साहब से इस विषय में बात चल पड़ी।

ठाकुर साहब ने कहा—तुम क्यों नहीं दरख्वास्त भेजते ?

प्रकाश ने सिर झुकाकर कहा—दस हजार की नकद जमानत माँगते हैं। मेरे पास रुपये कहाँ रखे हैं !

'अजी, तुम दरख्वास्त तो दो। अगर सारी बातें तय हो जायँ, तो जमानत भी दे दी जायगी। इसकी चिन्ता न करो।'

प्रकाश ने स्तम्भित होकर कहा—आप जमानत दे देंगे ?

'हाँ-हाँ, यह कौन-सी बड़ी बात है।'

प्रकाश घर चला तो बहुत रंजीदा था ! उसको यह जगह अब अवश्य मिलेगी; लेकिन फिर भी वह प्रसन्न नहीं है। ठाकुर साहब की सरलता, उनका उस पर इतना अटल विश्वास, उसे आहत कर रहा है। उनकी शराफत उसके कमीनेपन को कुचले डालती है।

उसने घर आकर चम्पा को यह खुशखबरी सुनायी। चम्पा ने सुनकर मुँह फेर लिया। एक क्षण के बाद बोली—ठाकुर साहब से तुमने क्यों जमानत दिलवायी ? प्रकाश ने चिढ़कर कहा—फिर और किससे दिलवाता ?

'यही न होता कि जगह न मिलती। रोटियाँ तो मिल ही जातीं। रुपये-पैसे की बात है। कहीं भूल-चूक हो जाय, तो तुम्हारे साथ उनके रुपये भी जायँ ?'

'यह तुम कैसे समझती हो कि भूल-चूक होगी ? क्या मैं अनाड़ी हूँ ?'

चम्पा ने विरक्त मन से कहा—आदमी की नीयत भी तो हमेशा एक-सी नहीं रहती !

प्रकाश ठक-से रह गया। उसने चम्पा को चुभती हुई आँखों से देखा; पर चम्पा ने मुँह फेर लिया था। वह उसके भावों के विषय में कुछ निश्चय न कर सका, लेकिन ऐसी खुशखबरी सुनकर भी चम्पा का उदासीन रहना उसे विकल करने लगा। उसके मन में प्रश्न उठा—इस वाक्य में कहीं आक्षेप तो नहीं छिपा हुआ है। चम्पा ने सन्दूक खोलकर देख तो नहीं लिया ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए इस समय वह अपनी एक आँख भी भेंट कर सकता था।

भोजन करते समय प्रकाश ने चम्पा से पूछा—तुमने क्या सोचकर कहा था कि आदमी की नीयत तो हमेशा एक-सी नहीं रहती ? जैसे यह उसके जीवन या मृत्यु का प्रश्न हो।

चम्पा ने संकट में पड़कर कहा—कुछ नहीं, मैंने दुनिया की बात कही थी। प्रकाश

को संतोष न हुआ।

'क्या जितने आदमी बैंकों में नौकर हैं, उनकी नीयत बदलती रहती है ?' वह बोला।

चम्पा ने गला छुड़ाना चाहा—तुम जबान पकड़ते हो। ठाकुर साहब के यहाँ इस शादी ही में तुम अपनी नीयत ठीक नहीं रख सके। सौ-दो सौ रुपये की चीजें घर रख ही लीं।

प्रकाश के दिल से बोझ उतर गया। मुस्कराकर बोला—अच्छा, तुम्हारा संकेत उस तरफ था, लेकिन मैंने कमीशन के सिवा उनकी एक पाई भी नहीं छुई। और कमीशन लेना तो कोई पाप नहीं ! बड़े-बड़े हुक्काम खुले-खजाने कमीशन लिया करते हैं।

चम्पा ने तिरस्कार के भाव से कहा—जो आदमी अपने ऊपर इतना विश्वास रखे, उसकी आँख बचाकर एक पाई भी लेना मैं पाप समझती हूँ। तुम्हारी सज्जनता तो मैं जब जानती कि तुम कमीशन के रुपये ले जाकर उनके हवाले कर देते। इन छः महीनों में उन्होंने तुम्हारे साथ क्या-क्या सलूक किये, कुछ याद है ? मकान तुमने खुद छोड़ा; लेकिन वह बीस रुपये महीने देते जाते हैं ? इलाके से कोई सौगात आती है, तो तुम्हारे यहाँ जरूर भेजते हैं। तुम्हारे पास घड़ी न थी, अपनी घड़ी तुम्हें दे दी। तुम्हारी महरी जब नागा करती है, खबर पाते ही अपना नौकर भेज देते हैं। मेरी बीमारी ही में डाक्टर साहब की फीस उन्होंने दी, और दिन में दो बार हाल-चाल भी पूछने आया करते थे। यह जमानत ही क्या छोटी बात है ? अपने सम्बन्धियों तक की जमानत तो जल्दी कोई करता ही नहीं, तुम्हारी जमानत के लिए दस हजार रुपये नकद निकाल कर दे दिये। इसे तुम छोटी बात समझते हो ? आज तुमसे कोई भूल-चूक हो जाय, तो उनके रुपये तो जब्त हो ही जायेंगे ! जो आदमी अपने ऊपर इतनी दया रखे, उसके लिए हमें भी प्राण देने को तैयार रहना चाहिए।

प्रकाश भोजन करके लेटा; तो उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही थी। दुखते हुए फोड़े में कितना मवाद भरा हुआ है, यह उस वक्त मालूम होता है, जब नश्तर लगाया जाता है। मन का विकार उस वक्त मालूम होता है, जब कोई उसे हमारे सामने खोलकर रख देता है। किसी सामाजिक या राजनीतिक अन्याय का व्यंग्य-चित्र देखकर क्यों हमारे मन को चोट लगती है ? इसीलिए कि वह चित्र हमारी पशुता को खोलकर हमारे सामने रख देता है। वह, जो मनो-सागर में बिखरा हुआ पड़ा था, जैसे केन्द्रीभूत होकर वृहदाकार हो जाता है। तब हमारे मुँह से निकल पड़ता है—उफ्फोह ! चम्पा के इन तिरस्कार-भरे शब्दों ने प्रकाश के मन में ग्लानि उत्पन्न कर दी। वह सन्दूक कई गुना भारी होकर शिला की भाँति उसे दबाने लगा। मन में फैला हुआ विकार एक बिन्दु पर एकत्र होकर टीसने लगा।

7

कई दिन बीत गये। प्रकाश को बैंक में जगह मिल गयी। इसी उत्सव में उसके यहाँ मेहमानों की दावत है। ठाकुर साहब, उनकी स्त्री, बीरू और उसकी नवेली बहू—सभी आये हुए हैं। चम्पा सेवा-सत्कार में लगी हुई है। बाहर दो-चार मित्र गा-बजा रहे हैं। भोजन करने के बाद ठाकुर साहब चलने को तैयार हुए।

प्रकाश ने कहा—आज आपको यहीं रहना होगा, दादा ! मैं इस वक्त न जाने दूँगा।

चम्पा को उसका यह आग्रह बुरा लगा। चारपाइयाँ नहीं हैं, बिछावन नहीं है और न काफी जगह ही है। रात-भर उन्हें तकलीफ देन और आप तकलीफ उठाने की कोई जरूरत

उसकी समझ में न आयी; लेकिन प्रकाश आग्रह करता ही रहा, यहाँ तक कि ठाकुर साहब राजी हो गये।

बारह बज गये थे। ठाकुर साहब ऊपर सो रहे थे। बीरू और प्रकाश बाहर बरामदे में थे। तीन स्त्रियाँ अन्दर कमरे में थीं, प्रकाश जाग रहा था। बीरू के सिरहाने उसकी कुंजियों का गुच्छा पड़ा हुआ था। प्रकाश ने गुच्छा उठा लिया। फिर कमरा खोलकर उसमें से गहनों की सन्दूकची निकाली और ठाकुर साहब के घर की तरफ चला। कई महीने पहले वह इसी भाँति कंपित हृदय के साथ ठाकुर साहब के घर में घुसा था। उसके पाँव तब भी इसी तरह थरथरा रहे थे; लेकिन तब काँटा चुभने की वेदना थी, आज काँटा निकलने की। तब ज्वर का चढ़ाव था—उन्माद, ताप और विकलता से भरा हुआ; अब ज्वर का उतार था—शान्त और शीतल। तब कदम पीछे हटता था, आज आगे बढ़ रहा था।

ठाकुर साहब के घर पहुँचकर उसने धीरे से बीरू का कमरा खोला और अन्दर जाकर ठाकुर साहब की खाट के नीचे संदूकची रख दिया फिर तुरन्त बाहर आकर धीरे से द्वार बन्द किया और घर को लौट पड़ा। हनुमान संजीवनी बूटीवाला धवलागिर उठाये जिस गर्वीले आनन्द का अनुभव कर रहे थे, कुछ वैसा ही आनन्द प्रकाश को भी हो रहा था। गहनों को अपने घर ले जाते समय उनके प्राण सूखे हुए थे, मानो किसी गहरी अथाह खाई में गिरा जा रहा हो। आज सन्दूकची को लौटाकर उसे मालूम हो रहा था, जैसे वह किसी विमान पर बैठा हुआ आकाश की ओर उड़ा जा रहा है—ऊपर, ऊपर और ऊपर !

वह घर पहुँचा, तो बीरू सोया हुआ था। कुंजी उसने सिरहाने रख दी।

8

ठाकुर साहब प्रातःकाल चले गये।

प्रकाश सन्ध्या-समय पढ़ाने जाया करता था। आज वह अधीर होकर तीसरे ही पहर जा पहुँचा। देखना चाहता था, वहाँ आज क्या गुल खिल रहे हैं।

वीरेन्द्र ने उसे देखते ही खुश होकर कहा—बापूजी, कल आपके यहाँ की दावत बड़ी मुबारक थी। जो गहने चोरी गये थे, सब मिल गये।

ठाकुर साहब भी आ गये और बोले—बड़ी मुबारक दावत थी तुम्हारी ! पूरा सन्दूक-का-सन्दूक मिल गया। एक चीज भी नहीं छुई। जैसे केवल रखने ही के लिए ले गया हो।

प्रकाश को इन बातों पर कैसे विश्वास आये, जब तक वह अपनी आँखों से सन्दूक देख न ले। कहीं ऐसा भी हो सकता है कि चोरी गया हुआ माल छः महीने के बाद मिल जाय और ज्यों-का-त्यों !

सन्दूक को देखकर उसने गम्भीर भाव से कहा—बड़े आश्चर्य की बात है। मेरी बुद्धि तो कुछ काम नहीं करती।

ठाकुर—किसी की बुद्धि काम नहीं करती भई, तुम्हारी ही [illegible] कहती है, कोई दैवी घटना है। आज मुझे भी देवताओं में श्रद्धा हो [illegible]

प्रकाश—अगर आँखों-देखी बात न होती, तो मुझे तो [illegible] विश्वास ही न आ[illegible]

ठाकुर—आज इसी खुशी में हमारे यहाँ दावत होगी।

प्रकाश—आपने कोई अनुष्ठान तो नहीं कराया था ?

ठाकुर—अनुष्ठान तो बीसों ही कराये।

प्रकाश—बस, तो यह अनुष्ठान ही की करामात है।

घर लौटकर प्रकाश ने चम्पा को यह खबर सुनायी; तो वह दौड़कर उनके गले से चिपट गई और न-जाने क्यों रोने लगी, जैसे उसका बिछुड़ा हुआ पति बहुत दिनों के बाद घर आ गया हो।

प्रकाश ने कहा—आज उनके यहाँ हमारी दावत है।

'मैं कल एक हजार कँगलों को भोजन कराऊँगी।'

'तुम तो सैकड़ों का खर्च बतला रही हो।'

'मुझे इतना आनन्द हो रहा है कि लाखों खर्च करने पर भी अरमान पूरा न होगा।'

प्रकाश की आँखों से भी आँसू निकल आये।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', मार्च, 1932 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'जेवर का डिब्बा' शीर्षक से 'चन्दन', अगस्त, 1932 में प्रकाशित। 'जादे राह' में संकलित।]

गिला

जीवन का बड़ा भाग इसी घर में गुज़र गया, पर कभी आराम न नसीब हुआ। मेरे पति संसार की दृष्टि में बड़े सज्जन, बड़े शिष्ट, बड़े उदार, बड़े सौम्य होंगे; लेकिन जिस पर गुज़रती है वही जानता है। संसार को उन लोगों की प्रशंसा करने में आनन्द आता है, जो अपने घर को भाड़ में झोंक रहे हों, ग़ैरों के पीछे अपना सर्वनाश किये डालते हों। जो प्राणी घरवालों के लिए मरता है, उसकी प्रशंसा संसार वाले नहीं करते। वह तो उनकी दृष्टि में स्वार्थी है, कृपण है, संकीर्ण हृदय है, आचार-भ्रष्ट है। इसी तरह जो लोग बाहर वालों के लिए मरते हैं, उनकी प्रशंसा घरवाले क्यों करने लगे ? अब इन्हीं को देखो, सारे दिन मुझे जलाया करते हैं। मैं परदा तो नहीं करती; लेकिन सौदे सुलफ़ के लिए बाजार जाना बुरा मालूम होता है। और, इनका यह हाल है, कि चीज़ मँगवाओ, तो ऐसी दुकान से लायेंगे, जहाँ कोई ग्राहक भूलकर भी न जाता हो। ऐसी दुकान पर न तो चीज़ अच्छी मिलती है, न तौल ठीक होती है, न दाम ही उचित होते हैं। यह दोष न होते, तो वह दुकान बदनाम ही क्यों होती; पर इन्हें ऐसी ही गयी बीती दुकानों की चीजें लाने का मरज है। बार-बार कह दिया, साहब कि चलती हुई दुकान से सौदे लाया करो। वहाँ माल अधिक खपता है, इसलिए ताज़ा माल-आता रहता है; पर इनकी तो टुटपूँजिया से बनती है, और वे इन्हें उल्टे छुरे से मूँडते हैं। गेहूँ लायेंगे, तो सारे बाज़ार से खराब, घुना हुआ चावल, ऐसा मोटा कि बैल भी न पूछे, दाल में कराई और कंकड़ भरे हुए। मनों लकड़ी जला डालो, क्या मज़ाल कि गले! घी लायेंगे तो आधाआध तेल, या सोलहों आने कोकोजेम और दरअसल घी से एक छटाँक कम ! तेल लायेंगे तो मिलावट, बालों में डालो, तो चिमट जायँ; पर दाम दे आयेंगे शुद्ध आँवले के तेल का ! किसी चलती हुई नामी दुकान पर जाते तो इन्हें जैसे डर लगता

है। शायद ऊँची दुकान और फीके पकवान के कायल हैं। मेरा अनुभव तो यह है, कि नीची दुकान पर ही सड़े पकवान मिलते हैं।

एक दिन की बात हो, तो बरदाश्त कर ली जाय। रोज़-रोज़ का टंटा नहीं सहा जाता। मैं पूछती हूँ; आखिर आप टुटपूँजियों की दुकान पर जाते ही क्यों हैं? क्या उनके पालन-पोषण का ठीका तुम्हीं ने लिया है ? आप फ़रमाते हैं, मुझे देखकर सब-के-सब बुलाने लगते हैं। वाह क्या कहना है ! कितनी दूर की बात कही है। ज़रा इन्हें बुला लिया और खुशामद के दो शब्द सुना दिये, थोड़ी-सी स्तुति कर दी, बस आपका मिज़ाज आसमान पर जा पहुँचा। फिर इन्हें सुधि नहीं रहती कि यह कूड़ा-करकट बाँध रहा है या क्या। पूछती हूँ, तुम उस रास्ते से जाते ही क्यों हो ? क्यों किसी दूसरे रास्ते से नहीं जाते। ऐसे उठाईगीरों को मुँह ही क्यों लगाते हा ? इसका कोई जवाब नहीं ? एक चुप सौ बाधाओं को हराती है ?

एक बार एक गहना बनवाने को दिया। मैं तो महाशय को जानती थी। इनसे कुछ पूछना व्यर्थ समझा। अपने पहचान के एक सुनार को बुला रही थी। संयोग से आप भी विराजमान थे। बोले—यह सम्प्रदाय विश्वास के योग्य नहीं, धोखा खाओगी। मैं एक सुनार को जानता हूँ, मेरे साथ का पढ़ा हुआ है, बरसों साथ-साथ खेले हैं, वह मेरे साथ चालबाजी नहीं कर सकता। मैंने भी समझा, जब इनका मित्र है और वह भी बचपन का, तो कहाँ तक दोस्ती का हक़ न निभायेगा। सोने का एक आभूषण और सौ रुपये इनके हवाले किये। इस भले मानस ने वह आभूषण और रुपये न जाने किस बेईमान को दे दिये कि बरसों के झंझट के बाद जब चीज़ बनकर आयी, तो आठ आने ताँबा और इतनी भद्दी कि देखकर घिन लगती थी। बरसों की अभिलाषा धूल में मिल गयी। रो-पीटकर बैठ रही। ऐसे-ऐसे वफ़ादार तो इनके मित्र हैं; जिन्हें मित्र की गरदन पर छुरी फेरने पर भी संकोच नहीं। इनकी दोस्ती भी उन्हीं लोगों से है, जो जमाने भर के जट्टू, गिरहकट, लँगोटी में फाग खेलनेवाले, फाकेमस्त हैं, जिनका उद्यम ही इन जैसे आँख के अन्धों से दोस्ती गाँठना है। नित्य ही एक-न-एक महाशय उधार माँगने के लिए सिर पर सवार रहते हैं और बिना लिये गला नहीं छोड़ते। मगर ऐसा कभी न हुआ कि किसी ने रुपये चुकाये हों। आदमी एकबार खोकर सीखता है, दो बार खोकर सीखता है, किन्तु यह भलेमानस हजार बार खोकर भी नहीं सीखते ! जब कहती हूँ, रुपये तो दे आये। अब माँग क्यों नहीं लाते ! क्या मर गये तुम्हारे वह दोस्त ? तो बस बगलें झाँककर रह जाते हैं। आपसे मित्रों को सूखा जवाब नहीं दिया जाता। खैर, सूखा जवाब न दो। मैं भी नहीं कहती कि दोस्तों से बेमुरौवती करो; मगर चिकनी-चुपड़ी बातें तो बना सकते हो, बहाने तो कर सकते हो। किसी मित्र ने रुपये माँगे और आपके सिर पर बोझ पड़ा। बेचारे कैसे इनकार करें। आखिर लोग जान जायेंगे कि नहीं कि यह महाशय भी खुक्खल ही हैं ! इनकी हविस यह है कि दुनिया इन्हें सम्पन्न समझती रहे, चाहे मेरे गहने ही क्यों न गिरों रखने पड़ें। सच कहती हूँ, कभी-कभी तो एक-एक पैसे की तंगी हो जाती है और इन भले आदमी को रुपये जैसे घर में काटते हैं। जब तक रुपये के वारे-न्यारे न कर लें, इन्हें चैन नहीं। इनके करतूत कहाँ तक गाऊँ। मेरी तो नाक में दम आ गया। एक-न-एक मेहमान रोज़ यमराज की भाँति सिर पर सवार रहते हैं। न जाने कहाँ के बेफिक्रे इनके मित्र हैं। कोई कहीं से आकर मरता है, कोई कहीं से। घर क्या है, अपाहिजों का अड्डा है। जरा-सा तो घर, मुश्किल से दो पलँग, ओढ़ना-बिछौना

भी फालतू नहीं, मगर आप हैं कि मित्रों को निमन्त्रण देने को तैयार ! आप तो अतिथि के साथ लेटेंगे, इसलिए इन्हें चारपाई भी चाहिये, ओढ़ना-बिछौना भी चाहिए, नहीं तो घर का परदा खुल जाय। जाता है मेरे बच्चों के सिर, गरमियों में तो खैर कोई मुजायका नहीं; लेकिन जाड़ों में तो ईश्वर ही याद आते हैं। गरमियों में भी खुली छत पर तो मेहमानों का अधिकार हो जाता है, अब मैं बच्चों को लिये पिंजड़े में पड़ी फड़फड़ाया करूँ। इन्हें इतनी समझ भी नहीं, कि जब घर की यह दशा है; तो क्यों ऐसों को मेहमान बनायें, जिनके पास कपड़े-लत्ते तक नहीं। ईश्वर की दया से इनके सभी मित्र इसी श्रेणी के हैं। एक भी ऐसा माई का लाल नहीं, जो समय पड़ने पर धेले से भी इनकी मदद कर सके। दो-एक बार महाशय को इसका अनुभव—अत्यन्त कटु अनुभव—हो चुका है; मगर इस जड़ भरत ने जैसे आँखें न खोलने की कसम खा ली है। ऐसे ही दरिद्र भट्टाचार्यों से इनकी पटती है। शहर में इतने लक्ष्मी के पुत्र हैं, पर आपका किसी से परिचय नहीं। उनके पास जाते इनकी आत्मा दुखती है। दोस्ती गाँठेंगे ऐसों से, जिनके घर में खाने का ठिकाना नहीं।

एक बार हमारा कहार छोड़कर चला गया और कई दिन कोई दूसरा कहार न मिला। किसी चतुर और कुशल कहार की तलाश में थी; किंतु आपको जल्द-से-जल्द कोई आदमी रख लेने की धुन सवार हो गई। घर के सारे काम पूर्ववत् चल रहे थे, पर आपको मालूम हो रहा था कि गाड़ी रुकी हुई है। मेरा जूठे बरतन माँजना और अपना साग-भाजी के लिए बाजार जाना इनके लिए असह्य हो उठा। एक दिन जाने कहाँ से एक बाँगड़ू को पकड़ लाये। उसकी सूरत कहे देती थी कि कोई जाँगलू है; मगर आपने उसका ऐसा बख़ान किया, कि क्या कहूँ। बड़ा होशियार है, बड़ा आज्ञाकारी, परले सिरे का मेहनती, गजब का सलीकेदार और बहुत ही ईमानदार। खैर, मैंने उसे रख लिया। मैं बार-बार क्यों इनकी बातों में आ जाती हूँ, इसका मुझे स्वयं आश्चर्य है। यह आदमी केवल रूप से आदमी था। आदमियत के और कोई लक्षण उसमें न थे। किसी काम की तमीज नहीं। बेईमान न था; पर गधा अव्वल दरजे का। बेईमान होता, तो कम-से-कम इतनी तस्कीन तो होती कि खुद खा जाता है। अभागा दुकानदारों के हाथों लुट जाता था। दस तक की गिनती उसे न आती थी। एक रुपया देकर बाजार भेजूँ तो सन्ध्या तक हिसाब न समझा सके। क्रोध पी-पीकर रह जाती थी। रक्त खौलने लगता था कि दुष्ट के कान उखाड़ लूँ, मगर इन महाशय को उसे कभी कुछ कहते नहीं देखा, डाँटना तो दूर की बात है। आप नहा-धोकर धोती छाँट रहे हैं और वह दूर बैठा तमाशा देख रहा है। मैं तो बचा का खून पी जाती; लेकिन इन्हें जरा भी गम नहीं। जब मेरे डाँटने पर धोती छाँटने जाता भी, तो आप उसे समीप न आने देते। बस, उसके दोषों को गुण बनाकर दिखाया करते थे; और इस प्रयास में सफल न होते, तो दोषों पर परदा डाल देते थे। मूर्ख को झाड़ू लगाने की तमीज़ न थी। मरदाना कमरा ही तो सारे घर में ढंग का एक कमरा है। उसमें झाड़ू लगाता, तो इधर की चीज उधर, ऊपर की नीचे; मानों कमरे में भूकम्प आ गया हो। और गर्द का यह हाल, कि सास लेना कठिन; पर आप शांतिपूर्वक कमरे में बैठे हैं, जैसे कोई बात ही नहीं। एक दिन मैंने उसे खूब डाँटा—कल से ठीक-ठीक झाड़ू न लगाई तो कान पकड़ कर निकाल दूँगी। सबेरे सोकर उठी, तो देखती हूँ कमरे में झाड़ू लगी हुई है और हरेक चीज करीने से रखी हुई है। गर्दगुबार का नाम नहीं। मैं चकित होकर देखने लगी, तो आप हँसकर बोले—देखती क्या हो; आज घूरे ने बड़े सबेरे

उठकर झाड़ू लगाई है। मैंने समझा दिया। तुम ढंग तो बताती नहीं, उलटे डाँटने लगती हो।

मैंने समझा। खैर, दुष्ट ने कम-से-कम एक काम तो सलीके से किया। अब रोज कमरा साफ-सुथरा मिलता। घूरे मेरी दृष्टि में विश्वासी बनने लगा। संयोग की बात एक दिन मैं जरा मामलू से सबेरे उठ बैठी और कमरे में आयी, तो क्या देखती हूँ कि घूरे द्वार पर खड़ा है, और आप तन-मन से कमरे में झाड़ू लगा रहे हैं। मेरी आँखों में खून उतर आया। उनके हाथ से झाड़ू छीन कर घूरे के सिर जमा दी। हरामखोर को उसी दम निकाल बाहर किया। आप फरमाने लगे—उसका महीना तो चुका दो। वाह री समझ। एक तो काम न करे, उस पर आँखें दिखाये। उस पर पूरी मजूरी भी चुका दूँ। मैंने एक कौड़ी भी न दी। एक कुरता दिया था, वह भी छीन लिया। इस पर जड़ भरत महाशय मुझसे कई दिन रूठे रहे। घर छोड़कर भागे जाते थे। बड़ी मुश्किलों से रुके। ऐसे-ऐसे भोंदू भी संसार में पड़े हुए हैं। मैं न होती, तो शायद अब तक इन्हें किसी ने बाजार में बेच दिया होता।

एक दिन मेहतर ने उतारे कपड़ों का सवाल किया। इस बेकारी के जमाने में फालतू कपड़े तो शायद पुलिसवालों या रईसों के घर में हो, मेरे घर में तो जरूरी कपड़े भी काफी नहीं। आपका वस्त्रालय एक बकची में आ जायगा, जो डाक के पारसल से कहीं भेजा जा सकता है। फिर इस साल जाड़ों के कपड़े बनवाने की नौबत न आई। पैसे नज़र नहीं आते, कपड़े कहाँ से बनें। मैंने मेहतर को साफ जवाब दे दिया। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था; इसका अनुभव मुझे कम न था। गरीबों पर क्या बीत रही है, इसका भी मुझे ज्ञान था। लेकिन मेरे या आपके पास खेद के सिवा इसका और क्या इलाज है। जब तक समाज का यह संगठन रहेगा, ऐसी शिकायतें पैदा होती रहेंगी। जब एक-एक अमीर और रईस के पास एक-एक मालगाड़ी कपड़ों से भरी हुई है, तब फिर निर्धनों को क्यों न नग्नता का कष्ट उठाना पड़े ? खैर मैंने तो मेहतर को जवाब दे दिया, आपने क्या किया कि आपका कोट उठाकर उसकी भेंट कर दिया। मेरी देह में आग लग गयी। इतनी दानशील नहीं हूँ कि दूसरों को खिलाकर आप सो रहूँ, देवता के पास यही एक कोट था। आपको इसकी जरा भी चिन्ता न हुई कि पहनेंगे क्या? यश के लोभ ने जैसे बुद्धि ही हर ली। मेहतर ने सलाम किया, दुआएँ दीं, और अपनी राह ली। आप कई दिन सर्दी से ठिठुरते रहे। प्रातःकाल घूमने जाया करते थे। वह बन्द हो गया। ईश्वर ने उन्हें हृदय भी एक विचित्र प्रकार का दिया है। फटे-पुराने कपड़े पहनते आपको जरा भी संकोच नहीं होता; मैं तो मारे लाज के गड़ जाती हूँ, पर आपको जरा फिक्र नहीं। कोई हँसता है, तो हँसे, आपकी बला से। अन्त में जब मुझसे न देखा गया, तो एक कोट बनवा दिया। जी तो जलता था कि खूब सर्दी खाने दूँ; पर डरी कि कहीं बीमार पड़ जायँ, तो और बुरा हो। आखिर काम तो उन्हीं को करना है।

महाशय अपने दिल में समझते होंगे, मैं किनना विनीत, कितना परोपकारी हूँ। शायद इन्हें इन बातों का गर्व हो। मैं इन्हें परोपकारी नहीं समझती, न विनीत ही समझती हूँ, यह जड़ता है, सीधी-सादी निरीहता। जिस मेहतर को आपने अपना कोट दिया, उसे मैंने कई बार रात को शराब के नशे में मस्त झूमता देखा है और आपको दिखा भी दिया है। फिर दूसरों की विवेकहीनता की पुरौती हम क्यों करें ? अगर आप विनीत और परोपकारी होते, तो घर-वालों के प्रति भी तो आपके मन में कुछ उदारता होती। या सारी उदारता बाहरवालों

ही के लिए सुरक्षित है ? घरवालों को उसका अल्पांश भी न मिलना चाहिये ? मेरी इतनी अवस्था बीत गयी; पर इस भले आदमी ने कभी अपने हाथों से मुझे एक उपहार भी न दिया। बेशक मैं जो चीज बाजार से मँगवाऊँ; उसे लाने में इन्हें जरा भी आपत्ति नहीं, बिलकुल उज्र नहीं, मगर रुपये मैं दे दूँ, यह शर्त है। इन्हें खुद कभी यह उमंग नहीं होती। यह मैं मानती हूँ कि बेचारे अपने लिए भी कुछ नहीं लाते। मैं जो कुछ मँगवा दूँ उसी पर सन्तुष्ट हो जाते हैं; मगर आखिर आदमी कभी-कभी शौक की चीजें चाहता ही है। अन्य पुरुषों को देखती हूँ, स्त्री के लिए तरह-तरह के गहने, भाँति-भाँति के कपड़े, शौक-सिंगार की वस्तुएँ लाते रहते हैं। यहाँ इस व्यवहार का निषेध है। बच्चों के लिए भी मिठाइयाँ, खिलौने, बाजे शायद जीवन में एक बार भी न लाये हों। शपथ भी खा ली है; इसलिए मैं तो इन्हें कृपण कहूँगी, अरसिक कहूँगी, हृदय-शून्य कहूँगी, उदार नहीं कह सकती। दूसरों के साथ इनका जो सेवा-भाव है, उसका कारण है, इनका यश-लोभ और व्यावहारिक अज्ञानता। आपके विनय का यह हाल है कि जिस दफ्तर में आप नौकर हैं, उसके किसी अधिकारी से आपका मेल-जोल नहीं। अफसरों को सलाम करना तो आपकी नीति के विरुद्ध है, नजर या डाली तो दूर की बात है। और तो और, कभी किसी अफसर के घर नहीं जाते। इसका खामियाजा आप न उठायें, तो कौन उठाये। औरों को रिआयती छुट्टियाँ मिलती हैं आपका वेतन कटता है; औरों की तरक्कियाँ होती हैं, आपको कोई पूछता भी नहीं, हाजिरी में पाँच मिनट की भी देर हो जाय, तो जवाब पूछा जाता है। बेचारे जी तोड़कर काम करते हैं, कोई बड़ा कठिन काम आ जाता है, तो इन्हीं के सिर मढ़ा जाता है, इन्हें जरा भी आपत्ति नहीं। दफ्तर में इन्हें 'घिस्सू' 'पिस्सू' आदि उपाधियाँ मिली हुई हैं, मगर पड़ाव कितना ही बड़ा मारें इनके भाग्य में वही सूखी घास लिखी है। यह विनय नहीं है, स्वाधीन मनोवृत्ति भी नहीं है, मैं तो इसे समय चातुरी का अभाव कहती हूँ व्यावहारिक ज्ञान की क्षति कहती हूँ। आखिर कोई अफसर आपसे क्यों प्रसन्न हो। इसलिए कि आप बड़े मेहनती हैं ? दुनिया का काम मुरौवत और रवादारी से चलता है ! अगर हम किसी से खिंचे रहें; तो कोई कारण नहीं कि वह भी हमसे न खिंचा रहे। फिर जब मन में क्षोभ होता है, तो वह दफ्तरी-व्यवहारों में भी प्रकट हो ही जाता है। जो मातहत अफसर को प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है, जिसकी जात से अफसर का कोई व्यक्तिगत उपकार होता है, जिस पर वह विश्वास कर सकता है, उसका लिहाज वह स्वभावतः करता है। ऐसे सिरागियों से क्यों किसी को सहानुभूति होने लगी। अफसर भी तो मनुष्य है। उसके हृदय में जो सम्मान और विशिष्टता की कामना है, वह कहाँ पूरी हो। जब अधीनस्थ कर्मचारी ही उससे फिरन्ट रहें, तो क्या उसके अफसर उसे सलाम करने आयेंगे ? आपने जहाँ नौकरी की, वहाँ से निकाले गये। कभी किसी दफ्तर में दो-तीन साल से ज्यादा न टिके। या तो अफसर से लड़ गये, या कार्याधिक्य के कारण छोड़ बैठे।

आपको कुटुम्ब-सेवा का दावा है। आपके कई भाई-भतीजे होते हैं, वह कभी इनकी बात भी नहीं पूछते; आप बराबर उनका मुँह ताकते रहते हैं।

इनके एक भाई साहब आजकल तहसीलदार हैं। घर की मिल्कियत उन्हीं की निगरानी में है। वह ठाट से रहते हैं। मोटर रख ली है; कई नौकर-चाकर हैं मगर यहाँ भूले से भी पत्र नहीं लिखते। एक बार हमें रुपये की बड़ी तंगी हुई। मैंने कहा—अपने भ्राताजी से क्यों नहीं माँग लेते ? कहने लगे—उन्हें क्यों चिन्ता में डालूँ। उन्हें भी तो अपना खर्च है। कौन-सी ऐसी बचत हो जाती होगी। जब मैंने बहुत मजबूर किया; तो आपने पत्र

लिखा। मालूम नहीं पत्र में क्या लिखा, पत्र लिखा या मुझे चकमा दे दिया; रुपये न आने थे, न आये। कई दिनों के बाद मैंने पूछा—कुछ जवाब आया श्रीमान् के भाई साहब के दरबार से ? आपने रुष्ट होकर कहा—अभी केवल एक सप्ताह तो खत पहुँचे हुए, अभी क्या जवाब आ सकता है। एक सप्ताह और गुजरा, मगर जवाब नदारद। अब आपका यह हाल है कि मुझे कुछ बातचीत करने का अवसर ही नहीं देते। इतने प्रसन्न-चित्त नजर आते हैं कि क्या कहूँ। बाहर से आते हैं तो खुश-खुश ! कोई-न-कोई शिगूफा लिये हुए। मेरी खुशामद भी ख़ूब हो रही है, मेरे मैके वालों की प्रशंसा भी हो रही है, मेरे गृह-प्रबन्ध का बखान भी असाधारण रीति से किया जा रहा है। मैं इस महाशय की चाल समझ रही थी। यही सारी दिलजोई केवल इसलिये थी कि श्रीमान् के भाईसाहब के विषय में कुछ पूछ न बैठूँ। सारे राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, आचारिक प्रश्नों की मुझसे व्याख्या की जाती थी, इतने विस्तार और गवेषणा के साथ, कि विशेषज्ञ भी लोहा मान जायँ। केवल इसलिये कि मुझे वह प्रसंग उठाने का अवसर न मिले; लेकिन मैं भला कब चूकनेवाली थी। जब पूरे दो सप्ताह गुजर गये और बीमे के रुपये भेजने की मिती, मौत की तरह सिर पर सवार हो गयी तो मैंने पूछा—क्या हुआ, तुम्हारे भाई साहब ने श्रीमुख से कुछ फरमाया या अभी तक पत्र नहीं पहुँचा ? आखिर घर की जायदाद में हमारा भी कुछ हिस्सा है या नहीं ? या हम किसी लौंडी-दासी की सन्तान हैं ? पाँच सौ रुपये साल का नफा तो दस साल पहले था। अब तो एक हजार से कम न होगा, पर हमें कभी एक कानी कौड़ी भी नहीं मिली। मोटे हिसाब से हमें दो हजार मिलना चाहिए। दो हजार न हों, एक हजार हों, पाँच सौ हों, ढाई सौ हों, कुछ न हों, तो बीमा के प्रीमियम भर के तो हों। तहसीलदार साहब की आमदनी हमारी आमदनी की चौगुनी है, रिश्वतें भी लेते हैं; तो फिर हमारे रुपये क्यों नहीं देते ? आप हें-हें, हाँ-हाँ, करने लगे। कहने लगे, वह बेचारे घर की मरम्मत करवाते हैं। बन्धु-बान्धवों का स्वागत-सत्कार करते हैं, नातेदारियों में भेंट-भाँट भेजते हैं। और कहाँ से लावें जो हमारे पास भेजें ? वाह री बुद्धि ! मानो जायदाद इसीलिए होती है कि उसकी कमाई उसी में खर्च हो जाय। इस भले आदमी को बहाने गढ़ने भी नहीं आते। मुझसे पूछते मैं एक नहीं, हजार बता देती, एक-से-एक बढ़कर—कह देते घर में आग लग गई, सब कुछ स्वाहा हो गया था, या चोरी हो गई, तिनका तक न बचा या दस हजार का अनाज भरा था, उसमें घाटा रहा, या किसी से फौजदारी हो गई, उसमें दिवाला पिट गया। आपको सूझी भी तो लचर-सी बात। तकदीर ठोंककर बैठ रही। पड़ोस की एक महिला से रुपये कर्ज लिए, तब जाकर काम चला। फिर भी आप भाई-भतीजों की तारीफ के पुल बाँधते हैं, तो मेरे शरीर में आग लग जाती है। ऐसे कौरवों से ईश्वर बचाये।

ईश्वर की दया से आपके दो बच्चे हैं, दो बच्चिया भी हैं। ईश्वर की दया कहूँ; या कोप कहूँ। सब-के-सब उधमी हो गये हैं कि खुदा की पनाह ! मगर क्या मजाल है कि यह भोंदू किसी को कड़ी आँखों से देखें ! रात के आठ बजे गये हैं, युवराज अभी घूमकर नहीं आये। मैं घबरा रही हूँ, आप निश्चिन्त बैठे अखबार पढ़ रहे हैं। झल्लाई हुई जाती हूँ और अखबार छीनकर कहती हूँ, जाकर जरा देखते क्यों नहीं, लौंडा कहाँ रह गया ? न जाने तुम्हारा हृदय कितना कठोर है। ईश्वर ने तुम्हें सन्तान ही न जाने क्यों दे दी। पिता का पुत्र के साथ कुछ तो धर्म है। तब आप भी गर्म हो जाते हैं। अभी तक नहीं आया ? बड़ा शैतान

है। आज बचा आते हैं, तो कान उखाड़ लेता हूँ। मारे हंटरों के खाल उधेड़कर रख दूँगा। यों बिगड़ कर तैश के साथ आप उसे खोजने निकलते हैं। संयोग की बात, आप उधर जाते हैं, इधर लड़का आ जाता है। मैं पूछती हूँ—तू किधर से आ गया ? तुझे वह ढूँढ़ने गये हुए हैं। देखना, आज कैसी मरम्मत होती है। यह आदत ही छूट जायगी। दाँत पीस रहे थे। आते ही होंगे ! छड़ी भी उनके हाथ में है। तुम इतने मन के हो गये हो कि बात नहीं सुनते ! आज आटे-दाल का भाव मालूम होगा। लड़का सहम जाता है और लैम्प जलाकर पढ़ने बैठ जाता है। महाशय जी दो ढाई घण्टे के बाद लौटते हैं; हैरान, परेशान और बदहवास। घर में पाँव रखते ही पूछते हैं—आया कि नहीं ?

मैं उनका क्रोध उत्तेजित करने के विचार से कहती हूँ—आकर बैठा तो है, जाकर पूछते क्यों नहीं ? पूछकर हार गई, कहाँ गया था, कुछ बोलता ही नहीं।

आप गरज कर कहते हैं—मन्नू, यहाँ आओ।

लड़का थरथर काँपता हुआ आकर आँगन में खड़ा हो जाता है। दोनों बच्चियाँ घर में छिप जाती हैं कि कोई बड़ा भयंकर क्राण्ड होनेवाला है। छोटा बच्चा खिड़की से चूहे की तरह झाँक रहा है। आप क्रोध से बौखलाये हुए हैं। हाथ में छड़ी है ही, मैं भी वह क्रोधोन्मत्त आकृति देखकर पछताने लगती हूँ, कि कहाँ से इनसे शिकायत की ? आप लड़के के पास जाते हैं, मगर छड़ी जमाने के बदले आहिस्ते से उसके कन्धे पर हाथ रखकर बनावटी क्रोध से कहते हैं—तुम कहाँ गये थे जी ? मना किया जाता है, मानते नहीं हो। खबरदार, जो अब कभी इतनी देर होगी। आदमी शाम को घर चला आता है, या मटरगश्ती करता है ?

मैं समझ रही हूँ कि यह भूमिका है। विषय अब आयेगा। भूमिका तो बुरी नहीं; लेकिन यहाँ तो भूमिका पर इति हो जाती है। बस, आपका क्रोध शान्त हो गया। बिल्कुल जैसे क्वार की घटा—घेर-घार हुआ, काले बादल आये, गड़गड़ाहट हुई और गिरी क्या चार बूँदे ! लड़का अपने कमरे में चला जाता है और शायद खुशी से नाचने लगता है।

मैं पराभूत होकर कहती हूँ—तुम तो जैसे डर गये। भला दो-चार तमाचे तो लगाये होते ! इसी तरह तो लड़के शेर हो जाते हैं।

आप फरमाते हैं—तुमने सुना नहीं, मैंने कितने जोर से डाँटा ! बचा की जान ही निकल गई होगी। देख लेना, जो फिर कभी देर में आए।

'तुमने डाँटा तो नहीं, हाँ, आँसू पोंछ दिये।'

'तुमने मेरी डाँट सुनी नहीं ?'

'क्या कहना है, आपकी डाँट का ! लोगों के कान बहरे हो गये। लाओ, तुम्हारा गला सहला दूँ।'

आपने एक नया सिद्धान्त निकाला है कि दण्ड देने से लड़के खराब हो जाते हैं। आपके विचार से लड़कों को आजाद रहना चाहिये। उन पर किसी तरह का बन्धन, शासन या दबाव न होना चाहिये। आपके मत से शासन बालकों के मानसिक विकास में बाधक होता है। इसी का यह फल है कि लड़के बे-नकेल के ऊँट बने हुए हैं। कोई एक मिनट भी किताब खोलकर नहीं बैठता। कभी गुल्ली-डंडा है, कभी गोलियाँ, कभी कनकौवे। श्रीमान भी लड़कों के साथ खेलते हैं, चालीस साल की उम्र और लड़कपन इतना। मेरे पिताजी के सामने मजाल थी कि कोई लड़का कनकौवा उड़ा ले, या गुल्ली-डंडा खेल सके।

खून पी जाते। प्रातःकाल से लड़कों को लेकर बैठ जाते थे। स्कूल से ज्योंही लड़के आते, फिर ले बैठते थे। बस, सन्ध्या समय आध घण्टे की छुट्टी देते थे। रात को फिर जोत देते। यह नहीं कि आप तो अखबार पढ़ा करें और लड़के गली-गली भटकते फिरें। कभी-कभी आप सींग कटाकर बछड़े बन जाते हैं। लड़कों के साथ ताश खेलने बैठा करते हैं। ऐसे बाप का भला लड़कों पर क्या रोब हो सकता है ? पिताजी के सामने मेरे भाई सीधे ताक नहीं सकते थे। उनकी आवाज सुनते ही तहलका मच जाता था। उन्होंने घर में कदम रखा और शान्ति का साम्राज्य हुआ। उसके सम्मुख जाते लड़कों के प्राण सूखते थे। उसी शासन की यह बरकत है कि सभी लड़के अच्छे-अच्छे पदों पर पहुँच गये। हाँ, स्वास्थ्य किसी का अच्छा नहीं है। तो पिताजी ही का स्वास्थ्य कौन बड़ा अच्छा था ! बेचारे हमेशा किसी-न-किसी औषधि का सेवन करते रहते थे। और क्या कहूँ; एक दिन तो हद ही हो गयी। श्रीमान् जी लड़कों को कनकौवा उड़ाने की शिक्षा दे रहे थे—यों घुमाओ, यों गोता दो, यों खींचों, यों ढील दो। ऐसा तन-मन से सिखा रहे थे; मानों गुरु-मन्त्र दे रहे हों। उस दिन मैंने इनकी ऐसी खबर ली कि याद करते होंगे—तुम कौन होते हो, मेरे बच्चों को बिगाड़ने वाले ! तुम्हें घर से कोई मतलब नहीं है, न हो; लेकिन आप मेरे बच्चों को खराब न कीजिए। बुरी-बुरी आदतें न सिखाइए। आप उन्हें सुधार नहीं सकते, तो कम-से-कम बिगाड़िए मत। लगे बगलें झाँकने। मैं चाहती हूँ, एक बार यह भी गरम पड़ें, तो अपना चण्डी रूप दिखाऊँ, पर यह इतना जल्द दब जाते हैं कि मैं हार जाती हूँ। पिताजी किसी लड़के को मेले-तमाशे न ले जाते थे। लड़का सिर पटककर मर जाय; मगर जरा भी न पसीजते थे और इन महात्माजी का यह हाल है कि एक-एक से पूछकर मेले ले जाते हैं—चलो, चलो, वहाँ बड़ी बहार है, खूब आतिशबाजियाँ छूटेंगी, गुब्बारे उड़ेंगे, विलायती चर्खियाँ भी हैं। उन पर मजे से बैठना। और तो और, आप लड़कों को हाकी खेलने से भी नहीं रोकते। यह अंग्रेजी खेल भी कितने जानलेवा होते हैं, क्रिकेट, फुटबाल, हाकी एक-से-एक घातक। गेंद लग जाय तो जान लेकर ही छोड़ें; पर आपको इन सभी खेलों से प्रेम है। कोई लड़का मैच में जीतकर आ जाता है, तो ऐसे फूल उठते हैं, मानों किला जीतकर आया हो। आपको इसकी जरा भी परवाह नहीं कि चोट-चपेट आ गयी, तो क्या होगा। हाथ-पाँव टूट गये, तो बेचारों की जिन्दगी कैसे पार लगेगी !

पिछले साल कन्या का विवाह था। आपको जिद थी कि दहेज के नाम कानी कौड़ी भी न देंगे, चाहे कन्या आजीवन क्वाँरी बैठी रहे। यहाँ भी आपका आदर्शवाद आ कूदा। समाज के नेताओं का छल-प्रपंच आये दिन देखते रहते हैं, फिर भी आपकी आँखें नहीं खुलतीं। जब तक समाज की यह व्यवस्था कायम है और युवती कन्या का अविवाहित रहना निन्दास्पद है, तब तक यह प्रथा मिटने की नहीं। दो-चार ऐसे व्यक्ति भले ही निकल आवें जो दहेज के लिए हाथ न फैलावें; लेकिन इसका परिस्थिति पर कोई असर नहीं पड़ता और कुप्रथा ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। पैसों की तो कभी नहीं है, दहेज की बुराइयों पर लेक्चर दे सकते हैं; लेकिन मिलते हुए दहेज को छोड़ देनेवाला मैंने आज तक न देखा। अब लड़कों की तरह लड़कियों की शिक्षा और जीविका की सुविधायें निकल आयेंगी, तो यह प्रथा भी विदा हो जायगी। उसके पहले सम्भव नहीं। मैंने जहा-जहाँ सन्देश भेजा दहेज का प्रश्न उठ खड़ा हुआ और आपने प्रत्येक अवसर पर टाँग अड़ाई। अब इस

रह पूरा साल गुजर गया और कन्या को सत्रहवाँ लग गया, तो मैंने एक जगह बात पक्की र ली। आपने भी स्वीकार कर लिया, क्योंकि वर पक्ष ने लेन-देन का प्रश्न उठाया ही हीं, हालाँकि अंतःकरण में उन लोगों को पूरा विश्वास था कि अच्छी रकम मिलेगी और ने भी तय कर लिया था कि यथाशक्ति कोई बात उठा न रखूँगी। विवाह के सकुशल होने ं कोई सन्देह न था; लेकिन इन महाशय के आगे मेरी एक न चली—यह प्रथा निन्द्य है, यह रस्म निरर्थक है, यहाँ रुपये की क्या जरूरत ? यहाँ गीतों का क्या काम ? नाक में दम या। यह क्यों, वह क्यों, यह तो साफ दहेज है, तुमने मेरे मुँह में कालिख लगा दी, मेरी आबरू मिटा दी। जरा सोचिए, इस परिस्थिति को कि बारात द्वार पर पड़ी हुई है और यहाँ बात-बात पर शास्त्रार्थ हो रहा है। विवाह का मुहूर्त आधी रात के बाद था। प्रथानुसार मैंने व्रत रखा; किन्तु आपकी टेक थी कि व्रत की कोई जरूरत नहीं। जब लड़के के माता-पिता व्रत नहीं रखते, जब लड़का तक व्रत नहीं रखता, तो कन्या पक्षवाले ही व्रत क्यों रखें ! मैं और सारा खानदान मना करता रहा; लेकिन आपने नाश्ता किया, भोजन किया। खैर ! कन्या-दान का मुहूर्त आया। आप सदैव से इस प्रथा के विरोधी हैं। आप इसे निषिद्ध समझते हैं। कन्या क्या दान की वस्तु हैं ? दान रुपये-पैसे, जगह-जमीन का हो सकता है। पशु-दान भी होता है लेकिन लड़की का दान ! एक लचर सी बात है। कितना समझाती हूँ; पुरानी प्रथा है, वेद-काल से होती चली आई है, शास्त्रों में इसकी व्यवस्था है, सम्बन्धी समझा रहे हैं; पण्डित समझा रहे हैं; पर आप हैं, कि कान पर जूँ नहीं रेंगती। हाथ जोड़ती हूँ, पैरों पड़ती हूँ, गिड़गिड़ाती हूँ, लेकिन मंडप के नीचे न गये। और मजा यह है कि आपने ही तो यह अनर्थ किया और आप ही मुझसे रूठ गये। विवाह के पश्चात् महीनों बोलचाल न रही। झक मारकर मुझी को मानना पड़ा।

किन्तु सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि इन सारे दुर्गुणों के होते हुए भी मैं इनसे एक दिन भी पृथक नहीं रह सकती—एक क्षण का वियोग नहीं सह सकती। इन सारे दोषों पर भी मुझे इनसे प्रगाढ़ प्रेम है। इनमें यह कौन-सा गुण है, जिस पर मैं मुग्ध हूँ, मैं खुद नहीं जानती; पर इनमें कोई बात ऐसी है, जो मुझे इनकी चेरी बनाये हुए है। वह जरा मामूली सी देर में घर आते हैं, तो प्राण नहों में समा जाते हैं। आज यदि विधाता इनके बदले मुझे कोई विद्या और बुद्धि का पुतला, रूप और धन का देवता भी दे, तो मैं उसकी ओर आँखें उठाकर न देखूँ। यह धर्म की बेड़ी नहीं है, कदापि नहीं। प्रथागत पतिव्रत भी नहीं; बल्कि हम दोनों की प्रकृति में कुछ ऐसी क्षमताएँ, कुछ व्यवस्थाएँ उत्पन्न हो गयी हैं, मानों किसी मशीन के कल-पुरजे घिस-घिसाकर फिट हो गये हों, और एक पुरजे की जगह दूसरा पुरजा काम न दे सके, चाहे वह पहले से कितना ही सुडौल, नया और सुदृढ़ क्यों न हो। जाने हुए रास्ते से हम निःशंक आँखें बन्द किये जाते हैं, उसके ऊँच-नीच, मोड़ और घुमाव सब हमारी आँखों में समाये हुए हैं। अनजान रास्ते पर चलना कितना कष्ट-प्रद होगा। शायद आज मैं इनके दोषों को गुणों से बदलने पर भी तैयार न हूँगी।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अप्रैल, 1932 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप 'शिकवा-शिकायत' शीर्षक से उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन', जून, 1932 में तथा 'जामिया' जनवरी, 1937 में प्रकाशित।'वारदात' में संकलित।]

नया विवाह

हमारी देह पुरानी है, लेकिन इसमें सदैव नया रक्त दौड़ता रहता है। नये रक्त के प्रवाह पर ही हमारे जीवन का आधार है। पृथ्वी की इस चिरन्तन व्यवस्था में यह नयापन उसके एक-एक अणु में, एक-एक कण में, तार में बसे हुए स्वरों की भाँति, गूँजता रहता है और यह सौ साल की बुढ़िया आज भी नवेली दुल्हन बनी हुई है।

जब से लाला डंगामल ने नया विवाह किया है, उनका यौवन नये सिरे से जाग उठा है। जब पहली स्त्री जीवित थी, तब वे घर में बहुत कम रहते थे। प्रातः से दस ग्यारह बजे तक तो पूजा-पाठ ही करते रहते थे। फिर भोजन करके दूकान चले जाते। वहाँ से एक बजे रात लौटते और थके-माँदे सो जाते। यदि लीला कभी कहती, जरा और सबेरे आ जाया करो, तो बिगड़ जाते और कहते—तुम्हारे लिए क्या दूकान छोड़ दूँ, या रोजगार बन्द कर दूँ? यह वह जमाना नहीं है कि एक लोटा जल चढ़ाकर लक्ष्मी प्रसन्न कर ली जायँ। आज उनकी चौखट पर माथा रगड़ना पड़ता है; तब भी उनका मुँह सीधा नहीं होता। लीला बेचारी चुप हो जाती।

अभी छः महीने की बात है। लीला को ज्वर चढ़ा हुआ था। लालाजी दूकान जाने लगे, तब उसने डरते-डरते कहा था—देखो, मेरा जी अच्छा नहीं है। जरा सबेरे आ जाना।

डंगामल ने पगड़ी उतारकर खूँटी पर लटका दी और बोले—अगर मेरे बैठे रहने से तुम्हारा जी अच्छा हो जाय, तो मैं दूकान न जाऊँगा।

लीला हताश होकर बोली—मैं दूकान जाने को तो नहीं मना करती। केवल जरा सबेरे आने को कहती हूँ।

'तो क्या दूकान पर बैठा मौज किया करता हूँ। ?'

लीला इसका क्या जवाब देती ? पति का यह स्नेह-हीन व्यवहार उसके लिये कोई नयी बात न थी। इधर कई साल से उसे इसका कठोर अनुभव हो रहा था कि उसकी इस घर में कद्र नहीं है। वह अक्सर इस समस्या पर विचार भी किया करती, पर वह अपना कोई अपराध न पाती। वह पति की सेवा अब पहले से कहीं ज्यादा करती, उनके कार्य-भार को हल्का करने की बराबर चेष्टा करती रहती, बराबर प्रसन्नचित्त रहती; कभी उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती। अगर उसकी जवानी ढल चुकी थी, तो इसमें उसका क्या अपराध था ? किसकी जवानी सदैव स्थिर रहती है ? अगर अब उसका स्वास्थ्य उतना अच्छा न था, तो इसमें उसका क्या दोष? उसे बेकसूर क्यों दण्ड दिया जाता है ?

उचित तो यह था कि पच्चीस साल का साहचर्य अब एक गहरी मानसिक और आत्मिक अनुरूपता का रूप धारण कर लेता, जो दोष को भी गुण बना लेता है, जो पके फल की तरह ज्यादा रसीला, ज्यादा मीठा, ज्यादा सुन्दर हो जाता है। लेकिन लालजी का वणिक-हृदय हर एक पदार्थ को वाणिज्य की तराजू से तौलता था। बूढ़ी गाय जब न दूध दे सकती है न बच्चे, तब उसके लिए गोशाला ही सबसे अच्छी जगह है। उनके विचार में लीला के लिए इतना ही काफी था कि घर की मालकिन बनी रहे; आराम से खाय और पड़ी रहे। उसे अख्तियार है चाहे जितने जेवर बनवाये, चाहे जितना स्नान व पूजा करे, केवल उनसे दूर रहे। मानव-प्रकृति की जटिलता का एक रहस्य यह था कि डंगामल जिस आनन्द से लीला को वंचित रखना चाहते थे, जिसकी उसके लिए कोई जरूरत ही न

समझते थे, खुद उसी के लिए सदैव प्रयत्न करते रहते थे। लीला चालीस वर्ष की होकर बूढ़ी समझ ली गयी थी, किन्तु वे तैंतालीस के होकर अभी जवान ही थे, जवानी के उन्माद और उल्लास से भरे हुए। लीला से अब उन्हें एक तरह की अरुचि होती थी और वह दुखिया जब अपनी त्रुटियों का अनुभव करके प्रकृति के निर्दय आघातों से बचने के लिए रंग व रोगन की आड़ लेती, तब लालाजी उसके बूढ़े नखरों से और भी घृणा करने लगते ! वे कहते—वाह री तृष्णा ! सात लड़कों की तो माँ हो गयी, बाल खिचड़ी हो गये, चेहरा धुले हुए फलालैन की तरह सिकुड़ गया, मगर आपको अभी महावर, सेंदुर, मेहंदी और उबटन की हवस बाकी ही है। औरतों का स्वभाव भी कितना विचित्र है ! न जाने क्यों बनाव-सिंगार पर इतना जान देती हैं ? पूछो, अब तुम्हें और क्या चाहिए। क्यों नहीं मन को समझा लेतीं कि जवानी विदा हो गयी और इन उपादानों से वह वापस नहीं बुलायी जा सकती ! लेकिन वे खुद जवानी का स्वप्न देखते रहते थे। उनकी जवानी की तृष्णा अभी शान्त न हुई थी। जाड़ों में रसों और पाकों का सेवन करते रहते थे। हफ्ते में दो बार खिजाब लगाते और एक डाक्टर से मंकीग्लैंड के विषय में पत्र-व्यवहार कर रहे थे।

लीला ने उन्हें असमंजस में देखकर कातर-स्वर में पूछा—कुछ बतला सकते हो, कै बजे आओगे ?

लालाजी ने शान्त भाव से पूछा—तुम्हारा जी आज कैसा है ?

लीला क्या जवाब दे ? अगर कहती है कि बहुत खराब है, तो शायद वे महाशय वहीं बैठ जायँ और उसे जली-कटी सुनाकर अपने दिल का बुखार निकालें। अगर कहती है कि अच्छी हूँ, तो शायद निश्चिन्त होकर दो बजे तक कहीं खबर लें। इस दुविधा में डरते-डरते बोली—अब तक तो हलकी थी, लेकिन अब कुछ भारी हो रही है। तुम जाओ, दूकान पर लोग तुम्हारी राह देखते होंगे। हाँ, ईश्वर के लिए एक-दो न बजा देना। लड़के सो जाते हैं, मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता, जी घबराता है !

सेठजी ने अपने स्वर में स्नेह की चाशनी देकर कहा—बारह बजे तक आ जरूर जाऊँगा !

लीला का मुख धूमिल हो गया। उसने कहा—दस बजे तक नहीं आ सकते ?

'साढ़े ग्यारह से पहले किसी तरह नहीं।'

'नहीं, साढ़े दस।'

'अच्छा, ग्यारह बजे।'

लाला वादा करके चले गये, लेकिन दस बजे रात को एक मित्र ने मुजरा सुनने के लिए बुला भेजा। इस निमन्त्रण को कैसे इनकार कर देते। जब एक आदमी आपको खातिर से बुलाता है, तब यह कहाँ की भलमनसाहत है कि आप उसका निमन्त्रण अस्वीकार कर दें ?

लालाजी मुजरा सुनने चले गये, दो बजे लौटे। चुपके से आकर नौकर को जगाया और अपने कमरे में आकर लेट रहे। लीला उनकी राह देखती, प्रतिक्षण विकल-वेदना का अनुभव करती हुई न-जाने कब सो गयी थी।

अन्त को इस बीमारी ने अभागिनी लीला की जान ही लेकर छोड़ा। लाला जी को उसके मरने का बड़ा दुःख हुआ। मित्रों ने समवेदना के तार भेजे। एक दैनिक पत्र ने शोक

प्रकट करते हुए लीला के मानसिक और धार्मिक सद्‌गुणों को खूब बढ़ाकर वर्णन किया। लालाजी ने इन सभी मित्रों को हार्दिक धन्यवाद दिया और लीला के नाम से बालिका-विद्यालय में पाँच वजीफे प्रदान किये तथा मृतक-भोज तो जितने समारोह से किया गया, वह नगर के इतिहास में बहुत दिनों तक याद रहेगा।

लेकिन एक महीना भी न गुजरने पाया था कि लालाजी के मित्रों ने चारा डालना शुरू कर दिया और उसका यह असर हुआ कि छः महीने की विधुरता के तप के बाद उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। आखिर बेचारे क्या करते ? जीवन में एक सहचरी की आवश्यकता तो थी ही और इस उम्र में तो एक तरह से वह अनिवार्य हो गयी थी।

2

जब से नयी पत्नी आयी. लालाजी के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। दूकान से अब उतना प्रेम नहीं था। लगाकार हफ्तों न जाने में भी उनके कारबार में कोई हर्ज नहीं होता था। जीवन के उपभोग की जो शक्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी, अब वह छींटे पाकर सजीव हो गयी थी, सूखा पेड़ हरा हो गया था, उसमें नयी-नयी कोपलें फूटने लगी थीं। मोटर नयी आ गयी थी, कमरे नये फर्नीचर से सजा दिये गये थे, नौकरों की भी संख्या बढ़ गयी थी, रेडियो आ पहुँचा था और प्रतिदिन नये-नये उपहार आते रहते थे। लालाजी की बूढ़ी जवानी जवानों की जवानी से भी प्रखर हो गयी थी, उसी तरह जैसे बिजली का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश से ज्यादा स्वच्छ और मनोरंजक होता है। लालाजी को उनके मित्र इस रूपान्तर पर बधाइयाँ देते, जब वे गर्व के साथ कहते—भाई, हम तो हमेशा जवान रहे और हमेशा जवान रहेंगे। बुढ़ापा यहाँ आये तो उसके मुँह में कालिख लगा कर गधे पर उलटा सवार कराके शहर से निकाल दें। जवानी और बुढ़ापे को न जाने क्यों लोग अवस्था से सम्बद्ध कर देते हैं। जवानी का उम्र से उतना ही सम्बन्ध है; जितना धर्म का आचार से, रुपये का ईमानदारी से, रूप का श्रृंगार से। आजकल के जवानों को आप जवान कहते हैं? उनकी एक हजार जंवानियों को अपने एक घंटे से भी न बदलूँगा। मालूम होता है उनकी जिन्दगी में कोई उत्साह ही नहीं, कोई शौक नहीं। जीवन क्या है, गले में पड़ा हुआ एक ढोल है।

यही शब्द घटा-बढ़ाकर वे आशा के हृदय-पटल पर अंकित करते रहे थे। उससे बराबर सिनेमा, थियेटर और दरिया की सैर के लिए आग्रह करते रहते। लेकिन आशा को न जाने क्यों इन बातों में जरा भी रुचि न थी। वह जाती तो थी, मगर बहुत टाल-टूट करने के बाद। एक दिन लालाजी ने आकर कहा—चलो, आज बजरे पर दरिया की सैर करें।

वर्षा के दिन थे, दरिया चढ़ा हुआ था, मेघ-मालाएँ अन्तर्राष्ट्रीय सेनाओं की भाँति रंग-बिरंगी वर्दियाँ पहने आकाश में कवायद कर रही थीं। सड़क पर लोग मलार और बारहमासा गाते चलते थे। बागों में झूले पड़ गये थे।

आशा ने बेदिली से कहा—मेरा जी तो नहीं चाहता।

लालाजी ने मृदु प्रेरणा के साथ कहा—तुम्हारा मन कैसा है जो आमोद-प्रमोद की ओर आकर्षित नहीं होता ? चलो, जरा दरिया की सैर देखो। सच कहता हूँ, बजरे पर बड़ी बहार रहेगी।

'आप जायँ। मुझे और कई काम करने हैं।'

'काम करने को आदमी हैं। तुम क्यों काम करोगी ?'

'महाराज अच्छे सालन नहीं पकाता। आप खाने बैठेंगे तो यों ही उठ जायँगे।'

लीला अपने अवकाश का बड़ा भाग लालाजी के लिए तरह-तरह का भोजन पकाने में ही लगाती थी। उसने किसी से सुन रखा था कि एक विशेष अवस्था के बाद पुरुष के जीवन का सबसे बड़ा सुख, रसना का स्वाद ही रह जाता है।

लालाजी की आत्मा खिल उठी। उन्होंने सोचा कि आशा को उनसे कितना प्रेम है कि वह दरिया की सैर को उनकी सेवा के लिए छोड़ रही है। एक लीला थी कि 'मान-न-मान' चलने को तैयार रहती थी। पीछा छुड़ाना पड़ता था, ख्वामख्वाह सिर पर सवार हो जाती थी और सारा मजा किरकिरा कर देती थी।

स्नेह-भरे उलाहने से बोले—तुम्हारा मन भी विचित्र है। अगर एक दिन सालन फीका ही रहा, ऐसा क्या तूफान आ जायगा ? तुम तो मुझे बिलकुल निकम्मा बनाये देती हो। अगर तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊँगा।

आशा ने जैसे गले से फन्दा छुड़ाते हुए कहा—आप भी तो मुझे इधर-उधर घुमा-घुमाकर मेरा मिजाज बिगाड़ देते हैं। यह आदत पड़ जायगी, तो घर का धन्धा कौन करेगा ?

'मुझे घर के धन्धे की रत्ती-भर भी परवा नहीं—बाल की नोक बराबर भी नहीं ? मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा मिजाज बिगड़े और तुम गृहस्थी की चक्की से दूर रहो और तुम मुझे बार-बार आप क्यों कहती हो ? मैं चाहता हूँ, तुम मुझे तुम कहो, तू कहो, गालियाँ दो, धौल जमाओ। तुम तो मुझे आप कहके जैसे देवता के सिंहासन पर बैठा देती हो ! मैं अपने घर में देवता नहीं, चंचल बालक बनना चाहता हूँ।'

आशा ने मुस्कराने की चेष्टा करके कहा—भला, मैं आपको 'तुम' कहूँगी। तुम बराबर वाले को कहा जाता है कि बड़ों को ?

मुनीम ने एक लाख के घाटे की खबर सुनायी होती, तो भी शायद लालाजी को इतना दुःख न होता, जितना आशा के इन कठोर शब्दों से हुआ। उनका सारा उत्साह, सारा उल्लास जैसे ठडा पड़ गया। सिर पर बॉकी रखी हुई फूलदार टोपी, गले में पड़ी हुई जोगिये रंग की चुनी हुई रेशमी चादर, वह तंजेब का बेलदार कुर्त्ता, जिसमें सोने के बटन लगे हुए थे यह सारा ठाट कैसे उन्हें हास्यजनक जान पड़ने लगा, जैसे वह सारा नशा किसी मन्त्र से उतर गया हो।

निराश होकर बोले—तो तुम्हें चलना है या नहीं।

'मेरा जी नहीं चाहता।'

'तो मैं भी न जाऊँ ?'

'मैं आपको कब मना करती हूँ ?'

'फिर 'आप' कहा ?'

आशा ने जैसे भीतर से जोर लगाकर कहा 'तुम' और उसका मुखमण्डल लज्जा से आरक्त हो गया।

'हाँ, इसी तरह 'तुम' कहा करो। तो तुम नहीं चल रही हो ? अगर मैं कहूँ, तुम्हें चलना पड़ेगा ?'

'तब चलूँगी। आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है।'

लालाजी आज्ञा न दे सके। आज्ञा और धर्म जैसे शब्द उनके कानों में चुभने-से लगे। खिसियाये हुए बाहर को चल पड़े; उस वक्त आशा को उन पर दया आ गयी। बोली—तो कब तक लौटोगे ?

'मैं नहीं जा रहा हूँ।'

'अच्छा, तो मैं भी चलती हूँ।'

जैसे कोई जिद्दी लड़का रोने के बाद अपनी इच्छित वस्तु पाकर उसे पैरों से ठुकरा देता है, उसी तरह लालाजी ने मुँह बनाकर कहा—तुम्हारा जी नहीं चलता, तो न चलो। मैं आग्रह नहीं करता।

'आप नहीं, तुम बुरा मान जाओगे।'

आशा गयी, लेकिन उमंग से नहीं। जिस मामूली वेश में थी, उसी तरह चल खड़ी हुई। न कोई सजीली साड़ी, न जड़ाऊ गहने, न कोई सिंगार, जैसे कोई विधवा हो।

ऐसी ही बातों पर लालाजी मन में झुँझला उठते थे। ब्याह किया था, जीवन का आनन्द उठाने के लिए, झिलमिलाते हुए दीपक में तेल डालकर उसे और चटक करने के लिए। अगर दीपक का प्रकाश तेज न हुआ, तो तेल डालने से लाभ ? न-जाने इसका मन क्यों इतना शुष्क और नीरस है, जैसे कोई ऊसर का पेड़ हो, कितना ही पानी डालो, उसमें हरी पत्तियों के दर्शन न होंगे। जड़ाऊ गहनों से भरी पेटारियाँ खुली हुई हैं, कहाँ-कहाँ से मँगवाये—दिल्ली से, कलकत्ते से, फ्रांस से। कैसी-कैसी बहुमूल्य साड़ियाँ रखी हुई हैं। एक नहीं, सैकड़ों। पर केवल सन्दूक में कीड़ों का भोजन बनने के लिए। दरिद्र घर की लड़कियों में यही ऐब होता है। उनकी दृष्टि सदैव संकीर्ण रही है। न खा सकें, न पहन सकें, न दे सकें। उन्हें तो खजाना भी मिल जाय, तो यही सोचती रहेंगी कि खर्च कैसे करें।

दरिया की सैर तो हुई, पर विशेष आनन्द न आया।

3

कई महीने तक आशा की मनोवृत्तियों को जगाने का असफल प्रयत्न करके लालाजी ने समझ लिया कि इनकी पैदाइश ही मुहर्रमी है। लेकिन फिर भी निराश न हुए। ऐसे व्यापार में एक बड़ी रकम लगाने के बाद वे उसमें अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की वणिक्-प्रवृत्ति को कैसे त्याग देते ? विनोद की नयी-नयी योजनाएँ पैदा की जातीं—ग्रामोफोन अगर बिगड़ गया है, गाता नहीं, या साफ आवाज नहीं निकलती, तो उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। उसे उठा कर रख देना, तो मूर्खता है।

इधर बूढ़ा महाराज एकाएक बीमार होकर घर चला गया था और उसकी जगह उसका सत्रह-अठारह साल का जवान लड़का आ गया था—कुछ अजीब गँवार था, बिलकुल झंगड़, उजड्ड। कोई बात ही न समझता था। जितने फुलके बनाता, उतनी तरह के। हाँ, एक बात समान होती। सब बीच में मोटे होते, किनारे पतले। दाल कभी तो इतनी पतली जैसे चाय, कभी इतनी गाढ़ी जैसे दही। नमक कभी इतना कम कि बिलकुल फीकी, कभी इतना तेज कि नींबू का शाकीन। आशा मुँह-हाथ धोकर चौके में पहुँच जाती और इस डपोरशंख को भोजन पकाना सिखाती। एक दिन उसने कहा—तुम कितने नालायक आदमी हो जुगल। आख़िर इतनी उम्र तक तुम घास खोदते रहे या भाड़ झोंकते रहे कि फुलके तक नहीं बना

सकते ? जुगल आँखों में आँसू भर-कर कहता—बहूजी, अभी मेरी उम्र ही क्या है ? सत्रहवाँ ही तो पूरा हुआ है !

आशा को उसकी बात पर हँसी आ गयी। उसने कहा—तो रोटियाँ पकाना क्या दस-पाँच साल में आता है ?

'आप एक महीना सिखा दें बहू जी, फिर देखिए, मैं आपको कैसे फुलके खिलाता हूँ कि जी खुश हो जाय। जिस दिन मुझे फुलके बनाने आ जायँगे, मैं आपसे कोई इनाम लूँगा। सालन तो अब मैं कुछ-कुछ बनाने लगा हूँ, क्यों ?'

आशा ने हौसला बढ़ाने वाली मुस्कराहट के साथ कहा—सालन नहीं, वो बनाना आता है। अभी कल ही नमक इतना तेज था कि खाया न गया। मसाले में कचाँध आ रही थी।

'मैं जब सालन बना रहा था, तब आप यहाँ कब थीं ?'

'अच्छा, तो मैं जब यहाँ बैठी रहूँ तब तुम्हारा सालन बढ़िया पकेगा ?'

'आप बैठी रहती हैं, तब मेरी अक्ल ठिकाने रहती है।'

आशा को जुगल की इन भोली बातों पर खूब हँसी आ रही थी। हँसी को रोकना चाहती थी, पर वह इस तरह निकली पड़ती थी जैसे भरी बोतल उँड़ेल दी गयी हो।

'और मैं नहीं रहती तब ?'

'तब तो आपके कमरे के द्वार पर जा बैठता हूँ। वहाँ बैठकर अपनी तकदीर को रोता हूँ।'

आशा ने हँसी को रोक कर पूछा—क्यों, रोते क्यों हो ?

'यह न पूछिए बहूजी, आप इन बातों को नहीं समझेंगी।'

आशा ने उसके मुँह की ओर प्रश्न की आँखों से देखा। उसका आशय कुछ तो समझ गयी, पर न समझने का बहाना किया।

'तुम्हारे दादा आ जायंगे; तब तुम चले जाओगे ?'

'और क्या करूंगा बहूजी। यहाँ कोई काम दिलवा दीजिएगा, तो पड़ा रहूँगा। मुझे मोटर चलाना सिखवा दीजिए। आपको खूब सैर कराया करूंगा। नहीं, नहीं बहूजी, आप हट जाइए, मैं पतीली उतार लूँगा। ऐसी अच्छी साड़ी है आपकी, कही कोई दाग पड़ जाय, तो क्या हो ?'

आशा पतीली उतार रही थी। जुगल ने उसके हाथ से सँड़सी ले लेनी चाही।

'दूर रहो। फूहड़ तो तुम हो ही। कहीं पतीली पाँव पर गिरा ली, तो महीनों झींकोगे।'

जुगल के मुख पर उदासी छा गयी।

आशा ने मुस्कराकर पूछा—क्यों, मुँह क्यों लटकर गया सरकार का ?

जुगल रुआँसा होकर बोला—आप मुझे डाँट देती हैं, बहूजी, तब मेरा दिल टूट जाता है। सरकार कितना ही घुड़कें, मुझे बिलकुल ही दुःख नहीं होता। आपकी नजर कड़ी देख कर मेरा खून सर्द हो जाता है।

आशा ने दिलासा दिया—मैंने तुम्हें डाँटा तो नहीं, केवल यही तो कहा कि कहीं पतीली तुम्हारे पाँव पर गिर पड़े तो क्या हो ?

'हाथ ही तो आपका भी है। कहीं आपके ही हाथ से छूट पड़े तो ?'

लाला डंगामल ने रसोई-घर के द्वार पर आकर कहा—आशा, जरा यहाँ आना। देखो, तुम्हारे लिए कितने सुन्दर गमले लाया हूँ। तुम्हारे कमरे के सामने रखे जायँगे। तुम यहाँ धुएँ-धक्कड़ में क्यों हलाकान होती हो ? इस लड़के से कह दो कि जल्दी महाराज को बुलाये। नहीं तो मैं कोई दूसरा आदमी रख लूँगा। महाराजों की कमी नहीं है। आखिर कब तक कोई रिआयत करे, गधे को जरा भी तमीज नहीं आयी। सुनता है जुगल, लिख दे आज अपने बाप को।

चूल्हे पर तवा रखा हुआ था। आशा रोटियाँ बेलने में लगी थी। जुगल तवे के लिए रोटियों का इन्तजार कर रहा था। ऐसी हालत में भला आशा कैसे गमले देखने जाती ?

उसने कहा—जुगल रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेल डालेगा।

लालाजी ने कुछ चिढ़कर कहा—अगर रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेलेगा, तो निकाल दिया जायगा !

आशा अनसुनी करके बोली—दस-पाँच दिन में सीख जायगा, निकालने की क्या जरूरत है ?

'तुम आकर बतला दो, गमले कहाँ रखे जायँ।'

'कहती तो हूँ, रोटियाँ बेलकर आयी जाती हूँ।'

'नहीं, मैं कहता हूँ तुम रोटियाँ मत बेलो।'

'आप तो ख्वामख्वाह जिद करते हैं।'

लालाजी सन्नाटे में आ गये। आशा ने कभी इतनी रुखाई से उन्हें जवाब न दिया था। और यह केवल रुखाई न थी, इसमें कटुता भी थी। लज्जित होकर चले गये। उन्हें ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन गमलों को तोड़कर फेंक दे और सारे पौधों को चूल्हे में डाल दें।

जुगल ने सहमे हुए स्वर में कहा—आप चली जायँ बहूजी, सरकार बिगड़ जायँगे।

'बको मत; जल्दी-जल्दी फुलके सेंको, नहीं तो निकाल दिये जाओगे। और आज मुझसे रुपये लेकर अपने लिए कपड़े बनवा लो। भिखमंगों की-सी सूरत बनाये घूमते हो। और बाल क्यों इतने बढ़ा रखे हैं ? तुम्हें नाई भी नहीं जुड़ता ?'

जुगल ने दूर की बात सोची। बोला—कपड़े बनवा लूँ, तो दादा को हिसाब क्या दूँगा?

'अरे पागल ! मैं हिसाब में नहीं देने कहती। मुझसे ले जाना।'

जुगल काहिलपन की हँसी हँसा।

'आप बनवायेंगी, तो अच्छे कपड़े लूँगा। खद्दर के मलमल का कुर्त्ता, खद्दर की धोती, रेशमी चादर, अच्छा-सा चप्पल।'

आशा ने मीठी मुस्कान से कहा—और अगर अपने दाम से बनवाने पड़े।

'तब कपड़े ही क्यों बनवाऊँगा ?'

'बड़े चालाक हो तुम।'

जुगल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया—आदमी अपने घर में सूखी रोटियाँ खाकर सो रहता है, लेकिन दावत में तो अच्छे-अच्छे पकवान ही खाता है। वहाँ भी यदि रूखी रोटियाँ मिलें, तो वह दावत में जाय ही नहीं।

'यह सब मैं नहीं जानती। एक गाढ़े का कुर्त्ता बनवा लो और एक टोपी ले लो,

हजामत के लिए दो आने पैसे ऊपर से ले लो।'

जुगल ने मान करके कहा—रहने दीजिए। मैं नहीं लेता। अच्छे कपड़े पहन कर निकलूँगा, तब तो आपकी याद आवेगी। सड़ियल कपड़े पहनकर तो और जी जलेगा।

'तुम स्वार्थी हो, मुफ्त के कपड़े लोगे और साथ ही बढ़िया भी।'

'जब यहाँ से जाने लगूँ, तब आप मुझे अपना एक चित्र दीजिएगा।'

'मेरा चित्र लेकर क्या करोगे ?'

'अपनी कोठरी में लगाऊँगा और नित्य देखा करूँगा। बस, वही साड़ी पहनकर खिंचवाना, जो कल पहनी थी और वही मोतियों की माला भी हो। मुझे नंगी-नंगी सूरत अच्छी नहीं लगती। आपके पास तो बहुत गहने होंगे। आप पहनती क्यों नहीं !'

'तो तुम्हें गहने अच्छे लगते हैं ?'

'बहुत।'

लालाजी ने फिर आकर जलते हुए मन से कहा—अभी तक तुम्हारी रोटियाँ नहीं पकीं जुगल ? अगर कल से तूने अपने-आप अच्छी रोटियाँ न पकायीं तो मैं तुझे निकाल दूँगा।

आशा ने तुरन्त हाथ-मुँह धोया और बड़े प्रसन्न मन से लालाजी के साथ गमले देखने चली। इस समय उसकी छवि में प्रफुल्लता का रौनक था, बातों में भी जैसे शक्कर घुली हुई थी। लालाजी का सारा खिसियानापन मिट गया था।

उसने गमलों को क्षुब्ध आँखों से देखा। उसने कहा—मैं इनमें से कोई गमला न जाने दूँगी। सब मेरे कमरे के सामने रखवाना, सब ! कितने सुन्दर पौधे हैं, वाह ! इनके हिन्दी नाम भी मुझे बतला देना।

लालाजी ने छेड़ा—सब गमले क्या करोगी ? दस-पाँच पसन्द कर लो। शेष मैं बाहर रखवा दूँगा।

'जी नहीं। मैं एक भी न छोड़ूँगी। सब यहीं रखे जायँगे।'

'बड़ी लालचिन हो तुम।'

'लालचिन ही सही। मैं आपको एक भी न दूँगी।'

'दो-चार तो दे दो ? इतनी मेहनत से लाया हूँ।'

'जी नहीं, इनमें से एक भी न मिलेगा।'

4

दूसरे दिन आशा ने अपने को आभूषण से खूब सजाया और फीरोजी साड़ी पहनकर निकली, तब लालाजी की आँखों में ज्योति आ गयी। समझे, अवश्य ही अब उनके प्रेम का जादू 'कुछ-कुछ' चल रहा है। नहीं तो उनके बार-बार के आग्रह करने पर भी, बार-बार याचना करने पर भी, उसने कोई आभूषण न पहना था। कभी-कभी मोतियों का हार गले में डाल लेती थी, वह भी ऊपरी मन से। आज वह आभूषणों से अलंकृत होकर फूली नहीं समाती, इतरायी जाती है, मानो कहती हो, देखो, मैं कितनी सुन्दर हूँ !

पहले जो बन्द कली थी, वह आज खिल गयी थी।

लालाजी पर घड़ों का नशा चढ़ा हुआ था। वे चाहते थे, उनके मित्र और बन्धु-वर्ग

आकर इस सोने की रानी के दर्शनों से अपनी आँखें ठंडी करें। देखें कि वह कितनी सुखी, संतुष्ट और प्रसन्न है। जिन विद्रोहियों ने विवाह के समय तरह-तरह की शंकाएँ की थीं, वे आँखें खोलकर देखें कि डंगामल कितना सुखी है। विश्वास, अनुराग और अनुभव ने चमत्कार किया है ?

उन्होंने प्रस्ताव किया—चलो, कहीं घूम आयें। बड़ी मजेदार हवा चल रही है।

आशा इस वक्त कैसे जा सकती थी ? अभी उसे रसोई में जाना था, वहाँ से कहीं बारह-एक बजे फुर्सत मिलेगी। फिर घर के दूसरे धन्धे सिर पर 'सवार' हो जायँगे। सैर-सपाटे के पीछे क्या घर चौपट कर दें ?

सेठजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—नहीं, आज मैं तुम्हें रसोई में न जाने दूँगा।

'महाराज के कि ये कुछ न होगा।'

'तो आज उसकी शामत भी आ जायगी।'

आशा के मुख पर से वह प्रफुल्लता जाती रही। मन भी उदास हो गया। एक सोफा पर लेट कर बोली—आज न-जाने क्यों कलेजे में मीठा-मीठा दर्द हो रहा है। ऐसा दर्द कभी नहीं होता था।

सेठजी घबरा उठे।

'यह दर्द कब से हो रहा है ?'

'हो तो रहा है रात से ही, लेकिन अभी कुछ कम हो गया था। अब फिर होने लगा है। रह-रहकर जैसे चुभन हो जाती है।'

सेठजी एक बात सोचकर दिल-ही-दिल में फूल उठे। अब वे गोलियाँ रंग ला रही हैं। राजवैद्यजी ने कहा भी था कि जरा सोच-समझकर इनका सेवन कीजिएगा। क्यों न हो! खानदानी वैद्य हैं। इनके बाप बनारस के महाराज के चिकित्सक थे। पुराने और परीक्षित नुस्खे हैं इनके पास ! उन्होंने कहा—तो रात से ही यह दर्द हो रहा है ? तुमने मुझसे कहा नहीं तो वैद्यजी से कोई दवा मँगवाता।

'मैंने समझा था, आप-ही-आप अच्छा हो जायगा, मगर अब बढ़ रहा है।'

'कहाँ दर्द हो रहा है ? जरा देखूँ ! कुछ सूजन तो नहीं है ?'

सेठजी ने आशा के आँचल की तरफ हाथ बढ़ाया। आशा ने शर्माकर सिर झुका लिया। उसने कहा—यह तुम्हारी शरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं अपनी जान से मरती हूँ तुम्हें हँसी सूझती है। जाकर कोई दवा ला दो।

सेठजी अपने पुंसत्व का यह डिप्लोमा पाकर उससे कहीं ज्यादा प्रसन्न हुए, जितना रायबहादुरी पाकर होते। इस विजय का डंका पीटे बिना उन्हें कैसे चैन आ सकता था ? जो लोग उनके विवाह के विषय में द्वेषमय टिप्पणियाँ कर रहे थे, उन्हें नीचा दिखाने का कितना अच्छा अवसर हाथ आया है और इतनी जल्दी।

पहले पंडित भोलानाथ के पास गये और भाग्य ठोंककर बोले—भई, मैं तो बड़ी विपत्ति में फँस गया। कल से उनके कलेजे में दर्द हो रहा है। कुछ बुद्धि काम नहीं करती। कहती है; ऐसा दर्द पहले कभी नहीं हुआ था।

भोलानाथ ने कुछ बहुत हमदर्दी न दिखायी।

सेठजी यहाँ से उठकर अपने दूसरे मित्र लाला फागमल के पास पहुँचे, और उनसे भी लगभग इन्हीं शब्दों में यह शोक-सम्वाद कहा।

फागमल बड़ा शोहदा था। मुस्कराकर बोला—मुझे तो आपकी शरारत मालूम होती है।

सेठजी की बाँछें खिल गयीं। उन्होंने कहा—मैं अपना दुःख सुना रहा हूँ और तुम्हें दिल्लगी सूझती है, जरा भी आदमीयत तुममें नहीं है।

'मैं दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। इसमें दिल्लगी की क्या बात है ? वे हैं कमसिन, कोमलांगी, आप ठहरे पुराने लठैत, दंगल के पहलवान ! बस ! अगर यह बात न निकले, तो मूँछें मुड़ा लूँ।'

सेठ की आँखें जगमगा उठीं। मन में यौवन की भावना प्रबल हो उठी और उसके साथ ही मुख पर भी यौवन की झलक आ गयी। छाती जैसे कुछ फैल गयी। चलते समय उनके पग कुछ अधिक मजबूती से जमीन पर पड़ने लगे और सिर की टोपी भी न जाने कैसे बाँकी हो गयी। आकृति से बाँकपन की शान बरसने लगी।

5

जुगल ने आशा को सिर से पाँव तक जगमगाते देखकर कहा—बस बहूजी, आप इसी तरह पहने-ओढ़े रहा करें। आज मैं आपको चूल्हे के पास न आने दूँगा।

आशा ने नयन-बाण चलाकर कहा—क्यों, आज यह नया हुक्म क्यों ? पहले तो तुमने कभी मना नहीं किया।

'आज की बात दूसरी है।'

'जरा सुनूँ, क्या बात है ?'

'मैं डरता हूँ, आप कहीं नाराज न हो जायँ ?'

'नहीं-नहीं, कहो, मैं नाराज न होऊँगी।'

'आज आप बहुत सुन्दर लग रही हैं।'

लाला डंगामल ने असंख्य बार आशा के रूप और यौवन की प्रशंसा की थी; मगर उनकी प्रशंसा में उसे बनावट की गन्ध आती थी। वह शब्द उनके मुख से निकल कर कुछ ऐसे लगते थे, जैसे कोई पंगु दौड़ने की चेष्टा कर रहा हो। जुगल के इन सीधे शब्दों में एक उन्माद था, नशा था, एक चोट थी ? आशा की सारी देह प्रकम्पित हो गयी।

'तुम मुझे नजर लगा दोगे जुगल, इस तरह क्यों घूरते हो ?'

'जब यहाँ से चला जाऊँगा, तब आपकी बहुत याद आयेगी।'

'रसोई पकाकर तुम सारे दिन क्या किया करते हो ? दिखायी नहीं देते !'

'सरकार रहते हैं, इसीलिए, नहीं आता। फिर अब तो मुझे जवाब मिल रहा है। देखिए, भगवान् कहाँ ले जाते हैं।'

आशा की मुख-मुद्रा कठोर हो गयी। उसने कहा—कौन तुम्हें जवाब देता है ?

'सरकार ही तो कहते हैं, तुझे निकाल दूँगा।'

'अपना काम किये जाओ, कोई नहीं निकालेगा। अब तो तुम फुलके भी अच्छे बनाने लगे।'

'सरकार हैं बड़े गुस्सेवर।'

'दो-चार दिन में उनका मिजाज ठीक किये देती हूँ।'

'आपके साथ चलते हैं तो आपके बाप-से लगते हैं।'

'तुम बड़े मुँहफट हो। खबरदार, जबान-सँभाल कर बातें किया करो।'

किन्तु अप्रसन्नता का यह झीना आवरण उनके मनोरहस्य को न छिपा सका। वह प्रकाश की भाँति उसके अन्दर से निकला पड़ता था।

जुगल ने फिर उसी निर्भीकता से कहा—मेरा मुँह कोई बन्द कर ले, यहाँ यों सभी यही कहते हैं। मेरा ब्याह कोई पचास साल की बुढ़िया से कर दे, तो मैं घर छोड़कर भाग जाऊँ। या तो खुद जहर खा लूँ या उसे जहर देकर मार डालूँ। फाँसी ही तो होगी ?

आशा उस कृत्रिम क्रोध को कायम न रख सकी। जुगल ने उसकी हृदयवीणा के तारों पर मिज़राब की ऐसी चोट मारी थी कि उसके बहुत ज़ब्त करने पर भी मन की व्यथा बाहर निकल आयी। उसने कहा—भाग्य भी तो कोई वस्तु है।

'ऐसा भाग्य जाय भाड़ में।'

'तुम्हारा ब्याह किसी बुढ़िया से ही करूँगी, देख लेना !'

'तो मैं भी जहर खा लूँगा। देख लीजिएगा।'

'क्यों बुढ़िया तुम्हें जवान स्त्री से ज्यादा प्यार करेगी, ज्यादा सेवा करेगी। तुम्हें सीधे रास्ते पर रखेगी।'

'यह सब माँ का काम है। बीवी जिस काम के लिए है, उसी काम के लिए है।'

'आखिर बीवी किस काम के लिए है ?'

मोटर की आवाज आयी। न-जाने कैसे आशा के सिर का अंचल खिसककर कंधे पर आ गया। उसने जल्दी से अंचल खींच कर सिर पर कर लिया और यह कहती हुई अपने कमरे की ओर लपकी कि लाला भोजन करके चले जायँ, तब आना।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'सरस्वती, मई, 1932 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'नयी बीवी' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'वारदात' में संकलित।]

सती-2

मुलिया को देखते हुए उसका पति कल्लू कुछ भी नहीं है। फिर क्या कारण है कि मुलिया संतुष्ट और प्रसन्न है और कल्लू चिन्तित और सशंकित ?

मुलिया को कौड़ी मिली है, उसे दूसरा कौन पूछेगा ? कल्लू को रत्न मिला है, उसके सैकड़ों ग्राहक हो सकते हैं। खासकर उसे अपने चचेरे भाई राजा से बहुत खटका रहता है। राजा रूपवान है, रसिक है, बातचीत में कुशल है, स्त्रियों को रिझाना जानता है। इससे कल्लू मुलिया को बाहर नहीं निकलने देता। उस पर किसी की निगाह भी पड़ जाय, यह उसे असह्य है। वह अब रात-दिन मेहनत करता है, जिससे मुलिया को किसी बात का कष्ट न हो। उसे न जाने किस पूर्व-जन्म के संस्कार से ऐसी स्त्री मिल गयी है। उस पर

प्राणों को न्योछावर कर देना चाहता है। मुलिया का कभी सिर भी दुखता है, तो उसकी जान निकल जाती है। मुलिया का भी यह हाल है कि जब तक वह घर नहीं आता, मछली की भाँति तड़पती रहती है। गाँव में कितने ही युवक हैं, जो मुलिया से छेड़छाड़ करते रहते हैं; पर उस युवती की दृष्टि में कुरूप कलुआ संसार-भर के आदमियों से अच्छा है।

एक दिन राजा ने कहा—भाभी, भैया तुम्हारे जोग न थे।

मुलिया बोली—भाग में तो वह लिखे थे; तुम कैसे मिलते ?

राजा ने मन में समझा, बस, अब मार लिया है। बोला—विधि ने यही तो भूल की।

मुलिया मुस्कराकर बोली—अपनी भूल तो वही सुधारेगा। राजा निहाल हो गया।

2

तीज के दिन कल्लू मुलिया के लिये लट्ठे की साड़ी लाया। चाहता तो था कोई अच्छी साड़ी ले; पर रुपये न थे और बजाज ने उधार न माना।

राजा भी उसी दिन अपने भाग्य की परीक्षा करना चाहता था। एक सुन्दर चुँदरी लाकर मुलिया को भेंट की।

मुलिया ने कहा—मेरे लिए तो साड़ी आ गयी है।

राजा बोला—मैंने देखी है। तभी तो मैं इसे लाया। तुम्हारे लायक नहीं है। भैया को किफायत भी सूझती है, तो ऐसी बातों में।

मुलिया कटाक्ष करके बोली—तुम समझा क्यों नहीं देते ?

राजा पर एक कुल्हड़ का नशा चढ़ गया। बोला—बूढ़ा तोता नहीं पढ़ता है।

मुलिया—मुझे तो लट्ठे की साड़ी ही पसन्द है।

राजा—जरा यह चुँदरी पहनकर देखो, कैसी खिलती है।

मुलिया—जो लट्ठा पहनाकर खुश होता है, वह चुँदरी पहन लेने से खुश न होगा। उन्हें चुँदरी पसन्द होती, तो चुँदरी ही लाते।

राजा—उन्हें दिखाने का काम नहीं है ?

मुलिया विस्मय से बोली—मैं क्या उनसे बिना पूछे ले लूँगी ?

राजा—इसमें पूछने की कौन-सी बात है। जब वह काम पर चला जाय, पहन लेना। मैं भी देख लूँगा।

मुलिया ठट्ठा मारकर हँसती हुई बोली—यह न होगा, देवरजी। कहीं देख लें, तो मेरी सामत ही आ जाय। इसे तुम लिए जाओ।

राजा ने आग्रह करके कहा—इसे न लोगी भाभी, तो मैं जहर खाके सो रहूँगा।

मुलिया ने साड़ी उठाकर आले पर रख दी और बोली—अच्छा लो, अब तो खुश हुए।

राजा ने उँगली पकड़ी—अभी तो भैया नहीं हैं, जरा पहन लो।

मुलिया ने अन्दर जाकर चुँदरी पहन ली और फूल की तरह महकती-दमकती बाहर आयी

राजा ने पहुँचा पकड़ने को हाथ फैलाया—बोला, ऐसा जी चाहता है कि तुम्हें लेकर भाग जाऊँ।

मुलिया उसी विनोद-भाव से बोली—जानते हो, तुम्हारे भैया का क्या हाल होगा?

यह कहते हुए उसने किवाड़ बन्द कर लिये। राजा को ऐसा मालूम हुआ कि थाली परोसकर उसके सामने से उठा ली गयी।

3

मुलिया का मन बार-बार करता था कि चुँदरी कल्लू को दिखा दे; पर नतीजा सोचकर रह जाती थी। उसने चुँदरी रख क्यों ली ? उसे अपने ऊपर क्रोध आ रहा था, लेकिन राजा को कितना दुःख होता। क्या हुआ उसकी चुँदरी छन-भर पहन लेने से, उसका मन तो रह गया।

लेकिन उसके प्रशांत मानस-सागर में यह एक कीट आकर उसे मथ रहा था। उसने क्यों चुँदरी रख ली ? क्या यह कल्लू के साथ विश्वासघात नहीं है ? उसका चित्त इस विचार से विकल हो गया। उसने मन को समझाया, विश्वासघात क्यों हुआ; इसमें विश्वासघात की क्या बात है। कौन वह राजा से कुछ बोली ? जरा-सा हँस देने से अगर किसी का दिल खुश हो जाता है, तो इसमें क्या बुराई है ?

कल्लू ने पूछा—आज रज्जू क्या करने आया था ?

मुलिया की देह थर-थर काँपने लगी। बहाना कर गयी—तमाखू माँगने आये थे।

कल्लू ने भँवें सिकोड़कर कहा—उसे अन्दर मत आने दिया करो। अच्छा आदमी नहीं है।

मुलिया—मैंने कह दिया तमाखू नहीं है, तो चले गये।

कल्लू ने अबकी तेजस्विता के साथ कहा—क्यों झूठ बोलती है ? वह तमाखू माँगने नहीं आया था।

मुलिया—तो और यहाँ क्या करने आते ?

कल्लू—चाहे जिस काम से आया हो, तमाखू माँगने नहीं आया। वह जानता था, मेरे घर में तमाखू नहीं है। मैं तमाखू के लिए उसके घर गया था।

मुलिया की देह में काटो तो लहू नहीं। चेहरे का रंग उड़ गया।

सिर झुकाकर बोली—मैं किसी के मन का हाल क्या जानूँ ?

आज तीज का रतजगा था। मुलिया पूजा का सामान कर रही थी; पर इस तरह जैसे मन में जरा भी उत्साह, जरा भी श्रद्धा नहीं है।

उसे ऐसा मालूम हो रहा है, उसके मुख में कालिमा पुत गयी है और अब वह कल्लू की आँखों से गिर गयी है। उसे अपना जीवन निराधार-सा जान पड़ता था।

सोचने लगी--भगवान् ने मुझे यह रूप क्यों दिया ? यह रूप न होता तो राजा क्यों मेरे पीछे पड़ता और क्यों आज मेरी यह गत होती ? मैं काली-कुरूप रहकर इससे कहीं सुखी रहती। तब तो मन इतना चंचल न होता। जिन्हें रूप की कमाई खानी हो, वह रूप पर फूलें, यहाँ तो इसने मटियामेट कर दिया।

न जाने कब उसे झपकी आ गयी, तो देखती है, कल्लू मर गया है और राजा घर में घुसकर उसे पकड़ना चाहता है। उसी दम एक वृद्धा स्त्री न जाने किधर से आकर उसे अपनी गोद में ले लेती है। और कहती है—तूने कल्लू को क्यों मार डाला ? मुलिया रोकर कहती है—माता, मैंने उन्हें नहीं मारा। वृद्धा कहती है—हाँ, तूने छुरी-कटार से नहीं मारा, उस दिन तेरा तप छीन हो गया और इसी से वह मर गया।

मुलिया ने चौकन्नी आँखें खोल दीं। सामने आँगन में कल्लू सोया हुआ था। वह

दौड़ी हुई उसके पास गयी और उसकी छाती पर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगी।

कल्लू ने घबड़ाकर पूछा—कौन है ? मुलिया ! क्यों रोती हो ? क्या डर लग रहा है। मैं तो जाग ही रहा हूँ।

मुलिया ने सिसकते हुए कहा—मुझसे आज एक अपराध हुआ है। उसे क्षमा कर दो।

कल्लू उठ बैठा—क्या बात है ? कहो तो, रोती क्यों हो ?

मुलिया—राजा तमाखू माँगने नहीं आया था। मैंने तुमसे झूठ कहा था।

कल्लू हँसकर बोला—वह तो मैं पहले ही समझ गया था।

मुलिया—वह मेरे लिए चुँदरी लाया था।

'तुमने लौटा दी ?'

मुलिया काँपती हुई बोली—मैंने ले ली। कहते थे, मैं जहर-माहुर खा लूँगा।

कल्लू निर्जीव की भाँति खाट पर गिर पड़ा और बोला—तो रूप मेरे बस का नहीं है। देव ने कुरूप बना दिया, तो सुन्दर कैसे बन जाऊँ ?

कल्लू ने अगर मुलिया को खौलते हुए तेल में डाल दिया होता, तो भी उसे इतनी पीड़ा न होती।

4

कल्लू उस दिन से कुछ खोया-खोया-सा रहने लगा। जीवन में न वह उत्साह रहा, न वह आनंद। हँसना-बोलना भूल-सा गया। मुलिया ने उसके साथ जितना विश्वासघात किया था, उससे कहीं ज्यादा उसने समझ लिया। और यह भ्रम उसके हृदय में केवड़े के समान चिपट गया। वह घर अब उसके लिए केवल लेटने-बैठने का स्थान था और मुलिया केवल भोजन बना देनेवाली मशीन। आनन्द के लिए वह कभी-कभी ताड़ीखाने चला जाता, या चरस के दम लगाता।

मुलिया उसकी दशा देख-देख अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ती थी। वह उस बात को उसके दिल से निकाल देना चाहती थी, इसलिए उसकी सेवा और मन लगा कर करती। उसे प्रसन्न करने के लिए बार-बार प्रयत्न करती; पर वह जितना ही उसको खींचने की चेष्टा करती थी, उतना ही वह उससे विचलता था, जैसे कोई कँटिये में फँसी हुई मछली हो। कुशल यह था कि राजा जिस अंग्रेज के यहाँ खानसामा था, उसका तबादला हो गया और राजा उसके साथ चला गया था, नहीं तो दोनों भाइयों में से किसी-न-किसी का जरूर खून हो जाता। इस तरह साल-भर बीत गया।

एक दिन कल्लू रात को घर लौटा, तो उसे ज्वर था। दूसरे दिन उसकी देह में दाने निकल आये। मुलिया ने समझा, माता हैं। मान-मनौती करने लगी; मगर चार-पाँच दिन में ही दाने बढ़कर आवले पड़ गये और मालूम हुआ कि यह माता नहीं हैं; उपदंश है। कल्लू के कलुषित भोग-विलास का यह फल था।

रोग इतनी भयंकरता से बढ़ने लगा कि आवलों में मवाद पड़ गया और उनमें से ऐसी दुर्गन्ध उड़ने लगी कि पास बैठते नाक फटती थी। देहात में जिस प्रकार का उपचार हो सकता था, वह मुलिया करती थी; पर कोई लाभ न होता था और कल्लू की दशा दिन-दिन बिगड़ती जाती थी। उपचार की कसर वह अबला अपनी स्नेहमय सेवा से पूरी करती

थी। उस पर गृहस्थी चलाने के लिए अब मेहनत-मजूरी भी करनी पड़ती थी। कल्लू तो *अपने किये का फल भोग रहा था। मुलिया अपने कर्तव्य का पालन करने में मरी जा रही थी। अगर कुछ सन्तोष था, तो यह कल्लू का भ्रम उसकी इस तपस्या से भंग होता जाता* था। उसे अब विश्वास होने लगा था कि मुलिया अब भी उसी की है। वह अगर किसी नरह अच्छा हो जाता, तो फिर उसे दिल में छिपाकर रखता और उसकी पूजा करता।

प्रातःकाल था। मुलिया ने कल्लू का हाथ-मुँह धुलाकर दवा पिलायी और खड़ी पंखा डुला रही थी कि कल्लू ने आँसू-भरी आँखों से देखकर कहा—मुलिया, मैंने उस जन्म में कोई भारी तप किया था कि तू मुझे मिल गयी। तुम्हारी जगह मुझे दुनिया का राज मिले तो भी न लूँ।

मुलिया ने दोनों हाथों से उसका मुँह बन्द कर दिया और बोली इस तरह की बातें करोगे, तो मैं रोने लगूँगी। मेरे धन्य भाग कि तुम-जैसा स्वामी मिला।

यह कहते हुए उसने दोनों हाथ पति के गले में डाल दिये और लिपट गयी। फिर बोली—भगवान ने मुझे मेरे पापों का दंड दिया है।

कल्लू ने उत्सुकता से पूछा—सच कह दो मूला, राजा और तुममें क्या मामला था ?

मुलिया ने विस्मित होकर कहा मेरे और उसके बीच कोई और मामला हुआ हो, तो भगवान् मेरी दुर्गति करें। उसने मुझे चुँदरी दी थी। वह मैंने ले ली थी ! फिर मैंने उसे आग में जला दिया। तब से मैं उससे नहीं बोली।

कल्लू ने ठंडी साँस खींचकर कहा—मैंने कुछ और ही समझ रखा था। न-जाने मेरी मति कहाँ हर गयी थी। तुम्हें पाप लगाकर मैं आप पाप में फँस गया और उसका फल भोग रहा हूँ ?

उसने रो-रोकर अपने दुष्कृत्यों का परदा खोलना शुरू किया और मुलिया आँसू की लड़ियाँ बहाकर सुनने लगी। अगर पति की चिन्ता न होती, तो उसने विष खा लिया होता।

5

कई महीने के बाद राजा छुट्टी लेकर घर आया और कल्लू की घातक बीमारी का हाल सुना, तो दिल में खुश हुआ; तीमारदारी के बहाने से कल्लू के घर आने-जाने लगा। कल्लू उसे देखकर मुँह फेर लेता, लेकिन वह दिन में दो-चार बार पहुँच ही जाता।

एक दिन मुलिया खाना पका रही थी कि राजा ने रसोई के द्वार पर आकर कहा—भाभी, क्यों अब भी मुझपर दया न करोगी ? कितनी बेरहम हो तुम ! कै दिन से तुम्हें खोज रहा हूँ, पर तुम मुझसे भागती फिरती हो। भैया अब अच्छे न होंगे। इन्हें गर्मी हो गयी है। इनके साथ क्यों अपनी जिन्दगी खराब कर रही हो ? तुम्हारी फूल-सी देह सूख गयी है। मेरे साथ चलो, कुछ जिन्दगी की बहार उड़ायें। यह जवानी बहुत दिन न रहेगी। यह देखो, तुम्हारे लिए एक करनफूल लाया हूँ, जरा पहनकर मुझे दिखा दो।

उसने करनफूल मुलिया की ओर बढ़ा दिया। मुलिया ने उसकी ओर देखा भी नहीं। चूल्हे की ओर ताकती हुई बोली—लाला, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे मत छेड़ो। यह सारी विपत्ति तुम्हारी लायी हुई है। तुम्हीं मेरे शत्रु हो। फिर भी तुम्हें लाज नहीं आती। कहते हो, भैया अब किस काम के हैं ? मुझे तो अब वह पहले से कहीं ज्यादा अच्छे लगते हैं। जब

मैं न होती, तो वह दूसरी सगाई कर लाते, अपने हाथों ठोक खाते। आज मैं ही उनका आधार हूँ। वह मेरे सहारे जीते हैं। अगर मैं इस संकट में उनके साथ दगा करूँ, तो मुझसे *बढ़कर अधम कौन होगा। जब कि मैं जानती हूँ कि इस संकट का कारण भी मैं ही हूँ।*

राजा ने हँसकर कहा—यह तो वही हुआ, जैसे किसी की दाल गिर गयी, तो उसने कहा—मुझे तो सूखी ही अच्छी लगती है।

मुलिया ने सिर उठाकर उसकी ओर सजोत नेत्रों से ताकते हुए कहा—तुम उनकी पैरों की धूल के बराबर नहीं हो लाला, क्या कहते हो तुम ? उजले कपड़े और चिकने मुखड़े से कोई आदमी सुन्दर नहीं होता। मेरी आँखों में तो उनके बराबर कोई दिखायी नहीं देता।

कल्लू ने पुकारा—मूला, थोड़ा पानी दे। मुलिया पानी लेकर दौड़ी। चलते-चलते करनफूल को ऐसा ठुकराया कि आँगन में जा गिरा।

राजा ने जल्दी से करनफूल उठा लिया और क्रोध में भरा हुआ चल दिया।

6

रोग दिन-पर-दिन बढ़ता गया। ठिकाने से दवा-दारू होती, तो शायद अच्छा हो जाता; मगर अकेली मुलिया क्या-क्या करती ? दरिद्रता में बीमारी कोढ़ का खाज है।

आखिर एक दिन परवाना आ पहुँचा। मुलिया घर का काम-धंधा करके आयी, तो देखा कल्लू की साँस चल रही है। घबड़ाकर बोली—कैसा जी है तुम्हारा ?

कल्लू ने सजल और दीनता-भरी आँखों से देखा और हाथ जोड़कर सिर नीचा कर लिया। यही अन्तिम विदाई थी।

मुलिया उसके सीने पर सिर रखकर रोने लगी और उन्माद की दशा में उसके आहत हृदय से रक्त की बूँदों के समान शब्द निकलने लगे—तुमसे इतना भी न देखा गया, भगवन् ! उस पर न्यायी और दयालु कहलाते हो ! इसीलिए तुमने जन्म दिया ! यही खेल खेलने के लिए ! हाय नाथ ! तुम तो इतने निष्ठुर न थे ! मुझे अकेली छोड़कर चले जा रहे हो ! हाय ! अब कौन मूला कहकर पुकारेगा ! अब किसके लिए कुएँ से पानी खींचूँगी ! किसे बैठाकर खिलाऊँगी, पंखा डुलाऊँगी ! सब सुख हर लिया, तो मुझे भी क्यों नहीं उठा लेते !

सारा गाँव जमा हो गया। सभी समझा रहे थे। मुलिया को धैर्य न होता था। यह सब मेरे कारण हुआ; यह बात उसे नहीं भूलती। हाय ! हाय ! उसे भगवान् ने सामर्थ्य दिया होता, तो आज उसका सिरताज यों उठ जाता ?

शव की दाह-क्रिया की तैयारियाँ होने लगीं।

7

कल्लू को मरे छः महीने हो गये। मुलिया अपना कमाती है, खाती है और अपने घर में पड़ी रहती है। दिन-भर काम-धंधे से छुट्टी नहीं मिलती। हाँ, रात को एकान्त में रो लिया करती है।

उधर राजा की स्त्री मर गयी, मगर दो-चार दिन के बाद वह फिर छैला बना घूमने लगा। और भी छूटा साँड़ हो गया। पहले स्त्री से झगड़ा हो जाने का कुछ डर था। अब वह भी न रहा। अबकी नौकरी पर से लौटा, तो सीधे मुलिया के घर पहुँचा। और इधर-उधर की

बातें करने के बाद बोला—भाभी, अब तो मेरी अभिलाषा पूरी करोगी या अभी और कुछ बाकी है ? अब तो भैया भी नहीं रहे। इधर मेरी घरवाली भी सिधारी ! मैंने तो उसका गम भुला दिया। तुम कब तक भैया के नाम को रोती रहोगी ?

मुलिया ने घृणा से उसकी ओर देखकर कहा—भैया नहीं रहे, तो क्या हुआ; भैया की याद तो है, उनका प्रेम तो है, उनकी सूरत तो दिल में है, उनकी बातें तो कानों में हैं। तुम्हारे लिए और दुनिया के लिए वह नहीं हैं, मेरे लिए वह अब भी वैसे ही जीते-जागते हैं। मैं अब भी उन्हें वैसे ही बैठे देखती हूँ। पहले तो देह का अन्तर था। अब तो वह मुझसे और भी नगीच हो गये हैं। और ज्यों-ज्यों दिन बीतेंगे और भी नगीच होते जायँगे। भरे-पूरे घर में दाने की कौन कदर करता है। जब घर खाली हो जाता है, तब मालूम होता है कि दाना क्या है। पैसेवाले पैसे की कदर क्या जानें। पैसे की कदर तब होती है, जब हाथ खाली हो जाता है। तब आदमी एक-एक कौड़ी दाँत से पकड़ता है। तुम्हें भगवान् ने दिल ही नहीं दिया, तुम क्या जानो, सोहबत क्या है। घरवाली को मरे अभी छः महीने भी नहीं हुए और तुम साँड़ बन बैठे। तुम मर गये होते, तो इसी तरह वह भी अब तक किसी के पास चली गयी होती ? मैं जानती हूँ कि मैं मर जाती, तो मेरा सिरताज 'जन्म' भर मेरे नाम को रोया करता। ऐसे ही पुरुषों की स्त्रियाँ उन पर प्राण देती हैं। तुम-जैसे सोहदों के भाग में पत्तल चाटना लिखा है; चाटो; मगर खबरदार, आज से मेरे घर में पाँव न रखना, नहीं तो जान से हाथ धोओगे! बस, निकल जाओ।

उसके मुख पर ऐसा तेज, स्वर में इतनी कटुता थी कि राजा को जबान खोलने का भी साहस न हुआ। चुपके से निकल भागा।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन', मई, 1932 में प्रकाशित। उर्दू कहानी-संग्रह 'आखिरी तोहफा' में संकलित। हिन्दी रूप 'सती' शीर्षक से ही 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित।]

कुत्सा

अपने घर में आदमी बादशाह को भी गाली देता है। एक दिन मैं अपने दो-तीन मित्रों के साथ बैठा हुआ एक राष्ट्रीय संस्था के व्यक्तियों की आलोचना कर रहा था। हमारे विचार में राष्ट्रीय कार्यकताओं को स्वार्थ और लोभ से ऊपर रहना चाहिए। ऊँचा और पवित्र आदर्श सामने रख कर ही राष्ट्र की सच्ची सेवा की जा सकती है। कई व्यक्तियों के आचरण ने हमें क्षुब्ध कर दिया था और हम इस समय बैठे अपने दिल का गुबार निकाल रहे थे। सम्भव था, उस परिस्थिति में पड़कर हम और भी गिर जाते; लेकिन उस वक्त तो हम विचारक के स्थान पर बैठे हुए थे और विचारक उदार बनने लगे, तो न्याय कौन करे? विचारक को यह भूल जाने में विलम्ब नहीं होता कि उसमें भी कमजोरियाँ हैं। उसमें और अभियुक्त में केवल इतना ही अन्तर है कि या तो विचारक महाशय उस परिस्थिति में पड़े नहीं, या पड़कर भी अपनी चतुराई से बेदाग निकल गये।

पद्मादेवी ने कहा—महाशय 'क' काम तो बड़े उत्साह से करते हैं; लेकिन अगर हिसाब देखा जाय, तो उनके जिम्मे एक हजार से कम न निकलेगा।

उर्मिलादेवी बोली—खैर 'क' को तो क्षमा किया जा सकता है। उसके बाल-बच्चे हैं, आखिर उनका पालन-पोषण कैसे करे ? जब वह चौबीसों घण्टे सेवा-कार्य ही में लगा रहता है, तो उसे कुछ-न-कुछ तो मिलना चाहिए। उस योग्यता का आदमी पाँच सौ रुपये वेतन पर भी न मिलता। अगर इस साल-भर में उसने एक हजार खर्च कर डाला, तो बहुत नहीं है। महाशय 'ख' तो बिल्कुल निहंग हैं। 'जोरू न जाँता अल्लाह मियाँ से नाता'; पर उनके जिम्मे भी एक हजार से कम न होंगे। किसी को क्या अधिकार है कि वह गरीबों का धन मोटर की सवारी और यार-दोस्तों की दावत में उड़ा दे ?

श्यामादेवी उद्दण्ड होकर बोलीं—महाशय 'ग' को इसका जवाब देना पड़ेगा, भाई साहब ! यों बचकर नहीं निकल सकते। हम लोग भिक्षा माँग-माँगकर पैसे लाते हैं; इसीलिए कि याद-दोस्तों की दावतें हों, शराबें उड़ायी जायँ और मुजरे देखे जायँ ? रोज सिनेमा की सैर होती है। गरीबों का धन यों उड़ाने के लिए नहीं है। यहाँ पाई-पाई का लेखा समझना पड़ेगा। मैं भरी सभा में रगेदूँगी। उन्हें जहाँ पाँच सौ वेतन मिलता हो, वहाँ चले जायें। राष्ट्र के सेवक बहुतेरे निकल आवेंगे।

मैं भी एक बार इसी संस्था का मन्त्री रह चुका हूँ। मुझे गर्व है कि मेरे ऊपर कभी किसी ने इस तरह का आक्षेप नहीं किया; पर न-जाने क्यों लोग मेरे मन्त्रित्व से सन्तुष्ट नहीं थे। लोगों का ख्याल था कि मैं बहुत कम समय देता हूँ और मेरे समय में संस्था ने कोई गौरव बढ़ाने वाला कार्य नहीं किया; इसीलिए मैंने रूठकर इस्तीफा दे दिया था। उसी पद से बेलौस रहकर भी निकाला गया। महाशय 'ग' हजारों रुपये हड़प करके भी मैं उसी पद पर जमे हुए हैं। क्या यह मेरे उनसे कुनह रखने की काफी वजह न थी ? मैं चतुर खिलाड़ी की भाँति खुद तो कुछ न करना चाहता था, किन्तु परदे की आड़ में से रस्सी खींचता रहता था।

मैंने रद्दा जमाया—देवीजी, आप अन्याय कर रही हैं। महाशय 'ग' से ज्यादा दिलेर और...

उर्मिला ने मेरी बात काटकर कहा—मैं ऐसे आदमी को दिलेर नहीं कहती जो छिपकर जनता के रुपये से शराब पिये। जिन शराब की दूकानों पर हम धरना देने जाते थे, उन्हीं दूकानों से उनके लिए शराब आती थी। इससे बढ़कर बेवफाई और क्या हो सकती है ? मैं ऐसे आदमी को देशद्रोही कहती हूँ।

मैंने और खींची—लेकिन यह तो तुम भी मानती हो कि महाशय 'ग' केवल अपने प्रभाव से हजारों रुपये चन्दा वसूल कर लाते हैं। विलायती कपड़े को रोकने का उन्हें जितना श्रेय दिया जाय, थोड़ा है।

उर्मिला देवी कब माननेवाली थीं। बोलीं—उन्हें चन्दे इस संस्था के नाम पर मिलते हैं, व्यक्तिगत रूप से एक धेला भी लावें तो कहूँ। रहा विलायती कपड़ा। जनता नामों को पूजती है और महाशय की तारीफें हो रही हैं; पर सच पूछिए तो यह श्रेय हमें मिलना चाहिए। वह तो कभी किसी दूकान पर गये भी नहीं। आज सारे शहर में इस बात की चर्चा हो रही है। जहाँ चन्दा माँगने जाओ, वहीं लोग यही आक्षप करने लगते हैं। किस-किसका मुँह बन्द कीजिएगा ? आप बनते तो हैं जाति के सेवक; मगर आचरण ऐसा कि शोहदों का भी न होगा। देश का उद्धार ऐसे विलासियों के हाथों नहीं हो सकता। उसके लिए त्याग होना चाहिए।

2

यही आलोचनाएँ हो रही थीं। कि एक दूसरी देवी आयीं, भगवती ! बेचारी चन्दा माँगने आयी थीं। थकी-माँदी चली आ रही थीं। यहाँ जो पंचायत देखी, तो रम गयीं। उनके साथ उनकी बालिका भी थी। कोई दस साल उम्र होगी, इन कामों में बराबर माँ के साथ रहती थी। उसे जोर की भूख लगी हुई थी। घर की कुंजी भी भगवती देवी के पास थी। पतिदेव दफ्तर से आ गये होंगे। घर का खुलना भी जरूरी था, इसलिए मैंने बालिका को उसके घर पहुँचाने की सेवा स्वीकार की।

कुछ दूर चलकर बालिका ने कहा—आपको मालूम है, महाशय 'ग' शराब पीते हैं ?

मैं इस आक्षेप का समर्थन न कर सका। भोली-भाली बालिका के हृदय में कटुता, द्वेष और प्रपंच का विष बोना मेरी ईर्ष्यालु प्रकृति को भी रुचिकर न जान पड़ा। जहाँ कोमलता और सारल्य, विश्वास और माधुर्य का राज्य होना चाहिए, वहाँ कुत्सा और क्षुद्रता का मर्यादित होना कौन पसन्द करेगा ? देवता के गले में काँटों की माला कौन पहनायेगा ?

मैंने पूछा—तुमसे किसने कहा कि महाशय 'ग' शराब पीते हैं ?

'वाह, पीते ही हैं, आप क्या जानें ?'

'तुम्हें, कैसे मालूम हुआ ?'

'सारे शहर के लोग कह रहे हैं !'

'शहरवाले झूठ बोल रहे हैं।'

बालिका ने मेरी ओर अविश्वास की आँखों मे देखा, शायद वह समझी, मैं भी महाशय 'ग' के ही भाई-बन्दों में हूँ।

'आप कह सकते हैं, महाशय 'ग' शराब नहीं पीते ?'

'हाँ, वह कभी शराब नहीं पीते।'

'और महाशय 'क' ने जनता के रुपये भी नहीं उड़ाये ?'

'यह भी असत्य है।'

'और महाशय 'ख' मोटर पर हवा खाने नहीं जाते ?'

'मोटर पर हवा खाना अपराध नहीं है।'

'अपराध नहीं है, राजाओं के लिए, रईसों के लिए, अफसरों के लिए जो जनता का खून चूसते हैं, देश-भक्ति का दम भरनेवालों के लिए वह बहुत बड़ा अपराध है।'

'लेकिन यह तो सोचो, इन लोगों को कितना दौड़ना पड़ता है। पैदल कहाँ तक दौड़ें ?'

'पैरगाड़ी पर तो चल सकते हैं। पर कुछ बात नहीं है। ये लोग शान दिखाना चाहते हैं, जिसमें लोग समझें कि यह भी बहुत बड़े आदमी हैं। हमारी संस्था गरीबों की संस्था है। यहाँ मोटर पर उसी वक्त बैठना चाहिए, जब और किसी तरह काम ही न चल सके और शराबियों के लिए तो यहाँ स्थान न होना चाहिए। आप तो चंदे माँगने जाते नहीं। हमें कितना लज्जित होना पड़ता है, आपको क्या मालूम !'

मैंने गम्भीर होकर कहा—तुम्हें लोगों से कह देना चाहिए, यह सरासर गलत है। हम और तुम इस संस्था के शुभचिन्तक हैं। हमें अपने कार्यकर्त्ताओं का अपमान करना उचित नहीं। हमें तो इतना ही देखना चाहिये कि वे हमारी कितनी सेवा करते हैं। मैं यह नहीं कहता कि क, ख, ग, में बुराइयाँ नहीं हैं। संसार में ऐसा कौन है, जिसमें बुराइयाँ न हों,

लेकिन बुराइयों के मुकाबले में उनमें गुण कितने हैं, यह तो देखो। हम सभी स्वार्थ पर जान देते हैं—मकान बनाते हैं, जायदाद खरीदते हैं। और कुछ नहीं, तो आराम से घर में सोते हैं। ये बेचारे चौबीसों घण्टे देश-हित की फिक्र में डूबे रहते हैं। तीनों ही साल-साल भर की सजा काटकर, कई महीने हुए, लौटे हैं। तीनों ही के उद्योग से अस्पताल और पुस्तकालय खुले। इन्हीं वीरों ने आन्दोलन करके किसानों का लगान कम कराया। अगर इन्हें शराब पीना और धन कमाना होता, तो इस क्षेत्र में आते ही क्यों ?

बालिका ने विचारपूर्ण दृष्टि से मुझे देखा। फिर बोली—यह बतलाइए, महाशय 'ग' शराब पीते हैं या नहीं ?

मैंने निश्चयपूर्वक कहा—नहीं। जो यह कहता है, वह झूठबोलता है।

भगवतीदेवी का मकान आ गया। बालिका चली गयी। मैं आज झूठ बोलकर जितना प्रसन्न था, उतना कभी सच बोलकर भी न हुआ था। मैंने बालिका के निर्मल हृदय को कुत्सा के पंक में गिरने से बचा लिया था !

[हिन्दी कहानी। हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'जागरण', जुलाई, 1932 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

बीमार बहिन

सेवती आज कई दिन से बीमार है। चारपाई से उठ नहीं सकती। कहीं खेलने नहीं जा सकती।

भोंदू उसका छोटा भाई है। जब सेवती पानी माँगती है तो भोंदू दौड़कर कटोरे में पानी लाता है।

जब सेवती गरमी से बेचैन हो जाती है, तो वह उसे पंखा झलने लगता है। वह चाहता है, मेरी प्यारी बहन जल्दी से अच्छी हो जाए। अकेले खेलने में उसका जी नहीं लगता।

भोंदू को ज्योंही मदरसे से छुट्टी होती है, दौड़ा हुआ सेवती के पास आता है और उसे कहानियाँ सुनाता है। सेवती शौक से सुनती और खुश होती है।

कल शाम को सेवती की तबीयत बहुत खराब हो गयी। ज़ोर-ज़ोर से कराहने लगी। भोंदू घबड़ा गया। माँ-बाप से सुना था, ईश्वर बड़ा दयालु है, तो क्या वह एक बालक की प्रार्थना न सुनेगा ?

ज्योंही मंदिर में आरती होने लगी, वह वहाँ गया और प्रतिमा के सामने भूमि पर सिर रखकर ईश्वर की प्रार्थना करने लगा, "भगवान ! तुम दयालु हो, दीन पर कृपा रखते हो। मेरी सेवती को जल्द अच्छा कर दो।"

[वाल-कहानी। 'कुमार' का प्रथम अंक, जुलाई, 1932 में प्रकाशित। 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

झाँकी

कई दिनों से घर में कलह मचा हुआ था। माँ अलग मुँह फुलाये बैठी थी, स्त्री अलग। घर की वायु में जैसे विष भरा हुआ था। रात को भोजन नहीं बना, दिन को मैंने स्टोव पर खिचड़ी डाली; पर खाया किसी ने नहीं। बच्चों को भी आज भूख न थी। छोटी लड़की कभी मेरे पास आकर खड़ी हो जाती, कभी माता के पास, कभी दादी के पास; पर कहीं उसके लिए प्यार की बातें न थीं। कोई उसे गोद में न उठाता, मानो उसने भी कोई अपराध किया हो। लड़का शाम को स्कूल से आया। किसी ने उसे कुछ खाने को न दिया, न उससे बोला, न कुछ पूछा। दोनों बरामदे में मन मारे बैठे हुए थे शायद सोच रहे थे—घर में आज क्यों लोगों के हृदय उनसे इतने फिर गये हैं। भाई-बहन दिन में कितनी ही बार लड़ते हैं, रोना-पीटना भी कई बार हो जाता है; पर ऐसा कभी नहीं होता कि घर में खाना न पके या कोई किसी से बोले नहीं ! यह कैसा झगड़ा है कि चौबीस घण्टे गुजर जाने पर भी शान्त नहीं होता, यह शायद उसकी समझ में न आता था।

झगड़े की जड़ कुछ न थी। अम्माँ ने मेरी बहन के घर तीज भेजने के लिए जिन सामानों की सूची लिखाई, वह पत्नी जी को घर की स्थिति देखते हुए अधिक मालूम हुई। अम्माँ खुद समझदार हैं। उन्होंने थोड़ी-बहुत काट-छाँट कर दी थी; लेकिन पत्नी जी के विचार में और काँट-छाँट होनी चाहिए थी। पाँच साड़ियों की जगह तीन रहें, तो क्या बुराई है। खिलौने इतने क्या होंगे, इतनी मिठाई की क्या जरूरत ! उनका कहना था—जब रोजगार में कुछ मिलता नहीं; दैनिक कार्यों में खींचतान करनी पड़ती है, दूध-घी के बजट में तख़लीफ हो गयी, तो फिर तीज में क्यों इतनी उदारता की जाय? पहले घर में दिया जलाकर तब मसजिद में जलाते हैं। यह नहीं कि मसजिद में तो दिया जला दें, और घर में अंधेरा पड़ा रहे। इसी बात पर सास-बहू में तकरार हो गयी, फिर शाखें फूट निकलीं। बात कहाँ-से-कहाँ जा पहुँची, गड़े हुए मुरदे उखाड़े गये। अन्योक्तियों की बारी आई, व्यंग्य का दौर शुरू हुआ और मौनालंकार पर समाप्त हो गया।

मैं बड़े संकट में था। अगर अम्माँ की तरफ़ से कुछ कहता हूँ, तो पत्नी जी रोना-धोना शुरू करती हैं, अपने नसीबों को कोसने लगती हैं; पत्नी की-सी कहता हूँ तो जन-मुरीद की उपाधि मिलती है। इसलिए बारी-बारी से दोनों पक्षों का समर्थन करता जाता था; पर स्वार्थवश मेरी सहानुभूति पत्नी के साथ ही थी। मेरे सिनेमा का बजट इधर साल-भर से बिल्कुल गायब हो गया था; पान-पत्ते के खर्च में भी कमी करनी पड़ी थी, बाजार की सैर बन्द हो गयी थी। खुलकर तो अम्माँ से कुछ न कह सकता था; पर दिल में समझ रहा था कि ज्यादती इन्हीं की है। दुकान का यह हाल है कि कभी-कभी बोहनी भी नहीं होती। असामियों से टका वसूल नहीं होता, तो इन पुरानी लकीरों को पीटकर क्यों अपनी जान संकट में डाली जाय।

बार-बार गृहस्थी के जंजाल पर तबीयत झुँझलाती थी। घर में तीन तो प्राणी है और उनमें भी प्रेम-भाव नहीं। ऐसी गृहस्थी में आग लगा देनी चाहिए। कभी-कभी ऐसी सनक सवार हो जाती थी कि सबको छोड़-छाड़कर कहीं भाग जाऊँ। तब अपने सिर पड़ेगी, तब इनको होश आयेगा। तब मालूम होगा कि गृहस्थी कैसी चलती है। क्या जानता था कि वह

विपत्ति झेलनी पड़ेगी, नहीं विवाह का नाम ही न लेता। तरह-तरह के कुत्सित भाव मन में आ रहे थे। कोई बात नहीं, अम्माँ मुझे परेशान करना चाहती हैं। बहू उनके पाँव नहीं दबाती, उनके सिर में तेल नहीं डालती, तो इसमें मेरा क्या दोष ? मैंने उसे मना तो नहीं कर दिया। मुझे तो सच्चा आनन्द होगा; यदि सास-बहू में इतना प्रेम हो जाय; लेकिन यह मेरे वश की बात तो नहीं कि दोनों में प्रेम डाल दूँ। अगर अम्माँ ने अपनी सास की साड़ी धोई है, उनके पाँव दबाये हैं, उनकी घुड़कियाँ खायी हैं, तो आज वह पुराना हिसाब बहू से क्यों चुकाना चाहती हैं ? उन्हें क्यों दिखायी नहीं देता कि अब समय बदल गया है। बहुएँ अब भयवश सास की गुलामी नहीं करतीं। प्रेम से चाहे उनके सिर के बाल नोच लो; लेकिन जो रोब दिखाकर उन पर शासन करना चाहा, तो वह दिन लद गये।

सारे शहर में जन्माष्टमी का उत्सव हो रहा था। मेरे घर में संग्राम छिड़ा हुआ था। संध्या हो गयी थी; पर सारा घर अंधेरा पड़ा था। नहूसत छाई हुई थी। मुझे अपनी पत्नी पर क्रोध आया। लड़ती हो, लड़ो; लेकिन घर में अँधेरा क्यों कर रखा है। जाकर कहा—क्या आज घर में चिराग न जलेंगे ?

पत्नी ने मुँह फुलाकर कहा—जला क्यों नहीं लेते। तुम्हारे हाथ नहीं हैं ?

मेरी देह में आग लग गयी। बोला—तो क्या जब तुम्हारे चरण नहीं आये थे, तब घर में चिराग न जलते थे ?

अम्माँ ने आग को हवा दी—नहीं तब सब लोग अंधेरे ही में पड़े रहते थे।

पत्नी जी को अम्माँ की इस टिप्पणी ने जामे से बाहर कर दिया। बोलीं—जलाते होंगे मिट्टी की कुप्पी ! लालटेन तो मैंने नहीं देखी। मुझे भी इस घर में आये दस साल हो गये।

मैंने डाँटा—अच्छा चुप रहो, बहुत बढ़ो नहीं।

'ओ हो ! तुम ऐसा डाँट रहे हो, जैसे मुझे मोल लाये हो !'

'मैं कहता हूँ, चुप रहो !'

'क्यों चुप रहूँ। अगर एक कहोगे, तो दो सुनोगे !'

'इसी का नाम पतिव्रत है।'

'जैसा मुँह होता है, वैसे ही बीड़े मिलते हैं !'

मैं परास्त होकर बाहर चला आया, और अंधेरी कोठरी में बैठा हुआ, उस मनहूस घड़ी को कोसने लगा, जब इस कुलच्छनी से मेरा विवाह हुआ था। इस अन्धकार में भी दस साल का जीवन सिनेमा-चित्रों की भाँति मेरे स्मृति-नेत्रों के सामने दौड़ गया। उसमें कहीं प्रकाश की झलक न थी, कहीं स्नेह की मृदुता न थी।

2

सहसा मेरे मित्र पण्डित जयदेवजी ने द्वार पर पुकारा—अरे, आज यह अंधेरा क्यों कर रखा है जी ? कुछ सूझता ही नहीं। कहाँ हो ?

मैंने कोई जवाब न दिया। सोचा—यह आज कहाँ से आकर सिर पर सवार हो गये।

जयदेव ने फिर पुकारा—अरे कहाँ हो भाई ? बोलते क्यों नहीं ? कोई घर में है या नहीं ?

कहीं से कोई जवाब न मिला।

जयदेव ने द्वार को इतनी जोर से झँझोड़ा कि मुझे भय हुआ, कहीं दरवाजा चौखट-

बाजू समेत गिर न पड़े। फिर भी मैं बोला नहीं। उनका आना खल रहा था।

जयदेव चले गये। मैंने आराम की साँस ली। बारे शैतान टला, नहीं घण्टों सिर खाता है।

मगर पाँच ही मिनट में फिर किसी के पैरों की आहट मिली और अबकी टार्च के तीव्र प्रकाश से मेरा सारा कमरा भर उठा। जयदेव ने मुझे बैठे देखकर कुतूहल से पूछा—तुम कहाँ गये थे जी ? घण्टों चीखा, किसी ने जवाब तक न दिया। यह आज क्या मामला है ! चिराग क्यों नहीं जले ?

मैंने बहाना किया—क्या जाने, मेरे सिर में दर्द था, दूकान से आकर लेटा तो नींद आ गयी।

'और सोये तो घोड़ा बेचकर, मुर्दों से शर्त लगाकर ?'

'हाँ यार, नींद आ गयी।'

'मगर घर में चिराग तो जलाना चाहिए। या उनका retrenchment कर दिया?'

'आज घर में लोग व्रत से हैं। न हाथ खाली होगा।'

'खैर चलो, कहीं झाँकी देखने चलते हो ? सेठ घूरेलाल के मन्दिर में ऐसी झाँकी बनी है कि देखते ही बनता है। ऐसे शीशे और बिजली के समान सजाये हैं कि आँखें झपक उठती हैं। अशोक के स्तम्भों में लाल-हरी-नीली बत्तियों की अनोखी बहार है। सिंहासन के ठीक सामने ऐसा फौवारा लगाया है कि उसमें से गुलाबजल की फुहारें निकलती हैं। मेरा तो चोला मस्त हो गया। सीधे तुम्हारे पास दौड़ा आ रहा हूँ। बहुत झाँकियाँ देखी होंगी तुमने, लेकिन यह और ही चीज है। आलम फटा रहा हूँ। बहुत झाँकियाँ देखी होंगी तुमने, लेकिन यह और ही चीज है। आलम फटा पड़ता है। सुनते हैं, दिल्ली से कोई चतुर कारीगर आया है। उसी की यह करामात है।'

मैंने उदासीन भाव से कहा—मेरी तो जाने की इच्छा नहीं है भाई। सिर में जोर का दर्द है।

'तब तो जरूर चलो भाई। दर्द भाग न जाय तो कहना।'

'तुम तो यार बहुत दिक करते हो। इसी मारे मैं चुपचाप पड़ा था कि किसी तरह यह बला टले; लेकिन तुम सिर पर सवार ही हो गये। कह दिया—मैं न जाऊँगा।

'और मैंने कह दिया—मैं जरूर ले आऊँगा।'

मुझ पर विजय पाने का मेरे मित्रों को बहुत आसान नुस्खा याद है। यों हाथा-पायी, धींगा-मुश्ती, धौल-धप्पा में किसी से पीछे रहने वाला नहीं हूँ; लेकिन किसी ने मुझे गुदगुदाया और मैं परास्त हुआ। फिर मेरी कुछ नहीं चलती। मैं हाथ जोड़ने लगता हूँ, घिघियाने लगता हूँ और कभी-कभी रोने लगता हूँ। जयदेव ने वही नुस्खा आज़माया और उसकी जीत हो गयी। सन्धि की यह शर्त ठहरी कि मैं चुपके से झाँकी देखने चला चलूँ।

3

सेठ घूरेलाल उन आदमियों में हैं, जिनका प्रातः को नाम ले लो, तो दिन भर भोजन न मिले। उनके मक्खीचूसपने की सैकड़ों ही दंतकथाएँ नगर में प्रचलित हैं। कहते हैं कि एक बार मारवाड़ का एक भिखारी उनके द्वार पर डट गया कि भिक्षा लेकर ही जाऊँगा। सेठ जी भी अड़ गये थे कि भिक्षा न दूँगा, चाहे कुछ हो। मारवाड़ी उन्हीं के देश का था। कुछ देर तो उनके पूर्वजों का बखान करता रहा; फिर उनकी निन्दा करने लगा, अन्त में द्वार पर लेट रहा। सेठजी ने रत्ती-भर परवाह न की। भिक्षुक भी अपनी धुन का पक्का था।

सात दिन द्वार पर बे-दाना-पानी पड़ा रहा और अन्त में वहीं पर मर गया। तब सेठजी पसीजे और उसकी क्रिया इतनी धूम-धाम से की कि बहुत कम किसी ने की होगी। एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराया और लाख ही उन्हें दक्षिणा में दिया। भिक्षुक का सत्याग्रह सेठजी के लिए वरदान हो गया। उनके अन्तःकरण में भक्ति का जैसे स्रोत खुल गया। अपनी सारी सम्पत्ति धर्मार्थ अर्पण कर दी।

हम लोग ठाकुरद्वारे में पहुँचे, तो दर्शकों की भीड़ लगी हुई थी। कंधे-से-कंधा छिलता था। आने और जाने के मार्ग अलग थे, फिर भी हमें आध घण्टे के बाद भीतर जाने का अवसर मिला। जयदेव सजावट देख-देखकर लोट-पोट हुए जाते थे; पर मुझे ऐसा मालूम होता था कि इस बनावट और सजावट के मेले में कृष्ण की आत्मा कहीं खो गयी है। उनकी वह रत्न-जटित, बिजली से जगमगाती मूर्ति देखकर मेरे मन में ग्लानि उत्पन्न हुई। इस रूप में भी प्रेम का निवास हो सकता है ? हमने तो रत्नों में दर्प और अहंकार ही भरा देखा है। मुझे उस वक्त यह याद न रही, कि यह एक करोड़पति सेठ का मन्दिर है और धनी मनुष्य धन में लोटने वाले ईश्वर ही की कल्पना कर सकता है। धनी ईश्वर में ही उनकी श्रद्धा हो सकती है। जिसके पास धन नहीं, वह उनकी दया का पात्र हो सकता है, श्रद्धा का कदापि नहीं।

मन्दिर में जयदेव को सभी जानते हैं। उन्हें तो सभी जगह सभी जानते हैं। मन्दिर के आँगन में संगीत-मण्डली बैठी हुई थी। केलकर जी अपने गंधर्व-विद्यालय के कई शिष्यों के साथ तंबूरा लिए बैठे थे। पखावज, सितार, सरोद, वीणा और जाने कौन-कौन से बाजे, जिनके नाम भी मैं नहीं जानता; उनके शिष्यों के पास थे। कोई गीत बजाने की तैयारी हो रही थी। जयदेव को देखते ही केलकर जी ने पुकारा। मैं भी तुफैल में जा बैठा। एक क्षण में गीत शुरू हुआ। समाँ बँध गया। जहाँ इतना शोरगुल था कि तोप की आवाज भी न सुनायी देती, वहाँ जैसे मार्धुय के उस प्रवाह ने सब किसी को अपने में डुबा लिया। जो जहाँ था, वहीं मंत्र-मुग्ध-सा खड़ा था। मेरी कल्पना कभी इतनी सचित्र और सजीव न थी। मेरे सामने न वह बिजली की चकाचौंध थी, न वह रत्नों की जगमगाहट, न वह भौतिक विभूतियों का समारोह। मेरे सामने वही यमुना का तट था, गुल्म-लताओं का घूँघट मुँह पर डाले हुए। वही मोहिनी गउएँ थीं, वही गोपियों की जल-क्रीड़ा, वही वंशी की मधुर ध्वनि, वही शीतल चाँदनी और वही प्यारा नन्द किशोर ! जिसकी मुख-छवि में प्रेम और वात्सल्य की ज्योति थी, जिसके दर्शनों ही से हृदय निर्मल हो जाते थे।

4

मैं इसी आनन्द-विस्मृति की दशा में था, कि कंसर्ट बन्द हो गया और आचार्य केलकर के एक किशोर शिष्य ने धुरपद अलापना शुरू किया। कलाकारों की आदत है कि वह शब्दों को कुछ इस तरह तोड़-मरोड़ देते हैं कि अधिकांश सुननेवालों की समझ में नहीं आता, कि क्या गा रहे हैं। इस गीत का एक शब्द भी मेरी समझ में न आया; लेकिन कण्ठ-स्वर में कुछ ऐसा मादकता भरा लालित्य था कि प्रत्येक स्वर मुझे रोमांचित कर देता था। कंठ-स्वर में इतनी जादू-भरी शक्ति है, इसका मुझे आज कुछ अनुभव हुआ। मन में एक नये संसार की सृष्टि होने लगी, जहाँ आनन्द-ही-आनन्द, प्रेम-ही-प्रेम, त्याग-ही-त्याग है। ऐसा जान पड़ा, दुःख केवल चित्त की वृत्ति है सत्य है केवल आनन्द। एक स्वच्छ करुणा-भरी

कोमलता, जैसे मन को मसोसने लगी। ऐसी भावना मन में उठी कि वहाँ जितने सज्जन बैठे हुए थे, सब मेरे अपने हैं, अभिन्न हैं। फिर अतीत के गर्भ में मेरे भाई की स्मृति-मूर्ति निकल आई। मेरा छोटा भाई बहुत दिन हुए, मुझसे लड़कर घर की जमा-जथा लेकर रंगून भाग गया था, और वहीं उसका देहान्त हो गया था। उसके पाशविक व्यवहारों को याद करके मैं उन्मत्त हो उठता था। उसे जीता पा जाता, तो शायद उसका खून पी जाता; पर इस समय उस स्मृति-मूर्ति को देखकर मेरा मन जैसे मुखरित हो उठा। मैं उसे आलिंगन करने के लिए व्याकुल हो गया। उसने मेरे साथ, मेरी स्त्री के साथ, माता के साथ, मेरे बच्चों के साथ जो-जो कटु, नीच और घृणास्पद व्यवहार किये थे, वह सब मुझे भूल गये। मन में केवल यही भावना थी—मेरा भैया कितना दुःखी है। मुझे इस भाई के प्रति कभी इतनी ममता न हुई थी, फि॰ तो मन की वह दशा हो गई, जिसे विह्वलता कह सकते हैं। शत्रु-भाव जैसे मन से मिट गया हो। जिन-जिन प्राणियों से मेरा बैर-भाव था, जिनसे गाली-गलौज, मारपीट, मुकदमेबाजी सब कुछ हो चुकी थी, वह सभी जैसे मेरे गले में लिपट-लिपट कर हँस रहे थे ! फिर विद्या (पत्नी) की मूर्ति मेरे सामने आ खड़ी हुई—वह मूर्ति जिसे दस साल पहले मैंने देखा था—उन आँखों में वही विकल कम्पन था, वही संदिग्ध विश्वास, कपोलों पर वही लज्जा-लालिमा, जैसे प्रेम के सरोवर से निकला हुआ कोई कमल-पुष्प हो। वही अनुराग, वही आवेश, वही उन्माद, वही याचना-भरी उत्सुकता; जिससे मैंने उसे न भूलने वाली रात को उसका स्वागत किया था, एक बार फिर मेरे हृदय में जाग उठी। मधुर स्मृतियों का ज़रो स्रोत-सा खुल गया। जी ऐसा तड़पा कि इसी समय जाकर विद्या के चरणों पर सिर रगड़कर रोऊँ और रोते-रोते बेसुध हो जाऊँ। मेरी आँखें सजल हो गयीं। मेरे मुँह से जो कटु शब्द निकले थे, वह सब जैसे मेरे ही हृदय में गड़ने लगे ! इसी दशा में, जैसी ममतामयी माता ने आकर मुझे गोद में उठा लिया। बालपन में जिस वात्सल्य का आनन्द उठाने की मुझमें शक्ति न थी वह आनन्द आज मैंने उठाया।

गाना बन्द हो गया। सब लोग उठ-उठकर जाने लगे। मैं कल्पना-सागर में ही डूबा बैठा रहा।

सहसा जयदेव ने पुकारा—चलते हो, या बैठे ही रहोगे ?

[हिन्दी कहानी। हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'जागरण', अगस्त, 1932 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित।]

ठाकुर का कुआँ

जोखू ने लोटा मुँह से लगाया तो पानी में सख्त बदबू आयी। गंगी से बोला—यह कैसा पानी है ? मारे बास के पिया नहीं जाता। गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा हुआ पानी पिलाए देती है।

गंगी प्रतिदिन शाम को पानी भर लिया करती थी। कुआँ दूर था; बार-बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लायी, तो उसमें बू बिलकुल न थी; आज पानी में बदबू कैसी ? लोटा नाक से लगाया, तो सचमुच बदबू थी। जरूर कोई जानवर कुएँ में गिरकर मर गया होगा, मगर दूसरा पानी आवे कहाँ से ?

ठाकुर के कुएँ पर कौन चढ़ने देगा। दूर से लोग डाँट बताएँगे। साहू का कुआँ गाँव के उस सिरे पर है; परन्तु वहाँ भी कौन पानी भरने देगा ? चौथा कुआँ गाँव में है नहीं।

जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पड़ा रहा, फिर बोला—अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता। ला, थोड़ा पानी नाक बन्द करके पी लूँ।

गंगी ने पानी न दिया। खराब पानी पीने से बीमारी बढ़ जायगी—इतना जानती थी; परन्तु यह न जानती थी कि पानी को उबाल देने से उसकी खराबी जाती रहती है। बोली यह पानी कैसे पियोगे ? न जाने कौन जानवर मरा है। कुएँ से मैं दूसरा पानी लाये देती हूँ।

जोखू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा—दूसरा पानी कहाँ से लायेगी ?

'ठाकुर और साहू के दो कुएँ तो हैं। क्या एक लोटा पानी न भरने देंगे ?'

'हाथ-पाँव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्रह्म-देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू जी एक के पाँच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है! हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झाँकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगे ?'

इन शब्दों में कड़ुवा सत्य था। गंगी क्या जवाब देती; किन्तु उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया।

2

रात के नौ बजे थे। थके-माँदे मजदूर तो सो चुके थे, ठाकुर के दरवाजे पर दस-पाँच बेफिक्रे जमा थे। मैदानी बहादुरी का तो अब न जमाना रहा है, न मौका। कानूनी बहादुरी की बातें हो रही थीं; कितनी होशियारी से ठाकुर ने थानेदार को एक खास मुकद्दमे में रिश्वत दे दी और साफ निकल गये। कितनी अक्लमन्दी से एक मार्के के मुकद्दमे की नकल ले आये। नाजिर और मोहतमिम, सभी कहते थे, नकल नहीं मिल सकती। कोई पचास माँगता; कोई सौ। यहाँ बेपैसे-कोड़ी नकल उड़ा दी। काम करने का ढंग चाहिए।

इसी समय गंगी कुएँ से पानी लेने पहुँची।

कुप्पी की धुँधली रोशनी कुएँ पर आ रही थी। गंगी जगत की आड़ में बैठी मौके का इन्तजार करने लगी। इस कुएँ का पानी सारा गाँव पीता है। किसी के लिए रोक नहीं; सिर्फ ये बदनसीब नहीं भर सकते।

गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबन्दियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा—हम क्यों नीच हैं और यह लोग क्यों ऊँच हैं ? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहाँ तो जितने हैं, एक-से-एक छँटे हैं ? चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकद्दमे ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गडरिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मार कर खा गया। इन्हीं पण्डित जी के घर में बारहों मासा जुआ होता है। यही साहूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊँचे। हाँ, मुँह में हमसे ऊँचे हैं। हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे ! कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रसभरी आँखों से देखने लगते हैं। जैसे सब की छाती पर साँप लोटने लगता है, परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊँचे हैं।

कुएँ पर किसी के आने की आहट हुई। गंगी की छाती धक-धक करने लगी। कहीं

देख ले, तो गजब हो जाय।

एक लात भी तो नीचे न पड़े। उसने घड़ा और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अंधेरे साये में जा खड़ी हुई। कब इन लोगों को दया आती है किसी पर। बेचारे महँगू को इतना मारा कि महीनों लहू थूकता रहा। इसलिए तो उसने बेगार न दी थी ! उस पर ये लोग ऊँचे बनते हैं।

कुएँ पर दो स्त्रियाँ पानी भरने आयी थीं। इनमें बातें हो रही थीं।

'खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ। घड़े के लिए पैसे नहीं है।'

'हम लोगों को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है।'

'हाँ, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुकुम चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडियाँ ही तो हैं।'

'लौंडिया नहीं तो और क्या हो तुम ? रोटी-कपड़ा नहीं पातीं ? दस-पाँच रुपये छीन-झपट कर ले ही लेती हो। और लौंडिया कैसी होती है।'

'मत लजाओ दीदी ! छिन भर आराम करने को जी तरस कर रह जाता है। इतना काम किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कहीं आराम से रहती। ऊपर से वह एहसान मानता। यहाँ काम करते-करते मर जाओ; पर किसी का मुँह ही नहीं सीधा होता।'

दोनों पानी भरकर चली गयीं, तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएँ के जगत के पास आयी। बेफिक्रे चले गये थे। ठाकुर भी दरवाजा बन्द कर अन्दर आँगन में सोने जा रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। किसी तरह मैदान तो साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ-बूझकर न गया होगा। गंगी दबे पाँव कुएँ के जगत पर चढ़ी। विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था।

उसने रस्सी का फंदा घड़े में ढाला। दायें-बायें चौकन्नी दृष्टि से देखा, जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सुराख कर रहा हो। अगर इस समय वह पकड़ ली गयी, तो फिर उसके लिए माफी या रिआयत की रत्ती-भर उम्मीद नहीं। अन्त में देवताओं को याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुएँ में डाल दिया।

घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता। जरा भी आवाज न हुई। गंगी ने दो चार हाथ जल्दी-जल्दी मारे। घड़ा कुएँ से मुँह तक आ पहुँचा। कोई बड़ा शहज़ोर पहलवान भी इतनी तेजी से उसे न खींच सकता था।

गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे, कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया। शेर का मुँह इससे अधिक भयानक न होगा।

गंगी के हाथ से रस्सी छूट गयी। रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी में हलकोरे की आवाजें सुनाई देती रहीं।

ठाकुर, 'कौन है, कौन है ?' पुकारते हुए कुएँ की तरफ आ रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी।

घर पहुँचकर देखा कि जोखू लोटा मुँह से लगाये वही मैला-गंदा पानी पी रहा है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'जागरण', अगस्त, 1932 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित।]

कुसुम

साल भर की बात है, एक दिन शाम को हवा खाने जा रहा था कि महाशय नवीन से मुलाक़ात हो गयी। मेरे पुराने दोस्त हैं, बड़े बेतकल्लुफ़ और मनचले। आगरे में मकान है, अच्छे कवि हैं। उनके कवि-समाज में कई बार शरीक हो चुका हूँ। ऐसा कविता का उपासक मैंने नहीं देखा। पेशा तो वकालत; पर डूबे रहते हैं काव्य-चिंतन में। आदमी ज़हीन हैं, मुक़दमा सामने आया और उसकी तह तक पहुँच गये; इसलिए कभी-कभी मुक़दमे मिल जाते हैं, लेकिन कचहरी के बाहर अदालत या मुक़दमे की चर्चा उनके लिए निषिद्ध है। अदालत की चारदीवारी के अन्दर चार-पाँच घंटे वह वकील होते हैं। चारदीवारी के बाहर निकलते ही कवि हैं—सिर से पाँव तक। जब देखिये, कवि-मण्डल जमा है, कवि-चर्चा हो रही है, रचनाएँ सुन रहे हैं। मस्त हो-होकर झूम रहे हैं, और अपनी रचना सुनाते समय तो उन पर एक तल्लीनता-सी छा जाती है। कण्ठ स्वर भी इतना मधुर है कि उनके पद बाण की तरह सीधे कलेजे में उतर जाते हैं। अध्यात्म में माधुर्य की सृष्टि करना, निर्गुण में सगुण की बहार दिखाना उनकी रचनाओं की विशेषता है। वह जब लखनऊ आते हैं, मुझे पहले सूचना दे दिया करते हैं। आज उन्हें अनायास लखनऊ में देखकर मुझे आश्चर्य हुआ—आप यहाँ कैसे ? कुशल तो है ? मुझे आने की सूचना तक न दी।

बोले—भाईजान, एक जंजाल में फँस गया हूँ। आपको सूचित करने का समय न था। फिर आपके घर को मैं अपना घर समझता हूँ। इस तकल्लुफ़ की क्या जरूरत है कि आप मेरे लिए कोई विशेष प्रबन्ध करें। मैं एक ज़रूरी मुआमले में आपको कष्ट देने आया हूँ। इस वक्त की सैर को स्थगित कीजिए और चलकर मेरी विपत्ति-कथा सुनिये।

मैंने घबड़ाकर कहा—आपने तो मुझे चिन्ता में डाल दिया। आप और विपत्ति-कथा ! मेरे तो प्राण सूखे जाते हैं।

'घर चलिए, चित्त शान्त हो तो सुनाऊँ !'

'बाल-बच्चे तो अच्छी तरह हैं ?'

'हाँ, सब अच्छी तरह हैं। वैसी कोई बात नहीं है !'

'तो चलिए, रेस्ट्राँ में कुछ जलपान तो कर लीजिए।'

'नहीं भाई, इस वक्त मुझे जलपान नहीं सूझता।'

हम दोनों घर की ओर चले।

घर पहुँचकर उनका हाथ-मुँह धुलाया, शरबत पिलाया। इलायची-पान खाकर उन्होंने अपने विपत्ति-कथा सुनानी शुरू की—

'कुसुम के विवाह में आप गये ही थे। उसके पहले भी आपने उसे देखा था। मेरा विचार है कि किसी सरल प्रकृति के युवक को आकर्षित करने के लिए जिन गुणों की ज़रूरत है, वह सब उसमें मौजूद हैं। आपका क्या ख़याल है ?'

मैंने तत्परता से कहा—मैं आपसे कहीं ज्यादा कुसुम का प्रशंसक हूँ। ऐसी लज्जाशील, सुघड़, सलीक़ेदार और विनोदिनी बालिका मैंने दूसरी नहीं देखी।

महाशय नवीन ने करुण स्वर में कहा—वही कुसुम आज अपने पति के निर्दय व्यवहार के कारण रो-रोकर प्राण दे रही है। उसका गौना हुए एक साल हो रहा है। इस

बीच में वह तीन बार ससुराल गयी, पर उसका पति उससे बोलता ही नहीं। उसकी सूरत से बेज़ार है। मैंने बहुत चाहा कि उसे बुलाकर दोनों में सफ़ाई करा दूँ, मगर न आता है, न मेरे पत्रों का उत्तर देता है। न जाने क्या गाँठ पड़ गयी है कि उसने इस बेदर्दी से आँखें फेर लीं। अब सुनता हूँ, उसका दूसरा विवाह होने वाला है। कुसुम का बुरा हाल हो रहा है। आप शायद उसे देखकर पहचान भी न सकें। रात-दिन रोने के सिवा दूसरा काम नहीं है। इससे आप हमारी परेशानी का अनुमान कर सकते हैं। ज़िन्दगी की सारी अभिलाषाएँ मिटी जाती हैं। हमें ईश्वर ने पुत्र न दिया; पर हम अपनी कुसुम को पाकर सन्तुष्ट थे और अपने भाग्य को धन्य मानते थे। उसे कितने लाड़-प्यार से पाला, कभी उसे फूल की छड़ी से भी न छुआ। उसकी शिक्षा-दीक्षा में कोई बात उठा न रखी। उसने बी. ए. नहीं पास किया, लेकिन विचारों की प्रौढ़ता और ज्ञान-विस्तार में किसी ऊँचे दर्जे की शिक्षित महिला से कम नहीं। आपने उसके लेख देखे हैं। मेरा खयाल है, बहुत कम देवियाँ वैसे लेख लिख सकती हैं ! समाज, धर्म नीति सभी विषयों में उसके विचार बड़े परिष्कृत हैं। बहस करने में तो वह इतनी पटु है कि मुझे आश्चर्य होता है। गृह-प्रबन्ध में इतनी कुशल कि मेरे घर का प्रायः सारा प्रबन्ध उसी के हाथ में था; किन्तु पति की दृष्टि में वह पाँव की धूल के बराबर भी नहीं। बार-बार पूछता हूँ, तूने उसे कुछ कह दिया है, या क्या बात है ? आख़िर, वह क्यों तुझसे इतना उदासीन है ? इसके जवाब में रोकर यही कहती है—'मुझसे तो उन्होंने कभी कोई बातचीत ही नहीं की।' मेरा विचार है कि पहले ही दिन दोनों में कुछ मनमुटाव हो गया। वह कुसम के पास आया होगा और उससे कुछ पूछा होगा। उसने मारे शर्म के जवाब न दिया होगा। संभव है, उससे दो-चार बातें और भी की हों। कुसुम ने सिर न उठाया होगा। आप जानते ही हैं, कि वह कितनी शर्मीली है। बस, पतिदेव रूठ गये होंगे। मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकता कि कुसम-जैसी बालिका से कोई पुरुष उदासीन रह सकता है, लेकिन दुर्भाग्य को कोई क्या करे ? दुखिया ने पति के नाम कई पत्र लिखे, पर उस निर्दयी ने एक का भी जवाब न दिया ! सारी चिट्ठियाँ लौटा दीं। मेरी समझ में नहीं आता कि उस पाषाण-हृदय को कैसे पिघलाऊँ। मैं अब खुद तो उसे कुछ लिख नहीं सकता। आप ही कुसुम की प्राण रक्षा करें, नहीं तो शीघ्र ही उसके जीवन का अन्त हो जायगा और उसके साथ हम दोनों प्राणी भी सिधार जायँगे। उसकी व्यथा अब नहीं देखी जाती।

नवीनजी की आँखें सजल हो गयीं। मुझे भी अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्हें तसल्ली देता हुआ बोला—आप इतने दिनों इस चिन्ता में पड़े रहे, मुझसे पहले ही क्यों न कहा ? मैं आज ही मुरादाबाद जाऊँगा और उस लौंडे की इस बुरी तरह खबर लूँगा कि वह भी याद करेगा। बचा को ज़बरदस्ती घसीट कर लाऊँगा और कुसुम के पैरों पर गिरा दूँगा।

नवीनजी मेरे आत्मविश्वास पर मुसकराकर बोले—आप उससे क्या कहेंगे ?

'यह न पूछिये ! वशीकरण के जितने मन्त्र हैं; उन सभी की परीक्षा करूँगा।'

'तो आप कदापि सफल न होंगे। वह इतना शीलवान, इतना विनम्र, इतना प्रसन्न मुख है, इतना मधुर-भाषी कि आप वहाँ से उसके भक्त होकर लौटेंगे ! वह नित्य आपके सामने हाथ बाँधे खड़ा रहेगा। आपकी सारी कठोरता शान्त हो जायगी। आपके लिए तो एक ही साधन है। आपके कलम में जादू है ! आपने कितने ही युवकों को सन्मार्ग पर लगाया है। हृदय में सोयी हुई मानवता को जगाना आपका कर्तव्य है। मैं चाहता हूँ, आप

कुसुम की ओर से ऐसा करुणा-जनक, ऐसा दिल हिला देनेवाला पत्र लिखें कि वह लज्जित हो जाय और उसकी प्रेम-भावना सचेत हो उठे। मैं जीवन-पर्यन्त आपका आभारी रहूँगा।'

नवीनजी कवि ही तो ठहरे। इस तजबीज में वास्तविकता की अपेक्षा कवित्व ही की प्रधानता थी। आप मेरे कई गल्पों को पढ़कर रो पड़े हैं, इससे आपको विश्वास हो गया है कि मैं चतुर सँपेरे की भाँति जिस दिल को चाहूँ, नचा सकता हूँ। आपको यह मालूम नहीं कि सभी मनुष्य कवि नहीं होते, और न एक-से-भावुक। जिन गल्पों को पढ़कर आप रोये हैं, उन्हीं गल्पों को पढ़कर कितने ही सज्जनों ने विरक्त होकर पुस्तक फेंक दी है। पर इन बातों का वह अवसर न था। वह समझते कि मैं अपना गला छुड़ाना चाहता हूँ, इसलिए मैंने सहृदयता से कहा—आपको बहुत दूर की सूझी। और मैं उस प्रस्ताव से सहमत हूँ और यद्यपि आपने मेरी करुणोत्पादक शक्ति का अनुमान करने में अत्युक्ति से काम लिया है; लेकिन मैं आपको निराश न करूँगा। मैं पत्र लिखूँगा और यथाशक्ति उस युवक की न्याय-बुद्धि को जगाने की चेष्टा भी करूँगा, लेकिन आप अनुचित न समझें तो पहले मुझे वह पत्र दिखा दें, जो कुसुम ने अपने पति के नाम लिखे थे, उसने पत्र तो लौट ही दिये हैं और यदि कुसुम ने उन्हें फाड़ नहीं डाला है, तो उसके पास होंगे। उन पत्रों को देखने से मुझे ज्ञात हो जायगा कि किन पहलुओं पर लिखने की गुंजाइश बाक़ी है।

नवीनजी ने जेब से पत्रों का एक पुलिन्दा निकालकर मेरे सामने रख दिया और बोले—मैं जानता था आप इन पत्रों को देखना चाहेंगे, इसलिए इन्हें साथ लेता आया। आप इन्हें शौक से पढ़ें। कुसुम जैसी मेरी लड़की है, वैसी ही आपकी भी लड़की है। आपसे क्या परदा!

सुगन्धित, गुलाबी, चिकने कागज पर बहुत ही सुन्दर अक्षरों में लिखे उन पत्रों को मैंने पढ़ना शुरू किया—

मेरे स्वामी, मुझे यहाँ आये एक सप्ताह हो गया; लेकिन आँखें पल-भर के लिए भी नहीं झपकीं। सारी रात करवटें बदलते बीत जाती है। बार-बार सोचती हूँ, मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ कि उसकी आप मुझे यह सजा दे रहे हैं। आप मुझे झिड़कें, घुड़कें, कोसें; इच्छा हो तो मेरे कान भी पकड़ें। मैं इन सभी सजाओं को सहर्ष सह लूँगी; लेकिन यह निष्ठुरता नहीं सही जाती। मैं आपके घर एक सप्ताह रही। परमात्मा जानता है कि मेरे दिल में क्या-क्या अरमान थे। मैंने कितनी बार चाहा कि आपसे कुछ पूछँ; आपसे अपने अपराधों को क्षमा कराऊँ; लेकिन आप मेरी परछाईं से भी दूर भागते थे। मुझे कोई अवसर न मिला। आपको याद होगा कि जब दोपहर को सारा घर सो जाता था; तो मैं आपके कमरे में जाती थी और घण्टों सिर झुकाये खड़ी रहती थी; पर आपने कभी आँख उठाकर न देखा। उस वक्त मेरे मन की क्या दशा होती थी, इसका कदाचित् आप अनुमान न कर सकेंगे। मेरी जैसी अभागिनी स्त्रियाँ इसका कुछ अन्दाज कर सकती हैं। मैंने अपनी सहेलियों से उनकी सोहागरात की कथाएँ सुन-सुनकर अपनी कल्पना में सुखों का जो स्वर्ग बनाया था उसे आपने कितनी निर्दयता से नष्ट कर दिया!

मैं आपसे पूछती हूँ, क्या आपके ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं है ? अदालत भी किसी अपराधी को दंड देती है, तो उस पर कोई-न-कोई अभियोग लगाती है, गवाहियाँ लेती है, उनका बयान सुनती है। आपने तो कुछ पूछा ही नहीं। मुझे अपनी ख़ता मालूम हो

जाती, तो आगे के लिए सचेत हो जाती। आपके चरणों पर गिरकर कहती, मुझे क्षमा-दान दो। मैं शपथपूर्वक कहती हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम, आप क्यों रुष्ट हो गये। सम्भव है, आपने अपनी पत्नी में जिन गुणों को देखने की कामना की हो, वे मुझमें न हों। बेशक मैं अँगरेजी नहीं पढ़ी, अँगरेज़ी-समाज की रीति-नीति से परिचित नहीं, न अँगरेज़ी खेल ही खेलना जानती हूँ। और भी कितनी ही त्रुटियाँ मुझमें होंगी। मैं जानती हूँ कि मैं आपके योग्य न थी। आपको मुझसे कहीं अधिक रूपवती, गुणवती, बुद्धिमती स्त्री मिलनी चाहिए थी; लेकिन मेरे देवता, दंड अपराधों का मिलना चाहिए, त्रुटियों का नहीं। फिर मैं तो आपके इशारे पर चलने को तैयार हूँ। आप मेरी दिलजोई करें, फिर देखिए, मैं अपनी त्रुटियों को कितनी जल्द पूरा कर लेती हूँ। आपका प्रेम-कटाक्ष मेरे रूप को प्रदीप्त, मेरी बुद्धि को तीव्र और मेरे भाग्य को बलवान कर देगा। वह विभूति पाकर मेरी कयाकल्प हो जायगी।

स्वामी ! क्या आपने सोचा है ? आप यह क्रोध किस पर कर रहे हैं ? वह अबला, जो आपके चरणों पर पड़ी हुई आपसे क्षमा-दान माँग रही है, जो जन्म-जन्मान्तर के लिए आपकी चेरी है, क्या इस क्रोध को सहन कर सकती है ? मेरा दिल बहुत कमजोर है। मुझे रुलाकर आपको पश्चात्ताप के सिवा और क्या हाथ आयेगा। इस क्रोधाग्नि की एक चिनगारी मुझे भस्म कर देने के लिए काफी है, अगर आपकी यह इच्छा है कि मैं मर जाऊँ, तो मैं मरने के लिए तैयार हूँ; केवल आपका इशारा चाहती हूँ। अगर मरने से आपका चित्त प्रसन्न हो, तो मैं बड़े हर्ष से अपने को आपके चरणों पर समर्पित कर दूँगी; मगर इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि मुझमें सौ ऐब हों, पर एक गुण भी है—मुझे दावा है कि आपकी जितनी सेवा मैं कर सकती हूँ, उतनी कोई दूसरी स्त्री नहीं कर सकती। आप विद्वान् हैं, उदार हैं, मनोविज्ञान के पंडित हैं, आपकी लौंडी आपके सामने खड़ी दया की भीख माँग रही है। क्या उसे द्वार से ठुकरा दीजिएगा ?

आपकी अपराधिनी—कुसुम

यह पत्र पढ़कर मुझे रोमांच हो आया। यह बात मेरे लिए असह्य थी कि कोई स्त्री अपने पति की इतनी खुशामद करने पर मजबूर हो जाय। पुरुष अगर स्त्री से उदासीन रह सकता है, तो स्त्री उसे क्यों नहीं ठुकरा सकती ? वह दुष्ट समझता है कि विवाह ने एक स्त्री को उसका गुलाम बना दिया। वह उस अबला पर जितना अत्याचार चाहे करे, कोई उसका हाथ नहीं पकड़ सकता, कोई चूँ भी नहीं कर सकता। पुरुष अपनी दूसरी, तीसरी, चौथी शादी कर सकता है, स्त्री से कोई सम्बन्ध न रखकर भी उस पर उसी कठोरता से शासन कर सकता है। वह जानता है कि स्त्री कुल-मर्यादा के बन्धनों में जकड़ी हुई है, उसे रो-रोकर मर जाने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। अगर उसे भय होता कि औरत भी उसकी ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, ईंट से भी नहीं; केवल थप्पड़ से दे सकती है, तो उसे कभी इस बदमिज़ाजी का साहस न होता। बेचारी स्त्री कितनी विवश है। शायद मैं कुसुम की जगह होता, तो इस निष्ठुरता का जवाब इसकी दसगुनी कठोरता से देता। उसकी छाती पर मूँग दलता ? संसार के हँसने की ज़रा भी चिन्ता न करता। समाज अबलाओं पर इतना जुल्म देख सकता है और चूँ तक नहीं करता, उसके रोने या हँसने की मुझे ज़रा भी परवाह न होती। अरे अभागे युवक ! तुझे खबर नहीं, तू अपने भविष्य की गर्दन पर कितनी बेदर्दी

से छुरी फेर रहा है ? यह वह समय है, जब पुरुष को अपने प्रणय-भण्डार से स्त्री के माता-पिता, भाई-बहन, सखियाँ-सहेलियाँ, सभी के प्रेम की पूर्ति करनी पड़ती है। अगर पुरुष में यह सामर्थ्य नहीं है तो स्त्री की क्षुधित आत्मा को कैसे सन्तुष्ट रख सकेगा। परिणाम वही होगा, जो बहुधा होता है। अबला कुढ-कुढ़कर मर जाती है। यही वह समय है, जिसकी स्मृति जीवन में सदैव के लिए मिठास पैदा कर देती है। स्त्री की प्रेमसुधा इतनी तीव्र होती है कि वह पति का स्नेह पाकर अपना जीवन सफल समझती है और इस प्रेम के आधार पर जीवन के सारे कष्टों को हँस-खेलकर सह लेती है। यही वह समय है, जब हृदय में प्रेम का बसन्त आता है और उसमें नयी-नयी आशा-कोंपलें निकलने लगती हैं। ऐसा कौन निर्दयी है, जो इस ऋतु में उस वृक्ष पर कुल्हाड़ी चलायेगा। यही वह समय है, जब शिकारी किसी पक्षी को उसके बसेरे से लाकर पिंजरे में बन्द कर देता है। क्या वह उसकी गर्दन पर छुरी चलाकर उसका मधुर गान सुनने की आशा रखता है ?

मैंने दूसरा पत्र पढ़ना शुरू किया।

मेरे जीवन-धन ! दो सप्ताह जवाब की प्रतीक्षा करने के बाद आज फिर यही उलाहना देने बैठी हूँ। जब मैंने वह पत्र लिखा था, तो मेरा मन गवाही दे रहा था कि उसका उत्तर जरूर आयेगा। आशा के विरुद्ध आशा लगाये हुए थी। मेरा मन अब भी इसे स्वीकार नहीं करता कि जान-बूझकर उसका उत्तर नहीं दिया। कदाचित् आपको अवकाश नहीं मिला, या ईश्वर न करे, कहीं आप अस्वस्थ तो नहीं हो गये ? किससे पूछूँ ? इस विचार से ही मेरा हृदय काँप रहा है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आप प्रसन्न और स्वस्थ हों। पत्र मुझे न लिखें, न सही, रोकर चुप ही तो हो जाऊँगी। आपको ईश्वर का वास्ता है; अगर आपको किसी प्रकार का कष्ट हो, तो मुझे तुरन्त पत्र लिखिए, मैं किसी को साथ लेकर आ जाऊँगी। मर्यादा और परिपाटी के बन्धनों से मेरा जी घबराता है, ऐसी दशा में भी यदि आप मुझे अपनी सेवा से वंचित रखते हैं, तो आप मुझसे मेरा वह अधिकार छीन रहे हैं, जो मेरे जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु है। मैं आपसे और कुछ नहीं माँगती, आप मुझे मोटे-से-मोटा खिलाइए, मोटे-से-मोटा पहनाइए, मुझे ज़रा भी शिकायत न होगी। मैं आपके साथ घोर-से-घोर विपत्ति में भी प्रसन्न रहूँगी। मुझे आभूषणों की लालसा नहीं, महल में रहने की लालसा नहीं, सैर-तमाशे की लालसा नहीं, धन बटोरने की लालसा नहीं। मेरे जीवन का उद्देश्य केवल आपकी सेवा करना है। यही उसका ध्येय है। मेरे लिए दुनिया में कोई देवता नहीं, कोई गुरु नहीं, कोई हाकिम नहीं। मेरे देवता आप हैं, मेरे राजा आप हैं, मुझे अपने चरणों से न हटाइए, मुझे ठुकराइए नहीं। मैं सेवा और प्रेम के फूल लिए, कर्तव्य और व्रत की भेंट अंचल में सजाये आपकी सेवा में आयी हूँ। मुझे इस भेंट को, इन फूलों को अपने चरणों पर रखने दीजिए। उपासक का काम तो पूजा करना है। देवता उसकी पूजा स्वीकार करता है या नहीं, यह सोचना उसका धर्म नहीं।

मेरे सिरताज ! शायद आपको पता नहीं, आजकल मेरी क्या दशा है। यदि मालूम होता, तो आप इस निष्ठुरता का व्यवहार न करते। आप पुरुष हैं, आपके हृदय में दया है, सहानुभूति है, उदारता है, मैं विश्वास नहीं कर सकती कि आप मुझ जैसी नाचीज़ पर क्रोध कर सकते हैं। मैं आपकी दया के योग्य हूँ—कितनी दुर्बल, कितनी अपंग, कितनी बेज़बान! आप सूर्य हैं, मैं अणु हूँ; आप अग्नि हैं, मैं तृण हूँ; आप राजा हैं, मैं भिखारिन हूँ।

क्रोध तो बराबर वालों पर करना चाहिए, मैं भला आपके क्रोध का आघात कैसे सह सकती हूँ ? अगर आप समझते हैं कि मैं आपकी सेवा के योग्य नहीं हूँ, तो मुझे अपने हाथों से विष का प्याला दे दीजिए। मैं उसे सुधा समझकर सिर और आँखों से लगाऊँगी और आँखें बन्द करके पी जाऊँगी। जब जीवन आपकी भेंट हो गया, तो आप मारें या जिलायें, यह आपकी इच्छा है। मुझे यही सन्तोष काफ़ी है कि मेरी मृत्यु से आप निश्चिन्त हो गये। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि मैं आपकी हूँ और सदैव आपकी रहूँगी; इस जीवन में ही नहीं, बल्कि अनन्त तक।

अभागिनी–कुसुम

यह पत्र पढ़ कर मुझे कुसुम पर भी झुंझलाहट आने लगी और उस लौंडे से तो घृणा हो गयी। माना, तुम स्त्री हो, आजकल के प्रथानुसार पुरुष को तुम्हारे ऊपर हर तरह का अधिकार है, लेकिन नम्रता की भी तो कोई सीमा होती है ? तो उसे भी चाहिए कि उसकी बात न पूछे। स्त्रियों को धर्म और त्याग का पाठ पढ़ा-पढ़ाकर हमने उनके आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास दोनों ही का अन्त कर दिया। अगर पुरुष स्त्री का मुहताज नहीं, तो स्त्री भी पुरुष की मुहताज क्यों है ? ईश्वर ने पुरुष को हाथ दिये हैं, तो क्या स्त्री को उससे वंचित रखा है ? पुरुष के पास बुद्धि है, तो क्या स्त्री अबोध है ? इसी नम्रता ने तो मरदों का मिजाज आसमान पर पहुँचा दिया। पुरुष रूठ गया, तो स्त्री के लिये मानो प्रलय आ गया। मैं तो समझता हूँ, कुसुम नहीं, उसका अभागा पति ही दया के योग्य है, जो कुसुम-जैसी स्त्री की कद्र नहीं कर सकता। मुझे ऐसा सन्देह होने लगा कि इस लौंडे ने कोई दूसरा रोग पाल रखा है। किसी शिकारी के रंगीन जाल में फँसा हुआ है।

खैर, मैंने तीसरा पत्र खोला–

प्रियतम ! अब मुझे मालूम हो गया कि मेरी जिन्दगी निरुद्देश्य है। जिस फूल को देखनेवाला, चुननेवाला कोई नहीं, वह खिले तो क्यों ? क्या इसीलिए कि मुरझाकर जमीन पर गिर पड़े और पैरों से कुचल दिया जाय ? मैं आपके घर में एक महीना रहकर दोबारा आयी हूँ। ससुरजी ही ने मुझे बुलाया, ससुरजी ही ने मुझे बिदा कर दिया। इतने दिनों में आपने एक बार भी मुझे दर्शन न दिये। आप दिन में बीसों ही बार घर में आते थे, अपने भाई-बहनों से हँसते-बोलते थे, या मित्रों के साथ सैर-तमाशे देखते थे; लेकिन मेरे पास आने की आपने कसम खा ली थी। मैंने कितनी बार आपके पास संदेश भेजे, कितना अनुनय-विनय किया, कितनी बार बेशर्मी करके आपके कमरे में गयी; लेकिन आपने कभी मुझे आँख उठाकर भी न देखा। मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकती कि कोई प्राणी इतना हृदयहीन हो सकता है। प्रेम के योग्य नहीं, विश्वास के योग्य नहीं, सेवा करने के भी योग्य नहीं, तो क्या दया के भी योग्य नहीं ? मैंने उस दिन कितनी मेहनत और प्रेम से आपके लिए रसगुल्ले बनाये थे। आपने उन्हें हाथ से छुआ भी नहीं। जब आप मुझसे इतने विरक्त हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि जी कर क्या करूँ ? न-जाने यह कौन-सी आशा है, जो मुझे जीवित रखे हुए है। क्या अन्धेर है कि आप सजा तो देते हैं; पर अपराध नहीं बतलाते। यह कौन-सी नीति है? आपको ज्ञात है, इस एक मास में मैंने मुश्किल से दस दिन आपके घर में भोजन किया होगा। मैं इतनी कमजोर हो गयी हूँ कि चलती हूँ तो आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। आँखों में जैसे ज्योति ही नहीं रही ! हृदय में मानो

रक्त का संचालन ही नहीं रहा। खैर, सता लीजिए, जितना जी चाहे। इस अनीति का अन्त भी एक दिन हो ही जायगा। अब तो मृत्यु ही पर सारी आशाएँ टिकी हुई हैं। अब मुझे प्रतीत हो रहा है कि मेरे मरने की खबर पाकर आप उछलेंगे और हल्की साँस लेंगे, आपकी आँखों से आँसू की एक बूँद भी न गिरेगी; पर यह आपका दोष नहीं, मेरा दुर्भाग्य है। उस जन्म में मैंने कोई बहुत बड़ा पाप किया था। मैं चाहती हूँ मैं भी आपकी परवाह न करूँ, आप ही की भाँति आपसे आँखें फेर लूँ, मुँह फेर लूँ, दिल फेर लूँ; लेकिन न-जाने क्यों मुझमें वह शक्ति नहीं है। क्या लता वृक्ष की भाँति खड़ी रह सकती है ? वृक्ष के लिए किसी सहारे की जरूरत नहीं। लता वह शक्ति कहाँ से लाये ? वह तो वृक्ष से लिपटने के लिए पैदा की गयी है। उसे वृक्ष से अलग कर दो और वह सूख जायगी। मैं आपसे पृथक् अपने अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकती। मेरे जीवन की हर एक गति, प्रत्येक विचार, प्रत्येक कामना में आप मौजूद होते हैं। मेरा जीवन वह वृत्त है, जिसके केन्द्र आप हैं। मैं वह हार हूँ, जिसके प्रत्येक फूल में आप धागे की भाँति घुसे हैं। उस धागे के बगैर हार के फूल बिखर जायँगे और धूल में मिल जायँगे।

मेरी एक सहेली है, शन्नो। उसका इस साल पाणिग्रहण हो गया है। उसका पति जब ससुराल आता है, शन्नो के पाँव जमीन पर नहीं पड़ते। दिन-भर में न जाने कितने रूप बदलती है। मुख-कमल खिल जाता है। उल्लास सँभाले नहीं सँभलता। उसे बिखेरती, लुटाती चलती है—हम जैसे अभागों के लिए। जब आकर मेरे गले से लिपट जाती है, तो हर्ष और उन्माद की वर्षा से जैसे मैं लथपथ हो जाती हूँ। दोनों अनुराग से मतवाले हो रहे हैं। उनके पास धन नहीं है, जायदाद नहीं है। मगर अपनी दरिद्रता में ही मगन हैं। इस अखण्ड प्रेम का एक क्षण ! उसकी तुलना में संसार की कौन-सी वस्तु रखी जा सकती है? मैं जानती हँ, यह रँगरेलियाँ और बेफिक्रियाँ बहुत दिन न रहेंगी। जीवन की चिन्ताएँ और दुराशाएँ उन्हें भी परास्त कर देंगी, लेकिन ये मधुर स्मृतियाँ संचित धन की भाँति अन्त तक उन्हें सहारा देती रहेंगी। प्रेम में भीगी हुई सूखी रोटियाँ, प्रेम में रँगे हुए मोटे कपड़े और प्रेम के प्रकाश से आलोकित छोटी-सी कोठरी, अपनी इस विपन्नता में भी वह स्वाद, वह शोभा और वह विश्राम रखती है, जो शायद देवताओं को स्वर्ग में भी नसीब नहीं। जब शन्नो का पति अपने घर चला जाता है, तो वह दुखिया किस तरह फूट-फूटकर रोती है कि मेरा हृदय गद्गद हो जाता है। उसके पत्र आ जाते हैं, तो मानो उसे कोई विभूति मिल जाती है। उसके रोने में भी, उसकी विफलताओं में भी, उसके उपालम्भों में भी एक स्वाद है, एक रस है। उसके आँसू व्यग्रता और विह्वलता के हैं, मेरे आँसू निराशा और दुःख के। उसकी व्याकुलता में प्रतीक्षा और उल्लास है, मेरी व्याकुलता में दैन्य और परवशता। उसके उपालम्भ में अधिकार और ममता है, मेरे उपालम्भ में भग्नता और रुदन !

पत्र लम्बा हुआ जाता है और दिल का बोझ हलका नहीं होता। भयंकर गरमी पड़ रही है। दादा मुझे मसूरी ले जाने का विचार कर रहे हैं। मेरी दुर्बलता से उन्हें 'टी. बी.' का सन्देह हो रहा है। वह नहीं जानते कि मेरे लिए मसूरी नहीं, स्वर्ग भी काल-कोठरी है।

अभागिन।—कुसुम

मेरे पत्थर के देवता ! कल मसूरी से लौट आयी। लोग कहते हैं, बड़ा स्वास्थ्यवर्द्धक और रमणीक स्थान है, होगा। मैं तो एक दिन भी कमरे से नहीं निकली। भग्न-हृदयों के

लिए संसार सूना है।

मैंने रात एक बड़े मजे का सपना देखा। बतलाऊँ; पर क्या फायदा ? न जाने क्यों मैं अब भी मौत से डरती हूँ। आशा का कच्चा धागा मुझे अब भी जीवन से बाँधे हुए है। जीवन-उद्यान के द्वार पर जाकर बिना सैर किये लौट आना कितना हसरतनाक है। अन्दर क्या सुषमा है, क्या आनन्द है। मेरे लिए वह द्वार ही बन्द है। कितनी अभिलाषाओं से विहार का आनन्द उठाने चली थी—कितनी तैयारियों से—पर मेरे पहुँचते ही द्वार बन्द हो गया है।

अच्छा बतलाओ, मैं मर जाऊँगी तो मेरी लाश पर आँसू की दो बूँदें गिराओगे ? जिसकी ज़िन्दगी-भर की जिम्मेदारी ली थी, जिसकी सदैव के लिए बाँह पकड़ी थी, क्या उसके साथ इतनी भी उदारता न करोगे ? मरनेवालों के अपराध सभी क्षमा कर दिया करते हैं। तुम भी क्षमा कर देना। आकर मेरे शव को अपने हाथों से नहलाना, अपने हाथ से सोहाग के सिन्दूर लगाना, अपने हाथ से सोहाग की चूड़ियाँ पहनाना, अपने हाथ से मेरे मुँह में गंगाजल डालना, दो-चार पग कन्धा दे देना, बस, मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो जायगी और तुम्हें आशीर्वाद देगी। मैं बचन देती हूँ कि मालिक के दरबार में तुम्हारा यश गाऊँगी। क्या यह भी महँगा सौदा है ? इतने से शिष्टाचार से तुम अपनी सारी जिम्मेदारियों से मुक्त हुए जाते हो। आह ! मुझे विश्वास होता कि तुम इतना शिष्टाचार करोगे, तो मैं कितनी खुशी से मौत का स्वागत करती। लेकिन मैं तुम्हारे साथ अन्याय न करूँगी। तुम कितने ही निष्ठुर हो, इतने निर्दयी नहीं हो सकते। मैं जानती हूँ; तुम यह समाचार पाते ही आओगे और शायद एक क्षण के लिए मेरी शोक-मृत्यु पर तुम्हारी आँखें रो पड़ें। कहीं मैं अपने जीवन में वह शुभ अवसर देख सकती !

अच्छा, क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकती हूँ ? नाराज न होना। क्या मेरी जगह किसी और सौभाग्यवती ने ले ली है ? अगर ऐसा है, तो बधाई ! जरा उसका चित्र मेरे पास भेज देना। मैं उसकी पूजा करूँगी, उसके चरणों पर शीश नवाऊँगी। मैं जिस देवता को प्रसन्न न कर सकी, उसी देवता से उसने वरदान प्राप्त कर लिया। ऐसी सौभागिनी के तो चरण धो-धो पीना चाहिए। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम उसके साथ सुखी रहो। यदि मैं उस देवी की कुछ सेवा कर सकती, अपरोक्ष न सही, परोक्ष रूप से ही तुम्हारे कुछ काम आ सकती। अब मुझे केवल उसका शुभ नाम और स्थान बता दो, मैं सिर के बल दौड़ी हुई उसके पास जाऊँगी और कहूँगी—देवी, तुम्हारी लौंडी हूँ, इसलिए कि तुम मेरे स्वामी की प्रेमिका हो। मुझे अपने चरणों में शरण दो। मैं तुम्हारे लिए फूलों की सेज बिछाऊँगी, तुम्हारी माँग मोतियों से भरूँगी, तुम्हारी एड़ियों में महावर रचाऊँगी—यह मेरी जीवन की साधना होगी ! यह न समझना कि मैं जलूँगी या कुढ़ूँगी। जलन तब होती है, जब कोई मुझसे मेरी वस्तु छीन रहा हो। जिस वस्तु को अपना समझने का मुझे कभी सौभाग्य न हुआ, उसके लिए मुझे जलन क्यों हो।

अभी बहुत कुछ लिखना था; लेकिन डाक्टर साहब आ गये हैं। बेचारा हृदयदाह को टी. बी. समझ रहा है।

दुःख की सतायी हुई,—कुसुम

इन दोनों पत्रों ने धैर्य का प्याला भर दिया ! मैं बहुत ही आवेशहीन आदमी हूँ। भावुकता मुझे छू भी नहीं गयी। अधिकांश कलाविदों की भाँति मैं भी शब्दों से आन्दोलित

नहीं होता। क्या वस्तु दिल से निकलती है, क्या वस्तु केवल मर्म को स्पर्श करने के लिए लिखी गई है, यह भेद बहुधा मेरे साहित्यिक आनन्द में बाधक हो जाता है, लेकिन इन पत्रों ने मुझे आप से बाहर कर दिया। एक स्थान पर तो सचमुच मेरी आँखें भर आयीं। यह भावना कितनी वेदनापूर्ण थी कि वही बालिका, जिस पर माता-पिता प्राण छिड़कते रहते थे, विवाह होते ही इतनी विपदग्रस्त हो जाय ! विवाह क्या हुआ, मानो उसकी चिता बनी, या उसकी मौत का परवाना लिखा गया। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी वैवाहिक दुर्घटनाएँ कम होती हैं; लेकिन समाज की वर्तमान दशा में उनकी सम्भावना बनी रहती है। जब तक स्त्री-पुरुष के अधिकार समान न होंगे, ऐसे आघात नित्य होते रहेंगे। दुर्बल को सताना कदाचित् प्राणियों का स्वभाव है। काटनेवाले कुत्तों से लोग दूर भागते हैं, सीधे कुत्ते पर बालवृन्द विनोद के लिए पत्थर फेंकते हैं। तुम्हारे दो नौकर एक ही श्रेणी के हों, उनमें कभी झगड़ा न होगा; लेकिन आज उनमें से एक को अफसर और दूसरे को उसका मातहत बना दो, फिर देखो, अफसर साहब अपने मातहत पर कितना रोब जमाते हैं। सुखमय दाम्पत्य की नींव अधिकार-साम्य ही पर रखी जा सकती है। इस वैषम्य में प्रेम का निवास हो सकता है, मुझे तो इसमें सन्देह है। हम आज जिसे स्त्री-पुरुषों में प्रेम कहते हैं, वह वही प्रेम है, जो स्वामी को अपने पशु से होता है। पशु सिर झुकाये काम किये चला जाय, स्वामी उसे भूसा और खली भी देगा, और उसकी देह भी सहलायेगा, उसे आभूषण भी पहनायेगा; लेकिन जानवर ने जरा चाल धीमी की, जरा गर्दन टेढ़ी की कि मालिक का चाबुक पीठ पर पड़ा। इसे प्रेम नहीं कहते।

खैर, मैंने पाँचवाँ पत्र खोला—

जैसा मुझे विश्वास था, आपने मेरे पिछले पत्र का भी उत्तर न दिया। इसका खुला हुआ अर्थ है कि आपने मुझे परित्याग करने का संकल्प कर लिया है। जैसी आपकी इच्छा ! पुरुष के लिए स्त्री पाँव की जूती है, स्त्री के लिए तो पुरुष देव तुल्य है, बल्कि देवता से भी बढ़कर। विवेक का उदय होते ही वह पति की कल्पना करने लगती है। मैंने भी वही किया। जिस समय मैं गुड़िया खेलती थी, उसी समय आपने गुड्डे के रूप में मेरे मनोदेश में प्रवेश किया। मैंने आपके चरणों को पखारा, माला-फूल और नैवेद्य से आपका सत्कार किया। कुछ दिनों के बाद कहानियाँ सुनने और पढ़ने की चाट पड़ी, तब आप कथाओं के नायक के रूप में मेरे घर आये। मैंने आपको हृदय में स्थान दिया। बाल्यकाल ही से आप किसी-न-किसी रूप में मेरे जीवन में घुसे हुए थे। वे भावनाएँ मेरे अन्तस्तल की गहराइयों तक पहुँच गयी हैं। मेरे अस्तित्व का एक-एक अणु उन भावनाओं से गुँथा हुआ है। उन्हें दिल से निकाल डालना सहज नहीं है। उसके साथ मेरे जीवन के परमाणु भी बिखर जायँगे, लेकिन आपकी यही इच्छा है तो यही सही। मैं आपकी सेवा में सब कुछ करने को तैयार थी। अभाव और विपन्नता का तो कहना ही क्या मैं तो अपने को मिटा देने को भी राजी थी। आपकी सेवा में मिट जाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य था। मैंने लज्जा और संकोच का परित्याग किया, आत्म-सम्मान को पैरों से कुचला, लेकिन आप मुझे स्वीकार नहीं करना चाहते। मजबूर हूँ। आपका कोई दोष नहीं। अवश्य मुझसे कोई ऐसी बात हो गयी है, जिसने आपको इतना कठोर बना दिया है। आप उसे जबान पर लाना भी उचित नहीं समझते। मैं इस निष्ठुरता के सिवा और हर एक सजा झेलने को तैयार थी। आपके हाथ

से जहर का प्याला लेकर पी जाने में मुझे विलम्ब न होता, किन्तु विधि की गति निराली है ! मुझे पहले इस सत्य के स्वीकार करने में बाधा थी कि स्त्री पुरुष की दासी है। मैं उसे पुरुष की सहचरी, अर्द्धांगिनी समझती थी, पर अब मेरी आँखें खुल गयीं। मैंने कई दिन हुए एक पुस्तक में पढ़ा था कि आदिकाल में स्त्री पुरुष की उसी तरह सम्पत्ति थी, जैसा गाय-बैल या खेतबारी। पुरुष को अधिकार था स्त्री को बेचे, गिरो रखे या मार डाले। विवाह की प्रथा उस समय केवल यह थी कि वर-पक्ष अपने सूर सामन्तों को लेकर सशस्त्र आता था कन्या को उड़ा ले जाता था। कन्या के साथ कन्या के घर में रुपया-पैसा, अनाज या पशु जो कुछ उसके हाथ लग जाता था, उसे भी उठा ले जाता था। वह स्त्री को अपने घर ले जाकर, उसके पैरों में बेड़ियाँ डालकर घर के अन्दर बन्द कर देता था। उसके आत्म-सम्मान के भावों को मिटाने के लिए यह उपदेश दिया जाता था कि पुरुष ही उसका देवता है, सोहाग स्त्री की सबसे बड़ी विभूति है। आज कई हज़ार वर्षों के बीतने पर पुरुष के उस मनोभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पुरानी सभी प्रथाएँ कुछ विकृत या संस्कृत रूप में मौजूद हैं। आज मुझे मालूम हुआ कि उस लेखक ने स्त्री-समाज की दशा का कितना सुन्दर निरूपण किया था।

अब आपसे मेरा सविनय अनुरोध है और यही अन्तिम अनुरोध है कि आप मेरे पत्रों को लौटा दें। आपके दिये हुए गहने और कपड़े अब मेरे किसी काम के नहीं। इन्हें अपने पास रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं। आप जिस समय चाहें, वापस मँगवा लें। मैंने उन्हें एक पेटारी में बन्द करके अलग रख दिया है। उसकी सूची भी वहीं रखी हुई है, मिला लीजिएगा। आज से आप मेरी जबान या कलम से कोई शिकायत न सुनेंगे। इस भ्रम को भूलकर भी दिल में स्थान न दीजिएगा कि मैं आपसे बेवफाई या विश्वास-घात करूँगी। मैं इसी घर में कुढ़-कुढ़कर मर जाऊँगी, पर आपकी ओर से मेरा मन कभी मैला न होगा। मैं जिस जलवायु में पली हूँ, उसका मूल तत्त्व है पति में श्रद्धा। ईर्ष्या या जलन भी उस भावना को मेरे दिल से नहीं निकाल सकती। मैं आपकी कुल-मर्यादा की रक्षिका हूँ। उस अमानत में जीते-जी खयानत न करूँगी। अगर मेरे बस में होता, तो मैं उसे भी वापस कर देती, लेकिन यहाँ मैं भी मजबूर हूँ और आप भी मजबूर हैं। मेरी ईश्वर से यही विनती है कि आप जहाँ रहें, कुशल से रहें। जीवन में मुझे सबसे कटु अनुभव जो हुआ, वह यही है कि नारी-जीवन अधम है—अपने लिए, अपने माता-पिता के लिए, अपने पति के लिए। उसकी कदर न माता के घर में है, न पति के घर में। मेरा घर शोकागार बना हुआ है। अम्माँ रो रही हैं, दादा रो रहे हैं। कुटुम्ब के लोग रो रहे हैं, एक मेरी ज़ात से लोगों को कितनी मानसिक वेदना हो रही है, कदाचित् वे सोचते होंगे, यह कन्या कुल में न आती तो अच्छा होता। मगर सारी दुनिया एक तरफ हो जाय, आपके ऊपर विजय नहीं पा सकती। आप मेरे प्रभु हैं। आपका फैसला अटल है। उसकी कहीं अपील नहीं, कहीं फरियाद नहीं। खैर, आज से यह काण्ड समाप्त हुआ। अब मैं हूँ और मेरा दलित, भग्न हृदय। हसरत यही है कि आपकी कुछ सेवा न कर सकी !

अभागिनी—कुसुम

2

मालूम नहीं, मैं कितनी देर तक मूक वेदना की दशा में बैठा रहा कि महाशय नवीन

बोले—आपने इन पत्रों को पढ़कर क्या निश्चय किया ?

मैंने रोते हुए हृदय से कहा—अगर इन पत्रों ने उस नर-पिशाच के दिल पर कोई असर न किया, तो मेरा पत्र भला क्या असर करेगा। इससे अधिक करुणा और वेदना मेरी शक्ति के बाहर है। ऐसा कौन-सा धार्मिक भाव है, जिसे इन पत्रों में स्पर्श न किया गया हो। दया, लज्जा, तिरस्कार, न्याय, मेरे विचार में तो कुसुम ने कोई पहलू नहीं छोड़ा। मेरे लिए अब यही अन्तिम उपाय है कि उस शैतान के सिर पर सवार हो जाऊँ और उससे मुँह-दर-मुँह बातें करके इस समस्या की तह तक पहुँचने की चेष्टा करूँ। अगर उसने मुझे कोई सन्तोषप्रद उत्तर न दिया, तो मैं उसका और अपना खून एक कर दूँगा। या तो मुझी को फाँसी होगी, या वही कालेपानी जायगा। कुसुम ने जिस धैर्य और साहस से काम लिया है, वह सराहनीय है। आप उसे सान्त्वना दीजिएगा। मैं आज रात की गाड़ी से मुरादाबाद जाऊँगा और परसों तक जैसी कुछ परिस्थिति होगी; उसकी आपको सूचना दूँगा ! मुझे तो यह कोई चरित्रहीन और बुद्धिहीन युवक मालूम होता है।

मैं उस बहक में जाने क्या-क्या बकता रहा। इसके बाद हम दोनों भोजन करके स्टेशन चले। वह आगरे गये, मैंने मुरादाबाद का रास्ता लिया। उनके प्राण अब भी सूखे जाते थे कि क्रोध के आवेश में कोई पागलपन न कर बैठूँ। मेरे बहुत समझाने पर उनका चित्त शान्त हुआ।

मैं प्रातःकाल मुरादाबाद पहुँचा और जाँच शुरू कर दी। इस युवक के चरित्र के विषय में मुझे जो सन्देह था, वह गलत निकला। मुहल्ले में, कालेज में, उसके इष्ट-मित्रों में, सभी उसके प्रशंसक थे। अँधेरा और गहरा होता हुआ जान पड़ा। सन्ध्या-समय मैं उसके घर जा पहुँचा। जिस निष्कपट भाव से वह दौड़कर मेरे पैरों पर झुका है, वह मैं नहीं भूल सकता। ऐसा वाक्‌चतुर, ऐसा सुशील और विनीत युवक मैंने नहीं देखा। बाहर और भीतर में इतना आकाश-पाताल का अन्तर मैंने कभी न देखा था। मैंने कुशल-क्षेम और शिष्टाचार के दो-चार वाक्यों के बाद पूछा—तुमसे मिलकर चित्त प्रसन्न हुआ; लेकिन आखिर कुसुम ने क्या अपराध किया है, जिसका तुम उसे इतना कठोर दण्ड दे रहे हो ? उसने तुम्हारे पास कई पत्र लिखे, तुमने एक का भी उत्तर न दिया। वह दो-तीन बार यहाँ भी आयी, पर तुम उससे बोले तक नहीं। क्या उस निर्दोष बालिका के साथ तुम्हारा यह अन्याय नहीं है।

युवक ने लज्जित भाव से कहा—बहुत अच्छा होता कि आपने इस प्रश्न को न उठाया होता। उसका जवाब देना मेरे लिए बहुत मुश्किल है। मैंने तो इसे आप लोगों के अनुमान पर छोड़ दिया था; लेकिन इस गलतफ़हमी को दूर करने के लिए मुझे विवश होकर कहना पड़ेगा।

यह कहते-कहते वह चुप हो गया। बिजली की बत्ती पर भाँति-भाँति के कीट-पतंगे जमा हो गये। कई झींगुर उछल-उछलकर मुँह पर आ जाते थे; और जैसे मनुष्य पर अपनी विजय का परिचय देकर उड़ जाते थे। एक बड़ा-सा अँखफोड़ भी मेज पर बैठा था और शायद जस्त मारने के लिए अपनी देह तौल रहा था। युवक ने एक पंखा ला कर मेज पर रख दिया, जिसने विजयी कीट-पतंगों को दिखा दिया कि मनुष्य इतना निर्बल नहीं है, जितना वे समझ रहे थे। एक क्षण में मैदान साफ हो गया और हमारी बातों में दखल देनेवाला कोई न रहा।

युवक ने सकुचाते हुए कहा—सम्भव है, आप मुझे अत्यन्त लोभी, कमीना और स्वार्थी समझें; लेकिन यथार्थ यह है कि इस विवाह से मेरी वह अभिलाषा न पूरी हुई, जो मुझे प्राणों से भी प्रिय थी। मैं विवाह पर रजामन्द न था, अपने पैरों में बेड़ियाँ न डालना चाहता था; किन्तु जब महाशय नवीन बहुत पीछे पड़ गये और उनकी बातों से मुझे यह आशा हुई कि वह सब प्रकार से मेरी सहायता करने को तैयार हैं, तब मैं राजी हो गया; पर विवाह होने के बाद उन्होंने मेरी बात भी न पूछी। मुझे एक पत्र भी न लिखा कि कब तक वह मुझे विलायत भेजने का प्रबन्ध कर सकेंगे। हालांकि मैंने अपनी इच्छा उन पर पहले ही प्रकट कर दी थी; पर उन्होंने मुझे निराश करना ही उचित समझा। उनकी इस अकृपा ने मेरे सारे मनसूबे धूल में मिला दिये। मेरे लिए अब इसके सिवा और क्या रह गया है कि एल-एल. बी. पास कर लूँ और कचहरी में जूती फटफटाता फिरूँ।

मैंने पूछा—तो आखिर तुम नवीनजी से क्या चाहते हो ? लेन-देन में तो उन्होंने शिकायत का कोई अवसर नहीं दिया। तुम्हें विलायत भेजने का खर्च तो शायद उनके काबू से बाहर हो।

युवक ने सिर झुकाकर कहा—तो यह उन्हें पहले ही मुझसे कह देना चाहिए था। फिर मैं विवाह ही क्यों करता। उन्होंने चाहे कितना ही खर्च कर डाला हो; पर इससे मेरा क्या उपकार हुआ ? दोनों तरफ से दस-बारह हजार रुपये खाक में मिल गये और उनके साथ मेरी अभिलाषाएँ खाक में मिल गयीं। पिताजी पर तो कई हजार का ऋण हो गया है। वह अब मुझे इंग्लैंड नहीं भेज सकते। क्या पूज्य नवीन जी चाहते तो मुझे इंग्लैंड न भेज देते ? उनके लिए दस-पाँच हजार की कोई हक़ीकत नहीं।

मैं सन्नाटे में आ गया। मेरे मुँह से अनायास निकल गया—छिः ! वाह री दुनिया ! और वाह रे हिन्दू-समाज ! तेरे यहाँ ऐसे-ऐसे स्वार्थ के दास पड़े हुए हैं, जो एक अबला का जीवन संकट में डालकर उसके पिता पर ऐसे अत्याचार पूर्ण दबाव डालकर ऊँचा पद प्राप्त करना चाहते हैं। विद्यार्जन के लिए विदेश जाना बुरा नहीं। ईश्वर सामर्थ्य दे तो शौक से जाओ; किन्तु पत्नी का परित्याग करके ससुर पर इसका भार रखना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। तारीफ की बात तो तब थी कि तुम अपने पुरुषार्थ से जाते। इस तरह किसी की गर्दन पर सवार होकर, अपना आत्म-सम्मान बेचकर गये तो क्या गये। इस पामर की दृष्टि में कुसुम का कोई मूल्य ही नहीं। वह केवल उसकी स्वार्थ-सिद्धि का साधनमात्र है। ऐसे नीच प्रकृति के आदमी से कुछ तर्क करना व्यर्थ था। परिस्थिति ने हमारी चुटिया उसके हाथ में रखी थी और हमें उसके चरणों पर सिर झुकाने के सिवाय और कोई उपाय न था।

दूसरी गाड़ी से मैं आगरे जा पहुँचा और नवीनजी से यह वृत्तांत कहा। उन बेचारे को क्या मालूम था कि यहाँ सारी जिम्मेदारी उन्हीं के सिर डाल दी गयी है। यद्यपि इस मन्दी ने उनकी वकालत भी ठण्डी कर रखी है और वह दस-पाँच हजार का खर्च सुगमता से नहीं उठा सकते लेकिन इस युवक ने उनसे इसका संकेत भी किया होता, तो वह अवश्य कोई-न-कोई उपाय करते। कुसुम के सिवा दूसरा उनका कौन बैठा हुआ है ? उन बेचारे को तो इस बात का ज्ञान ही न था। अतएव मैंने योंही उनसे यह समाचार कहा, तो वह बोल उठे—छिः ! इस जरा-सी बात को इस भले आदमी ने इतना तूल दे दिया। आप आज ही उसे लिख दें कि वह जिस वक्त जहाँ पढ़ने के लिए जाना चाहे, शौक से जा सकता है।

मैं उसका सारा भार स्वीकार करता हूँ। साल-भर तक निर्दयी ने कुसुम को रुला-रुलाकर मार डाला।

घर में इसकी चर्चा हुई। कुसुम ने भी माँ से सुना। मालूम हुआ, एक हजार का चेक उसके पति के नाम भेजा जा रहा है; पर इस तरह, जैसे किसी संकट का मोचन करने के लिए अनुष्ठान कया जा रहा हो।

कुसुम ने भृकुटी सिकोड़कर कहा—अम्माँ, दादा से कह दो, कहीं रुपये भेजने की जरूरत नहीं।

माता ने विस्मित होकर बालिका की ओर देखा—कैसे रुपये ? अच्छा ! वह ! क्यों इसमें क्या हर्ज है ? लड़के का मन है, तो विलायत जाकर पढ़े। हम क्यों रोकने लगे ? यों भी उसी का है, वो भी उसी का नाम है। हमें कौन छाती पर लादकर ले जाना है ?

'नहीं आप दादा से कह दीजिए, एक पाई न भेजें।'

'आखिर इसमें क्या बुराई है ?'

'इसीलिए कि यह उसी तरह की डाकाजनी है, जैसा बदमाश लोग किया करते हैं। किसी आदमी को पकड़कर ले गये और उसके घरवालों से उसके मुक्तिधन के तौर पर अच्छी रकम ऐंठ ली।'

माता ने तिरस्कार की आँखों से देखा।

'कैसी बातें करती हो बेटी ? इतने दिनों के बाद तो उसके देवता सीधे हुए हैं और तुम उन्हें फिर चिढ़ाये देती हो।'

कुसुम ने झल्लाकर कहा—ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा। जो आदमी इतना स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच है, उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मैं कहे देती हूँ, वहाँ रुपये गये; तो मैं जहर खा लूँगी। इसे दिल्लगी न समझना। मैं ऐसे आदमी का मुँह भी नहीं देखना चाहती। दादा से कह देना और अगर तुम्हें डर लगता हो तो मैं खुद कह दूँ ! मैंने स्वतन्त्र रहने का निश्चय कर लिया है।

माँ ने देखा, लड़की का मुखमण्डल आरक्त हो उठा है। मानो इस प्रश्न पर वह न कुछ कहना चाहती है, न सुनना।

दूसरे दिन नवीनजी ने यह हाल मुझसे कहा, तो मैं एक आत्म-विस्मृत की दशा में दौड़ा हुआ गया और कुसुम को गले लगा लिया। मैं नारियों में ऐसा ही आत्माभिमान देखना चाहता हूँ। कुसुम ने वह कर दिखाया, जो मेरे मन में था और जिसे प्रकट करने का साहस मुझमें न था।

साल-भर हो गया है, कुसुम ने पति के पास एक पत्र भी नहीं लिखा और न उसका जिक्र ही करती है। नवीनजी ने कई बार जमाई को मना लाने की इच्छा प्रकट की; पर कुसुम उसका नाम भी सुनना नहीं चाहती। उसमें स्वावलम्बन की ऐसी दृढ़ता आ गयी है कि आश्चर्य होता है। उसके मुख पर निराशा और वेदना के पीलेपन और तेज हीनता की जगह स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की लाली और तेजस्विता भासित हो गयी है।

[उर्दू कहानी, प्रथम प्रकाशन उर्दू। 'इस्मत', वर्षांक, 1932। हिन्दी रूप 'कुसुम' शीर्षक से ही मासिक पत्रिका 'चांद', अक्टूबर, 1932 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित।]

डामुल का कैदी

दस बजे रात का समय, एक विशाल भवन में एक सजा हुआ कमरा, बिजली की अँगीठी, बिजली का प्रकाश। बड़ा दिन आ गया है।

सेठ खूबचन्दजी अफसरों को डालियाँ भेजने का सामान कर रहे हैं। फलों, मिठाइयों, मेवों, खिलौनों की छोटी-छोटी पहाड़ियाँ सामने खड़ी हैं। मुनीमजी अफसरों के नाम बोलते जाते हैं। और सेठजी अपने हाथों यथासम्मान डालियाँ लगाते जाते हैं।

खूबचन्दजी एक मिल के मालिक हैं, बम्बई के बड़े ठीकेदार। एक बार नगर के मेयर भी रह चुके हैं। इस वक्त भी कई व्यापारी-सभाओं के मन्त्री और व्यापार मंडल के सभापति हैं। इस धन, यश, मान की प्राप्ति में डालियों का कितना भाग है, यह कौन कह सकता है, पर इस अवसर पर सेठजी के दस-पाँच हज़ार बिगड़ जाते थे। अगर कुछ लोग तुम्हें खुशामदी, टोड़ी, जी हुजूर कहते हैं, तो कहा करें। इससे सेठजी का क्या बिगड़ता है। सेठजी उन लोगों में नहीं हैं, जो नेकी करके दरिया में डाल दें।

पुजारीजी ने आकर कहा—सरकार, बड़ा विलम्ब हो गया। ठाकुरजी का भोग तैयार है।

अन्य धनिकों की भाँति सेठजी ने भी एक मन्दिर बनवाया था। ठाकुरजी की पूजा करने के लिए एक पुजारी नौकर रख लिया था।

पुजारी को रोष-भरी आँखों से देखकर कहा—देखते नहीं हो, क्या कर रहा हूँ ? यह भी एक काम है, खेल नहीं, तुम्हारे ठाकुरजी ही सब कुछ न दे देंगे। पेट भरने पर ही पूजा सूझती है। घंटे-आध-घंटे की देर हो जाने से ठाकुरजी भूखों न मर जायँगे।

पुजारीजी अपना-सा मुँह लेकर चले गये और सेठजी फिर डालियाँ सजाने में मसरूफ हो गये।

सेठजी के जीवन का मुख्य काम धन कमाना था और उसके साधनों की रक्षा करना उनका मुख्य कर्तव्य। उनके सारे व्यवहार इसी सिद्धान्त के अधीन थे। मित्रों से इसलिए मिलते थे कि उनसे धनोपार्जन में मदद मिलेगी। मनोरंजन भी करते थे, तो व्यापार की दृष्टि से; दान बहुत देते थे, पर उसमें भी यही लक्ष्य सामने रहता था। सन्ध्या और वन्दना उनके लिए पुरानी लकीर थीं, जिसे पीटते रहने में स्वार्थ सिद्ध होता था, मानो कोई बेगार हो। सब कामों से छुट्टी मिली, तो जाकर ठाकुरद्वारे में खड़े हो गये, चरणामृत लिया और चले आये।

एक घंटे के बाद पुजारीजी फिर सिर पर सवार हो गये। खूबचन्द उनका मुँह देखते ही झुँझला उठे। जिस पूजा में तत्काल फायदा होता था, उसमें कोई बार-बार विघ्न डाले तो क्यों न बुरा लगे ? बोले—कह दिया, अभी मुझे फुरसत नहीं है। खोपड़ी पर सवार हो गये! मैं पूजा का गुलाम नहीं हूँ। जब घर में पैसे होते हैं, तभी ठाकुरजी की भी पूजा होती है। घर में पैसे न होंगे, तो ठाकुर जी भी पूछने न आयेंगे।

पुजारी हताश होकर चला गया और सेठजी फिर अपने काम में लगे।

सहसा उनके मित्र केशवरामजी पधारे। सेठजी उठकर उनके गले से लिपट गये और बोले—किधर से ? मैं तो अभी तुम्हें बुलाने वाला था।

केशवराम ने मुस्कराकर कहा—इतनी रात गये तक डालियाँ ही लग रही हैं ? अब तो समेटो। कल का सारा दिन पड़ा है, लगा लेना। तुम कैसे इतना काम करते हो, मुझे तो

यही आश्चर्य होता है। आज क्या प्रोग्राम था, याद है ?

सेठजी ने गर्दन उठाकर स्मरण करने की चेष्टा करके कहा—क्या कोई विशेष प्रोग्राम था ? मुझे तो याद नहीं आता (एकाएक स्मृति जाग उठती है) अच्छा, वह बात! हाँ, याद आ गया। अभी देर तो नहीं हुई। इस झमेले में ऐसा भूला कि जरा भी याद न रही।

'तो चलो फिर। मैंने तो समझा था, तुम वहाँ पहुँच गये होगे।'

'मरे न जाने से लैला नाराज तो नहीं हुई ?'

'यह तो वहाँ चलने पर मालूम होगा।'

'तुम मेरी ओर से क्षमा माँग लेना।'

'मुझे क्या ग़रज पड़ी है, जो आपकी ओर से क्षमा माँगूँ ! वह तो त्योरियाँ चढ़ाये बैठी थी। कहने लगी—उन्हें मेरी परवाह नहीं तो मुझे भी उनकी परवाह नहीं। मुझे आने ही न देती थी। मैंने शांत तो कर दिया, लेकिन कुछ बहाना करना पड़ेगा।'

खूबचन्द ने आँखें मारकर कहा—मैं कह दूँगा, गवर्नर साहब ने जरूरी काम से बुला भेजा था।

'जी नहीं, यह बहाना वहाँ न चलेगा। कहेंगी—तुम मुझसे पूछकर क्यों नहीं गये। वह अपने सामने गवर्नर को समझती ही क्या है। रूप और यौवन बड़ी चीज है भाई साहब ! आप नहीं जानते।'

'तो फिर तुम्हीं बताओ, कौन-सा बहाना करूँ ?'

'अजी, बीस बहाने हैं। कहना, दोपहर से 106 डिग्री का ज्वर था। अभी उठा हूँ।'

दोनों मित्र हँसे और लैला का मुजरा सुनने चले।

2

सेठ खूबचन्द का स्वदेशी मिल देश के बहुत बड़े मिलों में है। जब से स्वदेशी-आन्दोलन चला है, मिल के माल की खपत दूनी हो गयी है। सेठजी ने कपड़े की दर में दो आने रुपया बढ़ा दिये हैं फिर भी बिक्री में कोई कमी नहीं है; लेकिन इधर अनाज कुछ सस्ता हो गया है, इसलिए सेठजी ने मजूरी घटाने की सूचना दे दी है। कई दिन से मजूरों के प्रतिनिधियों और सेठजी में बहस होती रही। सेठजी जौ-भर भी न दबना चाहते थे। जब उन्हें आधी मजूरी पर नये आदमी मिल सकते हैं, तब वह क्यों पुराने आदमियों को रखें। वास्तव में यह चाल पुराने आदमियों को भगाने ही के लिए चली गयी थी।

अंत में मजूरों ने यही निश्चय किया कि हड़ताल कर दी जाय।

प्रातःकाल का समय है। मिल के हाते में मजूरों की भीड़ लगी हुई है। कुछ लोग चारदीवारी पर बैठे हैं, कुछ जमीन पर; कुछ इधर-उधर मटरगश्त कर रहे हैं। मिल के द्वार पर कांस्टेबलों का पहरा है। मिल में पूरी हड़ताल है।

एक युवक को बाहर से आते देखकर सैकड़ों मजूर इधर-उधर से दौड़कर उसके चारों ओर जमा हो गये। हरेक पूछ रहा था—सेठजी ने क्या कहा ?

यह लम्बा, दुबला, साँवला युवक मजूरों का प्रतिनिधि था। उसकी आकृति में कुछ ऐसी दृढ़ता, कुछ ऐसी निष्ठा, कुछ ऐसी गंभीरता थी कि सभी मजूरों ने उसे नेता मान लिया था।

युवक के स्वर में निराशा थी, क्रोध था, आहत सम्मान का रुदन था।

'कुछ नहीं हुआ। सेठजी कुछ नहीं सुनते।'

चारों ओर से आवाजें आयीं—तो हम भी उनकी खुशामद नहीं करते।

युवक ने फिर कहा—वह मजूरी घटाने पर तुले हुए हैं, चाहे कोई काम करे या न करे। इस मिल से इस साल दस लाख का फायदा हुआ है। यह हम लोगों ही की मेहनत का फल है, लेकिन फिर भी हमारी मजूरी काटी जा रही है। धनवानों का पेट कभी नहीं भरता। हम निर्बल हैं, निस्सहाय हैं, हमारी कौन सुनेगा ? व्यापार-मण्डल उनकी ओर है, सरकार उनकी ओर है, मिल के हिस्सेदार उनकी ओर हैं, हमारा कौन है ? हमारा उद्धार तो भगवान् ही करेंगे।

एक मजूर बोला—सेठजी भी तो भगवान् के बड़े भगत हैं।

युवक ने मुस्कराकर कहा—हाँ, बहुत बड़े भक्त हैं; यहाँ किसी ठाकुरद्वारे में उनके ठाकुरद्वारे की-सी सजावट नहीं है, कहीं इतना विधिपूर्वक भोग नहीं लगता, कहीं इतने उत्सव नहीं होते, कहीं ऐसी झाँकी नहीं बनती। उसी भक्ति का प्रताप है कि आज नगर में इतना सम्मान है, औरों का माल पड़ा सड़ता है, इनका माल गोदाम में नहीं जाने पाता। वही भक्तराज हमारी मजूरी घटा रहे हैं। मिल में अगर घाटा हो तो हम आधी मजूरी पर काम करेंगे, लेकिन जब लाखों का लाभ हो रहा है तो किस नीति से हमारी मजूरी घटायी जा रही है। हम अन्याय नहीं सह सकते। प्रण कर लो कि किसी बाहरी आदमी को मिल में घुसने न देंगे, चाहे वह अपने साथ फौज लेकर ही क्यों न आये। कुछ परवाह नहीं, हमारे ऊपर लाठियाँ बरसें, गोलियाँ चल....

एक तरफ से आवाज आयी—सेठजी !

सभी पीछे फिर-फिरकर सेठजी की तरफ देखने लगे। सभी के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। कितने ही तो डरकर कांस्टेबलों से मिल के अन्दर जाने के लिए चिरौरी करने लगे, कुछ लोग रुई की गाँठों की आड़ में जा छिपे। थोड़े से आदमी कुछ सहमे हुए—पर जैसे जान हथेली पर लिए—युवक के साथ खड़े रहे।

सेठजी ने मोटर से उतरते हुए कांस्टेबलों को बुलाकर कहा—इन आदमियों को मारकर बाहर निकाल दो, इसी दम।

मजूरों पर डण्डे पड़ने लगे। दस-पाँच तो गिर पड़े। बाकी अपनी-अपनी जान लेकर भागे। वह युवक दो आदमियों के साथ अभी तक डटा खड़ा था।

प्रभुता असहिष्णु होती है। सेठजी खुद आ जायँ, फिर भी ये लोग सामने खड़े रहें, यह तो खुला हुआ विद्रोह है। यह बेअदबी कौन सह सकता है। जरा इस लौंडे को देखो। देह पर साबित कपड़े भी नहीं हैं; मगर जमा खड़ा है, मानो मैं कुछ हूँ ही नहीं। समझता होगा, यह मेरा कर ही क्या सकते हैं।

सेठजी ने रिवाल्वर निकाल लिया और इस समूह के निकट आकर उसे जाने का हुक्म दिया; पर वह समूह अचल खड़ा था। सेठजी उन्मत्त हो गये। यह हेकड़ी ! तुरन्त हेड कांस्टेबल को बुलाकर हुक्म दिया—इन आदमियों को गिरफ्तार कर लो।

कांस्टेबलों ने तीनों आदमियों को रस्सियों से जकड़ दिया और उन्हें फाटक की ओर ले चले। इनका गिरफ्तार होना था कि एक हजार आदमियों का दल रेला मारकर मिल से

निकल आया और कैदियों की तरफ लपका। कांस्टेबलों ने देखा, बन्दूक चलाने पर भी जान न बचेगी, तो मुलजिमों को छोड़ दिया और भाग खड़े हुए। सेठजी को ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन सारे आदमियों को तोप पर उड़वा दें। क्रोध में आत्म-रक्षा की भी उन्हें परवाह न थी। कैदियों को सिपाहियों से छुड़ाकर वह जन समूह सेठजी की ओर आ रहा था। सेठजी ने समझा—सब-के-सब मेरी जान लेने आ रहे हैं। अच्छा! यह लौंडा गोपी सभी के आगे है ! यही यहाँ भी इनका नेता बना हुआ है ! मेरे सामने कैसा भीगी बिल्ली बना हुआ था; पर यहाँ सबके आगे-आगे आ रहा है।

सेठजी अब भी समझौता कर सकते थे; पर यों दबकर विद्रोहियों से दान माँगना उन्हें असह्य था।

इतने में क्या देखते हैं कि वह बढ़ता हुआ समूह बीच ही में रुक गया। युवक ने उन आदमियों से कुछ सलाह की और तब अकेला सेठजी की तरफ चला। सेठजी ने मन में कहा—शायद मुझसे प्राण-दान की शर्तें तय करने आ रहा है। सभी ने आपस में यही सलाह की है। जरा देखो, कितने निश्शंक भाव से चला आता है, जैसे कोई विजयी सेनापति हो। ये कांस्टेबल कैसे दुम दबाकर भाग खड़े हुए; लेकिन तुम्हें तो नहीं छोड़ता बचा, जो कुछ होगा, देखा जायगा। जब तक मेरे पास यह रिवाल्वर है, तुम मेरा क्या कर सकते हो। तुम्हारे सामने तो घुटना न टेकूँगा ?

युवक समीप आ गया और कुछ बोलना ही चाहता था कि सेठजी ने रिवाल्वर निकालकर फायर कर दिया। युवक भूमि पर गिर पड़ा और हाथ-पाँव फेंकने लगा।

उसके गिरते ही मजूरों में उत्तेजना फैल गयी। अभी तक उनमें हिंसा-भाव न था। वे केवल सेठजी को यह दिखा देना चाहते थे कि तुम हमारी मजूरी काट कर शान्त नहीं बैठ सकते; किन्तु हिंसा ने हिंसा को उद्दीप्त कर दिया। सेठजी ने देखा, प्राण संकट में हैं और समतल भूमि पर रिवाल्वर से भी देर तक प्राणरक्षा नहीं कर सकते; पर भागने का कहीं स्थान न था ! जब कुछ न सूझा, तो वह रुई के गाँठ पर चढ़ गये और रिवाल्वर दिखा-दिखाकर नीचे वालों को ऊपर चढ़ने से रोकने लगे। नीचे पाँच-छः सौ आदमियों का घेरा था। ऊपर सेठजी अकेले रिवाल्वर लिए खड़े थे। कहीं से कोई मदद नहीं आ रही है और प्रतिक्षण प्राणों की आशा क्षीण होती जा रही है। कांस्टेबलों ने भी अफसरों को यहाँ की परिस्थिति नहीं बतलायी; नहीं तो क्या अब तक कोई न आता ? केवल पाँच गोलियों से कब तक जान बचेगी ? एक क्षण में ये सब समाप्त हो जायँगी। भूल हुई, मुझे बन्दूक और कारतूस लेकर आना चाहिए था। फिर देखता इनकी बहादुरी। एक-एक को भूनकर रख देता; मगर क्या जानता था कि यहाँ इतनी भयंकर परिस्थिति आ खड़ी होगी।

नीचे के एक आदमी ने कहा—लगा दो गाँठों में आग। निकालो तो एक माचिस। रुई से धन कमाया है, रुई की चिता पर जले।

तुरन्त एक आदमी ने जेब से दियासलाई निकाली और आग लगाना ही चाहता था कि सहसा वही जख्मी युवक पीछे से आकर सामने हो गया। उसके पाँव में पट्टी बँधी हुई थी, फिर भी रक्त बह रहा था। उसका मुख पीला पड़ गया था और उसके तनाव से मालूम होता था कि युवक को असह्य वेदना हो रही है। उसे देखते ही लोगों ने चारों तरफ से आकर घेर दिया। उस हिंसा के उन्माद में भी अपने नेता को जीता-जागता देखकर उनके

हर्ष की सीमा न रही। जयघोष से आकाश गूँज उठा—'गोपीनाथ की जय।'

जख्मी गोपीनाथ ने हाथ उठाकर समूह को शान्त हो जाने का संकेत करके कहा—भाइयो, मैं तुमसे एक शब्द कहने आया हूँ। कह नहीं सकता, बचूँगा या नहीं। सम्भव है, तुमसे यह मेरा अन्तिम निवेदन हो। तुम क्या करने जा रहे हो ? दरिद्र में नारायण का निवास है, क्या इसे मिथ्या करना चाहते हो ? धनी को अपने धन का मद हो सकता है। तुम्हें किस बात का अभिमान है ? तुम्हारे झोपड़ों में क्रोध और अहंकार के लिए कहाँ स्थान है ? मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, सब लोग यहाँ से हट जाओ। अगर तुम्हें मुझसे कुछ स्नेह है, अगर मैंने तुम्हारी कुछ सेवा की है, तो अपने घर जाओ और सेठजी को घर जाने दो।

चारों तरफ से आपत्तिजनक आवाजें आने लगीं; लेकिन गोपीनाथ का विरोध करने का साहस किसी में न हआ। धीरे-धीरे लोग यहाँ से हट गये। मैदान साफ हो गया, तो गोपीनाथ ने विनम्र भाव से सेठजी से कहा—सरकार, अब आप चले जायँ। मैं जानता हूँ, आपने मुझे धोखे से मारा। मैं केवल यही कहने आपके पास आ रहा था, जो अब कहा रहा हूँ। मेरा दुर्भाग्य था कि आपको भ्रम हुआ। ईश्वर की यही इच्छा थी।

सेठजी को गोपीनाथ पर कुछ श्रद्धा होने लगी है। नीचे उतरने में कुछ शंका अवश्य है; पर ऊपर भी तो प्राण बचने की कोई आशा नहीं है। वह इधर-उधर सशंक नेत्रों से ताकते हुए उतरते हैं। जन-समूह कुछ दस गज के अन्तर पर खड़ा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य की आँखों में विद्रोह और हिंसा भरी हुई है। कुछ लोग दबी जबान से—पर सेठजी को सुनाकर—अशिष्ट आलोचनाएँ कर रहे हैं, पर किसी में इतना साहस नहीं है कि उनके सामने आ सके। उस मरते हुए युवक के आदेश में इतनी शक्ति है।

सेठजी मोटर पर बैठकर चले ही थे कि गोपी जमीन पर गिर पड़ा।

3

सेठजी की मोटर जितनी तेजी से जा रही थी, उतनी ही तेजी से उनकी आँखों के सामने आहत गोपी का छायाचित्र भी दौड़ रहा था। भाँति-भाँति की कल्पनाएँ मन में आने लगीं। अपराधी भावनाएँ चित्त को आन्दोलित करने लगीं। अगर गोपी उनका शत्रु था, तो उसने क्यों उनकी जान बचायी—ऐसी दशा में, जब वह स्वयं मृत्यु के पंजे में था? इसका उनके पास कोई जवाब न था। निरपराध गोपी, जैसे हाथ बाँधे उनके सामने खड़ा कह रहा था—आपने मुझ बेगुनाह को क्यों मारा ?

भोग-लिप्सा आदमी को स्वार्थान्ध बना देती है। फिर भी सेठजी की आत्मा अभी इतनी अभ्यस्त और कठोर न हुई थी कि एक निरपराध की हत्या करके उन्हें ग्लानि न होती। वह सौ-सौ युक्तियों से मन को समझाते थे; लेकिन न्याय बुद्धि किसी युक्ति को स्वीकार न करती थी। जैसे यह धारणा उनके न्याय-द्वार पर बैठी सत्याग्रह कर रही थी और वरदान लेकर ही टलेगी। वह घर पहुँचे तो इतने दुखी और हताश थे, मानो हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हों !

प्रमीला ने घबड़ायी हुई आवाज में पूछा—हड़ताल का क्या हुआ ? अभी हो रही है या बन्द हो गयी ? मजूरों ने दंगा-फसाद तो नहीं किया ? मैं तो बहुत डर रही थी।

खूबचन्द ने आराम-कुर्सी पर लेटकर एक लम्बी साँस ली और बोले—कुछ न पूछो, किसी तरह जान बच गयी; बस यही समझ लो। पुलिस के आदमी तो भाग खड़े हुए, मुझे लोगों ने घेर लिया। बारे किसी तरह जान लेकर भागा। जब मैं चारों तरफ से घिर गया, तो क्या करता, मैंने भी रिवाल्वर छोड़ दिया।

प्रमीला भयभीत होकर बोली—कोई जख्मी तो नहीं हुआ ?

'वही गोपीनाथ जख्मी हुआ; जो मजूरों की तरफ से मेरे पास आया करता था। उसका गिरना था कि एक हजार आदमियों ने मुझे घेर लिया। मैं दौड़कर रुई की गाँठों पर चढ़ गया। जान बचने की कोई आशा न थी। मजूर गाँठों में आग लगाने जा रहे थे।'

प्रमीला काँप उठी।

'सहसा वही जख्मी आदमी उठकर मजूरों के सामने आया और उन्हें समझाकर मेरी प्राण-रक्षा की। वह न आ जाता, तो मैं किसी तरह जीता न बचता।'

'ईश्वर ने बड़ी कुशल की ! इसीलिए मैं मना कर रही थी कि अकेले न जाओ। उस आदमी को लोग अस्पताल ले गये होंगे ?'

सेठजी ने शोक-भरे स्वर में कहा—मुझे भय है कि वह मर गया होगा। जब मैं मोटर पर बैठा, तो मैंने देखा, वह गिर पड़ा और बहुत-से आदमी उसे घेरकर खड़े हो गये। न जाने उसकी क्या दशा हुई।

प्रमीला उन देवियों में थी जिनकी नसों में रक्त की जगह श्रद्धा बहती है। स्नान-पूजा, तप और व्रत यही उसके जीवन के आधार थे। सुख में, दुःख में आराम में, उपासना ही उसकी कवच थी। इस समय भी उस पर संकट आ पड़ा। ईश्वर के सिवा कौन उसका उद्धार करेगा ! वह वहीं खड़ी द्वार की ओर ताक रही थी और उसका धर्म-निष्ठ मन ईश्वर के चरणों में गिरकर क्षमा की भिक्षा माँग रहा था।

सेठजी बोले—यह मजूर उस जन्म का कोई महान् पुरुष था। नहीं तो जिस आदमी ने उसे मारा, उसी की प्राण-रक्षा के लिए क्यों इतनी तपस्या करता !

प्रमीला श्रद्धा-भाव से बोली—भगवान् की प्रेरणा और क्या ! भगवान् की दया होती है, तभी हमारे मन में सद्विचार भी आते हैं।

सेठजी ने जिज्ञासा की—तो फिर बुरे विचार भी ईश्वर की प्रेरणा ही से आते होंगे ?

प्रमीला तत्परता के साथ बोली—ईश्वर आनन्द-स्वरूप हैं। दीपक से कभी अन्धकार नहीं निकल सकता।

सेठजी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाहर शोर सुनकर चौंक पड़े। दोनों ने सड़क की तरफ की खिड़की खोलकर देखा, तो हजारों आदमी काली झण्डियाँ लिए दाहिनी तरफ से आते दिखाई दिये। झण्डियों के बाद एक अर्थी थी, सिर-ही-सिर दिखाई देते थे। यह गोपीनाथ के जनाजे का जुलूस था। सेठजी तो मोटर पर बैठकर मिल से घर की ओर चले, उधर मजूरों ने दूसरी मिलों में इस हत्याकाण्ड की सूचना भेज दी। दम-के-दम में सारे शहर में यह खबर बिजली की तरह दौड़ गयी और कई मिलों में हड़ताल हो गयी। नगर में सनसनी फैल गयी। किसी भीषण उपद्रव के भय से लोगों ने दूकानें बन्द कर दीं। यह जुलूस नगर के मुख्य स्थानों का चक्कर लगाता हुआ सेठ खूबचन्द के द्वार पर आया है और गोपीनाथ के खून का बदला लेने पर तुला हुआ है। उधर पुलिस-अधिकारियों ने

सेठजी की रक्षा करने का निश्चय कर लिया है, चाहे खून की नदी ही क्यों न बह जाय। जुलूस के पीछे सशस्त्र पुलिस के दो सौ जवान डबल मार्च से उपद्रवकारियों का दमन करने चले आ रहे हैं।

सेठजी अभी अपने कर्तव्य का निश्चय न कर पाये थे कि विद्रोहियों ने कोठी के दफ्तर में घुसकर लेन-देन के बहीखातों को जलाना और तिजोरियों को तोड़ना शुरू कर दिया। मुनीम और अन्य कर्मचारी तथा चौकीदार सब-के-सब अपनी-अपनी जान लेकर भागे। उसी वक्त बायीं ओर से पुलिस की दौड़ आ धमकी और पुलिस-कमिश्नर ने विद्रोहियों को पाँच मिनट के अन्दर यहाँ से भाग जाने का हुक्म दे दिया।

समूह ने एक स्वर से पुकारा—गोपीनाथ की जय !

एक घण्टा पहले अगर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई होती, तो सेठजी ने बड़ी निश्चन्तता से उपद्रवकारियों को पुलिस की गोलियों का निशाना बनने दिया होता; लेकिन गोपीनाथ के उस देवोपम सौजन्य और आत्म-समर्पण ने जैसे उनके मनःस्थित विकारों का शमन कर दिया था और अब साधारण औषधि भी उन पर रामबाण का-सा चमत्कार दिखाती थी।

उन्होंने प्रमीला से कहा—मैं जाकर सबके सामने अपना अपराध स्वीकार किये लेता हूँ। नहीं तो मेरे पीछे न-जाने कितने घर मिट जायँगे।

प्रमीला ने काँपते हुए स्वर में कहा—यहीं खिड़की से आदमियों को क्यों नहीं समझा देते ? वे जितना मजूरी बढ़ाने को कहते हों; बढ़ा दो।

'इस समय तो उन्हें मेरे रक्त की प्यास है, मजूरी बढ़ाने का उन पर कोई असर न होगा।'

सजल नेत्रों से देखकर प्रमीला बोली—तब तो तुम्हारे ऊपर हत्या का अभियोग चल जायगा।

सेठजी ने धीरता से कहा—भगवान् की यही इच्छा है, तो हम क्या कर सकते हैं ? एक आदमी का जीवन इतना मूल्यवान् नहीं है कि उसके लिए असंख्य जानें ली जायँ।

प्रमीला को मालूम हुआ, साक्षात् भगवान् सामने खड़े हैं। वह पति के गले से लिपट कर बोली—मुझे क्या कह जाते हो ?

सेठजी ने उसे गले लगाते हुए कहा—भगवान् तुम्हारी रक्षा करेंगे। उनके मुख से और कोई शब्द न निकला। प्रमीला की हिचकियाँ बँधी हुई थीं। उसे रोता छोड़कर सेठजी नीचे उतरे।

वह सारी सम्पत्ति जिसके लिए उन्होंने जो कुछ करना चाहिए, वह भी किया, जो कुछ न करना चाहिए, वह भी किया, जिसके लिए खुशामद की, छल किया, अन्याय किये, जिसे वह अपने जीवन-तप का वरदान समझते थे, आज कदाचित् सदा के लिए उनके हाथ से निकली जाती थी; पर उन्हें जरा भी मोह न था, जरा भी खेद न था। वह जानते थे, उन्हें डामुल की सजा होगी; यह सारा कारोबार चौपट हो जायगा, यह सम्पत्ति धूल में मिल जायगी, कौन जाने प्रमीला से फिर भेंट होगी या नहीं, कौन मरेगा, कौन जियेगा, कौन जानता है, मानो वह स्वेच्छा से यमदूतों का आह्वान कर रहे हों। और वह वेदनामय विवशता, जो हमें मृत्यु के समय दबा लेती है, उन्हें भी दबाये हुए थी।

प्रमीला उनके साथ-ही-साथ नीचे तक आयी। वह उनके साथ उस समय तक रहना चाहती थी, जब तक जनता उसे पृथक् न कर दे; लेकिन सेठजी उसे छोड़कर जल्दी से बाहर निकल गये और वह खड़ी रोती रह गयी।

4

वनि पाते ही विद्रोह का पिशाच शान्त हो गया। सेठजी एक सप्ताह हवालात में रहे। फिर उन पर अभियोग चलने लगा। बम्बई के सबसे नामी बैरिस्टर गोपी की तरफ से पैरवी कर रहे थे। मजूरों ने चन्दे से अपार धन एकत्र किया था और यहाँ तक तुले हुए थे कि अगर अदालत से सेठजी बरी भी हो जायँ, तो उनकी हत्या कर दी जाय। नित्य इजलास में कई हजार कुली जमा रहते। अभियोग सिद्ध ही था। मुलजिम ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। उनके वकीलों ने उनके अपराध को हलका करने की दलीलें पेश कीं। फैसला यह हुआ कि चौदह साल का कालापानी हो गया।

सेठजी के जाते ही मानो लक्ष्मी रूठ गयीं; जैसे उस विशालकाय वैभव की आत्मा निकल गयी हो। साल-भर के अन्दर उस वैभव का कंकाल-मात्र रह गया। मिल तो पहले ही बन्द हो चुकी थी। लेना-देना चुकाने पर कुछ न बचा। यहाँ तक कि रहने का घर भी हाथ से निकल गया। प्रमीला के पास लाखों के आभूषण थे। वह चाहती, तो उन्हें सुरक्षित रख सकती थी; पर त्याग की धुन में उन्हें भी निकाल फेंका। सातवें महीने में जब उसके पुत्र का जन्म हुआ, तो वह छोटे-से किराये के घर में थी। पुत्र-रत्न पाकर अपनी सारी विपत्ति भूल गयी। कुछ दुःख था तो यही कि पतिदेव होते, तो इस समय कितने आनंदित होते।

प्रमीला ने किन कष्टों को झेलते हुए पुत्र का पालन किया; इसकी कथा लम्बी है। सब कुछ सहा, पर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। जिस तत्परता से उसने देने चुकाये थे, उससे लोगों की उस पर भक्ति हो गयी थी। कई सज्जन तो उसे कुछ मासिक सहायता देने पर तैयार थे; लेकिन प्रमीला ने किसी का एहसान न लिया। भले घरों की महिलाओं से उसका परिचय था ही। वह घरों में स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करके गुजर-भर को कमा लेती थी। जब तक बच्चा दूध पीता था, उसे अपने काम में बड़ी कठिनाई पड़ी; लेकिन दूध छुड़ा देने के बाद वह बच्चे को दाई को सौंपकर आप काम करने चली जाती थी। दिन-भर के कठिन परिश्रम के बाद जब वह सन्ध्या समय घर आकर बालक को गोद में उठा लेती, तो उसका मन हर्ष से उन्मत्त होकर पति के पास उड़ जाता जो न-जाने किस दशा में काले कोसों पर पड़ा था। उसे अपनी सम्पत्ति के लुट जाने का लेशमात्र भी दुःख नहीं है। उसे केवल इतनी ही लालसा है कि स्वामी कुशल से लौट आवें और बालक को देखकर अपनी आँखें शीतल करें। फिर तो वह इस दरिद्रता में भी सुखी और संतुष्ट रहेगी। वह नित्य ईश्वर के चरणों में सिर झुकाकर स्वामी के लिए प्रार्थना करती है। उसे विश्वास है, ईश्वर जो कुछ करेंगे, उससे उनका कल्याण ही होगा। ईश्वर-वन्दना में वह अलौकिक धैर्य, साहस और जीवन का आभास पाती है। प्रार्थना ही अब उसकी आशाओं का आधार है।

5

पन्द्रह साल की विपत्ति के दिन आशा की छाँह में कट गये।

सन्ध्या का समय है। किशोर कृष्णचन्द्र अपनी माता के पास मन-मारे बैठा हुआ है। वह माँ-बाप दोनों में से एक को भी नहीं पड़ा।

प्रमीला ने पूछा—क्यों बेटा, तुम्हारी परीक्षा तो समाप्त हो गयी ?

बालक ने गिरे हुए मन से जवाब दिया—हाँ अम्माँ, हो गयी; लेकिन मेरे परचे अच्छे नहीं हुए। मेरा मन पढ़ने में नहीं लगता है।

यह कहते-कहते उसकी आँखें डबडबा आयीं। प्रमीला ने स्नेह-भरे स्वर में कहा—यह तो अच्छी बात नहीं है बेटा, तुम्हें पढ़ने में मन लगाना चाहिए।

बालक सजल नेत्रों से माता को देखता हुआ बोला—मुझे बार-बार पिताजी की याद आती रहती है। वह तो अब बहुत बूढ़े हो गये होंगे। मैं सोचा करता हूँ कि वह आयेंगे, तो तन-मन से उनकी सेवा करूँगा। इतना बड़ा उत्सर्ग किसने किया होगा अम्माँ ? उस पर लोग उन्हें निर्दयी कहते हैं। मैंने गोपीनाथ के बाल-बच्चों का पता लगा लिया अम्माँ ! उनकी घरवाली है, माता है और एक लड़की है, जो मुझसे दो साल बड़ी है। माँ-बेटी दोनों उसी मिल में काम करती हैं। दादी बहुत बूढ़ी हो गयी है।

प्रमीला ने विस्मित होकर कहा—तुझे उनका पता कैसे चला बेटा ?

कृष्णचन्द्र प्रसन्नचित्त होकर बोला—मैं आज उस मिल में चला गया था। मैं उस स्थान को देखना चाहता था, जहाँ मजूरों ने पिताजी को घेरा था और वह स्थान भी, जहाँ गोपीनाथ गोली खाकर गिरा था; पर उन दोनों में एक स्थान भी न रहा। वहाँ इमारतें बन गयी हैं। मिल का काम बड़े जोर से चल रहा है। मुझे देखते ही बहुत से आदमियों ने मुझे घेर लिया। सब यही कहते थे कि तुम तो भैया गोपीनाथ का रूप धर कर आये हो। मजूरों ने वहाँ गोपीनाथ की एक तस्वीर लटका रखी है। उसे देखकर चकित हो गया अम्माँ, जैसे मेरी ही तस्वीर हो, केवल मूँछों का अन्तर है। जब मैंने गोपी की स्त्री के बारे में पूछा, तो एक आदमी दौड़कर उसकी स्त्री को बुला लाया। वह मुझे देखते ही रोने लगी। और न-जाने क्यों मुझे भी रोना आ गया। बेचारी स्त्रियाँ बड़े कष्ट में हैं। मुझे तो उनके ऊपर ऐसी दया आती है कि उनकी कुछ मदद करूँ।

प्रमीला को शंका हुई, लड़का इन झगड़ों में पड़कर पढ़ना न छोड़ बैठे। बोली—अभी तुम उनकी क्या मदद कर सकते हो बेटा ? धन होता तो कहती, दस-पाँच रुपये महीना दे दिया करो, लेकिन घर का हाल तो तुम जानते ही हो। अभी मन लगाकर पढ़ो। जब तुम्हारे पिताजी आ जायँ, तो जो इच्छा हो वह करना।

कृष्णचन्द्र ने उस समय कोई जवाब न दिया; लेकिन आज से उसका नियम हो गया कि स्कूल से लौटकर एक बार गोपी के परिवार को देखने अवश्य जाता। प्रमीला उसे जेब-खर्च के लिए जो पैसे देती, उसे उन अनाथों ही पर खर्च करता। कभी कुछ फल ले लिए, कभी शाक-भाजी ले ली।

एक दिन कृष्णचन्द्र को घर आने में देर हुई, तो प्रमीला बहुत घबरायी। पता लगाती हुई विधवा के घर पर पहुँची, तो देखा—एक तंग गली में, एक सीले, सड़े हुए मकान में गोपी की स्त्री एक खाट पर पड़ी है और कृष्णचन्द्र खड़ा उसे पंखा झला रहा है। माता को देखते ही बोला—मैं अभी घर न जाऊँगा अम्माँ, देखो, काकी कितनी बीमार है। दादी को कुछ सूझता नहीं, बिन्नी खाना पका रही है। इनके पास कौन बैठे?

प्रमीला ने खिन्न होकर कहा—अब तो अँधेरा हो गया, तुम यहाँ कब तक बैठे रहोगे ? अकेला घर मुझे भी तो अच्छा नहीं लगता। इस वक्त चलो। सबेरे फिर आ जाना।

रोगिणी ने प्रमीला की आज सुनकर आँखें खोल दीं और मन्द स्वर में बोली—आओ माताजी, बैठो। मैं तो भैया से कह रही थी, देर हो रही है, अब घर जाओ; पर यह गये ही नहीं। मुझ अभागिनी पर इन्हें न जाने क्यों इतनी दया आती है। अपना लड़का भी इससे अधिक मेरी सेवा न कर सकता।

चारों तरफ से दुर्गन्ध आ रही थी। उमस ऐसी थी कि दम घुटा जाता था। उस बिल में हवा किधर से आती ? पर कृष्णचन्द्र ऐसा प्रसन्न था, मानो कोई परदेशी चारों ओर से ठोकरें खाकर अपने घर में आ गया हो।

प्रमीला ने इधर-उधर निगाह दौड़ायी तो एक दीवार पर उसे एक तस्वीर दिखायी दी। उसने समीप जाकर उसे देखा तो उसकी छाती धक् से हो गयी। बेटे की ओर देखकर बोली—तूने यह चित्र कब खिंचवाया बेटा ?

कृष्णचन्द्र मुस्कराकर बोला—यह मेरा चित्र नहीं है अम्माँ, गोपीनाथ का चित्र है।

प्रमीला ने अविश्वास से कहा—चल, झूठा कहीं का।

रोगिणी ने कातर भाव से कहा—नहीं अम्माँ जी, वह मेरे आदमी ही का चित्र है। भगवान् की लीला कोई नहीं जानता; पर भैया की सूरत इतनी मिलती है कि मुझे अचरज होता है। जब मेरा ब्याह हुआ था, तब उनकी यही उम्र थी, और सूरत भी बिलकुल यही। यही हँसी थी, यही बातचीत और यही स्वभाव। क्या रहस्य है, मेरी समझ में नहीं आता। माताजी, जबसे यह आने लगे हैं, कह नहीं सकती, मेरा जीवन कितना सुखी हो गया। इस मुहल्ले में सब हमारे ही जैसे मजूर रहते हैं। उन सभों के साथ यह लड़कों की तरह रहते हैं। सब इन्हें देखकर निहाल हो जाते हैं।

प्रमीला ने कोई जवाब न दिया। उसके मन पर एक अव्यक्त शंका छायी थी, मानो उसने काई बुरा सपना देखा हो। उसके मन में बार-बार एक प्रश्न उठ रहा था, जिसकी कल्पना ही से उसके रोयें खड़े हो जाते थे।

सहसा उसने कृष्णचन्द्र का हाथ पकड़ लिया और बलपूर्वक खींचती हुई द्वार की ओर चली, मानो कोई उसे उसके हाथों से छीने लिये जाता हो।

रोगिणी ने केवल इतना कहा—माताजी, कभी-कभी भैया को मेरे पास आने दिया करना, नहीं तो मैं मर जाऊँगी।

6

पन्द्रह साल के बाद भूतपूर्व सेठ खूबचन्द अपने नगर के स्टेशन पर पहुँचे। हरा-भरा वृक्ष ठूँठ होकर रह गया था। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुईं, सिर के बाल सन, दाढ़ी जंगल की तरह बढ़ी हुई, दाँतों का कहीं नाम नहीं, कमर झुकी हुई। ठूँठ को देखकर कौन पहचान सकता है कि यह वही वृक्ष है, जो फल-फूल और पत्तियों से लदा रहता था, जिस पर पक्षी कलरव करते रहते थे।

स्टेशन के बाहर निकलकर वह सोचने लगे—कहाँ जायँ ? अपना नाम लेते लज्जा आती थी। किससे पूछें, प्रमीला जीती है या मर गयी ? अगर है तो कहाँ है ? उन्हें देख वह प्रसन्न होगी, या उनकी उपेक्षा करेगी ?

प्रमीला का पता लगाने में ज्यादा देर न लगी। खूबचन्द की कोठी अभी तक खूबचन्द की कोठी कहलाती थी। दुनिया कानून के उलटफेर क्या जाने ? अपनी कोठी के सामने पहुँचकर उन्होंने एक तम्बोली से पूछा—क्यों भैया, यही तो सेठ खूबचन्द की कोठी है।

तम्बोली ने उनकी ओर कुतूहल से देखकर कहा—खूबचन्द की जब थी; तब थी, अब तो लाला देशराज की है।

'अच्छा ! मुझे यहाँ आये बहुत दिन हो गये। सेठजी के यहाँ नौकर था। सुना, सेठजी को कालापानी हो गया था।'

'हाँ, बेचारे भलमनसी में मारे गये। चाहते तो बेदाग बच जाते। सारा घर मिट्टी में मिल गया।'

'सेठानी तो होंगी ?'

'हाँ, सेठानी क्यों नहीं हैं। उनका लड़का भी है।'

सेठजी के चेहरे पर जैसे जवानी की झलक आ गयी। जीवन का वह आनन्द और उत्साह, जो आज पन्द्रह साल से कुम्भकरण की भाँति पड़ा सो रहा था, मानो नयी स्फूर्ति पाकर उठ बैठा और अब उस दुर्बल काया में समा नहीं रहा है।

उन्होंने इस तरह तम्बोली का हाथ पकड़ लिया, जैसे घनिष्ठ परिचय हो और बोले—अच्छा, उनके लड़का भी है ! कहाँ रहती है भाई, बता दो, तो जाकर सलाम कर आऊँ। बहुत दिनों तक उनका नमक खाया है।

तम्बोली ने प्रमीला के घर का पता बता दिया। प्रमीला इसी मुहल्ले में रहती थी। सेठजी जैसे आकाश में उड़ते हुए यहाँ से आगे चले।

वह थोड़ी दूर गये थे कि ठाकुरजी का एक मन्दिर दिखायी दिया। सेठजी ने मन्दिर में जाकर प्रतिमा के चरणों पर सिर झुका दिया। उनके रोम-रोम से आस्था का स्रोत-सा बह रहा था। इस पन्द्रह वर्ष के कठिन प्रायश्चित्त में उनकी सन्तप्त आत्मा को अगर कहीं आश्रय मिला था, तो वह अशरण-शरण भगवान् के चरण थे। उन पावन चरणों के ध्यान में ही उन्हें शान्ति मिलती थी। दिन भर ऊख के कोल्हू में जुते रहने या फावड़े चलाने के बाद जब वह रात को पृथ्वी की गोद में लेटते, तो पूर्व स्मृतियाँ अपना अभिनय करने लगतीं। वह अपना विलासमय जीवन, जैसे रुदन करता हुआ उनकी आँखों के सामने आ जाता और उनके अन्तःकरण से वेदना में डूबी हुई ध्वनि निकलती—ईश्वर ! मुझ पर दया करो। इस दया याचना में उन्हें एक ऐसी अलौकिक शान्ति और स्थिरता प्राप्त होती थी, मानो बालक माता की गोद में लेटा हो।

जब उनके पास सम्पत्ति थी, विलास के साधन थे, यौवन था, स्वास्थ्य था, अधिकार था, उन्हें आत्म-चिन्तन का अवकाश न मिलता था। मन प्रवृत्ति ही की ओर दौड़ता था, अब इन स्मृतियों को खोकर दीनावस्था में उनका मन ईश्वर की ओर झुका। पानी पर जब तक कोई आवरण है, उसमें सूर्य का प्रकाश कहाँ ?

वह मन्दिर से निकलते ही थे कि एक स्त्री ने उसमें प्रवेश किया। खूबचन्द का हृदय उछल पड़ा। वह कुछ कर्तव्य-भ्रम से होकर एक स्तम्भ की आड़ में हो गये। यह प्रमीला थी।

इन पन्द्रह वर्षों में एक दिन भी ऐसा नहीं गया, जब उन्हें प्रमीला की याद न आयी

हो। वह छाया उनकी आँखों में बसी हुई थी। आज उन्हें उस छाया और इस सत्य में कितना अन्तर दिखायी दिया। छाया पर समय का क्या असर हो सकता है। उस पर सुख-दुःख का बस नहीं चलता। सत्य तो इतना अभेद्य नहीं। उस छाया में वह सदैव प्रमोद का रूप देखा करते थे—आभूषण, मुस्कान और लज्जा से रंजित। इस सत्य में उन्होंने साधक का तेजस्वी रूप देखा और अनुराग में डूबे हुए स्वर की भाँति उनका हृदय थरथरा उठा। मन में ऐसा उद्गार उठा कि इसके चरणों पर गिर पड़ूँ और कहूँ—देवी ! इस पतित का उद्धार करो, किन्तु तुरन्त विचार आया—कहीं यह देवी मेरी उपेक्षा न करे। इस दशा में उसके सामने जाते उन्हें लज्जा आयी।

कुछ दूर चलने के बाद प्रमीला एक गली में मुड़ी। सेठजी भी उसके पीछे-पीछे चले जाते थे। आगे एक कई मंजिल की हवेली थी। सेठजी ने प्रमीला को उस चाल में घुसते देखा; पर यह न देख सके कि वह किधर गयी। द्वार पर खड़े-खड़े सोचने लगे—किससे पूछूँ?

सहसा एक किशोर को भीतर से निकलते देखकर उन्होंने उसे पुकारा। युवक ने उनकी ओर चुभती हुई आँखों से देखा और तुरन्त उनके चरणों पर गिर पड़ा। सेठजी का कलेजा धक्-से हो उठा। यह तो गोपी था, केवल उम्र में उससे कम। वही रूप था, वही डील था, मानो वह कोई नया जन्म लेकर आ गया हो। उनका सारा शरीर एक विचित्र भय से सिहर उठा।

कृष्णचन्द्र ने एक क्षण में उठकर कहा—हम तो आज आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बन्दर पर जाने के लिए एक गाड़ी लेने जा रहा था। आपको तो यहाँ आने में बड़ा कष्ट हुआ होगा। आइए अन्दर आइए। मैं आपको देखते ही पहचान गया। कहीं भी देखकर पहचान जाता।

खूबचन्द उसके साथ भीतर चले तो, मगर उनका मन जैसे अतीत के काँटों में उलझ रहा था। गोपी की सूरत क्या वह कभी भूल सकते थे ? इस चेहरे को उन्होंने कितनी ही बार स्वप्न में देखा था। वह कांड उनके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी और आज एक युग बीत जाने पर भी वह उनके पथ में उसी भाँति अटल खड़ा था।

एकाएक कृष्णचन्द्र जीने के पास रुककर बोला—जाकर अम्माँ से कह आऊँ, दादा आ गये ! आपके लिए नये-नये कपड़े बने रखे हैं।

खूबचन्द ने पुत्र के मुख का इस तरह चुम्बन किया, जैसे वह शिशु हो और उसे गोद में उठा लिया। वह उसे लिये जीने पर चढ़े चले जाते थे। यह मनोल्लास की शक्ति थी।

7

तीस साल से व्याकुल पुत्र-लालसा, यह पदार्थ पाकर, जैसे उस पर न्योछावर हो जाना चाहती है। जीवन नयी-नयी अभिलाषाओं को लेकर उन्हें सम्मोहित कर रहा है। इस रत्न के लिए वह ऐसी-ऐसी कितने ही यातनाएँ सहर्ष झेल सकते थे। अपने जीवन में उन्होंने जो कुछ अनुभव के रूप में कमाया था, उसका तत्त्व वह अब कृष्णचन्द्र के मस्तिष्क में भर देना चाहते हैं। उन्हें यह अरमान नहीं है कि कृष्णचन्द्र धन का स्वामी हो, चतुर हो, यशस्वी हो; बल्कि दयावान् हो, सेवाशील हो, नम्र हो, श्रद्धालु हो। ईश्वर की दया में अब

उन्हें असीम विश्वास है, नहीं तो उन-जैसा अधम व्यक्ति क्या इस योग्य था कि इस कृपा का पात्र बनता ? और प्रमीला तो साक्षात् लक्ष्मी है।

कृष्णचन्द्र भी पिता को पाकर निहाल हो गया है। अपनी सेवाओं से मानो उनके अतीत को भुला देना चाहता है। मानो पिता की सेवा ही के लिए उसका जन्म हुआ। मानो वह पूर्वजन्म का कोई ऋण चुकाने के लिए ही संसार में आया है।

आज सेठजी को आये सातवाँ दिन है। सन्ध्या का समय है। सेठजी संध्या करने जा रहे हैं कि गोपीनाथ की लड़की बिन्नी ने आकर प्रमीला से कहा—माताजी, अम्माँ का जी अच्छा नहीं है ! भैया को बुला रही हैं।

प्रमीला ने कहा—आज तो वह न जा सकेगा। उसके पिता आ गये हैं, उनसे बातें कर रहा है।

कृष्णचन्द्र ने दूसरे कमरे में से उसकी बातें सुन लीं। तुरंत आकर बोला—नहीं अम्माँ, मैं दादा से पूछकर जरा देर के लिए चला जाऊँगा।

प्रमीला ने बिगड़कर कहा—तू कहीं जाता है तो तुझे घर की सुधि ही नहीं रहती। न जाने उन सभों ने तुझे क्या बूटी सुँघा दी है।

'मैं बहुत जल्दी चला आऊँगा अम्माँ, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ।'

'तू भी कैसा लड़का है ! वह बेचारे अकेले बैठे हुए हैं और तुझे वहाँ जाने की पड़ी हुई है।'

सेठजी ने भी ये बातें सुनीं। आकर बोले—क्या हरज है, जल्दी आने को कह रहे हैं तो जाने दो।

कृष्णचन्द्र प्रसन्नचित्त बिन्नी के साथ चला गया। एक क्षण के बाद प्रमीला ने कहा—जबसे मैंने गोपी की तस्वीर देखी है, मुझे नित्य शंका बनी रहती है, कि न-जाने भगवान् क्या करने वाले हैं। बस यही मालूम होता है।

सेठजी ने गम्भीर स्वर में कहा—मैं भी तो पहली बार देखकर चकित रह गया था। जान पड़ा, गोपीनाथ ही खड़ा है।

'गोपी की घरवाली कहती है कि इसका स्वभाव भी गोपी ही का-सा है।'

सेठजी गूढ़ मुस्कान के साथ बोले—भगवान् की लीला है कि जिसकी मैंने हत्या की, वह मेरा पुत्र हो। मुझे तो विश्वास है, गोपीनाथ ने ही इसमें अवतार लिया है।

प्रमीला ने माथे पर हाथ रखकर कहा—यही सोचकर तो कभी-कभी मुझे न-जाने कैसी-कैसी शंका होने लगती है।

सेठजी ने श्रद्धा-भरी आँखों से देखकर कहा—भगवान् हमारे परम सुहृद हैं। वह जो कुछ करते हैं, प्राणियों के कल्याण के लिए करते हैं। हम समझते हैं, हमारे साथ विधि ने अन्याय किया; पर यह हमारी मूर्खता है। विधि अबोध बालक नहीं है, जो अपने ही सिरजे हुए खिलौने को तोड़-फोड़कर आनन्दित होता है। न वह हमारा शत्रु है, जो हमारा अहित करने में सुख मानता है। वह परम दयालु है, मंगल-रूप है। यही अवलम्ब था, जिसने निर्वासन-काल में मुझे सर्वनाश से बचाया। इस आधार के बिना कह नहीं सकता, मेरी नौका कहाँ-कहाँ भटकती और उसका क्या अन्त होता।

8

बिन्नी ने कई कदम चलने के बाद कहा, मैंने तुमसे झूठ-मूठ कहा कि अम्माँ बीमार है। अम्माँ तो अब बिल्कुल अच्छी हैं। तुम कई दिन से गये नहीं, इसीलिए उन्होंने मुझसे कहा—इस बहाने से बुला लाना। तुमसे वह एक सलाह करेंगी।

कृष्णचन्द्र ने कुतूहल-भरी आँखों से देखा।

'तुमसे सलाह करेंगी ? मैं भला क्या सलाह दूँगा ? मेरे दादा आ गये; इसीलिए नहीं आ सका।'

'तुम्हारे दादा आ गये ! उन्होंने पूछा होगा, यह कौन लड़की है ?'

'नहीं, कुछ नहीं पूछा।'

'दिल में तो कहते होंगे, कैसी बेशरम लड़की है।'

'दादा ऐसे आदमी नहीं हैं। मालूम हो जाता कि यह कौन है, तो बड़े प्रेम से बातें करते। मैं तो कभी-कभी डरा करता था कि न जाने उनका मिजाज कैसा हो। सुनता था, कैदी बड़े कठोर-हृदय हुआ करते हैं, लेकिन दादा तो दया के देवता हैं।'

दोनों कुछ दूर फिर चुपचाप चले गये। तब कृष्णचन्द्र ने पूछा—तुम्हारी अम्माँ मुझसे कैसी सलाह करेंगी ?

बिन्नी का ध्यान जैसे टूट गया।

'मैं क्या जानूँ, कैसी सलाह करेंगी। मैं जानती कि तुम्हारे दादा आये हैं, तो न आती। मन में कहते होंगे, इतनी बड़ी लड़की अकेली मारी-मारी फिरती है।'

कृष्णचन्द्र कहकहा मारकर बोला—हाँ, कहते तो होंगे। मैं जाकर और जड़ दूँगा।

बिन्नी बिगड़ गयी।

'तुम क्या जड़ दोगे ? बताओ, मैं कहाँ घूमती हूँ ? तुम्हारे घर के सिवा मैं और कहाँ जाती हूँ ?'

'मेरे जी में जो आयेगा, सो कहूँगा; नहीं तो मुझे बता दो, कैसी सलाह है ?'

'तो मैंने कब कहा था कि नहीं बताऊँगी। कल हमारे मिल में फिर हड़ताल होने वाली है। हमारा मनीजर इतना निर्दयी है कि किसी को पाँच मिनिट की भी देर हो जाय, तो आधे दिन की तलब काट लेता है और दस मिनिट देर हो जाय, तो दिन-भर की मजूरी गायब। कई बार सभी ने जाकर उससे कहा-सुना; मगर मानता ही नहीं। तुम हो तो जरा-से; पर अम्माँ का न-जाने तुम्हारे ऊपर क्यों इतना विश्वास है और मजूर लोग भी तुम्हारे ऊपर बड़ा भरोसा रखते हैं। सबकी सलाह है कि तुम एक बार मनीजर के पास जाकर दो टूक बातें कर लो। हाँ या नहीं; अगर वह अपनी बात पर अड़ा रहे, तो फिर हम भी हड़ताल करेंगे।'

कृष्णचन्द्र विचारों में मग्न था। कुछ न बोला।

बिन्नी ने फिर उद्दण्ड-भाव से कहा—यह कड़ाई इसीलिए तो है कि मनीजर जानता है, हम बेबस हैं और हमारे लिए और कहीं ठिकाना नहीं है। तो हमें भी दिखा देना है कि हम चाहे भूखों मरेंगे, मगर अन्याय न सहेंगे।

कृष्णचन्द्र ने कहा—उपद्रव हो गया, तो गोलियाँ चलेंगी।

'तो चलने दो। हमारे दादा मर गये, तो क्या हम लोग जिये नहीं।'

दोनों घर पहुँचे, तो वहाँ द्वार पर बहुत-से मजदूर जमा थे और इसी विषय पर बातें हो रही थीं।

कृष्णचन्द्र को देखते ही सभों ने चिल्लाकर कहा—लो भैया आ गये।

9

वही मिल है, जहाँ सेठ खूबचन्द ने गोलियाँ चलायी थीं। आज उन्हीं का पुत्र मजदूरों का नेता बना हुआ गोलियों के सामने खड़ा है।

कृष्णचन्द्र और मैनेजर में बातें हो चुकीं। मैनेजर ने नियमों को नर्म करना स्वीकार न किया। हड़ताल की घोषणा कर दी गयी। आज हड़ताल है। मजदूर मिल के हाते में जमा हैं और मैनेजर ने मिल की रक्षा के लिए फौजी गारद बुला लिया है। मिल के मजदूर उपद्रव नहीं करना चाहते थे। हड़ताल केवल उनके असन्तोष का प्रदर्शन थी; लेकिन फौजी गारद देखकर मजदूरों को भी जोश आ गया। दोनों तरफ से तैयारी हो गयी है। एक ओर गोलियाँ हैं, दूसरी ओर ईंट-पत्थर के टुकड़े।

युवक कृष्णचन्द्र ने कहा—आप लोग तैयार हैं ? हमें मिल के अन्दर जाना है, चाहे सब मार डाले जायँ।

बहुत-सी आवाजें आयीं—सब तैयार हैं।

जिसके बाल-बच्चे हों, वह अपने घर चले जायँ।

बिन्नी पीछे खड़ी-खड़ी बोली—बाल बच्चे, सबकी रक्षा भगवान् करता है।

कई मजदूर घर लौटने का विचार कर रहे थे। इस वाक्य ने उन्हें स्थिर कर दिया। जय-जयकार हुई और एक हजार मजदूरों का दल मिल द्वार की ओर चला। फौजी गारद ने गोलियाँ चलायीं। सबसे पहले कृष्णचन्द्र फिर और कई आदमी गिर पड़े। लोगों के पाँव उखड़ने लगे।

उसी वक्त खूबचन्द नंगे सिर, नंगे पाँव हाते में पहुँचे और कृष्णचन्द्र को गिरते देखा। परिस्थिति उन्हें घर ही पर मालूम हो गयी थी। उन्होंने उन्मत्त होकर कहा—कृष्णचन्द्र की जय ! और दौड़कर आहत युवक को कंठ से लगा लिया। मजदूरों में एक अद्भुत साहस और धैर्य का संचार हुआ।

'खूबचन्द !'—इस नाम ने जादू का काम किया। इस पन्द्रह साल में 'खूबचन्द' ने शहीद का ऊँचा पद प्राप्त कर लिया था। उन्हीं का पुत्र आज मजदूरों का नेता है। धन्य है भगवान् की लीला ! सेठजी ने पुत्र की लाश जमीन पर लिटा दी और अविचलित भाव से बोले—भाइयो, यह लड़का मेरा पुत्र था। मैं पन्द्रह साल डामुल काट कर लौटा, तो भगवान् की कृपा से मुझे इसके दर्शन हुए। आज आठवाँ दिन है। आज फिर भगवान् ने उसे अपनी शरण में ले लिया। वह भी उन्हीं की कृपा थी। यह भी उन्हीं कृपा है। मैं जो मूर्ख, अज्ञानी तब था, वही अब भी हूँ। हाँ, इस बात का मुझे गर्व है कि भगवान् ने मुझे ऐसा वीर बालक दिया। अब आप लोग मुझे बधाइयाँ दें। किसे ऐसी वीर-गति मिलती है? अन्याय के सामने जो छाती खोलकर खड़ा हो जाय, वही तो सच्चा वीर है, इसलिए बोलिए कृष्णचन्द्र की जय!

एक हजार गलों से जय-ध्वनि निकली और उसी के साथ सब-के-सब हल्ला मारकर दफ्तर के अन्दर घुस गये। गारद के जवानों ने एक बन्दूक भी न चलाई, इस विलक्षण कांड

ने इन्हें स्तम्भित कर दिया था।

मैनेजर ने पिस्तौल उठा लिया और खड़ा हो गया। देखा, तो सामने सेठ खूबचन्द !

लज्जित होकर बोला—मुझे बड़ा दुःख है कि आज दैवगति से ऐसी दुर्घटना हो गयी, पर आप खुद समझ सकते हैं, क्या कर सकता था।

सेठजी ने शान्त स्वर में कहा—ईश्वर जो कुछ करता है, हमारे कल्याण के लिए करता है। अगर इस बलिदान से मजदूरों का कुछ हित हो, तो मुझे जरा भी खेद न होगा।

मैनेजर सम्मान-भरे स्वर में बोला—लेकिन इस धारणा से तो आदमी को सन्तोष नहीं होता। ज्ञानियां का भी मन चंचल हो ही जाता है।

सेठजी ने इस प्रसंग का अन्त कर देने के इरादे से कहा—तो अब आप क्या निश्चय कर रहे हैं ?

मैनेजर सकुचाता हुआ बोला—मैं इस विषय में स्वतन्त्र नहीं हूँ। स्वामियों की जो आज्ञा थी, उसका मैं पालन कर रहा था।

सेठजी कठोर स्वर में बोले—अगर आप समझते हैं कि मजदूरों के साथ अन्याय हो रहा है, तो आपका धर्म है कि उनका पक्ष लीजिए। अन्याय में सहयोग करना अन्याय करने के ही समान है।

एक तरफ तो मजदर लोग कृष्णचन्द्र के दाह-संस्कार का आयोजन कर रहे थे, दूसरी तरफ दफ्तर में मिल के डाइरेक्टर और मैनेजर सेठ खूबचन्द के साथ बैठे कोई ऐसी व्यवस्था सोच रहे थे कि मजदूरों के प्रति इस अन्याय का अन्त हो जाय।

दस बजे सेठजी ने बाहर निकलकर मजदूरों को सूचना दी—मित्रो, ईश्वर को धन्यवाद दो कि उसने तुम्हारी विनय स्वीकार कर ली। तुम्हारी हाजिरी के लिए अब नये नियम बनाये जायँगे और जुरमाने की वर्तमान प्रथा उठा दी जायगी।

मजदूरों ने सुना; पर उन्हें वह आनन्द न हुआ, जो एक घंटा पहले होता। कृष्णचन्द्र की बलि देकर बड़ी-से-बड़ी रियासत भी उनके निगाहों में हेय थी।

अभी अर्थी न उठने पायी थी कि प्रमीला लाल आँखें किये उन्मत्त-सी दौड़ी आयी और उस देह से चिमट गयी, जिसे उसने अपने उदर से जन्म दिया और अपने रक्त से पाला था। चारों तरफ हाहाकार मच गया। मजदूर और मालिक ऐसा कोई नहीं था, जिसकी आँखों से आँसुओं की धारा न निकल रही हो।

सेठजी ने समीप जाकर प्रमीला के कन्धे पर हाथ रखा और बोले—क्या करती हो प्रमीला, जिसकी मृत्यु पर हँसना और ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए, उसकी मृत्यु पर रोती हो।

प्रमीला उसी तरह शव को हृदय से लगाये पड़ी रही। जिस निधि को पाकर उसने विपत्ति को सम्पत्ति समझा था, पति-वियोग से अन्धकारमय जीवन में जिस दीपक से आशा, धैर्य और अवलम्ब पा रही थी, वह दीपक बुझ गया था। जिस विभूति को पाकर ईश्वर की निष्ठा और भक्ति उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गयी थी, वह विभूति उससे छीन ली गयी थी।

सहसा उसने पति को अस्थिर नेत्रों से देखकर कहा—तुम समझते होगे, ईश्वर जो कुछ करता है, हमारे कल्याण के लिए ही करता है। मैं ऐसा नहीं समझती। समझ ही नहीं सकती। कैसे समझूँ? हाय मेरे लाल! मेरे लाड़ले! मेरे राजा, मेरे सूर्य, मेरे चन्द्र, मेरे जीवन के आधार ! मेरे सर्वस्व ! तुझे खोकर कैसे चित्त को शान्त रखूँ ? जिसे गोद में देखकर मैंने

अपने भाग्य को धन्य माना था, उसे आज धरती पर पड़ा देखकर हृदय को कैसे सँभालूँ। नहीं मानता ! हाय नहीं मानता !!

यह कहते हुए उसने जोर से छाती पीट ली।

उसी रात को शोकातुर माता संसार से प्रस्थान कर गयी। पक्षी अपने बच्चे की खोज में पिंजरे से निकल गया।

10

तीन साल बीत गये।

श्रमजीवियों के मुहल्ले में आज कृष्णाअष्टमी का उत्सव है। उन्होंने आपस में चन्दा करके एक मन्दिर बनवाया है। मन्दिर आकार में तो बहुत सुन्दर और विशाल नहीं; पर जितनी भक्ति से यहाँ सिर झुकते हैं, वह बात इससे कहीं विशाल मन्दिरों को प्राप्त नहीं। यहाँ लोग अपनी सम्पत्ति का प्रदर्शन करने नहीं, बल्कि अपनी श्रद्धा की भेंट देने आते हैं।

मजबूर स्त्रियाँ गा रही हैं, बालक दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम कर रहे हैं। और पुरुष झाँकी के बनाव-शृंगार में लगे हुए हैं।

उसी वक्त सेठ खूबचन्द आये। स्त्रियाँ और बालक उन्हें देखते ही चारों ओर से दौड़कर जमा हो गये। यह मन्दिर उन्हीं के सतत् उद्योग का फल है। मजदूर परिवारों की सेवा ही अब उनके जीवन का उद्देश्य है। उनका छोटा-सा परिवार अब विराट रूप हो गया है। उनके सुख को वह अपना सुख और उनके दुःख को अपना दुःख मानते हैं। मजदूरों में शराब, जुए और दुराचरण की वह कसरत नहीं रही। सेठजी की सहायता, सत्संग और सद्व्यवहार पशुओं को मनुष्य बना रहा है।

सेठजी ने बाल-रूप भगवान् के सामने जाकर सिर झुकाया और उनका मन अलौकिक आनन्द से खिल उठा। उस झाँकी में उन्हें कृष्णचन्द्र की झलक दिखायी दी। एक ही क्षण में उसने जैसे गोपीनाथ का रूप धारण किया।

सेठजी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। भगवान् की व्यापकता का, दया का रूप आज जीवन में पहली बार उन्हें दिखायी दिया। अब तक, भगवान् की दया को वह सिद्धान्त-रूप से मानते थे। आज उन्होंने उसका प्रत्यक्ष रूप देखा। एक पथ-भ्रष्ट पतनोन्मुखी आत्मा के उद्धार के लिए इतना दैवी विधान ! इतनी अनवरत ईश्वरीय प्रेरणा ! सेठजी के मानस-पट पर अपना सम्पूर्ण जीवन सिनेमा-चित्रों की भाँति दौड़ गया। उन्हें जान पड़ा, जैसे आज बीस वर्ष से ईश्वर की कृपा उन पर छाया किये हुए है। गोपीनाथ का बलिदान क्या था ? विद्रोही मजदूरों ने जिस समय उनका मकान घेर लिया था, उस समय उनका आत्म-समर्पण ईश्वर की दया के सिवा और क्या था, पन्द्रह साल के निर्वासित जीवन में, फिर कृष्णचन्द्र के रूप में, कौन उनकी आत्मा की रक्षा कर रहा था ? सेठजी के अन्तःकरण से भक्ति की विह्वलता में डूबी हुई जय-ध्वनि निकली—कृष्ण भगवान् की जय ! और जैसे सम्पूर्ण ब्रह्मांड दया के प्रकाश से जगमगा उठा।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अक्टूबर-नवम्बर, 1932 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'शाहकार' नवम्बर, 1935 में प्रकाशित। 'जादे राह' में संकलित।]

बेटों वाली विधवा

पण्डित अयोध्यानाथ का देहान्त हुआ तो सबने कहा, ईश्वर आदमी को ऐसी ही मौत दे। चार जवान बेटे थे, एक लड़की। चारों लड़कों के विवाह हो चुके थे, केवल लड़की क्वाँरी थी। सम्पत्ति भी काफी छोड़ी। एक पक्का मकान, दो बगीचे, कई हज़ार के गहने और बीस हजार नकद। विधवा फूलमती को वह शोक तो हुआ और कई दिन तक वह बेहाल रही; लेकिन जवान बेटों को सामने देखकर उसे ढाढस हुआ। चारों लड़के एक-से-एक सुशील, चारों बहुएँ एक-से-एक बढ़कर आज्ञाकारिणी। जब वह रात को लेटती तो चारों बारी-बारी से उसके पाँव दबातीं। वह स्नान करके उठती, तो साड़ी छाँटतीं। सारा घर उसके इशारे पर चलता था। बड़ा लड़का कामता एक दफ्तर में पचास रुपये पर नौकर था, छोटा उमानाथ डाक्टरी पास कर चुका था, और कहीं औषधालय खोलने की फिक्र में था, तीसरा दयानाथ बी. ए. में फेल हो गया था और पत्रिकाओं में लेख-लिखकर कुछ-न-कुछ कमा लेता था, चौथा सीतानाथ चारों में सबसे कुशाग्र और होनहार था और अबकी साल बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास करके एम.ए. की तैयारी नें लगा हुआ था। किसी लड़के में वह दुर्व्यसन, वह छैलापन, वह लुटाऊपन न था, जो माता-पिता को जलाता और कुलमर्यादा को डुबाता है। फूलमती घर की मालकिन थी। गोकि कुंजियाँ बड़ी बहू के पास रहती थीं। बुढ़िया में वह अधिकार-प्रेम न था, जो वृद्धजनों को कटु और कलहशील बना दिया करता है; किन्तु उसकी इच्छा के बिना कोई बालक मिठाई तक न मँगा सकता था।

सन्ध्या हो गयी थी। पंडित को मरे आज बारहवाँ दिन था। कल तेरही है। ब्रह्मभोज होगा। बिरादरी के लोग निमन्त्रित होंगे। उसी की तैयारियाँ हो रही थीं। फूलमती अपनी कोठरी में बैठी देख रही थी कि पल्लेदार बोरे में आटा लाकर रख रहे हैं। घी के टिन आ रहे हैं। शाक-भाजी के टोकरे, शक्कर की बोरियाँ, दही के मटके चले आ रहे हैं। महापात्र के लिए दान की चीजें लाई गयीं—बर्तन, कपड़े, पलंग, बिछावन, छाते, जूते, छड़ियाँ, लालटेंनें आदि किन्तु फूलमती को कोई चीज नहीं दिखायी गयी। नियमानुसार ये सब सामान उसके पास आने चाहिये थे। वह प्रत्येक वस्तु को देखती, उसे पसन्द करती, उसकी मात्रा में कमी-बेशी का फैसला करती, तब इन चीज़ों को भण्डारे में रखा जाता। क्यों उसे दिखाने और उसकी राय लेने की जरूरत नहीं समझी गयी ? अच्छा ! वह आटा तीन ही बोरा क्यों आया ? उसने तो पाँच बोरों के लिए कहा था। घी भी पाँच ही कनस्तर है। उसने तो दस कनस्तर मँगवाये थे। इसी तरह शाक-भाजी, शक्कर, दही आदि में भी कमी की गयी होगी। किसने उसके हुक्म में हस्तक्षेप किया ? जब उसने एक बात तय कर दी, तब किसे उसको घटाने-बढ़ाने का अधिकार है।

आज चालीस वर्षों से घर के प्रत्येक मामले में फूलमती की बात सर्वमान्य थी। उसने सौ कहा तो सौ खर्च किये गये, एक कहा तो एक ! किसी ने मीन-मेख न की। यहाँ तक कि पं. अयोध्यानाथ भी उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ न करते थे; पर आज उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप से उसके हुक्म की उपेक्षा की जा रही है ! इसे वह क्योंकर स्वीकार कर सकती !

कुछ देर तक तो वह जब्त किये बैठी रही; पर अन्त में न रहा गया। स्वायत्त-शासन

उसका स्वभाव हो गया था। वह क्रोध में भरी हुई आयी और कामतानाथ से बोली—क्या आटा तीन ही बोरे लाये ? मैंने तो पाँच बोरे के लिए कहा था। और घी भी पाँच ही टिन मँगवाया। तुम्हें याद है, मैंने दस कनस्तर कहा था ? किफायत को मैं बुरा नहीं समझती; लेकिन जिसने यह कुआँ खोदा उसी की आत्मा पानी को तरसे, यह कितनी लज्जा की बात है।

कामतानाथ ने क्षमा-याचना न की, अपनी भूल स्वीकार न की, लज्जित भी नहीं हुआ। एक मिनट तो विद्रोही भाव से खड़ा रहा, फिर बोला—हम लोगों की सलाह तीन ही बोरों की हुई और तीन बोरे के लिए पाँच टिन घी काफी था। इसी हिसाब से और चीजें भी कम कर दी गयी हैं।

फूलमती उग्र होकर बोली—किसकी राय से आटा कम किया गया ?

'हम लोगों की राय से।'

'तो मेरी राय कोई चीज नहीं है ?'

'है क्यों नहीं; लेकिन अपना हानि-लाभ तो हम भी समझते हैं।'

फूलमती हक्का-बक्का होकर उसका मुँह ताकने लगी। इस वाक्य का आशय उसकी समझ में न आया। अपना हानि-लाभ ! अपने घर में हानि-लाभ की जिम्मेदार वह आप है। दूसरों को, चाहे वे उसके पेट के जन्मे पुत्र ही क्यों न हों; उसके कामों में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार ? यह लौंडा तो इस ढिठाई से जवाब दे रहा है, मानो घर उसी का है, उसी ने मर-मर कर गृहस्थी जोड़ी है, मैं तो गैर हूँ ! जरा इसकी हेकड़ी तो देखो।

उसने तमतमाये हुए मुख से कहा—मेरे हानि-लाभ के जिम्मेदार तुम नहीं हो। मुझे अख्तियार है, जो उचित समझूँ वह करूँ। अभी जाकर दो बोरे आटा और पाँच टिन घी और लाओ और आगे के लिए खबरदार, जो किसी ने मेरी बात काटी।

अपने विचार से उसने काफी तम्बीह कर दी थी। शायद इतनी कठोरता अनावश्यक थी। उसे अपनी उग्रता पर खेद हुआ। लड़के ही तो हैं, समझे होंगे, कुछ किफायत करनी चाहिए। मुझसे इसलिए न पूछा होगा कि अम्माँ तो खुद हरेक काम में किफायत किया करती हैं। अगर इन्हें मालूम होता, कि इस काम में मैं किफायत पसन्द न करूँगी; तो कभी इन्हें मेरी उपेक्षा करने का साहस न होता। यद्यपि कामतानाथ अब भी उसी जगह खड़ा था और उसकी भावभंगी से ऐसा ज्ञात होता था कि इस आज्ञा का पालन करने के लिए वह बहुत उत्सुक नहीं है, पर फूलमती निश्चित होकर अपनी कोठरी में चली गयी। इतनी तम्बीह पर भी किसी को उसकी अवज्ञा करने की सामर्थ्य हो सकती है, इसकी सम्भावना का ध्यान भी उसे न आया।

पर ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, उस पर यह हकीकत खुलने लगी कि इस घर में अब उसकी वह हैसियत नहीं रही, जो दस-बारह दिन पहले थी। संबंधियों के यहाँ से नेवते में शक्कर, मिठाई, दही, आचार आदि आ रहे थे। बड़ी बहू इन वस्तुओं को स्वामिनी-भाव से सँभाल-सँभाल कर रख रही थी। कोई भी उससे पूछने नहीं आता। बिरादरी के लोग भी जो कुछ पूछते हैं, कामतानाथ से, या बड़ी बहू से। कामतानाथ कहाँ का बड़ा इन्तजामकार है, रात-दिन भंग पिये पड़ा रहता है। किसी तरह रो-धोकर दफ्तर चला जाता है। उसमें भी महीने में पन्द्रह नागों से कम नहीं होते। वह तो कहो, साहब

पंडित जी का लिहाज करता है, नहीं अब तक कभी का निकाल देता। और बड़ी बहू जैसी फूहड़ औरत और भला इन बातों को क्या समझेगी। अपने कपड़े-लत्ते तक तो जतन से रख नहीं सकती, चली है गृहस्थी चलाने। भद होगी और क्या। सब मिलकर कुल की नाक कटवायेंगे। वक्त पर कोई-न-कोई चीज कम हो जायगी। इन कामों के लिए बड़ा अनुभव चाहिए ! कोई चीज तो इतनी ज्यादा बन जायेगी कि मारी-मारी फिरेगी। कोई चीज इतनी कम बनेगी कि किसी पत्तल पर पहुँचेगी, किसी पर नहीं। आखिर इन सबों को हो क्या गया है ! अच्छा, बहू तिजोरी क्यों खोल रही है ? वह मेरी आज्ञा के बिना तिजोरी खोलने वाली कौन होती है। कुंजी उसके पास है अवश्य; लेकिन जब तक मैं रुपये न निकलवाऊँ, तिजोरी नहीं खोलती; आज तो इस तरह खोल रही है, मानो मैं कुछ हूँ ही नहीं। यह मुझसे न बर्दाश्त होगा ?

वह झमककर उठी और बहू के पास जाकर कठोर स्वर में बोली—तिजोरी क्यों खोलती हो बहू, मैंने तो खोलने को नहीं कहा ?

बड़ी बहू ने निस्संकोच भाव से उत्तर दिया—बाजार से सामान आया है, तो दाम न दिया जाएगा ?

'कौन चीज किस भाव से आयी है और कितनी आयी है, यह मुझे कुछ नहीं मालूम ! जब तक हिसाब-किताब न हो जाय, रुपये कैसे दिये जायँ ?'

'हिसाब-किताब सब हो गया है।'

'किसने किया ?'

'अब मैं क्या जानूँ किसने किया ? जाकर मरदों से पूछो। मुझे हुकुम मिला, रुपये लाकर दे दो, रुपये लिये जाती हूँ।'

फूलमती खून का घूँट पीकर रह गयी। इस वक्त बिगड़ने का अवसर न था। घर में मेहमान स्त्री-पुरुष भरे हुए थे। अगर इस वक्त उसने लड़कों को डाँटा, तो लोग यही कहेंगे कि इनके घर में पण्डित जी के मरते ही फूट पड़ गयी। दिल पर पत्थर रखकर फिर अपनी कोठरी में चली आयी। जब मेहमान बिदा हो जायँगे, तब वह एक-एक की खबर लेगी। तब देखेगी, कौन उसके सामने आता है और क्या कहता है। इनकी सारी चौकड़ी भुला देगी।

किन्तु कोठरी के एकान्त में भी वह निश्चिंत न बैठी थी। सारी परिस्थिति को गिद्ध-दृष्टि से देख रही थी। कहाँ सत्कार का कौन-सा नियम भंग होता है, कहाँ मर्यादाओं की उपेक्षा की जाती है। भोज आरम्भ हो गया। सारी बिरादरी एक साथ पंगतों में बिठा दी गयी। आँगन में मुश्किल से दो सौ आदमी बैठ सकते हैं। ये पाँच सौ आदमी इतनी-सी जगह में कैसे बैठ जायँगे ? क्या आदमी के ऊपर आदमी बिठाये जायेंगे ? दो पंगतों में लोग बिठाये जायेंगे ? दो पंगतों में लोग बिठाये जाते तो क्या बुराई हो जाती ? यही तो होता कि बारह बजे की जगह भोज दो बजे समाप्त होता; मगर यहाँ तो सबको सोने की जल्दी पड़ी हुई है। किसी तरह यह बला सिर से टले और चैन से सोयें ! लोग कितने सटकर बैठे हुए हैं कि किसी को हिलने की भी जगह नहीं। पत्तल एक-पर-एक रखे हुए हैं। पूरियाँ ठण्डी हो गयीं, लोग गरम-गरम माँग रहे हैं। मैदे की पूरियाँ ठण्डी होकर चिमड़ी हो जाती हैं। इन्हें कौन खायेगा ? रसोइये को कढ़ाव पर से न जाने क्यों उठा दिया गया।

यही सब बातें नाक कटाने की हैं।

सहसा शोर मचा, तरकारियों में नमक नहीं। बड़ी बहू जल्दी-जल्दी नमक पीसने लगी। फूलमती क्रोध के मारे ओठ चबा रही थी, पर इस अवसर पर मुँह न खोल सकती थी। बारे नमक पिसा और पत्तलों पर डाला गया। इतने में फिर शोर मचा—पानी गरम है, ठण्डा पानी लाओ। ठंडे पानी का कोई प्रबन्ध न था, बर्फ भी न मँगाई थी। आदमी बाजार दौड़ाया गया, मगर बाजार में इतनी रात गये बर्फ कहाँ ! आदमी खाली हाथ लौट आया। मेहमानों को वही नल का गरम पानी पीना पड़ा। फूलमती का बस चलता, तो लड़कों का मुँह नोच लेती। ऐसी छीछालेदर उसके घर में कभी न हुई थी। उस पर सब मालिक बनने के लिए मरते हैं ! बर्फ जैसी जरूरी चीज मँगवाने की भी किसी को सुधि न थी ! सुधि कहाँ से रहे। जब किसी को गप लड़ाने से फुर्सत मिले। मेहमान अपने दिल में क्या कहेंगे कि चले हैं बिरादरी को भोज देने और घर में बर्फ तक नहीं!

अच्छा, फिर यह हलचल क्यों मच गयी ! अरे, लोग पंगत से उठे जा रहे हैं। क्या मामला है ?

फूलमती उदासीन न रह सकी। कोठरी से निकलकर बरामदे में आयी और कामतानाथ से पूछा—क्या बात हो गयी लल्ला ? लोग उठे क्यों जा रहे हैं ?

कामता ने कोई जवाब न दिया। वहाँ से खिसक गया। फूलमती झुँझला कर रह गयी। सहसा कहारिन मिल गयी। फूलमती ने उससे भी वही प्रश्न किया। मालूम हुआ, किसी के शोरबे में मरी हुई चुहिया निकल आयी। फूलमती चित्रलिखित-सी वहीं खड़ी रह गयी। भीतर ऐसा उबाल उठा कि दीवार से सिर टकरा ले। अभागे भोज का प्रबन्ध करने चले थे। इस फूहड़पन की कोई हद है, कितने आदमियों का धर्म सत्यानाश हो गया। फिर पंगत क्यों न उठ जाय ? आँखों से देखकर अपना धर्म कौन गँवायेगा। हाँ ! किया-धरा मिट्टी में मिल गया ! सैकड़ों रुपये पर पानी फिर गया। बदनामी हुई वह अलग।

मेहमान उठ चुके थे। पत्तलों पर खाना ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ था। चारों लड़के आँगन में लज्जित खड़े थे। एक-दूसरे को इलजाम दे रहा था। बड़ी बहू अपनी देवरानियों पर बिगड़ रही थी। देवरानियाँ सारा दोष कुमुद के सिर डालती थीं। कुमुद खड़ी रो रही थी। उसी वक्त फूलमती झल्लाई हुई आकर बोली—मुँह में कालिख लगी कि नहीं ? या अभी कुछ कसर बाकी है ? डूब मरो सब-के-सब जाकर चुल्लू भर पानी में ! शहर में कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहे।

किसी लड़के ने जवाब न दिया।

फूलमती और भी प्रचण्ड होकर बोली—तुम लोगों को क्या। किसी को शर्म-हया तो है नहीं। आत्मा तो उसकी रो रही है; जिन्होंने अपनी जिन्दगी घर को मरजाद बनाने में खराब कर दी। उनकी पवित्र आत्मा को तुमने यों कलंकित किया। शहर में थुड़ी-थुड़ी हो रही है। अब कोई तुम्हारे द्वार पर पेशाब करने तो आयेगा नहीं।

कामतानाथ कुछ देर त.क़ चुपचाप खड़ा सुनता रहा। आख़िर झुँझला कर बोला—अच्छा; अब चुप रहो अम्माँ। भूल हुई, हम सब मानते हैं, बड़ी भयंकर भूल हुई; लेकिन क्या अब उसके लिए घर के प्राणियों को हलाल कर डालोगी ? सभी से भूलें होती हैं। आदमी पछताकर रह जाता है। किसी की जान तो नहीं मारी जाती ?

बड़ी बहू ने अपनी सफ़ायी दी—हम क्या जानते थे कि बीबी (कुमुद) से इतना-सा काम भी न होगा। इन्हें चाहिए था कि देखकर तरकारी कढ़ाव में डालतीं। टोकरी उठाकर कढ़ाव में डाल दी। इसमें हमारा क्या दोष।

कामतानाथ ने पत्नी को डाँटा—इसमें न कुमुद का कसूर है न तुम्हारा, न मेरा। संयोग की बात है। बदनामी भाग्य में लिखी थी वह हुई। इतने वड़े भोज में एक-एक मुट्ठी तरकारी कढ़ाव में नहीं डाली जाती। टोकरे-के-टोकरे उंडेल दिये जाते हैं। कभी-कभी ऐसी दुर्घटना हो ही जाती है, पर इसमें कैसी जग-हँसाई और कैसी नाक-कटाई। तुम खामखाह जले पर नमक छिड़कती हो।

फूलमती ने दाँत पीसकर कहा—शरमाते तो नहीं, उलटे और बेहयाई की बातें करते हो।

कामता ने निःसंकोच होकर कहा—शरमाऊँ क्यों, किसी की चोरी की है। चीनी में चींटे और आटे में घुन, यह नहीं देखे जाते। पहले हमारी निगाह न पड़ी, बस यही बात बिगड़ गयी। नहीं, चुपके से चुहिया निकालकर फेंक देते। किसी को खबर तक न होती।

फूलमती ने चकित होकर कहा—क्या कहता है, मरी चुहिया खिलाकर सबका धर्म बिगाड़ देता।

कामता हँसकर बोला—क्या पुराने जमाने की बातें करती हो अम्माँ ? इन बातों से धर्म नहीं जाता। यह धमात्मा लोग जो पत्तल पर से उठ गये हैं, इनमें ऐसा कौन है जो भेड़-बकरी का मांस न खाता हो ? तालाब के कछुए और घोंघे तक तो किसी से बचते नहीं। जरा-सी चुहिया में क्या रखा था।

फूलमती को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब प्रलय आने में बहुत देर नहीं है। जब पढ़-लिखे आदमियों के मन में ऐसे अधार्मिक भाव आने लगे, तो फिर धर्म की भगवान् ही रक्षा करें। अपना-सा मुँह लेकर चली गयी।

2

दो महीने गुजर गये हैं। रात का समय है। चारों भाई दिन के काम से छुट्टी पाकर कमरे में बैठे गप-शप कर रहे हैं। बड़ी बहू भी षड्यन्त्र में शरीक है। कुमुद के विवाह का प्रश्न छिड़ा हुआ है।

कामतानाथ ने मसनद पर टेक लगाते हुए कहा—दादा की बात दादा के साथ गयी। मुरारी पंडित विद्वान् भी हैं और कुलीन भी होंगे। लेकिन जो आदमी अपनी विद्या और कुलीनता को रुपयों पर बेचे, वह नीच है, ऐसे नीच आदमी के लड़के से हम कुमुद का विवाह सेंत में भी न करेंगे, पाँच हजार दहेज तो दूर की बात है। उसे बताओ धता और किसी दूसरे वर की तलाश करो। हमारे पास कुल बीस हजार ही तो हैं। एक-एक हिस्से में पाँच-पाँच हजार आते हैं। पाँच हजार दहेज में दे दें, और पाँच हजार नेग-न्योछावर, बाजे-गाजे में उड़ा दें तो फिर हमारी तो बधिया ही बैठ जायगी।

उमानाथ बोले—मुझे अपना औषधालय खोलने के लिए कम-से-कम पाँच हजार की जरूरत है। मैं अपने हिस्से में से एक पाई भी नहीं दे सकता। फिर खुलते ही आमदनी तो होगी नहीं। कम-से-कम साल-भर घर से खाना पड़ेगा।

दयानाथ एक समाचार-पत्र देख रहे थे। आँखों से ऐनक उतारते हुए बोले—मेरा विचार भी एक पत्र निकालने का है। प्रेस और पत्र में कम-से-कम दस हजार की कैपिटल चाहिए। पाँच हजार मेरे रहेंगे, तो कोई-न-कोई साझेदार पाँच हजार का मिल जायेगा। पत्रों में लेख लिखकर मेरा निर्वाह नहीं हो सकता।

कामतानाथ ने सिर हिलाते हुए कहा—अजी, राम भजो, सेंत में कोई लेख छापता नहीं; रुपये कौन दिये देता है।

दयानाथ ने प्रतिवाद किया—नहीं, यह बात तो नहीं है। मैं तो कहीं भी बिना पेशगी पुरस्कार लिये नहीं लिखता।

कामता ने जैसे अपने शब्द वापस लिये—तुम्हारी बात मैं नहीं कहता भाई। तुम तो थोड़ा-बहुत मार लेते हो; लेकिन सबको तो नहीं मिलता।

बड़ी-बहू ने श्रद्धा-भाव से कहा—कन्या भाग्यवान हो, तो दरिद्र घर में भी सुखी रह सकती है। अभागी हो, तो राजा के घर में भी रोयेगी। यह सब नसीबों का खेल है।

कामतानाथ ने स्त्री की ओर प्रशंसा भाव से देखा—फिर इसी साल हमें सीता का विवाह भी करना है।

सीतानाथ सबसे छोटा था। सिर झुकाये भाइयों की स्वार्थ-भरी बातें सुन-सुनकर कुछ कहने के लिए उतावला हो रहा था। अपना नाम सुनते ही बोला—मेरे विवाह की आप लोग चिन्ता न करें। मैं जब तक किसी धन्धे में न लग जाऊँगा, विवाह का नाम भी न लूँगा, और सच पूछिए तो मैं विवाह करना नहीं चाहता। देश को इस समय बालकों की जरूरत नहीं, काम करने वालों की जरूरत है। मेरे हिस्से के रुपये आप कुमुद के विवाह में खर्च कर दें। सारी बातें तय हो जाने के बाद यह उचित नहीं कि पंडित मुरारीलाल से सम्बन्ध तोड़ लिया जाये।

उमा ने तीव्र स्वर में कहा—दस हजार कहाँ से आयेंगे ?

सीता ने डरते हुए कहा—'मैं तो अपने हिस्से के रुपये देने को कहता हूँ।'

'और शेष ?'

'मुरारीलाल से कहा जाय कि दहेज में कुछ कमी कर दें। वह इतने स्वार्थांध नहीं हैं कि इस अवसर पर कुछ बल खाने को तैयार न हो जायँ; अगर वह तीन हजार में सन्तुष्ट हो जायँ, तो पाँच हजार में विवाह हो सकता है।'

उमा ने कामतानाथ से कहा—सुनते हैं भाई साहब, इनकी बातें ?

दयानाथ बोल उठे—तो इसमें आप लोगों का क्या नुकसान है। यह अपने रुपये दे रहे हैं, खर्च कीजिए। मुरारी पंडित से हमारा कोई बैर नहीं है। मुझे तो इस बात से खुशी हो रही है कि भला हममें कोई तो त्याग करने योग्य है। इन्हें तत्काल रुपये की जरूरत नहीं है। सरकार से वजीफा पाते ही हैं। पास होने पर कहीं-न-कहीं जगह मिल जायगी। हम लोगों की हालत तो ऐसी नहीं।

कामतानाथ ने दूरदर्शिता का परिचय दिया—नुकसान की एक ही कही। हममें से एक को कष्ट हो, तो क्या और लोग बैठे देखेंगे ? यह अभी लड़के हैं, इन्हें क्या मालूम समय पर एक रुपया एक लाख का काम करता है ? कौन जानता है, कल इन्हें विलायत जाकर पढ़ने के लिये सरकारी वजीफा मिल जाय, या सिविल सर्विस में आ जायँ। उस

वक्त सफर की तैयारियों में चार-पाँच हजार लग जायँगे। तब किसके सामने हाथ फैलाते फिरेंगे ? मैं यह नहीं चाहता कि दहेज के पीछे इनकी जिन्दगी नष्ट हो जाय।

इस तर्क ने सीतानाथ को भी तोड़ लिया। सकुचाता हुआ बोला–हाँ, यदि ऐसा हुआ तो बेशक मुझे रुपये की जरूरत होगी।

'क्या ऐसा होना असम्भव है ?'

'असम्भव तो मैं नहीं समझता, लेकिन कठिन अवश्य है। वजीफे उन्हें मिलते हैं, जिनके पास सिफारिशें होती हैं, मुझे कौन पूछता है।'

'कभी-कभी सिफारिशें धरी रह जाती हैं और बिना सिफारिश वाले बाजी मार ले जाते हैं।'

'तो आप जैसा उचित समझें। मुझे यहाँ तक मंजूर है कि चाहे मैं विलायत न जाऊँ, पर कुमुद अच्छे घर जाय।'

कामतानाथ ने निष्ठा-भाव से कहा–अच्छा घर दहेज देने से नहीं मिलता भैया! जैसा तुम्हारी भाभी ने कहा, यह नसीबों का खेल है। मैं तो चाहता हूँ कि मुरारीलाल को जवाब दे दिया जाय और कोई ऐसा वर खोजा जाय, जो थोड़े में राजी हो जाय। इस विवाह में मैं एक हजार से ज्यादा नहीं खर्च कर सकता। पंडित दीनदयाल कैसे हैं ?

उमा ने प्रसन्न हाकर कहा–बहुत अच्छे। एम. ए., बी.ए. न सही, जजमानी से अच्छी आमदनी है।

दयानाथ ने आपत्ति की–अम्माँ से भी तो पूछ लेना चाहिए।

कामतानाथ को इसकी कोई जरूरत न मालूम हुई। बोले–उनकी तो जैसे बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी है। वही पुराने युग की बातें। मुरारीलाल के नाम पर उधार खाये बैठी हैं। यह नहीं समझती कि वह जमाना नहीं रहा। उनको तो बस कुमुद मुरारी पंडित के घर जाय, चाहे हम लोग तबाह हो जायँ।

उमा ने एक शंका उपस्थित की–अम्माँ अपने सब गहने कुमुद को दे देंगी, देख लीजिएगा।

कामतानाथ का स्वार्थ नीति से विद्रोह न कर सका। बोले–गहनों पर उनका पूरा अधिकार है। यह उनका स्त्री-धन है। जिसे चाहें दे सकती हैं।

उमा ने कहा–स्त्री-धन है तो क्या वह उसे लुटा देंगी। आखिर वह भी तो दादा ही की कमाई है।

'किसी की कमाई हो। स्त्री-धन पर उनका पूरा अधिकार है।'

'यह कानूनी गोरखधन्धे हैं। बीस हजार में तो चार हिस्सेदार हों और दस हजार के गहने अम्माँ के पास रह जायँ। देख लेना, इन्हीं के बल पर वह कुमुद का विवाह मुरारी पंडित के घर करेंगी।'

उमानाथ इतनी बड़ी रकम को इतनी आसानी से नहीं छोड़ सकता। वह कपट-नीति में कुशल है। कोई कौशल रचकर माता से सारे गहने ले लेगा। उस वक्त तक कुमुद के विवाह की चर्चा करके फूलमती को भड़काना उचित नहीं। कामतानाथ ने सिर हिलाकर कहा–भई मैं इन चालों को पसंद नहीं करता। उमानाथ ने खिसियाकर कहा–गहने दस हजार से कम के न होंगे।

कामतानाथ अविचलित स्वर में बोले—कितने ही के हों, मैं अनीति में हाथ नहीं डालना चाहता।

'तो आप अलग बैठिए। हाँ, बीच में भांजी न मारियेगा।'

'मैं अलग रहूँगा।'

'और तुम सीता ?'

'मैं भी अलग रहूँगा।'

लेकिन जब दयानाथ से यही प्रश्न किया किया गया; तो वह उमानाथ से सहयोग करने को तैयार हो गया। दस हजार में ढाई हजार तो उसके होंगे ही। इतनी बड़ी रकम के लिए यदि कुछ कौशल भी करना पड़े तो क्षम्य है।

3

फूलमती रात का भोजन करके लेटी थीं कि उमा और दया उसके पास जाकर बैठ गये। दोनों ऐसा मुँह बनाये हुए थे, मानो कोई भारी विपत्ति आ पड़ी है। फूलमती ने संशक होकर पूछा—तुम दोनों घबड़ाये हुए मालूम होते हो।

उमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—समाचार-पत्रों में लेख लिखना बड़े जोखिम का काम है अम्माँ। कितना ही बचकर लिखो; लेकिन कहीं-न-कहीं पकड़ हो ही जाती है। दयानाथ ने एक लेख लिखा था। उस पर पाँच हजार की जमानत माँगी गयी है ! अगर कल तक जमानत न जमा कर दी गयी, तो गिरफ्तार हो जायेंगे और दस साल की सजा ठुक जायगी।

फूलमती ने सिर पीटकर कहा—तो ऐसी बातें क्यों लिखते हो बेटा, जानते नहीं हो आजकल हमारे अदिन आये हुए हैं। जमानत किसी तरह टल नहीं सकती ?

दयानाथ ने अपराधी भाव से उत्तर दिया—मैंने तो अम्माँ ऐसी कोई बात नहीं लिखी थी; लेकिन किस्मत को क्या करूँ। हाकिम जिला इतना कड़ा है कि जरा भी रियायत नहीं करता। मैंने जितनी दौड़-धूप हो सकती थी, वह सब कर ली।

'तो तुमने कामता से रुपये का प्रबन्ध करने को नहीं कहा ?'

उमा ने मुँह बनाया—उनका स्वभाव तो तुम जानती हो अम्माँ, उन्हें रुपये प्राणों से प्यारे हैं। उन्हें चाहे कालापानी ही हो जाय; वह एक पाई न देंगे।

दयानाथ ने समर्थन किया—मैंने तो उनसे इसका जिक्र ही नहीं किया।

फूलमती ने चारपाई से उठते हुए कहा—चलो, मैं कहती हूँ, देगा कैसे नहीं ? रुपये इसी दिन के लिए होते हैं कि गाड़कर रखने के लिए ?

उमानाथ ने माता को रोककर कहा—नहीं अम्माँ, उनसे कुछ न कहो। रुपये तो न देंगे, उल्टे और हाय-हाय मचायेंगे। उनको अपनी नौकरी की खैरियत मनानी है, इन्हें घर में रहने भी न देंगे। अफसरों में जाकर खबर दे दें तो आश्चर्य नहीं।

फूलमती ने लाचार होकर कहा—तो फिर जमानत का क्या प्रबन्ध करोगे ? मेरे पास तो कुछ नहीं है। हाँ, मेरे गहने हैं, इन्हें ले जाव, कहीं गिरों रखकर जमानत दे दो। और आज से कान पकड़ो कि किसी पत्र में एक शब्द भी न लिखोगे।

दयानाथ कानों पर हाथ रखकर बोला—यह तो नहीं हो सकता अम्माँ, कि तुम्हारे

जेवर लेकर मैं अपनी जान बचाऊँ। दस-पाँच साल की कैद ही तो होगी, झेल लूँगा। यहीं बैठा-बैठा क्या कर रहा हूँ।

फूलमती छाती पीटते हुए बोली—कैसी बातें मुँह से निकालते हो बेटा, मेरे जीते जी तुम्हें कौन गिरफ्तार कर सकता है ? उसका मुँह झुलस दूँगी। गहने इसी दिन के लिए हैं या और किसी दिन के लिए। जब तुम्हीं न रहोगे, तो गहने लेकर क्या आग में झोंकूँगी।

उसने पिटारी लाकर उसके सामने रख दी।

दया ने उमा की ओर जैसे फरियाद की आँखों से देखा, और बोला—आपकी क्या राय है भाई साहब ? इसी मारे मैं कहता था, अम्माँ को जताने की जरूरत नहीं। जेल ही तो हो जाता या और कुछ।

उमा ने जैसे सिफारिश करते हुए कहा—यह कैसे हो सकता था कि इतनी बड़ी वारदात हो जाती और अम्माँ को खबर न होती। मुझसे यह नहीं हो सकता था कि सुनकर पेट में डाल लेता; मगर अब करना क्या चाहिए; यह मैं खुद निर्णय नहीं कर सकता। न तो यही अच्छा लगता है कि तुम जेल जाओ और न यही अच्छा लगता है कि अम्माँ के गहने गिरों रखे जायँ।

फूलमती ने व्यथित कण्ठ से पूछा—क्या तुम समझते हो मुझे गहने तुमसे ज्यादा प्यारे हैं। मैं तो अपने प्राण तक तुम्हारे ऊपर न्यौछावर कर दूँ, गहनों की बिसात ही क्या है।

दया ने दृढ़ता से कहा—अम्माँ तुम्हारे गहने तो न लूँगा, चाहे मुझ पर कुछ ही क्यों न आ पड़े। जब आज तक तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका; तो किस मुँह से तुम्हारे गहने उठा ले जाऊँ। मुझ जैसे कपूत को तो तुम्हारी कोख से जन्म ही न लेना चाहिए था। सदा तुम्हें कष्ट देता रहा।

फूलमती ने भी उतनी ही दृढ़ता से कहा—तुम अगर यों न लोगे; तो मैं खुद जाकर इन्हें गिरों रख दूँगी और खुद हाकिम जिला के पास जाकर जमानत जमा कर आऊँगी; अगर इच्छा हो तो यह परीक्षा भी ले लो। आँखें बन्द हो जाने के बाद क्या होगा, भगवान जानें; लेकिन जब तक जीती हूँ, तुम्हारी ओर कोई तिरछी आँखों से देख नहीं सकता।

उमानाथ ने मानों माता पर एहसान रखकर कहा—अब तो हमारे लिए कोई रास्ता नहीं रहा दयानाथ। क्या हरज है, ले लो; मगर याद रखो, ज्योंही हाथ में रुपये आ जायँ गहने छुड़ाने पड़ेंगे। सच कहते हैं, मातृत्व दीर्घ तपस्या है। माता के सिवाय इतना स्नेह कौन कर सकता है। हम बड़े अभागे हैं कि माता के प्रति जितनी श्रद्धा रखनी चाहिए उसका शतांश भी नहीं रखते।

दोनों ने जैसे बड़े धर्म-संकट में पड़कर गहनों की पिटारी सँभाली और चलते बने। माता वात्सल्य-भरी आँखों से उनकी ओर देख रही थी, और उसकी सम्पूर्ण आत्मा का आशीर्वाद जैसे उन्हें अपनी गोद में समेट लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। आज कई महीने के बाद उनके भग्न मातृहृदय को अपना सर्वस्व अर्पण करके जैसे आनन्द की विभूति मिली। उसकी स्वामिनी-कल्पना इसी त्याग के लिए, इसी आत्म-समर्पण के लिए जैसे कोई मार्ग ढूँढती रहती थी। अधिकार या लोभ या ममता की वहाँ गन्ध तक न थी। त्याग ही उसका आनन्द और त्याग ही उसका अधिकार है। आज अपना खोया हुआ अधिकार पाकर, अपनी सिरजी हुई प्रतिमा पर अपने प्राणों की भेंट करके वह निहाल हो गयी।

4

तीन महीने और गुजर गये। माँ के गहनों पर हाथ साफ करके चारों भाई उसकी दिलजोई करने लगे थे। अपनी स्त्रियों को भी समझाते रहते थे कि उसका दिल न दुखायें। अगर थोड़े शिष्टाचार से उसकी आत्मा को शान्ति मिलती है, तो इसमें क्या हानि है। चारों करते अपने मन की, पर माता से सलाह ले लेते। या ऐसा जाल फैलाते कि वह सरला उनकी बातों में आ जाती और हरेक काम में सहमत हो जाती। बाग को बेचना उसे बहुत बुरा लगता था; लेकिन चारों ने ऐसी माया रची कि वह उसे बेचने पर राजी हो गयी; किन्तु कुमुद के विवाह के विषय में मतैक्य न हो सका। माँ पं. मुरारीलाल पर जमी हुई थी, लड़के दीनदयाल पर अड़े हुए थे। एक दिन आपस में कलह हो गया।

फूलमती ने कहा—माँ-बाप की कमाई में बेटी का हिस्सा भी है। तुम्हें सोलह हजार का एक बाग मिला, पच्चीस हजार का एक मकान। बीस हजार नकद में क्या पाँच हजार भी कुमुद का हिस्सा नहीं है ?

कामता ने नम्रता से कहा—अम्माँ, कुमुद आपकी लड़की है, तो हमारी बहिन है। आप दो-चार साल में प्रस्थान कर जायँगी, पर हमारा और उसका बहुत दिनों तक सम्बन्ध रहेगा। तब यथाशक्ति कोई ऐसी बात न करेंगे, जिससे उसका अमंगल हो; लेकिन हिस्से की बात कहती हो; तो कुमुद का हिस्सा कुछ नहीं। दादा जीवित थे तब और बात थी। वह उसके विवाह में जितना चाहते खर्च करते। कोई उनका हाथ न पकड़ सकता था; लेकिन अब तो हमें एक-एक पैसे की किफायत करनी पड़ेगी, जो काम एक हजार में हो जाय उसके लिए पाँच हजार खर्च करना कहाँ की बुद्धिमानी है।

उमानाथ ने सुधारा—पाँच हजार क्यों, दस हजार कहिए।

कामता ने भवें सिकोड़कर कहा—नहीं, मैं पाँच हजार ही कहूँगा। एक विवाह में पाँच हजार खर्च करने की हमारी हैसियत नहीं है।

फूलमती ने जिद पकड़कर कहा—विवाह तो मुरारीलाल के पुत्र से ही होगा; चाहे पाँच हजार खर्च हों, चाहे दस हजार। मेरे पति की कमाई है। मैंने मर-मर कर जोड़ा है। अपनी इच्छा से खर्च करूँगी। तुम्हीं ने मेरी कोख से नहीं जन्म लिया है। कुमुद भी उसी कोख से आयी है। मेरी आँखों में तुम सब बराबर हो। मैं किसी से कुछ माँगती नहीं। तुम बैठे तमाशा देखो, मैं सब कुछ कर लूँगी, बीस हजार में पाँच हजार कुमुद का है।

कामतानाथ को अब कड़वे सत्य की शरण लेने के सिवा और कोई मार्ग न रहा। बोला—अम्माँ, तुम बरबस बात बढ़ाती हो। जिन रुपयों को तुम अपना समझती हो, वह तुम्हारे नहीं है, हमारे हैं। तुम हमारी अनुमति के बिना उनमें से कुछ नहीं खर्च कर सकतीं।

फूलमती को जैसे सर्प ने डस लिया—क्या कहा ! फिर तो कहना ! मैं अपने ही संचे रुपये अपनी इच्छा से नहीं खर्च कर सकती।

'वह रुपये तुम्हारे नहीं रहे, हमारे हो गये।'

'तुम्हारे होंगे, लेकिन मेरे मरने के पीछे।'

'नहीं, दादा के मरते ही हमारे हो गये।'

उमानाथ ने बेहयाई से कहा—'अम्माँ कानून-कायदा तो जानती नहीं, नाहक उलझती हैं।'

फूलमती क्रोध-विह्वल होकर बोली—भाड़ में जाय तुम्हारा कानून। मैं ऐसे कानून को नहीं मानती। तुम्हारे दादा ऐसे कोई बड़े धन्नासेठ न थे। मैंने ही पेट और तन काटकर यह गृहस्थी जोड़ी है, नहीं आज बैठने को छाँह न मिलती। मेरे जीते-जी तुम मेरे रुपये नहीं छू सकते। मैंने तीन भाइयों के विवाह में दस-दस हजार खर्च किये हैं। वही मैं कुमुद के विवाह में भी खर्च करूँगी।

कामतानाथ भी गर्म पड़ा—आपको कुछ भी खर्च करने का अधिकार नहीं है।

उमानाथ ने बड़े भाई को डाँटा, आप खामख्वाह अम्माँ के मुँह लगते हैं भाई साहब ! मुरारीलाल को पत्र लिख दीजिए कि तुम्हारे यहाँ कुमुद का विवाह न होगा। बस, छुट्टी हुई। यह कायदा-कानून तो जानती नहीं, व्यर्थ की बहस करती हैं।

फूलमती ने संयमित स्वर में कहा—अच्छा, क्या कानून है, जरा मैं भी सुनूँ ?

उमा ने निरीह भाव से कहा—कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक केवल रोटी-कपड़े का है।

फूलमती ने तड़प कर पूछा—किसने यह कानून बनाया है ?

उमा शान्त-स्थिर स्वर में बोला—हमारे ऋषियों ने, महाराज मनु ने, और किसने?

फूलमती एक क्षण अवाक् रहकर आहत कण्ठ से बोली—तो इस घर में मैं तुम्हारे टुकड़ों पर पड़ी हुई हूँ ?

उमानाथ ने न्यायाधीश की निर्ममता से कहा—तुम जैसा समझो।

फूलमती की सम्पूर्ण आत्मा मानो इस वज्रपात से चीत्कार करने लगी। उसके मुख से जलती हुई चिनगारियों की भाँति यह शब्द निकल पड़े—मैंने घर बनवाया; मैंने सम्पत्ति जोड़ी, मैंने तुम्हें जन्म दिया, पाला और आज मैं इस घर में गैर हूँ ? मनु का यही कानून है और तुम उसी कानून पर चलना चाहते हो ? अच्छी बात है। अपना घर-द्वार लो। मुझे तुम्हारी आश्रिता बनकर रहना स्वीकार नहीं। इससे कहीं अच्छा है कि मर जाऊँ। वाह रे अन्धेर ! मैंने पेड़ लगाया और मैं ही उसकी छाँह में खड़ी हो नहीं सकती; अगर यही कानून है, तो इसमें आग लग जाय।

चारों युवकों पर माता के इस क्रोध और आतंक का कोई असर न हुआ। कानून का फौलादी कवच उनकी रक्षा कर रहा था। इन काँटों का उन पर क्या असर हो सकता था।

जरा देर में फूलमती उठकर चली गयी। आज जीवन में पहली बार उसका वात्सल्य-भग्न मातृत्व अभिशाप बनकर उसे धिक्कारने लगा। जिस मातृत्व को उसने जीवन की विभूति समझा था, जिसके चरणों पर वह सदैव अपनी समस्त अभिलाषाओं और कामनाओं को अर्पित करके अपने को धन्य मानती थी, वही मातृत्व आज उसे अग्निकुण्ड-सा जान पड़ा, जिसमें उसका जीवन जलकर भस्म हो रहा था।

सन्ध्या हो गयी थी। द्वार पर नीम का वृक्ष सिर झुकाये निस्तब्ध खड़ा था, मानो संसार की गति पर क्षुब्ध हो रहा हो। अस्तांचल की ओर प्रकाश और जीवन का देवता फूलमती के मातृत्व की ही भाँति अपनी चिता में जल रहा था।

5

फूलमती अपने कमरे में जाकर लेटी, तो उसे मालूम हुआ, उसकी कमर टूट गयी है। पति

के मरते ही अपने पेट के लड़के उसके शत्रु हो जायँगे, उसको स्वप्न में भी गुमान न था। जिन लड़कों को उसने अपना हृदय-रक्त पिला-पिलाकर पाला, वही आज उसके हृदय पर यों आघात कर रहे हैं। अब वह घर उसे काँटों की सेज हो रहा था। जहाँ उसकी कुछ कद्र नहीं, कुछ गिनती नहीं, वहाँ अनाथों की भाँति पड़ी रोटियाँ खाये, यह उसकी अभिमानी प्रकृति के लिए असह्य था।

पर उपाय ही क्या था। वह लड़कों से अलग होकर रहे भी तो नाक किसकी कटेगी ! संसार उसे थूके तो क्या, और लड़कों को थूके तो क्या, बदनामी तो उसी की है। दुनिया यही तो कहेगी कि चार जवान बेटों के होते बुढ़िया अलग पड़ी हुई मजूरी करके पेट पाल रही है। जिन्हें उसने हमेशा नीच समझा, वही उस पर हँसेंगे। नहीं, वह अपमान इस अनादर से कहीं ज्यादा हृदयविदारक था। अब अपना और घर का परदा ढँका रखने में ही कुशल है। हाँ, अब उसे अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाना पड़ेगा। समय बदल गया है। अब तक स्वामिनी बनकर रही, अब लौंडी बनकर रहना पड़ेगा। ईश्वर की यही इच्छा है, अपने बेटों की बातें और लातें गैरों की बातों और लातों की अपेक्षा फिर भी गनीमत है।

वह बड़ी देर तक मुँह ढाँपे अपनी दशा पर रोती रही। सारी रात इसी आत्मवेदना में कट गयी। शरद का प्रभात डरता-डरता ऊषा की गोद से निकला, जैसे कोई कैदी छिपकर जेल से भाग आया हो। फूलमती अपने नियम के विरुद्ध आज तड़के ही उठी, रात भर में उसका मानसिक परिवर्तन हो चुका था। सारा घर सो रहा था और वह आँगन में झाडू लगा रही थी। रात ओस में भीगी हुई पक्की जमीन उसके नंगे पैरों में काँटों की तरह चुभ रही थी। पंडितजी उसे कभी इतने सबेरे उठने न देते थे। शीत उसके लिए बहुत हानिकर थी। पर अब वह दिन नहीं। प्रकृति को भी समय के साथ बदल देने का प्रयत्न कर रही थी। झाडू से फुर्सत पाकर उसने आग जलायी और चावल-दाल की कंकड़ियाँ चुनने लगी। कुछ देर में लड़के जागे। बहुएँ उठीं। सभी ने बुढ़िया को सर्दी से सिकुड़े हुए काम करते देखा, पर किसी ने यह न कहा कि अम्माँ, क्यों हलकान होती हो ? शायद सब-के-सब बुढ़िया के इस मान-मर्दन पर प्रसन्न थे।

आज से फूलमती का यही नियम हो गया कि जी-तोड़कर घर का काम करना, और अन्तरंग नीति से अलग रहना। उसके मुख पर जो एक आत्मगौरव झलकता रहता था, उसकी जगह अब गहरी वेदना छाई हुई नजर आती थी। जहाँ बिजली जलती थी, वहाँ अब तेल का दिया टिमटिमा रहा था, जिसे बुझा देने के लिए हवा का एक हलका-सा झोंका काफी है।

मुरारीलाल को इन्कारी पत्र लिखने की बात पक्की हो चुकी थी। दूसरे दिन पत्र लिख दिया गया। दीनदयाल से कुमुद का विवाह निश्चित हो गया, दीनदयाल की उम्र चालीस से कुछ अधिक थी, मर्यादा में भी कुछ हेठे थे, पर रोटी-दाल से खुश थे। बिना किसी ठहराव के विवाह करने पर राजी हो गये। तिथि नियत हुई, बारात आयी, विवाह हुआ और कुमुद विदा कर दी गयी। फूलमती के दिल पर क्या गुजर रही थी, इसे कौन जान सकता है। कुमुद के दिल पर क्या गुजर रही थी, इसे कौन जान सकता है; पर चारों भाई बहुत प्रसन्न थे, मानो उनके हृदय का काँटा निकल गया हो। ऊँचे कुल की कन्या, मुँह

कैसे खोलती। भाग्य में सुख भोगना लिखा होगा, सुख भोगेगी, दुःख भोगना लिखा होगा, दुःख झेलेगी। हरि इच्छा बेकसों का अन्तिम अवलम्ब है। घरवालों ने जिससे विवाह कर दिया, उसमें हजार ऐब हों, तो भी वह उसका उपास्य, उसका स्वामी है। प्रतिरोध उसकी कल्पना से परे था।

फूलमती ने किसी काम में दखल न दिया। कुमुद को क्या दिया गया, मेहमानों का कैसा सत्कार किया गया, किसके यहाँ से नेवते में क्या आया, किसी बात से भी उसे सरोकार न था। उससे कोई सलाह भी ली गयी तो यही कहा—बेटा, तुम लोग जो करते हो, अच्छा ही करते हो, मुझसे क्या पूछते हो।

जब कुमुद के लिए द्वार पर डोली आ गयी और कुमुद माँ के गले लिपटकर रोने लगी, तो वह बेटी को अपनी कोठरी में ले गयी और जो कुछ सौ-पचास रुपये और दो-चार मामूली गहने उसके पास बच रहे थे बेटी के अंचल में डालकर बोली—बेटी, मेरी तो मन की मन में रह गयी; नहीं क्या आज तुम्हारा विवाह इस तरह होता और तुम इस तरह विदा की जातीं।

आज तक फूलमती ने अपने गहनों की बात किसी से न कही थी। लड़कों ने उसके साथ जो कपट-व्यवहार किया था, इसे चाहे वह अब तक न समझी हो, लेकिन इतना जानती थी कि गहने फिर न मिलेंगे और मनोमालिन्य बढ़ने के सिवा कुछ हाथ न लगेगा; लेकिन इस अवसर पर उसे अपनी सफाई देने की जरूरत मालूम हुई। कुमुद यह भाव मन में लेकर जाये कि अम्माँ ने अपने गहने बहुओं के लिए रख छोड़े, इसे वह किसी तरह न सह सकती थी, इसीलिए वह अपनी कोठरी में गयी थी; लेकिन कुमद को पहले ही इस कौशल की टोह मिल चुकी थी, उसने गहने और रुपये अंचल से निकालकर माता के चरणों पर रख दिये और बोली—अम्माँ, मेरे लिए तुम्हारा आशीर्वाद लाखों रुपयों के बराबर है। तुम इन चीजों को अपने पास रक्खो। न जाने अभी तुम्हें किन विपत्तियों का सामना करना पड़े।

फूलमती कुछ कहना ही चाहती थी कि उमानाथ ने आकर कहा—क्या कर रही है कुमुद ? चल, जल्दी कर। साइत टली जाती है। वह लोग हाय-हाय कर रहे हैं, फिर तो दो-चार महीने में आयेगी ही, जो कुछ लेना-देना हो, ले लेना।

फूलमती के घाव पर जैसे मनों निमक पड़ गया। बोली—मेरे पास अब क्या है भैय्या, जो मैं इसे दूँगी। जावो बेटी, भगवान तुम्हारा सोहाग अमर करें।

कुमुद विदा हो गयी। फूलमती पछाड़ खाकर गिर पड़ी। जीवन की अंतिम लालसा नष्ट हो गयी।

6

एक साल बीत गया।

फूलमती का कमरा घर के सब कमरों में बड़ा और हवादार था। कई महीनों से उसने बड़ी बहू के लिए खाली कर दिया था और खुद एक छोटी-सी कोठरी में रहने लगी थी, जैसे काई भिखारिन हो। बेटों और बहुओं से अब उसे जरा भी स्नेह न था। वह अब घर की लौंडी थी। घर के किसी प्राणी, किसी वस्तु, किसी प्रसंग से उसे प्रयोजन न था। वह केवल

इसीलिए जीती थी कि मौत न आती थी। सुख या दुःख का अब उसे लेशमात्र भी ज्ञान न था। उमानाथ का औषधालय खुला, मित्रों की दावत हुई, नाच-तमाशा हुआ। दयानाथ का प्रेस खुला, फिर जलमा हुआ। सीतानाथ को वजीफा मिला और विलायत गया। फिर उत्सव हुआ। कामतानाथ के बड़े लड़के का यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ, फिर धूमधाम हुई; लेकिन फूलमती के मुख पर आनन्द की छाया तक न आयी। कामातानाथ टाईफाईड में महीने भर बीमार रहा और मरकर उठा। दयानाथ ने अबकी अपने पत्र का प्रचार बढ़ाने के लिए वास्तव में एक आपत्तिजनक लेख लिखा और छः महीने की सजा पायी। उमानाथ ने एक फौजदारी के मामले में रिश्वत लेकर गलत रिपोर्ट लिखी और उनकी सनद छीन ली गयी; पर फूलमती के चेहरे पर रंज की परछाईं तक न पड़ी। उसके जीवन में अब कोई आशा, कोई दिलचस्पी, कोई चिन्ता न थी। बस, पशुओं की तरह काम करना और खाना, यही उसकी जिन्दगी के दो काम थे। जानवर मारने से काम करता है, पर खाता है मन से। फूलमती बेकहे काम करती थी, पर खाती थी विष के कौर की तरह। महीनों सिर में तेल न पड़ता, महीनों कपड़े न धुलते, कुछ परवाह नहीं। वह चेतनाशून्य हो गयी थी।

सावन की झड़ी लगी हुई थी मलेरिया फैल रहा था। आकाश में मटियाले बादल थे, जमीन पर मटियाला पानी। आर्द्र वायु शीत-ज्वर और श्वास का वितरण करती फिरती थी। घर की महरी बीमार पड़ गयी। फूलमती ने घर के सारे बर्तन माँजे, पानी में भीग-भीगकर सारा काम किया। फिर आग जलाई और चूल्हे पर पतीलियाँ चढ़ा दीं। लड़कों को समय पर भोजन तो मिलना ही चाहिए। सहसा उसे याद आया कामतानाथ नल का पानी नहीं पीते। उसी वर्षा में गंगाजल लाने चली।

कामतानाथ ने पलंग पर लेटे-लेटे कहा—रहने दो अम्माँ, मैं पानी भर लाऊँगा, आज महरी खूब बैठ रही।

फूलमती ने मटियाले आकाश की ओर देखकर कहा—तुम भीग जाओगे बेटा, सर्दी हो जायगी।

कामतानाथ बोले—तुम भी भीग रही हो। कहीं बीमार न पड़ जाओ।

फूलमती निर्मम भाव से बोली—मैं बीमार न पड़ूँगी ! मुझे भगवान ने अमर कर दिया है।

उमानाथ भी वहीं बैठा था। उसके औषधालय में कुछ आमदनी न होती थी; इसीलिए बहुत चिन्तित रहता था। भाई-भावज की मुँह-देखी करता रहता था। बोला—जाने भी दो भैया। बहुत दिनों बहुओं पर राज कर चुकी हैं, उसका प्रायश्चित तो करने दो।

गंगा बढ़ी हुई थी, जैसे समुद्र हो। क्षितिज सामने के कूल से मिला हुआ था। किनारे के वृक्षों की केवल फुनगियाँ पानी के ऊपर रह गई थीं। घाट ऊपर तक पानी में डूब गये थे। फूलमती कलसा लिये नीचे उतरी। पानी भरा और ऊपर जा रही थी कि पाँव फिसला। सँभल न सकी। पानी में गिर पड़ी। पल भर हाथ-पाँव चलाये, फिर लहरें उसे नीचे खींच ले गयीं। किनारे पर दो-चार पंडे चिल्लाये—'अरे दौड़ो, बुढ़िया डूबी जाती है।' दो-चार आदमी दौड़े भी, लेकिन फूलमती लहरों में समा गयी थी, उन बल खाती हुई लहरों में, जिन्हें देखकर हृदय काँप उठता था।

एक ने पूछा—यह कौन बुढ़िया थी ?

'अरे, वही पण्डित अयोध्यानाथ की विधवा है।'
'अयोध्यानाथ तो बड़े आदमी थे।'
'हाँ, थे तो; पर इसके भाग्य में ठोकर खाना लिखा था।'
'उनके तो कई लड़के बड़े-बड़े हैं और सब कमाते हैं ?'
'हाँ, सब हैं भाई, मगर भाग्य भी तो कोई वस्तु है ?'

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'चांद', नवम्बर, 1932 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप 'बदनसीब मां' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'वारदात' में संकलित एवं प्रकाशित।]

अनुभव

प्रियतम को एक वर्ष की सजा हो गयी। और अपराध केवल इतना था, कि तीन दिन पहले जेठ की तपती दोपहरी में उन्होंने राष्ट्र के कई सेवकों का शर्बत-पान से सत्कार किया था। मैं उस वक्त अदालत में खड़ी थी। कमरे के बाहर सारे नगर की राजनैतिक चेतना किसी बंदी पशु की भाँति खड़ी चीत्कार कर रही थी। मेरे प्राणधन हथकड़ियों से जकड़े हुए लाए गए। चारों ओर सन्नाटा छा गया। मेरे भीतर हाहाकार मचा हुआ था, मानों प्राण पिघला जा रहा हो। आवेश की लहरें-सी उठ-उठकर समस्त शरीर को रोमांचित किये देती थीं। ओह इतना गर्व मुझे कभी नहीं हुआ था। वह अदालत, कुरसी पर बैठा हुआ अंग्रेज अफसर, लाल जरीदार पगड़ियाँ बाँधे हुए पुलिस के कर्मचारी सब मेरी आँखों में तुच्छ जान पड़ते थे। बार-बार जी में आता था, दौड़कर जीवन धन के चरणों में लिपट जाऊँ और उसी दशा में प्राण त्याग दूँ। कितनी शान्त, अविचलित, तेज और स्वाभिमान से प्रदीप्त मूर्ति थी। ग्लानि, विषाद या शोक की छाया भी न थी। नहीं, उन ओठों पर एक स्फूर्ति से भरी हुई मनोहारिणी, ओजस्वी मुस्कान थी। इस अपराध के लिए एक वर्ष का कठिन कारावास ! वाह रे न्याय ! तेरी बलिहारी है। मैं ऐसे हजार अपराध करने को तैयार थी। प्राणनाथ ने चलते समय एक बार मेरी ओर देखा, कुछ मुस्कराये, फिर उनकी मुद्रा कठोर हो गई। अदालत से लौटकर मैंने पाँच रुपये की मिठाई मँगवाई और स्वयंसेवकों को बुलाकर खिलाया। और संध्या समय मैं पहली बार कांग्रेस के जलसे में शरीक हुई—शरीक ही नहीं हुई, मंच पर जाकर बोली और सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ले ली। मेरी आत्मा में इतनी शक्ति कहाँ से आ गई, नहीं कह सकती। सर्वस्व लुट जाने के बाद फिर किसकी शंका और किसका डर। विधाता का कठोर-से-कठोर आघात भी अब मेरा क्या अहित कर सकता था?

2

दूसरे दिन मैंने दो तार दिए। एक पिताजी को, दूसरा ससुरजी को। ससुरजी पेंशन पाते थे। पिताजी जंगल के महकमे में अच्छे पद पर थे; पर सारा दिन गुजर गया, तार का जवाब नदारद ! दूसरे दिन भी कोई जवाब नहीं। तीसरे दिन दोनों महाशयों के पत्र आये। दोनों

जामे से बाहर थे। ससुर जी ने लिखा—आशा थी, तुम लोग बुढ़ापे में मेरा पालन करोगे। तुमने उस आशा पर पानी फेर दिया। क्या अब चाहती हो, मैं भिक्षा माँगूँ। मैं सरकार से पेंशन पाता हूँ। तुम्हें आश्रय देकर मैं अपनी पेंशन से हाथ नहीं धो सकता। पिताजी के शब्द इतने कठोर न थे, पर भाव लगभग ऐसा ही था। इसी साल उन्हें ग्रेड मिलनेवाला था। वह मुझे बुलायेंगे, तो सम्भव है, ग्रेड से वंचित होना पड़े। हाँ, वह मेरी सहायता मौखिक रूप से करने को तैयार थे। मैंने दोनों पत्र फाड़कर फेंक दिये और उन्हें कोई पत्र न लिखा। हा स्वार्थ ! तेरी माया कितनी प्रबल है ! अपना ही पिता, केवल स्वार्थ में बाधा पड़ने के भय से, लड़की की तरफ से इतना निर्दय हो जाय। अपना ससुर अपनी बहू की ओर से इतना उदासीन हो जाय! मगर अभी मेरी उम्र ही क्या है। अभी तो सारी दुनिया देखने को पड़ी है।

अब तक मैं अपने विषय में निश्चिन्त थी; लेकिन अब यह नई चिन्ता सवार हुई। इस निर्जन घर में, निराधार, निराश्रय कैसी रहूँगी। मगर जाऊँगी कहाँ ? अगर कोई मर्द होती, तो काँग्रेस के आश्रम में चली जाती, या कोई मजूरी कर लेती। मेरे पैरों में नारीत्व की बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं। अपनी रक्षा की इतनी चिन्ता न थी, जितनी अपने नारीत्व की रक्षा की। अपनी जान की फिक्र न थी; पर नारीत्व की ओर किसी की आँख भी न उठनी चाहिए।

किसी की आहट पाकर मैंने नीचे देखा। दो आदमी खड़े थे। जी में आया, पूछूँ तुम कौन हो। यहाँ क्यों खड़े हो ? मगर फिर खयाल आया, मुझे यह पूछने का क्या हक ? आम रास्ता है। जिसका जी चाहे खड़ा हो।

पर मुझे खटका हो गया। उस शंका को किसी तरह दिल से न निकाल सकती थी। वह एक चिनगारी की भाँति हृदय के अन्दर समा गई थी।

गरमी से देह फुँकी जाती थी; पर मैंने कमरे का द्वार भीतर से बन्द कर लिया। घर में एक बड़ा-सा चाकू था। उसे निकालकर सिरहाने रख लिया। वह शंका सामने बैठी घूरती हुई मालूम होती थी।

किसी ने पुकारा। मेरे रोयें खड़े हो गए। मैंने द्वार से कान लगाया। कोई मेरी कुण्डी खटखटा रहा था। कलेजा धक्-धक् करने लगा। वही दोनों बदमाश होंगे। क्यों कुण्डी खटखटा रहे हैं ? मुझसे क्या काम है ? मुझे झुँझलाहट आ गई। मैंने द्वार खोला और छज्जे पर खड़ी होकर जोर से बोली—कौन कुण्डी खड़खड़ा रहा है ?

आवाज सुनकर मेरी शंका शांत हो गई। कितना ढारस हो गया ! यह बाबू ज्ञानचंद थे। मेरे पति के मित्रों में इनसे ज्यादा सज्जन दूसरा नहीं है। मैंने नीचे जाकर द्वार खोल दिया। देखा तो एक स्त्री भी थी। वह मिसेज ज्ञानचन्द थीं। यह मुझसे बड़ी थीं। पहले-पहल मेरे घर आई थीं। मैंने उनके चरण स्पर्श किए। हमारे वहाँ मित्रता मर्दों ही तक रहती है। औरतों तक नहीं जाने पाती।

दोनों जने ऊपर आये ! ज्ञान बाबू एक स्कूल में एक मास्टर हैं। बड़े ही उदार, विद्वान्, निष्कपट, पर आज मुझे मालूम हुआ कि उनकी पथ-प्रदर्शिका उनकी स्त्री हैं। वह दोहरे बदन की, प्रतिभाशाली महिला थीं। चेहरे पर ऐसा रोब था, मानों कोई रानी हों। सिर से पाँव तक गहनों से लदी हुई। मुख सुन्दर न होने पर भी आकर्षक था। शायद मैं उन्हें कहीं और देखती; तो मुँह फेर लेती। गर्व की सजीव प्रतिमा थीं; वह बाहर जितनी कठोर, भीतर उतनी ही दयालु।

'घर कोई पत्र लिखा ?'—यह प्रश्न उन्होंने कुछ हिचकते हुए किया।

मैंने कहा—हाँ, लिखा था।

'कोई लेने आ रहा है ?'

'जी नहीं। न पिता जी अपने पास रखना चाहते हैं, न ससुर जी।'

'तो फिर ?'

'फिर क्या, अभी तो यहीं पड़ी हूँ।'

'तो मेरे घर क्यों नहीं चलतीं ? अकेले तो इस घर में मैं न रहने दूँगी।'

'खुफिया के दो आदमी इस वक्त भी डटे हुए हैं।'

'मैं पहले ही समझ गई थी, दोनों खुफिया के आदमी होंगे।'

ज्ञान बाबू ने पत्नी की ओर देखकर, मानो उसकी आज्ञा से कहा—'तो मैं जाकर ताँगा लाऊँ ?'

देवीजी ने इस तरह देखा, मानो कह रही हों, क्या अभी तुम यहीं खड़े हो ?

मास्टर साहब चुपके से द्वार की ओर चले।

'ठहरो'—देवीजी बोलीं—'कै ताँगे लाओगे ?'

'कै !' मास्टर साहब घबड़ा गये।

'हाँ कै ! एक ताँगे पर तीन सवारियाँ ही बैठेंगी। सन्दूक, बिछावन, बरतन-भाँडे क्या मेरे सिर पर जायँगे ?'

'तो दो लेता आऊँगा।'—मास्टर साहब डरते-डरते बोले।

'एक ताँगे में कितना सामान भर दोगे ?'

'तो तीन लेता आऊँ ?'

'अरे तो जाओगे भी। जरा-सी बात के लिए घंटा भर लगा दिया।'

मैं कुछ कहने न पाई थी, कि ज्ञान बाबू चल दिये। मैंने सकुचाते हुए कहा—बहन, तुम्हें मेरे जाने से कष्ट होगा और...

देवीजी ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—हाँ, होगा तो अवश्य। तुम दोनों जून में दो-तीन पाव भर आटा खाओगी, कमरे के एक कोने में अड्डा जमा लोगी, सिर में आने का तेल डालोगी। यह क्या थोड़ा कष्ट है !

मैंने झेंपते हुए कहा—आप तो बना रही हैं।

देवीजी ने सहृदय भाव से मेरा कंधा पकड़कर कहा—जब तुम्हारे बाबूजी, लौट आवें; तो मुझे भी अपने घर मेहमान रख लेना। मेरा घाटा पूरा हो जायगा। अब तो राजी हुई। चलो असबाब बाँधो। खाट-वाट कल मँगवा लेंगे।

3

मैंने ऐसी सहृदय, उदार, मीठी बातें करनेवाली स्त्री नहीं देखी। मैं उनकी छोटी बहन होती, तो भी शायद इससे अच्छी तरह न रखतीं। चिन्ता या क्रोध को तो जैसे उन्होंने जीत लिया हो। सदैव उनके मुख पर मधुर विनोद खेला करता था। कोई लड़का-वाला न था, पर मैंने उन्हें कभी दुखी नहीं देखा। ऊपर के काम के लिए लौंडा रख लिया था। भीतर का सारा काम खुद करतीं। इतना कम खाकर और इतनी मेहनत

करके वह कैसे इतनी हृष्ट-पुष्ट थीं, मैं नहीं कह सकती। विश्राम तो जैसे उनके भाग्य में ही नहीं लिखा था। जेठ की दुपहरी में भी न लेटती थीं ! हाँ, मुझे कुछ न करने देतीं, उस पर जब देखो कुछ खिलाने को सिर पर सवार। मुझे यहाँ बस यही एक तकलीफ थी।

मगर आठ ही दिन गुजरे थे कि एक दिन मैंने उन्हीं दोनों खुफियों को नीचे बैठा देखा। मेरा माथा ठनका। यह अभागे यहाँ भी मेरे पीछे पड़े हैं। मैंने तुरन्त बहनजी से कहा—वे दोनों बदमाश यहाँ भी मँडरा रहे हैं।

उन्होंने हिकारत से कहा—कुत्ते हैं। फिरने दो।

मैं चिन्तित होकर बोली—कोई स्वाँग न खड़ा करें।

उसी बेपरवाही से बोलीं—भूँकने के सिवा और क्या कर सकते हैं ?

मैंने कहा—काट भी तो सकते हैं।

हँसकर बोलीं—इसके डर से कोई भाग तो नहीं जाता न !

मगर मेरी दाल में मक्खी पड़ गयी। बार-बार छज्जे पर जाकर उन्हें टहलते देख आती। यह सब मेरे पीछे पड़े हुए हैं ! आखिर मैं नौकरशाही का क्या बिगाड़ सकती हूँ। मेरी सामर्थ्य ही क्या है ? क्या यह सब इस तरह से मुझे यहाँ से भगाने पर तुले हैं। इससे उन्हें क्या मिलेगा ? यही तो कि मैं मारी-मारी फिरूँ ! कितनी नीची तबियत है ?

एक हफ्ता और गुजर गया। खुफिया ने पिंड न छोड़ा। मेरे प्राण सूखते जाते थे। ऐसी दशा में यहाँ रहना मुझे अनुचित मालूम होता था; पर देवीजी से कुछ कह न सकती थी।

एक दिन शाम को ज्ञान बाबू आये, तो घबड़ाये हुए थे। मैं बरामदे में थी। परवल छील रही थी। ज्ञान बाबू ने कमरे में जाकर देवीजी को इशारे से बुलाया।

देवीजी ने बैठे-बैठे कहा—पहले कपड़े-वपड़े उतारो, मुँह-हाथ धोओ, कुछ खाओ, फिर जो कहना हो, कह देना।

ज्ञान बाबू को धैर्य कहाँ ? पेट में बात की गन्ध तक न पचती थी। आग्रह से बुलाया—तुमसे उठा नहीं जाता। मेरी जान आफत में है।

देवी ने बैठे-बैठे कहा—तो कहते क्यों नहीं, क्या कहना है ?

'यहाँ आओ।'

'क्या यहाँ कोई और बैठा हुआ है ?'

मैं वहाँ से चली। बहन ने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं जोर करने पर भी न छुड़ा सकी। ज्ञान बाबू मेरे सामने न कहना चाहते थे; पर इतना सब्र भी न था कि जरा देर रुक जाते। बोले—प्रिन्सिपल से मेरी लड़ाई हो गयी।

देवी ने बनावटी गम्भीरता से कहा—सच ! तुमने उसे खूब पीटा न ?

'तुम्हें दिल्लगी सूझती है ! यहाँ नौकरी जा रही है।'

'जब यह डर था, तो लड़े क्यों ?'

'मैं थोड़े ही लड़ा। उसी ने मुझे बुलाकर डाँटा।'

'बेकसूर ?'

'अब तुमसे क्या कहूँ।'

'फिर वही पर्दा। मैं कह चुकी, यह मेरी बहन है। मैं इससे कोई पर्दा नहीं रखना चाहती।'

'और जो इन्हीं के बारे में कोई बात हो, तो ?'

देवीजी ने जैसे पहेली बूझकर कहा—अच्छा समझ गयी। कुछ खुफियों का झगड़ा होगा। पुलिस ने तुम्हारे प्रिन्सिपल से शिकायत की होगी।

ज्ञान बाबू ने इतनी आसानी से अपनी पहेली का बूझा जाना स्वीकार न किया।

बोले—पुलिस ने प्रिन्सिपल से नहीं, हाकिम जिला से कहा। उसने प्रिन्सिपल को बुलाकर मुझसे जवाब-तलब करने का हुक्म दिया।

देवी ने अन्दाज से कहा—समझ गयी। प्रिन्सिपल ने तुमसे कहा होगा, कि उस स्त्री को घर से निकाल दो।

'हाँ, यही, समझ लो !'

'तो तुमने क्या जवाब दिया ?'

'अभी कोई जवाब नहीं दिया। वहाँ खड़े-खड़े क्या कहता !'

देवी जी ने उन्हें आड़े हाथों लिया—'जिस प्रश्न का एक ही जवाब हो, उसमें सोच-विचार कैसा ?'

ज्ञान बाबू सिटपिटाकर बोले—लेकिन कुछ सोचना तो जरूरी था।

देवीजी की त्योरियाँ बदल गयीं। आज मैंने पहली बार उनका यह रूप देखा ! बोलीं—तुम उस प्रिन्सिपल से जाकर कह दो, मैं उसे किसी तरह नहीं छोड़ सकता और न माने, तो इस्तीफा दे दो। अभी जाओ। लौटकर हाथ-मुँह धोना।

मैंने रोकर कहा—बहन मेरे लिए...

देवी ने डाँट बतायी—तू चुप रह, नहीं कान पकड़ लूँगी। तू क्यों बीच में कूदती है ! रहेंगे, तो साथ रहेंगे। मरेंगे तो साथ मरेंगे। इस मर्दुए को मैं क्या कहूँ ? आधी उम्र बीत गयी और बात करना न आया। (पति से) खड़े सोच क्या रहे हो, तुम्हें डर लगता हो; तो मैं जाकर कह आऊँ ?

ज्ञान बाबू ने खिसियाकर कहा—तो कल कह दूँगा, इस वक्त कहाँ होगा, कौन जाने।

4

रात-भर मुझे नींद नहीं आयी। बाप और ससुर जिसका मुँह नहीं देखना चाहते, उसका यह आदर ! राह की भिखारिन का यह सम्मान। देवी, तू सचमुच देवी है।

दूसरे दिन ज्ञान बाबू चले तो देवी ने फिर कहा—फैसला करके घर आना। यह न हो कि फिर सोचकर जवाब देने की जरूरत पड़े।

ज्ञान बाबू के चले जाने के बाद मैंने कहा—तुम मेरे साथ बड़ा अन्याय कर रही हो बहनजी। मैं यह कभी नहीं देख सकती कि मेरे कारण तुम्हें यह विपत्ति झेलनी पड़े।

देवी ने हास्य-भाव से कहा—कह चुकी या कुछ और कहना है।

'कह चुकी; मगर अभी बहुत कुछ कहूँगी !'

'अच्छा बता तेरे प्रियतम क्यों जेल गये ? इसीलिए तो कि स्वयंसेवकों का सत्कार किया था। स्वयंसेवक कौन हैं ? यह हमारी सेना के वीर हैं, जो हमारी लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं। स्वयंसेवकों के भी तो बाल-बच्चे होंगे, माँ-बाप होंगे, वह भी तो कोई कारोबार करते होंगे; पर देश की लड़ाई लड़ने के लिए उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है। ऐसे वीरों

का सत्कार करने के लिए जो आदमी जेल में डाल दिया जाय, उसकी स्त्री के दर्शनों से भी आत्मा पवित्र होती है। मैं तुझ पर एहसान नहीं कर रही हूँ, तू मुझ पर एहसान कर रही है।

मैं इस दया-सागर में डुबकियाँ खाने लगी। बोलती क्या।

शाम को जब ज्ञान बाबू लौटे, तो उनके मुख पर विजय का आनन्द था।

देवी ने पूछा—हार की जीत ?

ज्ञान बाबू ने अकड़कर कहा—जीत ! मैंने इस्तीफा दे दिया तो चक्कर में आ गया। उसी वक्त हाकिम जिला के पास गया। वहाँ न जाने मोटर पर बैठकर दोनों में क्या बातें हुईं। लौट कर मुझसे बोला—आप पोलिटिकल जलसों में तो नहीं जाते।

मैंने कहा—कभी भूलकर भी नहीं।

'काँग्रेस के मेम्बर तो नहीं हैं ?'

मैंने कहा—मेम्बर क्या, मेम्बर का दोस्त भी नहीं।

'काँग्रेस-फंड में चन्दा तो नहीं देते ?'

मैंने कहा—'कानी कौड़ी भी कभी नहीं देता।'

'तो हमें आपसे कुछ नहीं कहना है। मैं आपका इस्तीफा वापस करता हूँ।'

देवीजी ने मुझे गले लगा लिया।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन अज्ञात। 'समर यात्रा तथा अन्य कहानियां' (हिन्दी कहानी संग्रह : प्रथम संस्करण 1932) में प्रथम बार संकलित एवं प्रकाशित। 'मानसरोवर भाग-1 में संकलित।]

तगादा

सेठ चेतराम ने स्नान किया, शिवजी को जल चढ़ाया, दो दाने मिर्च चबाये, दो लोटे पानी पिया और सोटा लेकर तगादे पर चले।

सेठजी की उम्र कोई पचास की थी। सिर के बाल झड़ गये थे और खोपड़ी ऐसी साफ़-सुथरी निकल आई थी, जैसे ऊसर खेत। आपकी आँखें थीं तो छोटी लेकिन बिलकुल गोल। चेहरे के नीचे पेट था और पेट के नीचे टाँगें, मानों किसी पीपे में दो मेखें गाड़ दी गई हों। लेकिन, यह खाली-पीपा न था। इसमें सजीवता और कर्मशीलता कूट-कूटकर भरी हुई थी। किसी बाकीदार असामी के सामने इस पीपे का उछलना-कूदना और पैंतरे बदलना देखकर किसी नट का चिगिया भी लज्जित हो जाता। ऐसी आँखें लाल-पीली करते, ऐसे गरजते कि दर्शकों की भीड़ लग जाती थी। उन्हें कंजूस तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि, जब वह दूकान पर होते, तो हरेक भिखमंगे के सामने एक कौड़ी फेंक देते। हाँ, उस समय उनके माथे पर कुछ ऐसा बल पड़ जाता, आँखें कुछ ऐसी प्रचंड हो जातीं, नाक कुछ ऐसी सिकुड़ जाती कि भिखारी फिर उनकी दूकान पर न आता। लहने का बाप तगादा है, इस सिद्धांत के वह अनन्य भक्त थे। जलपान करने के बाद संध्या तक वह बराबर तगादा करते रहते थे। इसमें एक तो घर का भोजन बचता था, दूसरे असामियों के माथे दूध, पूरी, मिठाई

आदि पदार्थ खाने को मिल जाते थे। एक वक्त का भोजन बच जाना कोई साधारण बात नहीं है! एक भोजन का एक आना भी रख लें, तो केवल इसी मद में उन्होंने अपने तीस वर्षों के महाजनी जीवन में कोई आठ सौ रुपये बचा लिये थे। फिर लौटते समय दूसरी बेला के लिए भी दूध, दही, तेल, तरकारी, उपले ईंधन मिल जाते थे। बहुधा संध्या का भोजन भी न करना पड़ता था। इसलिए तगादे से न चूकते थे। आसमान फटा पड़ता हो, आग बरस रही हो, आँधी आती हो; पर सेठ जी प्रकृति के अटल नियम की भाँति तगादे पर जरूर निकल जाते।

सेठानी ने पूछा—भोजन ?

सेठ जी ने गरजकर कहा—नहीं।

'साँझ का ?'

'आने पर देखी जायगी।'

2

सेठजी के एक किसान पर पाँच रुपये आते थे। छः महीने से दुष्ट ने सूद-ब्याज कुछ न दिया था और न कभी कोई सौगात लेकर हाजिर हुआ था। उसका घर तीन कोस से कम न था, इसलिये सेठजी तगने आते थे। आज उन्होंने उसी गाँव चलने का निश्चय कर लिया। आज बिना दुष्ट से रुपये लिये न मानूँगा, चाहे कितना ही रोये, घिघियाये। मगर इतनी लम्बी यात्रा पैदल करना निन्दास्पद था। लोग कहेंगे—नाम बड़े दर्शन थोड़े। कहलाने सेठ, चलते हैं पैदल इसलिए मंथर गति से इधर-उधर ताकते, राहगीरों से बातें करते चले जाते थे कि लोग समझें वायु-सेवन करने जा रहे हैं।

सहसा एक खाली इक्का उनकी तरफ जाता हुआ मिल गया। इक्केवान ने पूछा—कहाँ लाला, कहाँ जाना है ?

सेठजी ने कहा—जाना तो कहीं नहीं है, दो परग तो और है; लेकिन लाओ बैठ जायँ।

इक्केवाले ने चुभती हुई आँखों से सेठजी को देखा, सेठजी ने भी अपनी लाल आँखों से उसे घूरा। दोनों समझ गये, आज लोहे के चने चवाने पड़ेंगे।

इक्का चला। सेठजी ने पहला वार किया—कहाँ घर है मियाँ साहब ?

'घर कहाँ है हुजूर, जहाँ पड़ रहूँ, वहीं घर है। जब घर था तब था। अब तो बेघर, बेदर हूँ और सबसे बड़ी बात यह है कि बेपर हूँ। तकदीर ने पर काट लिये। लँडूरा बनाकर छोड़ दिया। मेरे दादा नवाबी में चकलेदार थे हुजूर, सात जिले के मालिक, जिसे चाहें तोप-दम कर दें, फाँसी पर लटका दें। निकलने के पहले लाखों की थैलियाँ नजर चढ़ जाती थीं हुजूर। नवाब साहब भाई की तरह मानते थे। एक दिन वह थे, एक दिन यह है कि हम आप लोगों की गुलामी कर रहे हैं। दिनों का फेर है।'

सेठजी को हाथ मिलाते ही मालूम हो गया, पक्का फिकैत है, अखाड़ेबाज, इससे पेश पाना मुश्किल है, पर अब तो कुश्ती बद गई थी, अखाड़े में उतर पड़े थे। बोले—तो यह कहो कि बादशाही घराने के हो। यह सूरत ही गवाही दे रही है। दिनों का फेर है भाई, सब दिन बराबर नहीं जाते। हमारे यहाँ लक्ष्मी को चंचला कहते हैं, बराबर चलती रहती हैं, आज मेरे घर कल तुम्हारे घर। तुम्हारे दादा ने रुपये तो खूब छोड़े होंगे?

इक्केवाला—अरे सेठ, उस दौलत का कोई हिसाब था। न जाने कितने तहखाने भरे हुए थे ! बोरों में सोने-चाँदी के डले रखे हुए थे। जवाहरात टोकरियों में भरे पड़े थे। एक-एक पत्थर पचास-पचास लाख का। चमक-दमक ऐसी थी, कि चिराग मात। मगर तकदीर भी तो कोई है। इधर दादा का चालीसवाँ हुआ; उधर नवाबी बुर्द हुई। सारा खजाना लुट गया। छकड़ों पर लाद-लादकर लोग जवाहरात ले गये फिर भी घर में इतना बच रहा था कि अब्बाजान ने जिन्दगी भर ऐश किया—ऐसा ऐश किया, कि क्या कोई भकुवा करेगा। सोलह कहारों के सुखपाल पर निकलते थे। आगे-पीछे चोबदार दौड़ते चलते थे। फिर भी मेरे गुजर भर को उन्होंने बहुत छोड़ा। अगर हिसाब-किताब से रहता तो आज भला आदमी होता; लेकिन रईस का बेटा रईस ही तो होगा। एक बोतल चढ़ाकर बिस्तर से उठता था। रात-रात भर मुजरे होते रहते थे। क्या जानता था, एक दिन यह ठोकरें खानी पड़ेंगी।

सेठ—अल्ला मियाँ का सुकुर करो भाई कि ईमानदारी से अपने बाल-बच्चों की परवरिश तो करते हो। नहीं तो हमारे-तुम्हारे कितने ही भाई रात-दिन कुकर्म करते रहते हैं, फिर भी दाने-दाने को मुहताज रहते हैं। ईमान की सलामती चाहिए, नहीं दिन तो सभी के कट जाते हैं, दूध-रोटी खाकर कटे तो क्या, सूखे चने चबाकर कटे तो क्या। बड़ी बात तो ईमान है। मुझे तो तुम्हारी सूरत देखते ही मालूम हो गया था, कि नीयत के साफ सच्चे आदमी हो। बेईमानों की तो सूरत ही से फटकार बरसती है।

इक्केवाला—सेठजी, आपने ठीक कहा कि ईमान सलामत रहे, तो सब कुछ है। आप लोगों से चार पैसे मिल जाते हैं, वही बाल-बच्चों को खिला-पिलाकर पड़ रहता हूँ। हुजूर, और इक्केवालों को देखिए, तो कोई किसी मर्ज में मुब्तिला है, कोई किसी मर्ज में। मैंने तोबा बोला ! ऐसा काम ही क्यों करें, कि मुसीबत में फँसें। बड़ा कुनबा है हुजूर, माँ हैं, बच्चे हैं, कई बेवाएँ हैं, और कमाई यही इक्का है। फिर भी अल्लाह मियाँ किसी तरह निबाहे जाते हैं।

सेठ—वह बड़ा कारसाज है खाँ साहब, तुम्हारी कमाई में हमेशा बरकत होगी।

इक्केवाला—आप लोगों की मेहरबानी चाहिए।

सेठ—भगवान की मेहरबानी चाहिए। तुमसे खूब भेंट हो गई। मैं इक्केवालों से बहुत घबराता हूँ; लेकिन अब मालूम हुआ, अच्छे-बुरे सभी जगह होते हैं। तुम्हारे जैसा सच्चा, दीनदार आदमी मैंने नहीं देखा। कैसी साफ तबियत पाई है तुमने कि वाह !

सेठ जी की ये लच्छेदार बातें सुनकर इक्केवाला समझ गया कि यह महाशय परले सिरे के बैठकबाज हैं। यह सिर्फ मेरी तारीफ करके मुझे चकमा दिया चाहते हैं। अब और किसी पहलू से अपना मतलब निकालना चाहिए। इनकी दया से तो कुछ ले मरना मुश्किल है, शायद इनसे भय से कुछ ले मरूँ। बोला—मगर लाला, यह न समझिए कि मैं जितना सीधा और नेक नजर आता हूँ, उतना सीधा और नेक हूँ भी। नेकों के साथ नेक हूँ लेकिन बुरों के साथ पक्का बदमाश हूँ। यों कहिए आपकी जूतियाँ सीधी कर दूँ; लेकिन किराये के मामले में किसी के साथ रिआयत नहीं करता। रिआयत करूँ तो खाऊँ क्या ?

सेठजी ने समझा था, इक्केवाले को हत्थे पर चढ़ा लिया, अब यात्रा निर्विघ्न और निःशुल्क समाप्त हो जायगी ! लेकिन यह अलाप सुना, तो कान खड़े हुए। बोले—भाई,

रुपये-पैसे के मामले में मैं भी किसी से रिआयत नहीं करता; लेकिन कभी-कभी जब यार-दोस्तों का मामला आ पड़ता है तो झक मारकर दबना ही पड़ता है। तुम्हें भी कभी-कभी बल खाना ही पड़ता होगा। दोस्तों से बेमुरौवती तो नहीं की जाती।

इक्केवाले ने रूखेपन से कहा—मैं किसी के साथ मुरौवत नहीं करता। मुरौवत का सबक तो उस्ताद ने पढ़ाया ही नहीं। एक ही चंडूल हूँ। मजाल क्या कि कोई एक पैसा दबा ले। घरवाली तक को तो मैं एक पैसा देता नहीं, दूसरों की बात ही क्या है। और इक्केवाले अपने महाजन की खुशामद करते हैं। उसके दरवाजे पर खड़े रहते हैं। यहाँ महाजनों को भी धता बताता हूँ। सब मेरे नाम को रोते हैं। रुपये लिये और साफ डकार गया। देखें, अब कैसे वसूल करते हो बच्चा, नालिश करो, घर में क्या धरा है, जो ले लोगे।

सेठजी को मानों जूड़ी चढ़ आई। समझ गये, यह शैतान बिना पैसे लिये न मानेगा। जानते कि यह विपत्ति गले पड़ेगी, तो भूलकर भी इक्के पर पाँव न रखते। इतनी दूर पैदल चलने में कौन पैर टूटे जाते थे। अगर इस तरह रोज पैसे देने पड़े, तो फिर लेन-देन कर चुका।

सेठजी भक्त जीव थे। शिवजी को जल चढ़ाने में, जब से होश सँभाला, एक नागा भी न किया। क्या भक्तवत्सल शंकर भगवान इस अवसर पर मेरी सहायता न करेंगे। इष्टदेव का सुमिरन करके बोले—खाँ साहब और किसी से चाहे न दबो; पर पुलिस से तो दबना ही पड़ता होगा। वह तो किसी के सगे नहीं होते।

इक्केवाले ने कहकहा मारा—कभी नहीं, उनसे उल्टे और कुछ-न-कुछ वसूल करता हूँ। जहाँ कोई शिकार मिला, झट सस्ते भाड़े बैठाता हूँ और थाने पर पहुँचा देता हूँ। किराया भी मिल जाता है और इनाम भी। क्या मजाल कि कोई बोल सके। लाइसन नहीं लिया आज तक लाइसन ! मजे में सदर में इक्का दौड़ाता फिरता हूँ। कोई साला चूँ नहीं कर सकता। मेले-ठेलों में अपनी खूब बन आती है। अच्छे-अच्छे माल चुनकर कोतवाली पहुँचाता हूँ। वहाँ कौन किसी की दाल गलती है। जिसे चाहें रोक लें, एक दिन, दो दिन, तीन दिन। बीस बहाने हैं। कह दिया, शक था कि यह औरत को भगाये लिये जाता था। फिर कौन बोल सकता है। साहब भी छोड़ना चाहें; तो नहीं छोड़ सकते। मुझे सीधा न समझिएगा। एक ही हरामी हूँ। सवारियों से पहले किराया तय नहीं करता, ठिकाने पर पहुँचकर एक के दो लेता हूँ। जरा भी चीं-चपड़ किया, तो आस्तीन चढ़ा, पैतरे बदलकर खड़ा हो जाता हूँ। फिर कौन है जो सामने ठहर सके।

सेठजी को रोमांच हो आया। हाथ में एक सोटा तो था, पर उसका व्यवहार करने की शक्ति का उनमें अभाव था। आज बुरे फँसे, न जाने किस मनहूस का मुँह देखकर घर से चले थे। कहीं यह दुष्ट उलझ पड़े, तो दस-पाँच दिन हल्दी-सोंठ पीना पड़े। अब से भी कुशल है, यहाँ उतर जाऊँ, तो बच जाय वही सही। भीगी बिल्ली बनकर बोले—अच्छा, अब रोक लो खाँ साहब, मेरा गाँव आ गया। बोलो, तुम्हें क्या दे दूँ ?

इक्केवाले ने घोड़ी को एक चाबुक और लगाया और निर्दयता से बोला—मजूरी सोच लो भाई। तुमको न बैठाया होता तो तीन सवारियाँ बैठा लेता। तीनों चार-चार आने भी देते, तो बारह आने हो जाते। तुम आठ ही आने दे दो।

सेठजी की बधिया बैठ गई। इतनी बड़ी रकम उन्होंने उम्र भर इस मद में नहीं खर्च

की थी। इतनी-सी दूर के लिए इतना किराया, वह किसी तरह न दे सकते थे। मनुष्य के जीवन में एक ऐसा अवसर भी आता है, जब परिणाम की उसे चिन्ता नहीं रहती। सेठजी के जीवन में यह ऐसा ही अवसर था। अगर आने दो-आने की बात होती, तो खून का घूँट पीकर दे देते, लेकिन आठ आने के लिए कि जिसका द्विगुण एक कलदार होता है, अगर तू-तू मैं-मैं ही नहीं हाथापाई की भी नौबत आये, तो वह करने को तैयार थे। यह निश्चय करके वह दृढ़ता के साथ बैठे रहे।

सहसा सड़क के किनारे एक झोंपड़ा नजर आया। इक्का रुक गया, सेठ जी उतर पड़े और कमर से एक दुअन्नी निकालकर इक्केवान की ओर बढ़ाई।

इक्केवान ने सेठजी के तेवर देखे, तो समझ गया, ताव बिगड़ गया। चाशनी कड़ी होकर कठोर हो गई। अब यह दाँतों से लड़ेगी। इसे चुबल कर ही मिठास का आनन्द लिया जा सकता है। नम्रता से बोला—मेरी ओर से इसकी रेवड़ियाँ लेकर बाल-बच्चों को खिला दीजिएगा। अल्लाह आपको सलामत रखे।

सेठजी ने एक आना और निकाला और बोले—बस, अब जबान न हिलाना एक कौड़ी भी बेसी न दूँगा।

इक्केवाला—नहीं मालिक, आप ही ऐसा कहेंगे, तो हम गरीबों के बाल-बच्चे कहाँ से पलेंगे। हम लोग भी आदमी पहचानते हैं हुजूर।

इतने में झोपड़ी में से एक स्त्री गुलाबी साड़ी पहने, पान चबाती हुई निकल आई और बोली—आज बड़ी देर लगाई (यकायक सेठजी को देखकर) अच्छा आज लालाजी तुम्हारे इक्के पर थे। फिर आज तुम्हारा मिजाज काहे को मिलेगा। एक चेहरेशाही तो मिली ही होगी। इधर बढ़ा दो सीधे से।

यह कहकर वह सेठजी के समीप आकर बोली—आराम से चरपैया पर बैठो लाला ! बड़े भाग थे कि आज सबेरे-सबेरे आपके दर्शन हुए।

उसके वस्त्र मन्द-मन्द महक रहे थे। सेठ जी का दिमाग ताजा हो गया। उसकी ओर कनखियों से देखा। औरत चंचल, बाँकी-कटीली, तेज-तर्रार थी। सेठानीजी की मूर्ति आँखों के सामने आ गई—भद्दी, थल-थल, पिल-पिल, पैरों में बेवाय फटी हुई, कपड़ों से दुर्गन्ध उड़ती हुई। सेठजी नाममात्र को भी रसिक न थे, पर इस समय आँखों से हार गये। आँखों को उधर से हटाने की चेष्टा करके चारपाई पर बैठ गये। अभी कोस भर की मंजिल बाकी है, इसका ख्याल ही न रहा।

स्त्री एक छोटी-सी पंखिया उठा लाई और सेठजी को झलने लगी। हाथ की प्रत्येक गति के साथ सुगन्ध का एक झोंका आकर सेठजी को उन्मत्त करने लगा।

सेठजी ने जीवन में ऐसा उल्लास कभी अनुभव न किया था। उन्हें प्रायः सभी घृणा की दृष्टि से देखते थे। चोला मस्त हो गया। उसके हाथ से पंखिया छीन लेनी चाही।

'तुम्हें कष्ट हो रहा है, लाओ मैं झल लूँ।'

'यह कैसी बात है लालाजी ! आप हमारे दरवाजे पर आये हैं। क्या इतनी खातिर भी न करने दीजियेगा। और हम किस लायक हैं। इधर कहीं दूर जाना है ? अब तो बहुत देर हो गई। कहाँ जाइएगा।'

सेठजी ने पापी आँखों को फेर कर और पापी मन को दबा कर कहा—यहाँ से थोड़ी

दूर पर एक गाँव है, वहीं जाना है। साँझ को इधर ही से लौटूँगा।

सुन्दरी ने प्रसन्न होकर कहा—तो फिर आज यहीं रहिएगा। साँझ को फिर कहाँ जाइएगा। एक दिन घर के बाहर की हवा भी खाइए। फिर न जाने कब मुलाकात होगी।

इक्केवाले ने आकर सेठजी के कान में कहा—पैसे निकालिए तो दाने-चारे का इन्तजाम करूँ।

सेठजी ने चुपके से अठन्नी निकालकर दे दी।

इक्केवाले ने फिर पूछा—आपके लिए कुछ मिठाई लेता आऊँ ? यहाँ आपके लायक मिठाई तो क्या मिलेगी, हाँ मुँह मीठा हो जायगा।

सेठजी बोले—मेरे लिये कोई जरूरत नहीं, हाँ बच्चों के लिए यह चार आने की मिठाई लिवाते आना।

चवन्नी निकालकर सेठजी ने उसके सामने ऐसे गर्व से फेंकी मानो इसकी उनके सामने कोई हकीकत नहीं है। सुन्दरी के मुँह का भाव तो देखना चाहते थे; पर डरते थे कि कहीं वह यह न समझे, लाला चवन्नी क्या दे रहे हैं, मानो किसी को मोल ले रहे हैं।

इक्केवाला चवन्नी उठाकर जा ही रहा था कि सुन्दरी ने कहा—सेठजी की चवन्नी लौटा दो। लपककर उठा ली, शर्म नहीं आती। यह मुझसे रुपया ले लो। आठ आने की ताजी मिठाई बनवाकर लाओ।

उसने रुपया निकाल कर फेंका ! सेठजी मारे लाज के गड़ गये। एक इक्केवान की भठियारिन जिसकी टके की भी औकात नहीं, इतनी खातिरदारी करे कि उनके लिए पूरा रुपया निकालकर दे दे, वह भला वह कैसे सह सकते थे। बोले—नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। तुम अपना रुपया रख लो। (रसिक आँखों को तृप्त करके) मैं रुपया दिये देता हूँ। यह लो, आठ आने की ले लेना।

इक्केवान तो उधर मिठाई और दाना-चारे की फिक्र में चला, इधर सुन्दरी ने सेठ से कहा—वह तो अभी देर में आयेगा लाला, तब तक पान तो खाओ।

सेठजी ने इधर-उधर ताककर कहा—यहाँ तो कोई तम्बोली नहीं है।

सुन्दरी उनकी ओर कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखकर बोली—क्या मेरे लगाये पान तम्बोली के पानों से भी खराब होंगे ?

सेठजी ने लज्जित होकर कहा—नहीं-नहीं, यह बात नहीं, तुम मुसलमान हो न?

सुन्दरी ने विनोदमय आग्रह से कहा—खुदा की कसम, इसी बात पर मैं तुम्हें पान खिलाकर छोड़ूँगी !

यह कहकर उसने पानदान से एक बीड़ा निकाला और सेटजी की तरफ चली। सेठजी ने एक मिनिट तक तो हाँ ! हाँ ! किया, फिर दोनों हाथ बढ़ाकर उसे हटाने की चेष्टा की, फिर जोर से दोनों ओंठ बन्द कर लिए पर जब सुन्दरी किसी तरह न मानी, तो सेटजी अपना धर्म लेकर बेतहाशा भागे। सोंटा वहीं चारपाई पर रह गया। बीस कदम पर जाकर आप रुक गये और हाँफकर बोले—देखो, इस तरह किसी का धर्म नहीं लिया जाता। हम लोग तुम्हारा छुआ पानी पी लें तो धर्म भ्रष्ट हो जाय।

सुन्दरी ने फिर दौड़ाया। सेठजी फिर भागे। इधर पचास वर्ष से उन्हें इस तरह भागने का अवसर न पड़ा था। धोती खिसककर गिरने लगी मगर इतना अवकाश न था कि धोती

बाँध लें। बेचारे धर्म को कंधे पर रखे दौड़े चले जाते थे। न मालूम कब कमर से रुपयों का बटुआ खिसक पड़ा। जब एक पचास कदम पर फिर रुके और धोती ऊपर उठाई, तो बटुआ नदारद। पीछे फिर कर देखा। सुन्दरी हाथ में बटुआ लिये उन्हें दिखा रही थी और इशारे से बुला रही थी। मगर सेठजी को धर्म रुपये से कहीं प्यारा था। दो-चार कदम चले फिर रुक गये।

यकायक धर्म-बुद्धि ने डाँट बताई। थोड़े रुपये के लिए धर्म छोड़े देते हो। रुपये बहुत मिलेंगे। धर्म कहाँ मिलेगा।

यह सोचते हुए वह अपनी राह चले, जैसे कोई कुत्ता झगड़ालू कुत्तों के बीच से आहत, दुम दबाये भागा जाता हो और बार-बार पीछे फिरकर देख लेता हो कि कहीं वे दुष्ट आ तो नहीं रहे हैं।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन अज्ञात। सर्वप्रथम 'प्रेरणा तथा अन्य कहानियाँ' (1932) में संकलित। बाद में 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित।]

मृतक-भोज

सेठ रामनाथ ने रोग-शय्या पर पड़े-पड़े निराशापूर्ण दृष्टि से अपनी स्त्री सुशीला की ओर देखकर कहा—मैं बड़ा अभागा हूँ, शीला। मेरे साथ तुम्हें सदैव ही दुख भोगना पड़ा। जब घर में कुछ न था, तो रात-दिन गृहस्थी के धन्धों और बच्चों के लिए मरती थीं। जब जरा कुछ सँभला और तुम्हारे आराम करने के दिन आये, तो यों छोड़े चला जा रहा हूँ। आज तक मुझे आशा थी, पर आज वह आशा टूट गयी। देखो शीला, रोओ मत। संसार में सभी मरते हैं, कोई दो साल आगे, कोई दो साल पीछे। अब गृहस्थी का भार तुम्हारे ऊपर है। मैंने रुपये नहीं छोड़े; लेकिन जो कुछ है, उससे तुम्हारा जीवन किसी तरह कट जायगा...यह राजा क्यों रो रहा है ?

सुशीला ने आँसू पोंछकर कहा—जिद्दी हो गया है और क्या। आज सबेरे से रट लगाये हुए है कि मैं मोटर लूँगा। पाँच रुपये से कम में आयेगी मोटर ?

सेठजी को इधर कुछ दिनों से दोनों बालकों पर बहुत स्नेह हो गया था। बोले—तो मँगा दो न एक। बेचारा कब से रो रहा है, क्या-क्या अरमान दिल में थे। सब धूल में मिल गये। रानी के लिए विलायती गुड़िया भी मँगा दो। दूसरों के खिलौने देखकर तरसती रहती है। जिस धन को प्राणों से भी प्रिय समझा, वह अन्त को डाक्टरों ने खाया। बच्चे मुझे क्या याद करेंगे कि बाप था। अभागे बाप ने तो धन को लड़के-लड़की से प्रिय समझा। कभी पैसे की चीज भी लाकर नहीं दी।

अन्तिम समय जब संसार की असारता कठोर सत्य बनकर आँखों के सामने खड़ी हो जाती है, तो जो कुछ न किया, उसका खेद और जो कुछ किया, उस पर पश्चात्ताप, मन को उदार और निष्कपट बना देता है।

सुशीला ने राजा को बुलाया और उसे छाती से लगाकर रोने लगी। वह मातृस्नेह, जो

पति की कृपणता से भीतर-ही-भीतर तड़पकर रह जाता था, इस समय जैसे खौल उठा। लेकिन मोटर के लिए रुपये कहाँ थे ?

सेठजी ने पूछा—मोटर लोगे बेटा; अपनी अम्माँ से रुपये लेकर भैया के साथ चले जाओ। खूब अच्छी मोटर लाना।

राजा ने माता के आँसू और पिता का यह स्नेह देखा, तो उसका बालहठ जैसे पिघल गया। बोला—अभी नहीं लूँगा।

सेठजी ने पूछा—क्यों ?

'जब आप अच्छे हो जायँगे तब लूँगा।'

सेठजी फूट-फूटकर रोने लगे।

2

तीसरे दिन सेठ रामनाथ का देहान्त हो गया।

धनी के जीने से दुःख बहुतों को होता है, सुख थोड़ों को। उनके मरने से दुःख थोड़ों को होता है, सुख बहुतों को। महाब्राह्मणों की मण्डली अलग सुखी है, पण्डितजी अलग खुश हैं, और शायद बिरादरी के लोग भी प्रसन्न हैं; इसलिए कि एक बराबर का आदमी कम हुआ। दिल से एक काँटा दूर हुआ। और पट्टीदारों का तो पूछना ही क्या। अब वह पुरानी कसर निकालेंगे। हृदय को शीतल करने का ऐसा अवसर बहुत दिनों के बाद मिला है।

आज पाँचवाँ दिन है। वह विशाल भवन सूना पड़ा है। लड़के न रोते हैं, न हँसते हैं। मन मारे माँ के पास बैठे हैं और विधवा भविष्य की अपार चिन्ताओं के भार से दबी हुई निर्जीव-सी पड़ी है। घर में जो रुपये बच रहे थे, वे दाह-क्रिया की भेंट हो गये और अभी सारे संस्कार बाकी पड़े हैं। भगवान्, कैसे बेड़ा पार लगेगा।

किसी ने द्वार पर आवाज दी। महरा ने आकर सेठ धनीराम के आने की सूचना दी। दोनों बालक बाहर दौड़े। सुशीला का मन भी एक क्षण के लिए हरा हो गया। सेठ धनीराम बिरादरी के सरपंच थे। अबला का क्षुब्ध हृदय सेठजी की इस कृपा से पुलकित हो उठा। आखिर बिरादरी के मुखिया हैं। ये लोग अनाथों की खोज-खबर न लें तो कौन ले। धन्य हैं ये पुण्यात्मा लोग जो मुसीबत में दीनों की रक्षा करते हैं।

यह सोचती हुई सुशीला घूँघट निकाले बरोठे में आकर खड़ी हो गयी। देखा तो धनीरामजी के अतिरिक्त और भी कई सज्जन खड़े हैं।

धनीराम बोले—बहूजी, भाई रामनाथ की अकाल-मृत्यु से हम लोगों को जो दुःख हुआ है, वह हमारा दिल ही जानता है। अभी उनकी उम्र ही क्या थी; लेकिन भगवान् की इच्छा। अब तो हमारा यही धर्म है कि ईश्वर पर भरोसा रखें और आगे के लिए कोई राह निकालें। काम ऐसा करना चाहिए कि घर की आबरू भी बनी रहे और भाईजी की आत्मा संतुष्ट भी हो।

कुबेरदास ने सुशीला को कनखियों से देखते हुए कहा—मर्यादा बड़ी चीज है। उसकी रक्षा करना हमारा धर्म है। लेकिन कमली के बाहर पाँव निकालना भी तो उचित नहीं। कितने रुपये हैं तेरे पास, बहू ? क्या कहा, कुछ नहीं ?

सुशीला—घर में रुपये कहाँ हैं, सेठजी। जो थोड़े-बहुत थे, वह बीमारी में उठ गये।

धनीराम—तो यह नयी समस्या खड़ी हुई। ऐसी दशा में हमें क्या करना चाहिए, कुबेरदासजी ?

कुबेरदास—जैसे हो, भोज तो करना ही पड़ेगा। हाँ, अपनी सामर्थ्य देखकर काम करना चाहिए। मैं कर्ज लेने को न कहूँगा। हाँ, घर में जितने रुपयों का प्रबन्ध हो सके, उसमें हमें कोई कसर न छोड़नी चाहिए। मृत-जीव के साथ भी तो हमारा कुछ कर्तव्य है। अब तो वह फिर कभी न आयेगा, उससे सदैव के लिए नाता टूट रहा है। इसलिए सब कुछ हैसियत के मुताबिक होना चाहिए। ब्राह्मणों को तो भोज देना ही पड़ेगा जिससे कि मर्यादा का निर्वाह हो !

धनीराम—तो क्या तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, बहूजी ? दो-चार हजार भी नहीं !

सुशीला—मैं आपसे सत्य कहती हूँ, मेरे पास कुछ नहीं है। ऐसे समय झूठ बोलूँगी।

धनीराम ने कुबेरदास की ओर अर्ध-अविश्वास से देखकर कहा—तब तो यह मकान बेचना पड़ेगा।

कुबेरदास—इसके सिवा और क्या हो सकता है। नाक कटाना तो अच्छा नहीं। रामनाथ का कितना नाम था, बिरादरी के स्तंभ थे। यही इस समय एक उपाय है। बीस हजार रुपये मेरे आते हैं। सूद-बट्टा लगाकर कोई पच्चीस हजार रुपये मेरे हो जायँगे। बाकी भोज में खर्च हो जायेगा। अगर कुछ बच रहा, तो बाल-बच्चों के काम आ जायगा।

धनीराम—आपके यहाँ कितने पर बंधक रखा था ?

कुबेरदास—बीस हजार रुपये पर। रुपये सैकड़े सूद।

धनीराम—मैंने तो कुछ कम सुना है।

कुबेरदास—उसका तो रेहननामा रखा है। जबानी बातचीत थोड़े ही है। मैं दो-चार हजार के लिए झूठ नहीं बोलूँगा।

धनीराम—नहीं-नहीं, यह मैं कब कहता हूँ। तो तूने सुन लिया, बाई ! पंचों की सलाह है कि मकान बेच दिया जाय।

सुशीला का छोटा भाई संतलाल भी इसी समय आ पहुँचा। यह अन्तिम वाक्य उसके कान में पड़ गया। बोल उठा—किसलिए मकान बेच दिया जाय ? बिरादरी के भोज के लिए ? बिरादरी तो खा-पीकर राह लेगी, इन अनाथों की रक्षा कैसे होगी ? इनके भविष्य के लिए भी तो कुछ सोचना चाहिए।

धनीराम ने कोप-भरी आँखों से देखकर कहा—आपको इन मामलों में टाँग अड़ाने का कोई अधिकार नहीं। केवल भविष्य की चिन्ता करने से काम नहीं चलता। मृतक का पीछा भी किसी तरह सुधारना ही पड़ता है। आपका क्या बिगड़ेगा। हँसी तो हमारी होगी। संसार में मर्यादा से प्रिय कोई वस्तु नहीं ! मर्यादा के लिए प्राण तक दे देते हैं। जब मर्यादा ही न रही, तो क्या रहा। अगर हमारी सलाह पूछोगे, तो हम यही कहेंगे। आगे बाई का अखतियार है, जैसा चाहे करे; पर हमसे कोई सरोकार न रहेगा। चलिए कुबेरदासजी, चलें।

सुशीला ने भयभीत होकर कहा—भैया की बातों का विचार न कीजिए, इनकी तो यह आदत है। मैंने तो आपकी बात नहीं टाली; आप मेरे बड़े हैं। घर का हाल आपको मालूम है। मैं अपने स्वामी की आत्मा को दुखी करना नहीं चाहती, लेकिन जब उनके बच्चे ठोकरें खायेंगे, तो क्या उनकी आत्मा दुखी न होगी ? बेटी का ब्याह करना ही है। लड़के को

पढ़ाना-लिखाना है ही। ब्राह्मणों को खिला दीजिए; लेकिन बिरादरी करने की मुझमें सामर्थ नहीं है।

दोनों महानुभावों को जैसे थप्पड़ लगी—इतना बड़ा अधर्म। भला ऐसी बात भी जबान से निकाली जाती है। पंच लोग अपने मुँह में कालिख न लगने देंगे। दुनिया विधवा को न हँसेगी, हँसी होगी पंचों की। यह जग-हँसाई वे कैसे सह सकते हैं। ऐसे घर के द्वार पर झाँकना भी पाप है।

सुशीला रोकर बोली—मैं अनाथ हूँ, नादान हूँ, मुझ पर क्रोध न कीजिए। आप लोग ही मुझे छोड़ देंगे, तो मेरा कैसे निर्वाह होगा।

इतने में दो महाशय और आ बिराजे। एक बहुत मोटे और दूसरे बहुत दुबले। नाम भी गुणों के अनुसार ही—भीमचन्द और दुर्बलदास। धनीराम ने संक्षेप में यह परिस्थिति उन्हें समझा दी। दुर्बलदास ने सहृदयता से कहा—तो ऐसा क्यों नहीं करते कि हम लोग मिलकर कुछ रुपये दे दें। जब इसका लड़का सयाना हो जायगा, तो रुपये मिल ही जायेंगे। अगर न भी मिलें तो एक मित्र के लिए कुछ बल खा जाना कोई बड़ी बात नहीं।

संतलाल ने प्रसन्न होकर कहा—इतनी दया आप करेंगे, तो क्या पूछना।

कुबेरदास त्योरी चढ़ाकर बोले—तुम तो बेसिर-पैर की बातें करने लगे; दुर्बलदास जी। इस बखत के दाजार में किसके पास फालतू रुपये रखे हुए हैं।

भीमचन्द—सो तो ठीक है, बाजार की ऐसी मंदी तो कभी देखी नहीं; पर निबाह तो करना चाहिए।

कुबेरदास अकड़ गये। वह सुशीला के मकान पर दाँत लगाये हुए थे। ऐसी बातों से उनके स्वार्थ में बाधा पड़ती थी। वह अपने रुपये अब वसूल करके छोड़ेंगे।

भीमचन्द ने उन्हें किसी तरह सचेत किया; लेकिन भोज तो देना ही पड़ेगा। उस कर्तव्य का पालन न करना समाज की नाक काटना है।

सुशीला ने दुर्बलदास में सहृदयता का आभास देखा। उनकी ओर दीन नेत्रों से देखकर बोली—मैं आप लोगों से बाहर थोड़े ही हूँ। आप लोग मालिक हैं, जैसा उचित समझें वैसा करें।

दुर्बलदास—तेरे पास कुछ थोड़े बहुत गहने तो होंगे, बाई ?

'हाँ गहने हैं। आधे तो बीमारी में बिक गये, आधे बचे हैं।' सुशीला ने सारे गहने लाकर पंचों के सामने रख दिये; पर यह तो मुश्किल से तीन हजार में उठेंगे।

दुर्बलदास ने पोटली को हाथ में तौलकर कहा—तीन हजार को कैसे जायँगे। मैं साढ़े तीन हजार दिला दूँगा।

भीमचन्द ने फिर पोटली को तौलकर कहा—मेरी बोली चार हजार की है।

कुबेरदास को मकान की बिक्री का प्रश्न छेड़ने का अवसर फिर मिला—चार हजार ही में क्या हुआ जाता है। बिरादरी का भोज है या दोष मिटाना है। बिरादरी में कम-से-कम दस हजार का खरचा है। मकान तो निकालना ही पड़ेगा।

सन्तलाल ने ओंठ चबाकर कहा—मैं कहता हूँ, आप लोग क्या इतने निर्दयी हैं! आप लोगों को अनाथ बालकों पर भी दया नहीं आती ! क्या उन्हें रास्ते का भिखारी बनाकर छोड़ेंगे ?

लेकिन सन्तलाल की फरियाद पर किसी ने ध्यान न दिया। मकान की बातचीत अब नहीं टाली जा सकती थी। बाजार मंदा है। तीस हजार से बेसी नहीं मिल सकते, पच्चीस हजार तो कुबेरदास के हैं। पाँच हजार बचेंगे। चार हजार गहनों से आ जायँगे। इस तरह नौ हजार में बड़ी किफायत से ब्रह्मभोज और बिरादरी-भोज दोनों निपटा दिये जायँगे।

सुशीला ने दोनों बालकों को सामने करके करबद्ध होकर कहा—पंचो, मेरे बच्चों का मुँह देखिए। मेरे घर में जो कुछ है; वह आप सब ले लीजिए; लेकिन मकान छोड़ दीजिए—मुझे कहीं ठिकाना न मिलेगा। मैं आपके पैरों पड़ती हूँ मकान इस समय न बेचें।

इस मूर्खता का क्या जवाब दिया जाय। पंच लोग तो खुद चाहते थे कि मकान न बेचना पड़े। उन्हें अनाथों से कोई दुश्मनी नहीं थी; किन्तु बिरादरी का भोज और किस तरह किया जाय। अगर विधवा कम-से-कम पाँच हजार रुपये का जोगाड़ और कर दे, तो मकान बच सकता है, पर वह ऐसा नहीं कर सकती, तो मकान बेचने के सिवा और कोई उपाय नहीं।

कुबेर ने अन्त में कहा—देख बाई, बाजार की दशा इस समय खराब है। रुपये किसी से उधार नहीं मिल सकते। बाल-बच्चों के भाग में लिखा होगा, तो भगवान् और किसी हीले से देगा। हीले रोजी, बहाने मौत। बाल-बच्चों की चिंता मत कर। भगवान् जिसको जन्म देते हैं, उसकी जीविका की जुगत पहले ही से कर देते हैं। हम तुझे समझाकर हार गये। अगर तू अब भी अपना हठ न छोड़ेगी, तो हम बात भी न पूछेंगे। फिर यहाँ तेरा रहना मुश्किल हो जायगा। शहरवाले तेरे पीछे पड़ जायँगे।

विधवा सुशीला अब और क्या करती। पंचों से लड़कर वह कैसे रह सकती थी। पानी में रहकर मगर से कौन बैर कर सकता है। घर में जाने के लिए उठी पर वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ी। अभी तक आशा सँभाले हुई थी। बच्चों के पालन-पोषण में वह अपना वैधव्य भूल सकती थी; पर अब तो अंधकार था, चारों ओर।

3

सेठ रामनाथ के मित्रों का उनके घर पर पूरा अधिकार था। मित्रों का अधिकार न हो तो किसका हो। स्त्री कौन होती है। जब वह इतनी मोटी-सी बात नहीं समझती कि बिरादरी करना और धूम-धाम से दिल खोलकर करना लाजिमी बात है, तो उससे और कुछ कहना व्यर्थ है। गहने कौन खरीदे ? भीमचन्द चार हजार दाम लगा चुके थे, लेकिन अब उन्हें मालूम हुआ कि उनसे भूल हुई थी। दुर्बलदास ने तीन हजार लगाये थे। इसलिए सौदा इन्हीं के हाथ हुआ। इस बात पर दुर्बलदास और भीमचन्द में तकरार भी हो गयी; लेकिन भीमचन्द को मुँह की खानी पड़ी। न्याय दुर्बल के पक्ष में था।

धनीराम ने कटाक्ष किया—देखो दुर्बलदास, माल तो ले जाते हो; पर तीन हजार से बेसी का है। मैं नीति की हत्या न होने दूँगा।

कुबेरदास बोले—अजी, तो घर में ही तो है, कहीं बाहर तो नहीं गया। एक दिन मित्रों की दावत हो जायगी !

इस पर चारों महानुभाव हँसे। इस काम से फुरसत पाकर अब मकान का प्रश्न उठा। कुबेरदास तीस हजार देने पर तैयार थे; पर कानूनी कार्रवाई किये बिना संदेह की गुंजाइश

थी। यह गुंजाइश क्योंकर रखी जाय। एक दलाल बुलाया गया। नाटा-सा आदमी था, पोपला मुँह, कोई सत्तर की अवस्था। नाम था चोखेलाल।

कुबेरदास ने कहा—चोखेलालजी से हमारी तीस साल की दोस्ती है। आदमी क्या रत्न हैं।

भीमचन्द—देखो चोखेलाल, हमें यह मकान बेचना है। इसके लिए कोई अच्छा ग्राहक लाओ। तुम्हारी दलाली पक्की।

कुबेरदास—बाजार का हाल अच्छा नहीं है; लेकिन फिर भी हमें यह तो देखना पड़ेगा कि रामनाथ के बाल-बच्चों को टोटा न हो। (चोखेलाल के कान में) तीस से आगे न जाना।

भीमचन्द—देखिए कुबेरदास, यह अच्छी बात नहीं है।

कुबेरदास—तो मैं क्या कर रहा हूँ। मैं तो यही कह रहा था कि अच्छे दाम लगवाना।

चोखेलाल—आप लोगों को मुझसे यह कहने की जरूरत नहीं। मैं अपना धर्म समझता हूँ। रामनाथजी मेरे भी मित्र थे। मुझे यह भी मालूम है कि इस मकान के बनवाने में एक लाख से कम एक पाई भी नहीं लगे, लेकिन बाजार का हाल क्या आप लोगों से छिपा है। इस समय इसके पच्चीस हजार से बेसी नहीं मिल सकते। सुभीते से तो कोई ग्राहक से दस-पाँच हजार और मिल जायँगे; लेकिन इस समय तो कोई ग्राहक भी मुश्किल से मिलेंगे। लो दही और लाव दही की बात है।

धनीराम—पच्चास हजार रुपये तो बहुत कम है भाई, और न सही तीस हजार रु. तो करा दो।

चोखेलाल—तीस क्या मैं तो चालीस करा दूँ, पर कोई ग्राहक तो मिले। आप लोग कहते हैं तो मैं तीस हजार रुपये की बातचीत करूँगा।

धनीराम—जब तीस हजार में ही देना है तो कुबेरदासजी ही क्यों न ले लें। इतना सस्ता माल दूसरों को क्यों दिया जाय।

कुबेरदास—आप सब लोगों की राय हो, तो ऐसा ही कर लिया जाय।

धनीराम ने 'हाँ, हाँ' कहकर हामी भरी। भीमचन्द मन में ऐंठकर रह गये। यह सौदा भी पक्का हो गया। आज ही वकील ने बैनामा लिखा। तुरन्त रजिस्ट्री भी हो गयी। सुशीला के सामने बैनामा लाया गया, तो उसने एक ठण्डी साँस ली और सजल नेत्रों से उस पर हस्ताक्षर कर दिये। अब उसे उसके सिवा और कहीं शरण नहीं है। बेवफा मित्र की भाँति यह घर भी सुख के दिनों में साथ देकर दुःख के दिनों में उसका साथ छोड़ रहा है।

पंच लोग सुशीला के आँगन में बैठे बिरादरी के रुक्के लिख रहे हैं और अनाथ विधवा ऊपर झरोखे पर बैठी भाग्य को रो रही है। इधर रुक्का तैयार हुआ, उधर विधवा की आँखों से आँसू की बूँदें निकलकर रुक्के पर गिर पड़ीं।

धनीराम ने ऊपर देखकर कहा—पानी का छींटा कहाँ से आया ?

सन्तलाल—बाई बैठी रो रही है। उसने रुक्के पर अपने रक्त के आँसुओं की मुहर लगा दी है।

धनीराम—(ऊँचे स्वर में) अरे, तो तू रो क्यों रही है, बाई ? यह रोने का समय नहीं है, तुझे तो प्रसन्न होना चाहिए कि पंच लोग तेरे घर में आज यह शुभ-कार्य करने के लिए जमा हैं। जिस पति के साथ तूने इतने दिनों भोग-विलास किया, उसी का पीछा सुधारने में

तू दुःख मानती है ?

बिरादरी में रुक्का फिरा। इधर तीन-चार दिन पंचों ने भोज की तैयारियों में बिताये। घी धनीरामजी की आढ़त से आया। मैदा, चीनी की आढ़त भी उन्हीं की थी। पाँचवें दिन प्रातःकाल ब्रह्म-भोज हुआ। संध्या-समय बिरादरी का ज्योनार। सुशीला के द्वार पर बग्घियों और मोटरों की कतारें खड़ी थीं। भीतर मेहमानों की पंगतें थीं। आँगन, बैठक, दालान, बरोठा, ऊपर की छत नीचे-ऊपर मेहमानों से भरा हुआ था। लोग भोजन करते थे और पंचों को सराहते थे।

खर्च तो सभी करते हैं; पर इन्तजाम का सलीका चाहिए। ऐसे स्वादिष्ट पदार्थ बहुत कम खाने में आते हैं।

'सेठ चम्पाराम के भोज के बाद ऐसा भोज रामनाथजी का ही हुआ है।'

'अमृतियाँ कैसी कुरकुरी हैं !'

'रसगुल्ले मेवों से भरे हैं।'

'सारा श्रेय पंचों को है।'

धनीराम ने नम्रता से कहा—आप भाइयों की दया है जो ऐसा कहते हो। रामनाथ से भाई-चारे का व्यवहार था। हम न करते तो कौन करता। चार दिन से सोना नसीब नहीं हुआ।

'आप धन्य हैं ! मित्र हों तो ऐसे हों।'

'क्या बात है ! आपने रामनाथजी का नाम रख लिया। बिरादरी यही खाना-खिलाना देखती है। रोकड़ देखने नहीं जाती।'

मेहमान लोग बखान-बखान कर माल उड़ा रहे थे और उधर कोठरी में बैठी हुई सुशीला सोच रही थी—संसार में ऐसे स्वार्थी लोग हैं ! सारा संसार स्वार्थमय हो गया है ! सब पेटों पर हाथ फेर-फेर कर भोजन कर रहे हैं। कोई इतना भी नहीं पूछता कि अनाथों के लिए कुछ बचा या नहीं।

4

एक महीना गुजर गया। सुशीला को एक-एक पैसे की तंगी हो रही थी। नकद था ही नहीं, गहने निकल ही गये थे। अब थोड़े से बरतन बच रहे थे। उधर छोटे-छोटे बहुत से बिल चुकाने थे। कुछ रुपये डाक्टर के, कुछ दरजी के, कुछ बनियों के। सुशीला को यह रकमें घर का बचा-खुचा सामान बेचकर चुकानी पड़ीं। और महीना पूरा होते-होते उसके पास कुछ न बचा। बेचारा सन्तलाल एक दूकान पर मुनीम था। कभी-कभी वह आकर एक-आध रुपये दे देता। इधर खर्च का हाथ फैला हुआ था। लड़के अवस्था को समझते थे। माँ को छेड़ते न थे, पर मकान के सामने से कोई खोंचेवाला निकल जाता और वे दूसरे लड़कों को फल या मिठाई खाते देखते, तो उनके मुँह में पानी भरकर आँखों में भर जाता था। ऐसी ललचायी हुई आँखों से ताकते थे कि दया आती। वही बच्चे, जो थोड़े दिन पहले मेवे-मिठाई की ओर ताकते न थे अब एक-एक पैसे की चीज को तरसते थे। वही सज्जन, जिन्होंने बिरादरी का भोज करवाया था, अब घर के सामने से निकल जाते; पर कोई झाँकता न था।

शाम हो गयी थी। सुशीला चूल्हा जलाये रोटियाँ सेंक रही थी और दोनों बालक चूल्हा के पास रोटियों को क्षुधित नेत्रों से देख रहे थे। चूल्हे के दूसरे ऐले पर दाल थी। दाल के पकने का इन्तजार था। लड़की ग्यारह साल की थी, लड़का आठ साल का।

मोहन अधीर होकर बोला—अम्माँ, मुझे रूखी रोटियाँ ही दे दो। बड़ी भूख लगी है।

सुशीला—अभी दाल कच्ची है भैया।

रेवती—मेरे पास एक पैसा है। मैं उसका दही लिये आती हूँ।

सुशीला—तूने पैसा कहाँ पाया ?

रेवती—मुझे कल अपनी गुड़ियों की पेटारी में मिल गया था।

सुशीला—लेकिन जल्द आइयो।

रेवती दौड़कर बाहर गयी और थोड़ी देर में एक पत्ते पर जरा-सा दही ले आयी। माँ ने रोटी-सेंककर दे दी। दही से खाने लगा। आम लड़कों की भाँति वह भी स्वार्थी था। बहन से पूछा भी नहीं।

सुशीला ने कड़ी आँखों से देखकर कहा—बहन को भी दे दे। अकेला ही खा जायगा।

मोहन लज्जित हो गया। उसकी आँखें डबडबा आयीं।

रेवती बोली—नहीं अम्माँ, कितना मिला ही है। तुम खाओ मोहन, तुम्हें जल्दी नींद आ जाती है। मैं तो दाल पक जायगी तो खाऊँगी।

उसी वक्त दो आदमियों ने आवाज दी। रेवती ने बाहर जाकर पूछा। यह सेठ कुबेरदास के आदमी थे। मकान खाली कराने आये थे। क्रोध से सुशीला की आँखें लाल हो गयीं।

बरोठे में आकर कहा—अभी मेरे पति को पीछे हुए महीना भी नहीं हुआ, मकान खाली कराने की धुन सवार हो गयी। मेरा पचास हजार का घर तीस हजार में ले लिया, पाँच हजार सूद के उड़ाये, फिर भी तस्कीन नहीं होती। कह दो, मैं अभी खाली नहीं करूँगी।

मुनीम ने नम्रता से कहा—बाई जी, मेरा क्या अख्तियार है। मैं तो केवल संदेसिया हूँ। जब चीज दूसरे की हो गयी, तो आपको छोड़नी ही पड़ेगी। झंझट करने से क्या मतलब।

सुशीला भी समझ गयी, ठीक ही कहता है। गाय हत्या के बल कै दिन खेत चरेगी। नर्म होकर बोली—सेठजी से कहो, मुझे दस-पाँच दिन की मुहलत दें। लेकिन नहीं, कुछ मत कहो। क्यों दस-पाँच दिन के लिए किसी का एहसान लूँ। मेरे भाग्य में इस घर में रहना लिखा होता, तो निकलता ही क्यों।

मुनीम ने पूछा—तो कल सबेरे तक खाली हो जायगा ?

सुशीला—हाँ, हाँ, कहती तो हूँ; लेकिन सबेरे तक क्यों, मैं अभी खाली किये देती हूँ। मेरे पास कौन-सा बड़ा सामान ही है। तुम्हारे सेठजी का रातभर का किराया मारा जायगा। जाकर ताला-वाला लाओ या लाये हो ?

मुनीम—ऐसी क्या जल्दी है, बाई। कल सावधानी से खाली कर दीजिएगा।

सुशीला—कल का झगड़ा क्या रखूँ। मुनीमजी, आप जाइए, ताला लाकर डाल दीजिए। यह कहती हुई सुशीला अन्दर गयी, बच्चों को भोजन कराया, एक रोटी आप किसी तरह निगली, बरतन धोये, फिर एक एक्का मँगवा कर उस पर अपना मुख्तसर

सामान लादा और भारी हृदय से उस घर से हमेशा के लिए विदा हो गयी।

जिस वक्त यह घर बनवाया था, मन में कितनी उमंगें थीं। इसके प्रवेश में कई हजार ब्राह्मणों का भोज हुआ था। सुशीला को इतनी दौड़-धूप करनी पड़ी थी कि वह महीने भर बीमार रही थी। इसी घर में उसके दो लड़के मरे थे। यहीं उसका पति मरा था। मरने वालों की स्मृतियों ने उसकी एक-एक ईट को पवित्र कर दिया था। एक-एक पत्थर मानो उसके हर्ष से खुशी और उसके शोक से दुखी होता था। वह घर आज उससे छूटा जा रहा है।

उसने रात एक पड़ोसी के घर में काटी और दूसरे दिन दस रु. महीने पर एक गली में दूसरा मकान ले लिया।

5

इस नये कमरे में इन अनाथों ने तीन महीने जिस कष्ट से काटे, वह समझनेवाले ही समझ सकते हैं। भला हो बेचारे सन्तलाल का। वह दस-पाँच रुपये से मदद कर दिया करता था। अगर सुशीला दरिद्र घर की होती, तो पिसाई करती, कपड़े सीती, किसी के घर में टहल करती; पर जिन कामों को बिरादरी नीचा समझती है, उनका सहारा कैसे लेती। नहीं तो लोग कहते, यह सेठ रामनाथ की स्त्री है ! उस नाम की भी तो लाज रखनी थी। समाज के चक्रव्यूह से किसी तरह तो छुटकारा नहीं होता। लड़की के दो-एक गहने बच रहे थे। वह भी बिक गये। जब रोटियों ही के लाले थे, तो घर का किराया कहाँ से आता। तीन महीने बाद घर का मालिक, जो उसी बिरादरी का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था और जिसने मृतक-भोज में खूब बढ़-बढ़कर हाथ मारे थे, अधीर हो उठा। बेचारा कितना धैर्य रखता। तीस रु. का मामला है, रुपये आठ आने की बात नहीं है। इतनी बड़ी रकम नहीं छोड़ी जाती।

आखिर एक दिन सेठजी ने आकर लाल-लाल आँखें करके कहा—अगर तू किराया नहीं दे सकती, तो घर खाली कर दे। मैंने बिरादरी के नाते इतनी मुरौवत की। अब किसी तरह काम नहीं चल सकता।

सुशीला बोली—सेठजी, मेरे पास रुपये होते, तो पहले आपका किराया देकर तब पानी पीती। आपने इतनी मुरौवत की, इसके लिए मेरा सिर आपके चरणों पर है, लेकिन अभी मैं बिलकुल खाली-हाथ हूँ। यह समझ लीजिए कि एक भाई के बाल-बच्चों की परवरिश कर रहे हैं। और क्या कहूँ।

सेठ—चल-चल, इस तरह की बातें बहुत सुन चुका। बिरादरी का आदमी है, तो उसे चूस लो। कोई मुसलमान होता, तो उसे चुपके से महीने-महीने दे देती, नहीं तो उसने निकाल बाहर किया होता, मैं बिरादरी का हूँ, इसलिए मुझे किराया देने की दरकार नहीं। मुझे माँगना ही नहीं चाहिए। यही तो बिरादरी के साथ करना चाहिए।

इसी समय रेवती भी आकर खड़ी हो गयी। सेठजी ने उसे सिर से पाँव तक देखा और तब किसी कारण से बोले—अच्छा, यह लड़की तो सयानी हो गयी। कहीं इसकी सगाई की बातचीत नहीं की ?

रेवती तुरंत भाग गयी। सुशीला ने इन शब्दों में आत्मीयता की झलक पाकर पुलकित कंठ से कहा—अभी तो कहीं बातचीत नहीं हुई, सेठजी। घर का किराया तक तो अदा नहीं

कर सकती, सगाई क्या करूँगी; फिर अभी छोटी भी तो है।

सेठजी ने तुरंत शास्त्रों का आधार दिया। कन्याओं के विवाह की यही अवस्था है। धर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। किराये की कोई बात नहीं है। हमें क्या मालूम था कि सेठ रामनाथ के परिवार की यह दशा है।

सुशीला—तो आपकी निगाह में कोई अच्छा घर है ! यह तो आप जानते ही हैं, मेरे पास लेने-देने को कुछ नहीं है।

झाबरमल—(इन सेठजी का यही नाम था)—लेने-देने का कोई झगड़ा नहीं होगा; बाईजी। ऐसा घर है कि लड़की आजीवन सुखी रहेगी। लड़का भी उसके साथ रह सकता है। कुल का सच्चा; हर तरह से संपन्न परिवार है। हाँ, वह दोहाजू (दुजवर) है।

सुशीला—उम्र अच्छी होनी चाहिए, दोहाजू होने से क्या होता है।

झाबरमल—उम्र भी कुछ ज्यादा नहीं, अभी चालीसवाँ ही साल है उसका, पर देखने में अच्छा हृष्ट-पुष्ट है। मर्द की उम्र उसका भोजन है। बस यह समझ लो कि परिवार का उद्धार हो जायगा।

सुशीला ने अनिच्छा के भाव से कहा—अच्छा, मैं सोचकर जवाब दूँगी। एक बार मुझे दिखा देना।

झाबरमल—दिखाने को कहीं नहीं जाना है, बाई। वह तो तेरे सामने ही खड़ा है।

सुशीला ने घृणापूर्ण नेत्रों से उसकी ओर देखा। इस पचास साल के बुड्ढे की यह हवस ! छाती का मांस लटककर नाभी तक आ पहुँचा है, फिर भी विवाह की धुन सवार है। यह दुष्ट समझता है कि प्रलोभनों में पड़कर मैं अपनी लड़की उसके गले बाँध दूँगी। वह अपनी बेटी को आजीवन क्वाँरी रखेगी; पर ऐसे मृतक से विवाह करके उसका जीवन नष्ट न करेगी, पर उसने अपने क्रोध को शांत किया। समय का फेर है, नहीं तो ऐसों को उससे ऐसा प्रस्ताव करने का साहस ही क्यों होता। बोली—आपकी इस कृपा के लिए आपको धन्यवाद देती हूँ, सेठजी, पर मैं कन्या का विवाह आपसे नहीं कर सकती।

झाबरमल—तो और क्या तू समझती है कि तेरी कन्या के लिए बिरादरी में कोई कुमार मिल जायगा ?

सुशीला—मेरी लड़की क्वाँरी रहेगी।

झाबरमल—और रामनाथजी के नाम को कलंकित करेगी ?

सुशीला—तुम्हें मुझसे ऐसी बातें करते लाज नहीं आती। नाम के लिए घर खोया, संपत्ति खोयी, पर कन्या कुएँ में नहीं डुबा सकती।

झाबरमल—तो मेरा किराया दे दे।

सुशीला—अभी मेरे पास रुपये नहीं हैं।

झाबरमल ने भीतर घुसकर गृहस्थी की एक-एक वस्तु निकालकर गली में फेंक दी। घड़ा फूट गया, मटके टूट गये। संदूक के कपड़े बिखर गये। सुशीला तटस्थ खड़ी अपने अदिन की यह क्रूर क्रीड़ा देखती रही।

घर का यों विध्वंस करके झाबरमल ने घर में ताला डाल दिया और अदालत से रुपये वसूल करने की धमकी देकर चले गये।

6

बड़ों के पास धन होता है, छोटों के पास हृदय होता है। धन से बड़े-बड़े व्यापार होते हैं; बड़े-बड़े महल बनते हैं, नौकर-चाकर होते हैं, सवारी-शिकारी होती है; हृदय से समवेदना होती है, आँसू निकलते हैं।

उसी मकान से मिली हुई एक साग-भाजी बेचनेवाली खटकिन की दूकान थी। वृद्धा, विधवा निपूती स्त्री थी, बाहर से आग, भीतर से पानी। झाबरमल को सैकड़ों सुनायीं और सुशीला की एक-एक चीज उठाकर अपने घर में ले गयी। मेरे घर में रहो बहू। मुरौवत में आ गयी, नहीं तो उसकी मूँछें उखाड़ लेती। मौत सिर पर नाच रही है, आगे नाथ, न पीछे पगहा ! और धन के पीछे मरा जाता है। जाने छाती पर लादकर ले जायगा। तुम चलो मेरे घर में रहो। मेरे यहाँ किसी बात का खटका नहीं बस मैं अकेली हूँ। एक टुकड़ा मुझे भी दे देना।

सुशीला ने डरते-डरते कहा—माता, मेरे पास सेर-भर आटे के सिवा और कुछ नहीं है। मैं तुम्हें किराया कहाँ से दूँगी।

बुढ़िया ने कहा—मैं झाबरमल नहीं हूँ बहू, न कुबेरदास हूँ। मैं तो समझती हूँ, जिन्दगी में सुख भी है, दुख भी है। सुख में इतराओ मत, दुःख में घबड़ाओ मत। तुम्हीं से चार पैसे कमाकर अपना पेट पालती हूँ। तुम्हें उस दिन भी देखा था; जब तुम महल में रहती थीं और आज भी देख रही हूँ, जब तुम अनाथ हो। जो मिजाज तब था, वही अब है। मेरे धन्य भाग कि तुम मेरे घर में आओ। मेरी आँखें फूटी हैं, जो तुमसे किराया माँगने जाऊँगी।

इन सांत्वना से भरे हुए सरल शब्दों ने सुशीला के हृदय का बोझ हल्का कर दिया। उसने देखा, सच्ची सज्जनता भी दरिद्रों और नीचों ही के पास रहती है। बड़ों की दया भी होती है, अहंकार का दूसरा रूप !

इस खटकिन के साथ रहते हुए सुशीला को छः महीने हो गये थे। सुशीला का उससे दिन-दिन स्नेह बढ़ता जाता था। वह जो कुछ पाती, लाकर सुशीला के हाथ में रख देती। दोनों बालक उसकी दो आँखें थीं। मजाल न थी कि पड़ोस का कोई आदमी उन्हें कड़ी आँखों से देख ले। बुढिया दुनिया सिर पर उठा लेती। सन्तलाल हर महीने कुछ-न-कुछ दे दिया करता था। इससे रोटी-दाल चली जाती थी।

कातिक का महीना था—ज्वर का प्रकोप हो रहा था। मोहन एक दिन खेलता-कूदता बीमार पड़ गया और तीन दिन तक अचेत पड़ा रहा। ज्वर इतने जोर का था कि पास खड़े रहने से लपट-सी निकलती थी। बुढ़िया ओझे-सयानों के पास दौड़ती फिरती थी; पर ज्वर उतरने का नाम न लेता था। सुशीला को भय हो रहा था, यह टाइफाइड है। इससे उसके प्राण सूख रहे थे।

चौथे दिन उसने रेवती से कहा—बेटी, तूने बड़े पंचजी का घर तो देखा है। जाकर उनसे कह भैया बीमार है, कोई डाक्टर भेज दें।

रेवती को कहने भर की देरी थी। दौड़ती हुई सेठ कुबेरदास के पास गयी।

कुबेरदास बोले—डाक्टर की फीस सोलह है। तेरी माँ दे देगी ?

रेवती ने निराश होकर कहा—अम्माँ के पास रुपये कहाँ हैं ?

कुबेरदास—तो फिर किस मुँह से मेरे डाक्टर को बुलाती है। तेरा मामा कहाँ है? उनसे जाकर कह, सेवा समिति से कोई डाक्टर बुला ले जायँ, नहीं तो खैराती अस्पताल में क्यों नहीं लड़के को ले जाती ? या अभी वही पुरानी बू समाई हुई है। कैसी मूर्ख स्त्री है, घर में टका नहीं और डाक्टर का हुकुम लगा दिया। समझती होगी, फीस पंचजी दे देंगे। पंचजी क्यों फीस दें ? बिरादरी का धन धर्म-कार्य के लिए है, यों उड़ाने के लिए नहीं है।

रेवती माँ के पास लौटी; पर जो कुछ सुना था, वह उससे न कह सकी। घाव पर नमक क्यों छिड़के। बहाना कर दिया, बड़े पंचजी कहीं गये हैं।

सुशीला—तो मुनीम से क्यों नहीं कहा ? यहाँ क्या कोई मिठाई खाये जाता था, जो दौड़ी चली आयी ?

इसी वक्त सन्तलाल एक वैद्य जी को लेकर आ पहुँचा।

7

वैद्य भी एक दिन आकर दूसरे दिन न लौटे। सेवा-समिति के डाक्टर भी दो दिन बड़ी मिन्नतों से आये। फिर उन्हें भी अवकाश न रहा और मोहन की दशा दिनोंदिन बिगड़ती जाती थी। महीना बीत गया; पर ज्वर ऐसा चढ़ा कि एक क्षण के लिए भी न उतरा। उसका चेहरा इतना सूख गया था कि देखकर दया आती थी। न कुछ बोलता, न कहता, यहाँ तक कि करवट भी न बदल सकता था। पड़े-पड़े देह की खाल फट गयी, सिर के बाल गिर गये। हाथ-पाँव लकड़ी हो गये। सन्तलाल काम से छुट्टी पाता तो आ जाता, पर इससे क्या होता; तीमारदारी दया तो नहीं है।

एक दिन सन्ध्या समय उसके हाथ ठण्डे हो गये। माता के प्राण पहले ही से सूखे हुए थे। यह हाल देखकर रोने-पीटने लगी। मिन्नतें तो बहुतेरी हो चुकी थीं। रोती हुई मोहन की खाट के सात फेरे करके हाथ बाँधकर बोली—भगवान् ! यही मेरे जन्म की कमाई है। अपना सर्वस्व खोकर भी मैं बालक को छाती से लगाए हुए सन्तुष्ट थी; लेकिन यह चोट न सही जायगी। तुम इसे अच्छा कर दो। इसके बदले मुझे उठा लो। बस, मैं यही दया चाहती हूँ, दयामय ?

संसार के रहस्य को कौन समझ सकता है ! क्या हममें से बहुतों को यह अनुभव नहीं कि जिस दिन हमने बेईमानी करके कुछ रकम उड़ायी, उसी दिन उस रकम का दुगुना नुकसान हो गया। सुशीला को उसी दिन रात को ज्वर आ गया और उसी दिन मोहन का ज्वर उतर गया। बच्चे की सेवा-शुश्रूषा में आधी तो यों ही रह गयी थी, इस बीमारी ने ऐसा पकड़ा कि फिर न छोड़ा। मालूम नहीं, देवता बैठे सुन रहे थे या क्या, उसकी याचना अक्षरशः पूरी हुई। पन्द्रहवें दिन मोहन चारपाई से उठकर माँ के पास आया और उसकी छाती पर सिर रखकर रोने लगा। माता ने उसके गले में बाँहें डाल कर उसे छाती से लगा लिया और बोली—क्यों रोते हो बेटा ! मैं अच्छी हो जाऊँगी। अब मुझे क्या चिंता। भगवान् पालनेवाले हैं। वही तुम्हारे रक्षक हैं। वही तुम्हारे पिता हैं। अब मैं सब तरफ से निश्चिंत हूं। जल्द अच्छी हो जाऊँगी।

मोहन बोला—जिया तो कहती है, अम्माँ अब न अच्छी होंगी।

सुशीला ने बालक का चुम्बन लेकर कहा—जिया पगली है, उसे कहने दो। मै तुम्हें

छोड़कर कहीं न जाऊँगी। मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। हाँ, जिस दिन तुम कोई अपराध करोगे, किसी की कोई चीज उठा लोगे, उसी दिन मैं मर जाऊँगी ?

मोहन ने प्रसन्न होकर कहा—तो तुम मेरे पास से कभी नहीं जाओगी माँ ?

सुशीला ने कहा—कभी नहीं बेटा, कभी नहीं।

उसी रात को दुःख और विपत्ति की मारी हुई यह अनाथ विधवा दोनों अनाथ बालकों को भगवान् पर छोड़कर परलोक सिधार गयी।

8

इस घटना को तीन साल हो गये हैं, मोहन और रेवती दोनों उसी वृद्धा के पास रहते हैं। बुढ़िया माँ तो नहीं है; लेकिन माँ से बढ़कर है। रोज मोहन को रात की रखी रोटियाँ खिलाकर गुरुजी की पाठशाला में पहुँचा आती है। छुट्टी के समय जाकर लिवा आती है। रेवती का अब चौदहवाँ साल है। वह घर का सारा काम—पीसना-कूटना, चौका-बरतन, झाडू-बहारू करती है। बुढ़िया सौदा बेचने चली जाती है, तो वह दूकान पर भी आ बैठती है।

एक दिन बड़े पंच सेठ कुबेरदास ने उसे बुला भेजा और बोले—तुझे दूकान पर बैठते शर्म नहीं आती, सारी बिरादरी की नाक कटा रही है। खबरदार, जो कल से दूकान पर बैठी। मैंने तेरे पाणिग्रहण के लिए झाबरमल जी को पक्का कर लिया है।

सेठानी ने समर्थन किया—तू अब सयानी हुई बेटी, अब तेरा इस तरह बैठना अच्छा नहीं। लोग तरह-तरह की बातें करने लगते हैं। सेठ झाबरमल तो राजी ही न होते थे, हमने बहुत कह-सुनकर राजी किया है। बस, समझ ले कि रानी हो जायगी। लाखों की सम्पत्ति है, लाखों की। तेरे धन्य भाग कि ऐसा वर मिला। तेरा छोटा भाई है, उसको भी कोई दूकान करा दी जायगी।

सेठ—बिरादरी की कितनी बदनामी है !

सेठानी—है ही।

रेवती ने लज्जित होकर कहा—मैं क्या जानूँ, आप मामा से कहें।

सेठ (बिगड़कर)—वह कौन होता है ! टके पर मुनीमी करता है। उससे मैं क्या पूछूँ। मैं बिरादरी का पंच हूँ। मुझे अधिकार है, जिस काम से बिरादरी का कल्याण देखूँ, वह करूँ। मैंने और पंचों से राय ले ली है। सब मुझसे सहमत हैं। अगर तू यों नहीं मानेगी, तो हम अदालती कार्रवाई करेंगे। तुझे खरच-बरच का काम होगा, यह लेती जा।

यह कहते हुए उन्होंने बीस रुपये के नोट रेवती की तरफ फेंक दिये।

रेवती ने उठाकर वहीं पुरजे-पुरजे कर डाले और तमतमाये मुख से बोली—बिरादरी ने तब हम लोगों की बात न पूछी; जब हम रोटियों को मुहताज थे। मेरी माता मर गयी; कोई झाँकने तक न आया। मेरा भाई बीमार हुआ, किसी ने खबर तक न ली। ऐसी बिरादरी की मुझे परवाह नहीं है।

रेवती चली गयी, तो झाबरमल कोठरी से निकल आये। चेहरा उदास था।

सेठानी ने कहा—लड़की बड़ी घमंडिन है। आँख का पानी मर गया है।

झाबरमल—बीस रुपये खराब हो गये। ऐसा फाड़ा है कि जुड़ भी नहीं सकते।

कुबेरदास—तुम घबड़ाओ नहीं; मैं इसे अदालत से ठीक करूँगा। जाती कहाँ है।

झाबरमल—अब तो आपका ही भरोसा है।

बिरादरी के बड़े पंच की बात कहीं मिथ्या हो सकती है ? रेवती नाबालिग थी। माता-पिता नहीं थे। ऐसी दशा में पंचों का उस पर पूरा अधिकार था। वह बिरादरी के दबाव में नहीं रहना चाहती है, न चाहे। कानून बिरादरी के अधिकार की उपेक्षा नहीं कर सकता।

सन्तलाल ने यह माजरा सुना; तो दाँत पीसकर बोले—न जाने इस बिरादरी का भगवान् कब अंत करेंगे।

रेवती—क्या बिरादरी मुझे जबरदस्ती अपने अधिकार में ले सकती है ?

सन्तलाल—हाँ बेटी, धनिकों के हाथ में तो कानून भी है।

रेवती—मैं कह दूँगी कि मैं उनके पास नहीं रहना चाहती।

सन्तलाल—तेरे कहने से क्या होगा। तेरे भाग्य में यही लिखा था, तो किसका बस है। मैं जाता हूँ बड़े पंच के पास।

रेवती नहीं मामाजी, तुम कहीं न जाव। जब भाग्य ही का भरोसा है; तो जो कुछ भाग्य में लिखा होगा वह होगा।

रात तो रेवती ने घर में काटी। बार-बार निद्रा-मग्न भाई को गले लगाती। यह अनाथ अकेला कैसे रहेगा, यह सोचकर उसका मन कातर हो जाता; पर झाबरमल की सूरत याद करके उसका संकल्प दृढ़ हो जाता।

प्रातःकाल रेवती गंगा-स्नान करने गयी। यह इधर कई महीनों से उसका नित्य का नियम था। आज जरा अँधेरा था; पर यह कोई सन्देह की बात न थी। सन्देह तब हुआ, जब आठ बज गये और वह लौटकर न आयी। तीसरे पहर सारी बिरादरी में खबर फैल गई—सेठ रामनाथ की कन्या गंगा में डूब गई। उसकी लाश पाई गई।

कुबेरदास ने कहा—चलो, अच्छा हुआ; बिरादरी की बदनामी तो न होगी।

झाबरमल ने दुखी मन से कहा—मेरे लिए अब कोई और उपाय कीजिए।

उधर मोहन सिर पीट-पीटकर रो रहा था और बुढ़िया उसे गोद में लिये समझा रही थी—बेटा, उस देवी के लिए क्यों रोते हो। जिन्दगी में उसके दुख-ही-दुख था। अब वह अपनी माँ की गोद में आराम कर रही है।

[कहानी। मूल स्रोत अज्ञात। हिन्दी कहानी संग्रह 'प्रेरणा तथा अन्य कहानियां' (प्रथम संस्करण : 1932) में संकलित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित है। उर्दू रूप 'जादे राह' शीर्षक से 'जादे राह' में संकलित।]

स्मृति का पुजारी

महाशय होरीलाल की पत्नी का जब से देहान्त हुआ वह एक तरह से दुनिया से विरक्त हो गये हैं। यों रोज कचहरी जाते हैं—अब भी उनकी वकालत बुरी नहीं है। मित्रों से राह-रस्म भी रखत हैं, मेलों-तमाशों में भी जाते हैं; पर इसलिए कि वे भी मनुष्य हैं और मनुष्य एक

सामाजिक जीव है। जब उनकी स्त्री जीवित थी, तब कुछ और ही बात थी। किसी-न-किसी बहाने से आये-दिन मित्रों की दावतें होती रहती थीं। कभी गार्डन-पार्टी है, कभी संगीत है, कभी जन्माष्टमी है, कभी होली है। मित्रों का सत्कार करने में जैसे उन्हें मजा आता था। लखनऊ से सुफेदे आये हैं। अब, जब तक दोस्तों को खिला न लें, उन्हें चैन नहीं। कोई अच्छी चीज खरीदकर उन्हें यही धुन हो जाती थी कि उसे किसी की भेंट कर दें। जैसे और लोग अपने स्वार्थ के लिए तरह-तरह के प्रपंच रचा करते हैं, वह सेवा के लिए षड्यन्त्र रचते थे। आपसे मामूली जान-पहचान है, लेकिन उनके घर चले जाइए तो चाय और फलों से आपका सत्कार किये बिना न रहेंगे। मित्रों के हित के लिए प्राण देने को तैयार और बड़े ही खुशमिजाज। उनके कहकहे ग्रामोफ़ोन में भरने लायक होते थे। कोई संतान न थी, लेकिन किसी ने उन्हें दुखी या निराश नहीं देखा। मुहल्ले के सारे बच्चे उनके बच्चे थे। और स्त्री भी उसी रंग में रंगी हुई। आप कितने ही चिंतित हों; उस देवी से मुलाकात होते ही आप फूल की तरह खिल जायँगे। न जाने इतनी लोकोक्तियाँ कहाँ से याद कर ली थीं। बात-बात पर कहावतें कहती थीं। और जब किसी को बनाने पर आ जातीं, तो रुलाकर छोड़ती थीं। गृह-प्रबन्ध में तो उसका जोड़ न था, दोनों एक दूसरे के आशिक थे, और उनका प्रेम पौधों के कलम की भाँति दिनों के साथ और भी घनिष्ट होता जाता था। समय की गति उस पर जैसे आशीर्वाद का काम कर रही थी। कचहरी से छुट्टी पाते ही वह प्रेम का पथिक दीवानों की तरह घर भागता था। आप कितना ही आग्रह करें पर उस वक्त रास्ते में एक मिनट के लिये भी न रुकता था और अगर कभी महाशय जी के आने में देर हो जाती थी तो वह प्रेम-योगिनी छज्जे पर खड़ी होकर उनकी राह देखा करती थी। और पचीस साल के अभिन्न सहचर ने उनकी आत्माओं में इतनी समानता पैदा कर दी थी कि जो बात एक के दिल में आती थी, वही दूसरे के दिल में बोल उठती थी। यह बात नहीं कि उनमें मतभेद न होता हो। बहुत-से विषयों में उनके विचारों में आकाश-पाताल का अन्तर था और अपने पक्ष के समर्थन और परपक्ष के खण्डन में उनमें खूब झाँव-झाँव होती थी। कोई बाहर का आदमी सुने तो समझे कि दोनों लड़ रहे हैं और अब हाथापाई की नौबत आनेवाली है; मगर उनके मुबाहसे मस्तिष्क के होते थे। हृदय दोनों के एक, दोनों सहृदय, प्रसन्नचित्त, स्पष्ट कहनेवाले, निःस्पृह। मानो देवलोक के निवासी हों; इसलिए पत्नी का देहांत हुआ, तो कई महीने तक हम लोगों को यह अन्देशा रहा कि यह महाशय आत्महत्या न कर बैठें। हम लोग सदैव उनकी दिलजोई करते रहते, कभी एकांत में न बैठने देते। रात को भी कोई-न-कोई उनके साथ लेटता था। ऐसे व्यक्तियों पर दूसरों को दया आती ही है। मित्रों की पत्नियाँ तो इन पर जान देती थीं। इनकी नजरों में वह देवताओं के भी देवता थे। उनकी मिसाल दे-देकर अपने पुरुषों से कहतीं—इसे कहते हैं प्रेम ! ऐसा पुरुष हो, तो क्यों न स्त्री उसकी गुलामी करे। जब से बीवी मरी है; गरीब ने कभी भरपेट भोजन नहीं किया, कभी नींद-भर नहीं सोया। नहीं तो तुम लोग दिल में मनाते रहते हो कि यह मर जाय, तो नया ब्याह रचायें। दिल में खुश होंगे कि अच्छा हुआ मर गयी, रोग टला अब नयी-नवेली स्त्री लायेंगे।

और अब महाशयजी का पैंतालीसवाँ साल था, सुगठित शरीर था, स्वास्थ्य अच्छा, रूपवान्, विनोदशील, सम्पन्न। चाहते तो तुरन्त दूसरा ब्याह कर लेते। उनके हाँ करने की

देर थी। गरज के बावले कन्यावालों ने सन्देश भेजे; मित्रों ने भी उजड़ा घर बसाना चाहा; पर इस स्मृति के पुजारी ने प्रेम के नाम को दाग न लगाया। अब हफ्तों बाल नहीं बनते; कपड़े नहीं बदले जाते। घसियारों-सी सूरत बनी हुई है, कुछ परवाह नहीं। कहाँ तो मुँह-अँधेरे उठते थे और चार मील का चक्कर लगा आते थे, कभी अलसा जाते थे तो देवीजी घुड़कियाँ जमातीं और उन्हें बाहर खदेड़कर द्वार बन्द कर लेतीं। कहाँ अब आठ बजे तक चारपाई पर पड़े करवटें बदल रहे हैं। उठने का जी नहीं चाहता। खिदमतगार ने हुक्का लाकर रख दिया, दो-चार कश लगा लिये। न लाये, तो गम नहीं। चाय आयी पी ली, न आये तो परवाह नहीं। मित्रों ने बहुत दबाया, तो सिनेमा देखने चले गये; लेकिन क्या देखा और क्या सुना, इसकी खबर नहीं। कहाँ तो अच्छे-अच्छे सूटों का खब्त था, कोई खुशनुमा डिजाइन का कपड़ा आ जाय, आप एक सूट जरूर बनवायेंगे। वह क्या बनवायेंगे, उनके लिए देवीजी बनवायेंगी। कहाँ अब पुराने-धुराने बदरंग सिकुड़े-सिकुड़ाये, ढीले-ढाले कपड़े लटकाये चले जा रहे हैं, जो अब दुबलेपन के कारण उतारे-से लगते हैं और जिन्हें अब किसी तरह सूट नहीं कहा जा सकता। महीनों बाजार जाने की नौबत नहीं आती। अबकी कड़ाके का जाड़ा पड़ा, तो आपने एक रुईदार नीचा लबादा बनवा लिया और खासे भगतजी बन गये। सिर्फ कंटोप की कसर थी। देवीजी होतीं, तो यह लबादा छीनकर किसी फकीर को दे देतीं; मगर अब कौन देखनेवाला है। किसे परवाह है, वह क्या पहनते हैं और कैसे रहते हैं। पैंतालीस की उम्र में जो आदमी पैंतीस का लगता था, वह अब पचास की उम्र में सत्तर का लगता है, कमर भी झुक गयी है, बाल भी सुफेद हो गये हैं, दाँत भी गायब हो गये। जिसने उन्हें तब देखा हो, आज पहचान भी न सके।

मजा यह है कि तब जिन विषयों पर देवीजी से लड़ा करते थे, वही अब उनकी उपासना के अंग बन गये हैं। मालूम नहीं उनके विचारों में क्रांति हो गयी है या मृतात्मा ने उनकी आत्मा में लीन होकर भिन्नताओं को मिटा दिया है। देवीजी को विधवा-विवाह से घृणा थी। महाशयजी इसके पक्के समर्थक थे; लेकिन अब आप भी विधवा-विवाह का विरोध करते हैं। आप पहले पश्चिमी या नयी सभ्यता के भक्त थे और देवीजी का मजाक उड़ाया करते थे। अब इस सभ्यता की उनसे ज्यादा तीव्र आलोचना शायद ही कोई कर सके। इस बार योंही अँग्रेजों के समय-नियन्त्रण की चर्चा चल गयी। मैंने कहा—इस विषय में हमें अंग्रेजों से सबक लेना चाहिए। बस, आप तड़पकर उठ बैठे और उन्मत्त स्वर में बोले—कभी नहीं, प्रलय तक नहीं। मैं इस नियन्त्रण को स्वार्थ का स्तम्भ, अहंकार का हिमालय और दुर्बलता का सहारा समझता हूँ। एक व्यक्ति मुसीबत का मारा आपके पास आता है। मालूम नहीं, कौन-सी जरूरत उसे आपके पास खींच लायी है; लेकिन आप फरमाते हैं—मेरे पास समय नहीं। यह उन्हीं लोगों का व्यवहार है, जो धन को मनुष्यता के ऊपर समझते हैं, जिनके लिए जीवन केवल धन है। जो व्यक्ति सहृदय है, वह कभी इस नीति को पसन्द न करेगा। हमारी सभ्यता धन को इतना ऊँचा स्थान नहीं देती थी। हम अपने द्वार हमेशा खुले रखते थे। जिसे जब जरूरत हो, हमारे पास आये। हम पूर्ण तन्मयता से उसका वृत्तान्त सुनेंगे और उसके हर्ष या शोक में शरीक होंगे। अच्छी सभ्यता है : जिस सभ्यता की स्पिरिट स्वार्थ हो, वह सभ्यता नहीं है; संसार के लिए अभिशाप है, समाज के लिए विपत्ति है। इस तरह धर्म के विषय में भी दम्पती में काफी वितंडा होता

रहता था। देवीजी हिन्दू धर्म की अनुगामिनी थीं, आप इस्लामी सिद्धान्तों के कायल थे; मगर अब आप भी पक्के हिन्दू हैं, बल्कि यों कहिए कि आप मानवधर्मी हो गये हैं। एक दिन बोले—मेरी कसौटी तो है मानवता ! जिस धर्म में मानवता को प्रधानता दी गयी है, बस, उसी धर्म का मैं दास हूँ। कोई देवता हो या नबी या पैगम्बर; अगर वह मानवता के विरुद्ध कुछ कहता है, तो मेरा उसे दूर से सलाम है। इस्लाम का मैं इसलिए कायल था कि वह मनुष्यमात्र को एक समझता है, ऊँच-नीच का वहाँ कोई स्थान नहीं है; लेकिन अब मालूम हुआ कि यह समता और भाईपन व्यापक नहीं, केवल इस्लाम के दायरे तक परिमित है। दूसरे शब्दों में, अन्य धर्मों की भाँति यह भी गुटबन्द है और इसके सिद्धांत केवल उस गुट या समूह को सबल और संगठित बनाने के लिए रचे गये हैं। और जब मैं देखता हूँ कि यहाँ भी जानवरों की कुरबानी शरीयत में दाखिल है और हरेक मुसलमान के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार भेड़, बकरी, गाय, या ऊँट की कुरबानी फर्ज बतायी गयी है, तो मुझे उसे अपौरुषेय होने में सन्देह होने लगता है। हिन्दुओं में भी एक सम्प्रदाय पशु-बलि को अपना धर्म समझता है। यहूदियों, ईसाइयों और अन्य मतों ने भी कुरबानी की बड़ी महिमा गायी है। इसी तरह एक समय नर-बलि का भी रिवाज था। आज भी कहीं-कहीं उस सम्प्रदाय के नामलेवा मौजूद हैं, मगर क्या सरकार ने नर-बलि को अपराध नहीं ठहराया और ऐसे मजहबी दीवानों को फाँसी नहीं दी ? अपने स्वाद के लिये आप भेड़ को जबह कीजिएगा, या गाय, ऊँट या घोड़े को ? मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन धर्म के नाम पर कुरबानी मेरी समझ में नहीं आती। अगर आज इन जानवरों का राज हो जाय, तो कहिए, वे इन कुरबानियों के जवाब में हमें और आपको कुरबान कर दें या नहीं ? मगर हम जानते हैं, जानवरों में कभी यह शक्ति न आयेगी, इसलिए हम बेधड़क कुरबानियाँ करते हैं और समझते हैं, हम बड़े धर्मात्मा हैं। स्वार्थ और लोभ के लिए हम चौबीसों घंटे अधर्म करते हैं। कोई गम नहीं, लेकिन कुरबानी का पुन लूटे बगैर हमसे नहीं रहा जाता। तो जनाब, मैं ऐसे रक्तशोषक धर्मों का भक्त नहीं। यहाँ तो मानवता के पुजारी हैं, चाहे इस्लाम में हो या हिन्दू-धर्म में या बौद्ध में या ईसाइयत में; अन्यथा मैं विधर्मी ही भला। मुझे किसी मनुष्य से केवल इसलिए द्वेष तो नहीं है कि यह मेरा सहधर्मी नहीं। मैं किसी का खून तो नहीं बहाता, इसलिए कि मुझे पुन होगा।

इस तरह के कितने ही परिवर्तन महाशयजी के विचारों में आ गये।

और महाशयजी के पास सम्भाषण का केवल एक ही विषय है, जिससे वह कभी नहीं थकते और वह है—उस स्वर्गवासिनी का गुणगान। कोई मेहमान आ जाय, आप बावले-से इधर-उधर दौड़ रहे हैं, कुछ नहीं सूझता, कैसे उसकी खातिर करें। क्षमा-याचना के लिए शब्द ढूँढ़ते फिरते हैं—भाईजान, मैं आपकी क्या खातिर करूँ, जो आपकी सच्ची खातिर करता, वह नहीं रहा। इस वक्त तक आपके सामने चाय और टोस्ट और बादाम का हलवा आ जाता। सन्तरे और सेव छिले-छिलाये तश्तरियों में रख दिये जाते। मैं तो निरा उल्लू हूँ, भाई साहब, बिलकुल काठ का उल्लू। मुझमें जो कुछ अच्छा था, वह सब उनका प्रसाद था। उसी की बुद्धि से मैं बुद्धिमान् था, उसी की सज्जनता से सज्जन, उसी की उदारता से उदार। अब तो निरा मिट्टी का पुतला हूँ भाई साहब, बिलकुल मुर्दा। मैं उस देवी के योग्य न था। न जाने किन शुभ-कर्मों के फल से वह मुझे मिली थी। आइए, आपको उसकी

तस्वीर दिखाऊँ। मालूम होता है, अभी-अभी उठकर चली गयी है। भाई साहब, आपसे साफ कहता हूँ, मैंने ऐसी सुन्दरी कभी नहीं देखी। उसके रूप में केवल रूप की गरिमा ही न थी, रूप का माधुर्य भी था और मादकता भी, एक-एक अंग साँचे में ढला था। साहब ! आप उसे देखकर कवियों के नख-सिख को लात मारते।

आप उत्सुक नेत्रों से वह तस्वीर देखते हैं। आपको उसमें कोई विशेष सौन्दर्य नहीं मिलता। स्थूल शरीर है, चौड़ा-सा मुँह, छोटी-छोटी आँखें, रंग-ढंग से दहकानीपन झलक रहा है। उस तस्वीर की खूबियाँ कुछ इस अनुराग और इस आडम्बर से बयान किये जाते हैं कि आपको सचमुच इस चित्र में सौन्दर्य का आभास होने लगता है। इस गुणानुवाद में कितना समय जाता है, वहीं महाशयजी के जीवन के आनन्द की घड़ियाँ हैं। इतनी ही देर वह जीवित रहते हैं। शेष जीवन निरानन्द है, निस्पन्द है।

पहले कुछ दिनों तक तो वह हमारे साथ हवा खाने जाते रहे—वह क्या जाते रहे, मैं जबरदस्ती ठेल-ठालकर ले जाता रहा, लेकिन रोज आधे घण्टे तक उनका इन्तजार करना पड़ता था। किसी तरह घर से निकलते भी तो जनवासे वाली चाल से चलते और आध मील में ही हिम्मत हार जाते और लौट चलने का तकाजा करने लगते। आखिर मैंने उन्हें साथ ले जाना छोड़ दिया। और तबसे उनकी चहलकदमी चालीस कदम की रह गयी है। सैर क्या है—बेगार है और वह भी इसलिए कि देवीजी के सामने उनका यह नियम था।

एक दिन उनके द्वार के सामने से निकला, तो देखा कि ऊपर की खिड़कियाँ, जो बरसों से बन्द पड़ी थीं, खुली हुई हैं ! अचरज हुआ। द्वार पर नौकर बैठा नारियल पी रहा था। उससे पूछा, तो मालूम हुआ, आप घूमने गये हैं। मुझे मीठा विस्मय हुआ। आज यह नई बात क्यों ! इतने सबेरे तो यह कभी नहीं उठते। जिस तरफ वह गये थे, उधर ही मैंने भी कदम बढ़ाये। इधर एक हफ्ते के लिये मैं एक नेवते में चला गया था। इस बीच यह क्या कायापलट हो गयी ! जरूर कोई-न-कोई रहस्य है। और भला आदमी निकल कितनी दूर गया ? दो मील तक कहीं पता नहीं ! मैं निराश हो गया, मगर यह महाशय रास्ते में कहाँ रह गये, यहाँ तो किसी से उनकी मुलाकात भी नहीं है, जहाँ ठहर गये हों ? कुछ चिन्ता भी हो रही थी। कहीं कुएँ में तो नहीं कूद पड़े ! मैं लौटने ही वाला था कि आप लौटते हुए नजर आये। चित्त शान्त हुआ। आज तो कैड़ा ही और था। बाल नये फैशन से कटे हुए, मूँछें साफ, दाढ़ी चिकनी, चेहरा खिला हुआ, चाल में चपलता, सूट पुराना, पर ब्रश किया हुआ और शायद इस्तरी भी की हुई, बूट पर ताजा पालिश। मुस्कराते चले आते थे। मुझे देखते ही लपककर हाथ मिलाया और बोले—आज कई दिन के बाद मिले ! कहीं गये थे क्या ?

मैंने अपनी गैरहाजिरी का कारण बताकर कहा—मैं डरता हूँ, आज तुम्हें नजर न लग जाय। अब मैं नित्य तुम्हारे साथ घूमने आया करूँगा। आज बहुत दिनों के बाद तुमने आदमी का चोला धारण किया है।

झेंपकर बोले—नहीं भई, मुझे अकेला ही रहने दो ! तुम लगोगे दौड़ने और ऊपर से घुड़कियाँ जमाओगे। मैं अपने हौले-हौले चला जाता हूँ। जब थक जाता हूँ, कहीं बैठ लेता हूँ। मेरा-तुम्हारा क्या साथ ?

'यह दशा तो तुम्हारी एक सप्ताह पहले न थी। आज तो तुम बिलकुल अप-टू-डेट

हो। इस चाल से तो शायद मैं तुमसे पीछे ही रहूँगा।'

'तुम तो बनाने लगे।'

'मैं कल से तुम्हारे साथ घूमने आऊँगा। मेरा इन्तजार करना।'

'नहीं भई, मुझे दिक न करो। मैं आजकल बहुत सबेरे उठ जाता हूँ। रात को नींद नहीं आती। सोचता हूँ, टहल ही आऊँ। तुम मेरे साथ क्यों परेशान होगे ?'

मेरा विस्मय बढ़ता जा रहा था। यह महाशय हमेशा मेरे पैरों पड़ते रहते थे कि मुझे भी साथ ले लिया करो। जब मैंने इनकी मन्थरता से हारकर इनका साथ छोड़ दिया, तब इन्हें बड़ा दुःख हुआ। दो-एक बार मुझसे शिकायत भी की—हाँ भई, अब क्यों साथ दोगे ? अभागों का साथ किसने दिया है, या तुम कोई नयी नीति निकालोगे ? जमाने का दस्तूर है, जो लँगड़ाता हो उसे ढकेल दो, जो बीमार हो, उसे जहर दे दो और वही आदमी आज मुझसे पीछा छुड़ा रहा है ? यह क्या रहस्य है ? यह चपलता, प्रसन्नता और सजीवता कहाँ से आ गयी ? कहीं आपने बन्दर की गिल्टी तो नहीं लगवा ली! यह नया सिविल सार्जन गिल्टी-आरोपण-कला में सिद्धहस्त है। मुमकिन है, इन्हें किसी ने सुझा दिया हो और आपने हजार-पाँच सौ खर्च करके गिल्टी बदलवा ली हो। इस पहेली को बूझे बगैर चैन कहाँ। उनके साथ ही लौट पड़ा।

दो-चार कदम चलकर मैंने पूछा—सच बताओ, भाईजान ! गिल्टी-विल्टी तो नहीं लगवा ली ?

उन्होंने प्रश्न की आँखों से देखा—कैसी गिल्टी ? मैं नहीं समझा।

'मुझे सन्देह हो रहा है कि तुमने बन्दर की गिल्टियाँ लगवा ली हैं।'

'अरे यार, क्यों कोसते हो ? गिल्टियाँ किसलिए लगवाता ? मुझे तो इसका कभी खयाल भी नहीं आया।'

'तो क्या कोई बिजली का यन्त्र मँगवा लिया है ?'

'तुम आज मेरे पीछे क्यों हाथ धोकर पड़े हो ? विधवा भी तो कभी सिंगार कर लेती है ? जी ही तो है ! एक दिन मुझे अपने आलस्य और बेदिली पर खेद हुआ। मैंने सोचा, जब संसार में रहना है, तो जिंदों की तरह क्यों न रहूँ। मुर्दो की तरह जीने से क्या फायदा। बस और न कोई बात है, न रहस्य।'

मुझे इस व्याख्या से सन्तोष न हुआ। दूसरे दिन जरा और सबेरे आकर मुंशीजी के द्वार पर आवाज दी; लेकिन आप आज भी निकल चुके थे। मैं उनके पीछे भागा। जिद पड़ गयी कि इसे अकेले न जाने दूँगा। देखूँ, कब तक मुझसे भागता है। कोई रहस्य है अवश्य। अच्छा बचा, आधी रात को आकर बिस्तर से न उठाऊँ तो सही। दौड़ तो न सका; लेकिन जितना तेज चल सकता था, चला। एक मील के बाद आप नजर आये। बगटुट भागे चले जा रहे थे। अब मैं बार-बार पुकार रहा हूँ—हजरत, जरा ठहर जाइए, मेरी साँस फूल रही है; मगर आप हैं कि सुनते ही नहीं। आखिर जब मैंने अपने सिर की कसम दिलायी, तब जाकर आप रुके। मैं झपाटे से पहुँचा, तो तिनककर बोले—मैंने तुमसे कह दिया था, मेरे घर मत आना, फिर क्यों आये और क्यों मेरे पीछे पड़े ? मुझे आप धीरे-धीरे घूमने दो। तुम अपना रास्ता लो।

मैंने उनका हाथ पकड़कर जोर से झटका दिया और बोला—देखो, होरीलाल, मुझसे

उड़ो नहीं, वरना मुझे जानते हो, कितना बेमुरौवत आदमी हूँ। तुम यह धीरे-धीरे टहल रहे हो या डबल मार्च कर रहे हो ! मेरी पिंडलियों में दर्द होने लगा और पसलियाँ दुख रही हैं। डाक का हरकारा भी तो इस चाल से नहीं दौड़ता। उस पर गजब यह कि तुम थके नहीं हो, अब भी उसी दम-खम के साथ चले जा रहे हो। अब तो तुम डण्डे लेकर भगाओ, तो भी तुम्हारा दामन न छोड़ूँ। तुम्हारे साथ दो मील भी चलूँगा, तो अच्छी खासी कसरत हो जायगी, मगर अब साफ-साफ बतलाओ, बात क्या है ? तुममें यह जवानी कहाँ से आ गयी? अगर किसी अकसीर का सेवन कर रहे हो, तो मुझे भी दो। कम-से-कम उसे मँगाने का पता बता दो, मैं मँगवा लूँगा; अगर किसी दुआ-ताबीज की करामात है, तो मुझे भी उस पीर के पास ले चलो।

मुस्कराकर बोले—तुम तो पागल हो, झूठ-मूठ मुझे दिक कर रहे हो। बूढ़े हो गये, मगर लड़कपन न गया। क्या तुम चाहते हो कि मैं हमेशा उसी तरह मुर्दा पड़ा रहूँ। इतना भी तुमसे नहीं देखा जाता ! तब तो तुम्हारे मिजाज ही न थे। कितनी चिरौरी की कि भाईजान; मुझ भकुवे को भी साथ ले लिया करो। मगर आप नखरे दिखाने लगे। अब क्यों मेरे पीछे पड़े हो ? यह समझ लो, जो अपनी मदद आप करता है, उसकी मदद परमात्मा भी करते हैं। मित्रों और बन्धुओं की मुरौवत देख ली ! अब अपने बूते पर चलूँगा।

वह इसी तरह मुझे कोसते जा रहे थे और मैं उन्हें छेड़-छेड़कर और भी उत्तेजित कर रहा था कि एकाएक उन्होंने उँगली मुँह पर रख कर मुझे चुप रहने का इशारा किया। और जरा कद और सीधा करके और चेहरे पर प्रसन्नता और पुरुषार्थ का रंग भर मस्तानी चाल से चलने लगे। मेरी समझ में जरा भी न आया, यह संकेत और बहुरूप किसलिए ? वहाँ तो दूसरा कोई था भी नहीं। हाँ, सामने से एक स्त्री चली आ रही थी; मगर उसके सामने इस पर्देदार की क्या जरूरत ? मैंने तो उसे कभी देखा भी न था। आसमानी रंग की रेशमी साड़ी, जिस पर पीला लैस टँका था, उस पर खूब खिल रही थी। रूपवती कदापि न थी, मगर रूप से ज्यादा मोहक थी उसकी सरलता और प्रसन्नता। एक बहुत ही मामूली शक्ल-सूरत की औरत इतनी नयनाभिराम हो सकती है, यह मैं न समझ सकता था।

उसने होरीलाल के बराबर आकर नमस्कार किया। होरीलाल ने जवाब में सिर तो झुका दिया; मगर बिना कुछ बोले आगे बढ़ना चाहते थे कि उसने कोयल के स्वर में कहा—'क्या अव लौटिएगा नहीं ? आप अपनी सीमा से आगे बढ़े जा रहे हैं। और हाँ, आज तो आपने मुझे देवीजी की तस्वीर देने का वादा किया था। शायद भूल गये, आपके साथ चलूँ ?'

महाशयजी कुछ ऐसे बौखलाये हुए थे, कि मामूली शिष्टाचार भी न कर सके। यों वह बड़े ही भद्र पुरुष हैं और शिष्टाचार में निपुण; लेकिन इस वक्त जैसे उनके हाथ-पाँव फूले हुए थे। एक कदम और आगे बढ़कर बोले—आप क्षमा कीजिए। मैं एक काम से जा रहा हूँ।

महिला ने कुछ चिढ़ाकर कहा—आप तो जैसे भागे जा रहे हैं। मुझे तस्वीर दीजिएगा या नहीं ?

महाशयजी ने मेरी ओर कुपित नेत्रों से देखकर कहा—तलाश करूँगा।

सुन्दरी ने शिकायत के स्वर में कहा—आपने तो फरमाया था कि वह हमेशा आपकी

मेज पर रहती है। और अब आप कहते हैं—तलाश करूँगा। आपकी तबीयत तो अच्छी है? जब से आपने उनका चरित्र सुनाया है, मैं उनके दर्शनों के लिए व्याकुल हो रही हूँ। अगर आप यों न देंगे, मैं आपकी मेज पर से उठा लाऊँगी। (मेरी ओर देखकर) आप मेरी मदद कीजिएगा महाशय। यद्यपि मैं जानती हूँ, आप इनके मित्र हैं और इनके साथ दगा न करेंगे। आपको ताज्जुब हो रहा होगा, यह कौन औरत महाशयजी से इतनी निस्संकोच होकर बातें कर रही है। इनसे पहली बार मेरा परिचय सब्जीमंडी में हुआ था। मैं शाक-भाजी खरीदने गयी हुई थी। अपनी भाजी मैं खुद लाती हूँ, जिस चीज पर जीवन का आधार है, उसे नौकरों के हाथ नहीं छोड़ना चाहती। भाजी लेकर मैंने दाम देने के लिए रुपया निकाला, तो कुँजड़े ने उसे टंकारकर कहा—दूसरा रुपया दो, यह खोटा है। अब मैंने तो खुद टंकारा, जो मालूम हुआ, सचमुच कुछ ठस है। अब क्या करूँ! मेरे पास दूसरा रुपया न था, यद्यपि इस तरह के कटु अनुभव मुझे कितनी बार हो चुके हैं; मगर घर से रुपया लेकर चलते वक्त मुझे उसे परख लेने की याद नहीं रहती। न किसी से लेती ही बार परखती हूँ।

इस वक्त मेरे संदूक में ज्यादा नहीं तो बीस-पचीस खोटे रुपये पड़े होंगे, और रेजगारियाँ तो सैकड़ों की ही होंगी। मेरे लिए अब इसके सिवा दूसरा उपाय न था कि भाजी लौटाकर खाली हाथ चली आऊँ। संयोग से महाशयजी उसी दूकान पर भाजी लेने आये थे। मुझे इस विपत्ति में देखकर आपने तुरन्त एक रुपया निकालकर दे दिया...।

महाशयजी ने बात काट कर कहा—तो इस वक्त आप वह सारी कथा क्यों सुना रही हैं ? हम दोनों एक जरूरी काम से जा रहे हैं। व्यर्थ में देर हो रही है।

उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा।

मुझे उनकी यह अभद्रता बुरी लगी। कुछ-कुछ इसका रहस्य भी समझ में आ गया। बोला—तो आप जाइए; मुझे ऐसा कोई जरूरी काम नहीं है, मैं भी अब लौटना चाहता हूँ।

महाशयजी ने दाँत पीस लिए, अगर वह सुन्दरी वहाँ न होती, तो न-जानें मेरी क्या दुर्दशा करते। एक क्षण मेरी ओर अग्नि-भरे नेत्रों से ताकते रहे, मानो कह रहे हों—अच्छा, इसका मजा न चखाया, तो कहना और चल दिये। मैं देवी के साथ लौटा।

सहसा उसने हिचकिचाते हुए कहा—मगर नहीं, आप जाइए, मैं उनके साथ जाऊँगी। शायद मुझसे नाराज हो गये हैं। आज एक सप्ताह से मेरा और उनका रोज साथ हो जाता है और अब अपनी जीवन-कथा सुनाया करते हैं। कैसी नसीबवाली थी, वह औरत, जिसका पति आज भी उसके नाम की पूजा करता है। आपने तो उन्हें देखा होगा। क्या सचमुच इन पर जान देती थी ?

मैंने गर्व से कहा—दोनों में इश्क था।

'और जब से उनका देहान्त हुआ, यह दुनिया से मुँह मोड़ बैठे ?'

'इससे भी अधिक ! उसकी स्मृति के सिवा जीवन में उनके लिए कोई रम ही न रहा।'

'वह रूपवती थी ?'

'इनकी दृष्टि में तो उससे बढ़कर रूपवती संसार में न थी।'

उसने एक मिनट तक किसी विचार में मग्न रहकर कहा—अच्छा आप जायँ। मैं उनके साथ बात करूँगी। ऐसे देवता पुरुष की मुझसे जो सेवा हो सकती है, उसमें क्यों

दरेग करूँ ? मैं तो इनका वृत्तान्त सुनकर सम्मोहित हो गयी हूँ।

मैं अपना-सा मुँह लेकर घर चला आया। इत्तफाक से उसी दिन मुझे एक जरूरी काम से दिल्ली जाना पड़ा। वहाँ से एक महीने में लौटा। और सबसे पहला काम जो मैंने किया, वह महाशय होरीलाल का क्षेम-कुशल पूछना था। इस बीच में क्या-क्या नयी बातें हो गयीं—यह जानने के लिए अधीर हो रहा था। दिल्ली से इन्हें एक पत्र लिखा था; पर इन हजरत में यह बुरी आदत है कि पत्रों का जवाब नहीं देते। सुन्दरी से इनका अब क्या संबंध है, आमदरफ्त जारी है, या बन्द हो गयी, उसने इनके पत्नी-व्रत का क्या पुरस्कार दिया, या देनेवाली है ? इस तरह के प्रश्न दिल में उबल रहे थे।

मैं महाशयजी के घर पहुँचा, तो आठ बज रहे थे। खिड़कियों के पट बन्द थे। सामने बरामदे में कूड़े-करकट का ढेर था। ठीक वही दशा थी, जो पहले नजर आती थी। चिन्ता और बढ़ी। ऊपर गया तो देखा, आप उसी फर्श पर पड़े हुए—जहाँ दुनिया-भर की चीजें बेढंगेपन से अस्त-व्यस्त पड़ी हुई हैं—एक पत्रिका के पन्ने उलट रहे हैं। शायद एक सप्ताह से बाल नहीं बने थे। चेहरे पर जर्दी छायी थी।

मैंने पूछा—आप सैर करके लौट आये क्या ?

सिटपिटाकर बोले—अजी, सैर-सपाटे की कहाँ फुर्सत है भई, और फुर्सत भी हो, तो वह दिल कहाँ है ? तुम तो कहीं बाहर गये थे ?

'हाँ, जरा देहली तक गया था। अब सुन्दरी से आपकी मुलाकात नहीं होती ?'

'इधर तो बहुत दिनों से नहीं हुई।'

'कहीं चली गयी क्या ?'

'मुझे क्या खबर !'

'मगर आप तो उस पर बेतरह रीझे हुए थे।'

'मैं उस पर रीझा था ! आप सनक तो नहीं गये हैं ! जिस पर रीझा था, जब उसी ने साथ न दिया, तो अब दूसरों पर क्या रीझूँगा ?'

मैंने बैठकर उसकी गर्दन में हाथ डाल दिया और धमकाकर बोला—देखो होरीलाल, मुझे चकमा न दो। पहले मैं तुम्हें जरूर व्रतधारी समझता था, लेकिन तुम्हारी वह रसिकता देखकर, जिसका दौरा तुम्हारे ऊपर एक महीना पहले हुआ था, मैं यह नहीं मान सकता कि तुमने अपनी अभिलाषाओं को सदा के लिए दफन कर दिया है। इस बीच में जो कुछ हुआ है, उसका पूरा-पूरा वृत्तान्त मुझे सुनाना पड़ेगा। वरना समझ लो, मेरी और तुम्हारी दोस्ती का अन्त है।

होरीलाल की आँखें सजल हो गयीं। हिचक-हिचककर बोले—मेरे साथ इतना बड़ा अन्याय मत करो, भाईजान ! अगर तुम्हीं मुझपर ऐसे सन्देह करने लगोगे, तो मैं कहीं का न रहूँगा। उस स्त्री का नाम मिस इंदिरा है। यहाँ जो लड़कियों का हाईस्कूल है, उसी की हेड मिस्ट्रेस होकर आयी हैं। मेरा उससे कैसे परिचय हुआ, यह तो तुम्हें मालूम ही है। उसकी सहृदयता ने मुझे उसका प्रेमी बना दिया। इस उम्र में और शोक का यह भार सिर पर रखे हुए, सहृदयता के सिवा मुझे उसकी ओर कौन-सी चीज खींच सकती थी ? मैं केवल अपनी मनोव्यथा की कहानी सुनाने के लिए नित्य विरहियों की उमंग के साथ उसके पास जाता था। वह रूपवती है, खुशमिजाज है, दूसरों का दुःख समझती है और

स्वभाव की बहुत कोमल है, लेकिन तुम्हारी भाभी से उसकी क्या तुलना ! वह तो स्वर्ग की देवी थी। उसने मुझपर जो रंग जमा दिया, उस पर अब दूसरा रंग क्या जमेगा। मैं उसी ज्योति से जीवित था। उस ज्योति के साथ मेरा जीवन भी विदा हो गया। अब तो मैं उसी प्रतिमा का उपासक हूँ, जो मेरे हृदय में है। किसी हमदर्द की सूरत देखता हूँ, तो निहाल हो जाता हूँ और अपनी दुःख कथा सुनाने दौड़ता हूँ। यह मेरी दुर्बलता है, यह जानता हूँ, मेरे सभी मित्र इसी कारण मुझसे भागते हैं, यह भी जानता हूँ। लेकिन क्या करूँ भैया, किसी-न-किसी को दिल की लगी सुनाये बगैर मुझसे नहीं रहा जाता। ऐसा मालूम होता है, मेरा दम घुट जायगा। इसलिए जब मिस इंदिरा की मुझपर दया दृष्टि हुई; तो मैंने इसे दैवी अनुरोध समझा और उस धुन में—जो मेरे मित्रवर्ग दुर्भाग्यवश उन्माद समझते हैं—वह सब कुछ कह गया, जो मेरे मन में था और है एवं मरते दम तक रहेगा। उन शुभ दिनों की याद कैसे भुला दूँ ? मेरे लिए तो वह अतीत वर्तमान से भी ज्यादा सजीव और प्रत्यक्ष है। मैं तो अब भी उसी अतीत में रहता हूँ। जिस इंदिरा को मुझ पर दया आ गयी, एक दिन उन्होंने मेरी दावत की और कई स्वादिष्ट खाने अपने हाथ से बनाकर खिलाये। दूसरे दिन मेरे घर आयीं और यहाँ की सारी चीजों को व्यवस्थित रूप में सजा गयीं। तीसरे दिन कुछ कपड़े लायीं और मेरे लिए खुद एक सूट तैयार किया ! इस कला में बड़ी चतुर हैं।

एक दिन शाम को क्वींस पार्क में मुझसे बोलीं—आप अपनी शादी क्यों नहीं कर लेते ?

मैंने हँसकर कहा—इस उम्र में अब क्या शादी करूँगा, इंदिरा ! दुनिया क्या कहेगी !

मिस इंदिरा बोलीं—आपकी उम्र अभी ऐसी क्या है। आप चालीस से ज्यादा नहीं मालूम होते।

मैंने उनकी भूल सुधारी—मेरा पचासवाँ साल है।

उन्होंने मुझे प्रोत्साहन देकर कहा—उम्र का हिसाब साल से नहीं होता, महाशय; सेहत से होता है। आपकी सेहत बहुत अच्छी है। कोई आपको पान की तरह फेरनेवाला चाहिए। किसी युवती के प्रेम-पाश में फँस जाइए। फिर देखिए, यह नीरसता कहाँ गायब हो जाती है।

मेरा दिल धड़-धड़ करने लगा। मैंने देखा मिस इंदिरा के गोरे मुख-मंडल पर हल्की-सी लाली दौड़ गयी है। उनकी आँखें शर्म से झुक गयी हैं और कोई बात बार-बार उनके ओंठों तक आकर लौट जाती है। आखिर उन्होंने आँख उठायी और मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर बोलीं—अगर आप समझते हों कि मैं आपकी कुछ सेवा कर सकती हूँ, तो मैं हर तरह हाजिर हूँ, मुझे आपसे जो भक्ति और प्रेम है, वह इसी रूप में चरितार्थ हो सकता है।

मैंने धीरे से अपना हाथ छुड़ा लिया और काँपते हुए स्वर में बोला—मैं तुम्हारी इस कृपा का कहाँ तक धन्यवाद दूँ, मिस इंदिरा; मगर मुझे खेद है कि मैं सजीव मनुष्य नहीं, केवल मधुर समृतियों का पुतला हूँ। मैं उस देवी की स्मृति को अपनी लिप्सा और तुम्हारी सहानुभूति को, अपनी आसक्ति से भ्रष्ट नहीं करना चाहता।

मैंने इसके बाद बहुत-सी चिकनी-चुपड़ी बातें कीं, लेकिन वह जब तक यहाँ रहीं, मुँह से कुछ न बोलीं। जाते समय भी उनकी भवें तनी हुई थीं। मैंने अपने आँसुओं

से उनकी ज्वाला को शांत करना चाहा; लेकिन कुछ असर न हुआ तब से वह नजर नहीं आयीं। न मुझे ही हिम्मत पड़ी कि उनको तलाश करता, हालाँकि चलती बार उन्होंने मुझसे कहा था—जब आपको कोई कष्ट हो और आप मेरी जरूरत समझें तो मुझे बुला लीजिएगा।

होरीलाल ने अपनी कथा समाप्त करके मेरी ओर ऐसी आँखों से देखा जो चाहती थीं कि मैं उनके व्रत और संतोष की प्रशंसा करूँ; मगर मैंने उनकी भर्त्सना की—कितने बदनसीब हो तुम होरीलाल, मुझे तुम्हारे ऊपर दया भी आती है और क्रोध भी ! अभागे तेरी जिन्दगी सँवर जाती। वह स्त्री नहीं थी ईश्वर की भेजी कोई देवी थी, जो तेरे अँधेरे जीवन को अपनी मधुर ज्योति से आलोकित करने के लिए आयी थी, तूने स्वर्ण का-सा अवसर हाथ से खो दिया।

होरीलाल ने दीवार पर लटके हुए अपनी पत्नी के चित्र की ओर देखा और प्रेम-पुलकित स्वर में बोले—मैं तो उसी का आशिक हूँ भाईजान, और उसी का आशिक रहूँगा।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू। उर्दू रूप 'वफा का देवता' शीर्षक से 'अस्मत' वर्षांक, 1932 में प्रकाशित। उर्दू कहानी संग्रह 'दूध की कीमत' में संकलित। हिन्दी रूप 'हंस', अप्रैल 1935 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित।]

कायर

युवक का नाम केशव था, युवती का प्रेमा। दोनों एक ही कॉलेज के और एक ही क्लास के विद्यार्थी थे। केशव नये विचारों का युवक था, जात-पाँत के बन्धनों का विरोधी। प्रेमा पुराने संस्कारों की कायल थी, पुरानी मर्यादाओं और प्रथाओं में पूरा विश्वास रखनेवाली; लेकिन फिर भी दोनों में गाढ़ा प्रेम हो गया था। और यह बात सारे कॉलेज में मशहूर थी। केशव ब्राह्मण होकर भी वैश्य कन्या प्रेमा से विवाह करके अपना जीवन सार्थक करना चाहता था। उसे अपने माता-पिता की परवाह न थी। कुल-मर्यादा का विचार भी उसे स्वाँग-सा लगता था। उसके लिए सत्य कोई वस्तु थी, तो प्रेम थी; किन्तु प्रेमा के लिए माता-पिता और कुल-परिवार के आदेश के विरुद्ध एक कदम बढ़ाना भी असम्भव था।

संध्या का समय है। विक्टोरिया-पार्क के एक निर्जन स्थान में दोनों आमने-सामने हरियाली पर बैठे हुए हैं। सैर करने वाले एक-एक करके विदा हो गये; किन्तु ये दोनों अभी वहीं बैठे हुए हैं। उनमें एक ऐसा प्रसंग छिड़ा हुआ है, जो किसी तरह समाप्त नहीं होता।

केशव ने झुँझलाकर कहा—इसका यह अर्थ है कि तुम्हें मेरी परवाह नहीं है ?

प्रेमा ने उसको शांत करने की चेष्टा करके कहा—तुम मेरे साथ अन्याय कर रहे हो, केशव ! लेकिन मैं इस विषय को माता-पिता के सामने कैसे छेड़ूं, यह मेरी समझ में नहीं आता। वे लोग पुरानी रूढ़ियों के भक्त हैं। मेरी तरफ से कोई ऐसी बात सुनकर मन में जो जो शंकाएँ होंगी, उनकी तुम कल्पना कर सकते हो ?

केशव ने उग्र भाव से कहा—तो तुम भी उन्हीं पुरानी रूढ़ियों की गुलाम हो ?

प्रेमा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में मृदु-स्नेह भरकर कहा—नहीं, मैं उनकी गुलाम नहीं हूँ, लेकिन माता-पिता की इच्छा मेरे लिए और सब चीजों से अधिक मान्य है।

'तुम्हारा व्यक्तित्व कुछ नहीं है ?'

'ऐसा ही समझ लो।'

'मैं तो समझता था कि ये ढकोसले मूर्खों के लिए ही हैं; लेकिन अब मालूम हुआ कि तुम जैसी विदुषियाँ भी उनकी पूजा करती हैं। जब मैं तुम्हारे लिए संसार को छोड़ने पर तैयार हूँ तो तुमसे भी यही आशा करता हूँ।'

प्रेमा ने मन में सोचा, मेरा अपनी देह पर क्या अधिकार है। जिन माता-पिता ने अपने रक्त से मेरी सृष्टि की है, और अपने स्नेह से उसे पाला है, उनकी मरजी के खिलाफ कोई काम करने का उसे कोई हक नहीं।

उसने दीनता के साथ केशव से कहा—क्या प्रेम स्त्री और पुरुष के रूप ही में रह सकता है, मैत्री के रूप में नहीं ? मैं तो आत्मा का बंधन समझती हूँ।

केशव ने कठोर भाव से कहा—इन दार्शनिक विचारों से तुम मुझे पागल कर दोगी, प्रेमा ! बस, इतना समझ लो मैं निराश होकर जिन्दा नहीं रह सकता। मैं प्रत्यक्षवादी हूँ, और कल्पनाओं के संसार में प्रत्यक्ष का आनन्द उठाना मेरे लिए असम्भव है।

यह कहकर उसने प्रेमा का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचने की चेष्टा की। प्रेमा ने झटके से हाथ छुड़ा लिया और बोली—नहीं केशव, मैं कह चुकी हूँ कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। तुम मुझसे वह चीज न माँगो, जिस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।

केशव को अगर प्रेमा ने कठोर शब्द कहे होते तो भी उसे इतना दुःख न हुआ होता। एक क्षण तक वह मन मारे बैठा रहा, फिर उठकर निराशा भरे स्वर में बोला—'जैसी तुम्हारी इच्छा ! आहिस्ता-आहिस्ता कदम-सा उठाता हुआ वहाँ से चला गया। प्रेमा अब भी वहीं बैठी आँसू बहाती रही।

2

रात को भोजन करके प्रेमा जब अपनी माँ के साथ लेटी, तो उसकी आँखों में नींद न थी। केशव ने उसे एक ऐसी बात कह दी थी, जो चंचल पानी में पड़ने वाली छाया की तरह उसके दिल पर छायी हुई थी। प्रतिक्षण उसका रूप बदलता था। वह उसे स्थिर न कर सकती थी। माता से इस विषय में कुछ कहे तो कैसे ? लज्जा मुँह बन्द कर देती थी। उसने सोचा, अगर केशव के साथ मेरा विवाह न हुआ तो उस समय मेरा क्या कर्तव्य होगा। अगर केशव ने कुछ उद्दंडता कर डाली तो मेरे लिए संसार में फिर क्या रह जायगा; लेकिन मेरा बस ही क्या है। इन भाँति-भाँति के विचारों में एक बात जो उसके मन में निश्चित हुई, वह यह थी कि केशव के सिवा वह और किसी से विवाह न करेगी।

उसकी माता ने पूछा—क्या तुझे अब तक नींद न आयी ? मैंने तुझसे कितनी बार कहा कि थोड़ा-बहुत घर का काम-काज किया कर; लेकिन तुझे किताबों से ही फुरसत नहीं मिलती। चार दिन में तू पराये घर जायगी, कौन जाने कैसा घर मिले। अगर कुछ काम करने की आदत न रही, तो कैसे निबाह होगा ?

प्रेमा ने भोलेपन से कहा—मैं पराये घर जाऊँगी ही क्यों ?

माता ने मुस्कराकर कहा—लड़कियों के लिए यही तो सबसे बड़ी विपत्ति है, बेटी ! माँ-बाप की गोद में पलकर ज्यों ही सयानी हुई, दूसरों की हो जाती है। अगर अच्छे प्राणी मिले, तो जीवन आराम से कट गया, नहीं रो-रोकर दिन काटना पड़ा। सब कुछ भाग्य के अधीन है। अपनी बिरादरी में तो मुझे कोई घर नहीं भाता। कहीं लड़कियों का आदर नहीं; लेकिन करना तो बिरादरी में ही पड़ेगा। न जाने यह जात-पाँत का बन्धन कब टूटेगा ?

प्रेमा डरते-डरते बोली—कहीं-कहीं तो बिरादरी के बाहर भी विवाह होने लगे हैं !

उसने कहने को कह दिया; लेकिन उसका हृदय काँप रहा था कि माता जी कुछ भाँप न जायँ।

माता ने विस्मय से पूछा—क्या हिन्दुओं में ऐसा हुआ है !

फिर उसने आप-ही-आप उस प्रश्न का जवाब भी दिया—और दो-चार जगह ऐसा हो भी गया, तो उससे क्या होता है ?

प्रेमा ने इसका कुछ जवाब न दिया, भय हुआ कि माता कहीं उसका आशय समझ न जायँ। उसका भविष्य एक अंधेरी खाई की तरह उसके सामने मुँह खोले खड़ा था, मानो उसे निगल जायगा।

उसे न जाने कब नींद आ गयी।

3

प्रातःकाल प्रेमा सोकर उठी, तो उसके मन में एक विचित्र साहस का उदय हो गया था। सभी महत्वपूर्ण फैसले हम आकस्मिक रूप से लिया करते हैं, मानो कोई दैवी-शक्ति हमें उनकी ओर खींच ले जाती है; वही हालत प्रेमा की थी। कल तक वह माता-पिता के निर्णय को मान्य समझती थी, पर संकट को सामने देखकर उसमें उस वायु की हिम्मत पैदा हो गयी थी, जिसके सामने कोई पर्वत आ गया हो। वही मन्द वायु प्रबल वेग से पर्वत के मस्तक पर चढ़ जाती है और उसे कुचलती हुई दूसरी तरफ जा पहुँचती है। प्रेमा मन में सोच रही थी—मानो, यह देह माता-पिता की है; किन्तु आत्मा तो मेरी है। मेरी आत्मा को जो कुछ भुगतना पड़ेगा, वह इसी देह से तो भुगतना पड़ेगा। अब वह इस विषय में संकोच करना अनुचित ही नहीं, घातक समझ रही थी। अपने जीवन को क्यों एक झूठे सम्मान पर बलिदान करे ? उसने सोचा विवाह का आधार अगर प्रेम न हो, तो वह देह का विक्रय है। आत्म समर्पण क्या बिना प्रेम के भी हो सकता है ? इस कल्पना ही से कि न जाने किस अपरिचित युवक से उसका विवाह हो जायगा, उसका हृदय विद्रोह कर उठा।

वह अभी नाश्ता करके कुछ पढ़ने जा रही थी कि उसके पिता ने प्यार से पुकारा—मैं कल तुम्हारे प्रिन्सिपल के पास गया था, वे तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहे थे।

प्रेमा ने सरल भाव से कहा—आप तो यों ही कहा करते हैं।

'नहीं, सच।'

यह कहते हुए उन्होंने अपनी मेज की दराज खोली, और मखमली चौखटों में जड़ी हुई एक तस्वीर निकालकर उसे दिखाते हुए बोले—यह लड़का आई. सी. एस. के इम्तहान में प्रथम आया है। इसका नाम तो तुमने सुना होगा ?

बूढ़े पिता ने ऐसी भूमिका बाँध दी थी कि माँ उनका आशय न समझ सकी लेकिन प्रेमा भाँप गयी ! उसका मन तीर की भाँति लक्ष्य पर जा पहुँचा। उसने बिना तस्वीर की ओर देखे ही कहा—नहीं, मैंने तो उसका नाम नहीं सुना।

पिता ने बनावटी आश्चर्य से कहा—क्या ! तुमने उसका नाम ही नहीं सुना ? आज के दैनिक पत्र में उसका चित्र और जीवन-वृत्तान्त छपा है।

प्रेमा ने रुखाई से जवाब दिया—होगा, मगर मैं तो उस परीक्षा का कोई महत्व नहीं समझती। मैं तो समझती हूँ, जो लोग इस परीक्षा में बैठते हैं वे पल्ले सिरे के स्वार्थी होते हैं। आखिर उनका उद्देश्य इसके सिवा और क्या होता है कि अपने गरीब, निर्धन, दलित भाइयों पर शासन करें और खूब धन संचय करें। यह तो जीवन का कोई ऊँचा उद्देश्य नहीं है।

इस आपत्ति में जलन थी, अन्याय था, निर्दयता थी। पिता जी ने समझा था, प्रेमा यह बखान सुनकर लट्टू हो जायगी। यह जवाब सुनकर तीखे स्वर में बोले—तू तो ऐसी बातें कर रही है जैसे तेरे लिए धन और अधिकार का कोई मूल्य ही नहीं।

प्रेमा ने ढिठाई से कहा—हाँ, मैं तो इसका मूल्य नहीं समझती। मैं तो आदमी में त्याग देखती हूँ। मैं ऐसे युवकों को जानती हूँ, जिन्हें यह पद जबरदस्ती भी दिया जाये, तो स्वीकार न करेंगे।

पिता ने उपहास के ढंग से कहा—यह तो आज मैंने नई बात सुनी। मैं तो देखता हूँ कि छोटी-छोटी नौकरियों के लिए लोग मारे-मारे फिरते हैं। मैं जरा उस लड़के की सूरत देखना चाहता हूँ, जिसमें इतना त्याग हो। मैं तो उसकी पूजा करूँगा।

शायद किसी दूसरे अवसर पर ये शब्द सुनकर प्रेमा लज्जा से सिर झुका लेती; पर इस समय उसकी दशा उस सिपाही की सी थी, जिसके पीछे गहरी खाई हो। आगे बढ़ने के सिवा उसके लिए और कोई मार्ग न था। अपने आवेश को संयम से दबाती हुई, आँखों में विद्रोह भरे, वह अपने कमरे में गयी, और केशव के कई चित्रों में से वह एक चित्र चुनकर लायी, जो उसकी निगाह में सबसे खराब था, और पिता के सामने रख दिया। बूढ़े पिता ने चित्र को उपेक्षा के भाव से देखना चाहा; लेकिन पहली दृष्टि ही में उसने उन्हें आकर्षित कर लिया। ऊँचा कद था और दुर्बल होने पर भी उसका स्वास्थ्य और संयम का परिचय दे रहा था। मुख पर प्रतिभा का तेज न था; पर विचारशीलता का कुछ ऐसा प्रतिबिम्ब था, जो उसके मन में विश्वास पैदा करता था।

उन्होंने उस चित्र की ओर देखते हुए पूछा—यह किसका चित्र है ?

प्रेमा ने संकोच से सिर झुकाकर कहा—यह मेरी ही क्लास में पढ़ते हैं।

'अपनी ही बिरादरी का है ?'

प्रेमा की मुखमुद्रा धूमिल हो गयी। इसी प्रश्न के उत्तर पर उसकी किस्मत का फैसला हो जायगा। उसके मन में पछतावा हुआ कि व्यर्थ मैं इस चित्र को यहाँ लायी। उसमें एक क्षण के लिए जो दृढ़ता आयी थी, वह इस पैने प्रश्न के सामने कातर हो उठी। दबी हुई आवाज में बोली--'जी नहीं, वह ब्राह्मण हैं।' और यह कहने के साथ ही क्षुब्ध होकर कमरे से निकल गयी मानो यहाँ की वायु में उसका गला घुटा जा रहा हो और दीवार की आड़ में होकर रोने लगी।

लाला जी को तो पहले ऐसा क्रोध आया कि प्रेमा को बुलाकर साफ-साफ कह दें कि

यह असम्भव है। वे उसी गुस्से में दरवाजे तक आये, लेकिन प्रेमा को रोते देखकर नम्र हो गये। इस युवक के प्रति प्रेमा के मन में क्या भाव थे, यह उनसे छिपा न रहा। वे स्त्री-शिक्षा के पूरे समर्थक थे; लेकिन इसके साथ ही कुल-मर्यादा की रक्षा भी करना चाहते थे। अपनी ही जाति के सुयोग्य वर के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर सकते थे; लेकिन उस क्षेत्र के बाहर कुलीन से कुलीन और योग्य से योग्य वर की कल्पना भी उनके लिए असह्य थी। इससे बड़ा अपमान वे सोच ही न सकते थे।

उन्होंने कठोर स्वर में कहा—आज से कालेज जाना बन्द कर दो, अगर शिक्षा कुल-मर्यादा को डुबोना ही सिखाती है, तो कु-शिक्षा है।

प्रेमा ने कातर कंठ से कहा—परीक्षा तो समीप आ गयी है।

लाला जी ने दृढता से कहा—आने दो।

और फिर अपने कमरे में जाकर विचारों में डूब गये।

4

छः महीने गुजर गये।

लाला जी ने घर में आकर पत्नी को एकांत में बुलाया और बोले—जहाँ तक मुझे मालूम हुआ है, केशव बहुत ही सुशील और प्रतिभाशाली युवक है। मैं तो समझता हूँ प्रेमा इस शोक में घुल-घुलकर प्राण दे देगी। तुमने भी समझाया, मैंने भी समझाया, दूसरों ने भी समझाया; पर उस पर कोई असर ही नहीं होता। ऐसी दशा में हमारे लिए क्या उपाय है।

उनकी पत्नी ने चिन्तित भाव से कहा—कर तो दोगे; लेकिन रहोगे कहाँ ? न जाने कहाँ से यह कुलच्छनी मेरी कोख में आयी ?

लाला जी ने भवें सिकोड़कर तिरस्कार के साथ कहा—यह तो हजार दफा सुन चुका; लेकिन कुल-मर्यादा के नाम को कहाँ तक रोयें। चिड़िया का पर खोलकर यह आशा करना कि वह तुम्हारे आँगन में ही फुदकती रहेगी भ्रम है। मैंने इस प्रश्न पर ठण्डे दिल से विचार किया है और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हमें इस आपद्धर्म को स्वीकार कर लेना ही चाहिए। कुल-मर्यादा के नाम पर मैं प्रेमा की हत्या नहीं कर सकता। दुनिया हँसती हो, हँसे; मगर वह जमाना बहुत जल्द आनेवाला है, जब ये सभी बन्धन टूट जायेंगे। आज भी सैकड़ों विवाह जात-पाँत के बन्धनों को तोड़कर हो चुके हैं। अगर विवाह का उद्देश्य स्त्री और पुरुष का सुखमय जीवन है, तो हम प्रेमा की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

वृद्धा ने क्षुब्ध होकर कहा—जब तुम्हारी यही इच्छा है, तो मुझसे क्या पूछते हैं? लेकिन मैं कहे देती हूँ, कि मैं इस विवाह के नजदीक न जाऊँगी, न कभी इस छोकरी का मुँह देखूँगी, समझ लूँगी, जैसे और सब लड़के मर गये वैसे यह भी मर गयी।

'तो फिर आखिर तुम क्या करने को कहती हो ?'

'क्यों नहीं उस लड़के से विवाह कर देते, उसमें क्या बुराई है ? वह दो साल में सिविल सरविस पास करके आ जायगा। केशव के पास क्या रखा है, बहुत होगा किसी दफ्तर में क्लर्क हो जायगा।'

'और अगर प्रेमा प्राण-हत्या कर ले, तो ?'

'तो कर ले, तुम तो उसे और शह देते हो ? जब उसे हमारी परवाह नहीं है, तो हम

उसके लिए अपने नाम को क्यों कलंकित करें ? प्राण-हत्या करना कोई खेल नहीं है। यह सब धमकी है। मन घोड़ा है, जब तक उसे लगाम न दो, पुट्ठे पर हाथ भी न रखने देगा। जब उसके मन का यह हाल है, तो कौन कहे, केशव के साथ ही जिन्दगी भर निबाह करेगी। जिस तरह आज उससे प्रेम है, उसी तरह कल दूसरे से हो सकता है। तो क्या पत्ते पर अपना माँस बिकवाना चाहते हो ?

लालाजी ने स्त्री को प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखकर कहा—और अगर वह कल खुद जाकर केशव से विवाह कर ले, तो तुम क्या कर लोगी ? फिर तुम्हारी कितनी इज्जत रह जायगी। वह चाहे संकोच-वश, या हम दोनों के लिहाज से यों ही बैठी रहे; पर यदि जिद पर कमर बाँध ले, हम-तुम कुछ नहीं कर सकते।

इस समस्या का ऐसा भीषण अन्त भी हो सकता है, यह इस वृद्धा के ध्यान में भी न आया था। यह प्रश्न बम के गोले की तरह उसके मस्तक पर गिरा। एक क्षण तक वह अवाक् बैठी रह गयी, मानो इस आघात ने उसकी बुद्धि की धज्जियाँ उड़ा दी हों। फिर पराभूत होकर बोली—तुम्हें अनोखी कल्पनाएँ सूझती हैं। मैंने तो आज तक कभी भी नहीं सुना कि किसी कुलीन कन्या ने अपनी इच्छा से विवाह किया है।

'तुमने न सुना हो; लेकिन मैंने सुना है, और देखा है और ऐसा होना बहुत सम्भव है।'

'जिस दिन ऐसा होगा; उस दिन तुम मुझे जीती न देखोगे।'

'मैं यह नहीं कहता कि ऐसा होगा ही; लेकिन होना सम्भव है।'

'तो जब ऐसा होना है, तो इससे तो यही अच्छा है कि हमीं इसका प्रबन्ध करें। जब नाक ही कट रही है, तो तेज छुरी से क्यों न कटे। कल केशव को बुलाकर देखो, क्या कहता है।'

5

केशव के पिता सरकारी पेन्शनर थे, मिजाज के चिड़चिड़े और कृपण। धर्म के आडम्बरों में ही उनके चित्त को शान्ति मिलती थी। कल्पना-शक्ति का अभाव था। किसी के मनोभावों का सम्मान न कर सकते थे। वे अब भी उस संसार में रहते थे, जिसमें उन्होंने अपने वचपन और जवानी के दिन काटे थे। नवयुग की बढ़ती हुई लहर को वे सर्वनाश कहते थे, और कम-से-कम अपने घर को दोनों हाथों और दोनों पैरों का जोर लगाकर उससे बचाये रखना चाहते थे; इसलिए जब एक दिन प्रेमा के पिता उसके पास पहुँचे और केशव से प्रेमा के विवाह का प्रस्ताव किया, तो बूढ़े पण्डित जी अपने आप में न रह सके। धुँधली आँखें फाड़कर बोले—आप भंग तो नहीं खा गये हैं ? इस तरह का सम्बन्ध और चाहे जो कुछ हो, विवाह नहीं है। मालूम होता है, आपको भी नये जमाने की हवा लग गयी।

बूढ़े बाबू जी ने नम्रता से कहा—मैं खुद ऐसा सम्बन्ध नहीं पसन्द करता। इस विषय में मेरे भी वही विचार हैं, जो आपके; पर बात ऐसी आ पड़ी है कि मुझे विवश होकर आपकी सेवा में आना पड़ा। आजकल के लड़के और लड़कियाँ कितने स्वेच्छाचारी हो गये हैं, यह तो आप जानते ही हैं। हम बूढ़े लोगों के लिए अब अपने सिद्धान्तों की रक्षा करना कठिन हो गया है। मुझे भय है कि कहीं ये दोनों निराश होकर अपनी जान पर न खेल जायँ।

बूढ़े पण्डित जी जमीन पर पाँव पटकते हुए गरज उठे—आप क्या कहते हैं, साहब !

आपको शरम नहीं आती ? हम ब्राह्मण हैं और ब्राह्मणों में भी कुलीन। ब्राह्मण कितने ही पतित हो गये हों, इतने मर्यादा-शून्य नहीं हुए हैं कि बनिये-बक्कालों की लड़की से विवाह करते फिरें ! जिस दिन कुलीन ब्राह्मणों में लड़कियाँ न रहेंगी, उस दिन यह समस्या उपस्थित हो सकती है। मैं कहता हूँ, आपको मुझसे यह बात कहने का साहस कैसे हुआ ?

बूढ़े बाबू जी जितना ही दबते थे, उतना ही पण्डित जी बिगड़ते थे। यहाँ तक कि लाला जी अपना अपमान ज्यादा न सह सके, और अपनी तकदीर को कोसते हुए चले गये।

उसी वक्त केशव कालेज से आया। पण्डित जी ने तुरन्त उसे बुलाकर कठोर कंठ से कहा—मैंने सुना है, तुमने किसी बनिये की लड़की से अपना विवाह कर लिया है। यह खबर कहाँ तक सही है ?

केशव ने अनजान बनकर पूछा—आपसे किसने कहा ?

'किसी ने कहा। मैं पूछता हूँ, यह बात ठीक है, या नहीं ? अगर ठीक है, और तुमने अपनी मर्यादा को डुबाने का निश्चय कर लिया है, तो तुम्हारे लिए हमारे घर में कोई स्थान नहीं। तुम्हें मेरी कमाई पर एक धेला भी नहीं मिलता। मेरे पास जो कुछ है, वह मेरी अपनी कमाई है, मुझे अख्तियार है कि मैं उसे जिसे चाहूँ, दे दूँ। तुम यह अनीति करके मेरे घर में कदम नहीं रख सकते।'

केशव पिता के स्वभाव से परिचित था। प्रेमा से उसे प्रेम था। वह गुप्त रूप से प्रेमा से विवाह कर लेना चाहता था ! बाप हमेशा तो बैठे न रहेंगे। माता के स्नेह पर उसे विश्वास था। उस प्रेम की तरंग में वह सारे कष्टों को झेलने के लिए तैयार मालूम होता था; लेकिन जैसे कोई कायर सिपाही बन्दूक के सामने जाकर हिम्मत खो बैठता है और कदम पीछे हटा लेता है, यही दशा केशव की हुई । वह साधारण युवकों की तरह सिद्धान्तों के लिए बड़े-बड़े तर्क कर सकता था, जबान से उनमें अपनी भक्ति की दोहाई दे सकता था; लेकिन उसके लिए यातनाएँ झेलने की सामर्थ्य उसमें न थीं। अगर वह अपनी जिद पर अड़ा और पिता ने भी अपनी टेक रखी, तो उसका कहाँ ठिकाना लगेगा ? उसका जीवन ही नष्ट हो जायगा।

उसने दबी जबान से कहा—जिसने आपसे यह कहा है, बिलकुल झूठ कहा है।

पंडित जी ने तीव्र नेत्रों मे देखकर कहा—तो यह खबर बिलकुल गलत है ?

'जी हाँ, बिलकुल गलत।'

'तो तुम आज ही इसी वक्त उस बनिये को खत लिख दो और याद रखो कि अगर इस तरह की चर्चा फिर कभी उठी, तो तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु होऊँगा। बस, जाओ।

केशव और कुछ न कह सका। वह यहाँ से चला, तो ऐसा मालूम होता था कि पैरों में दम नहीं है।

6

दूसरे दिन प्रेमा ने केशव के नाम यह पत्र लिखा—

'प्रिय केशव !'

तुम्हारे पूज्य पिता जी ने लाला जी के साथ जो अशिष्ट और अपमानजनक व्यवहार

किया है, उसका हाल सुनकर मेरे मन में बड़ी शंका उत्पन्न हो रही है। शायद उन्होंने तुम्हें भी डाँट-फटकार बताई होगी, ऐसी दशा में मैं तुम्हारा निश्चय सुनने के लिए विकल हो रही हूँ। तुम्हारे साथ हर तरह का कष्ट झेलने को तैयार हूँ। मुझे तुम्हारे पिताजी की सम्पत्ति का मोह नहीं है, मैं तो केवल तुम्हारा प्रेम चाहती हूँ और उसी में प्रसन्न हूँ। आज शाम को यहीं आकर भोजन करो। दादा और माँ दोनों तुमसे मिलने के लिए बहुत इच्छुक हैं। मैं वह स्वप्न देखने में मग्न हूँ जब हम दोनों उस सूत्र में बँध जायँगे, जो टूटना नहीं जानता। जो बड़ी-से-बड़ी आपत्ति में भी अटूट रहता है।

तुम्हारी–
प्रेमा !

संध्या हो गया और इस पत्र का कोई जवाब न आया। उसकी माता बार-बार पूछती थी–केशव आये नहीं ? बूढ़े लाला भी द्वार की ओर आँख लगाये बैठे थे। यहाँ तक कि रात के नौ बज गये, पर न तो केशव ही आये, न उनका पत्र।

प्रेमा के मन में भाँति-भाँति के संकल्प-विकल्प उठ रहे थे, कदाचित् उन्हें पत्र लिखने का अवकाश न मिला होगा, या आज आने की फुरसत न मिली होगी, कल अवश्य आ जायँगे। केशव ने पहले उसके पास जो प्रेम-पत्र लिखे थे, उन सबको उसने फिर पढ़ा। उनके एक-एक शब्द से कितना अनुराग टप रहा था, उनमें कितना कम्पन था, कितनी विकलता, कितनी तीव्र आकांक्षा ! फिर उसे केशव के वे वाक्य याद आये; जो उसने सैकड़ों ही बार कहे थे। कितनी बार वह उसके सामने रोया था। इतने प्रमाणों के होते हुए निराशा के लिए कहाँ स्थान था, मगर फिर भी सारी रात उसका मन जैसे सूली पर टँगा रहा।

प्रातःकाल केशव का जवाब आया। प्रेमा ने काँपते हुए हाथों से पत्र लेकर पढ़ा। पत्र हाथ से गिर गया। ऐसा जान पड़ा, मानों उसकी देह का रक्त स्थिर हो गया हो। लिखा था–

'मैं बड़े संकट में हूँ, कि तुम्हें क्या जवाब दूँ ! मैंने इधर इस समस्या पर खूब ठण्डे दिल से विचार किया है और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान दशाओं में मेरे लिए पिता की आज्ञा की उपेक्षा करना दुःसह है। मुझे कायर न समझना। मैं स्वार्थी भी नहीं हूँ, लेकिन मेरे सामने जो बाधाएँ हैं उन पर विजय पाने की शक्ति मुझमें नहीं है। पुरानी बातों को भूल जाओ। उस समय मैंने इन बाधाओं की कल्पना न की थी!'

प्रेमा ने एक लम्बी, गहरी, जलती हुई साँस खींची और उस खत को फाड़कर फेंक दिया। उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। जिस केशव को उसने अपने अन्तःकरण से वर लिया था, वह इतना निष्ठुर हो जायगा, इसकी उसको रत्ती भर भी आशा न थी। ऐसा मालूम पड़ा मानो, अब तक वह कोई सुनहला स्वप्न देख रही थी; पर आँख खुलने पर वह सब कुछ अदृश्य हो गया। जीवन में जब आशा ही लुप्त हो गयी, तो अब अंधकार के सिवा और क्या रहा ! अपने हृदय की सारी सम्पत्ति लगाकर उसने एक नाव लदवाई थी, वह नाव जलमग्न हो गयी। अब दूसरी नाव कौन कहाँ से लदवाये; अगर वह नाव टूटी है तो उसके साथ वह भी डूब जायगी।

माता ने पूछा–क्या केशव का पत्र है ?

प्रेमा ने भूमि की ओर ताकते हुए कहा—हाँ, उनकी तबियत अच्छी नहीं है—इसके सिवा वह और क्या कहे ? केशव की निष्ठुरता और बेवफाई का समाचार कहकर लज्जित होने का साहस उसमें न था।

दिन भर वह घर के काम-धंधों में लगी रही, मानो उसे कोई चिन्ता ही नहीं है। रात को उसने सबको भोजन कराया, खुद भी भोजन किया और बड़ी देर तक हारमोनियम पर गाती रही।

मगर सबेरा हुआ, तो उसके कमरे में उसकी लाश पड़ी हुई थी। प्रभात की सुनहरी किरणें उसके पीले मुख को जीवन की आभा प्रदान कर रही थीं।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'विशाल भारत', जनवरी, 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

नेउर

आकाश में चाँदी के पहाड़ भाग रहे थे, टकरा रहे थे, गले मिल रहे थे; जैसे सूर्य-मेघ संग्राम छिड़ा हुआ हो। कभी छाया हो जाती थी, कभी तेज धूप चमक उठती थी। बरसात के दिन थे, उमस हो रही थी। हवा बन्द हो गयी थी।

गाँव के बाहर कई मजूर एक खेत की मेड़ बाँध रहे थे। नंगे बदन, पसीने में तर, कछनी कसे हुए, सब-के-सब फावड़े से मिट्टी खोदकर मेड़ पर रखते जाते थे। पानी से मिट्टी नरम हो गयी थी।

गोबर ने अपनी कानी आँख मटकाकर कहा—अब तो हाथ नहीं चलता भाई ! गोला भी छूट गया होगा, चबेना कर लें।

नेउर ने हँसकर कहा—यह मेड़ तो पूरी कर लो, फिर चबेना कर लेना। मैं तो तुमसे पहले आया।

दोनों ने सिर पर झौवा उठाते हुए कहा—तुमने अपनी जवानी में जितना घी खाया होगा नेउर दादा, उतना तो अब हमें पानी भी नहीं मिलता।

नेउर छोटे डील का, गठीला, काला, फुर्तीला आदमी था। उम्र पचास से ऊपर थी; मगर अच्छे-अच्छे नौजवान उसके बराबर मेहनत न कर सकते थे। अभी दो-तीन साल पहले तक कुश्ती लड़ता था। जब से गाय मर गयी, कुश्ती लड़ना छोड़ दिया था।

गोबर—तुमसे तमाखू पिये बिना कैसे रहा जाता है नेउर दादा ? यहाँ तो चाहे रोटी न मिले, लेकिन तमाखू के बिना नहीं रहा जाता।

दीना—तो यहाँ से जाकर रोटी बनाओगे दादा ? बुढ़िया कुछ नहीं करती ? हमसे तो दादा ऐसी मेहरिया से एक दिन न पटे।

नेउर के पिचके, खिचड़ी मूँछों से ढके मुख पर हास्य की स्मित रेखा चमक उठी, जिसने उसकी कुरूपता को भी सुन्दर बना दिया। बोला—जवानी तो उसी के साथ कटी है बेटा, अब उससे कोई काम नहीं होता, तो क्या करूँ !

गोबर—तुमने उसे सिर चढ़ा रखा है, नहीं तो काम क्यों न करती। मजे से खाट पर बैठी चिलम पीती रहती है और सारे गाँव से लड़ा करती है। तुम बूढ़े हो गये; लेकिन वह तो अब भी जवान बनी है।

दीना—जवान औरत उसकी क्या बराबरी करेगी। सेंदुर, टिकुली, काजल, मेंहदी में तो उसका मन बसता है। बिना किनारदार रंगीन धोती के उसे कभी देखा ही नहीं, उस पर गहनों से भी जी नहीं भरता। तुम गऊ हो, इससे निबाह हो जाता है, नहीं तो अब तक गली-गली ठोकरें खाती होती।

गोबर—मुझे तो उसके बनाव-सिंगार पर गुस्सा आता है। काम कुछ न करेगी; पर खाने-पहनने को अच्छा ही चाहिए।

नेउर—तुम क्या जानो बेटा, जब वह आयी थी, तो मेरे घर में सात हल की खेती होती थी। रानी बनी बैठी रहती थी। जमाना बदल गया, तो क्या हुआ, उसका मन तो वही है। घड़ी भर चूल्हे के सामने बैठ जाती है, तो आँखें लाल हो जाती हैं और मूड़ थामकर पड़ जाती है। मुझसे तो यह नहीं देखा जाता। इसी दिन-रात के लिए तो आदमी शादी-ब्याह करता है और इसमें क्या रखा है। यहाँ से जाकर रोटी बनाऊँगा, पानी लाऊँगा, तब दो कौर खायेगी, नहीं तो मुझे क्या था, तुम्हारी तरह चार फंकी मारकर एक लोटा पानी पी लेता। अब से बिटिया मर गयी, तब से तो वह और भी लस्त हो गयी। यह बड़ा भारी धक्का लगा। माँ की ममता हम-तुम क्या समझेंगे बेटा। पहले तो कभी-कभी डाँट भी देता था। अब किस मुँह से डाँटूँ ?

दीना—तुम कल पेड़ पर काहे को चढ़े थे, अभी गूलर कौन पकी है ?

नेउर—उस बकरी के लिए थोड़ी पत्ती तोड़ रहा था। बिटिया को दूध पिलाने को बकरी ली थी। अब बुढ़िया हो गयी है; लेकिन थोड़ा दूध दे देती है। उसी का दूध और रोटी बुढ़िया का आधार है।

घर पहुँचकर नेउर ने लोटा और डोर उठाया और नहाने चला, कि स्त्री ने खाट पर लेटे-लेटे कहा—इतनी देर क्यों कर दिया करते हो ? आदमी काम के पीछे परान थोड़े ही देता है ? जब मजूरी सब के बराबर मिलती है, तो क्यों काम के पीछे मरते हो ?

नेउर का अन्तःकरण एक माधुर्य से सराबोर हो गया। उसके आत्म-समर्पण से भरे हुए प्रेम में 'मैं' की गन्ध भी तो नहीं थी। कितना स्नेह ! और किसे उसके आराम की, उसके मरने-जीने की चिन्ता है ? फिर यह क्यों न अपनी बुढ़िया के लिए मरे ? बोला—तू उस जन्म में कोई देवी रही होगी बुधिया, सच।

'अच्छा रहने दो यह चापलूसी। हमारे आगे अब कौन बैठा हुआ है, जिसके लिए इतना हाय-हाय करते हो ?'

नेउर गज-भर की छाती किये स्नान करने चला गया। लौटकर उसने मोटी-मोटी रोटियाँ बनायीं। आलू चूल्हे में डाल दिये। उनका भुरता बनाया; फिर बुधिया और वह दोनों साथ खाने बैठे।

बुधिया—मेरी जात से तुम्हें कोई सुख न मिला। पड़े-पड़े खाती हूँ और तुम्हें तंग करती हूँ। इससे तो कहीं अच्छा था कि भगवान् मुझे उठा लेते !

'भगवान् आयेंगे तो मैं कहूँगा, पहले मुझे ले चलो। तब इस सूनी झोंपड़ी में कौन रहेगा !'

'तुम न रहोगे तो मेरी क्या दशा होगी, यह सोचकर मेरी आँखों में अँधेरा आ जाता है। मैंने कोई बड़ा पुन किया था कि तुम्हें पाया। किसी और के साथ मेरा भला क्या निबाह होता ?'

ऐसे मीठे संतोष के लिए नेउर क्या नहीं कर डालना चाहता था। आलसिन, लोभिन, स्वार्थिन बुधिया अपनी जीभ पर केवल मिठास रखकर नेउर को नचाती रहती थी जैसे कोई शिकारी कँटिये में चारा लगाकर मछली को खिलाता है।

पहले कौन मरे, इस विषय पर आज यह पहली ही बार बातचीत न हुई थी। इसके पहले भी कितनी ही बार यह प्रश्न उठा था और यों ही छोड़ दिया गया था; लेकिन न जाने क्यों नेउर ने अपनी डिग्री कर ली थी और उसे निश्चय था कि पहले मैं जाऊँगा। उसके पीछे भी बुधिया जब तक रहे, आराम से रहे, किसी के सामने हाथ न फैलाये, इसीलिए वह मरता रहता था, जिसमें हाथ में चार पैसे जमा हो जायँ ! कठिन-से-कठिन काम, जिसे कोई न कर सके, नेउर करता। दिन-भर फावड़े-कुदाल का काम करने के बाद रात को वह ऊख के दिनों में किसी की ऊख पेरता, या खेतों की रखवाली करता; लेकिन दिन निकलते जाते थे और जो कुछ कमाता था, वह भी निकलता जाता था। बुधिया के बगैर वह जीवन.... नहीं, इसकी वह कल्पना ही न कर सकता था।

लेकिन आज की बातों ने नेउर को सशंक कर दिया। जल में एक बूँद रंग की भाँति यह शंका उसके मन में समा कर अतिरंजित होने लगी।

2

गाँव में नेउर को काम की कमी न थी; पर मजूरी तो वही मिलती थी, जो अब तक मिलती आयी थी; इस मन्दी में वह मजूरी भी नहीं रह गयी थी। एकाएक गाँव में एक साधु कहीं से घूमते-फिरते आ निकले और नेउर के घर के सामने ही पीपल की छाँह में उनकी धूनी जल गयी। गाँववालों ने अपना धन्य भाग्य समझा। बाबाजी का सेवा-सत्कार करने के लिए सभी जमा हो गये। कहीं से लकड़ी आ गयी, कहीं से बिछाने को कम्बल, कहीं से आटा-दाल। नेउर के पास क्या था ? बाबाजी के लिए भोजन बनाने की सेवा उसने ली। चरस आ गयी, दम लगने लगा।

दो-तीन दिन में ही बाबाजी की कीर्ति फैलने लगी। वह आत्मदर्शी हैं, भूत-भविष्य सब बता देते हैं। लोभ तो छू नहीं गया। पैसा हाथ से नहीं छूते और भोजन भी क्या करते हैं ! आठ पहर में एक-दो बाटियाँ खा लीं; लेकिन मुख दीपक की तरह दमक रहा है। कितनी मीठी बानी है ! सरल-हृदय नेउर बाबाजी का सबसे बड़ा भक्त था। उस पर कहीं बाबाजी की दया हो गयी, तो पारस ही हो जायगा। सारा दुख-दलिद्दर मिट जायगा।

भक्तजन एक-एक करके चले गये थे। खूब कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। केवल नेउर बैठा बाबाजी के पाँव दबा रहा था।

बाबाजी ने कहा—बच्चा ! संसार माया है, इसमें क्यों फँसे हो ?

नेउर ने नत-मस्तक होकर कहा—अज्ञानी हूँ महाराज; क्या करूँ ? स्त्री है, उसे किस पर छोड़ूँ ?

'तू समझता है, तू स्त्री का पालन करता है ?'

'और कौन सहारा है उसे बाबाजी ?'

'ईश्वर कुछ नहीं है, तू ही सब कुछ है ?'

नेउर के मन में जैसे ज्ञान उदय हो गया ! तू इतना अभिमानी हो गया है ! तेरा इतना दिमाग ! मजदूरी करते-करते जान जाती है और तू समझता है, मैं ही बुधिया का सब कुछ हूँ। प्रभु, जो सारे संसार का पालन करते हैं, तू उनके काम में दखल देने का दावा करता है। उसके सरल, ग्रामीण हृदय में आस्था की ध्वनि-सी उठकर उसे धिक्कारने लगी। बोला—अज्ञानी हूँ महाराज !

इससे ज्यादा वह और कुछ न कह सका। आँखों से दीन विषाद के आँसू गिरने लगे।

बाबाजी ने तेजस्विता से कहा—'देखना चाहता है ईश्वर का चमत्कार ! वह चाहे तो क्षण-भर में तुझे लखपती कर दे। क्षण-भर में तेरी सारी चिन्ताएँ हर ले ! मैं उसका एक तुच्छ भक्त हूँ काकविष्टा; लेकिन मुझमें भी इतनी शक्ति है कि तुझे पारस बना दूँ। तू साफ दिल का, सच्चा, ईमानदार आदमी है। मुझे तुझ पर दया आती है। मैंने इस गाँव में सब को ध्यान से देखा। किसी में शक्ति नहीं, विश्वास नहीं। तुझमें मैंने भक्त का हृदय पाया। तेरे पास कुछ चाँदी है ?'

नेउर को जान पड़ रहा था कि सामने स्वर्ग का द्वार है।

'दस-पाँच रुपये होंगे महाराज !'

'कुछ चाँदी के टूटे-फूटे गहने नहीं हैं ?'

'घरवाली के पास कुछ गहने हैं।'

'कल रात को जितनी चाँदी मिल सके, यहाँ ला और ईश्वर की प्रभुता देख। तेरे सामने मैं चाँदी को हाँड़ी में रखकर इसी धूनी में रख दूँगा। प्रातःकाल आकर हाँड़ी निकाल लेना; मगर इतना याद रखना कि उन अशर्फियों को अगर शराब पीने में, जुआ खेलने में या किसी दूसरे बुरे काम में खर्च किया, तो कोढ़ी हो जायगा। अब जा, सो रह। हाँ, इतना और सुन ले; इसकी चर्चा किसी से मत करना, घरवालों से भी नहीं।'

नेउर घर चला, तो ऐसा प्रसन्न था, मानो ईश्वर का हाथ उसके सिर पर है। रात-भर उसे नींद नहीं आयी। सबेरे उसने कई आदमियों से दो-दो, चार-चार रुपये उधार लेकर पचास रुपये जोड़े ! लोग उसका विश्वास करते थे। कभी किसी का एक पैसा भी न दबाता था। वादे का पक्का, नीयत का साफ। रुपये मिलने में दिक्कत न हुई। पचीस रुपये उसके पास थे। बुधिया से गहने कैसे ले ? चाल चली। तेरे गहने बहुत मैले हो गये हैं। खटाई से साफ कर ले। रात-भर खटाई में रहने से नये हो जायँगे। बुधिया चकमे में आ गयी। हाँड़ी में खटाई डालकर गहने भिगो दिये। जब रात को वह सो गयी, तो नेउर ने रुपये भी उसी हाँड़ी में डाल दिये और बाबाजी के पास पहुँचा। बाबाजी ने कुछ मन्त्र पढ़ा। हाँड़ी को धूनी की राख में रखा और नेउर को आशीर्वाद देकर बिदा किया।

रात-भर करवटें बदलने के बाद नेउर मुँह अँधेरे बाबा के दर्शन करने गया; मगर बाबाजी का वहाँ पता न था। अधीर होकर उसने धूनी की जलती हुई राख टटोली। हाँड़ी

गायब थी। छाती धक्-धक् करने लगी। बदहवास होकर बाबा को खोजने लगा। हाट की तरफ गया। तालाब की ओर पहुँचा दस मिनट, बीस मिनट, आधा घंटा ! बाबा का कहीं निशान नहीं। भक्त आने लगे। बाबा कहाँ गये ? कम्बल भी नहीं, बरतन भी नहीं !

भक्त ने कहा—रमते साधुओं का क्या ठिकाना ! आज यहाँ, कल वहाँ; एक जगह रहें, तो साधु कैसे ? लोगों से हेल-मेल हो जाय, बंधन में पड़ जायँ।

'सिद्ध थे।'

'लोभ को छू नहीं गया था।'

'नेउर कहाँ है ? उस पर बड़ी दया करते थे। उससे कह गये होंगे।'

नेउर की तलाश होने लगी, कहीं पता नहीं। इतने में बुधिया नेउर को पुकारती हुई घर में से निकली। फिर कोलाहल मच गया। बुधिया रोती थी और नेउर को गालियाँ देती थी।

नेउर खेतों की मेड़ों से बेतहाशा भागता चला जाता था, मानो इस पापी संसार से निकल जायगा।

एक आदमी ने कहा—नेउर ने कल मुझसे पांच रुपये लिये थे। आज साँझ को देने को कहा था।

दूसरा—हमसे भी दो रुपये आज ही के वादे पर लिये थे।

बुधिया रोती—दाढ़ीजार मेरे सारे गहने ले गया। पचीस रुपये रखे थे, वह भी उठा ले गया।

लोग समझ गये, बाबा कोई धूर्त्त था। नेउर को झाँसा दे गया। ऐसे-ऐसे ठग पड़े हैं संसार में ! नेउर के बारे में किसी को ऐसा संदेह नहीं था। बेचारा सीधा आदमी, आ गया पट्टी में। मारे लाज के कहीं छिपा बैठा होगा।

3

तीन महीने गुजर गये।

झाँसी जिले में धसान नदी के किनारे एक छोटा-सा गाँव है—काशीपुर। नदी के किनारे एक पहाड़ी टीला है। उसी पर कई दिन से एक साधु ने अपना आसन जमाया है। नाटे कद का आदमी है, काले तवे का-सा रंग, देह गठी हुई। यह नेउर है, जो साधु-वेश में दुनिया को धोखा दे रहा है—वही सरल निष्कपट नेउर, जिसने कभी पराये माल की ओर आँख नहीं उठायी, जो पसीना की रोटी खाकर मगन था। घर की, गाँव की और बुधिया की याद एक क्षण भी उसे नहीं भूलती, इस जीवन में फिर कोई दिन आयेगा, कि वह अपने घर पहुँचेगा और फिर उस संसार में हँसता-खेलता अपनी छोटी-छोटी चिन्ताओं और छोटी-छोटी आशाओं के बीच आनन्द से रहेगा ! वह जीवन कितना सुखमय था ! जितने थे सब अपने थे, सभी आदर करते थे, सहानुभूति रखते थे। दिन-भर की मजूरी, थोड़ा-सा अनाज या थोड़े-से पैसे लेकर घर आता था, तो बुधिया कितने मीठे स्नेह से उसका स्वागत करती थी। वह सारी मेहनत, सारी थकावट जैसे उस मिठास में सनकर और मीठी हो जाती थी। हाय वे दिन फिर कब आयेंगे ? न-जाने बुधिया कैसे रहती होगी। कौन उसे पान की तरह फेरेगा? कौन उसे पकाकर खिलायेगा ? घर में पैसा भी तो नहीं छोड़ा, गहने तक डुबा दिये।

तब उसे क्रोध आता कि उस बाबा को पा जाय, तो कच्चा ही खा जाय। हाय लोभ! लोभ!

उनके अनन्य भक्तों में एक सुन्दरी युवती भी थी, जिसके पति ने उसे त्याग दिया था। उसका बाप फौजी पेंशनर था। एक पढ़े-लिखे आदमी से लड़की का विवाह किया; लेकिन लड़का माँ के कहने में था और युवती की अपनी सास से न पटती। वह चाहती थी, शौहर के साथ सास से अलग रहे; शौहर अपनी माँ से अलग होने पर न राजी हुआ। वह रूठकर मैके चली आयी। तब से तीन साल हो गये थे और ससुराल से एक बार भी बुलावा न आया, न पतिदेव ही आये। युवती किसी तरह पति को अपने वश में कर लेना चाहती थी। महात्माओं के लिए किसी का दिल फेर देना ऐसा क्या मुश्किल है ! हाँ, उनकी दया चाहिए।

एक दिन उसने एकान्त में बाबाजी से अपनी विपत्ति कह सुनायी। नेउर को जिस शिकार की टोह थी, वह आज मिलता हुआ जान पड़ा। गंभीर भाव से बोला—बेटी, मैं न सिद्ध हूँ, न महामात्मा, न मैं संसार के झमेलों में पड़ता हूँ, पर तेरी सरधा और परेम देखकर तुझ पर दया आती है। भगवान् ने चाहा, तो तेरा मनोरथ पूरा हो जायेगा।

'आप समर्थ हैं और मुझे आपके ऊपर विश्वास है।'

'भगवान् की जो इच्छा होगी, वही होगा।'

'इस अभागिनी की डोंगी, आप ही पार लगा सकते हैं।'

'भगवान् पर भरोसा रखो।'

'मेरे भगवान् तो आप ही हो।'

नेउर ने मानों धर्म-संकट में पड़कर कहा—लेकिन बेटी, उस काम में बड़ा अनुष्ठान करना पड़ेगा, और अनुष्ठान में सैकड़ों हजारों का खर्च है। उस पर भी तेरा काज सिद्ध होगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। हाँ, मुझसे जो कुछ हो सकेगा, वह मैं कर दूँगा; पर सब कुछ भगवान् के हाथ में है। मैं माया को हाथ से नहीं छूता; लेकिन तेरा दुःख नहीं देखा जाता।

उसी रात को युवती ने अपने सोने के गहनों की पेटारी लाकर बाबाजी के चरणों पर रख दी। बाबाजी ने काँपते हुए हाथों से पेटारी खोली और चन्द्रमा के उज्ज्वल प्रकाश में आभूषणों को देखा। उनकी आँखें झपक गयीं। यह सारी माया उनकी है। वह उनके सामने हाथ बाँधे खड़ी कह रही है—मुझे अंगीकार कीजिए। कुछ भी तो करना नहीं है, केवल पेटारी लेकर अपने सिरहाने रख लेना है और युवती को आशीर्वाद देकर विदा कर देना है। प्रातःकाल वह आयेगी ! उस वक्त वह उतना दूर होंगे, जहाँ तक उनकी टाँगें ले जायँगी। ऐसा आशातीत सौभाग्य ! जब वह रुपयों से भरी थैलियाँ लिए गावँ में पहुँचेंगे और बुधिया के सामने रख देंगे ! ओह ! इससे बड़े आनन्द की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकते।

लेकिन न-जाने क्यों इतना जरा-सा काम भी उससे नहीं हो सकता था। वह पेटारी को उठाकर अपने सिरहाने, कंबल के नीचे दबाकर नहीं रख सकता है। कुछ नहीं; पर उसके लिए असूझ है, असाध्य है। वह उस पेटारी की ओर हाथ भी नहीं बढ़ा सकता। हाथों पर उसका कोई बस नहीं। जाने दो हाथ, जबान से कह सकता है। इतना कहने में कौन-सी दुनिया उलटी जाती है, कि बेटी, इसे उठाकर इस कम्बल के नीचे रख दे। जबान कट तो न जायगी; मगर अब उसे मालूम होता है कि जबान पर भी उसका काबू नहीं है।

आँखों के इशारे से भी यह काम हो सकता है, लेकिन इस समय आँखें भी बगावत कर रही हैं। मन का राजा इतने मन्त्रियों और सामन्तों के होते हुए भी अशक्त है, निरीह है। लाख रुपये की थैली सामने रखी हो, नंगी तलवार हाथ में हो, गाय मजबूत रस्सी के सामने बँधी हो, क्या उस गाय की गरदन पर उसके हाथ उठेंगे ! कभी नहीं। कोई उसकी गरदन भले ही काट ले। वह गऊ की हत्या नहीं कर सकता। वह परित्यक्ता उसे उसी गऊ की तरह लग रही थी। जिस अवसर को वह तीन महीने से खोज रहा है, उसे पाकर आज उसकी आत्मा काँप रही है। तृष्णा किसी वन्य जन्तु की भाँति अपने संस्कारों से आखेटप्रिय है, लेकिन जंजीरों से बँधे-बँधे उसके नख गिर गये हैं और दाँत कमजोर हो गये हैं।

उसने रोते हुए कहा—बेटी, पेटारी उठा ले जाओ। मैं तुम्हारी परीक्षा कर रहा था। तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जायेगा।

चाँद नदी के पार वृक्षों की गोद में विश्राम कर चुका था। नेउर धीरे-से उठा और धसान में स्नान करके एक ओर चल दिया। भभूत और तिलक से उसे घृणा हो रही थी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि वह घर से निकला ही कैसे ? थोड़े से उपहास के भय से ! उसे अपने अन्दर एक विचित्र उल्लास का अनुभव हो रहा था; मानो वह बेड़ियों से मुक्त हो गया हो, कोई बहुत बड़ी विजय प्राप्त की हो।

4

आठवें दिन नेउर अपने गाँव पहुँच गया। लड़कों ने दौड़कर, उछल-कूदकर, उसकी लकड़ी उसके हाथ से छीनकर, उसका स्वागत किया।

एक लड़के ने कहा—काकी तो मर गयी दादा !

नेउर के पाँव जैसे बँध गये। मुँह के दोनों कोने नीचे झुक गये। दीन-विषाद आँखों में चमक उठा। कुछ बोला नहीं, कुछ पूछा भी नहीं ! पलभर जैसे निस्संज्ञ खड़ा रहा, फिर बड़ी तेजी से अपनी झोंपड़ी की ओर चला। बालकवृन्द भी उसके पीछे दौड़े, मगर उनकी शरारत और चंचलता भाग गयी थी। झोंपड़ी खुली पड़ी थी। बुधिया की चारपाई जहाँ-की-तहाँ थी। उसकी चिलम और नारियल ज्यों-के-त्यों धरे हुए थे। एक कोने में दो-चार मिट्टी और पीतल के बरतन पड़े हुए थे। लड़के बाहर ही खड़े रह गये। झोंपड़ी के अन्दर कैसे जायँ; वहाँ बुधिया बैठी है।

गाँव में भगदड़ मच गयी। नेउर दादा आ गये। झोंपड़ी के द्वार पर भीड़ लग गयी, प्रश्नों का ताँता बँध गया—तुम इतने दिन कहाँ थे दादा ? तुम्हारे जाने के बाद तीसरे ही दिन काकी चल बसीं। रात-दिन तुम्हें गालियाँ देती थीं। मरते-मरते तुम्हें गरियाती ही रही। तीसरे दिन आये, तो मरी पड़ी थी। तुम इतने दिन कहाँ रहे ?

नेउर ने कोई जवाब न दिया। केवल शून्य निराश, करुण, आहत नेत्रों से लोगों की ओर देखता रहा, मानो उसकी वाणी हर ली गयी है। उस दिन से किसी ने उसे बोलते, या रोते हँसते नहीं देखा।

गाँव से आध मील पर पक्की सड़क है। अच्छी आमदरफ्त है। नेउर बड़े सबेरे जाकर सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ जाता है। किसी से कुछ माँगता नहीं; पर राहगीर कुछ-न-कुछ दे ही देते हैं—चबेना, अनाज, पैसे ! सन्ध्या समय वह अपनी झोंपड़ी में आ

जाता है, चिराग जलाता है, भोजन बनाता है, खाता है, और उसी खाट पर पड़ा रहता है। उसके जीवन में जो एक संचालक शक्ति थी, वह लुप्त हो गयी है। वह अब केवल जीवधारी है। कितनी गहरी मनोव्यथा है ! गाँव में प्लेग आया। लोग घर छोड़-छोड़कर भागने लगे। नेउर को अब किसी की परवाह न थी। न किसी को उससे भय था, न प्रेम। सारा गाँव भाग गया, नेउर ने अपनी झोंपड़ी न छोड़ी; तब होली आयी। सबने खुशियाँ मनायीं, नेउर अपनी झोंपड़ी से न निकला, और आज भी वह उसी पेड़ के नीचे, सड़क के किनारे, उसी तरह मौन बैठा हुआ नजर आता है—निश्चेष्ट, निर्जीव !

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका। 'हंस', जनवरी, 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप उर्दू कहानी-संग्रह 'जादे राह' में संकलित।]

रँगीले बाबू

बाबू रसिकलाल को मैं उस वक़्त से जानता हूँ, जब वह लॉ कॉलेज में पढ़ते थे। मेरे सामने ही वह वकील हुए और आनन-फानन चमके। देखते-देखते बँगला बन गया, ज़मीन खरीद ली, मोटर रख ली और शहर के रईसों में शुमार होने लगे, लेकिन मुझे न जाने क्यों उनके रंग-ढंग कुछ बहुत जँचते न थे। मैं यह नहीं देख सकता कि कोई भला आदमी ख़्वामख़्वाह टेढ़ी टोपी लगाकर निकले या सुरमा लगाकर, माँग निकालकर, मुँह को पान से फुलाकर, गले में मोतिया या बेले के गजरे डाले, तंजेब का चुन्नटदार कुरता और महीन धोती पहने बाज़ार में कोठों की ताक-झाँक करता, ठट्ठे मारता निकले। मुझे उससे चिढ़ हो जाती है। वह मेरे पास म्यूनिसिपल मेम्बरी के लिए वोट माँगने आये तो कभी न दूँ, उससे याराना निभाना तो दूर की बात है। भले आदमी को ज़रा गम्भीर, ज़रा सादगी-पसन्द देखना चाहता हूँ। मुझे अगर किसी मुक़दमे में वकील करना पड़े तो मैं ऐसे आदमी को कभी न करूँ, चाहे वह रासबिहारी घोष ही का-सा क़ानूनदाँ क्यों न हो। रसिकलाल इसी तरह के रँगीले आदमी हैं। उनकी तर्क-शक्ति ऊँचे दरजे की है, मानता हूँ। जिरह भी अच्छी करते हैं, यह भी मुझे स्वीकार है, लेकिन सीधी टोपी लगाने और सीधी चाल चलने से उनकी वकालत कुछ ठंडी न पड़ जायगी। मेरा तो ख़्याल यह है कि बाँकपन छोड़कर भले आदमी बन जायें तो उनकी प्रैक्टिस दूनी हो सकती है, लेकिन अपने को क्या पड़ी है कि किसी की बातों में दख़ल दें ? जब कभी उनका सामना हो जाता है तो मैं दूसरी ओर ताकने लगता हूँ या किसी गली में हो रहता हूँ। मैं सड़क पर उनसे बातें करना मुनासिब नहीं समझता। क्या हुआ वह नामी वकील हैं और मैं बेचारा स्कूल-मास्टर हूँ ? मुझे उनसे किसी तरह का द्वेष नहीं। उन्होंने मेरा क्या बिगाड़ा है जो मैं उनसे जलूँ ? मेरी तो वह बड़ी इज़्ज़त और ख़ातिर करते हैं। अपनी लड़की की शादी में मैं उनसे दरियाँ और दूसरा सम्मान माँगने गया था। उन्होंने दो ठेले भर दरियाँ, कालीनें, जाजिम, चौकियाँ, मसनदें भेज दीं। नहीं, मुझे उनसे ज़रा भी द्वेष नहीं—बहुत दिनों के परिचय के नाते मुझे उनसे स्नेह है, लेकिन उनका यह बाँकपन मुझे नहीं अच्छा लगता। वह चलते हैं तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे दुनिया को

ललकारते चलते हों—देखूँ, मेरा कोई क्या कर सकता है ? मुझे किसी की परवाह नहीं है। एक बार मुझे स्टेशन पर मिल गये। लपककर मेरे कन्धे पर हाथ ही तो रख दिया—"आप तो मास्टर साहब, कभी नज़र ही नहीं आते, कभी भला साल में एक-आध बार तो दर्शन दे दिया कीजिए।" मैंने अपना कन्धा छुड़ाते हुए कहा, "क्या करें साहब, अवकाश ही नहीं मिलता।" बस, आपने चट एक बाज़ारी शेर पढ़ा :

तुम्हें ग़ैरों से कब फुरसत?
हम अपने ग़म से कब फुरसत,
चलो, बस हो चुका मिलना
न तुम ख़ाली न हम ख़ाली।

मैंने हँस तो दिया—जो आदमी अपना लिहाज़ करे, उससे कोई कैसे रुखाई करे ? फिर बड़े आदमियों से बिगाड़ करना भी नहीं चाहता, न जाने कब अपनी ग़रज़ लेकर उनके पास जाना पड़े—लेकिन मुझे उनकी यह बेतकल्लुफ़ी कुछ अच्छी न लगी। यों मैं न कोई तपस्वी हूँ, न ज़ाहिद। अरसिक होना उस बाँकपन से भी बुरा है। शुष्क जीवन भी कोई जीवन है, जिसमें विनोद के लिए स्थान न हो ? वन की शोभा हरे-भरे. सरस वृक्षों से है, सूखे हुए ठूँठों से नहीं, लेकिन मैं चाहता हूँ, आदमी जो कुछ करे छिपाकर करे। शराब पीना चाहते हो, पियो. मगर पियो एकान्त में। इसकी क्या ज़रूरत कि शराब में मस्त होकर बहकते फिरो ? रूप के उपासक बनना चाहते हो, बनो। लेकिन इसकी क्या ज़रूरत है कि वेश्याओं को दायें-बायें बैठाये मोटर में अपने छैलपन का ढिंढोरा पीटते फिरो ? फिर, रसिकता की भी एक उम्र होती है। जब लड़के जवान हो गये, लड़कियों की शादी हो गई, बाल पक चले, तो मेरे ख्याल में आदमी को कुछ गम्भीर हो जाना चाहिए। आपका दिल अभी जवान है, बहुत अच्छी बात है, मैं तुम्हें इस पर बधाई देता हूँ। वासना कभी बूढ़ी नहीं होती, मेरा तो अनुभव है कि उम्र के साथ-साथ वह भी प्रौढ़ होती जाती है, लेकिन इस उम्र में कुलेलें करना मुझे ओछापन मालूम होता है। सींग कटाकर बछड़ा बनने वाली मनोवृत्ति का मैं कायल नहीं। कोई किसी का क्या कर लेगा ? लेकिन चार भले आदमी उँगली उठायें, ऐसा काम क्यों करो ? तुम्हें भगवान ने सम्पन्न बनाया है, बहुत अच्छी बात है, लेकिन अपनी सम्पन्नता को इस विपन्न संसार में दिखाते फिरना, जो क्षुधा से व्याकुल हैं, उनके सामने रसगुल्ले उड़ाना, इसमें न तो रसिकता है, न आदमियत।

रसिकलाल की बड़ी लड़की का विवाह था। मथुरा से बारात आयी थी। ऐसे ठाठ की बारात यहाँ शायद ही कभी आयी हो। बड़ी धर्मशाला में जनवासा था। वर का पिता किसी रियासत का दीवान था। मैं भी बारातियों की सेवा-सत्कार में लगा हुआ था। एक हज़ार आदमी से कम न थे। इतने आदमियों का सत्कार करना हँसी नहीं है। यहाँ तो किसी बरात में सौ-पचास आदमी आ जाते हैं तो उनकी भी अच्छी तरह ख़ातिर नहीं हो पाती। फिर बारातियों के मिजाज़ का क्या कहना। सभी तानाशाह बन जाते हैं। कोई चमेली का तेल माँगता है, कोई आँवले का; कोई केशरंजना, कोई शराब माँगता है; कोई अफीम ! साबुन चाहिए, इत्र चाहिए। एक हज़ार आदमियों के खाने का प्रबन्ध करना कितना कठिन है। मैं समझता हूँ, बीस-पच्चीस हज़ार के वारे-न्यारे हुए होंगे, लेकिन रसिकलाल के माथे पर शिकन न आयी। वही बाँकपन था, वही विनोद, वही बेफ़िक्री। न झुँझलाना, न

बिगड़ना। बारातियों की ओर से ऐसी-ऐसी बेहूदा फरमाइशें होती थीं कि हमें गुस्सा आ जाता था। पाव-आध-पाव भंग बहुत है, यह पंसेरी भर भंग लेकर क्या उसकी धूनी देंगे ? जब सिनेमा के एक सौ अव्वल दरजे के टिकटों की फ़रमायश हुई तो मुझसे न रहा गया। रसिकलाल को खूब डाँट बताई, और उसी क्रोध में जनवासे की ओर चला कि एक-एक को फटकारूँ। लड़के का ब्याह करने आये हैं या किसी भले आदमी की इज़्ज़त बिगाड़ने ? एक दिन बग़ैर सिनेमा देखे नहीं रहा जाता ? ऐसे ही बड़े शौकीन हो तो जेब से पैसे क्यों नहीं खर्च करते ? लेकिन रसिकलाल खड़े हँस रहे थे। भाईसाहब, क्यों इतना बिगड़ रहे हो ? ये लोग तुम्हारे मेहमान हैं, मेहमान दस जूते भी लगाए तो बुरा न मानिए। यह सब ज़िन्दगी के तमाशे हैं। तमाशे में हम खुश होते जाते हैं, वहाँ रोना भी पड़े तो उसमें आनन्द है। लपककर सिनेमाघर से सौ टिकट ला दीजिए, सौ-दो-सौ रुपये का मुँह न देखिए। मैंने मन में कहा, मुफ़्त का धन बटोरा है तो लुटाओ और नाम लूटो। यह कोई सत्कार नहीं है कि मेहमान की गुलामी की जाय। मेहमान उसी वक़्त तक मेहमान है, जब वह मेहमान की तरह रहे। जब वह रौब ज़माने लगे, बेइज़्ज़ती करने पर आमादा हो जाय, तो वह मेहमान नहीं, शैतान है।

इसके तीन महीने बाद सुना कि रसिकलाल का दामाद मर गया, वही जिसकी नयी शादी हुई थी। सिविल सर्विस के लिए इंग्लैण्ड गया हुआ था। वहीं न्यूमोनिया हो गया। यह ख़बर सुनते ही मुझे रोमांच हो आया। उस युवक की सूरत आँखों में दौड़ गई। कितना सौम्य, कितना प्रतिभाशाली लड़का था और मरा जाकर इंग्लैंड में कि घर वाले देख भी न सके। और उस लड़की की क्या दशा होगी, जिसका सर्वनशा हो गया ? अभी हाथ की मेहंदी भी तो न छूटी थी। चुन्दरी भी तो अभी मैली नहीं हुई। वाह रे दयालु भगवान ! और वाह रे तुम्हारी लीला ! प्राणियों की होली बनाकर उसकी लपटों का तमाशा देखते हो। उसी वक़्त भागा हुआ रसिकलाल के पास गया और उनकी सूरत देखते ही मन की कुछ ऐसी दशा हुई कि चिंघाड़ मार कर रो पड़ा। रसिकलाल आरामकुर्सी पर लेटे हुए थे। उठकर मुझे गले लगा लिया और उसी स्थिर, अविचलित, निर्द्वद्व भाव से बोले, "वाह मास्टर साहब, आपने तो बालकों को भी मात कर दिया, जिनकी मिठाई कोई छीनकर खा जाय तो रोने लगते हैं ! बालक तो इसलिए रोता है कि उसके बदले में दूसरी मिठाई मिल जाय। आप तो ऐसी चीज़ के लिए रो रहे हैं जो किसी तरह मिल ही नहीं सकती। अरे साहब, यहाँ बेहया बनकर रहिए। मार खाते जाइए और मूँछों पर ताव देते जाइए। मज़ा तो तब है कि जल्लाद के पैरों-तले आकर भी वही अकड़ बनी रहे ! अगर ईश्वर है, मुझे तो कुछ मालूम नहीं, लेकिन सुनता हूँ कि वह दयालु है और दयालु ईश्वर भला निर्दयी कैसे हो सकता है? वह किसे मारता है, किसे जिलाता है, हमसे मतलब नहीं। उसके खिलौने हैं, खेले या तोड़े, हम क्यों उसके बीच में दखल दें ? वह हमारा दुमन नहीं, न ज़ालिम बादशाह है कि हमें सताकर खुश हो। मेरा लड़का घर में आग भी लगा दे तो मैं उसका दुश्मन न बनूँगा। मैंने तो उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है, उससे क्या दुमनी करूँ? भला ईश्वर कभी निर्दयी हो सकता है, जिसके प्रेम का स्वरूप यह ब्रह्माण्ड है ? अगर ईश्वर नहीं है, मुझे मालूम नहीं, और कोई ऐसी शक्ति है, जिसे हमारी विपत्ति में आनन्द मिलता है तो साहब यहाँ रोने वाले नहीं। हाथों में ताक़त होती और दुश्मन नज़र आता तो हम भी कुछ जवाँमर्दी

दिखाते। अब अपनी बहादुरी दिखाने का इसके सिवा और क्या साधन है कि मार खाते जाओ और हँसते जाओ, अकड़ते जाओ ! रोये तो अपनी हार को स्वीकार करेंगे। मार ले साले, जितना चाहे मार ले, लेकिन हँसते ही रहेंगे। मक्कार भी है, जादूगर भी। छिपकर वार करता है। आ जाय सामने तो दिखाऊँ। हमें तो अपने उन बेचारे शायरों की अदा पसन्द है जो क़ब्र में भी माशूक़ के पाज़ेब की झंकार सुनकर मस्त होते रहते हैं।

इसके बाद रसिकलाल ने उर्दू शेरों का ताँता बाँध दिया और इस तरह तन्मय होकर उनका आनन्द उठाने लगे, मानो कुछ हुआ ही नहीं है। फिर बोले, "लड़की रो रही है। मैंने कहा, ऐसे बेवफ़ा के लिए क्या रोना जो तुम्हें छोड़कर चल दिया ! अगर उससे प्रेम है तो रोने की कोई ज़रूरत नहीं ! प्रेम तो आनन्द की वस्तु है। अगर कहो, क्या करें दिल नहीं मानता, तो दिल को मनाओ। बस, दुःखी मत हो। दुःखी होना ईश्वर का अपमान करना है, और मानवता को कलंकित करना।"

मैं रसिकलाल का मुँह ताकने लगा। उन्होंने यह कथन कुछ ऐसे उदात्त भाव से किया कि एक क्षण के लिए मुझ पर भी उसने जादू कर दिया। थोड़ी देर के बाद मैं वहाँ से चला तो दिल का बोझ बहुत-कुछ हलका हो गया था। मन में एक प्रकार का साहस उदय हो गया था जो विपत्ति और बाधा पर हँस रहा था।

2

थोड़े दिनों के बाद वहाँ से तबादला हो गया और रसिकलालजी की कोई ख़बर नहीं मिली। कोई साल भर के बाद एक दिन गुलाबी लिफ़ाफ़े पर सुनहरे अक्षरों में छपा हुआ एक निमन्त्रण-पत्र मिला। रसिकलाल के बड़े लड़के का विवाह हो रहा था। नवेद के नीचे क़लम से आग्रह किया गया था कि अवश्य आइए, वरना मुझे आपसे बड़ी शिकायत रहेगी। आधा मज़ा जाता रहेगा। एक उर्दू का शेर भी था—

इस शौक़े फ़िरावाँ की या रब,
आख़िर कोई हद भी है कि नहीं;
इन्कार करे वह या वादा,
हम रास्ता देखते रहते हैं।

एक सप्ताह का समय था। मैंने नयी रेशमी अचकन बनवाई, नये जूते खरीदे और खूब बन-ठनकर चला। वधू के लिए एक अच्छी-सी कशमीरी साड़ी ले ली। महीनों एक जगह रहते-रहते और एक ही काम करते-करते मन कुछ कुण्ठित-सा हो गया था। तीन-चार दिन खूब जलसे रहेंगे, गाने सुनूँगा, दावतें उड़ाऊँगा। मन बहाल हो जाएगा। रेलगाड़ी से उतरकर वेटिंग रूम में गया और अपना नया सूट पहना। बहुत दिनों बाद नया सूट पहनने की नौबत आई थी, पर आज भी मुझे नया सूट पहनकर वही खुशी हुई जो लड़कपन में होती थी। मन कितना ही उदास हो, नया सूट पहनकर हरा हो जाता है। मैं तो कहता हूँ, बीमारी में बहुत-सी दवाएँ न खाकर हम नया सूट बनवा लिया करें तो कम-से-कम उतना फ़ायदा तो ज़रूर ही होगा जितना दवा खाने से होता है। क्या यह कोई बात ही नहीं कि ज़रा देर के लिए आप अपनी ही आँखों में कुछ ऊँचे हो जायें ? मेरा अनुभव तो यह कहता है कि नया सूट हमारे अन्दर एक नया जीवन डाल देता है, जैसे साँप केंचुल बदले या

वसन्त में वृक्षों में नयी कोंपलें निकल आयें।

स्टेशन से निकलकर मैंने ताँगा लिया और रसिकलाल के द्वार पर पहुँचा। तीन बजे होंगे। लू चल रही थी। मुँह झुलसा जाता था। द्वार पर शहनाइयाँ बज रही थीं। बन्दनवार बँधी हुई थीं। ताँगे से उतरकर अन्दर के सहन में पहुँचा। बहुत से आदमी आँगन के सहन के बीच में घेरा बाँधे खड़े थे। मैंने समझा कि शायद जोड़े-गहने की नुमाइश हो रही होगी। भीड़ चीरकर घुसा—बस कुछ न पूछो, क्या देखा, जो ईश्वर सातवें बैरी को भी न दिखाए। अर्थी थी, पक्के काम के दोशाले से ढकी हुई, जिस पर फूल बिखरे हुए थे। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि गिर पड़ूँगा।

सहसा रसिकलाल पर मेरी निगाह पड़ गयी। रंगीन कपड़ों का एक गट्ठर लिये अन्दर से आये थे। न आँखों में आँसू, न मुख पर वेदना, न माथे पर शिकन। वही बाँकी टोपी थी, वही रेशमी कुरता, वही महीन तंजेब की धोती। सब रो रहे थे, कोई आँसुओं के वेग को रोके हुए था, कोई शोक से विह्वल ! ये बाहर के आदमी थे। कोई मित्र था, कोई बन्धु और जो मरने वाले का बाप था, वह इन डगमगाने वाली नौकाओं और जहाज़ों के बीच में स्तम्भ की भाँति खड़ा था। मैं दौड़कर उनके गले से लिपटकर रोने लगा। वह पानी की बूँद, जो पत्ते पर रुकी हुई थी, ज़रा-सी हवा पाकर ढुलक पड़ी।

रसिकलाल ने मुझे गले से लगाते हुए कहा, "आप कब आये ? क्या अभी चले आ रहे हैं? वाह, मुझे ख़बर ही न हुई। शादी की तैयारियों में ऐसा फँसा कि मेहमानों की ख़ातिरदारी भी न कर सका। चलकर कपड़े उतारिए, मुँह-हाथ धोइए। अभी बारात में चलना पड़ेगा। पूरी तैयारी के साथ चलोगे। बैण्ड, बीन, ताशा, शहनाई, नगाड़ा, डफली सभी कुछ साथ होंगे। कोतल घोड़े, हाथी सवारियाँ सब कुछ मँगवाई हैं। आतिशबाज़ी, फूलों के तख्त, खूब धूम से चलेंगे। जेठे लड़के क ब्याह है, खूब दिल खोलकर करेंगे। गंगा के तट पर जनवासा होगा।"

इन शब्दों में शोक की कितनी भयंकर, कितनी अथाह वेदना थी ! एक कुहराम मच गया।

रसिकलाल ने लाश के सिर पर बेलों का मौर पहनाकर कहा, "क्या रोते हो भाइयो यह कोई नयी बात नहीं हुई है। रोज़ ही तो यह तमाशा देखते हैं, कभी अपने घर में, कभ दूसरे के घर में। रोज़ ही तो रोते हो, कभी अपने दुख से, कभी पराये दुख से। कौन तुम्हा रोने की परवाह करता है, कौन तुम्हारे आँसू पोंछता है, कौन तुम्हारी चीत्कार सुनता है? तु रोये जाओ, वह अपना काम किये जायेगा। फिर रोकर क्यों अपनी दुर्बलता दिखाते हो उसकी चोटों को छाती पर लो और हँसकर दिखा दो तुम ऐसी चोटों की परवाह नहीं करते उससे कहो, तेरे अस्त्रालय में जो सबसे घातक अस्त्र हो वह निकाल ला। यह क्र सुइयाँ-सी चुभोता है ? पर हमारी कोई दलील नहीं सुनता। न सुने ! हम भी अपनी अक न छोड़ेंगे। उसी धूम-धाम से बारात निकालेंगे, खुशियाँ मनायेंगे।

रसिकलाल रोते तो और लोग भी उन्हें समझाते। इस विद्रोहभरी ललकार ने सबव स्तम्भित कर दिया। समझाता कौन ? हमें वह ललकार विक्षिप्त वेदना-सी जान पड़ी ज आँसुओं से कहीं मर्मान्तक थी। चिनगारी के स्पर्श से आबले पड़ जाते हैं। दहकती ह आग में पाँव पड़ जाय तो भुन जायगा, आबले न पड़ेंगे। रसिकलाल की वेदना वही दहक हुई आग थी।

लाश मोटर पर रखी गयी। मोटर गुलाब के फूलों से सजाया गया था। किसी ने पुकारा, "राम नाम सत्य है !"

रसिकलाल ने उसे विनोदभरी आँखों से देखा, "तुम भूले जाते हो, लाला। यह विवाह का उत्सव है। हमारे लिए सत्य जीवन है, उसके सिवा जो कुछ है, मिथ्या है।"

बाजे-गाजे के साथ बाराज चली। इतना बड़ा जुलूस तो मैंने शहर में नहीं देखा। विवाह के जुलूस में दो-चार सौ आदमियों से ज़्यादा न होते। इस जुलूस की संख्या लाखों से कम न थी। धन्य हो रसिकलाल ! धन्य तुम्हारा कलेजा ! रसिकलाल उसी बाँकी अदा से मोटर के पीछे घोड़े पर सवार चले जा रहे थे। जब लाश चिता पर रखी गयी तो रसिकलाल ने एक बार ज़ोर से छाती पर हाथ मारा। मानवता ने विद्रोही आत्मा को आन्दोलित किया, पर दूसरे ही क्षण उनके मुख पर वही कठोर मुस्कान चमक उठी। मानवता वह थी या यह, कौन कहे ?

उसके दो दिन बाद मैं नौकरी पर लौट गया। जब छुट्टियाँ होती हैं तो रसिकलाल से मिलने आता हूँ। उन्होंने उस विद्रोह का एक अंश मुझे भी दे दिया है। अब तो कोई उनके आचार-व्यवहार पर आक्षेप करता है तो मैं केवल मुस्करा देता हूँ।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। 'भारत', अर्द्ध-साप्ताहिक, गुरुवार, 20 जनवरी, 1933 में प्रकाशित। 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' भाग-1 में संकलित।]

गुल्ली-डण्डा

हमारे अंग्रेज़ीदाँ दोस्त मानें या न मानें, मैं तो यही कहूँगा कि गुल्ली-डण्डा सब खेलों का राजा है। अब भी कभी लड़कों को गुल्ली-डण्डा खेलते देखता हूँ, तो जी लोट-पोट हो जाता है कि इनके साथ जाकर खेलने लगूँ। न लॉन की जरूरत, न कोर्ट की, न नेट की, न थापी की। मजे से किसी पेड़ की एक टहनी काट ली, गुल्ली बना ली, और दो आदमी भी आ गये; तो खेल शुरू हो गया। विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब है कि उनके सामान महँगे होते हैं। जब तक कम-से-कम एक सैकड़ा न खर्च कीजिए, खिलाड़ियों में शुमार ही नहीं हो सकता। यह गुल्ली-डण्डा है कि बिना हर्र-फिटकरी के चोखा रंग देता है; पर हम अंग्रेजी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरुचि हो गयी है। हमारे स्कूलों में हरेक लड़के से तीन-चार रुपये सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। किसी को यह नहीं सूझता कि भारतीय खेल खेलायें; जो बिना दाम-कौड़ी के खेले जाते हैं। अंग्रेजी खेल उनके लिए है, जिनके पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हो। ठीक है, गुल्ली से आँख फूट जाने का भय रहता है। तो क्या क्रिकेट से सिर फूट जाने, तिल्ली फट जाने, टाँग टूट जाने का भय नहीं रहता ? अगर हमारे माथे में गुल्ली का दाग आज तक बना हुआ है, तो हमारे कई दोस्त ऐसे भी हैं, जो थापी को बैसाखी से बदल बैठे। खैर, यह अपनी-अपनी रुचि है। मुझे गुल्ली ही सब खेलों से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सबसे मीठी है। वह प्रातःकाल घर से निकल जाना,

वह पेड़ पर चढ़कर टहनियाँ काटना और गुल्ली-डण्डे बनाना, वह उत्साह, वह लगन, वह खिलाड़ियों के जमघटे, वह पदना और पदाना; वह लड़ाई-झगड़े, वह सरल स्वभाव, जिसमें छूत-अछूत, अमीर-गरीब का बिल्कुल भेद न रहता था, जिसमें अमीराना चोचलों की, प्रदर्शन की, अभिमान की गुंजाइश ही न थी, यह उसी वक्त भूलेगा जब...घरवाले बिगड़ रहे हैं, पिताजी चौके पर बैठे वेग से रोटियों पर अपना क्रोध उतार रहे हैं, अम्माँ की दौड़ केवल द्वार तक है, लेकिन उनकी विचारधारा में मेरा अंधकारमय भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है, और मैं हूँ कि पदाने में मस्त हूँ, न नहाने की सुधि है, न खाने की। गुल्ली है तो जरा-सी; पर उसमें दुनिया भर की मिठाइयों की मिठास और तमाशों का आनन्द भरा हुआ है।

मेरे हमजोलियों में एक लड़का गया नाम का था। मुझसे दो-तीन साल बड़ा होगा। दुबला, लम्बा, बन्दरों की-सी लम्वी-लम्बी पतली-पतली उंगलियाँ, बन्दरों की-सी ही चपलता, वही झल्लाहट। गुल्ली कैसी हो, उस पर इस तरह लपकता था; जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है। मालूम नहीं उसके माँ-बाप थे या नहीं, कहाँ रहता था, क्या खाता था; पर था हमारे गुल्ली-क्लब का चैम्पियन। जिसकी तरफ वह आ जाय, उसकी जीत निश्चित थी ! हम सब उसे दूर से आते देख, उसका दौड़कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयाँ बना लेते थे।

एक दिन हम और गया दो ही खेल रहे थे। वह पदा रहा था, मैं पद रहा था; मगर कुछ विचित्र बात है कि पदाने में हम दिन भर मस्त रह सकते हैं, पदना एक मिनट का भी अखरता है। मैंने गला छुड़ाने के लिए सब चालें चलीं, जो ऐसे अवसर पर शास्त्र-विहित न होने पर भी क्षम्य हैं, लेकिन गया अपना दाँव लिये बगैर मेरा पिण्ड न छोड़ता था।

अनुनय-विनय का कोई असर न हुआ। मैं घर की ओर भागा।

गया ने मुझे दौड़कर पकड़ लिया और डण्डा तानकर बोला—मेरा दाँव देकर जाओ। पदाया तो बडे बहादुर बनके, पदने की बेर क्यों भागे जाते हो ?

'तुम दिन भर पदाओ तो मैं दिन भर पदता रहूँ।'

'हाँ, तुम्हें दिन भर पदना पड़ेगा।'

'न खाने जाऊँ न पीने जाऊँ '

'हाँ; मेरा दाँव दिये बिना कहीं नहीं जा सकते।'

'मैं तुम्हारा गुलाम हूँ ?'

'हाँ, मेरे गुलाम हो।'

'मैं घर जाता हूँ, देखूँ मेरा क्या कर लेते हो ?'

'घर कैसे जाओगे, कोई दिल्लगी है। दाँव दिया है, दाँव लेंगे।'

'अच्छा, कल मैंने तुम्हें अमरूद खिलाया था। वह लौटा दो।'

'वह तो पेट में चला गया।'

'निकालो पेट से। तुमने क्यों खाया मेरा अमरूद ?'

'अमरूद तुमने दिया, तब मैंने खाया। तुमसे माँगने न गया था।'

'जब तक मेरा अमरूद न दोगे, मैं दाँव न दूँगा।'

मैं समझता था, न्याय मेरी ओर है। आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही उसे अमरूद

खिलाया होगा। कौन निःस्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है। भिक्षा तक तो स्वार्थ के लिये ही देते हैं। जब गया ने अमरूद खाया, तो फिर उसे मुझसे दाँव लेने का क्या अधिकार है ? रिश्वत देकर तो लोग खून पचा जाते हैं। यह मेरा अमरूद यों ही हजम कर जायगा ? अमरूद पैसे के पाँच वाले थे, जो गया के बाप को भी नसीब न होंगे। यह सरासर अन्याय था।

गया ने मुझे अपनी ओर खींचते हुए कहा—मेरा दाँव देकर जाओ, अमरूद-समरूद मैं नहीं जानता।

मुझे न्याय का बल था। वह अन्याय पर डटा हुआ था। मैं हाथ छुड़ाकर भागना चाहता था। वह मुझे जाने न देता था ! मैंने गाली दी; उसने उससे कड़ी गाली दी, और गाली नहीं, दो-एक चाँटा जमा दिया। मैंने उसे दाँत काट लिया। उसने मेरी पीठ पर डण्डा जमा दिया। मैं रोने लगा। गया मेरे इस अस्त्र का मुकाबला न कर सका। भागा। मैंने तुरन्त आँसू पोंछ डाले, डंडे की चोट भूल गया और हँसता हुआ घर में जा पहुँचा ! मैं थानेदार का लड़का एक नीच जात के लौंडे के हाथों पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ; लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।

2

उन्हीं दिनों पिताजी का वहाँ से तबादला हो गया। नई दुनिया देखने की खुशी में ऐसा फूला कि अपने हमजोलियों से बिछुड़ जाने का बिल्कुल दुःख न हुआ। पिताजी दुःखी थे। यह बड़ी आमदनी की जगह थी। अम्माँ जी भर दुःखी थीं, यहाँ सब चीजें सस्ती थीं, और मुहल्ले की स्त्रियों से घराव-सा हो गया था, लेकिन मैं मारे खुशी के फूला न समाता था। लड़कों से जीट उड़ा रहा था, वहाँ ऐसे घर थोड़े ही होते हैं। ऐसे-ऐसे ऊँचे घर हैं कि आसमान से बातें करते हैं। वहाँ के अंग्रेजी स्कूल में कोई मास्टर लड़कों को पीटे, तो उसे जेहल हो जाय। मेरे मित्रों की फैली हुई आँखें और चकित-मुद्रा बतला रही थीं कि मैं उनकी निगाह में कितना ऊँचा उठ गया हूँ। बच्चों में मिथ्या को सत्य बना लेने की वह शक्ति है, जिसे हम, जो सत्य को मिथ्या बना लेते हैं, क्या समझेंगे। उन बेचारों को मुझसे कितनी स्पर्द्धा हो रही थी। मानो कह रहे थे—तुम भाग्यवान हो भाई, जाओ हमें तो इस ऊजड़ ग्राम में जीना भी है और मरना भी।

बीस साल गुजर गये। मैंने इंजीनियरी पास की और उसी जिले का दौरा करता हुआ, उसी कस्बे में पहुँचा और डाकबँगले में ठहरा। उस स्थान को देखते ही इतनी मधुर बाल-स्मृतियाँ हृदय में जाग उठीं कि मैंने छड़ी उठाई और कस्बे की सैर करने निकला। आँखें किसी प्यासे पथिक की भाँति बचपन के उन क्रीड़ा-स्थलों को देखने के लिए व्याकुल हो रही थीं; पर उस परिचित नाम के सिवा वहाँ और कुछ परिचित न था। जहाँ खंडहर था, पक्के मकान खड़े थे। जहाँ बरगद का पुराना पेड़ था; वहाँ अब एक सुन्दर बगीचा था। स्थान की काया-पलट हो गयी थी। अगर उसके नाम और स्थिति का ज्ञान न होता, तो मैं इसे पहचान भी न सकता। बचपन की संचित और अमर स्मृतियाँ बाँहें खोले अपने उन पुराने मित्रों से गले मिलने को अधीर हो रही थीं; मगर वह दुनिया बदल गयी थी। ऐसा जी होता था कि उस धरती से लिपटकर रोऊँ और कहूँ, तुम मुझे भूल गयीं। मैं तो अब भी

तुम्हारा वही रूप देखना चाहता हूँ।

सहसा एक खुली हुई जगह में मैंने दो-तीन लड़कों को गुल्ली-डण्डा खेलते देखा। एक क्षण के लिए मैं अपने को बिल्कुल भूल गया। भूल गया कि मैं एक ऊँचा अफसर हूँ, साहबी ठाठ में, रौब और अधिकार के आवरण में।

जाकर एक लड़के से पूछा—क्यों बेटे, यहाँ कोई गया नाम का आदमी रहता है?

एक लड़के ने गुल्ली-डण्डा समेटकर सहमे हुए स्वर में कहा—कौन गया ? गया चमार ?

मैंने यों ही कहा—हाँ-हाँ वही। गया नाम का कोई आदमी है तो। शायद वही हो।

'हाँ, है तो।'

'जरा उसे बुला ला सकते हो ?'

लड़का दौड़ा हुआ गया और एक क्षण में एक पाँच हाथ के काले देव को साथ लिये आता दिखाई दिया। मै। दूर ही से पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट जाऊँ; पर कुछ सोचकर रह गया। बोला—कहो गया, मुझे पहचानते हो?

गया ने झुककर सलाम किया—हाँ मालिक, भला पहचानूँगा क्यों नहीं ? आप मजे में रहे ?

'बहुत मजे में। तुम अपनी कहो ?'

'डिप्टी साहब का साईस हूँ।'

'मतई, मोहन, दुर्गा यह सब कहाँ हैं ? कुछ खबर है ?'

'मतई तो मर गया, दुर्गा और मोहन दोनों डाकिये हो गये हैं, आप ?'

'मैं तो जिले का इन्जीनियर हूँ ?'

'सरकार तो पहले ही बड़े जहीन थे।'

'अब कभी गुल्ली-डण्डा खेलते हो ?'

गया ने मेरी ओर प्रश्न की आँखों से देखा—अब गुल्ली-डण्डा क्या खेलूँगा सरकार, अब तो पेट के धंधे से छुट्टी नहीं मिलती।

आओ, आज हम तुम खेलें। तुम पदाना, हम पदेंगे। तुम्हारा एक दाँव हमारे ऊपर है। वह आज ले लो।

गया बड़ी मुश्किल से राजी हुआ। वह ठहरा टके का मजदूर, मैं एक बड़ा अफसर। हमारा और उसका क्या जोड़ ? बेचारा झेंप रहा था; लेकिन मुझे भी कुछ कम झेंप न थी; इसलिए नहीं कि मैं गया के साथ खेलने जा रहा था; बल्कि इसलिए कि लोग इस खेल को अजूबा समझकर इसका तमाशा बना लेंगे और अच्छी-खासी भीड़ लग जायगी। उस भीड़ में वह आनन्द कहाँ रहेगा; पर खेले बगैर तो रहा नहीं जाता था। आखिर निश्चय हुआ कि दोनों जने बस्ती से दूर जाकर एकान्त में खेलें। वहाँ कौन कोई देखनेवाला बैठा होगा। मजे से खेलेंगे और बचपन की उस मिठाई का खूब रस ले-लेकर खायेंगे। मैं गया को लेकर डाक बँगले पर आया और मोटर में बैठकर दोनों मैदान की ओर चले। साथ में एक कुल्हाड़ी ले ली। मैं गंभीर भाव धारण किये हुए था, लेकिन गया इसे अभी तक मजाक ही समझ रहा था। फिर भी उसके मुख पर उत्सुकता या आनन्द का कोई चिह्न न था। शायद वह हम दोनों में जो अन्तर हो गया था, वह सोचने में मगन था।

मैंने पूछा—तुम्हें कभी हमारी याद आयी थी गया ? सच कहना।

गया झेंपता हुआ बोला—मैं आपको क्या याद करता हुजूर, किस लायक हूँ। भाग में आपके साथ कुछ दिन खेलना बदा था, नहीं मेरी क्या गिनती।

मैंने कुछ उदास होकर कहा—लेकिन मुझे तो बराबर तुम्हारी याद आती थी। तुम्हारा वह डण्डा, जो तुमने तानकर जमाया था, याद है न ?

गया ने पछताते हुए कहा—वह लड़कपन था सरकार, उसकी याद न दिलाओ।

'वाह ! वह मेरे बाल-जीवन की सबसे रसीली याद है। तुम्हारे उस डंडे में जो रस था, वह तो अब न आदर-सम्मान में पाता हूँ, न धन में। कुछ ऐसी मिठास थी उसमें कि आज तक उससे मन मीठा होता रहता है।'

इतनी देर में हम बस्ती से कोई तीन मील निकल आये हैं। चारों तरफ सन्नाटा है। पश्चिम की ओर कोसों तक भीमताल फैला हुआ है, जहाँ आकर हम किसी समय कमल के पुष्प तोड़ ले जाते थे और उसके झुमके बनाकर कानों में डाल लेते थे। जेठ की संध्या केसर में डूबी चली आ रही है। मैं लपककर एक पेड़ पर चढ़ गया और एक टहनी काट लाया। चटपट गुल्ली-डण्डा बन गया।

खेल शुरू हो गया। मैंने गुच्ची में गुल्ली रखकर उछाली। गुल्ली गया के सामने से निकल गयी। उसने हाथ लपकाया जैसे मछली पकड़ रहा हो। गुल्ली उसके पीछे जाकर गिरी। यह वही गया है, जिसके हाथों में गुल्ली जैसे आप-ही-आप जाकर बैठ जाती थी। वह दाहिने-बायें कहीं हो, गुल्ली उसकी हथेलियों में ही पहुँचती थी। जैसे गुल्लियों पर वशीकरण डाल देता हो। नई गुल्ली, पुरानी गुल्ली, छोटी गुल्ली, बड़ी गुल्ली, नोकदार गुल्ली, सपाट गुल्ली, सभी उसे मिल जाती थी। जैसे उसके हाथों में कोई चुंबक हो, जो गुल्लियों को खींच लेता हो, लेकिन आज गुल्ली को उससे प्रेम नहीं रहा। फिर तो मैंने पदाना शुरू किया। मैं तरह-तरह की धाँधलियाँ कर रहा था। अभ्यास की कसर बेईमानी से पूरी कर रहा था। हुच जाने पर भी डण्डा खेले जाता था; हालाँकि शास्त्र के अनुसार गया की बारी आनी चाहिए थी। गुल्ली पर जब ओछी चोट पड़ती और वह जरा दूर पर गिर पड़ती, तो मैं झटपट उसे खुद उठा लेता और दोबारा टाँड़ लगाता। गया यह सारी-बे-कायदगियाँ देख रहा था, पर कुछ न बोलता था, जैसे उसे वह सब कायदे-कानून भूल गये। उसका निशाना कितना अचूक था। गुल्ली उसके हाथ से निकलकर टन-से डण्डे में आकर लगती थी। उसके हाथ से छूटकर उसका काम था डण्डे से टकरा जाना; लेकिन आज वह गुल्ली डण्डे में लगती ही नहीं। कभी दाहिने जाती है, कभी बायें, कभी आगे, कभी पीछे।

आध घण्टे पदाने के बाद एक बार गुल्ली डण्डे में आ लगी। मैंने धाँधली की, गुल्ली डण्डे में नहीं लगी, बिल्कुल पास से गयी; लेकिन लगी नहीं।

गया ने किसी प्रकार का असन्तोष न प्रकट किया।

'न लगी होगी।'

'डण्डे में लगती तो क्या मैं बेईमानी करता ?'

'नहीं भैया, तुम भला बेईमानी करोगे !'

बचपन में मजाल था, कि मैं ऐसा घपला करके जीता बचता। यही गया गरदन पर चढ़ बैठता; लेकिन आज मैं उसे कितनी आसानी से धोखा दिये चला जाता था। गधा है !

सारी बातें भूल गया।

सहसा गुल्ली फिर डण्डे में लगी और इतने जोर से लगी जैसे बन्दूक छुटी हो। इस प्रमाण के सामने अब किसी तरह की धाँधली करने का साहस मुझे इस वक्त भी न हो सका; लेकिन क्यों न एक बार सच को झूठ बनाने की चेष्टा करूँ ? मेरा हरज ही क्या है। मान गया, तो वाह-वाह नहीं तो दो-चार हाथ पदना ही तो पड़ेगा। अंधेरे का बहाना करके जल्दी से गला छुड़ा लूँगा। फिर कौन दाँव देने आता है।

गया ने विजय के उल्लास में कहा—लग गयी, लग गयी ! टन से बोली।

मैंने अनजान बनने की चेष्टा करके कहा—तुमने लगते देखा ? मैंने तो नहीं देखा।

'टन से बोली है सरकार !'

'और जो किसी ईंट में लग गयी हो ?'

मेरे मुख से यह वाक्य उस समय कैसे निकला, इसका मुझे खुद आश्चर्य है। इस सत्य को झुठलाना वैसे ही था जैसे दिन को रात बताना। हम दोनों ने गुल्ली को डण्डे में जोर से लगते देखा था; लेकिन गया ने मेरा कथन स्वीकार कर लिया।

'हाँ, किसी ईट में ही लगी होगी। डण्डे में लगती, तो इतनी आवाज न आती।'

मैंने फिर पदाना शुरू कर दिया; लेकिन इतनी प्रत्यक्ष धाँधली कर लेने के बाद, गया की सरलता पर मुझे दया आने लगी, इसलिए जब तीसरी बार गुल्ली डण्डे में लगी, तो मैंने बड़ी उदारता से दाँव देना तय कर दिया।

गया ने कहा—अब तो अँधेरा हो गया भैया, कल पर रखो।

मैंने सोचा, कल बहुत-सा समय होगा, यह न जाने कितनी देर पदाये, इसलिए इसी वक्त मुआमला साफ कर लेना अच्छा होगा।

'नहीं, नहीं। अभी बहुत उजाला है। तुम अपना दाँव ले लो।'

'गुल्ली सूझेगी नहीं।'

'कुछ परवाह नहीं।'

गया ने पदाना शुरू किया, पर उसे अब बिल्कुल अभ्यास न था। उसने दो बार टाँड़ लगाने का इरादा किया; पर दोनों ही बार हुच गया। एक मिनट से कम में वह दाँव पूरा कर चुका। बेचारा घण्टा भर पदा; पर एक मिनट ही में अपना दाँव खो बैठा। मैंने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया।

'एक दाँव और खेल लो। तुम पहले ही हाथ में हुच गये।'

'नहीं भैया, अब अंधेरा हो गया।'

'तुम्हारा अभ्यास छूट गया। क्या कभी खेलते नहीं ?'

'खेलने का समय कहाँ मिलता है भैया !'

हम दोनों मोटर पर जा बैठे और चिराग जलते-जलते पड़ाव पर पहुँच गये। गया चलते-चलते बोला—कल यहाँ गुल्ली-डण्डा होगा। सभी पुराने खिलाड़ी खेलेंगे। आप भी आओगे ? जब आपको फुरसत हो, तभी खिलाड़ियों को बुलाऊँ।

मैंने शाम का समय दिया और दूसरे दिन मैच देखने आया। कोई दस-दस आदमियों की मण्डली थी। कई मेरे लड़कपन के साथी निकले। अधिकांश युवक थे जिन्हें मैं पहचान न सका। खेल शुरू हुआ। मैं मोटर पर बैठा-बैठा तमाशा देखने लगा। आज गया का खेल, उसका वह

नैपुण्य देखकर मैं चकित हो गया। टाँड़ लगाता, तो गुल्ली आसमान से बातें करती। कल की-सी वह झिझक, वह हिचकिचाहट, वह बेदिली आज न थी। लड़कपन में जो बात थी, आज उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। कहीं कल इसने मुझे इस तरह पदाया होता, तो मैं जरूर रोने लगता। उसके डण्डे की चोट खाकर गुल्ली दो सौ गज की खबर लाती थी।

पदनेवालों में एक युवक ने धाँधली की ! उसने अपने विचार में गुल्ली लोक ली थी। गया का कहना था—गुल्ली जमीन में लगकर उछली थी। इस पर दोनों में ताल ठोंकने की नौबत आयी। युवक दब गया। गया का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर डर गया। अगर वह दब न जाता, तो जरूर मारपीट हो जाती। मैं खेल में न था; पर दूसरों के इस खेल में मुझे वही लड़कपन का आनन्द आ रहा था, जब हम सब कुछ भूलकर खेल में मस्त हो जाते थे। अब मुझे मालूम हुआ कि कल गया ने मेरे साथ खेला नहीं, केवल खेलने का बहाना किया। उसने मुझे दया का पात्र समझा। मैंने धांधली की, बेईमानियाँ कीं; पर उसे ज़रा भी क्रोध न आया। इसलिए कि वह वह खेल न रहा था, मुझे खेला रहा था, मेरा मान रख रहा था। वह मुझे पदाकर मेरा कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं अब अफसर हूँ। यह अफसरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गयी है। अब मैं उसका लिहाज पा सकता हूँ, अदब पा सकता हूँ, साहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था, तब मैं उसका समकक्ष था। हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', फरवरी, 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप 'गिल्ली-डंडा' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'वारदात' में संकलित।]

वेश्या

छः महीने बाद कलकत्ते से घर पर आने पर दयाकृष्ण ने पहला काम जो किया, वह अपने प्रिय मित्र सिंगारसिंह से मातमपुरसी करने जाना था। सिंगार के पिता का आज तीन महीने हुए देहान्त हो गया था। दयाकृष्ण बहुत व्यस्त रहने के कारण उस समय न आ सका था। मातमपुरसी की रस्म पत्र लिखकर अदा कर दी थी; लेकिन ऐसा एक दिन भी नहीं बीता कि सिंगार की याद उसे न आयी हो। अभी वह दो-चार महीने और कलकत्ते रहना चाहता था; क्योंकि वहाँ उसने जो कारोबार जारी किया था, उसे संगठित रूप में लाने के लिए उसका वहाँ मौजूद रहना जरूरी था और उसकी थोड़े दिन की गैरहाजिरी से भी हानि की शंका थी। किन्तु जब सिंगार की स्त्री लीला का परवाना आ पहुँचा तो वह अपने को न रोक सका। लीला ने साफ-साफ तो कुछ न लिखा था, केवल उसे तुरन्त बुलाया था; लेकिन दयाकृष्ण को पत्र के शब्दों से कुछ ऐसा अनुमान हुआ कि वहाँ की परिस्थिति चिन्ताजनक है और इस अवसर पर उसका वहाँ पहुँचना जरूरी है। सिंगार सम्पन्न बाप का बेटा था, बड़ा ही अल्हड़, बड़ा ही जिद्दी, बड़ा ही आरामपसन्द। दृढ़ता या लगन उसे छू भी नहीं गयी थी। उसकी माँ उसके बचपन ही में मर चुकी थी और बाप ने उसके पालने

में नियंत्रण की अपेक्षा स्नेह से ज्यादा काम लिया था। उसे कभी दुनिया की हवा नहीं लगने दी। उद्योग भी कोई वस्तु है, यह वह जानता ही न था। उसके महज इशारे पर हर एक चीज सामने आ जाती थी। वह जवान बालक था, जिसमें न अपने विचार थे न सिद्धान्त। कोई भी आदमी उसे बड़ी आसानी से अपने कपट-बाणों का निशाना बना सकता था। मुख्तारों और मुनीमों के दाँव-पेंच समझना उसके लिए लोहे के चने चबाना था। उसे किसी ऐसे समझदार और हितैषी मित्र की जरूरत थी, जो स्वार्थियों के हथकण्डों से उसकी रक्षा करता रहे। दयाकृष्ण पर इस घर के बड़े-बड़े एहसान थे। उस दोस्ती का हक अदा करने के लिए उसका आना आवश्यक था।

मुँह-हाथ धोकर सिंगारसिंह के घर पर ही भोजन का इरादा करके दयाकृष्ण उससे मिलने चला। नौ बज गये थे, हवा और धूप में गर्मी आने लगी थी।

सिंगारसिंह उसकी खबर पाते ही बाहर निकल आया। दयाकृष्ण उसे देखकर चौंक पड़ा। लम्बे-लम्बे केशों की जगह उसके सिर पर घुँघराले बाल थे (वह सिक्ख था), आड़ी माँग निकली हुई। आँखों में न आँसू थे, न शोक का कोई-दूसरा चिह्न, चेहरा कुछ जर्द अवश्य था पर उस पर विलासिता की मुसकराहट थी। वह एक महीन रेशमी कमीज और मखमली जूते पहने हुए था; मानो किसी महफिल से उठा आ रहा हो। संवेदना के शब्द दयाकृष्ण के ओठों तक आकर निराश लौट गये। वहाँ बधाई के शब्द ज्यादा अनुकूल प्रतीत हो रहे थे।

सिंगारसिंह लपककर उसके गले से लिपट गया और बोला—तुम खूब आये यार, इधर तुम्हारी बहुत याद आ रही थी; मगर पहले यह बतला दो, वहाँ का कारोबार बन्द कर आये या नहीं ? अगर वह झंझट छोड़ आये हो, तो पहले उसे तिलांजलि दे आओ। अब आप यहाँ से जाने न पायेंगे। मैंने तो भाई, अपना कैंड़ा बदल दिया। बताओ, कब तक तपस्या करता। अब तो आये-दिन जलसे होते हैं। मैंने सोचा—यार, दुनिया में आये, तो कुछ दिन सैर-सपाटे का आनन्द भी उठा लो। नहीं तो एक दिन यों ही हाथ मलते चले जायँगे। कुछ भी साथ न जायगा।

दयाकृष्ण विस्मय से उसके मुँह की ओर ताकने लगा। यह वही सिंगार है या कोई और ! बाप के मरतें ही इतनी तब्दीली !

दोनों मित्र कमरे में गये और सोफे पर बैठे। सरदार साहब के सामने इस कमरे में फर्श और मसनद थी, आलमारी थी। अब दर्जनों गद्देदार सोफे और कुर्सियाँ हैं, कालीन का फर्श है, रेशमी परदे हैं, बड़े-बड़े आईने हैं। सरदार साहब को संचय की धुन थी, सिंगार को उड़ाने की धुन है।

सिंगार ने एक सिगार जलाकर कहा—तेरी बहुत याद आती थी यार, तेरी जान की कसम।

दयाकृष्ण ने शिकवा किया—क्यों झूठ बोलते हो भाई, महीनों गुजर जाते थे, एक खत लिखने की तो आपको फुर्सत न मिलती थी, मेरी याद आती थी।

सिंगार ने अल्हड़पन से कहा—बस, इसी बात पर मेरी सेहत का एक जाम पियो। अरे यार, इस जिन्दगी में और क्या रखा है ? हँसी-खेल में जो वक्त कट जाय, उसे गनीमत समझो। मैंने तो यह तपस्या त्याग दी। अब तो आये दिन जलसे होते हैं, कभी दोस्तों की

दावत है, कभी दरिया की सैर, कभी गाना-बजाना, कभी शराब के दौर। मैंने कहा, लाओ कुछ दिन वह बहार भी देख लूँ। हसरत क्यों दिल में रह जाय। आदमी संसार में कुछ भोगने के लिए आता है, यही जिन्दगी के मजे हैं। जिसने ये मजे नहीं चक्खे, उसका जीना वृथा है। बस, दोस्तों की मजलिस हो, बगल में माशूक हो और हाथ में प्याला हो, इसके सिवा मुझे और कुछ न चाहिए !

उसने आलमारी खोलकर एक बोतल निकाली और दो गिलासों में शराब डालकर बोला—यह मेरी सेहत का जाम है। इन्कार न करना। मैं तुम्हारे सेहत का जाम पीता हूँ।

दयाकृष्ण को कभी शराब पीने का अवसर न मिला था। वह इतना धर्मात्मा तो न था कि शराब पीना पाप समझता, हाँ, उसे दुर्व्यसन समझता था। गन्ध ही से उसका जी मालिश करने लगा। उसे भय हुआ कि वह शराब की घूँट चाहे मुँह में ले ले, उसे कण्ठ के नीचे नहीं उतार सकता। उसने प्याले को शिष्टाचार के तौर पर हाथ में ले लिया, फिर उसे ज्यों-का-त्यों मेज पर रखकर बोला—तुम जानते हो, मैंने कभी नहीं पी। इस समय मुझे क्षमा करो। दस-पाँच दिन में यह फन भी सीख जाऊँगा, मगर यह तो बताओ, अपना कारोबार भी कुछ देखते हो, या इसी में पड़े रहते हो।

सिंगार ने अरुचि से मुँह बनाकर कहा—ओह, क्या जिक्र तुमने छेड़ दिया, यार? कारोबार के पीछे इस छोटी-सी जिन्दगी को तबाह नहीं कर सकता। न कोई साथ लाया है, न साथ ले जायगा। पापा ने मर-मरकर धन संचय किया। क्या हाथ लगा ? पचास तक पहुँचते-पहुँचते चल बसे। उनकी आत्मा अब भी संसार के सुखों के लिए तरस रही होगी। धन छोड़कर मरने से फाकेमस्त रहना कहीं अच्छा है। धन की चिन्ता तो नहीं सताती, पर यह हाय-हाय तो नहीं होती कि मेरे बाद क्या होगा ! तुमने गिलास मेज पर रख दिया। जरा पियो, आँखें खुल जायँगी, दिल हरा हो जायगा। और लोग सोड़ा और बरफ़ मिलाते हैं, मैं तो खालिस पीता हूँ। इच्छा हो, तो तुम्हारे लिए बरफ़ मँगाऊँ ?

दयाकृष्ण ने फिर क्षमा माँगी; मगर सिंगार गिलास-पर-गिलास पीता गया। उसकी आँखें लाल-लाल निकल आयीं, ऊल-जलूल बकने लगा, खूब डींगें मारीं, फिर बेसुरे राग में एक बाजारू गीत गाने लगा। अन्त में उसी कुर्सी पर पड़ा-पड़ा बेसुध हो गया।

2

सहसा पीछे का परदा हटा और लीला ने उसे इशारे से बुलाया। दयाकृष्ण की धमनियों में शतगुण वेग से रक्त दौड़ने लगा। उसकी संकोचमय, भीरु प्रकृति भीतर से जितनी ही रूपासक्त थी, बाहर से उतनी ही विरक्त। सुंदरियों के सम्मुख आकर वह स्वयं अवाक् हो जाता था, उसके कपोलों पर लज्जा की लाली दौड़ जाती थी और आँखें झुक जाती थीं; लेकिन मन उनके चरणों पर लौटकर अपने-आपको समर्पित कर देने के लिए विकल हो जाता था। मित्रगण उसे बूढ़े बाबा कहा करते थे। स्त्रियाँ उसे अरसिक समझकर उससे उदासीन रहती थीं। किसी युवती के साथ लंका तक रेल में एकान्त-यात्रा करके भी वह उससे एक शब्द भी बोलने का साहस न करता। हाँ, यदि युवती स्वयं उसे छेड़ती, तो वह अपने प्राण तक उसकी भेंट कर देता। उसके इस संकोचमय, अवरुद्ध जीवन में लीला ही एक युवती थी, जिसने उसके मन को समझा था और उससे सवाक सहृदयता का व्यवहार

किया था। तभी से दयाकृष्ण मन से उसका उपासक हो गया था। उसके अनुभवशून्य हृदय में लीला नारी-जाति का सबसे सुन्दर आदर्श थी। उसकी प्यासी आत्मा को शर्बत या लेमनेड की उतनी इच्छा न थी।, जितना ठण्डे, मीठे पानी की। लीला में रूप है, लावण्य है, सुकुमारता है, इन बातों की ओर उसका ध्यान न था। उससे ज्यादा रूपवती, लावण्यमयी और सुकुमार युवतियाँ उसने पार्कों में देखी थीं। लीला में सहृदयता है, विचार है, दया है, इन्हीं तत्त्वों की ओर उसका आकर्षण था। उसकी रसिकता में आत्म-समर्पण के सिवा और कोई भाव न था। लीला के किसी आदेश का पालन करना उसकी सबसे बड़ी कामना थी, उसकी आत्मा की तृप्ति के लिए इतना काफ़ी था। उसने काँपते हाथों से परदा उठाया और अन्दर आकर खड़ा हो गया। और विस्मय भरी आँखों से उसे देखने लगा। उसने लीला को यहाँ न देखा होता, तो पहचान भी न सकता। वह रूप, यौवन और विकास की देवी इस तरह मुरझा गयी थी, जैसे किसी ने उसके प्राणों को चूसकर निकाल लिया हो। करुण-स्वर में बोला—यह तुम्हारा क्या हाल है, लीला ? बीमार हो क्या ? मुझे सूचना तक न दी।

लीला मुस्कराकर बोली—तुमसे मतलब ? मैं बीमार हूँ या अच्छी हूँ, तुम्हारी बला से ! तुम तो अपने सैर-सपाटे करते रहे। छः महीने के बाद जब आपको याद आयी है, तो पूछते हो बीमार हो ? मैं उस रोग से ग्रस्त हूँ, जो प्राण लेकर ही छोड़ता है। तुमने इन महाशय की हालत देखी ? उनका यह रंग देखकर मेरे दिल पर क्या गुजरती है, यह क्या मैं अपने मुँह से कहूँ तभी समझोगे ? मैं अब इस घर में जबरदस्ती पड़ी हूँ और बेहयाई से जीती हूँ। किसी को मेरी चाह या चिन्ता नहीं है। पापा क्या मरे, मेरा सोहाग ही उठ गया। कुछ समझती हूँ, तो बेवकूफ बनायी जाती हूँ। रात-रात भर न जाने कहाँ गायब रहते हैं। जब देखो, नशे में मस्त, हफ्तों घर में नहीं आते कि दो बातें कर लूँ; अगर इनके यही ढंग रहे, तो साल-दो-साल में रोटियों के मुहताज हो जायेंगे।

दया ने पूछा—यह लत इन्हें कैसे पड़ गयी ? ये बातें तो इनमें न थीं।

लीला ने व्यथित स्वर में कहा—रुपये की बलिहारी है और क्या ! इसीलिए तो बूढ़े मर-मरके कमाते हैं और मरने के बाद लड़कों के लिए छोड़ जाते हैं। अपने मन में समझते होंगे, हम लड़कों के लिए बैठने का ठिकाना किये जाते हैं। मैं कहती हूँ, तुम उनके सर्वनाश का सामान किये जाते हो, उनके लिए जहर बोये जाते हो। पापा ने लाखों रुपये की सम्पत्ति न छोड़ी होती, तो आज यह महाशय किसी काम में लगे होते, कुछ घर की चिन्ता होती; कुछ जिम्मेदारी होती; नहीं तो बैंक से रुपये निकाले और उड़ाये। अगर मुझे विश्वास होता कि सम्पत्ति समाप्त करके वह सीधे मार्ग पर आ जायँगे, तो मुझे जरा भी दुःख न होता; पर मुझे तो यह भय है कि ऐसे लोग फिर किसी काम के नहीं रहते या तो जेलखाने में मरते हैं या अनाथालय में। आपकी एक वेश्या से आशनाई है। माधुरी नाम है और वह इन्हें उल्टे छुरे से मूँड़ रही है, जैसा उसका धर्म है। आपको यह खब्त हो गया कि वह मुझ पर जान देती है। उससे विवाह का प्रस्ताव भी किया जा चुका है। मालूम नहीं, उसने क्या जवाब दिया। कई बार जी में आया कि जब यहाँ किसी से कोई नाता ही नहीं है तो अपने घर चली जाऊँ; लेकिन डरती हूँ कि तब तो यह और भी स्वतंत्र हो जायँगे। मुझे किसी पर विश्वास है, तो वह तुम हो। इसीलिए तुम्हें बुलाया था कि शायद तुम्हारे समझाने-बुझाने का कुछ असर हो। अगर तुम भी असफल हुए, तो मैं एक क्षण यहाँ न

रहूँगी। भोजन तैयार है, चलो कुछ खा लो।

दयाकृष्ण ने सिंगारसिंह की ओर संकेत करके कहा—और यह ?

'यह तो अब कहीं दो-तीन बजे चेतेंगे।'

'बुरा न मानेंगे।'

'मैं अब इन बातों की परवाह नहीं करती। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि अगर मुझे कभी आँखें दिखायीं, तो मैं इन्हें मजा चखा दूँगी। मेरे पिताजी फौज में सूबेदार मेजर हैं। मेरी देह में उनका रक्त है।'

लीला की मुद्रा उत्तेजित हो गयी। विद्रोह की वह आग, जो महीनों से पड़ी सुलग रही थी, प्रचण्ड हो उठी।

उसने उसी लहजे में कहा—मेरी इस घर में इतनी साँसत हुई है, इतना अपमान हुआ है और हो रहा है कि मैं उसका किसी तरह भी प्रतिकार करके आत्मग्लानि का अनुभव न करूँगी। मैंने पापा से अपना हाल छिपा रखा है। आज लिख दूँ, तो इनकी सारी मशीखत उतर जाय। नारी होने का दंड भोग रही हूँ, लेकिन नारी के धैर्य की भी सीमा है।

दयाकृष्ण उस सुकुमारी का वह तमतमाया हुआ चेहरा, वे जलती हुई आँखें, वह काँपते हुए होंठ देखकर काँप उठा। उसकी दशा उस आदमी की सी हो गयी, जो किसी को दर्द से तड़पते देखकर वैद्य को बुलाने दौड़े। आर्द्र कण्ठ से बोला—इस समय मुझे क्षमा करो लीला, फिर कभी तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार करूँगा। तुम्हें अपनी ओर से इतना ही विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे अपना सेवक समझती रहना। मुझे न मालूम था कि तुम्हें इतना कष्ट है, नहीं तो शायद अब तक मैंने कुछ युक्ति सोची होती। मेरा यह शरीर तुम्हारे किसी काम आये, इससे बढ़कर सौभाग्य की बात मेरे लिए और क्या होगी!

दयाकृष्ण यहाँ से चला; तो उसके मन में इतना उल्लास भरा हुआ था, मानो विमान पर बैठा हुआ स्वर्ग की ओर जा रहा है। आज उसे जीवन में एक ऐसा लक्ष्य मिल गया था, जिसके लिये वह जी भी सकता है और मर भी सकता है। वह एक महिला का विश्वासपात्र हो गया था। इस रत्न को वह अपने हाथ से कभी न जाने देगा, चाहे उसकी जान ही क्यों न चली जाय।

3

एक महीना गुजर गया। दयाकृष्ण सिंगारसिंह के घर नहीं आया। न सिंगारसिंह ने उसकी परवाह की। इस एक ही मुलाकात में उसने समझ लिया था कि दया इस नये रंग में आनेवाला आदमी नहीं है। ऐसे सात्विक जनों के लिए उसके यहाँ स्थान न था। वहाँ तो रंगीले, रसिया, अय्याश और बिगड़े-दिलों ही की चाह थी। हाँ, लीला को हमेशा उसकी याद आती रहती थी।

मगर दयाकृष्ण के स्वभाव में अब वह संयम नहीं है। विलासिता का जादू उस पर भी चलता हुआ मालूम होता है। माधुरी के घर उसका भी आना-जाना शुरू हो गया है। वह सिंगारसिंह का मित्र नहीं रहा, प्रतिद्वन्द्वी हो गया है। दोनों एक ही प्रतिमा के उपासक हैं; मगर उनकी उपासना में अन्तर है। सिंगार की दृष्टि से माधुरी केवल विलास की एक वस्तु है, क़ेवल विनोद का एक यन्त्र। दयाकृष्ण विनय की मूर्ति है जो माधुरी की सेवा में ही

प्रसन्न है। सिंगार माधुरी के हास-विलास को अपना जर खरीद हक समझता है, दयाकृष्ण इसी में संतुष्ट है कि माधुरी उसकी सेवाओं को स्वीकार करती है। माधुरी की ओर से जरा भी अरुचि देखकर वह उसी तरह बिगड़ जायगा जैसे अपनी प्यारी घोड़ी की मुँहजोरी पर। दयाकृष्ण अपने को उसकी कृपा दृष्टि के योग्य ही नहीं समझता। सिंगार जो कुछ माधुरी को देता है, गर्व भरे आत्म-प्रदर्शन के साथ; मानो उस पर कोई एहसान कर रहा हो। दयाकृष्ण के पास देने को है ही क्या; पर वह जो कुछ भेंट करता है, वह ऐसी श्रद्धा से, मानो देवता को फूल चढ़ाता हो। सिंगार का आसक्त मन माधुरी को अपने पिंजरे में बंद रखना चाहता है, जिसमें उस पर किसी की निगाह न पड़े। दयाकृष्ण निर्लिप्त भाव से उसकी स्वच्छंद क्रीड़ा का आनंद उठाता है। माधुरी को अब तक जितने आदमियों से साबिका पड़ा था, वे सब सिंगारसिंह की ही भाँति कामुकी, ईर्ष्यालु, दंभी और कोमल भावों से शून्य थे, रूप को भोगने की वस्तु समझनेवाले। दयाकृष्ण उन सबों से अलग था—सहृदयी, भद्र और सेवाशील, मानो उस पर अपनी आत्मा को समर्पण कर देना चाहता हो। माधुरी को अब अपने जीवन में कोई ऐसा पदार्थ मिल गया है, जिसे वह बड़ी एहतियात से सँभालकर रखना चाहती। जड़ाऊ गहने अब उसकी आँखों में उतने मूल्यवान नहीं रहे, जितनी यह फकीर की दी हुई तावीज। जड़ाऊ गहने हमेशा मिलेंगे, यह तावीज खो गयी, तो फिर शायद ही कभी हाथ आये। जड़ाऊ गहने केवल उसकी विलास-प्रवृत्ति को उत्तेजित करते हैं। पर इस तावीज में कोई दैवी शक्ति है, जो न जाने कैसे उसमें सद्नुराग और परिष्कार-भावना को जगाती है। दयाकृष्ण कभी प्रेम-प्रदर्शन नहीं करता, अपनी विरह-व्यथा के राग नहीं अलापता, पर माधुरी को उस पर पूरा विश्वास है। सिंगारसिंह के प्रलाप में उसे बनावट और दिखावे का आभास होता है। वह चाहती है, यह जल्द यहाँ से टले; लेकिन दयाकृष्ण के संयत भाषण में उसे गहराई तथा गाम्भीर्य और गुरुत्व का आभास होता हैं। औरों की वह प्रेमिका है; लेकिन दयाकृष्ण की आशिक, जिसके कदमों की आहट पाकर उसके अन्दर एक तूफान उठने लगता है। उसके जीवन में यह नयी अनुभूति है। अब तक वह दूसरों के भोग की वस्तु थी, अब कम-से-कम एक प्राणी की दृष्टि में वह आदर और प्रेम की वस्तु है।

सिंगारसिंह को जब से दयाकृष्ण के इस प्रेमाभिनय की सूचना मिली है, वह उसके खून का प्यासा हो गया है। ईर्ष्याग्नि से फुँका जा रहा है। उसने दयाकृष्ण के पीछे कई शोहदे लगा रखे हैं कि वे उसे जहाँ पायें, उसका काम तमाम कर दें। वह खुद पिस्तौल लिये उसकी टोह में रहता है। दयाकृष्ण इस खतरे को समझता है, जानता है; अपने नियत समय पर माधुरी के पास बिला नागा आ जाता है। मालूम होता है, उसे अपनी जान का कुछ भी मोह नहीं है। शोहदे उसे देखकर क्यों कतरा जाते हैं, मौका पाकर भी क्यों उस पर वार नहीं करते, इसका रहस्य वह नहीं समझता।

एक दिन माधुरी ने उससे कहा—कृष्णजी, तुम यहाँ न आया करो। तुम्हें तो पता नहीं है, पर यहाँ तुम्हारे बीसों दुश्मन हैं। मैं डरती हूँ कि किसी दिन कोई बात न हो जाय।

शिशिर की तुषार-मण्डित सन्ध्या थी। माधुरी एक काश्मीरी शाल ओढ़े अँगीठी के सामने बैठी हुई थी। कमरे में बिजली का रजत प्रकाश फैला हुआ था। दयाकृष्ण ने देखा, माधुरी की आँखें सजल हो गई हैं और वह मुँह फेरकर उन्हें दयाकृष्ण से छिपाने की चेष्टा

कर रही है। प्रदर्शन और सुखभोग करनेवाली रमणी क्यों इतना संकोच कर रही है, यह उसका अनाड़ी मन न समझ सका। हाँ, माधुरी के गोरे, प्रसन्न, संकोच-हीन मुख पर लज्जा-मिश्रित मधुरिमा की ऐसी छटा उसने कभी न देखी थी। आज उसने उस मुख पर कुल-वधू की भीरु आकांक्षा और दृढ़ वात्सल्य देखा और उसके अभिनय में सत्य का उदय हो गया।

उसने स्थिर भाव से जवाब दिया—मैं तो किसी की बुराई नहीं करता, मुझसे किसी को क्यों वैर होने लगा। मैं यहाँ किसी का बाधक नहीं, किसी का विरोधी नहीं। दाता के द्वार पर सभी भिक्षुक जाते हैं। अपना-अपना भाग्य है, किसी को एक चुटकी मिलती है, किसी को पूरा थाल। कोई क्यों किसी से जले ? अगर किसी पर तुम्हारी विशेष कृपा है, तो मैं उसे भाग्यशाली समझकर उसका आदर करूँगा। जलूँ क्यों ?

माधुरी ने स्नेह-कातर स्वर में कहा—जी नहीं, आप कल से न आया कीजिए।

दयाकृष्ण मुस्कराकर बोला—तुम मुझे यहाँ आने से नहीं रोक सकतीं। भिक्षुक को तुम दुत्कार सकती हो, द्वार पर आने से नहीं रोक सकतीं।

माधुरी स्नेह की आँखों से उसे देखने लगी, फिर बोली—क्या सभी आदमी तुम्हीं जैसे निष्कपट हैं ?

'तो फिर मैं क्या करूँ ?'

'यहाँ न आया करो।'

'यह मेरे बस की बात नहीं।'

माधुरी एक क्षण तक विचार करके बोली—एक बात कहूँ, मानोगे ? चलो, हम-तुम किसी दूसरे नगर की राह लें।

'केवल इसीलिए कि कुछ लोग मुझसे खार खाते हैं ?'

'खार नहीं खाते, तुम्हारी जान के ग्राहक हैं।'

दयाकृष्ण उसी अविचलित भाव से बोला—जिस दिन प्रेम का यह पुरस्कार मिलेगा, वह मेरे जीवन का नया दिन होगा, माधुरी ! इससे अच्छी मृत्यु और क्या हो सकती है ? तब मैं तुमसे पृथक् न रहकर तुम्हारे मन में, तुम्हारी स्मृति में रहूँगा।

माधुरी ने कोमल हाथ से उसके गाल पर थपकी दी। उसकी आँखें भर आयी थीं। इन शब्दों में जो प्यार भरा हुआ था, वह जैसे पिचकारी की धार की तरह उसके हृदय में समा गया। ऐसी विकल वेदना ! ऐसा नशा ! इसे वह क्या कहे ?

उसने करुण स्वर में कहा—ऐसी बातें न किया करो कृष्ण, नहीं तो मैं सच कहती हूँ, एक दिन जहर खाकर तुम्हारे चरणों पर सो जाऊँगी। तुम्हारे इन शब्दों में न-जाने क्या जादू था कि मैं जैसे फुँक उठी। अब आप खुदा के लिए यहाँ न आया कीजिए, नहीं तो देख लेना, मैं एक दिन प्राण दे दूँगी। तुम क्या जानो, हत्यारा सिंगार किस बुरी तरह तुम्हारे पीछे पड़ा हुआ है। मैं उसके शोहदों की खुशामद करते-करते हार गयी। कितना कहती हूँ, दयाकृष्ण से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, उसके सामने तुम्हारी निन्दा करती हूँ, कितना कोसती हूँ, लेकिन उस निर्दयी को मुझ पर विश्वास नहीं आता। तुम्हारे लिये मैंने इन गुण्डों की कितनी मिन्नतें की हैं, उनके हाथ कितना अपमान सहा है, वह तुमसे न कहना ही अच्छा है। जिनका मुँह देखना भी मैं अपनी शान के खिलाफ समझती हूँ, उनके पैरों पड़ी हूँ,

लेकिन ये कुत्ते हड्डियों के टुकड़े पाकर और भी शेर हो जाते हैं। मैं अब उनसे तंग आ गयी हूँ और तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ कि यहाँ से किसी ऐसी जगह चले चलो, जहाँ हमें कोई न जानता हो। वहाँ शान्ति के साथ पड़े रहें। मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। आज इसका निश्चय कराये बिना मैं तुम्हें न जाने दूँगी। मैं जानती हूँ, तुम्हें मुझ पर अब भी विश्वास नहीं है। तुम्हें सन्देह है कि तुम्हारे साथ कपट करूँगी।

दयाकृष्ण ने टोका—नहीं माधुरी, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। मेरे मन में कभी ऐसा सन्देह नहीं आया। पहले ही दिन मुझे-न-जाने क्यों कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि तुम अपनी और बहनों से पृथक् हो। मैंने तुम में वह शील और संकोच देखा, जो मैंने कुलवधुओं में देखा है।

माधुरी ने उसकी आँखों में आँखें गड़ाकर कहा—तुम झूठ बोलने की कला में इतने निपुण नहीं हो कृष्ण, कि वेश्या को भुलावा दे सको ! मैं न शीलवती हूँ, न संकोचवती हूँ और न अपनी दूसरी बहनों से भिन्न हूँ, मैं वेश्या हूँ; उतनी ही कलुषित, उतनी ही विलासांध, उतनी ही मायाविनी, जितनी मेरी दूसरी बहनें; बल्कि उनसे कुछ ज्यादा। न तुम अन्य पुरुषों की तरह मेरे पास विनोद और वासना-तृप्ति के लिए आये थे। नहीं, महीनों आते रहने पर भी तुम यों अलिप्त न रहते। तुमने कभी डींग नहीं मारी, मुझे धन का प्रलोभन नहीं दिया। मैंने भी कभी तुमसे धन की आशा नहीं की। तुमने अपनी वास्तविक स्थिति मुझसे कह दी। फिर भी मैंने तुम्हें एक नहीं, अनेक ऐसे अवसर दिये कि कोई दूसरा आदमी उन्हें न छोड़ता; लेकिन तुम्हें मैं अपने पंजे में न ला सकी। तुम चाहे और जिस इरादे से आये हो, भोग की इच्छा से नहीं आये। अगर मैं तुम्हें इतना नीच, इतना हृदयहीन, इतना विलासांध समझती, तो इस तरह तुम्हारे नाज न उठाती। फिर मैं भी तुम्हारे साथ मित्र-भाव रखने लगी। समझ लिया, मेरी परीक्षा हो रही है। जब तक इस परीक्षा में सफल न हो जाऊँ, तुम्हें नहीं पा सकती। तुम जितने सज्जन हो, उतने ही कठोर हो।

यह कहते हुए माधुरी ने दयाकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और अनुराग और समर्पण-भरी चितवनों से उसे देखकर बोली—सच बताओ कृष्ण, तुम मुझमें क्या देखकर आकर्षित हुए थे ? देखो, बहानेबाजी न करना। तुम रूप पर मुग्ध होने वाले आदमी नहीं हो, मैं कसम खा सकती हूँ।

दयाकृष्ण ने संकट में पड़ कर कहा—रूप इतनी तुच्छ वस्तु नहीं है, माधुरी ! वह मन का आईना है।

'यहाँ मुझसे रूपवान् स्त्रियों की कमी नहीं है।'

'यह तो अपनी-अपनी निगाह है। मेरे पूर्व संस्कार रहे होंगे।'

माधुरी ने भँवें सिकोड़कर कहा—तुम फिर झूठ बोल रहे हो, चेहरा कहे देता है।

दयाकृष्ण ने परास्त होकर पूछा—पूछ कर क्या करोगी, माधुरी ? मैं डरता हूँ; कहीं तुम मुझसे घृणा न करने लगो। सम्भव है, तुम मेरा जो रूप देख रही हो, वह मेरा असली रूप न हो ?

माधुरी का मुँह लटक गया। विरक्त-सी होकर बोली इसका खुले शब्दों में यह अर्थ है कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं। ठीक है, वेश्याओं पर विश्वास करना भी नहीं चाहिए। विद्वानों और महात्माओं का उपदेश कैसे न मानोगे ?

नारी हृदय इस समस्या पर विजय पाने के लिए अपने अस्त्रों से काम लेने लगा।

दयाकृष्ण पहले ही पहले हमले में हिम्मत छोड़ बैठा। बोला तुम तो नाराज हुई जाती हो, माधुरी ! मैंने तो केवल इस विचार से कहा था कि तुम मुझे धोखेबाज समझने लगोगी। तुम्हें शायद मालूम नहीं है, सिंगारसिंह ने मुझ पर कितने एहसान किये हैं। मैं उन्हीं के टुकड़ों पर पला हूँ। इसमें रत्ती भर भी मुबालगा नहीं। वहाँ जाकर जब मैंने उनके रंग-ढंग देखे और उनकी साध्वी स्त्री लीला को बहुत दुखी पाया, तो सोचते-सोचते मुझे यही उपाय सूझा कि किसी तरह सिंगारसिंह को तुम्हारे पंजे से छुड़ाऊँ। मेरे इस अभिमान का यही रहस्य है, लेकिन उन्हें छुड़ा तो न सका, खुद फँस गया। मेरे इस फरेब की जो सजा चाहो, दो, सिर झुकाये हुए हूँ।

माधुरी का अभिमान टूट गया। जल कर बोली तो यह कहिये कि आप लीला देवी के आशिक हैं। मुझे पहले से मालूम होता, तो तुम्हें इस घर में घुसने न देती। तुम तो एक छिपे रुस्तम निकले।

वह तोते के पिंजरे के पास जाकर उसे पुचकारने का बहाना करने लगी। मन में जो एक दाह उठ रही थी, उसे कैसे शान्त करे ?

दयाकृष्ण ने तिरस्कार-भरे स्वर में कहा—मैं लीला का आशिक नहीं हूँ, माधुरी ! उस देवी को कलंकित न करो। मैं आज तुमसे शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने कभी उसे इस निगाह से नहीं देखा। उसके प्रति मेरा वही भाव था, जो अपने किसी आत्मीय को दुःख में देखकर हर एक मनुष्य के मन में आता है।

'किसी से प्रेम करना तो पाप नहीं हे, तुम व्यर्थ में अपनी और लीला की सफाई दे रहे हो।'

'मैं नहीं चाहता कि लीला पर किसी तरह का आक्षेप किया जाय।'

'अच्छा साहब, लीजिए; लीला का नाम न लूँगी। मैंने मान लिया, वह सती है, साध्वी है ओर केवल उसकी आज्ञा से...''

दयाकृष्ण ने बात काटी—उनकी कोई आज्ञा नहीं थी।

'ओ हो, तुम तो जबान पकड़ते हो, कृष्ण ! क्षमा करो, उनकी आज्ञा से नहीं तुम अपनी इच्छा से आये। अब तो राजी हुए। अब यह बताओ, आगे तुम्हारे क्या इरादे हैं ? मैं वचन तो दे दूँगी; मगर अपने संस्कारों को नहीं बदल सकती। मेरा मन दुर्बल है। मेरा सतीत्व कब का नष्ट हो चुका है। अन्य मूल्यवान् पदार्थों की तरह रूप और यौवन की रक्षा भी बलवान् हाथों से हो सकती है। मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम मुझे अपनी शरण में लेने पर तैयार हो ? तुम्हारा आश्रय पाकर तुम्हारे प्रेम की शक्ति से, मुझे विश्वास है, मैं जीवन के सारे प्रलोभनों का सामना कर सकती हूँ। मैं इस सोने के महल को ठुकरा दूँगी; लेकिन इसके बदले मुझे किसी हरे वृक्ष की छाँह तो मिलनी चाहिए। वह छाँह तुम मुझे दोगे ? अगर नहीं दे सकते, तो मुझे छोड़ दो। मैं अपने हाल में मगन हूँ। मैं वादा करती हूँ, सिंगारसिंह से मैं कोई सम्बन्ध न रखूँगी। वह मुझे घेरेगा, रोवेगा। सम्भव है, गुण्डों से मेरा अपमान कराये, आतंक दिखाये। लेकिन मैं सब कुछ झेल लूँगी, तुम्हारी खातिर से...'

आगे और कुछ न कहकर वह तृष्णा-भरी लेकिन उसके साथ ही निरपेक्ष नेत्रों से दयाकृष्ण की ओर देखने लगी, जैसे दूकानदार गाहक को बुलाता तो है पर साथ ही यह भी

दिखाना चाहता है कि उसे उसकी परवाह नहीं है। दयाकृष्ण क्या जवाब दे? संघर्षमय संसार में वह अभी केवल एक कदम टिका पाया है। इधर वह अंगुल-भर जगह भी उससे छिन गयी है। शायद जोर मारकर वह फिर वह स्थान पा जाय; लेकिन वहाँ बैठने की जगह नहीं। और एक दूसरे प्राणी को लेकर तो वह खड़ा भी नहीं रह सकता। अगर मान लिया जाय कि अदम्य-उद्योग से दोनों के लिए स्थान निकाल लेगा, तो आत्म-सम्मान को कहाँ ले जाय ? संसार क्या कहेगा ? लीला क्या फिर उसका मुँह देखना चाहेगी ? सिंगार से वह फिर आँखें मिला सकेगी ? यह भी छोड़ो। लीला अगर उसे पति समझती है, समझे। सिंगार अगर उससे जलता है तो जले, उसे इसकी परवाह नहीं। लेकिन अपने मन को क्या करे ? विश्वास उसके अन्दर आकर जाल में फँसे पक्षी की भाँति फड़फड़ा कर निकल भागता है। कुलीना अपने साथ विश्वास का वरदान लिये आती है। उसके साहचर्य में हमें कभी सन्देह नहीं होता। वहाँ सन्देह के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। कुत्सिता सन्देह का संस्कार लिये आती है। वहाँ विश्वास के लिए प्रत्यक्ष—अत्यन्त प्रत्यक्ष—प्रमाण की जरूरत है। उसने नम्रता से कहा—तुम जानती हो, मेरी क्या हालत है ?

'हाँ खूब जानती हूँ।'

'और उस हालत में तुम प्रसन्न रह सकोगी ?'

'तुम ऐसा प्रश्न क्यों करते हो कृष्ण ? मुझे दुःख होता है। तुम्हारे मन में जो सन्देह है, वह मैं जानती हूँ, समझती हूँ। मुझे भ्रम हुआ था कि तुमने भी मुझे जान लिया है, समझ लिया है। अब मालूम हुआ, मैं धोखे में थी !'

वह उठकर वहाँ से जाने लगी। दयाकृष्ण ने उसका हाथ पकड़ लिया और प्रार्थी-भाव से बोला—तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, माधुरी ! मैं सत्य कहता हूँ, ऐसी कोई बात नहीं है...

माधुरी ने खड़े-खड़े विरक्त मन से कहा—तुम झूठ बोल रहे हो, बिलकुल झूठ। तुम अब भी मन से यह स्वीकार नहीं कर रहे हो कि कोई स्त्री स्वेच्छा से रूप का व्यवसाय नहीं करती। पैसे के लिए अपनी लज्जा को उघाड़ना, तुम्हारी समझ में कुछ ऐसे आनन्द की बात है, जिसे वेश्या शौक से करती है। तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से बहुत दूर समझते हो। तुम इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि वह क्यों अपने प्रेम में स्थिर नहीं होती। तुम नहीं जानते, कि प्रेम के लिए उसके मन में कितनी व्याकुलता होती और अब वह सौभाग्य से उसे पा जाती है, तो किस तरह प्राणों की भाँति उसे संचित रखती है। खारे पानी के समुद्र में मीठे पानी का छोटा-सा पात्र कितना प्रिय होता है इसे वह क्या जाने, जो मीठे पानी के मटके उँडेलता रहता हो।

दयाकृष्ण कुछ ऐसे असमंजस में पड़ा हुआ था कि उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। उसके मन में जो शंका चिनगारी की भाँति छिपी हुई है, वह बाहर निकलकर कितनी भयंकर ज्वाला उत्पन्न कर देगी। उसने कपट का जो अभिनय किया था, प्रेम का जो स्वाँग रचा था, उसकी ग्लानि उसे और भी व्यथित कर रही थी।

सहसा माधुरी ने निष्ठुरता से पूछा—तुम यहाँ क्यों बैठे हो ?

दयाकृष्ण ने अपमान को पीकर कहा—मुझे सोचने के लिए कुछ समय दो माधुरी!

'क्या सोचने के लिए ?'

'अपना कर्तव्य क्या है?'

'मैंने अपना कर्तव्य सोचने के लिए तो तुमसे समय नहीं माँगा ! तुम अगर मेरे उद्धार की बात सोच रहे हो, तो उसे दिल से निकाल डालो। मैं भ्रष्टा हूँ और तुम साधुता के पुतले हो—जब तक यह भाव तुम्हारे अन्दर रहेगा, मैं तुमसे उसी तरह बात करूँगी जैसे औरों के साथ करती हूँ। अगर भ्रष्ट हूँ, तो जो लोग यहाँ अपना मुँह काला करने आते हैं, वे कुछ कम भ्रष्ट नहीं हैं। तुम जो एक मित्र की स्त्री पर दाँत लगाये हुए हो, तुम जो एक सरला अबला के साथ झूठे प्रेम का स्वाँग करते हो, तुम्हारे हाथों अगर मुझे स्वर्ग भी मिलता हो, तो उसे ठुकरा दूँ।

दयाकृष्ण ने लाल आँखें करके कहा—तुमने फिर वही आक्षेप किया ?

माधुरी तिलमिला उठी। उसकी रही-सही मृदुता भी ईर्ष्या के उमड़ते हुए प्रवाह में समा गयी। लीला पर आक्षेप भी असह्य है, इसलिए कि वह कुलवधू है। मैं वेश्या हूँ, इसलिए मेरे प्रेम का उपकार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता !

उसने अविचलित भाव से कहा—आक्षेप नहीं कर रही हूँ, सच्ची बात कह रही हूँ। तुम्हारे डर से बिल खोदने जा रही हूँ। तुम स्वीकार करो या न करो, तुम लीला पर मरते हो। तुम्हारी लीला तुम्हें मुबारक रहे। मैं अपने सिंगारसिंह ही में प्रसन्न हूँ, उद्धार की लालसा अब नहीं रही। पहले जाकर अपना उद्धार करो। अब से खबरदार कभी भूलकर भी यहाँ न आना, नहीं तो पछताओगे। तुम जैसे रँगे हुए पतितों का उद्धार नहीं करते। उद्धार वही कर सकते हैं, जो उद्धार के अभिमान को हृदय में आने ही नहीं देते। जहाँ प्रेम है, वहाँ किसी तरह का भेद नहीं रह सकता।

यह कहने के साथ ही वह उठकर बराबर वाले दूसरे कमरे में चली गयी, और अन्दर से द्वार बन्द कर लिया। दयाकृष्ण कुछ देर वहाँ मर्माहत-सा रहा, फिर धीरे-धीरे नीचे उतर गया, मानो देह में प्राण न हो।

4

दो दिन दयाकृष्ण घर से न निकला। माधुरी ने उसके साथ जो व्यवहार किया, इसकी उसे आशा न थी ! माधुरी को उससे प्रेम था, इसका उसे विश्वास था, लेकिन जो प्रेम इतना असहिष्णु हो, जो दूसरे के मनोभावों का जरा भी विचार न करे, जो मिथ्या कलंक आरोपण करने से भी संकोच न करे, वह उन्माद हो सकता है, प्रेम नहीं। उसने बहुत अच्छा किया कि माधुरी के कपट-जाल में न फँसा, नहीं तो उसकी न जाने क्या दुर्गति होती।

पर दूसरे क्षण उसके भाव बदल जाते और माधुरी के प्रति उसका मन कोमलता से भर जाता। अब वह अपनी अनुदारता पर, अपनी संकीर्णता पर पछताता ! उसे माधुरी पर सन्देह करने का कोई कारण न था। ऐसी दशा में ईर्ष्या स्वाभाविक है और वह ईर्ष्या ही क्या, जिसमें डंक न हो, विष न हो। माना, समाज उसकी निन्दा करता। यह भी मान लिया कि माधुरी सती भार्या न होती। कम-से-कम सिंगारसिंह तो उसके पंजे से निकल जाता। दयाकृष्ण के सिर से ऋण का भार तो कुछ हल्का हो जाता, लीला का जीवन तो सुखी हो जाता।

सहसा किसी ने द्वार खटखटाया। उसने द्वार खोला, तो सिंगारसिंह सामने खड़ा था। बाल बिखरे हुए, कुछ अस्त-व्यस्त।

दयाकृष्ण ने हाथ मिलाते हुए पूछा—क्या पाँव-पाँव ही आ रहे हो, मुझे क्यों न बुला लिया ?

सिंगार ने उसे चुभती हुई आँखों से देखकर कहा—मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ कि माधुरी कहाँ है ? अवश्य तुम्हारे घर में होगी।

'क्यों अपने घर पर होगी, मुझे क्या खबर ? मेरे घर क्यों आने लगी ?'

'इन बहानों से काम न चलेगा, समझ गये ? मैं कहता हूँ, मैं तुम्हारा खून पी जाऊँगा वरना ठीक-ठीक बता दो, वह कहाँ गयी ?'

'मैं बिलकुल कुछ नहीं जानता, तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ। मैं तो दो दिन से घर से निकला ही नहीं।'

'रात को मैं उसके पास था। सवेरे मुझे उसका यह पत्र मिला। मैं उसी वक्त दौड़ा हुआ उसके घर गया। वहाँ उसका पता न था। नौकरों से इतना मालूम हुआ, ताँगे पर बैठकर कहीं गयी है। कहाँ गयी है, यह कोई न बता सका। मुझे शक हुआ, यहाँ आयी होगी। जब तक तुम्हारे घर की तलाशी न ले लूँगा, मुझे चैन न आयेगा।'

उसने मकान का एक-एक कोना देखा, तख्त के नीचे, आलमारी के पीछे। तब निराश होकर बोला—बड़ी बेवफा और मक्कार औरत है। जरा इस खत को पढ़ो।

दोनों फर्श पर बैठ गये। दयाकृष्ण ने पत्र लेकर पढ़ना शुरू किया—

सरदार साहब ! मैं आज कुछ दिनों के लिए यहाँ से जा रही हूँ, कब लौटूँगी, कुछ नहीं जानती। कहाँ जा रही हूँ, यह भी नहीं जानती। जा इसलिए रही हूँ कि इस बेशर्मी और बेहयाई की जिन्दगी से मुझे घृणा हो रही है। और घृणा हो रही है उन लम्पटों से, जिनके कुत्सित विलास का मैं खिलौना थी और जिनमें तुम मुख्य हो। तुम महीनों से मुझ पर सोने और रेशम की वर्षा कर रहे हो; मगर मैं तुमसे पूछती हूँ, उससे लाख गुने सोने और दस लाख गुने रेशम पर भी तुम अपनी बहन या स्त्री को इस रूप के बाजार में बैठने दोगे ? कभी नहीं। उन देवियों में कोई ऐसी वस्तु है, जिसे तुम संसार भर की दौलत से भी मूल्यवान समझते हो। लेकिन जब तुम शराब के नशे में चूर, अपने एक-एक अंग में काम का उन्माद भरे आते थे, तो तुम्हें कभी ध्यान आता था कि तुम अपनी अमूल्य वस्तु को किस निर्दयता के साथ पैरों से कुचल रहे हो ? कभी ध्यान आता था कि अपनी कुल-देवियों को इस अवस्था में देखकर तुम्हें कितना दुःख होता ? कभी नहीं। यह उन गीदड़ों और गिद्धों की मनोवृत्ति है, जो किसी लाश को देखकर चारों ओर से जमा हो जाते हैं, और उसे नोच-नोचकर खाते हैं। यह समझ रक्खो, नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती। यदि वह ऐसा कर रही है, तो समझ लो कि उसके लिए और कोई आश्रय और कोई आधार नहीं है और पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरावस्था से अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगाकर उसे उसी दुरावस्था में मरते देखना चाहता है ! क्या वह नारी है ? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर में उसका स्थान नहीं है ? लेकिन तुम उसे उस मन्दिर में घुसने नहीं देते। उसके स्पर्श से मन्दिर की प्रतिमा भ्रष्ट हो जायगी। खैर, पुरुष-समाज जितना अत्याचार चाहे, कर ले। हम असहाय हैं, आत्माभिमान को भूल बैठी हैं लेकिन...

सहसा सिंगारसिंह ने उसके हाथ से वह पत्र छीन लिया और जेब में रखता हुआ

बोला—क्या बड़े गौर से पढ़ रहे हो, कोई नयी बात नहीं। सब कुछ वही है, जो तुमने सिखाया है। यही करने तो तुम उसके यहाँ जाते थे। मैं कहता हूँ, तुम्हें मुझसे इतनी जलन क्यों हो गयी ? मैंने तो तुम्हारे साथ कोई बुराई न की थी। इस साल-भर में मैंने माधुरी पर दस हजार से कम न फूँके होंगे। घर में जो कुछ मूल्यवान् था, वह मैने उसके चरणों पर चढ़ा दिया और आज उसे साहस हो रहा है कि वह हमारी कुल-देवियों की बराबरी करे ! यह सब तुम्हारा प्रसाद है। सत्तर चूहे खाके बिल्ली हज को चली ! कितनी बेवफा जात है। ऐसों को तो गोली मार दे। जिस पर सारा घर लुटा दिया, जिसके पीछे सारे शहर में बदनाम हुआ, यह आज मुझे उपदेश करने चली है ! जरूर इसमें कोई-न-कोई रहस्य है। कोई नया शिकार फँसा होगा; मगर मुझसे भाग कर जायगी कहाँ, ढूँढ़ न निकालूँ तो नाम नहीं। कम्बख्त कैसी प्रेम-भरी बातें करती थी कि मुझपर घड़ों नशा चढ़ जाता था। बस कोई नया शिकार फँस गया। यह बात न हो, मूँछ मुड़ा लूँ।

दयाकृष्ण उसके सफाचट चेहरे की ओर देखकर मुस्कराया—तुम्हारी मूँछें तो पहले ही मुड़ चुकी हैं।

इस हलके-से विनोद ने जैसे सिंगारसिंह के घाव पर मरहम रख दिया। वह बे-सरो-सामान घर, वह फटा फर्श, वे टूटी-फूटी चीज़ें देखकर उसे दयाकृष्ण पर दया आ गयी। चोट की तिलमिलाहट में वह जवाब देने के लिए ईंट-पत्थर ढूँढ़ रहा था; पर अब चोट ठण्डी पड़ गयी थी और दर्द घनीभूत हो रहा था। दर्द के साथ-यथा सौहार्द भी जाग रहा था। जब आग ही ठंडी हो गयी तो धुआँ कहाँ से आता ?

उसने पूछा—सच कहना, तुमसे भी कभी प्रेम की बातें करती थी ?

दयाकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा—मुझसे ? मैं तो खाली उसकी सूरत देखने जाता था।

'सूरत देखकर दिल पर काबू तो नहीं रहता।'

'यह तो अपनी-अपनी रुचि है।'

'है मोहनी, देखते ही कलेजे पर छुरी चल जाती है।'

'मेरे कलेजे पर तो कभी छुरी नहीं चली। यही इच्छा होती थी कि इसके पैरों पर गिर पड़ूँ।'

'इसी शायरी ने तो यह अनर्थ किया। तुम-जैसे बुद्धुओं को किसी देहातिन से शादी करके रहना चाहिए। चले थे वेश्या से प्रेम करने !'

एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—मगर है बेवफा, मक्कार !

'तुमने उससे वफा की आशा की, मुझे तो यही अफसोस है।'

'तुमने वह दिल ही नहीं पाया, तुमसे क्या कहूँ।'

एक मिनट के बाद उसने सहृदय-भाव से कहा—अपने पत्र में उसने बातें तो सच्ची लिखी हैं, चाहे कोई माने या न माने ? सौन्दर्य को बाजारू चीज समझना कुछ बहुत अच्छी बात तो नहीं है।

दयाकृष्ण ने पुचारा दिया—जब स्त्री अपना रूप बेचती है, तो उसके खरीदार भी निकल आते हैं। फिर यहाँ तो कितनी ही जातियाँ हैं, जिनका यही पेशा है।

'यह पेशा चला कैसे ?'

'स्त्रियों की दुर्बलता से।'

'नहीं, मैं समझता हूँ, बिस्मिल्लाह पुरुषों ने की होगी।'

इसके बाद एकाएक जेब से घड़ी निकालकर देखता हुआ बोला—ओहो ! दो बज गये और अभी मैं यहीं बैठा हूँ। आज शाम को मेरे यहाँ खाना खाना। जरा इस विषय पर बातें होंगी। अभी तो उसे ढूँढ़ निकालना है। वह है कहीं इसी शहर में। घरवालों से भी कुछ नहीं कहा। बुढ़िया नायका सिर पीट रही थी। उस्तादजी अपनी तकदीर को रो रहे थे। न-जाने कहाँ जाकर छिप रही।

उसने उठकर दयाकृष्ण से हाथ मिलाया और चला।

दयाकृष्ण ने पूछा—मेरी तरफ से तो तुम्हारा दिल साफ हो गया ?

सिंगार ने पीछे फिरकर कहा—हुआ भी और नहीं भी हुआ। और बाहर निकल गया।

5

सात-आठ दिन तक सिंगारसिंह ने सारा शहर छाना, पुलिस में रिपोर्ट की, समाचार-पत्रों में नोटिस छपायी, अपने आदमी दौड़ाये; लेकिन माधुरी का कुछ भी सुराग न मिला कि फिर महफिल गर्म होती। मित्रवृन्द सुबह-शाम हाजिरी देने आते और अपना-सा मुँह लेकर लौट जाते। सिंगार के पास उनके साथ गप-शप करने का समय न था।

गरमी के दिन, सजा हुआ कमरा भट्ठी बना हुआ था। खस की टट्टियाँ भी थीं, पंखा भी; लेकिन गरमी जैसे किसी के समझाने-बुझाने की परवाह नहीं करना चाहती, अपने दिल का बुखार निकालकर ही रहेगी।

सिंगारसिंह अपने भीतरवाले कमरे में बैठा हुआ पेग-पर-पेग चढ़ा रहा था; पर अन्दर की आग न शान्त होती थी। इस आग ने ऊपर की घास-फूस को जलाकर भस्म कर दिया था और अब अन्तस्तल की जड़ विरक्ति और अचल विचार को द्रवित करके बड़े वेग से ऊपर फेंक रही थी। माधुरी की बेवफाई ने उसके आमोदी हृदय को इतना आहत कर दिया था कि अब अपना जीवन ही बेकार-सा मालूम होता था। माधुरी उसके जीवन में सबसे सत्य वस्तु थी, सत्य भी और सुन्दर भी। उसके जीवन की सारी रेखाएँ इसी बिन्दु पर आकर जमा हो जाती थीं। वह बिन्दु एकाएक पानी के बुलबुले की भाँति मिट गया और अब वे सारी रेखाएँ, वे सारी भावनाएँ, वे सारी मृदु स्मृतियाँ उन झल्लायी हुई मधु-मक्खियों की तरह भनभनाती फिरती थीं, जिनका, छत्ता जला दिया गया हो। जब माधुरी ने कपट व्यवहार किया तो और किससे कोई आशा की जाय ? इस जीवन ही में क्या है ? आम में रस ही न रहा, तो गुठली किस काम की ?

लीला कई दिनों से महफिल में सन्नाटा देखकर चकित हो रही थी। उसने कई महीनों से घर के किसी विषय में बोलना छोड़ दिया था। बाहर से जो आदेश मिलता था, उसे बिना कुछ कहे-सुने पूरा करना ही उसके जीवन का क्रम था। वीतराग-सी हो गयी थी। न किसी शौक से वास्ता था, न सिंगार से।

मगर इस कई दिन के सन्नाटे ने उसके उदास मन को भी चिन्तित कर दिया। चाहती थी कि कुछ पूछे; लेकिन पूछे कैसे ? मान जो टूट जाता। मान ही किस बात का ? पान तब करे, जब कोई उसकी बात पूछता हो। मान-अपमान से प्रयोजन

नहीं। नारी ही क्यों हुई ?

उसने धीरे-धीरे कमरे का पर्दा हटाकर अन्दर झाँका। देखा, सिंगारसिंह सोफा पर चुपचाप लेटा हुआ है, जैसे कोई पक्षी साँझ के सन्नाटे में परों में मुँह छिपाये बैठा हो।

समीप आकर बोली—मेरे मुँह पर ताला डाल दिया गया है; लेकिन क्या करूँ, बिना बोले रहा नहीं जाता। कई दिन से सरकार की महफिल में सन्नाटा क्यों है ? तबीयत तो अच्छी है।

सिंगार ने उसकी ओर आँखें उठायीं। उनमें व्यथा भरी हुई थी। कहा—तुम अपने मैके क्यों नहीं चली जातीं लीला ?

'आपकी जो आज्ञा; पर यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर न था।'

'वह कोई बात नहीं। मैं बिलकुल अच्छा हूँ। ऐसे बेहयाओं को मौत भी नहीं आती। अब इस जीवन से जी भर गया। कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहता हूँ। तुम अपने घर चली जाओ, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।'

'भला आप को मेरी इतनी चिन्ता तो है।'

'अपने साथ जो कुछ ले जाना चाहती हो, ले जाओ।'

'मैंने इस घर की चीज़ों को अपना समझना छोड़ दिया है।'

'मैं नाराज होकर नहीं कह रहा हूँ, लीला न-जाने कब लौटूँ, तुम यहाँ अकेले कैसे रहोगी ?'

कई महीने के बाद लीला ने पति के आँखों में स्नेह की झलक देखी।

'मेरा विवाह तो इस घर की सम्पत्ति से नहीं हुआ है, तुमसे हुआ है। जहाँ तुम रहोगे वहीं मैं भी रहूँगी।'

'मेरे साथ तो अब तक तुम्हें रोना ही पड़ा।'

लीला ने देखा, सिंगार की आँखों में आँसू की एक बूँद नीले आकाश में चन्द्रमा की तरह गिरने-गिरने को ही रही थी। उसका मन भी पुलकित हो उठा। महीनों की क्षुधाग्नि में जलने के बाद अन्न का एक दाना पाकर वह उसे कैसे ठुकरा दे ? पेट नहीं भरेगा, कुछ भी नहीं होगा, लेकिन उस दाने को ठुकराना क्या उसके बस की बात थी ?

उसने बिलकुल पास आकर, अपने अंचल को उसके समीप ले जाकर कहा—मैं तो तुम्हारी हो गयी। हँसाओगे, हँसूँगी, रुलाओगे, रोऊँगी, रखोगे तो रहूँगी, निकालोगे तो भी रहूँगी, मेरा घर तुम हो, धर्म तुम हो, अच्छी हूँ तो तुम्हारी हूँ, बुरी हूँ तो तुम्हारी हूँ।

और दूसरे क्षण सिंगार के विशाल सीने पर उसका सिर रखा हुआ था और उसके हाथ थे लीला की कमर में। दोनों के मुख पर हर्ष की लाली थी, आँखों में हर्ष के आँसू और मन में एक ऐसा तूफान, जो उन्हें न जाने कहाँ उड़ा ले जाएगा।

एक क्षण के बाद सिंगार ने कहा—तुमने कुछ सुना, माधुरी भाग गयी और पगला दयाकृष्ण उसकी खोज में निकला !

लीला को विश्वास न आया—दयाकृष्ण !

'हाँ जी, जिस दिन वह भागी है, उसके दूसरे ही दिन वह भी चल दिया।'

'वह तो ऐसा नहीं है। और माधुरी क्यों भागी ?'

'दोनों में प्रेम हो गया था। माधुरी उसके साथ रहना चाहती थी। वह राजी न हुआ।'

लीला ने एक लम्बी साँस ली। दयाकृष्ण के वे शब्द याद आये, जो उसने कई महीने पहले कहे थे। दयाकृष्ण की वे याचना-भरी आँखें उसके मन को मसोसने लगीं।

सहसा किसी ने बड़े जोर से द्वार खोला और धड़धड़ाता हुआ भीतर वाले कमरे के द्वार पर आ गया।

सिंगार ने चकित होकर कहा—'अरे ! तुम्हारी यह क्या हालत है, कृष्णा ? किधर से आ रहे हो ?'

दयाकृष्ण की आँखें लाल थीं, सिर और मुँह पर गर्द जमी हुई, चेहरे पर घबराहट, जैसे कोई दीवाना हो।

उसने चिल्लाकर कहा—तुमने सुना; माधुरी इस संसार में नहीं रही !

और दोनों हाथों से सिर पीट-पीटकर रोने लगे, मानो हृदय और प्राणों को आँखों से बहा देगा।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'चांद' फरवरी, 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

रसिक सम्पादक

'नवरस' के सम्पादक पं० चोखेलाल शर्मा की धर्मपत्नी का जब से देहान्त हुआ है, आपको स्त्रियों से विशेष अनुराग हो गया है और रसिकता की मात्रा भी कुछ बढ़ गयी है। पुरुषों के अच्छे-अच्छे लेख रद्दी में डाल दिये जाते हैं; पर देवियों के लेख कैसे भी हों, तुरन्त स्वीकार कर लिये जाते हैं और बहुधा लेख की रसीद के साथ लेख की प्रशंसा कुछ इन शब्दों में की जाती है—आपका लेख पढ़कर दिल थामकर रह गया, अतीत जीवन आँखों के सामने मूर्तिमान हो गया, अथवा आपके भाव साहित्य-सागर के उज्जवल रत्न हैं, जिनकी चमक कभी कम न होगी। और कविताएँ तो हृदय की हिलोरें, विश्व-वीणा की अमर तान, अनन्त की मधुर वेदना, निशा का नीरव गान होती थीं। प्रशंसा के साथ दर्शन की उत्कट अभिलाषा भी प्रकट की जाती थी। यदि आप कभी इधर से गुजरें तो मुझे न भूलिएगा। जिसने ऐसी कविता की सृष्टि की है, उसके दर्शन का सौभाग्य मुझे मिला, तो अपने को धन्य मानूँगा।

लेखिकाएँ अनुरागमय प्रोत्साहन से भरे हुए पत्र पाकर फूली न समातीं। जो लेख अभागे भिक्षुक की भाँति कितने ही पत्र-पत्रिकाओं के द्वार से निराश लौट आये थे, उनका यहाँ इतना आदर ! पहली बार ही ऐसा सम्पादक जन्मा है, जो गुणों का पारखी है। और सभी सम्पादक अहम्मन्य है, अपने आगे किसी को समझते ही नहीं हैं। जरा-सी सम्पादकी क्या मिल गयी मानो कोई राज्य मिल गया। सम्पादकों को कहीं सरकारी पद मिल जाय तो अँधेर मचा दें। वह तो कहो कि सरकार इन्हें पूछती नहीं। उसने बहुत अच्छा किया जो आर्डिनेन्स पास कर दिये। और स्त्रियों से द्वेष करो। यह उसी का दंड है। यह भी सम्पादक ही हैं, कोई घास नहीं छीलते और सम्पादक भी एक जगत्-विख्यात पत्र के। 'नवरस' सब पत्रों में राजा है।

चोखेलालजी के पत्र की ग्राहक-संख्या बड़े वेग से बढ़ने लगी। हर डाक से धन्यवादों की एक बाढ़-सी आ जाती, और लेखिकाओं में उनकी पूजा होने लगी। ब्याह, गौना, मुँडन, छेदन, जन्म, मरण के समाचार आने लगे। कोई आशीर्वाद माँगती, कोई उनके मुख से सांत्वना के दो शब्द सुनने की अभिलाषा करती, कोई उनसे घरेलू संकटों में परामर्श पूछती। और महीने में दस-पाँच महिलाएँ उन्हें दर्शन भी दे जातीं। शर्माजी उनकी अवाई का तार या पत्र पाते ही स्टेशन पर जाकर उनका स्वागत करते, बड़े आग्रह से उन्हें एकाध दिन ठहराते, उनकी खूब खातिर करते। सिनेमा के फ्री पास मिले हुए थे ही खूब सिनेमा दिखाते। महिलाएँ उनके सद्भाव से मुग्ध होकर विदा होतीं। मशहूर तो यहाँ तक कि शर्माजी का कई लेखिकाओं से बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है; लेकिन इस विषय में हम निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते। हम तो इतना ही जानते हैं कि जो देवियाँ एकबार यहाँ आ जातीं, वह शर्माजी की अनन्य भक्त हो जातीं। बेचारा साहित्य की कुटिया का तपस्वी है। अपने विधुर जीवन की निराशाओं को अपने अन्तःस्तल में संचित रखकर मूक वेदना में प्रेम-माधुर्य का रसपान कर रहा है। सम्पादकजी के जीवन में जो कमी आ गई थी, उसकी कुछ पूर्ति करना महिलाओं ने अपना धर्म-सा मान लिया। उनके भरे हुए भंडार में से अगर एक क्षुधित प्राणी को थोड़े-सी मिठाई दी जा सके, तो उससे भडार की शोभा है। कोई देवी पारसल से अचार भेज देती, कोई लड्डू; एक ने पूजा का ऊनी आसन अपने हाथों बनाकर भेज दिया। एक देवी महीने में एक बार आकर उनके कपड़ों की मरम्मत कर देती थीं। दूसरी देवी महीने में दो-तीन बार आकर उन्हें अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर खिला जाती थीं। अब वह किसी एक के न होकर सबके हो गये थे। स्त्रियों के अधिकारों का उनसे बड़ा रक्षक शायद ही कोई मिले। पुरुषों से तो शर्माजी को हमेशा तीव्र आलोचना ही मिलती थी। श्रद्धामय सहानुभूति का आनन्द तो उन्होंने स्त्रियों ही में पाया।

एक दिन सम्पादकजी को एक ऐसी कविता मिली, जिसमें लेखिका ने अपने उग्र प्रेम का रूप दिखाया था। अन्य सम्पादक उसे अश्लील कहते, लेकिन चोखेलाल इधर बहुत उदार हो गये थे। कविता इतने सुन्दर अक्षरों में लिखी थी, लेखिका का नाम इतना मोहक था कि सम्पादकजी के सामने उसका एक कल्पना-चित्र सा आकर खड़ा हो गया। भावुक प्रकृति, कोमल गात, याचना-भरे नेत्र, बिम्ब-अधर, चंपई रंग, अंग-अंग में चपलता भरी हुई, पहले गोंद की तरह शुष्क और कठोर, आर्द्र होते ही चिपक जाने वाली। उन्होंने कविता को दो-तीन बार पढ़ा और हर बार उनके मन में सनसनी दौड़ी—

क्या तुम समझते हो मुझे छोड़कर भाग जाओगे ?
भाग सकोगे ?

मैं तुम्हारे गले में हाथ डाल दूँगी;
मैं तुम्हारी कमर में कर-पाश कस दूँगी;
मैं तुम्हारा पाँव पकड़कर रोक लूँगी;
तब उस पर सिर रख दूँगी।
क्या तुम समझते हो, मुझे छोड़कर भाग जाओगे ?
छोड़ सकोगे ?
मैं तुम्हारे अधरों पर अपने कपोल चिपका दूँगी;

उस प्याले में जो मादक सुधा है—
उसे पीकर तुम मस्त हो जाओगे।
और मेरे पैरों पर सिर रख दोगे।
क्या तुम समझते हो मुझे छोड़कर भाग जाओगे।

—'कामाक्षी'

शर्माजी को हरबार इस कविता में एक नया रस मिलता था। उन्होंने उसी क्षण कामाक्षी देवी के नाम यह पत्र लिखा—

'आपकी कविता पढ़कर मैं नहीं कह सकता, मेरे चित्त की क्या दशा हुई। हृदय में एक ऐसी तृष्णा जाग उठी है, जो मुझे भस्म किये डालती है। नहीं जानता, इसे कैसे शान्त करूँ ? बस, यही आशा है कि इसको शीतल करने वाली सुधा भी वहीं मिलेगी, जहाँ से यह तृष्णा मिली है। मन मतंग की भाँति जंजीर तुड़ाकर भाग जाना चाहता है। जिस हृदय से यह भाव निकले हैं, उसमें प्रेम का कितना अक्षय भंडार है. उस प्रेम का, जो अपने को समर्पित कर देने में ही आनन्द पाता है। मैं आपसे सत्य कहता हूँ, ऐसी कविता मैंने आज तक नहीं पढ़ी थी और इसने मेरे अन्दर जो तूफान उठा दिया है, वह मेरी विधुर शान्ति को छिन्न-भिन्न किये डालता है। आपने एक गरीब की फूस की झोपड़ी में आग लगा दी है; लेकिन मन यह स्वीकार नहीं करता कि यह केवल विनोद-क्रीड़ा है। इन शब्दों में मुझे एक ऐसा हृदय छिपा हुआ ज्ञात होता है, जिसमे प्रेम की वेदना सही है, जो लालसा की आग में तपा है। मैं इसे अपना परम सौभाग्य समझूँगा, यदि आपके दर्शनों का सौभाग्य पा सका। यह कुटिया अनुराग की भेंट लिये आपका स्वागत करने को तड़प रही है।'

सप्रेम

तीसरे ही दिन उत्तर आ गया। कामाक्षी ने बड़े भावुकता-पूर्ण शब्दों में कृतज्ञता प्रकट की थी और अपने आने की तिथि बताई थी।

2

आज कामाक्षी का शुभागमन है।

शर्माजी ने प्रातःकाल हजामत बनवाई, साबुन और बेसन से स्नान किया, महीन खद्दर की धोती, कोकटी का ढीला चुन्नटदार कुरता, मलाई के रंग की रेशमी चादर। इस ठाठ से आकर कार्यालय में बैठे, तो सारा दफ्तर गमक उठा। दफ्तर की भी खूब सफाई करा दी गई थी। बरामदे में गमले रखवा दिये गये थे। मेज पर गुलदस्ते सजा दिये गये थे। गाड़ी नौ बजे आती है, अभी साढ़े आठ हैं, साढ़े नौ बजे तक यहाँ आ जायेगी। इस परेशानी में कोई काम नहीं हो रहा है। बार-बार घड़ी की ओर ताकते हैं, फिर आईने में अपनी सूरत देखकर कमरे में टहलने लगते हैं। मूँछों में दो-चार बाल पके हुए नजर आ रहे हैं, उन्हें उखाड़ फेंकने का इस समय कोई साधन नहीं है। कोई हरज नहीं। इससे रंग कुछ और ज्यादा जमेगा। प्रेम जब श्रद्धा के साथ आता है तब वह ऐसा मेहमान हो जाता है, जो उपहार लेकर आता हो। युवकों का प्रेम खर्चीली वस्तु है, लेकिन महात्माओं या महात्मापन के समीप पहुँचे हुए लोगों को प्रेम—उलटे और कुछ ले आता है। युवक, जो रंग बहुमूल्य उपहारों से जमाता है, यह महात्मा या अर्द्ध-महात्मा लोग केवल आशीर्वाद से जमा लेते हैं।

ठीक साढ़े नौ बजे चपरासी ने आकर एक कार्ड दिया। लिखा था—'कामाक्षी।'

शर्माजी ने उसे देवीजी को लाने की अनुमति देकर एक बार फिर आईने में अपनी सूरत देखी और एक मोटी-सी पुस्तक पढ़ने लगे, मानो स्वाध्याय में तन्मय हो गये हैं। एक क्षण में देवीजी ने कमरे में कदम रखा। शर्माजी को उनके आने की खबर न हुई।

देवीजी डरते-डरते समीप आ गयीं, तब शर्माजी ने चौंककर सिर उठाया; मानो समाधि से जाग पड़े हों, और खड़े होकर देवीजी का स्वागत किया; मगर यह वह मूर्ति न थी, जिसकी उन्होंने कल्पना कर रखी थी।

एक काली, मोटी, अधेड़, चंचल औरत थी, जो शर्माजी को इस तरह घूर रही थी, मानों उन्हें पी जायगी, शर्माजी का सारा उत्साह, सारा अनुराग ठंडा पड़ गया। वह सारी मन की मिठाइयाँ, जो वह महीनों से खा रहे थे, पेट में शूल की भाँति चुभने लगीं। कुछ कहते-सुनते न बना। केवल इतना बोले—सम्पादकों का जीवन बिलकुल पशुओं का जीवन है। सिर उठाने का समय नहीं मिलता। उस पर कार्याधिक्य से इधर मेरा स्वास्थ्य भी बिगड़ रहा है। रात ही से सिर-दर्द से बेचैन हूँ। आपकी क्या खातिर करूँ?

कामाक्षी देवी के हाथ में एक बड़ा-सा पुलिंदा था। उसे मेज पर पटककर, रूमाल से मुँह पोंछकर मृदु-स्वर में बोलीं—यह आपने तो बड़ी बुरी खबर सुनाई। मैं तो एक सहेली से मिलने जा रही थी। सोचा, रास्ते में आपके दर्शन करती चलूँ; लेकिन जब आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, तो मुझे यहाँ कुछ दिन रहकर आपका स्वास्थ्य सुधारना पड़ेगा। मैं आपके सम्पादन-कार्य में भी आपकी मदद करूँगी। आपका स्वास्थ्य स्त्री जाति के लिए बड़े महत्त्व की वस्तु है। आपको इस दशा में छोड़कर मैं अब जा नहीं सकती।

शर्माजी को ऐसा जान पड़ा, जैसे उनका रक्त-प्रवाह रुक गया है; नाड़ी छूटी जा रही है। उस चुड़ैल के साथ रहकर तो जीवन ही नरक हो जायेगा। चली हैं कविता करने, और कविता भी कैसी ? अश्लीलता में डूबी हुई। अश्लील तो है ही। बिलकुल सड़ी हुई, गन्दी। एक सुन्दरी युवती की कलम से वह कविता काम-बाण थी। इस डाइन की कलम से तो वह परनाले का कीचड़ है। मैं कहता हूँ, इसे ऐसी कविता लिखने का अधिकार ही क्या है? यह क्यों ऐसी कविता लिखती है ? क्यों नहीं किसी कोने में बैठकर राम-भजन करती ? आप पूछती हैं—मुझे छोड़कर भाग सकोगे ? मैं कहता हूँ, आपके पास कोई आयेगा ही क्यों? दूर से ही देखकर न लम्बा हो जायेगा। कविता क्या है, जिसका न सिर न पैर, मात्राओं तक का इसे ज्ञान नहीं है ! और कविता करती है ! कविता अगर इस काया में निवास कर सकती है, तो फिर गधा भी गा सकता है। ऊँट भी नाच सकता है ! इस राँड को इतना भी नहीं मालूम कि कविता करने के लिए रूप और यौवन चाहिए, नज़ाकत चाहिए, नफासत चाहिए। भूतनी-सी तो आपकी सूरत है, रात को कोई देख ले, तो डर जाय और आप उत्तेजक कविता लिखती हैं। कोई कितना ही क्षुधातुर हो तो क्या गोबर खा लेगा ? और चुड़ैल इतना बड़ा पोथा लेती आई है। इसमें भी वही परनाले का गन्दा कीचड़ होगा !

उस मोटी पुस्तक की ओर देखते हुए बोले—नहीं-नहीं, मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहता। वह ऐसी कोई बात नहीं है। दो-चार दिन के विश्राम से ठीक हो जायेगा ? आपकी सहेली आपकी प्रतीक्षा करती होगी।

'आप तो महाशयजी संकोच कर रहे हैं। मैं दस-पाँच दिन के बाद भी चली जाऊँगी, तो कोई हानि न होगी।'

'इसकी कोई आवश्यकता नहीं है देवीजी।'

आपके मुँह पर तो आपकी प्रशंसा करना खुशामद होगी, पर जो सज्जनता मैंने आप में देखी, वह कहीं नहीं पाई। आप पहले महानुभाव हैं, जिन्होंने मेरी रचना का आदर किया, नहीं तो मैं निराश ही हो चुकी थी। आपके प्रोत्साहन का यह शुभ फल है कि मैंने इतनी कविताएँ रच डालीं। आप इनमें से जो चाहें रख लें। मैंने एक ड्रामा भी लिखना शुरू कर दिया है। उसे भी शीघ्र ही आपकी सेवा में भेजूँगी। कहिए तो दो-चार कविताएँ सुनाऊँ ? ऐसा अवसर मुझे फिर कब मिलेगा ! यह तो नहीं जानती कि कविताएँ कैसी हैं, पर आप सुनकर प्रसन्न होंगे। बिलकुल उसी रंग की हैं।'

उसने अनुमति की प्रतीक्षा न की। तुरन्त पोथा खोलकर एक कविता सुनाने लगी। शर्माजी को ऐसा मालूम होने लगा, जैसे कोई भिगो-भिगोकर जूते मार रहा है। कई बार उन्हें मतली आ गयी, जैसे एक हजार गधे कानों के पास खड़े अपना स्वर अलाप रहे हों। कामाक्षी के स्वर में कोयल का माधुर्य था; पर शर्माजी को इस समय वह भी अप्रिय लग रहा था। सिर में सचमुच दर्द होने लगा। वह गधी टलेगी भी, या यों ही बैठी सिर खाती रहेगी? इसे मेरे चेहरे से भी मेरे मनोभावों का ज्ञान नहीं हो रहा है। उस पर आप कविता करने वाली हैं ! इस मुँह से तो महादेवी या सुभद्राकुमारी की कविताएँ भी घृणा ही उत्पन्न करेंगी।

आखिर न रहा गया। बोले—आपकी रचनाओं का क्या कहना, आप यह संग्रह यहीं छोड़ जायँ। मैं अवकाश में पढ़ूँगा। इस समय तो बहुत-सा काम है।

कामाक्षी ने दयार्द्र होकर कहा—आप इतना दुर्बल स्वास्थ्य होने पर भी इतने व्यस्त रहते हैं ? मुझे आप पर दया आती है।

'आपकी कृपा है।'

'आपको कल अवकाश रहेगा ? जरा मैं अपना ड्रामा सुनाना चाहती थी ?'

'खेद है, कल मुझे जरा प्रयाग जाना है।'

'तो मैं भी आपके साथ चलूँ ? गाड़ी में सुनाती चलूँगी।'

'कुछ निश्चय नहीं, किस गाड़ी से जाऊँ।'

'आप लौटेंगे कब तक ?'

'यह भी निश्चय नहीं।'

और टेलीफोन पर जाकर बोले—हल्लो, नं० 77।

कामाक्षी ने आध घन्टे तक उनका इन्तजार किया; मगर शर्माजी एक सज्जन से ऐसी महत्त्व की बातें कर रहे थे, जिसका अन्त ही होने न पाता था।

निराश होकर कामाक्षी देवी विदा हुईं और शीघ्र ही फिर आने का वादा कर गयीं। शर्माजी ने आराम की साँस ली और उस पोथे को उठाकर रद्दी में डाल दिया, और जले हुए दिल से आप-ही-आप कहा—ईश्वर न करे कि फिर तुम्हारे दर्शन हों। कितनी बेशर्म है, कुलटा कहीं की। आज इसने सारा मजा किरकिरा कर दिया।

फिर मैनेजर को बुलाकर कहा—कामाक्षी की कविता नहीं जायगी।

मैनेजर ने स्तम्भित होकर कहा—फार्म तो मशीन पर है।

'कोई हरज नहीं। फार्म उतार लीजिये।'

'बड़ी देर होगी।'

'होने दीजिये। वह कविता नहीं जायगी।'

[हिन्दी कहानी। हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'जागरण', मार्च, 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

बालक

गंगू को लोग ब्राह्मण कहते हैं और वह अपने को ब्राह्मण समझता भी है। मेरे सईस और खिदमतगार मुझे दूर से सलाम करते हैं। गंगू मुझे कभी सलाम नहीं करता। वह शायद मुझसे पालागन की आशा रखता है। मेरा जूठा गिलास कभी हाथ से नहीं छूता और न मेरी कभी इतनी हिम्मत हुई कि उससे पंखा झलने को कहूँ। जब मैं पसीने से तर होता हूँ और वहाँ कोई दूसरा आदमी नहीं होता, तो गंगू आप-ही-आप पंखा उठा लेता है; लेकिन उसकी मुद्रा से यह भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि मुझ पर कोई एहसान कर रहा है और मैं भी न-जाने क्यों फौरन ही उसके हाथ से पंखा छीन लेता हूँ। उग्र स्वभाव का मनुष्य है। किसी की बात नहीं सह सकता। ऐसे बहुत कम आदमी होंगे, जिनसे उसकी मित्रता हो; पर सईस और खिदमतगार के साथ बैठना शायद वह अपमानजनक समझता है। मैंने उसे किसी से मिलते-जुलते नहीं देखा। आश्चर्य यह है कि उसे भंग-बूटी से प्रेम नहीं, जो इस श्रेणी के मनुष्यों में एक असाधारण गुण है। मैंने उसे कभी पूजा-पाठ करते या नदी में स्नान करते नहीं देखा। बिलकुल निरक्षर है; लेकिन फिर भी वह ब्राह्मण है और चाहता है कि दुनिया उसकी प्रतिष्ठा तथा सेवा करे और क्यों न चाहे ? जब पुरुखाओं की पैदा की हुई सम्पत्ति पर आज भी लोग अधिकार जमाये हुए हैं और उसी शान से, मानो खुद पैदा किये हों, तो वह क्यों उस प्रतिष्ठा और सम्मान को त्याग दे, जो उसके पुरुखाओं ने संचय किया था ? यह उसकी बपौती है।

मेरा स्वभाव कुछ इस तरह का है कि अपने नौकरों से बहुत कम बोलता हूँ। मैं चाहता हूँ, जब तक मैं खुद न बुलाऊँ, कोई मेरे पास न आये। मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि जरा-सी बातों के लिए नौकरों को आवाज देता फिरूँ। मुझे अपने हाथ से सुराही से पानी उँड़ेल लेना, अपना लैम्प जला लेना, अपने जूते पहन लेना या आलमारी से कोई किताब निकाल लेना, इससे कहीं ज्यादा सरल मालूम होता है कि हींगन और मैकू को पुकारूँ। इससे मुझे अपनी स्वेच्छा और आत्म विश्वास का बोध होता है। नौकर भी मेरे स्वभाव से परिचित हो गये हैं और बिना जरूरत मेरे पास बहुत कम आते हैं। इसलिए एक दिन जब प्रातःकाल गंगू मेरे सामने आकर खड़ा हो गया तो मुझे बहुत बुरा लगा। ये लोग जब आते हैं, तो पेशगी हिसाब में कुछ माँगने के लिए या किसी दूसरे नौकर की शिकायत करने के लिए। मुझे ये दोनों ही बातें अत्यंत अप्रिय हैं। मैं पहली तारीख को हर एक का वेतन चुका देता हूँ और बीच में जब कोई कुछ माँगता है, तो क्रोध आ जाता है; कौन दो-दो, चार-चार रुपये का हिसाब रखता फिरे। फिर जब किसी को महीने-भर की पूरी

मजूरी मिल गयी, तो उसे क्या हक है कि उसे पन्द्रह दिन में खर्च कर दे और ऋण या पेशगी की शरण ले, और शिकायतों से तो मुझे घृणा है। मैं शिकायतों को दुर्बलता का प्रमाण समझता हूँ, या ठकुरसुहाती की क्षुद्र चेष्टा।

मैंने माथा सिकोड़कर कहा—क्या बात है, मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं ?

गंगू के तीखे अभिमानी मुख पर आज कुछ ऐसी नम्रता, कुछ ऐसी याचना, कुछ ऐसा संकोच था कि मैं चकित हो गया। ऐसा जान पड़ा, वह कुछ जवाब देना चाहता है; मगर शब्द नहीं मिल रहे हैं।

मैंने जरा नम्र होकर कहा—आखिर क्या बात है, कहते क्यों नहीं ? तुम जानते हो, यह मेरे टहलने का समय है। मुझे देर हो रही है।

गंगू ने निराशा भरे स्वर में कहा—तो आप हवा खाने जायँ, मैं फिर आ जाऊँगा।

यह अवस्था और भी चिन्ताजनक थी। इस जल्दी गें तो वह एक क्षण में अपना वृत्तान्त कह सुनायेगा। वह जानता है कि मुझे ज्यादा अवकाश नहीं है। दूसरे अवसर पर तो दुष्ट घण्टों रोयेगा। मेरे कुछ लिखने-पढ़ने को तो वह शायद कुछ काम समझता हो; लेकिन विचार को, जो मेरे लिए सबसे कठिन साधना है, वह मेरे विश्राम का समय समझता है। वह उसी वक्त आकर मेरे सिर पर सवार हो जायगा।

मैंने निर्दयता के साथ कहा—क्या कुछ पेशगी माँगने आये हो ? मैं पेशगी नहीं देता।

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी पेशगी नहीं माँगा।'

'तो क्या किसी की शिकायत करना चाहते हो ? मुझे शिकायतों से घृणा है ?'

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी किसी की शिकायत नहीं की ?'

गंगू ने अपना दिल मजबूत किया। उसकी आकृति से स्पष्ट झलक रहा था, मानो वह कोई छलाँग मारने के लिए अपनी सारी शक्तियों को एकत्र कर रहा हो। और लड़खड़ाती हुई आवाज में बोला—मुझे आप छुट्टी दे दें। मैं आपकी नौकरी अब न कर सकूँगा।

यह इस तरह का पहला प्रस्ताव था, जो मेरे कानों में पड़ा। मेरे आत्माभिमान को चोट लगी। मैं जब अपने को मनुष्यता का पुतला समझता हूँ, अपने नौकरों को कभी कटु-वचन नहीं कहता, अपने स्वामित्व को यथासाध्य म्यान में रखने की चेष्टा करता हूँ, तब मैं इस प्रस्ताव पर क्यों न विस्मित हो जाता ! कठोर स्वर में बोला—क्यों, क्या शिकायत है ?

आपने तो हुजूर, जैसा अच्छा स्वभाव पाया है, वैसा क्या कोई पायेगा; लेकिन बात ऐसी आ पड़ी है कि अब मैं आपके यहाँ नहीं रह सकता। ऐसा न हो कि पीछे से कोई बात हो जाय, तो आपकी बदनामी हो। मैं नहीं चाहता कि मेरी वजह से आपकी आबरू में बट्टा लगे।

मेरे दिल में उलझन पैदा हुई। जिज्ञासा की अग्नि प्रचण्ड हो गयी। आत्मसमर्पण के भाव से बरामदे में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठकर बोला—तुम तो पहेलियाँ बुझवा रहे हो। साफ-साफ क्यों नहीं कहते, क्या मामला है ?

गंगू ने बड़ी नम्रता से कहा—बात यह है कि वह स्त्री, जो अभी विधवा-आश्रम से निकाल दी गयी है, वह गोमती देवी...

वह चुप हो गया। मैंने अधीर होकर कहा—हाँ, निकाल दी गयी है, तो फिर ? तुम्हारी

नौकरी से उससे क्या सम्बन्ध ?

गंगू ने जैसे अपने सिर का भारी बोझ जमीन पर पटक दिया—

'मैं उससे ब्याह करना चाहता हूँ बाबूजी !'

मैं विस्मय से उसका मुँह ताकने लगा। यह पुराने विचारों का पोंगा ब्राह्मण जिसे नयी सभ्यता की हवा तक न लगी, उस कुलटा से विवाह करने जा रहा है, जिसे कोई भला आदमी अपने घर में कदम भी न रखने देगा। गोमती ने मुहल्ले के शान्त वातावरण में थोड़ी-सी हलचल पैदा कर दी। कई साल पहले वह विधवाश्रम में आयी थी। तीन बार आश्रम के कर्मचारियों ने उसका विवाह कर दिया था, पर हर बार वह महीने-पन्द्रह दिन के बाद भाग आयी थी। यहाँ तक कि आश्रम के मन्त्री ने अब की बार उसे आश्रम से निकाल दिया था। तब से वह इसी मुहल्ले में एक कोठरी लेकर रहती थी और सारे मुहल्ले के शोहदों के लिए मनोरंजन का केन्द्र बनी हुई थी।

मुझे गंगू की सरलता पर क्रोध भी आया और दया भी। इस गधे को सारी दुनिया में कोई स्त्री ही न मिलती थी, जो इससे ब्याह करने जा रहा है। जब वह तीन बार पतियों के पास से भाग आयी, तो इसके पास कितने दिन रहेगी ? कोई गाँठ का पूरा आदमी होता, तो एक बात भी थी। शायद साल-छः महीने टिक जाती। यह तो निपट आँख का अन्धा है। एक सप्ताह भी तो निबाह न होगा।

मैंने चेतावनी के भाव से पूछा—तुम्हें इस स्त्री की जीवन-कथा मालूम है ?

गंगू ने आँखों-देखी बात की तरह कहा—सब झूठ है सरकार, लोगों ने हकनाहक उसको बदनाम कर दिया है।

'क्या कहते हो, वह तीन बार अपने पतियों के पास से नहीं भाग आयी ?'

'उन लोगों ने उसे निकाल दिया, तो क्या करती ?'

'कैसे बुद्धू आदमी हो ! कोई इतनी दूर से आकर विवाह करके ले जाता है, हजारों रुपये खर्च करता है, इसीलिए कि औरत को निकाल दे ?'

गंगू ने भावुकता से कहा—जहाँ प्रेम नहीं है हुजूर, वहाँ कोई स्त्री नहीं रह सकती। स्त्री केवल रोटी कपड़ा ही नहीं चाहती, कुछ प्रेम भी तो चाहती है। वे लोग समझते होंगे कि हमने एक विधवा से विवाह करके उसके ऊपर कोई बहुत बड़ा एहसान किया है। चाहते होंगे कि तन-मन से वह उनकी हो जाय, लेकिन दूसरे को अपना बनाने के लिए पहले आप उसका बन जाना पड़ता है हुजूर। यह बात है। फिर उसे एक बीमारी भी है। उसे कोई भूत लगा हुआ है। यह कभी-कभी बक-झक करने लगती है और बेहोश हो जाती है।

'और तुम ऐसी स्त्री से विवाह करोगे ?'—मैंने संदिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा—समझ लो, जीवन कड़वा हो जायगा।

गंगू ने शहीदों के-से आवेश से कहा—मैं तो समझता हूँ, मेरी जिन्दगी बन जायगी बाबूजी, आगे भगवान् की मर्जी !

मैंने जोर देकर पूछा—तो तुमने तय कर लिया है ?

'हाँ, हुजूर।'

'तो मैं तुम्हारा इस्तीफा मंजूर करता हूँ।'

मैं निरर्थक रूढ़ियों और व्यर्थ के बन्धनों का दास नहीं हूँ; लेकिन जो आदमी एक

दुष्टा से विवाह करे, उसे अपने यहाँ रखना वास्तव में जटिल समस्या थी। आये-दिन टण्टे-बखेड़े होंगे, नयी-नयी उलझनें पैदा होंगी, कभी पुलिस दौड़ लेकर आयेगी, कभी मुकदमे खड़े होंगे। सम्भव है, चोरी की वारदातें भी हों। इस दलदल से दूर रहना ही अच्छा। गंगू क्षुधा-पीड़ित प्राणी की भाँति रोटी का टुकड़ा देखकर उसकी ओर लपक रहा है। रोटी जूठी है, सूखी हुई है, खाने योग्य नहीं है, इसकी उसे परवाह नहीं; उसको विचार-बुद्धि से काम लेना कठिन था। मैंने उसे पृथक् कर देने ही में अपनी कुशल समझी।

2

पाँच महीने गुजर गये। गंगू ने गोमती से विवाह कर लिया था और उसी मुहल्ले में एक खपरैल का मकान लेकर रहता था। वह अब चाट का खोंचा लगाकर गुजर-बसर करता था। मुझे जब कभी बाजार में मिल जाता, तो मैं उसका क्षेम-कुशल पूछता। मुझे उसके जीवन से विशेष अनुराग हो गया था। यह एक सामाजिक प्रश्न की परीक्षा थी—सामाजिक ही नहीं, मनोवैज्ञानिक भी। मैं देखना चाहता था, इसका परिणाम क्या होता है। मैं गंगू को सदैव प्रसन्न-मुख देखता। समृद्धि और निश्चिन्तता के मुख पर जो एक तेज और स्वभाव में जो एक आत्म-सम्मान पैदा हो जाता है, वह मुझे यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता था। रुपये बीस आने की रोज बिक्री हो जाती थी। इसमें लागत निकालकर आठ-दस आने बच जाते थे। यही उसकी जीविका थी; किन्तु इसमें किसी देवता का वरदान था; क्योंकि इस वर्ग के मनुष्यों में जो निर्लज्जता और विपन्नता पायी जाती है, इसका वहाँ चिह्न तक न था। उसके मुख पर आत्म-विकास और आनन्द की झलक थी, जो चित्त की शान्ति से ही आ सकती है।

एक दिन मैंने सुना कि गोमती गंगू के घर से भाग गयी है ! कह नहीं सकता, क्यों? मुझे इस खबर से एक विचित्र आनन्द हुआ। मुझे गंगू के संतुष्ट और सुखी जीवन पर एक प्रकार की ईर्ष्या होती थी। मैं उसके विषय में किसी अनिष्ट की, किसी घातक अनर्थ की, किसी लज्जास्पद घटना की प्रतीक्षा करता था। इस खबर से इस ईर्ष्या को सान्त्वना मिली। आखिर वही बात हुई, जिसका मुझे विश्वास था। आखिर बचा को अपनी अदूरदर्शिता का दण्ड भोगना पड़ा। अब देखें, बचा कैसे मुँह दिखाते हैं। अब आँखें खुलेंगी और मालूम होगा कि लोग, जो उन्हें इस विवाह से रोक रहे थे, उनके कैसे शुभचिन्तक थे। उस वक्त तो ऐसा मालूम होता था, मानो आपको कोई दुर्लभ पदार्थ मिला जा रहा हो। मानो मुक्ति का द्वार खुल गया है। लोगों ने कितना कहा कि यह स्त्री विश्वास के योग्य नहीं है, कितनों को दगा दे चुकी है, तुम्हारे साथ भी दगा करेगी; लेकिन इन कानों पर जूँ तक न रेंगी। अब मिलें, तो जरा उनका मिजाज पूछूँ। कहूँ—क्यों महाराज, देवीजी का यह वरदान पाकर प्रसन्न हुए या नहीं ? तुम तो कहते थे, वह ऐसी है और वैसी है, लोग उस पर केवल दुर्भावना के कारण दोष आरोपित करते हैं। अब बतलाओ, किसकी भूल थी ?

उसी दिन संयोगवश गंगू से बाजार में भेंट हो गयी। घबराया हुआ था, बदहवास था, बिलकुल खोया हुआ। मुझे देखते ही उसकी आँखों में आँसू भर आये, लज्जा से नहीं, व्यथा से। मेरे पास आकर बोला—बाबूजी, गोमती ने मेरे साथ विश्वासघात किया। मैंने कुटिल आनन्द से, लेकिन कृत्रिम सहानुभूति दिखाकर कहा—तुमसे तो मैंने पहले ही कहा था;

लेकिन तुम माने ही नहीं, अब सब्र करो। इसके सिवा और क्या उपाय है। रुपये पैसे ले गयी या कुछ छोड़ गयी ?

गंगू ने छाती पर हाथ रखा। ऐसा जान पड़ा, मानो मेरे इस प्रश्न ने उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया।

'अरे बाबूजी, ऐसा न कहिए, उसने धेले की भी चीज नहीं छुई। अपना जो कुछ था, वह भी छोड़ गयी। न-जाने मुझमें क्या बुराई देखी। मैं उसके योग्य न था और क्या कहूँ। वह पढ़ी-लिखी थी, मैं करिया अक्षर भैंस बराबर। मेरे साथ इतने दिन रही, यही बहुत था। कुछ दिन और उसके साथ रह जाता, तो आदमी बन जाता। उसका आपसे कहाँ तक बखान करूँ हुजूर। औरों के लिए चाहे जो कुछ रही हो, मेरे लिए तो किसी देवता का आशीर्वाद थी। न-जाने मुझसे क्या ऐसी खता हो गयी। मगर कसम ले लीजिए, जो उसके मुख पर मैल तक आया हो। मेरी औकात ही क्या है बाबूजी ! दस-बारह आने का मजूर हूँ; पर इसी में उसके हाथों इतनी बरक्कत थी कि कभी कमी नहीं पड़ी।'

मुझे इन शब्दों से घोर निराशा हुई। मैंने समझा था, वह उसकी बेवफाई की कथा कहेगा और मैं उसकी अन्ध-भक्ति पर कुछ सहानुभूति प्रकट करूँगा; मगर उस मूर्ख की आँखें अब तक नहीं खुलीं। अब भी उसी का मन्त्र पढ़ रहा है। अवश्य ही इसका चित्त कुछ अव्यवस्थित है।

मैंने कुटिल परिहास आरम्भ किया—तो तुम्हारे घर से कुछ नहीं ले गयी ?

'कुछ भी नहीं बाबूजी, धेले की भी चीज नहीं।'

'और तुमसे प्रेम भी बहुत करती थी ?'

अब आपसे क्या कहूँ बाबूजी, वह प्रेम तो मरते दम तक याद रहेगा।'

'फिर भी तुम्हें छोड़कर चली गयी ?'

'यही तो आश्चर्य है बाबूजी !'

'त्रिया-चरित्र का नाम कभी सुना है ?'

'अरे बाबूजी, ऐसा न कहिए। मेरी गर्दन पर कोई छुरी रख दे, तो भी मैं उसका यश ही गाऊँगा।'

'तो फिर ढूँढ़ निकालो !'

'हाँ, मालिक। जब तक उसे ढूँढ़ न लाऊँगा, मुझे चैन न आयेगा। मुझे इतना मालूम हो जाय कि वह कहाँ है, फिर तो मैं उसे ले ही आऊँगा; और बाबूजी, मेरा दिल कहता है कि वह आयेगी जरूर। देख लीजिएगा। वह मुझसे रूठकर नहीं गयी; लेकिन दिल नहीं मानता। जाता हूँ, महीने-दो-महीने जंगल, पहाड़ की धूल छानूँगा। जीता रहा, तो फिर आपके दर्शन करूँगा।'

यह कहकर वह उन्माद की दशा में एक तरफ चल दिया।

3

इसके बाद मुझे एक जरूरत से नैनीताल जाना पड़ा। सैर करने के लिए नहीं। एक महीने के बाद लौटा, और अभी कपड़े भी न उतारने पाया था कि देखता हूँ, गंगू एक नवजात शिशु को गोद में लिये खड़ा है। शायद कृष्ण को पाकर नन्द भी इतने पुलकित न हुए

होंगे। मालूम होता था, उसके रोम-रोम से आनन्द फूटा पड़ता है। चेहरे और आँखों से कृतज्ञता और श्रद्धा के राग से निकल रहे थे। कुछ वही भाव था, जो किसी क्षुधा-पीड़ित भिक्षुक के चेहरे पर भरपेट भोजन करने के बाद नजर आता है।

मैंने पूछा—कहो महाराज, गोमतीदेवी का कुछ पता लगा, तुम तो बाहर गये थे?

गंगू ने आपे में न समाते हुए जवाब दिया—हाँ बाबूजी, आपके आशीर्वाद से ढूँढ़ लाया। लखनऊ के जनाने अस्पताल में मिली। यहाँ एक सहेली से कह गयी थी कि अगर वह बहुत घबरायें तो बतला देना। मैं सुनते ही लखनऊ भागा और उसे घसीट लाया। घाते में यह बच्चा भी मिल गया।

उसने बच्चे को उठाकर मेरी तरफ बढ़ाया। मानो कोई खिलाड़ी तमगा पाकर दिखा रहा हो।

मैंने उपहास के भाव से पूछा—अच्छा, यह लड़का भी मिल गया ? शायद इसीलिए वह यहाँ से भार्गा थी। है तो तुम्हारा ही लड़का ?

'मेरा काहे को है बाबूजी, आपका है, भगवान् का है।'

'तो लखनऊ में पैदा हुआ ?'

'हाँ बाबूजी, अभी तो कुल एक महीने का है।'

'तुम्हारे ब्याह हुए कितने दिन हुए ?'

'यह सातवाँ महीना जा रहा है।'

'तो शादी के छठे महीने पैदा हुआ ?'

'और क्या बाबूजी।'

'फिर भी तुम्हारा लड़का है ?'

'हाँ, जी।'

'कैसी बे-सिर-पैर की बात कर रहे हो ?'

मालूम नहीं, वह मेरा आशय समझ रहा था, या बन रहा था। उसीं निष्कपट भाव से बोला—मरते-मरते बची, बाबूज़ी नया जनम हुआ। तीन दिन, तीन रात छटपटाती रही। कुछ न पूछिए।

मैंने अब जरा व्यंग्य-भाव से कहा—लेकिन छः महीने में लड़का होते आज ही सुना।

यह चोट निशाने पर जा बैठी।

मुस्कराकर बोला—अच्छा, वह बात ! मुझे तो उसका ध्यान भी नहीं आया। इसी भय से तो गोमती भागी थी। मैंने कहा—गोमती, अगर तुम्हारा मन मुझसे नहीं मिलता, तो तुम मुझे छोड़ दो। मैं अभी चला जाऊँगा और फिर कभी तुम्हारे पास न आऊँगा। तुमको जब कुछ काम पड़े तो मुझे लिखना, मैं भरसक तुम्हारी मदद करूँगा। मुझे तुमसे कुछ मलाल नहीं है। मेरी आँखों में तुम अब भी उतनी ही भली हो। अब भी मैं तुम्हें उतना ही चाहता हूँ। नहीं, अब मैं तुम्हें और ज्यादा चाहता हूँ; लेकिन अगर तुम्हारा मन मुझसे फिर नहीं गया है, तो मेरे साथ चलो। गंगू जीते-जी तुमसे बेवफाई नहीं करेगा। मैंने तुमसे इसलिए विवाह नहीं किया कि तुम देवी हो; बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हें चाहता था और सोचता था कि तुम भी मुझे चाहती हो। यह बच्चा मेरा बच्चा है। मेरा अपना बच्चा है। मैंने एक बोया हुआ खेत लिया, तो क्या उसकी फसल को इसलिए छोड़ दूँगा, कि उसे

किसी दूसरे ने बोया था ?

यह कहकर उसने जोर से ठट्ठा मारा।

मैं कपड़े उतारना भूल गया। कह नहीं सकता, क्यों मेरी आँखें सजल हो गयीं। न-जाने वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने मेरी मनोगत घृणा को दबाकर मेरे हाथों को बढ़ा दिया। मैंने उस निष्कलंक बालक को गोद में ले लिया और इतने प्यार से उसका चुम्बन लिया कि शायद अपने बच्चों का भी न लिया होगा।

गंगू बोला—बाबूजी, आप बड़े सज्जन हैं। मैं गोमती से बार-बार आपका बखान किया करता हूँ। कहता हूँ, चल, एक बार उनके दर्शन कर आ; लेकिन मारे लाज के आती ही नहीं।

मैं और सज्जन ! अपनी सज्जनता का पर्दा आज मेरी आँखों से हटा। मैंने भक्ति से डूबे हुए स्वर में कहा—नहीं जी, मेरे-जैसे कलुषित मनुष्य के पास वह क्या आयेगी। चलो, मैं उनके दर्शन करने चलता हूँ। तुम मुझे सज्जन समझते हो ? मैं ऊपर से सज्जन हूँ; पर दिल का कमीना हूँ। असली सज्जनता तुम में है। और यह बालक वह फूल है, जिससे तुम्हारी सज्जनता की महक निकल रही है।

मैं बच्चे को छाती से लगाये हुए गंगू के साथ चला।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अप्रैल, 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'मासूम बच्चा' शीर्षक से उर्दू मासिक पत्रिका 'जामिया', फरवरी, 1935 में प्रकाशित।]

ज्योति

विधवा हो जाने के बाद बूटी का स्वभाव बहुत कटु हो गया था। जब बहुत जी जलता तो अपने मृत पति को कोसती—आप तो सिधार गये, मेरे लिए यह सारा जंजाल छोड़ गये ! जब इतनी जल्दी जाना था, तो ब्याह न जाने किसलिए किया। घर भूनी भाँग नहीं, चले थे ब्याह करने। वह चाहती तो दूसरी सगाई कर लेती। अहीरों में इसका रिवाज है। देखने-सुनने में भी बुरी न थी। दो आदमी तैयार भी थे; लेकिन बूटी पतिव्रता कहलाने के मोह को न छोड़ सकी। और यह सारा क्रोध उतरता था, बड़े लड़के मोहन पर ! जो अब सोलह साल का था। सोहन अभी छोटा था और मैना लड़की थी। ये दोनों अभी किसी लायक न थे। अगर यह तीनों न होते, तो बूटी को क्यों इतना कष्ट होता। जिसका थोड़ा-सा काम कर देती; वह रोटी-कपड़ा दे देता। जब चाहती किसी के सिर बैठ जाती। अब अगर कहीं बैठ जाय, तो लोग यही कहेंगे तीन-तीन लड़कों के होते इसे यह क्या सूझी। मोहन भरसक उसका भार हल्का करने की चेष्टा करता। गायों, भैंसों की सानी-पानी, दुहना-मथना यह सब कर लेता, लेकिन बूटी का मुँह सीधा न होता था। वह रोज एक-न-एक खुचड़ निकालती रहती और मोहन ने भी उसकी घुड़कियों की परवाह करना छोड़ दिया था। पति उसके सिर गृहस्थी का यह भार पटककर क्यों चला गया ? उसे यही गिला थी। बेचारी का

सर्वनाश ही कर दिया ! न खाने का सुख मिला, न पहनने-ओढ़ने का, न और किसी बात का। इस घर में क्या आयी, मानो भट्टी में पड़ गयी ! उसकी वैधव्य साधना और अतृप्त भोग-लालसा में सदैव द्वन्द्व-सा मचा रहता था और उसकी जलन में उसके हृदय की सारी मृदुता जलकर भस्म हो गयी थी। पति के पीछे और कुछ नहीं तो बूटी के पास चार-पाँच सौ के गहने थे, लेकिन एक-एक करके सब उसके हाथ से निकल गये। उसी मुहल्ले में, उसके बिरादरी में, कितनी औरतें थीं जो उससे जेठ होने पर भी गहने झमकाकर, आँखों में काजल लगाकर, माँग में सेंदुर की मोटी-सी रेखा डालकर मानो उसे जलाया करती थीं; इसलिए जब उनमें से कोई विधवा हो जाती, तो बूटी को खुशी होती और यह सारी जलन वह लड़कों पर निकालती, विशेषकर मोहन पर। वह शायद सारे संसार की स्त्रियों को अपने ही रूप में देखना चाहती थी। कुत्सा में उसे विशेष आनन्द मिलता था। उसकी वंचित लालसा जल न पाकर ओस चाट लेने में ही संतुष्ट होती थी; फिर यह कैसे सम्भव था कि वह मोहन के विषय में कुछ सुने और पेट में डाल ले। ज्योंही मोहन सन्ध्या समय दूध बेचकर घर आया, बूटी ने कहा—देखती हूँ, तू अब साँड बनने पर उतारू हो गया है।

मोहन ने प्रश्न के भाव से देखा—कैसा साँड ! क्या बात है ?

'तू रुपिया से छिप-छिपकर नहीं हँसता-बोलता ? उस पर कहता है कैसा साँड? तुझे लाज नहीं आती ! घर में पैसे-पैसे की तंगी है और वहाँ उसके लिए पान लाये जाते हैं, कपड़े रँगाये जाते हैं।

मोहन ने विद्रोह का भाव धारण किया—अगर उसने मुझसे चार पैसे के पान माँगे तो क्या करता ? कहता कि पैसे दो तो लाऊँगा। अपनी धोती रँगने को दी, तो उससे रँगाई माँगता ?

'टोले में एक तू ही बड़ा धन्ना सेठ है ? और किसी से उसने क्यों न कहा ?'

'यह वह जाने, मैं क्या बताऊँ।'

'तुझे अब छैला बनने की सूझती है ! घर में भी कभी एक पैसे का पान लाया ?'

'यहाँ पान किसके लिये लाता ?'

'क्या तेरे लेखे घर में सब मर गये ?'

'मैं न जानता था, तुम पान खाना चाहती हो ?'

'संसार में एक रुपिया ही पान खाने जोग है ?'

'शौक-सिंगार की भी तो उमिर होती है।'

बूटी जल उठी। उसे बुढ़िया कह देना उसकी सारी साधना पर पानी फेर देना था। बुढ़ापे में उन साधनाओं का महत्त्व ही क्या। जिस त्याग-कल्पना के बल पर वह सब स्त्रियों के सामने सिर उठाकर चलती थी, उस पर इतना कठोराघात ! इन्हीं लड़कों के पीछे उसने अपनी जवानी धूल में मिला दी ! उसके आदमी को मरे आज पाँच साल हुए। तब उसकी चढ़ती जवानी थी। तीन लड़के भगवान ने उसके गले मढ़ दिये, नहीं अभी वह है कै दिन की। चाहती तो आज वह भी ओठ लाल किये, पाँव में महावर लगाये, अनवट-बिछुये पहने मटकती फिरती। वह सब कुछ उसने इन लड़कों के कारन त्याग दिया और आज मोहन उसे बुढ़िया कहता है ? रुपिया उसके सामने खड़ी कर दी जाय, तो चुहिया-सी लगे। फिर भी वह जवान है, और बूटी बुढ़िया है।

बोली—हाँ और क्या। मेरे लिए तो अब फटे-चिथड़े पहनने के दिन हैं। जब तेरा बाप मरा तो मैं रुपिया से दो ही चार साल बड़ी थी। उस वक्त कोई घर कर लेती, तो तुम लोगों का कहीं पता न चलता। गली-गली भीख माँगते फिरते। लेकिन मैं कहे देती हूँ अगर तू फिर उससे बोला तो या तो तू ही घर में रहेगा या मैं ही रहूँगी।

मोहन ने डरते-डरते कहा—मैं उसे बात दे चुका हूँ अम्माँ।

'कैसी बात ?'

'सगाई की।'

'अगर रुपिया मेरे घर में आयी तो झाड़ू मारकर निकाल दूँगी। यह सब उसकी माँ की माया है। वह कुटनी मेरे लड़के को मुझसे छीने लेती है। राँड से इतना भी नहीं देखा जाता। चाहती है कि उसे सौत बनाकर छाती पर बैठा दे।'

मोहन ने व्यथित कण्ठ से कहा—अम्माँ, ईश्वर के लिए चुप रहो। क्यों अपना पानी आप खो रही हो। मैंने तो समझा था, चार दिन में मैना अपने घर चली जायगी; तुम अकेली पड़ जाओगी, इसलिए उसे लाने की बात सोच रहा था। अगर तुम्हें बुरा लगता है तो जाने दो।

'तू आज से यहीं आँगन में सोया कर।'

'और गायें-भैंसे बाहर पड़ी रहेंगी ?'

'पड़ी रहने दे, कोई डाका नहीं पड़ा जाता।'

'मुझ पर तुझे इतना सन्देह है ?'

'हाँ !'

'तो मैं यहाँ न सोऊँगा।'

'तो निकल जा मेरे घर से।'

'हाँ, तेरी यही इच्छा है तो निकल जाऊँगा।'

मैना ने भोजन पकाया। मोहन ने कहा, मुझे भूख नहीं है। बूटी उसे मनाने न आई। मोहन का युवक-हृदय माता के इस कठोर शासन को किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकता। उसका घर है, ले ले। अपने लिए वह कोई दूसरा ठिकाना ढूँढ निकालेगा। रुपिया ने उसके रुखे जीवन में एक स्निग्धता भर दी थी। जब वह एक अव्यक्त कामना से चंचल हो रहा था, जीवन कुछ सूना-सूना लगता था, रुपिया ने नव-वसन्त की भाँति आकर उसे पल्लवित कर दिया। मोहन को जीवन में एक मीठा स्वाद मिलने लगा। कोई काम करता होता; पर ध्यान रुपिया की ओर लगा रहता। सोचता; उसे क्या दे दे कि वह प्रसन्न हो जाय ! अब वह कौन मुँह लेकर उसके पास जाय ? क्या उससे कहे कि अम्माँ ने मुझे तुझसे मिलने को मना किया है ? अभी कल ही तो बरगद के नीचे दोनो में कैसी-कैसी बातें हुई थीं। मोहन ने कहा था, रूपा तुम इतनी सुन्दर हो; तुम्हारे सौ गाहक निकल आयेंगे। मेरे घर में तुम्हारे लिए क्या रक्खा है ? इस पर रुपिया ने जो जवाब दिया था, वह तो संगीत की तरह अब भी उसके प्राणों में बसा हुआ था—मैं तो तुमको चाहती हूँ मोहन, अकेले तुमको। परगने के चौधरी हो जाव, तब भी मोहन हो; मजूरी करने लगो, तब भी मोहन हो। उसी रुपिया से आज वह जाकर कहे—मुझे अब तुमसे कोई सरोकार नहीं है।

नहीं, यह नहीं हो सकता। उसे घर की परवाह नहीं है। वह रुपिया के साथ माँ से अलग रहेगा। इस जगह न सही, किसी दूसरे मोहल्ले में सही। इस वक्त भी रुपिया उसकी राह देख रही होगी। कैसे अच्छे बीड़े लगाती है। कहीं अम्माँ सुन पावें कि वह रात को रुपिया के द्वार पर गया था तो परान ही दे दें। दे दें परान ! अपने भाग तो नहीं बखानती कि ऐसी देवी बहू मिली जाती है। न जाने क्यों रुपिया से इतना चिढ़ती है। वह जरा पान खा लेती है, जरा साड़ी रँगकर पहनती है। बस यही तो।

चूड़ियों की झनकार सुनाई दी। रुपिया आ रही है। हाँ, वही है।

रुपिया उसके सिरहाने आकर बोली—सो गये क्या मोहन ? घड़ी भर से तुम्हारी राह देख रही हूँ। आये क्यों नहीं ?

मोहन नींद का मक्कर किये पड़ा रहा।

रुपिया ने उसका सिर हिलाकर फिर कहा—क्या सो गये मोहन ?

उन कोमल उंगलियों के स्पर्श में क्या सिद्धि थी, कौन जाने। मोहन की सारी आत्मा उन्मत्त हो उठी। उसके प्राण मानो बाहर निकलकर रुपिया के चरणों में समर्पित हो जाने के लिए उछल पड़े। देवी वरदान के लिए सामने खड़ी है। सारा विश्व जैसे नाच रहा है। उसे मालूम हुआ, जैसे उसका शरीर लुप्त हो गया है, केवल वह एक मधुर स्वर की भाँति विश्व की गोद से चिमटा हुआ उसके साथ नृत्य कर रहा है।

रुपिया ने फिर कहा—अभी से सो गये क्या जी ?

मोहन बोला—हाँ, जरा नींद आ गयी थी रूपा। तुम इस वक्त क्या करने आईं। कहीं अम्माँ देख लें, तो मुझे मार ही डालें।

'तुम आज आये क्यों नहीं ?'

'आज अम्माँ से लड़ाई हो गई।'

'क्या कहती थीं ?'

'कहती थीं, रुपिया से बोलेगा तो परान दे दूँगी।'

'तुमने पूछा नहीं रुपिया से क्यों चिढ़ती हो ?'

'अब उनकी बात क्या कहूँ रूपा। वह किसी का खाना-पहनना नहीं देख सकतीं। अब मुझे तुमसे दूर रहना पड़ेगा।'

'मेरा जी तो न मानेगा।'

'ऐसी बात करोगी, तो मैं तुम्हें लेकर भाग जाऊँगा।'

'तुम मेरे पास एक बार रोज आ जाया करो। बस, और मैं कुछ नहीं चाहती।'

'और अम्माँ जो बिगड़ेंगी।'

'तो मैं समझ गई। तुम मुझे प्यार नहीं करते।'

'मेरा बस होता तो तुमको अपने परान में रख लेता।'

इसी समय घर के किवाड़ खटके। रुपिया भाग गई।

मोहन दूसरे दिन सोकर उठा तो उसके हृदय में आनन्द का सागर-सा भरा हुआ था। वह सोहन को बराबर डाँटता रहता था। सोहन आलसी था। घर के काम-धंधे में जी न लगता था। आज भी वह आँगन में बैठा अपनी धोती में साबुन छिपाकर भाग जाने का अवसर खोजने लगा।

मोहन ने मुस्कराकर कहा—क्या धोती बहुत मैली हो गयी है सोहन ? धोबी को क्यों नहीं देते ?

सोहन को इन शब्दों में स्नेह की गंध आई।

'धोबिन पैसे माँगती है।'

'तो पैसे अम्माँ से क्यों नहीं माँग लेते ?'

'अम्माँ कौन पैसे दिये देती है।'

'तो मुझसे ले लो !'

यह कह उसने एक इकन्नी उसकी ओर फेंक दी। सोहन प्रसन्न हो गया। भाई और माता दोनों ही उसे धिक्कारते थे। बहुत दिनों बाद आज उसे स्नेह की मधुरता का स्वाद मिला। इकन्नी उठा ली और धोती को वहीं छोड़कर गाय को खोलकर ले चला।

मोहन ने कहा—तुम रहने दो, मैं इसे लिए जाता हूँ।

सोहन ने पगहिया भाई को देकर फिर पूछा—तुम्हारे लिये चिलम रख लाऊँ ?

जीवन में आज पहली बार सोहन ने भाई के प्रति ऐसा सद्‌भाव प्रकट किया। इसमें क्या रहस्य है; यह मोहन की समझ में न आया। बोला—आग हो तो रख आओ।

मैना सिर के बाल खोले आँगन में घरौंदा बना रही थी। मोहन को देखते ही उसने घरौंदा बिगाड़ दिया और अंचल से बाल छिपाकर रसोईघर में बरतन उठाने चली।

मोहन ने पूछा—क्या खेल रही थी मैना ?

मैना डरी हुई बोली—कुछ तो नहीं।

'तू तो बहुत अच्छे घरौंदे बनाती है। जरा बना, देखूँ।'

मैना का रुँआसा चेहरा खिल उठा। प्रेम के शब्द में कितना जादू है। मुँह से निकलते ही जैसे सुगन्ध फैल गयी। जिसने सुना उसका हृदय खिल उठा। जहाँ भय था, वहाँ विश्वास चमक उठा। जहाँ कटुता थी, वहाँ अपनापा छलक पड़ा। चारों ओर चेतनता छोड़ गई। कहीं आलस्य नहीं, कहीं खिन्नता नहीं। मोहन का हृदय आज प्रेम से भरा हुआ है। उसमें सुगन्ध का विकर्षण हो रहा है।

मैना घरौंदा बनाने बैठ गई।

मोहन ने उसके उलझे हुए बालों को सुलझाते हुए कहा—तेरी गुड़िया का ब्याह कब होगा मैना, नेवता दे, कुछ मिठाई खाने को मिले।

मैना का मन आकाश में उड़ने लगा। अब भैया पानी माँगे, तो वह लोटे को राख से खूब चमाचम करके पानी ले जायगी।

'अम्माँ पैसे नहीं देती। गुड्डा तो ठीक हो गया है। टीका कैसे भेजूँ।'

'कितने पैसे लेगी ?'

'एक पैसे के बतासे लूँगी और एक पैसे का रंग। जोड़े तो रंग जायेंगे कि नहीं।'

'तो दो पैसे में तेरा काम चल जायगा ?'

'तो दो पैसे दे दो भैया, तो मेरी गुड़िया का ब्याह धूमधाम से हो जाय।'

मोहन ने पैसे हाथ में लेकर मैना को दिखाये। मैना लपकी, मोहन ने हाथ ऊपर उठाया, मैंना ने हाथ पकड़कर नीचे खींचना शुरू किया। मोहन ने उसे गोद में उठा लिया। मैना ने पैसे ले लिये और नीचे उतरकर नाचने लगी। फिर अपनी सहेलियों को विवाह का

नेवता देने के लिए भागी।

उसी वक्त बूटी गोबर का झौवा लिये आ पहुँची। मोहन को खड़े देखकर कठोर स्वर में बोली—अभी तक मटरगस्ती ही हो रही है। भैंस कब दुही जायगी ?

आज बूटी को मोहन ने विद्रोह-भर जवाब न दिया। जैसे उसके मन में माधुर्य का कोई सोता-सा खुल गया हो। माता को गोबर का बोझ लिये देखकर उसने झौवा उसके सिर से उतार दिया।

बूटी ने कहा—रहने दे, रहने दे, जाकर भैंस दुह, मैं तो गोबर लिये जाती हूँ।

'तुम इतना भारी बोझ क्यों उठा लेती हो, मुझे क्यों नही बुला लेतीं ?'

माता का हृदय वात्सल्य से गद्‌गद् हो उठा।

'तू जा अपना काम देख। मेरे पीछे क्यों पड़ता है ?'

'गोबर निकालने का काम मेरा है।'

'और दूध कौन दुहेगा ?'

'वह भी मैं करूँगा।'

'तू इतना बड़ा जोधा है कि सारे काम कर लेगा !'

'जितना कहता हूँ उतना कर लूँगा ?'

'तो मैं क्या करूँगी ?'

'तुम लड़कों से काम लो; जो तुम्हारा धर्म है।'

'मेरी सुनता है कोई ?'

3

आज मोहन बाजार से दूध पहुँचाकर लौटा, तो पान, कत्था सुपारी, एक छोटा-सा पानदान और थोड़ी-सी मिठाई लाया। बूटी बिगड़कर बोली—आज पैसे कहीं फालतू मिल गये थे क्या ? इस तरह उड़ावेगा तो कै दिन निबाह होगा ?

'मैंने तो एक पैसा भी नहीं उड़ाया अम्माँ। पहले मैं समझता था, तुम पान खाती ही नहीं।'

'तो अब मैं पान खाऊँगी !'

'हाँ और क्या। जिसके दो-दो जवान बेटे हों, क्या वह इतना शौक भी न करे।'

बूटी के सूखे कठोर हृदय में कहीं से कुछ हरियाली निकल गयी, एक नन्हीं-सी कोपल थी, लेकिन उसके अन्दर कितना जीवन, कितना रस था। उसने मैना और सोहन को एक-एक मिठाई दे दी और मोहन को देने लगी।

'मिठाई तो लड़कों के लिए लाया था अम्माँ।'

'और तू तो बूढ़ा हो गया, क्यों ?'

'इन लड़कों के सामने तो बूढ़ा ही हूँ।'

'लेकिन मेरे सामने तो लड़का ही है।'

मोहन ने मिठाई ले ली। मैना ने मिठाई पाते ही गप से मुँह में डाल ली थी। वह केवल मिठास का स्वाद जीभ पर छोड़कर कब की गायब हो चुकी थी। मोहन की मिठाई को ललचाई आँखों से देखने लगी। मोहन ने आधा लड्डू तोड़कर मैना को दे दिया। एक

मिठाई दोने में और बची थी। बूटी ने उसे मोहन की तरफ बढ़ाकर कहा—लाया भी तो इतनी-सी मिठाई। यह ले ले।

मोहन ने आधी मिठाई मुँह में डालकर कहा—यह तुम्हारा हिस्सा है, अम्माँ।

'तुम्हें खाते देखकर मुझे जो आनन्द मिलता है, उसमें मिठास से ज्यादा स्वाद है।'

उसने आधी मिठाई सोहन को और आधी मोहन को दे दी; फिर पानदान खोलकर देखने लगी। आज जीवन में पहली बार उसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। धन्य भाग कि पति के राज में जिस विभूति के लिए तरसती रही, वह लड़के के राज में मिली। पानदान में कई कुल्हियाँ हैं। और देखो, दो छोटी-छोटी चिमचियाँ भी हैं, ऊपर कड़ा लगा हुआ है। जहाँ चाहो लटकाकर ले जाव। ऊपर की तश्तरी में पान रखे जायँगे। ज्योंही मोहन बाहर चला गया, उसने पानदान को माँज-धोकर उसमें चूना-कत्था भरा, सुपारी काटी, पान को भिगो कर तश्तरी में रखा। तब एक बीड़ा लगाकर खाया। उस बीड़े के रस ने जैसे उसके वैधव्य की कटुता को स्निग्ध कर दिया। मन की प्रसन्नता, व्यवहार में उदारता बन जाती है। अब वह घर में नहीं बैठ सकती। उसका मन इतना गहरा नहीं है कि इतनी बड़ी विभूति उसमें जाकर गुम हो जाय। एक पुराना आईना पड़ा हुआ है। उसने उसमें अपना मुँह देखा। ओठों पर लाली तो नहीं है। मुँह लाल करने के लिए उसने थोड़े ही पान खाया है।

धनिया ने आकर कहा—काकी, तनक रस्सी दे दो, मेरी रस्सी टूट गई है।

कल बूटी न साफ कह दिया होता, मेरी रस्सी गाव भर के लिए नहीं है। रस्सी टूट गई है तो बनवा लो। आज उसने धनिया को रस्सी निकालकर प्रसन्न मुख से दे दी और सद्भाव से पूछा—लड़के के दस्त बन्द हुए कि नहीं धनिया ?

धनिया ने उदास मन से कहा—नहीं काकी, आज तो दिन भर दस्त आये। जाने दाँत आ रहे हैं।

'पानी भर ले तो चल जरा देखूँ, दाँत ही हैं कि और कुछ फसाद है। किसी की नजर-वजर तो नहीं लगी ?'

'अब क्या जाने काकी, कौन जाने किसी की आँख फूटी हो।'

'चँचल लड़कों को नजर का बड़ा डर रहता है।'

'जाते चुमकारकर बुलाया, झट उसकी गोद में चला जाता है। ऐसा हँसता है कि तुमसे क्या कहूँ।'

'कभी-कभी माँ की नजर भी लग जाया करती है।'

'ऐ नौज काकी, भला कोई अपने लड़के को नजर लगायेगा।'

'यही तो तू समझती नहीं। नजर आप-ही-आप लग जाती है।'

धनिया पानी लेकर आई तो बूटी उसके साथ बच्चे को देखने चली।

'तू अकेली है ! आजकल घर के काम-धंधे में बड़ा अंडस होता होगा।'

'नहीं अम्माँ, रुपिया आ जाती है, घर का कुछ काम कर देती है, नहीं अकेले तो मेरी मरन हो जाती।'

बूटी को आश्चर्य हुआ। रुपिया को उसने केवल तितली समझ रखा था।

'रुपिया !'

'हाँ काकी, वेचारी बड़ी सीधी है। झाड़ू लगा देती है, चौका बरतन कर देती है, लड़के

को सँभालती है। गाढ़े समय कौन किसी की बात पूछता है काकी !'

'उसे तो अपने मिस्सी-काजल से छुट्टी नहीं मिलती होगी !'

'यह तो अपनी-अपनी रुचि है काकी। मुझे तो इस मिस्सी-काजल वाली ने जितना सहारा दिया, उतना किसी भक्तिन ने न दिया। बेचारी रात भर जागती रही। मैंने कुछ दे तो नहीं दिया। हाँ, जब तक जीऊँगी उसका जस गाऊँ।'

'तू उसके गुन अभी नहीं जानती धनिया। पान के लिए पैसे कहाँ से आते हैं ? किनारदार साड़ियाँ कहाँ से आती हैं ?'

'मैं इन बातों में नहीं पड़ती काकी। फिर शौक-सिंगार करने को किसका जी नहीं चाहता। खाने-पहनने की यही तो उमिर है।'

धनिया का घर आ गया। आंगन में रुपिया बच्चे को गोद में लिये थपक रही थी। बच्चा सो गया था।

धनिया ने बच्चे को खटोले पर सुला दिया। बूटी ने बच्चे के सिर पर हाथ रखा, पेट में धीरे-धीरे उंगली गड़ाकर देखा। नाभी पर हींग का लेप करने को कहा। रुपिया बेनिया लाकर उसे झलने लगी।

बूटी ने कहा—ला बेनिया मुझे दे दो।

'मैं डूला दूँगी तो क्या छोटी हो जाऊँगी।'

'तू दिन भर यहाँ काम-धंधा करती रही है। थक गई होगी।'

'तुम इतनी भलीमानस हो, और यहाँ लोग कहते थे कि वह बिना गाली के बात नहीं करती। मारे डर के तुम्हारे पास न आयी।'

बूटी मुस्कराई।

'लोग झूठ तो नहीं कहते।'

'मैं आँखों की देखी मानूँ कि कानों की सुनी ?'

आज भी रुपिया आँखों में काजल लगाये, पान खाये, रंगीन साड़ी पहने हुए थी; किन्तु आज बूटी को मालूम हुआ, इस फूल में केवल रंग नहीं है, सुगन्ध भी है। उसके मन में रुपिया से जो घृणा हो गई थी, वह किसी दैवी-मन्त्र में धुल-सी गई। कितनी सुशील लड़की है, कितनी लज्जातुर। बोली कितनी मीठी है। आजकल की लड़कियाँ अपने बच्चों की तो परवाह नहीं करतीं दूसरों के लिए कौन मरता है। सारी रात धनिया के लड़के को लिये जागती रही ! मोहन ने कल की बातें इससे कह तो दी होंगी। दूसरी लड़की होती तो मेरी ओर से मुँह फेर लेती, मुझे जलाती, मुझसे ऐंठती ! इसे तो जैसे कुछ मालूम ही न हो। हो सकता है कि मोहन ने इससे कुछ कहा ही न हो। हाँ, यही बात है।

आज रुपिया बूटी को बड़ी सुन्दर लगी। ठीक तो है, अभी शौक-सिंगार न करेगी तो कब करेगी। शौक-सिंगार इसलिए बुरा लगता है कि ऐसे आदमी अपने भोग-विलास में मस्त रहते हैं। किसी के घर में आग लग जाय, उनसे मतलब नहीं। उनका काम तो खाली दूसरों को रिझाना है। जैसे अपने रूप की दुकान सजाए, राह-चलतों को बुलाते हों कि जरा इस दुकान की सैर भी करते जाइए। ऐसे उपकारी प्राणियों का सिंगार बुरा नहीं लगता। नहीं, बल्कि और अच्छा लगता है। इससे मालूम होता है कि इसका रूप जितना सुन्दर है, उतना ही मन भी सुन्दर है; फिर कौन नहीं चाहता कि लोग उसके रूप का बखान करें। किसे दूसरों की आँखों में खुब जाने की लालसा नहीं

होती ?' बूटी का यौवन कब का विदा हो चुका; फिर भी यह लालसा उसे बनी हुई है। कोई उसे रस-भरी आँखों से देख लेता है, तो उसका मन कितना प्रसन्न हो जाता है। जमीन पर पाँव नहीं पड़ते; फिर रूपा तो अभी जवान है।

उस दिन से रूपा प्रायः दो-एक बार नित्य बूटी के घर आती। बूटी ने मोहन से आग्रह करके उसके लिए एक अच्छी-सी साड़ी मँगवा दी। अगर रूपा कभी बिना काजल लगाये या बेरंगी साड़ी पहने आ जाती, तो बूटी कहती—बहू-बेटियों का यह जोगिया भेस अच्छा नहीं लगता है। यह भेस तो हम-जैसी बुढ़ियों के लिए है।

रूपा ने एक दिन कहा—तुम बूढ़ी काहे को हो गयीं अम्माँ। लोगों को इशारा मिल जाय, तो भौंरों की तरह तुम्हारे ऊपर मँडराने लगें। मेरे दादा तो तुम्हारे द्वार पर धरना देने लगें।

बूटी ने मीठे तिरस्कार से कहा—चल, मैं तेरी माँ की सौत बनकर जाऊँगी।

'अम्माँ तो बूढ़ी हो गयीं !'

'तो क्या तेरे दादा अभी जवान बैठे हैं।'

'हाँ ऐया, बड़ी अच्छी मिट्टी है उनकी।'

बूटी ने उसकी ओर रस-भरी आँखों से देखकर पूछा—अच्छा बता, मोहन से तेरा ब्याह कर दूँ ?

रूपा लजा गयी। मुख पर गुलाब की आभा दौड़ गयी !

आज मोहन दूध बेचकर लौटा तो बूटी ने कहा—कुछ रुपये पैसे जुटा मैं रूपा से तेरी बातचीत कर रही हूँ।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'चांद', मई 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप 'अक्सीर' शीर्षक से 'इस्मत', 1933 के किसी अंक में प्रकाशित।]

कैदी

चौदह साल तक निरन्तर मानसिक वेदना और शारीरिक यातना भोगने के बाद आइवन ओखोटस्क जेल से निकला; पर उस पक्षी की भाँति नहीं, जो शिकारी के पिंजरे से पंखहीन होकर निकला हो बल्कि उस सिंह की भाँति, जिसे कठघरे की दीवारों ने और भी भयंकर तथा और भी रक्त-लोलुप बना दिया हो। उसके अन्तस्तल में एक द्रव ज्वाला उमड़ रही थी, जिसने अपने ताप से उसके बलिष्ठ शरीर, सुडौल अंग-प्रत्यंग और लहराती हुई अभिलाषाओं को झुलस डाला था और आज उसके अस्तित्व का एक-एक अणु एक-एक चिनगारी बना हुआ था—क्षुधित, चंचल और विद्रोहमय।

जेलर ने उसे तौला। प्रवेश के समय दो मन तीस सेर था, आज केवल एक मन पाँच सेर।

जेलर ने सहानुभूति दिखाकर कहा—तुम बहुत दुर्बल हो गये हो, आइवन। अगर जरा भी कुपथ्य हुआ, तो बुरा होगा।

आइवन ने अपने हड्डियों के ढाँचे को विजय-भाव से देखा और अपने अन्दर एक अग्निमय प्रवाह का अनुभव करता हुआ बोला—कौन कहता है कि मैं दुर्बल हो गया हूँ ?

'तुम खुद देख रहे होगे।'

'दिल की आग जब तक नहीं बुझेगी, आइवन नहीं मरेगा, मि. जेलर, सौ वर्ष तक नहीं, विश्वास रखिए।'

आइवन इसी प्रकार बहकी-बहकी बातें किया करता था, इसलिए जेलर ने ज्यादा परवाह न की। सब उसे अर्द्ध-विक्षिप्त समझते थे। कुछ लिखा-पढ़ी हो जाने के बाद उसके कपड़े और पुस्तकें मँगवायी गयीं; पर वे सारे सूट अब उसे उतारे हुए-से लगते थे। कोटों की जेबों में कई नोट निकले, कई नगद रुबेल। उसने सब कुछ वहीं जेल के वार्डरों और निम्न कर्मचारियों को दे दिया मानो उसे कोई राज्य मिल गया हो।

जेलर ने कहा--यह नहीं हो सकता, आइवन ! तुम सरकारी आदमियों को रिश्वत नहीं दे सकते।

आइवन साधु-भाव से हँसा—यह रिश्वत नहीं है, मि. जेलर ! इन्हें रिश्वत देकर अब मुझे इनसे क्या लेना-देना है ? अब ये अप्रसन्न होकर मेरा क्या बिगाड़ लेंगे और प्रसन्न होकर मुझे क्या देंगे ? यह उन कृपाओं का धन्यवाद है जिनके बिना चौदह साल तो क्या, मेरा यहाँ चौदह घंटे रहना असह्य हो जाता। जब वह जेल के फाटक से निकला, तो जेलर और सारे अन्य कर्मचारी उसके पीछे उसे मोटर तक पहुँचाने चले।

2

पन्द्रह साल पहले आइवन मास्को के सम्पन्न और सम्भ्रान्त कुल का दीपक था।

उसने विद्यालय में ऊँची शिक्षा पायी थी, खेल में अभ्यस्त था, निर्भीक था। उदार और सहृदय था। दिल आईने की भाँति निर्मल, शील का पुतला, दुर्बलों की रक्षा के लिए जान पर खेलनेवाला, जिसकी हिम्मत संकट के सामने नंगी तलवार हो जाती थी। उसके साथ हेलेन नाम की एक युवती पढ़ती थी, जिस पर विद्यालय के सारे युवक प्राण देते थे। वह जितनी ही रूपवती थी, उतनी ही तेज थी, बड़ी कल्पनाशील; पर अपने मनोभावों को ताले में बन्द रखनेवाली। आइवन में क्या देखकर वह उसकी ओर आकर्षित हो गयी, यह कहना कठिन है। दोनों में लेशमात्र भी सामंजस्य न था। आइवन सैर और शराब का प्रेमी था, हेलेन कविता एवं संगीत और नृत्य पर जान देती थी। आइवन की निगाह में रुपये केवल इसलिए थे कि दोनों हाथों से उड़ाये जायँ, हेलेन अत्यन्त कृपण। आइवन को लेक्चर-हॉल कारागार-सा लगता था; हेलेन इस सागर की मछली थी। पर कदाचित् वह विभिन्नता ही उनमें स्वाभविक आकर्षण बन गयी, जिसने अन्त में विकल प्रेम का रूप लिया। आइवन ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया और उसने स्वीकार कर लिया। और दोनों किसी शुभ मुहूर्त में पाणिग्रहण करके सोहागरात बिताने के लिए किसी पहाड़ी जगह में जाने के मनसूबे बाँध रहे थे कि सहसा राजनैतिक संग्राम ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। हेलेन पहले से ही राष्ट्रवादियों की ओर झुकी हुई थी। आइवन भी उसी रंग में रँग उठा। खानदान का रईस था, उसके लिए प्रजा-पक्ष लेना एक महान् तपस्या थी; इसलिए जब कभी वह इस संग्राम में हताश हो जाता, तो हेलेन उसकी हिम्मत बँधाती और आइवन उसके साहस और

अनुराग से प्रभावित होकर अपनी दुर्बलता पर लज्जित हो जाता।

इन्हीं दिनों उक्रायेन प्रान्त की सूबेदारी पर रोमनाफ नाम का एक गवर्नर नियुक्त होकर आया—बड़ा ही कट्टर, राष्ट्रवादियों का जानी दुश्मन, दिन में दो-चार विद्रोहियों को जब तक जेल न भेज लेता, उसे चैन न आता। आते-ही-आते उसने कई सम्पादकों पर राजद्रोह का अभियोग चलाकर उन्हें साइबेरिया भेजवा दिया, कृषकों की सभाएँ तोड़ दीं, नगर की म्युनिसिपलिटी तोड़ दी और जब जनता ने अपना रोष प्रकट करने के लिये जलसे किये, तो पुलिस से भीड़ पर गोलियाँ चलवायीं, जिससे कई बेगुनाहों की जानें गयीं। मार्शल लॉ जारी कर दिया। सारे नगर में हाहाकार मच गया। लोग मारे डर के घरों से न निकलते थे; क्योंकि पुलिस हर एक की तलाशी लेती थी और उसे पीटती थी।

हेलेन ने कठोर मुद्रा से कहा—यह अन्धेर तो अब नहीं देखा जाता, आइवन। इसका कुछ उपाय होना चाहिए।

आइवन ने प्रश्न की आँखों से देखा—उपाय ! हम क्या कर सकते हैं ?

हेलेन ने उसकी जड़ता पर खिन्न होकर कहा—तुम कहते हो, हम क्या कर सकते हैं? मैं कहती हूँ, हम सब कुछ कर सकते हैं। मैं इन्हीं हाथों से उसका अन्त कर दूँगी।

आइवन ने विस्मय से उसकी ओर देखा—तुम समझती हो, उसे कत्ल करना आसान है ? वह कभी खुली गाड़ी में नहीं निकलता। उसके आगे-पीछे सशस्त्र सवारों का एक दल हमेशा रहता है ! रेलगाड़ी में भी वह रिजर्व डब्बों में सफर करता है ! मुझे तो असम्भव सा लगता है, हेलेन—बिल्कुल असंभव।

हेलेन कई मिनट तक चाय बनाती रही। फिर दो प्याले मेज पर रखकर उसने प्याला मुँह से लगाया और धीरे-धीरे पीने लगी। किसी विचार में तन्मय हो रही थी। सहसा उसने प्याला मेज पर रख दिया और बड़ी-बड़ी आँखों में तेज भरकर बोली—यह सब कुछ होते हुए भी मैं उसे कत्ल कर सकती हूँ, आइवन ! आदमी एक बार अपनी जान पर खेलकर सब कुछ कर सकता है। जानते हो, मैं क्या करूँगी ? मैं उससे राहो-रस्म पैदा करूँगी; उसका विश्वास प्राप्त करूँगी, उसे इस भ्रांति में डालूँगी कि मुझे उससे प्रेम है। मनुष्य कितना ही हृदय-हीन हो, उसके हृदय के किसी-न-किसी कोने में पराग की भाँति रस छिपा ही रहता है। मैं तो समझती हूँ कि रोमनाफ की यह दमन-नीति उसकी अवरुद्ध अभिलाषा की गाँठ है और कुछ नहीं। किसी मायाविनी के प्रेम में असफल होकर उसके हृदय का रस-स्रोत सूख गया है। वहाँ रस का संचार करना होगा और किसी युवती का एक मधुर शब्द, एक सरल मुस्कान भी जादू का काम करेगी ! ऐसों को तो वह चुटकियों में अपने पैरों पर गिरा सकती है। तुम-जैसे सैलानियों को रिझाना इससे कहीं कठिन है। अगर तुम यह स्वीकार करते हो कि मैं रूपहीन नहीं हूँ, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरा कार्य सफल होगा। बतलाओ मैं रूपवती हूँ या नहीं ?

उसने तिर्छी आँखों के आइवन को देखा। आइवन इस भाव-विलास पर मुग्ध होकर बोला—तुम यह मुझसे पूछती हो, हेलेन ? मैं तो तुम्हें संसार की...

हेलेन ने उसकी बात काट कर कहा—अगर तुम ऐसा समझते हो, तो तुम मूर्ख हो, आइवन ! इसी नगर में नहीं, हमारे विद्यालय में ही, मुझसे कहीं रूपवती बालिकाएँ मौजूद हैं। हाँ, तुम इतना ही कह सकते हो कि तुम कुरूपा नहीं हो। क्या तुम समझते हो, मैं तुम्हें

संसार का सबसे रूपवान युवक समझती हूँ ? कभी नहीं। मैं ऐसे एक नहीं सौ नाम गिना सकती हूँ, जो चेहरे-मोहरे में तुमसे कहीं बढ़कर हैं, मगर तुममें कोई ऐसी वस्तु है, जो तुम्हीं में हैं और वह मुझे और कहीं नजर नहीं आती। तो मेरा कार्यक्रम सुनो। एक महीने तो मुझे उससे मेल करते लगेगा। फिर वह मेरे साथ सैर करने निकलेगा। और तब एक दिन हम और वह दोनों रात को पार्क में जायँगे और तालाब के किनारे बेंच पर बैठेंगे। तुम उसी वक्त रिवाल्वर लिये आ जाओगे और वहीं पृथ्वी उसके बोझ से हलकी हो जायगी।

जैसा हम पहले कह चुके हैं आइवन एक रईस का लड़का था और क्रांतिमय राजनीति से उसका हार्दिक प्रेम न था। हेलेन के प्रभाव से कुछ मानसिक सहानुभूति अवश्य पैदा हो गयी थी और मानसिक सहानुभूति प्राणी को संकट में नहीं डालती। उसने प्रकट रूप से तो कोई आपत्ति नहीं की लेकिन कुछ संदिग्ध भाव से बोला—यह तो सोचो हेलेन, इस तरह की हत्या कोई मानुषीय कृति है।

हेलेन ने तीखेपन से कहा—जो दूसरों के साथ मानुषीय व्यवहार नहीं करता, उसके साथ हम क्यों मानुषीय व्यवहार करें ? क्या यह सूर्य की भाँति प्रकट नहीं है कि आज सैकड़ों परिवार इस राक्षस के हाथों तबाह हो रहे हैं ? कौन जानता है, इसके हाथ कितने बेगुनाहों के खून से रँगे हुए हैं ? ऐसे व्यक्ति के साथ किसी तरह की रिआयत करना असंगत है। तुम न-जाने क्यों इतने ठण्डे हो। मैं तो उसके दुष्टाचरण को देखती हूँ तो मेरा रक्त खौलने लगता है। मैं सच कहती हूँ, जिस वक्त उसकी सवारी निकलती है, मेरी बोटी-बोटी हिंसा के आवेग से काँपने लगती है। अगर मेरे सामने कोई उसकी खाल भी खींच ले, तो मुझे दया न आये। अगर तुममें इसका साहस नहीं है, तो कोई हरज नहीं। मैं खुद सब कुछ कर लूँगी।, हाँ, देख लेना, मैं कैसे उस कुत्ते को जहन्नमुम पहुँचाती हूँ।

हेलेन का मुखमंडल हिंसा के आवेग से लाल हो गया। आइवन ने लज्जित होकर कहा—नहीं-नहीं, यह बात नहीं है, हेलेन ! मेरा यह आशय न था कि मैं इस काम में तुम्हें सहयोग न दूँगा। मुझे आज मालूम हुआ कि तुम्हारी आत्मा देश की दुर्दशा से कितनी विकल है; लेकिन मैं फिर यही कहूँगा कि यह काम इतना आसान नहीं है और हमें बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ेगा।

हेलेन ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—तुम इसकी कुछ चिन्ता न करो, आइवन ! संसार में मेरे लिए जो वस्तु सबसे प्यारी है, उसे दाँव पर रखते हुए क्या मैं सावधानी से काम न लूँगी ? लेकिन तुमसे एक याचना करती हूँ। अगर इस बीच में कोई ऐसा काम करूँ, जो तुम्हें बुरा मालूम हो तो तुम मुझे क्षमा करोगे न ?

आइवन ने विस्मय-भरी आँखों से हेलेन के मुख की ओर देखा। उसका आशय उसकी समझ में न आया।

हेलेन डरी, आइवन कोई नयी आपत्ति तो नहीं खड़ी करना चाहता। आश्वासन के लिए अपने मुख को उसके आतुर अधरों के समीप ले जाकर बोली—प्रेम का अभिनय करने में मुझे वह सब कुछ करना पड़ेगा, जिस पर एकमात्र तुम्हारा ही अधिकार है। मैं डरती हूँ, कहीं तुम मुझ पर सन्देह न करने लगो।

आइवन ने उसे कर-पाश में लेकर कहा—यह असम्भव है हेलेन, विश्वास प्रेम की पहली सीढ़ी है।

अंतिम शब्द कहते-कहते उसकी आँखें झुक गयीं। इन शब्दों में उदारता का जो आदर्श था, वह उस पर पूरा उतरेगा या नहीं, वह यही सोचने लगा।

इसके तीन दिन पीछे नाटक का सूत्रपात हुआ। हेलेन अपने ऊपर पुलिस के निराधार संदेह की फरियाद लेकर रोमनाफ से मिली और उसे विश्वास दिलाया कि पुलिस के अधिकारी उससे केवल इसलिए असंतुष्ट हैं कि वह उनके कलुषित प्रस्तावों को ठुकरा रही है। यह सत्य है कि विद्यालय में उसकी संगति कुछ उग्र युवकों से हो गयी थी; पर विद्यालय से निकलने के बाद उसका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। रोमनाफ जितना चतुर था, उससे कहीं चतुर अपने को समझता था। अपने दस साल के अधिकारी जीवन में उसे किसी ऐसी रमणी से साबिका न पड़ा था, जिसने उसके ऊपर इतना विश्वास करके अपने को उसकी दया पर छोड़ दिया हो। किसी धन-लोलुप की भाँति सहसा यह धन-राशि देखकर उसकी आँखों पर परदा पड़ गया। अपनी समझ में तो वह हेलेन से उग्र युवकों के विषय में ऐसी बहुत-सी बातों का पता लगाकर फूला न समाया, जो खुफिया पुलिसवालों को बहुत सिर-मारने पर भी ज्ञात न हो सकी थीं; पर इन बातों में मिथ्या का कितना मिश्रण है, वह न भाँप सका। इस आध घंटे में एक युवती ने एक अनुभवी अफसर को अपने रूप की मदिरा से उन्मत्त कर दिया था।

जब हेलेन चलने लगी, तो रोमनाफ ने कुर्सी से खड़े होकर कहा—मुझे आशा है, यह हमारी आखिरी मुलाक़ात न होगी।

हेलेन ने हाथ बढ़ाकर कहा—हुजूर ने जिस सौजन्य से मेरी विपत्ति-कथा सुनी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ।

'कल आप तीसरे पहर यहीं चाय पियें।'

रब्त-जब्त बढ़ने लगा। हेलेन आकर रोज की बातें आइवन से कह सुनाती। रोमनाफ वास्तव में जितना बदनाम है, उतना बुरा नहीं। नहीं, वह बड़ा रसिक, संगीत और कला का प्रेमी और शील तथा विनय की मूर्ति है। इन थोड़े ही दिनों में हेलेन से उसकी घनिष्ठता हो गयी है और किसी अज्ञात रीति से नगर में पुलिस का अत्याचार कम होने लगा है।

अन्त में वह निश्चित तिथि आयी। आइवन और हेलेन दिन-भर बैठे-बैठे इसी प्रश्न पर विचार करते रहे। आइवन का मन आज बहुत चंचल हो रहा था। कभी अकारण ही हँसने लगता, कभी अनायास ही रो पड़ता। शंका, प्रतीक्षा और किसी अज्ञात चिंता ने उसके मनो-सागर को इतना अशान्त कर दिया था कि उसमें भावों की नौकाएँ डगमगा रही थीं—न मार्ग का पता था न दिशा का। हेलेन भी आज बहुत चिन्तित और गम्भीर थी। आज के लिए उसने पहले ही से सजीले वस्त्र बनवा रखे थे। रूप को अलंकृत करने के न-जाने किन-किन विधानों का प्रयोग कर रही थी; पर इसमें किसी योद्धा का उत्साह नहीं, कायर का कम्पन था।

सहसा आइवन ने आँखों में आँसू भरकर कहा—तुम आज इतनी मायाविनी हो गयी हो हेलेन, कि मुझे न-जाने क्यों तुमसे भय हो रहा है !

हेलेन मुस्कायी। उस मुस्कान में करुणा भरी हुई थी—मनुष्य को कभी-कभी कितने ही अप्रिय कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है आइवन, आज मैं सुधा से विष का काम लेने जा रही हूँ। अलंकार का ऐसा दुरुपयोग तुमने कहीं और देखा है ?

आइवन उड़े हुए मन से बोला—इसी को राष्ट्र-जीवन कहते हैं।

'यह राष्ट्र-जीवन है—यह नरक है।'

'मगर संसार में अभी कुछ दिन और इसकी जरूरत रहेगी।'

'यह अवस्था जितनी जल्द बदल जाय, उतना ही अच्छा।'

पाँसा पलट चुका था, आइवन ने गर्म होकर कहा—अत्याचारियों को संसार में फलने-फूलने दिया जाय, जिसमें एक दिन इनके काँटों के मारे पृथ्वी पर कहीं पाँव रखने की जगह न रहे।

हेलेन ने कोई जवाब न दिया; पर उसके मन में जो अवसाद उत्पन्न हो गया था, वह उसके मुख पर झलक रहा था। राष्ट्र उसकी दृष्टि में सर्वोपरि था, उसके सामने व्यक्ति का कोई मूल्य न था। अगर इस समय उसका मन किसी कारण से दुर्बल भी हो रहा था, तो उससे खोल देने का उसमें साहस न था।

दोनों गले मिलकर विदा हुए। कौन जाने, यह अन्तिम दर्शन हो ?

दोनों के दिल भारी थे और आँखें सजल।

आइवन ने उत्साह के साथ कहा—मैं ठीक समय पर आऊँगा।

हेलेन ने कोई जवाब न दिया।

आइवन ने फिर सानुरोध कहा—खुदा से मेरे लिए दुआ करना, हेलेन !

हेलेन ने जैसे रोते हुए गले से कहा—मुझे खुदा पर भरोसा नहीं है।

'मुझे तो है !'

'कब से ?'

'जब से मौत मेरी आँखों के सामने खड़ी हो गयी।'

वह वेग के साथ चला गया। सन्ध्या हो गयी थी और दो घंटे के बाद ही उस कठिन परीक्षा का समय आ जायगा, जिससे उसके प्राण काँप रहे थे। वह कहीं एकान्त में बैठकर सोचना चाहता था। आज उसे ज्ञात हो रहा था कि वह स्वाधीन नहीं है। बड़ी मोटी जंजीर उसके एक-एक अंग को जकड़े हुए थी। इन्हें वह कैसे तोड़े ?

दस बज गये थे। हेलेन और रोमनाफ पार्क के एक कुंज में बेंच पर बैठे हुए थे। तेज बर्फीली हवा चल रही थी। चाँद किसी क्षीण आशा की भाँति बादलों में छिपा हुआ था।

हेलेन ने इधर-उधर सशंक नेत्रों से देखकर कहा—अब तो देर हो गयी, यहाँ से चलना चाहिए।

रोमनाफ ने बेंच पर पाँव फैलाते हुए कहा—अभी तो ऐसी देर नहीं हुई है, हेलेन ! कह नहीं सकता, जीवन के यह क्षण स्वप्न हैं या सत्य; लेकिन सत्य भी हैं तो स्वप्न से अधिक मधुर और स्वप्न भी हैं तो सत्य से अधिक उज्ज्वल।

हेलेन बेचैन होकर उठी और रोमनाफ का हाथ पकड़कर बोली—मेरा जी आज कुछ चंचल हो रहा है। सिर में चक्कर-सा आ रहा है। चलो मुझे मेरे घर पहुँचा दो।

रोमनाफ ने उसका हाथ पकड़कर अपनी बगल में बैठाते हुए कहा—लेकिन मैंने मोटर तो ग्यारह बजे बुलायी है !

हेलेन के मुँह से चीख निकल गयी—ग्यारह बजे !

'हाँ, अब ग्यारह बजा चाहते हैं। आओ तब तक और कुछ बातें हों। रात तो काली

बला-सी मालूम होती है। जितनी ही देर उसे दूर रख सकूँ उतना ही अच्छा। मैं तो समझता हूँ, उस दिन तुम मेरे सौभाग्य की देवी बनकर आयी थीं हेलेन, नहीं तो अब तक मैंने न जाने क्या-क्या अत्याचार किये होते। उस उदार नीति ने वातावरण में जो शुभ परिवर्तन कर दिया, उस पर मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा है। महीनों के दमन में जो कुछ न कर पाया था, वह दिनों के आश्वासन ने पूरा कर दिखाया। और इसके लिए मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, हेलेन, केवल तुम्हारा। पर खेद यही है कि हमारी सरकार दबा करना नहीं जानती, केवल मारना जानती है। जार के मंत्रियों में अभी से मेरे विषय में सन्देह होने लगा है, और मुझे यहाँ से हटाने का प्रस्ताव हो रहा है।

सहसा टार्च का चकाचौंध पैदा करनेवाला प्रकाश बिजली की भाँति चमक उठा और रिवाल्वर छूटने की आवाज आयी। उसी वक्त रोमनाफ ने उछलकर आइवन को पकड़ लिया और चिल्लाया—पकड़ो, पकड़ो ! खून हेलेन, तुम यहाँ से भागो।

पार्क में कई संतरी थे। चारों ओर से दौड़ पड़े। आइवन घिर गया। एक क्षण में न-जाने कहाँ से टाउन-पुलिस, सशस्त्र पुलिस, गुप्त पुलिस और सवार पुलिस के जत्थे-के-जत्थे आ पहुँचे। आइवन गिरफ्तार हो गया।

रोमनाफ ने हेलेन के हाथ मिलाकर सन्देह के स्वर में कहा—यह आइवन तो वही युवक है, जो तुम्हारे साथ विद्यालय में था।

हेलेन ने क्षुब्ध होकर कहा—हाँ, है। लेकिन मुझे इसका जरा भी अनुमान न था कि वह क्रान्तिकारी हो गया है।

'गोली मेरे सिर पर से सन्-सन् करती हुई निकल गयी।'

'या ईश्वर !'

'मैंने दूसरा फ़ायर करने का अवसर ही न दिया। मुझे इस युवक की दशा पर दुःख हो रहा है, हेलेन ! ये अभागे समझते हैं कि इन हत्याओं से वे देश का उद्धार कर लेंगे। अगर मैं मर ही जाता तो क्या मेरी जगह कोई मुझसे भी ज्यादा कठोर मनुष्य न आ जाता ? लेकिन मुझे जरा भी क्रोध, दुःख या भय नहीं है हेलेन, तुम बिलकुल चिन्ता न करना। चलो, मैं तुम्हें पहुँचा दूँ।'

रास्ते-भर रोमनाफ इस आघात से बच जाने पर अपने को बधाई और ईश्वर को धन्यवाद देता रहा और हेलेन विचारों में मग्न बैठी रही।

दूसरे दिन मजिस्ट्रेट के इजलास में अभियोग चला और हेलेन सरकारी गवाह थी। आइवन को मालूम हुआ कि दुनिया अँधेरी हो गयी है और वह उसकी अथाह गहराई में धँसता चला जा रहा है।

3

चौदह साल के बाद।

आइवन रेलगाड़ी से उतरकर हेलेन के पास जा रहा है। उसे घरवालों की सुध नहीं है। माता और पिता उसके वियोग में मरणासन्न हो रहे हैं, इसकी उसे परवाह नहीं है। वह अपने चौदह साल के पाले हुए हिंसा-भाव से उन्मत्त, हेलेन के पास जा रहा है; पर उसकी हिंसा में रक्त की प्यास नहीं है, केवल गहरी दाहक दुर्भावना है। इन चौदह सालों में उसने

जो यातनाएँ झेली हैं, उनके दो-चार वाक्यों में मानो सत्त निकालकर, विष के समान हेले: की धमनियों में भरकर, उसे तड़पते हुए देखकर, वह अपनी आँखों को तृप्त करना चाहत है। और वह वाक्य क्या है ?—"हेलेन, तुमने मेरे साथ जो दगा की है, वह शाय: त्रिया-चरित्र के इतिहास में भी अद्वितीय है। मैंने अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणों पर अर्पण कर दिया। मैं केवल तुम्हारे इशारों का गुलाम था। तुमने ही मुझे रोमनाफ की हत्या वे लिए प्रेरित किया और तुमने ही मेरे विरुद्ध साक्षी दी; केवल अपनी कुटिल काम-लिप्सा को पूरा करने के लिए ! मेरे विरुद्ध कोई दूसरा प्रमाण न था। रोमनाफ और उसकी सारी पुलिस भी झूठी शहादतों से मुझे परास्त न कर सकती थी; मगर तुमने केवल अपनी वासन को तृप्त करने के लिए, केवल रोमनाफ के विषाक्त आलिंगन का आनन्द उठाने के लि मेरे साथ यह विश्वासघात किया। पर आँखें खोलकर देखो कि वही आइवन, जिसे तुमने पै के नीचे कुचला था, आज तुम्हारी उन सारी मक्कारियों का पर्दा खोलने के लिए तुम्हा सामने खड़ा है। तुमने राष्ट्र की सेवा का बीड़ा उठाया था। तुम अपने को राष्ट्र की वेदी प होम कर देना चाहती थीं; किन्तु कुत्सित कामनाओं के पहले ही प्रलोभन में तुम अपने सा बहुरूप को तिलांजलि देकर भोग-लालसा की गुलामी करने पर उतर गयीं। अधिकार औ समृद्धि के पहले ही टुकड़े पर तुम दुम हिलाती हुई टूट पड़ीं, धिक्कार है तुम्हारी इ भोग-लिप्सा को, तुम्हारे इस कुत्सित जीवन को ?"

4

सन्ध्या-काल था। पश्चिम के क्षितिज पर दिन की चिता जलकर ठंडी हो रही थी अ रोमनाफ के विशाल भवन में हेलेन की अर्थी को ले चलने की तैयारियाँ हो रही थीं। न के नेता जमा थे और रोमनाफ अपने शोक-कंपित हाथों से अर्थी को पुष्पहारों से सजा र था एवं उन्हें अपने आत्म-जल से शीतल कर रहा था। उसी वक्त आइवन उन्मत्त वेश दुर्बल, झुका हुआ, सिर के बाल बढ़ाये, कंकाल-सा आकर खड़ा हो गया। किसी ने उस ओर ध्यान न दिया। समझे, कोई भिक्षुक होगा, जो ऐसे अवसरों पर दान के लोभ से जाया करते हैं !

जब नगर के बिशप ने अन्तिम संस्कार समाप्त किया और मरियम की बेटियाँ जीवन के स्वागत पर गीत गा चुकीं, तो आइवन ने अर्थी के पास जाकर आवेश से काँ हुए स्वर में कहा—यह वह दुष्टा है, जिसे सारी दुनिया के पवित्र आत्माओं की शुभ कामन भी नरक की यातना से नहीं बचा सकतीं। वह इस योग्य थी कि उसकी लाश...

कई आदमियों ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और धक्के देते हुए फाटक की ओर चले। उसी वक्त रोमनाफ ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया और उसे अलग जाकर पूछा—दोस्त, क्या तुम्हारा नाम क्लॉडियस आइवनाफ है ? हाँ, तुम वही हो, तुम्हारी सूरत याद आ गयी। मुझे सब कुछ मालूम है, रत्ती-रत्ती मालूम है। हेलेन ने मु कोई बात नहीं छिपायी। अब वह इस संसार में नहीं है, मैं झूठ बोलकर उसकी कोई नहीं कर सकता। तुम उस पर कठोर शब्दों का प्रहार करो या कठोर आघातों का, वह स रूप से शान्त रहेगी; लेकिन अन्त समय तक वह तुम्हारी याद करती रही। उस प्रसंग स्मृति उसे सदैव रुलाती रहती थी। उसके जीवन की यह सबसे बड़ी कामना थी कि तु

सामने घुटने टेककर क्षमा की याचना करे, मरते-मरते उसने यह वसीयत की, कि जिस तरह भी हो सके उसकी यह विनय तुम तक पहुँचाऊँ कि वह तुम्हारी अपराधिनी है और तुमसे क्षमा चाहती है। क्या तुम समझते हो, जब वह तुम्हारे सामने आँखों में आँसू भरे आती, तो तुम्हारा हृदय पत्थर होने पर भी न पिघल जाता ? क्या इस समय भी तुम्हें दीन याचना की प्रतिमा-सी खड़ी नहीं दीखती ? चलकर उसका मुस्कराता हुआ चेहरा देखो। मोशियो आइवन, तुम्हारा मन अब भी उसका चुम्बन लेने के लिये विकल हो जायगा। मुझे जरा भी ईर्ष्या न होगी। उस फूलों की सेज पर लेटी हुई वह ऐसी लग रही है, मानो फूलों की रानी हो। जीवन में उसकी एक ही अभिलाषा अपूर्ण रह गयी आइवन, वह तुम्हारी क्षमा है। प्रेमी हृदय बड़ा उदार होता है आइवन, वह क्षमा और दया का सागर होता है। ईर्ष्या और दम्भ के गन्दे नाले उसमें मिलकर उतने ही विशाल और पवित्र हो जाते हैं। जिसे एक बार तुमने प्यार किया, उसकी अन्तिम अभिलाषा की तुम उपेक्षा नहीं कर सकते।

उसने आइवन का हाथ पकड़ा और सैकड़ों कुतूहल-पूर्ण नेत्रों के सामने उसे लिये हुए अर्थी के पास आया और ताबूत का ऊपरी तख्ता हटाकर हेलेन का शान्त मुखमण्डल उसे दिखा दिया। उस निस्पन्द, निश्चेष्ट, निर्विकार छवि को मृत्यु ने एक दैवी गरिमा-सी प्रदान कर दी थी, मानो स्वर्ग की सारी विभूतियाँ उसका स्वागत कर रही हैं। आइवन की कुटिल आँखों में एक दिव्य ज्योति-सी चमक उठी और वह दृश्य सामने खिंच गया, जब उसने हेलेन को प्रेम मे आलिंगित किया था और अपने हृदय के सारे अनुराग और उल्लास को पुष्पों में गूँथ कर उसके गले में डाला था। उसे जान पड़ा, यह सब कुछ जो उसके सामने हो रहा है, स्वप्न है और एकाएक उसकी आँखें खुल गयी हैं और वह उसी भाँति हेलेन को अपनी छाती से लगाये हुए है। उस आत्मानन्द के एक क्षण के लिए क्या वह फिर चौदह साल का कारावास झेलने के लिए न तैयार हो जायगा ? क्या अब भी उसके जीवन की सबसे सुखद घड़ियाँ वही न थीं, जो हेलेन के साथ गुजरी थीं और क्या उन घड़ियों के अनुपम आनन्द को वह इन चौदह सालों में भी भूल सका था ? उसने ताबूत के पास बैठकर श्रद्धा के काँपते हुए कंठ से प्रार्थना की—'ईश्वर, तू मेरे प्राणों से प्रिय हेलेन को अपनी क्षमा के दामन में ले !' और जब वह ताबूत को कन्धे पर लिये चला, तो उसकी आत्मा लज्जित थी अपनी संकीर्णता पर, अपनी उद्विग्नता पर, अपनी नीचता पर, और जब ताबूत कब्र में रख दिया गया, तो वह वहाँ बैठकर न-जाने कब तक रोता रहा। दूसरे दिन रोमनाफ जब फातिहा पढ़ने आया देखा, आइवन सिजदे में सिर झुकाये हुए है और उसकी आत्मा स्वर्ग को प्रयाण कर चुकी है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', जुलाई, 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

ईदगाह

रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आयी है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर

कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है। पड़ोस के घर से सुई-धागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गये हैं। उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायेगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असंभव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। उनके लिए तो ईद है। रोज़ ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गयी। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिंताओं से क्या प्रयोजन ! सेवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से ये तो सेवैयाँ खायेंगे। वह क्या जाने कि अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या ख़बर कि चौधरी आज आँखें बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाय। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खजाना निकालकर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक-दो, दस-बारह। उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास एक, दो, तीन, आठ, नौ, पन्द्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीजें लायेंगे—खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और न जाने क्या-क्या। और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत-वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गयी। किसी को पता न चला, क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुनने वाला था। दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से बिदा हो गयी। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गये हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आयेंगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें लाने गयी हैं; इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज है, और फिर बच्चों की आशा ! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोट काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आयेंगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं ! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती ! इस अंधकार और निराशा में वह डूबी जा रही थी। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं है, लेकिन हामिद ! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब ? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल-बल लेकर आये, हामिद की आनन्द-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्माँ, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना !

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद के बाप अमीना के सिवा और कौन है ? उसे कैसे अकेले मेले जाने दे। उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाय तो क्या हो। नहीं; अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्हीं-सी जान ! तीन कोस चलेगा कैसे ! पैर में छाले पड़ जायेंगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगी; लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकायेगा ? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घण्टों चीजें जमा करते लगेंगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फहीमन के कपड़े सिये थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए, लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गयी तो क्या करती। हामिद के लिए कुछ नहीं है, तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटवे में। यही तो बिसात है और ईद का त्योहार ! अल्लाह ही बेड़ा पार लगावे। धोबन और नाइन और मेहतरानी और चूड़िहारिन सभी तो आयेंगी। सभी को सेवैयाँ चाहिए और थोड़ा किसी की आँखों नहीं लगता। किस-किस से मुँह चुरायेगी। और मुँह क्या चुराये ? साल भर का त्यौहार है। ज़िन्दगी ख़ैरियत से रहे, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जायँगे।

गाँव से मजा चला। और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सबके सब दौड़कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथवालों का इन्तज़ार करते। ये लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं। हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गये हैं। वह कभी थक सकता है ! शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कँकड़ी उठाकर आम पर निशाना लगता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फर्लांग पर हैं। खूब हँस रहे हैं। माली को कैसे उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं; यह अदालत है, यह कालेज है, यह क्लब घर है। इतने बड़े कालेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे ? सब लड़के नहीं हैं जी ! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच उनकी बड़ी-बड़ी मूँछे हैं। इतने बड़े हो गये, अभी तक पढ़ने जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर। हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिलकुल तीन कौड़ी के, रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुरानेवाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या। क्लब-घर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुरदे की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं, पर किसी को अन्दर नहीं जाने देते। और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछों दाढ़ीवाले और मेमें खेलती हैं, सच ! हमारी अम्मा को वह दे दो, क्या नाम है, बैठ, तो उसे पकड़ ही न सकें। घुमाते ही लुढ़क न जायँ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।

मोहसिन बोला—अम्मी मनों आटा पीस डालती हैं। ज़रा-सा बैट पकड़ लेंगी, तो हाथ काँपने लगे। सैकड़ों घड़े पानी रोज़ निकालती हैं। पाँच घड़े तो मेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले अँधेरा आ जाय।

महमूद—लेकिन दौड़ती तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकतीं।

मोहसिन—हाँ, उछल-कूद नहीं सकतीं; लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गयी थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्माँ इतनी तेज दौड़ीं कि मैं उन्हें न पा सका, सच ?

आगे चले। हलवाइयों की दुकानें शुरू हुईं। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है। देखो न, एक-एक दुकान पर मनों होंगी। सुना है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दुकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह तुलवा लेता है और सचमुच के रुपये देता है, बिलकुल ऐसे ही रुपये।

हामिद को यकीन न आया—ऐसे रुपये जिन्नात को कहाँ से मिल जायेंगे ?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रुपये की क्या कमी ? जिस खजाने में चाहें, चले जायँ। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में। हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं, जिससे खुश हो गये, उसे टोकरों जवाहरात दे दिये। अभी यहीं बैठे हैं, पाँच मिनट में कहो कलकत्ता पहुँच जायँ।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होगे ?

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। जमीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहें तो एक लोटे में घुस जायँ।

हामिद—लोग उन्हें खुश करते होंगे ? कोई मुझे वह मन्तर बता दे, तो एक जिन्न को खुश कर लूँ।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज चोरी जाय, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीस दिन हैरान हुए, कहीं न मिला। तब झख मारकर चौधरी के पास गये। चौधरी ने तुरन्त बता दिया कि मवेशीखाने में है, और वहीं मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबरें दे जाते हैं।

अब उसकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबल कवायत करते हैं। रैटन ! फाय फो ! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जायँ। मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबल पहरा देते हैं ? तभी तुम बहुत जानते हो। अजी हजरत, यही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं, चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो! जागते रहो ?' पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने रुपये आते हैं। मेरे मामूँ एक थाने में कानिसटिबल हैं। बीस रुपया महीना पाते हैं; लेकिन पचास रुपये घर भेजते हैं। अल्ला कसम ! मैंने एक बार पूछा था कि मामूँ, आप इतने रुपये कहाँ से पाते हैं ? हँसकर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लायें। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाय।

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं ?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा।

पकड़नेवाला तो यह खुद हैं; लेकिन अल्लाह इन्हें सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े ही दिन हुए, मामूँ के घर में आग लग गयी। सारी लेई-पूँजी जल गयी। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोये, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे। फिर न जाने कहाँ से एक सौ कर्ज लाये तो बरतन-भांडे आये।

हामिद–एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं ?

'कहाँ पचास कहाँ एक सौ। पचास एक थैली-भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आवें।'

अब बस्ती घनी होने लगी थी। ईदगाह जानेवालों की टोलियाँ नजर आने लगीं। एक-से एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए। कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे; सभी के दिलों में उमंग। ग्रामीणों का यह छोटा-सा दल अपनी विपन्नता से बेखबर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीजें अनोखी थीं। जिस चीज की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते। और पीछे से बार-बार हॉर्न की आवाज होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा .

सहसा ईदगाह नजर आया। ऊपर इमली के घने वृक्षों की छाया। नीचे पक्का फर्श है, जिस पर जाजिम बिछा हुआ है। और रोजेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गयी हं, पक्के जगत के नीचे तक, जहाँ जाजिम भी नहीं है। नये आनेवाले आकर पीछे की कतार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रीमीणों ने भी वजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गये। कितना सुन्दर संचालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था ! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब-के-सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जायँ, और यही क्रम चलता रहा। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनन्तता हृदय कसे श्रद्धा, गर्व और आत्मानन्द से भर देती थी, मानों भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोये हुए है।

2

नमाज खत्म हो गयी है। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौने की दुकानों पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छड़ों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मजा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का तिहाई जरा-सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चर्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दुकानों की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं–सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, भिश्ती और धोबिन

और साधू। वाह ! कितने सुन्दर खिलौने हैं। अब बोला ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ीवाला, कन्धे पर बन्दूक रखे हुए। मालूम होता है, अभी कवायद किये चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया। कमर झुकी है, ऊपर मशक रखे हुए है। मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उंडेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वता है उसके मुख पर ! काला चोगा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी जंजीर, एक हाथ में कानून का पोथा लिए हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किये चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं; इतने महँगे खिलौने वह कैसे ले ? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े, तो चूर-चूर हो जाय। जरा पानी पड़े तो सारा रंग धुल जाय। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा; किस काम के!

मोहसिन–मेरा भिश्ती रोज पानी दे जायगा; साँझ-सबेरे।

महमूद–और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आवेगा, तो फौरन बन्दूक से फैर कर देगा !

नूरे–और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।

सम्मी–और मेरी धोबिन रोज कपड़े धोयेगी।

हामिद खिलौने की निन्दा करता है–मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जायँ, लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि जरा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं : लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक है। हामिद ललचाता रह जाता है।

खिलौने के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाबजामुन, किसी ने सोहनहलुआ। मजे से खा रहे हैं। हामिद उनकी बिरादरी से पृथक है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता ? ललचायी आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है–हामिद, रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है।

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है; लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन–अच्छा, अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्ला कसम, ले जाव।

हामिद–रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं ?

सम्मी–तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे ?

महमूद–हमसे गुलाबजामुन ले जाव हामिद। मोहसिन बदमाश है।

हामिद–मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन–लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते ?

महमूद–हम समझते हैं इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जायेंगे, तो

हमें ललचा-ललचाकर खायगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दुकानें लोहे की चीजों की हैं। कुछ गिलट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दुकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती है, तो हाथ जल जाता है; अबर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होंगी ? फिर उनकी उंगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज हो जायगी। खिलौने से क्या फायदा। व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। जरा देर ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौनों को कोई आँख उठा कर नहीं देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जायेंगे, या छोटे बच्चे जो मेले में नहीं आए हैं, ज़िद करके ले लेंगे और तोड़ डालेंगे। चिमटा कितने काम की चीज है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हें में सेंक लो। कोई आग माँगने आवे तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फुर्सत है कि बाजार आयें, और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं। रोज हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गये हैं। सबील पर सब-के-सब शर्बत पी रहे हैं। देखो, सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूँगा। खायें मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुन्सियाँ निकलेंगी, आप ही जबान चटोरी हो जायगी। तब घर के पैसे चुरायेंगे और मार खायेंगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों खराब होगी ? अम्मा चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है! हजारों दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखायेंगी। सारे गाँव में चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का हैं इन लोगों के खिलौनों पर कौन इन्हें दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिजाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिजाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने और खायें मिठाइयाँ। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिजाज क्यों सहूँ। मैं गरीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाता। आखिर अब्बाजान कभी-न-कभी आयेंगे। अम्माँ भी आयेंगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा कितने खिलौने लोगे ? एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ आर दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवड़ियाँ लीं तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सब-के-सब खूब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें। मेरी बला से। उसने दुकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का हे ?

दुकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा—यह तुम्हारे काम का नहीं है जी ?

'बिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाये हैं ?'

'बिकाऊ है, क्यों नहीं ?'

'तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है ?'

'छै पैसे लगेंगे।'

हामिद का दिल बैठ गया।

'ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।'

हामिद ने कलेजा मजबूत करके कहा—तीन पैसे लोगे ?

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दुकानदार की घुड़कियाँ न सुने। लेकिन दुकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दीं। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कन्धे पर रखा, मानो बन्दूक है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। जरा सुनें, सब-के-सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा—यह चिमटा क्यों लाया पगले; इसे क्या करेगा ? हामिद ने चिमटे को जमीन पर पटककर कहा—जरा अपना भिश्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जायँ बच्चा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है ?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं ? अभी कन्धे पर रखा, बन्दूक हो गयी। हाथ में लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाय। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगावें, वे मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खँजरी से बदलोगे ? दो आने की है।

हामिद ने खँजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खँजरी का पेट फाड़ डाले। बस, एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। जरा-सा पानी लग जाय तो खतम हो जाय। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, तूफान में बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया; लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं ! फिर मेले से दूर निकल आये हैं, नौ कब के बज गये, धूप तेज हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से जिद भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता है। हामिद है बड़ा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे !

अब बालकों के दो दल हो गये हैं। मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूर एक तरफ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हो गया। दूसरे पक्ष से जा मिला; लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक, दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाय, तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जायँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बन्दूक छोड़कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाय, चुगे में मुँह छिपाकर जमीन पर लेट जायँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे-हिन्द लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने एड़ी-चोटी का जोर लगाकर कहा—अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता।

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिश्ती को एक डाँट बतायेगा, तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया; पर महमूद ने कुमक पहुँचाई—अगर बच्चा पकड़ा जाये तो

अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब के ही पैरों पड़ेंगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा—हमें पकड़ने कौन आयेगा?

नूरे ने अकड़कर कहा—यह सिपाही बन्दूक वाला।

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा—यह बेचारे हम बहादुर रुस्तमे-हिन्द को पकड़ेंगे ! अच्छा लाओ, अभी जरा कुश्ती हो जाय। इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगें। पकड़ेंगे क्या बेचारे !

मोहसिन को एक नयी चोट सूझ गयी—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग में जलेगा।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा; लेकिन यह बात न हुई। हामिद ने तुरन्त जवाब दिया—आग में बहादुर ही कूदते है जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लौंडियों की तरह घर में घुस जायँगे। आग में कूदना वह काम है, जो रुस्तमे-हिन्द ही कर सकता है।

महमूद ने एक जोर लगाया—वकील साहब कुर्सी-मेज पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावरचीखाने में जमीन पर खड़ा रहेगा।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया। कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने। चिमटा बावरचीखाने में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है?

हामिद का कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—मेरा चिमटा बावरचीखाने में नहीं रहेगा। वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे तो जाकर उन्हें जमीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ बनी नहीं। खासी गाली-गलौच थी; कानून को पेट में डालने वाली बात छा गयी। ऐसी छा गयी थी कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गए, मानों कोई धेलचा कनकौआ किसी गण्डेवाले कनकौए को काट गया हो। कानून मुँह से बाहर निकलनेवाली चीज है। उसको पेट के अन्दर डाल दिया जावे, बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रुस्तमे-हिन्द है। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारनेवालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे खर्च किये; पर कोई काम की चीज न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा ? टूट-फूट जायँगे। हामिद का चिमटा बना रहेगा बरसों !

सन्धि की शर्त तय होने लगी। मोहसिन ने कहा—जरा अपना चिमटा दो, हम भी देखें, तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किये।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया; और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आये। कितने खूबसूरत खिलौने हैं !

हामिद ने हारनेवाले के आँसू पोंछे—मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच। यह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा; मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से संतोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का

खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा।

महमूद—दुआ को लिए फिरते हो। उलटे मार न पड़े। अम्माँ जरूर कहेंगी कि मेले में मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले ?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देखकर किसी की माँ इतनी खुश न होंगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होंगी। तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल जरूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रुस्तमे-हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दिये। महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गये। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

3

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गयी। मेलेवाले आ गये। मोहसिन की छोटी बहन ने दौड़कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भाई-बहन में मार-पीट हुई। दोनों खूब रोये। उनकी अम्माँ यह शोर सुनकर बिगड़ीं और दोनों को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाये।

मियाँ नूरे के वकील का अन्त उसकी प्रतिष्ठानुकूल इससे ज्यादा गौरवमय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो खूटियाँ गाड़ी गयीं। उन पर लकड़ी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर कागज का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति सिंहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पंखा झलना शुरू किया। अदालतों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो। कानून की गर्मी दिमाग पर चढ़ जायगी कि नहीं। बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नहीं, पंखे की हवा से या पंखे की चोट से वकील साहब स्वर्गलोक से मृत्युलोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया। फिर बड़े जोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूर पर डाल दी गयी।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया; लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो था नहीं; जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आयी, उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिथड़े बिछाये गये, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटें। नूरे ने यह टोकरी उठायी और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ से 'छोनेवाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अंधेरी ही होनी चाहिए। महमूद को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक लिये जमीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डाक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फानन जोड़ सकते हैं। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग

जोड़ दी जाती है; लेकिन सिपाही को ज्योंही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे जाती है। शल्यक्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपान्तर चाहो, कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

'यह चिमटा कहाँ था ?'

'मैंने मोल लिया है।'

'कै पैसे में ?'

'तीन पैसे दिये।'

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दो पहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या यह चिमटा ! सारे मेले में तुझे और कोई चीज न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया।

हामिद ने अपराधी भाव से कहा—तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं, इसलिए मैंने इसे ले लिया।

बुढ़िया का क्रोध तुरन्त स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्भाव और कितना विवेक है ! दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर उसका मन कितना ललचाया होगा। इतना जब्त इससे हुआ कैसे ? वहाँ भी उसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद् हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गयी। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता !

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। 'इस्मत', वार्षिक अंक, 1933 में प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से हिन्दी मासिक पत्रिका, चांद', अगस्त, 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित।]

दिल की रानी

जिन वीर तुर्कों के प्रखर प्रताप से ईसाई-दुनिया काँप रही थी, उन्हीं का रक्त आज कुस्तुन्तुनिया की गलियों में बह रहा है। वही कुस्तुन्तुनिया, जो सौ साल पहले तुर्कों के

आतंक से आहत हो रहा था, आज उनके गर्म रक्त से अपना कलेजा ठण्डा कर रहा है। सत्तर हजार तुर्क योद्धाओं की लाशें बास-फरस की लहरों पर तैर रही हैं और तुर्की सेनापति एक लाख सिपाहियों के साथ तैमूरी तेज के सामने अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए खड़ा है।

तैमूर ने विजय से भरी आँखें उठाईं और सेनापति यज़दानी की ओर देखकर सिंह के समान गरजा—क्या चाहते हो, जिन्दगी या मौत ?

यज़दानी ने गर्व से सिर उठाकर कहा—इज्जत की ज़िन्दगी मिले तो ज़िन्दगी, वरना मौत।

तैमूर का क्रोध प्रचण्ड हो उठा। उसने बड़े-बड़े अभिमानियों का सिर नीचा कर दिया था। यह जवाब इस अवसर पर सुनने की उसे ताब न थी। इन एक लाख आदमियों की जान उसकी मुट्ठी में है। उन्हें वह एक क्षण में मसल सकता है। उस पर भी इतना अभिमान ! इज्जत की जिन्दगी ! इसका यही तो अर्थ है कि गरीबों का जीवन अमीरों के भोग-विलास पर बलिदान किया जाय, वही शराब की मज़लिसें हमें, वही अरमीनिया और काफ़ की परियाँ...नहीं, तैमूर ने खलीफा बायज़ीद का घमण्ड इसलिए नहीं तोड़ा है कि तुर्कों को फिर उस मदान्ध स्वाधीनता में इस्लाम का नाम डुबाने को छोड़ दे . तब उसे इतना रक्त बहाने की जरूरत थी। मानव-रक्त का प्रवाह संगीत का प्रवाह नहीं, रस का प्रवाह नहीं—एक वीभत्स दृश्य है, जिसे देखकर आँखें मुँह फेर लेती हैं, हृदय सिर झुका लेता है। तैमूर कोई हिंसक पशु नहीं है, जो यह दृश्य देखने के लिए अपने जीवन की बाजी लगा दे।

वह अपने शब्दों में धिक्कार भरकर बोला—जिसे तुम इज्जत की ज़िन्दगी कहते हो, वह गुनाह और जहन्नुम की ज़िन्दगी है।

यज़दानी को तैमूर से दया या क्षमा की आशा न थी। उसकी या उसके योद्धाओं की जान किसी तरह नहीं बच सकती। फिर क्यों दबे और क्यों न जान पर खेलकर तैमूर के प्रति उसके मन में जो घृणा है, उसे प्रकट कर दे। उसने एक बार कातर नेत्रों से उस रूपवान युवक की ओर देखा, जो उसके पीछे खड़ा जैसे अपनी जवानी का लगाम खींच रहा था। सान पर चढ़े हुए, इस्पात के समान अंग-अंग से अतुल क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं। यज़दानी ने उसकी सूरत देखी और जैसे अपनी खींची हुई तलवार म्यान में कर ली और खून के घूँट पीकर बोला—जहाँपनाह इस वक्त फतहमंद हैं, लेकिन अपराध क्षमा हो तो कह दूँ कि अपने जीवन के विषय में तुर्कों को तातारियों से उपदेश लेने की जरूरत नहीं पड़ी। दुनिया से अलग, तातार के ऊसर मैदानों में न त्याग और व्रत की उपासना की जा सकती है और न मयस्सर होने वाले पदार्थों का बहिष्कार किया जा सकता है; पर जहाँ खुदा ने नेमतों की वर्षा की हो, वहाँ उन नेमतों को भोग न करना नाशुक्री है; अगर तलवार ही सभ्यता की सनद होती, तो गाल कौम रोमनों से कहीं ज्यादा सभ्य होती।

तैमूर जोर से हँसा और उसके सिपाहियों ने तलवारों पर हाथ रख लिये। तैमूर का ठहाका मौत का ठहाका था, या गिरने वाले वज्र का तड़ाका।

'तातारवाले पशु हैं, क्यों ?'

'मैं यह नहीं कहता।'

'तुम कहते हो, खुदा ने तुम्हें ऐश करने के लिए पैदा किया है। मैं कहता हूँ, वह

कुफ्र है। खुदा ने इन्सान को बन्दगी के लिए पैदा किया है और इसके खिलाफ जो कोई कुछ करता है, वह काफिर है, जहन्नुमी है। रसूलेपाक हमारी जिन्दगी को पाक करने के लिए आये थे, हमें सच्चा इन्सान बनाने के लिए आये थे; हमें हराम की तालीम देने नहीं। तैमूर दुनिया को इस कुफ्र से पाक कर देने का बीड़ा उठा चुका है। रसूलेपाक के कदमों की कसम; मैं बेरहम नहीं हूँ, जालिम नहीं, खूँख्वार नहीं हूँ; लेकिन कुफ्र की सजा मेरे ईमान में मौत के सिवा कुछ नहीं है।'

उसने तातारी सिपहसालार की तरफ कातिल नजरों से देखा और तत्क्षण एक देव-सा आदमी तलवार सौंतकर यज़दानी के सिर पर आ पहुँचा। तातारी सेना भी तलवारें खींच-खींचकर तुर्की सेना पर टूट पड़ीं और दम-के-दम में कितनी ही लाशें जमीन पर फडकने लगीं।

2

सहसा वही रूपवान युवक, जो यज़दानी के पीछे खड़ा था, आगे बढ़कर तैमूर के सामने आया और जैसे मौत को अपनी बँधी हुई मुट्ठियों में मसलता हुआ बोला—ऐ अपने को मुसलमान कहने वाले बादशाह ! क्या यही वह इस्लाम है, जिसकी तालीम का तूने बीड़ा उठाया है ? इस्लाम की यही तालीम है कि तू उन बहादुरों का इस बेदर्दी से खून बहाये, जिन्होंने इसके सिवा कोई गुनाह नहीं किया कि अपने खलीफा और अपने मुल्क की हिमायत की। ·

चारों तरफ सन्नाटा छा गया। एक युवक, जिसकी अभी मसें न भीगी थीं, तैमूर जैसे तेजस्वी बादशाह का इतने खुले हुए शब्दों में तिरस्कार करे और उसकी जबान तालू से न खिंचवा ली जाय ! सभी स्तम्भित हो रहे थे और तैमूर सम्मोहित-सा बैठा उस युवक की ओर ताक रहा था।

युवक ने तातारी सिपाहियों की तरफ, जिनके चेहरों पर कुतूहलमय प्रोत्साहन झलक रहा था, देखा और बोला—तू इन मुसलमानों को काफिर कहता है और समझता है कि तू इन्हें कत्ल करके खुदा और इस्लाम की खिदमत कर रहा है। मैं तुझसे पूछता हूँ, अगर वह लोग जो खुदा के सिवा और किसी के सामने सिजदा नहीं करते, जो रसूलेपाक को अपना रहबर समझते हैं, मुसलमान नहीं हैं तो कौन मुसलमान है ? मैं कहता हूँ, हम काफिर सही, लेकिन तेरे कैदी तो हैं ? क्या इस्लाम जंजीर में बँधे हुए कैदियों के कत्ल की इजाजत देता है ? खुदा ने अगर तुझे ताकत दी है, अख्तियार दिया है, तो क्या इसलिए कि तू खुदा के बन्दों का खून बहाये ? क्या गुनहगारों को कत्ल करके उन्हें सीधे रास्ते पर ले जायगा? तूने कितनी बेरहमी से सत्तर हजार बहादुर तुर्कों को धोखा देकर सुरंग से उड़वा दिया; और उनके मासूम बच्चों और निरपराध स्त्रियों को अनाथ कर दिया, तुझे कुछ अनुमान है ? क्या यही कारनामे हैं, जिन पर तू अपने को मुसलमान होने का गर्व करता है ? क्या इसी कत्ल, खून और जुल्म की सियाही से तू दुनिया में अपना नाम रोशन करेगा ? तूने तुर्कों के खून बहते दरिया में अपने घोड़ों के सुम नहीं भिगाये हैं, बल्कि इस्लाम को जड़ से खोदकर फेंक दिया है। यह वीर तुर्कों का ही आत्मोत्सर्ग है, जिसने यूरोप में इस्लाम की तौहीद फैलाई। आज सोफिया के गिरजे में तुझे अल्लाहो अकबर की सदा सुनाई दे रही है, सारा

यूरोप इस्लाम का स्वागत करने को तैयार है। क्या ये कारनामे इसी लायक हैं कि उनका यह इनाम मिले ? इस खयाल को दिल से निकाल दे कि तू खूँरेज़ी से इस्लाम की खिदमत कर रहा है। एक दिन तुझे भी परवरदिगार के सामने अपने कर्मो का जवाब देना पड़ेगा और तेरा कोई उज्र न सुना जायगा; क्योंकि अगर तुझमें अब भी नेक और बद की तमीज बाकी है, तो अपने दिल से पूछ। तूने यह जिहाद खुदा की राह में किया या अपनी हविस के लिए, और मैं जानता हूँ तुझे जो जवाब मिलेगा, वह तेरी गर्दन शर्म से झुका देगा।

खलीफा अभी सिर झुकाये ही था कि यज़दानी ने काँपते हुए शब्दों में अर्ज़ की—जहाँपनाह, यह गुलाम का लड़का है। इसके दिमाग में कुछ फितूर है। हुजूर इसकी गुस्ताखियों को मुआफ करे। मैं उसकी सजा झेलने को तैयार हूँ।

तैमूर उस युवक के चेहरे की तरफ स्थिर नेत्रों से देख रहा था। आज जीवन में पहली बार उसे ऐसे निर्भीक शब्दों को सुनने का अवसर मिला। उसके सामने बड़े-बड़े सेनापतियों, मन्त्रियों और बादशाहों की जबान न खुलती थी। वह जो कुछ करता या कहता था, वही कानून था, किसी को उसमें चूँ करने की ताकत न थी। उनकी खुशामदों ने उसकी अहंमन्यता को आसमान पर चढ़ा दिया था। उसे विश्वास हो गया था कि खुदा ने इस्लाम को जगाने और सुधारने के लिए ही उसे दुनिया में भेजा है। उसने पैगम्वरी का दावा तो आज तक नहीं किया था; पर उसके मन में यह भावना दृढ़ हो गयी थी; इसलिए जब युवक ने प्राणों का मोह छोड़ उसकी कीर्ति का पर्दा खोल दिया तो उसकी चेतना जैसे जाग उठी। उसके मन में क्रोध ओर हिंसा की जगह श्रद्धा का उदय हुआ। उसकी आँखों का एक इशारा इस युवक की जिन्दगी का चिराग गुल कर सकता था। उसकी संसार-विजयिनी शक्ति के सामने यह दुधमुँहा बालक मानो अपने नन्हे-नन्हे हाथों से समुद्र के प्रवाह को रोकने के लिए खड़ा हो। कितना हास्यास्पद साहस था; पर उसके साथ ही कितना आत्मविश्वास से भरा हुआ। तैमूर को ऐसा जान पड़ा कि इस निहत्थे बालक के सामने वह कितना निर्बल है। मनुष्य में ऐसे साहस का एक ही स्रोत हो सकता है और वह सत्य पर अटल विश्वास है। उनकी आत्मा दौड़कर उस युवक के दामन में चिमट जाने के लिए अधीर हो गयी; वह दार्शनिक न था, जो सत्य में शंका करता है। वह सरल सैनिक था जो असत्य को भी अपने विश्वास से सत्य बना देता है।

यज़दानी ने उसी स्वर में कहा—जहाँपनाह, इसकी बदजबानी का खयाल न फरमावें।

तैमूर ने तुरन्त तख्त से उठकर यज़दानी को गले लगा लिया और बोला—काश, ऐसी गुस्ताखियों और बदजबानियों के सुनने का पहले इत्तफाक़ होता, तो आज इतने बेगुनाहों का खून मेरी गर्दन पर न होता। मुझे इस जवान में किसी फ़रिश्ते की रूह का जलवा नजर आता है, जो मुझ जैसे गुमराहों को सच्चा रास्ता दिखाने के लिए भेजी गयी है। मेरे दोस्त, तुम खुशनसीब हो कि ऐसे फ़रिश्ता-सिफ़त बेटे के बाप हो। क्या मैं उसका नाम पूछ सकता हूँ ?

यज़दानी पहले आतशपरस्त था, पीछे मुसलमान हो गया था; पर अभी तक कभी-कभी उसके मन में शंकाएँ उठती रहती थीं कि उसने क्यों इस्लाम कबूल किया। जो कैदी फाँसी के तख्ते पर खड़ा सूखा जा रहा था कि एक क्षण में रस्सी उसकी गर्दन में पड़ेगी और वह लटकता रह जायेगा; उसे जैसे किसी फरिश्ते ने गोद में ले लिया। वह गद्‌गद कण्ठ से

बोला—उसे हबीब कहते हैं।

तैमूर ने युवक के सामने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे आँखों से लगाता हुआ बोला—मेरे जवान दोस्त, तुम सचमुच खुदा के हबीब हो। मैं वह गुनहगार हूँ, जिसने अपनी जहालत में हमेशा अपने गुनाहों को सबाब समझा, इसलिए कि मुझसे कहा जाता था, तेरी जात बेऐब है। आज मुझे मालूम हुआ कि मेरे हाथों इस्लाम को कितना नुकसान पहुँचा। आज से मैं तुम्हारा ही दामन पकड़ता हूँ। तुम्हीं मेरे खिज्र, तुम्हीं मेरे रहनुमा हो। मुझे यकीन हो गया कि तुम्हारे ही वसीले से मैं खुदा के दरगाह तक पहुँच सकता हूँ।

यह कहते हुए उसने युवक के चेहरे पर नजर डाली, तो उस पर शर्म की लाली छायी हुयी थी। उस कठोरता की जगह मधुर संकोच झलक रहा था।

युवक ने सिर झुकाकर कहा—यह हुजूर की कदरदानी है, वरना मेरी क्या हस्ती है।

तैमूर ने उसे खींचकर अपनी बगल मे तख्त पर बैठा दिया और अपने सेनापति को हुक्म दिया, सारे तुर्क कैदी छोड़ दिये जाएँ, उनके हथियार वापस कर दिये जायँ और जो माल लूटा गया है, वह सिपाहियों में बराबर बाँट दिया जाय।

वजीर तो इधर इस हुक्म की तामील करने लगा, उधर तैमूर हबीब का हाथ पकड़े हुए अपने खेमे में गया और दोनो मेहमानों की दावत का प्रबन्ध करने लगा। और जब भोजन समाप्त हो गया, तो उसने अपने जीवन की सारी कथा रो-रोकर सुनायी, जो आदि से अन्त तक मिश्रित पशुता और बर्बरता के कृत्यों से भरी हुई थी। और उसने यह सब कुछ इस भ्रम में किया कि वह ईश्वरीय आदेश का पालन कर रहा है। वह खुदा को कौन मुँह दिखायेगा ? रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गयीं।

अन्त में उसने हबीब से कहा—मेरे जवान दोस्त, अब मेरा बेड़ा आप ही पार लगा सकते हैं। आपने मुझे राह दिखाई है तो मंजिल पर पहुँचाइए। मेरी बादशाहत को अब आप ही सँभाल सकते हैं। मुझे अब मालूम हो गया कि मैं उसे तबाही के रास्ते पर लिये जाता था। मेरी आप से यही इल्तमास (प्रार्थना) है कि आप उसकी वजारत कबूल करें। देखिए, खुदा के लिए इन्कार न कीजिएगा, वरना मैं कहीं का न रहूँगा।

मज़दानी ने अरज की—हुजूर, इतनी कदरदानी फरमाते हैं, यह आपकी इनायत है, लेकिन अभी इस लड़के की उम्र ही क्या है। वजारत की खिदमत यह क्या अन्जाम दे सकेगा ? अभी तो इसकी तालीम के दिन हैं।

इधर से इन्कार होता रहा और उधर तैमूर आग्रह करता रहा। यज़दानी इन्कार तो कर रहे थे; पर छाती फूली जाती थी। मूसा आग लेने गये थे, पैगम्बरी मिल गयी। कहाँ मौत के मुँह में जा रहे थे, वजारत मिल गयी। लेकिन यह शंका भी थी कि ऐसे अस्थिर-चित्त आदमी का क्या ठिकाना ? आज खुदा हुए, वजारत देने को तैयार हैं, कल नाराज हो गये, तो जान की खैरियत नहीं। उन्हें हबीब की लियाकत पर भरोसा तो था, फिर भी जी डरता था कि बिराने देश में न जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े ? दरबार वालों में षड्यन्त्र होते ही रहते हैं। हबीब नेक हैं, समझदार हैं, अवसर पहचानता है, लेकिन वह तजरबा कहाँ से लायेगा, जो उम्र ही से आता है।

उन्होंने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक दिन की मुहलत माँगी और रुखसत हुए।

3

हवीब यज़दानी का लड़का नहीं, लड़की थी। उसका नाम उम्मतुल हबीब था। जिस वक्त यज़दानी और उसकी पत्नी मुसलमान हुए, तो लड़की की उम्र कुल बारह साल की थी; पर प्रकृति ने उसे बुद्धि और प्रतिभा के साथ विचार-स्वातन्त्र्य भी प्रदान किया था। वह जब तक सत्यासत्य की परीक्षा न कर लेती, कोई बात स्वीकार न करती। माँ-बाप के धर्म-परिवर्तन से उसे अशान्ति तो हुई; पर जब तक इस्लाम का अच्छी तरह अध्ययन कर ले, वह केवल माँ-बाप को खुश करने के लिए इस्लाम की दीक्षा नहीं ले सकती थी। माँ-बाप भी उस पर किसी तरह का दबाव न डालना चाहते थे। जैसे उन्हें अपने धर्म को वदल देने का अधिकार है, वैसे ही उसे अपने धर्म पर आरूढ़ रहने का भी अधिकार है। लड़की को संतोष हुआ; लेकिन उसने इस्लाम और जरतुश्त धर्म—दोनों ही का तुलनात्मक अध्ययन आरम्भ किया, और पूरे दो साल के अन्वेषण और परीक्षण के बाद उसने भी इस्लाम की दीक्षा ले ली। माता-पिता फूले न समाये। लड़की उनके दबाव से मुसलमान नहीं हुई है; बल्कि स्वेच्छा से, स्वाध्याय से और ईमान से। दो साल तक उन्हें जो एक शंका घेरे रहती थी, वह मिट गयी।

यज़दानी के कोई पुत्र न था और उस युग में, जब कि आदमी की तलवार ही सबसे बड़ी अदालत थी, पुत्र का न रहना संसार का सबसे बड़ा दुर्भाग्य था। यज़दानी बेटे का अरमान बेटी से पूरा करने लगा। लड़कों की ही भाँति उसकी शिक्षा-दीक्षा होने लगी। बालकों के-से कपड़े पहनती, घोड़े पर सवार होती, शस्त्र-विद्या सीखती और अपने बाप के साथ अक्सर खलीफा बायजीद के महलों में जाती और राजकुमारों के साथ शिकार खेलने जाती। इसके साथ ही वह दर्शन, काव्य, विज्ञान और अध्यात्म का भी अभ्यास करती थी। यहाँ तक कि सोलहवें वर्ष में वह फौजी विद्यालय में दाखिल हो गयी और दो साल के अन्दर वहाँ की सबसे ऊँची परीक्षा पास करके फौज में नौकर हो गयी। शस्त्र-विद्या और सेना-संचालन-कला में वह इतनी निपुण थी और खलीफा बायज़ीद उसके चरित्र से इतना प्रसन्न था कि पहले ही पहल उसे एकहजारी मनसब मिल गया। ऐसी युवती के चाहने वालों की क्या कमी ? उसके साथ के कितने ही अफसर; राज-परिवार के कितने ही युवक उस पर प्राण देते थे; पर कोई उसकी नजरों में न जँचता था। नित्य ही निकाह के पैगाम आते रहते थे; पर वह हमेशा इन्कार कर देती थी। वैवाहिक जीवन ही से उसे अरुचि थी। उसकी स्वाधीन प्रकृति इस बन्धन में न पड़ना चाहती थी। फिर नित्य ही वह देखती थी कि युवतियाँ कितने अरमानों से ब्याह कर लायी जाती हैं और फिर कितने निरादर से महलों में बन्द कर दी जाती हैं। उनका भाग्य पुरुषों की दया के अधीन है। अक्सर ऊँचे घराने की महिलाओं से उसको मिलने-जुलने का अवसर मिलता था। उनके मुख से उनकी करुण कथा सुन-सुनकर वह वैवाहिक पराधीनता से और भी घृणा करने लगती थी। और यज़दानी उसकी स्वाधीनता में बिल्कुल बाधा न देता था। लड़की स्वाधीन है। उसकी इच्छा हो विवाह करे या क्वाँरी रहे, वह अपनी आप मुखतार है। उसके पास पैगाम आते, तो वह साफ ज़वाब दे देता—मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता इसका फैसला वही करेगी। यद्यपि एक युवती का पुरुष वेष में रहना, युवकों से मिलना-जुलना समाज में आलोचना का विषय था; पर यज़दानी और उसकी स्त्री दोनों ही को उसके सतीत्व पर विश्वास था। हबीब के

व्यवहार और आचार में उन्हें कोई ऐसी बात नजर न आती थी, जिससे उन्हें किसी तरह की शंका होती। यौवन की आँधी और लालसाओं के तूफान में भी वह चौबीस वर्ष की वीरबाला अपने हृदय की सम्पत्ति लिये अटल और अजेय खड़ी थी, मानो सभी युवक उसके सगे भाई हैं।

4

कुस्तुन्तुनिया में कितनी खुशियाँ मनायी गयीं, हबीब का कितना सम्मान और स्वागत हुआ, तो कितनी बधाइयाँ मिलीं; यह सब लिखने की बात नहीं। शहर तबाह हुआ जाता था। सम्भव था, आज उसके महलों और बाजारों से आग की लपटें निकलती होतीं। राज्य और नगर को उस कल्पनातीत विपत्ति से बचाने वाला आदमी कितने आदर, प्रेम, श्रद्धा और उल्लास का पात्र होगा; इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। उस पर कितने फूलों और कितने लाल और जवाहर की वर्षा हुई, इसका अनुमान तो कोई कवि ही कर सकता है। और नगर की महिलाएँ हृदय के अक्षय भण्डार से असीसें निकाल-निकाल कर उस पर लुटाती थीं और गर्व से फूली हुई उसका मुख निहारकर अपने को धन्य मानती थीं। उसने देवियों का मस्तक ऊँचा कर दिया था।

रात को तैमूर के प्रस्ताव पर विचार होने लगा। सामने गद्देदार कुर्सी पर यज़दानी था--सौम्य, विशाल, तेजस्वी। उसकी दाहिनी तरफ उसकी पत्नी थी, ईरानी लिबास में, आँखों में दया और विश्वास की ज्योति भरे हुए। बायीं तरफ उम्मतुल हबीब थी, जो इस समय रमणी-वेष में मोहिनी बनी हुई थी, ब्रम्हाचर्य के तेज से दीप्त।

यज़दानी ने प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा—मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं कहना चाहता; लेकिन यदि मुझे सलाह देने का अधिकार है, तो मैं स्पष्ट कहता हूँ कि तुम्हें इस प्रस्ताव को कभी स्वीकार न करना चाहिए। तैमूर से यह बात बहुत दिन तक छिपी नहीं रह सकती कि तुम क्या हो। उस वक्त क्या परिस्थिति होगी, मैं नहीं कह सकता। और यहाँ इस विषय में जो कुछ टीकाएँ होंगी, वह तुम मुझसे ज्यादा जानती हो। यहाँ मैं मौजूद था और कुत्सा को मुँह न खोलने देता था; पर वहाँ पर तुम अकेली रहोगी और कुत्सा को मनमाने आरोप करने का अवसर मिलता रहेगा।

उसकी पत्नी स्वेच्छा को इतना महत्व न देना चाहती थी। बोली—मैंने सुना है, तैमूर निगाहों का अच्छा आदमी नहीं है। मैं किसी तरह तुझे न जाने दूँगी। कोई बात हो जाय तो सारी दुनिया हँसे। यों ही हँसनेवाले क्या कम हैं ?

इसी तरह स्त्री-पुरुष बड़ी देर तक ऊँच-नीच सुझाते और तरह-तरह की शंकाएँ करते रहे; लेकिन हबीब मौन साधे बैठी हुई थी। यज़दानी ने समझा, हबीब भी उनसे सहमत है। इन्कार की सूचना देने के लिए ही था कि हबीब ने पूछा—आप तैमूर से क्या कहेंगे ?

'यही, जो यहाँ तय हुआ है।'

'मैंने तो अभी कुछ नहीं कहा।'

'मैंने तो समझा, तुम भी हमसे सहमत हो।'

'जी नहीं,। आप उनसे जाकर कह दें, मैं स्वीकार करती हूँ।'

माता ने छाती पर हाथ रखकर कहा—यह क्या गजब करती है बेटी, सोच तो दुनिया क्या कहेगी ?

यज़दानी भी सिर थामकर बैठ गये, मानो हृदय में गोली लग गयी हो। मुँह से एक शब्द भी न निकला।

हबीब त्योरियों पर बल डालकर बोली—अम्मीजान, मैं आपके हुक्म से जौ-भर भी मुँह नहीं फेरना चाहती। आपको पूरा अख्तियार है, मुझे जाने दें या न जाने दें, लेकिन मुल्क की खिदमत का ऐसा मौका शायद मुझे जिन्दगी में फिर न मिले। इस मौके को हाथ से खो देने का अफसोस मुझे उम्र भर रहेगा। मुझे यकीन है कि अमीर तैमूर को मैं अपनी दियानत, बेगरजी और सच्ची वफादारी से इन्सान बना सकती हूँ और शायद उसके हाथों खुदा के बन्दों का खून इतनी कसरत से न बहे। वह दिलेर है; मगर बेरहम नहीं। कोई दिलेर आदमी बेरहम नहीं हो सकता। उसने अब तक जो कुछ किया है; मजहब के अंधे जोश में किया है। आज खुदा ने मुझे यह मौका दिया है कि मैं उसे दिखा दूँ कि मजहब खिदमत का नाम है, लूट और कत्ल का नहीं। अपने बारे में मुझे मुतलक अन्देशा नहीं है। मैं अपनी हिफाजत आप कर सकती हूँ। मुझे दावा है कि अपने फर्ज को नेकनीयती से अदा करके मैं दुश्मनों की जबान भी बन्द कर सकती हूँ और मान लीजिए मुझे नाकामी भी हो, तो क्या सच्चाई और हक के लिए कुर्बान हो जाना जिन्दगी की सबसे शानदार फतह नहीं है ? अब तक मैंने जिस उसूल पर जिन्दगी बसर की है, उसने मुझे धोखा नहीं दिया और उसी के फैज से आज मुझे यह दर्जा हासिल हुआ है जो बड़ों-बड़ों के लिए जिन्दगी का ख्वाब है। ऐसे आजमाये हुए दोस्त मुझे कभी धोखा नहीं दे सकते। तैमूर पर मेरी हकीकत खुल भी जाय, तो क्या खौफ ? मेरी तलवार मेरी हिफाजत कर सकती है। शादी पर मेरे खयाल आपको मालूम हैं। अगर मुझे कोई ऐसा आदमी मिलेगा, जिसे मेरी रूह कबूल करती हो, जिसकी जात अपनी हस्ती को खोकर मैं अपनी रूह को ऊँचा उठा सकूँ, तो मैं उसके कदमों पर गिरकर अपने को उसकी नजर कर दूँगी।

यज़दानी ने खुश होकर बेटी को गले लगा लिया। उसकी स्त्री इतनी जल्द आश्वस्त न हो सकी। वह किसी तरह बेटी को अकेली न छोड़ेगी। उसके साथ वह भी जायगी।

5

कई महीने गुजर गये। युवक हबीब तैमूर का वजीर है, लेकिन वास्तव में वही बादशाह है। तैमूर उसी की आँखों से देखता है, उसी के कानों से सुनता है और उसी की अक्ल से सोचता है। वह चाहता है, हबीब आठों पहर उसके पास रहे। उसके सामीप्य में, उसे स्वर्ग का-सा सुख मिलता है। समरकन्द में एक प्राणी भी ऐसा नहीं, जो उससे जलता हो। उसके बरताव ने सभी को मुग्ध कर लिया है, क्योंकि वह इन्साफ से जौ-भर भी कदम नहीं हटाता। जो लोग उसके हाथों चलती हुई न्याय की चक्की में पिस जाते हैं; वे भी उससे सद्भाव ही रखते हैं, क्योंकि वह न्याय को जरूरत से ज्यादा कटु नहीं होने देता।

सन्ध्या हो गयी थी। राज्य कर्मचारी जा चुके थे। शमादान में मोम की बत्तियाँ जल रही थीं। अगर की सुगन्ध से सारा दीवान महक रहा था। हबीब भी उठने ही को था कि चोबदार ने खबर दी—हुजूर, जहाँपनाह तशरीफ ला रहे हैं।

हबीब इस खबर से कुछ प्रसन्न नहीं हुआ। अन्य मंत्रियों की भाँति वह तैमूर की सोहबत का भूखा नहीं है। वह हमेशा तैमूर से दूर रहने की चेष्टा करता है। ऐसा शायद ही कभी हुआ हो उसने शाही दस्तरखान पर भोजन किया हो। तैमूर की मजलिसों में भी वह कभी शरीक नहीं होता। उसे जब शांति मिलती है, तब एकान्त में अपनी माता के पास बैठकर दिन भर का माजरा उससे कहता है और वह उस पर अपनी पसन्द की मुहर लगा देती है।

उसने द्वार पर जाकर तैमूर का स्वागत किया। तैमूर ने मसनद पर बैठते हुए कहा—मुझे ताज्जुब होता है कि तुम इस जवानी में जाहिदों की-सी जिन्दगी कैसे बसर करते हो हबीब ! खुदा ने तुम्हें वह हुस्न दिया है कि हसीन-से-हसीन नाज़नीन भी तुम्हारी माशूक बनकर अपने को ख़ुशनसीब समझेंगी। मालूम नहीं तुम्हें खबर है या नहीं जब तुम अपने मुश्की घोड़े पर सवार होकर निकलते हो, तो समरकन्द की खिड़कियों पर हजारों आँखें तुम्हारी एक झलक देखने के लिए मुन्तजिर बैठी रहती हैं; पर तुम्हें किसी ने किसी तरह आँखें उठाते नहीं देखा। मेरा खुदा गवाह है, मैं जितना चाहता हूँ कि तुम्हारे कदमों के नक्शा पर चलूँ; पर दुनिया मेरी गर्दन नहीं छोड़ती। क्यों अपनी पाक़ जिन्दगी का जादू मुझ पर नहीं डालते ? मैं चाहता हूँ जैसे तुम दुनिया में रहकर भी दुनिया से अलग रहते हो, वैसे मैं भी रहूँ; लेकिन मेरे पास न वह दिल है, न वह दिमाग। मैं हमेशा अपने आप पर, सारी दुनिया पर दाँत पीसता रहता हूँ। जैसे मुझे हरदम खून की प्यास लगी रहती है, जिसे तुम बुझने नहीं देते, और यह जानते हुए भी कि तुम जो कुछ करते हो, इससे बेहतर कोई दूसरा नहीं कर सकता। मैं अपने गुस्से को काबू में नहीं कर सकता। तुम जिधर से निकलते हो, मुहब्बत और रोशनी फैला देते हो। जिसको तुम्हारा दुश्मन होना चाहिए, वह भी तुम्हारा दोस्त है। मैं जिधर से निकलता हूँ, नफरत और शुबहा फैलाता हुआ निकलता हूँ। जिसे मेरा दोस्त होना चाहिए, वह भी मेरा दुश्मन है। दुनिया में बस यही एक जगह है, जहाँ मुझे आफियत मिलती है। अगर तुम समझते हो, यह ताज और तख्त मेरे रास्ते के रोड़े हैं तो खुदा की कसम मैं आज इन पर लात मार दूँ। मैं आज तुम्हारे पास यही दरख्वास्त लेकर आया हूँ कि तुम मुझे वह रास्ता दिखाओ, जिससे मैं सच्ची खुशी पा सकूँ। मैं चाहता हूँ तुम इसी महल में रहो ताकि मैं तुमसे सच्ची जिन्दगी का सबक सीखूं।

हबीब का हृदय धक् से हो उठा। कहीं अमीर पर उसके नारीत्व का रहस्य खुल तो नहीं गया ? उसकी समझ में न आया कि उसे क्या जवाब दे। उसका कोमल हृदय तैमूर की इस करुण आत्मग्लानि पर द्रवित हो गया। जिसके नाम से दुनिया काँपती है, वह उसके सामने एक दयनीय प्रार्थी बना हुआ उससे प्रकाश की भिक्षा माँग रहा है। तैमूर की उस कठोर विकृत, शुष्क, हिंसात्मक मुद्रा में उसे एक स्निग्ध मधुर ज्योति दिखाई दी, मानो उसका जाग्रत विवेक भीतर से झाँक रहा हो। उसे अपना स्थिर जीवन, जिसमें ऊपर उठने की स्मृति ही न रही थी, इस विफल उद्योग के सामने तुच्छ जान पड़ा।

उसने मुग्ध कण्ठ से कहा—हुजूर, इस गुलाम की इतनी कद्र करते हैं, यह मेरी खुशनसीबी है। लेकिन मेरा शाही महल में रहना मुनासिब नहीं।

तैमूर ने पूछा—क्यों ?

‘इसलिए कि जहाँ दौलत ज्यादा होती है, वहाँ डाके पड़ते हैं और जहाँ कद्र ज्यादा

होती है, वहाँ दुश्मन भी ज्यादा होते हैं।'

'तुम्हारा दुश्मन भी कोई हो सकता है ?'

'मैं खुद अपना दुश्मन हो जाऊँगा। आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन गरूर है।'

तैमूर को जैसे कोई रत्न मिल गया। उसे अपनी मनःतुष्टि का आभास हुआ। 'आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन गरूर है' इस वाक्य को मन-ही-मन दोहराकर उसने कहा—तुम मेरे काबू में कभी न आओगे हबीब। तुम वह परन्द हो, जो आसमान में ही उड़ सकता है। उसे सोने के पिंजरे में भी रखना चाहो तो फड़फड़ाता रहेगा। खैर, खुदा हाफिज !

वह तुरन्त अपने महल की ओर चला, मानो उस रत्न को सुरक्षित स्थान में रख देना चाहता हो। यह वाक्य आज पहली बार उसने न सुना था, पर आज इसमें जो ज्ञान, जो आदेश, जो सद्प्रेरणा उसे मिली, वह कभी न मिली थी।

6

इस्तखर के इलाके से बगावत की खबर आयी है। हबीब को शंका है कि तैमूर वहाँ पहुँचकर कहीं कत्लेआम न कर दे। वह शान्तिमय उपायों से इस विद्रोह को ठण्डा करके तैमूर को दिखाना चाहता है कि सद्भावना में कितनी शक्ति है। तैमूर उसे इस मुहिम पर नहीं भेजना चाहता; लेकिन हबीब के आग्रह के सामने बेबस है। हबीब को जब और कोई युक्ति न सूझी, तो उसने कहा—गुलाम के रहते हुए हुजूर अपनी जान खतरे में डालें, यह नहीं हो सकता।

तैमूर मुस्कराया—मेरी जान की तुम्हारी जान के मुकावले में कोई हकीकत नहीं है हबीब। फिर मैंने तो कभी जान की परवाह न की। मैंने दुनिया में कत्ल और लूट के सिवा और क्या यादगार छोड़ी ? मेरे मर जाने पर दुनिया मेरे नाम को रोयेगी नहीं, यकीन मानो। मेरे जैसे लुटेरे हमेशा पैदा होंगे; लेकिन खुदा न करे, तुम्हारे दुश्मनों को कुछ हो गया, तो यह सल्तनत खाक में मिल जायगी, और तब मुझे भी सीने में खंजर चुभा लेने के सिवा और कोई रास्ता नहीं रहेगा। मैं नहीं कह सकता हबीब, तुमसे मैंने कितना पाया। काश, दस-पाँच साल पहले तुम मुझे मिल जाते, तो तैमूर तारीख में इतना रूसियाह न होता। आज अगर जरूरत पड़े तो अपने जैसे सौ तैमूरों को तुम्हारे ऊपर निसार कर दूँ। यही समझ लो कि तुम मेरी रूह को अपने साथ लिये जा रहे हो। आज मैं तुमसे कहता हूँ हबीब कि मुझे तुमसे इश्क है, वह इश्क जो मुझे आज तक किसी हसीना से नहीं हुआ। इश्क क्या चीज है, इसे मैं अब जान पाया हूँ। मगर इसमें क्या बुराई है कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ ?

हबीब ने धड़कते हुए हृदय से कहा—अगर मैं आपकी जरूरत समझूँगा तो इत्तला दूँगा।

तैमूर ने दाढ़ी पर हाथ रखकर कहा—जैसी तुम्हारी मर्जी, लेकिन रोजाना क़ासिद भेजते रहना, वरना शायद मैं बेचैन होकर चला आऊँ।

तैमूर ने कितनी मुहब्बत से हबीब के सफर की तैयारियाँ कीं। तरह-तरह के आराम और तकल्लुफ की चीजें उसके लिए जमा कीं। उस कोहिस्तान में यह चीजें कहाँ मिलेंगी। वह ऐसा संलग्न था, मानो माता अपनी लड़की को ससुराल भेज रही हो।

जिस वक्त हबीब फौज के साथ चला; तो सारा समरकन्द उसके साथ धा और तैमूर

आँखों पर रुमाल रक्खे, अपने तख्त पर ऐसा सिर झुकाये बैठा था, मानो कोई पक्षी आहत हो गया हो।

7

इस्तख़र अरमनी ईसाइयों का इलाका था। मुसलमानों ने उन्हें परास्त करके वहाँ अपना अधिकार जमा लिया था और ऐसे नियम बना दिये थे, जिनसे ईसाइयों को पग-पग पर अपनी पराधीनता का स्मरण होता रहता था। पहला नियम जजिए का था, जो हरेक को देना पड़ता था, जिससे मुसलमान मुक्त थे। दूसरा नियम था कि गिर्जो में घण्टा न बजे। तीसरा नियम मदिरा का था, जिसे मुसलमान हराम समझते थे। ईसाइयों ने इन नियमों का क्रियात्मक विरोध किया और मुसलमान अधिकारियों ने शस्त्र-बल से काम लेना चाहा, तो ईसाइयों ने बगावत कर दी, मुसलमान सूबेदार को कैद कर लिया और किले पर सलीबी झण्डा उड़ने लगा।

हबीब को यहाँ आज दूसरा दिन है; पर इस समस्या को कैसे हल करे ? उसका उदार हृदय कहता था, ईसाइयों पर इन बन्धनों का कोई अर्थ नहीं, हरेक धर्म का समान रूप से आदर होना चाहिए। लेकिन मुसलमान इन कैदों को उठा देने पर कभी राजी न होंगे। और यह लोग मान भी जाएँ तो तैमूर क्यों मानने लगा ? उसके धार्मिक विचारों में कुछ उदारता आयी है, फिर भी वह इन कैदों को उठाना कभी मंजूर न करेगा। लेकिन क्या वह इसलिए ईसाइयों को सजा दे कि वे अपनी धार्मिक स्वाधीनता के लिए लड़ रहे हैं। जिसे वह सत्य समझता है, उसकी हत्या कैसे करे ? नहीं, उसे सत्य का पालन करना होगा, चाहे इसका नतीजा कुछ भी हो। अमीर समझेंगे, मैं जरूरत से ज्यादा बढ़ा जा रहा हूँ। कोई मुजायका नहीं।

दूसरे दिन हबीब ने प्रातःकाल डंके की चोट ऐलान कराया—जजिया माफ किया गया, शराब और घण्टों पर कोई भेद नहीं है।

मुसलमानों में तहलका पड़ गया। यह कुफ्र है, हरामपरस्ती है। अमीर तैमूर ने जिस इस्लाम को अपने खून से सींचा, उसकी जड़ उन्हीं के वजीर हबीब पाशा के हाथों खुद रही है। पाँसा पलट गया। शाही फौजें मुसलमानों से जा मिलीं। हबीब ने इस्तखर के किले में पनाह ली। मुसलमानों की ताकत शाही फौज से मिल जाने से बहुत बढ़ गयी थी। उन्होंने किला घेर लिया और यह समझकर कि हबीब ने तैमूर से बगावत की है, तैमूर के पास इसकी सूचना देने और परिस्थिति समझाने के लिए कासिद भेजा।

8

आधी रात गुजर चुकी थी। तैमूर को दो दिनों से इस्तख़र की कोई खबर न मिली थी। तरह-तरह की शंकाएँ हो रही थीं। मन में पछतावा हो रहा था कि उसने क्यों हबीब को अकेला जाने दिया। माना कि वह बड़ा नीतिकुशल है; पर बगावत कहीं जोर पकड़ गई, तो मुट्ठी भर आदमियों से वह क्या कर सकेगा ? और बगावत यकीनन ज़ोर पकड़ेगी। वहाँ के ईसाई बला के सरकश हैं। जब उन्हें मालूम होगा कि तैमूर की तलवार में जंग लग गया

और उसे अब महलों की जिन्दगी ज्यादा पसन्द है, तो उनकी हिम्मतें दूनी हो जायेंगी। हबीब कहीं दुश्मनों में घिर गया, तो बड़ा गजब हो जायगा।

उसने अपने जानू पर हाथ मारा और पहलू बदलकर अपने ऊपर झुँझलाया। वह इतना पस्त-हिम्मत क्यों हो गया? क्या उसका तेज और शौर्य उससे विदा हो गया ? जिसका नाम सुनकर दुश्मनों में कम्पन पड़ जाता था, वह आज अपना मुँह छिपाकर महलों में बैठा हुआ है। दुनिया की आँखों में इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि तैमूर अब मैदान का शेर नहीं, कालीन का शेर हो गया। हबीब फरिश्ता है, इन्सान की बुराइयों से वाकिफ नहीं। जो रहम और साफदिल और बेगरजी का देवता है, वह क्या जाने इन्सान कितना शैतान हो सकता है। अमन के दिनों में तो ये बातें कौम और मुल्क को तरक्की के रास्ते पर ले जाती हैं; पर जंग में, जब कि शैतानी जोश का तूफान उठता है, खूबियों की गुंजाइश नहीं। उस वक्त तो उसी की जीत होती है, जो इन्सानी खून का रंग खेले, खेतों-खलियानों की होली जलाये, जंगलों को बसाये और बस्तियों को वीरान करे ! अमन का कानून जंग के कानून से बिल्कुल जुदा है।

सहसा चोबदार ने इस्तख़र से एक कासिद के आने की खबर दी। कासिद ने जमीन चूमी और एक किनारे अदब से खड़ा हो गया। तैमूर का रौब ऐसा छा गया कि जो कुछ कहने आया था, वह सब भूल गया।

तैमूर ने त्योरियाँ चढ़ाकर पूछा—क्या खबर लाया है ? तीन दिन के बाद आया भी तो इतनी रात गये ?

कासिद ने फिर जमीन चूमी और बोला—खुदावन्द, वजीर साहब ने जाजिया मुआफ कर दिया।

तैमूर गरज उठा—क्या कहता है; जाजिया माफ कर दिया ?

'हाँ खुदावन्द।'

'किसने ?'

'वजीर साहब ने।'

'किसके हुक्म से ?'

'अपने हुक्म से हुजूर।'

'हूँ !'

'और हुजूर, शराब का भी हुक्म दे दिया।'

'हूँ !'

'गिरजों में घण्टे बजाने का भी हुक्म हो गया है।'

'हूँ !'

'और खुदावन्द, ईसाइयों से मिलकर मुसलमानों पर हमला कर दिया !'

'तो मैं क्या करूँ ?'

'हुजूर हमारे मालिक हैं। अगर हमारी कुछ मदद न हुई, तो वहाँ एक मुसलमान भी जिन्दा न बचेगा।'

'हबीब पाशा इस वक्त कहाँ है ?'

'इस्तख़र के किले में हुजूर।'

'और मुसलमान क्या कर रहे हैं ?'

'हमने ईसाइयों को किले में घेर लिया है।'

'उन्हीं के साथ हबीब को भी ?'

'हाँ हुजूर, वह हुजूर से बागी हो गये।'

और इसलिए मेरे वफादार इस्लाम के खादिमों ने उन्हें कैद कर रक्खा है। मुमकिन है मेरे पहुँचते-पहुँचते उन्हें कत्ल भी कर दें। बदजात, दूर हो जा मेरे सामने से। मुसलमान समझते हैं, हबीब मेरा नौकर है और मैं उसका आका हूँ। यह गलत है, झूठ है। बस सल्तनत का मालिक हबीब है, तैमूर उसका अदना गुलाम है। उसके फैसले में तैमूर दस्तन्दाजी नहीं कर सकता। बेशक जजिया मुआफ होना चाहिए। मुझे कोई मजाज नहीं कि दूसरे मजहब वालों से उनके ईमान का तावान लूँ। कोई मजाज नहीं है; अगर मस्जिद में अजान होनी है तो कलीसा में घण्टा क्यों न बजे ? घण्टे की आवाज में कुफ़्र नहीं है। सुनता है बदजात ! घण्टे की आवाज में कुफ़्र नहीं है। काफिर वह है, जो दूसरों का हक छीन ले, जो गरीबों को सताये, दगाबाज हो खुदगरज हो। काफिर वह नहीं, जो मिट्टी या पत्थर के टुकड़े में खुदा का नूर देखता है; जो नदियों और पहाड़ों में; दरख्तों पर झाड़ियों में, खुदा का जलवा पाता हो। वह हमसे और तुमसे ज्यादा खुदापरस्त है, जो मस्जिद में ख़ुदा को बंद समझते हैं। तू समझता है, मैं कुफ़्र बक रहा हूँ ? किसी को काफिर समझना ही कुफ़्र है। हम सब ख़ुदा के बन्दे हैं, सब। बस जा और उन बागी मुसलमानों से कह दे, अगर फौरन मुहासरा न उठा लिया गया, तो तैमूर कयामत की तरह आ पहुँचेगा।

कासिद हतबुद्धि-सा खड़ा ही था कि बाहर खतरे का विगुल बज उठा और फौजें किसी समर-यात्रा की तैयारी करने लगीं।

तीसरे दिन तैमूर इस्तखर पहुँचा, तो किले का मुहासरा उठ चुका था। किले की तोपों ने उसका स्वागत किया। हबीब ने समझा तैमूर ईसाइयों को सजा देने आ रहा है। ईसाइयों के हाथ-पाँव फूले हुए थे, मगर हबीब मुकाबले के लिए तैयार था। ईसाइयों के स्वत्व की रक्षा में यदि उसकी जान भी जाय; तो कोई गम नहीं। इस मुआमले पर किसी तरह का समझौता नहीं हो सकता। तैमूर अगर तलवार से काम लेना चाहता है, तो उसका जवाब तलवार से दिया जायगा।

मगर यह क्या बात है ! शाही फौज सुफेद झण्डा दिखा रही है। तैमूर लड़ने नहीं सुलह करने आया है। उसका स्वागत दूसरी तरह का होगा। ईसाई सरदारों को साथ लिये हबीब किले के बाहर निकला। तैमूर अकेला घोड़े पर सवार चला आ रहा था। हबीब घोड़े से उतर कर आदाब बजा लाया। तैमूर भी घोड़े से उतर पड़ा और हबीब का माथा चूम लिया और बोला—मैं सब कुछ सुन चुका हूँ हबीब ! तुमने बहुत अच्छा किया और वही किया जो तुम्हारे सिवा दूसरा नहीं कर सकता था। मुझे जज़िया लेने का या ईसाइयों के मजहबी हक छीनने का कोई मजाज न था। मैं आज दरबार करके इन बातों की तसदीक कर दूँगा और तब मैं एक ऐसी तजवीज करूँगा, जो कई दिन से मेरे जेहन में आ रही है, और मुझे उम्मीद है कि तुम उसे मंजूर कर लोगे। मंजूर करना पड़ेगा।

हबीब के चेहरे का रंग उड़ रहा था। कहीं हकीकत खुल तो नहीं गयी ? वह क्या तजबीज है; उसके मन में खलबली पड़ गयी।

तैमूर ने मुस्कराकर पूछा—तुम मुझसे लड़ने को तैयार थे ?

हबीब ने शरमाते हुए कहा—हक के सामने अमीर तैमूर की भी कोई हकीकत नहीं।

'बेशक, बेशक ! तुममें फरिश्तों का दिल है, तो शेरों की हिम्मत भी है, लेकिन अफसोस यही है कि तुमने गुमान ही क्यों किया कि तैमूर तुम्हारे फैसले को मन्सूख कर सकता है ? यह तुम्हारी जात है, जिसने मुझे बतलाया है कि सल्तनत किसी आदमी की जायदाद नहीं बल्कि एक ऐसा दरख्त है जिसकी हरेक शाख और पत्ती एक-सी खुराग पाती है।'

दोनों किले में दाखिल हुए। सूरज डूब चुका था। आन-की-आन में दरबार लग गया और उसमें तैमूर ने ईसाइयों के धार्मिक अधिकारों को स्वीकार किया।

चारों तरफ से आवाज आयी—खुदा हमारे शाहंशाह की उम्र दराज करे।

तैमूर ने उसी सिलसिले में कहा—दोस्तो, मैं इस दुआ का हकदार नहीं हूँ। जो चीज मैंने आपसे जबरन छीन ली थी, उसे आपको वापस देकर मैं दुआ का काम नहीं कर रहा हूँ। इससे कहीं ज्यादा मुनासिब यह है कि आप मुझे लानत दें कि मैंने इतने दिनों तक आपके हकों से आपको महरूम रखा।

चारों तरफ से आवाज आयी—मरहबा ! मरहबा ! !

'दोस्तों, उन हकों के साथ-साथ मैं आपकी सल्तनत भी आपको वापस करता हूँ; क्योंकि खुदा की निगाह में सभी इन्सान बराबर हैं और किसी कौम या शख्स को दूसरी कौम पर हुकूमत करने का अख्तियार नहीं है। आज से आप अपने बादशाह हैं। मुझे उम्मीद है कि आप भी मुस्लिम आबादी को उसके जायज हकों से मरहूम न करेंगे। अगर कभी ऐसा मौका आये कि कोई जाबिर कौम आप की आजादी छीनने की कोशिश करे, तो तैमूर आपकी मदद करने को हमेशा तैयार रहेगा।'

किले में जश्न खतम हो चुका है। उमरा और हुक्काम रुखसत हो चुके हैं। दीवाने-खास में सिर्फ तैमूर और हबीब रह गये हैं। हबीब ने मुख पर आज स्मित हास्य की वह छटा है, जो सदैव गम्भीरता के नीचे दबी रहती थी। आज उसके कपोलों पर जो लाली, आँखों में जो नशा, अंगों में जो चंचलता है, वह तो और कभी नजर न आयी थी। वह कई बार तैमूर से शोखियाँ कर चुका है, कई बार हँसी कर चुका है, उसकी युवती चेतना, पद और अधिकार को भूलकर चहकती फिरती है।

सहसा तैमूर ने कहा—हबीब, मैंने आज तक तुम्हारी हरेक बात मानी है। अब मैं तुमसे यह तजबीज करता हूँ, जिसका मैंने जिक्र किया, उसे तुम्हें कबूल करना पड़ेगा।

हबीब ने धड़कते हुए हृदय से सिर झुकाकर कहा—फरमाइये !

'पहले वादा करो कि तुम कबूल करोगे।'

'मैं तो आपका गुलाम हूँ !'

'नहीं, तुम मेरे मालिक हो, मेरी जिन्दगी की रोशनी हो। तुमसे मैंने कितना फैज पाया है, उसका अंदाज नहीं कर सकता। मैंने अब तक सल्तनत को अपनी जिन्दगी की सबसे प्यारी चीज समझा था। इसके लिए मैंने सब कुछ किया, जो मुझे न करना चाहिए था। अपनों के खून से भी इन हाथों को दागदार किया, गैरों के खून से भी। मेरा काम अब खत्म हो चुका। मैंने बुनियाद जमा दी, इस पर महल बनाना तुम्हारा काम है। मेरी यही

इल्तजा है कि आज से तुम इस बादशाहत के अमीन हो जाओ, मेरी जिन्दगी में भी और मेरे मरने के बाद भी।

हबीब ने आकाश में उड़ते हुए कहा—इतना बड़ा बोझ ! मेरे कंधे इतने मजबूत नहीं हैं।

तैमूर ने दीन आग्रह के स्वर में कहा—नहीं, मेरे प्यारे दोस्त, मेरी यह इल्तजा तुम्हें माननी पड़ेगी।

हबीब की आँखों में हँसी थी, अधरों पर संकोच। उसने आहिस्ता से कहा—मंजूर है।

तैमूर ने प्रफुल्लित स्वर में कहा—खुदा तुम्हें सलामत रखे।

'लेकिन अगर आपको मालूम हो जाय कि हबीब एक कच्ची अक्ल की क्वाँरी बालिका है तो ?'

'तो वह मेरी बादशाहत के साथ मेरे दिल की भी रानी हो जायगी।'

'आपको बिल्कुल ताज्जुब नहीं हुआ ?'

'मैं जानता था।'

'कब से ?'

'जब तुमने पहली बार अपनी जालिम आँखों से मुझे देखा।'

'मगर आपने छिपाया खूब ! !'

'तुम्हीं ने तो सिखाया। शायद मेरे सिवा यहाँ किसी को यह बात मालूम नहीं!'

'आपने कैसे पहचान लिया !'

तैमूर ने मतवाली आँखों से देखकर कहा—यह न बताऊंगा।

यही हबीब तैमूर की 'बेगम हमीदा' के नाम से मशहूर है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका। 'चांद' नवम्बर, 1933 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित।]

वैराग्य

गोरखपुर रेलवे में कोई ऐसा नेक और खुदातरस (ईश्वर से भयभीत) शख्स नहीं था जैसे पंडित बजरंगनाथ। बहुत पढ़े-लिखे, रोशन ख़याल और सीधे स्वभाव के आदमी थे। दफ्तर के सभी आदमी छोटे से बड़े तक उनसे खुश रहते थे।

बैसाख का महीना था। मई की पहली तारीख़। पंडितजी ने तनख्वाह के अस्सी रुपये पाये और घर में लाकर बीवी के हाथ में रख दिये। बीवी का नाम विंध्येश्वरी था। अपने शौहर के मानिंद वह भी दया और प्रेम की देवी थी। शौहर के लिए लोटे का पानी लाकर बोली, "दस तो घर के किराये में जाएंगे और तीस घर भेजने हैं।"

"बंजरंग—हां, और दस रुपये दोनों बच्चों के लिए गुरुकुल भेजने होंगे।"

उनके मुहल्ले के दो बच्चे गुरुकुल आश्रम में पढ़ने गये थे, जिन्हें दस रुपये माहवार चंदा देने का पंडितजी ने वायदा किया था।

विंध्येश्वरी—"हां, और क्या, कम-से-कम पांच रुपये उस बरहमन को देने चाहिए

जो अपनी लड़की की शादी के लिए कुछ मदद मांगने आया था।"

बजरंग—"हां-हां ! मुझे तो उसकी याद ही न रही थी। गोशाला का चंदा भी तो दो रुपये होगा।"

विंध्येश्वरी—"और दो रुपये पुत्री पाठशाला का चंदा भी तो है।"

बजरंग—"रुपये तो सब हो गये। तो हम बदरीनाथ की यात्रा कैसे करेंगे ?"

विंध्येश्वरी—"इसी में दस रुपये निकालकर रख दो। हर महीने इतना ही निकालेंगे तो साल में एक सौ बीस रुपये जमा हो जाएंगे। क्या इतने में बदरीनाथ की ज़ियारत (तीर्थ स्थान) न होगी ?"

बजरंग—(हिसाब लगाकर) "दस रुपये इधर जमा करूंगा तो महीने भर के लिए क्या बचेगा ? कुल ग्यारह रुपये तो बचते हैं।"

विंध्येश्वरी—"इतना खाने भर को बहुत है।"

बजरंग—"तुम्हारी साड़ी भी देख रहा हूं, फट रही है।"

विंध्येश्वरी—"इस महीने चल जाएगी। उस महीने में बन पड़ेगा तो ले लूंगी।"

बजरंग—"घर पर सिर्फ बीस रुपये भेजें, अब के एक नौकरानी रख ली जाए।"

विंध्येश्वरी—"नहीं-नहीं, नौकरानी की क्या जरूरत है ? दो आदमियों के वैसे ही बरतन कौन बहुत से होते हैं !"

इसी तरह पंडित की तनख्वाह हर माह बट जाती थी। महीनों के सोच-विचार के बाद कहीं जाकर एक जोड़ा साड़ी आ पाती थी। लेकिन दोनों इसी में खुश थे। उन्हें पैसे का और लालच न था। हां, अभी तक उनके कोई लड़का नहीं था और दोनों मियां-बीवी एक लड़के के लिए बेचैन रहते थे। उनकी हमेशा से ख्वाहिश थी कि हमारे एक लड़का होता। सिर्फ एक....उनकी सुकून (मानसिक शान्ति) की सल्तनत में बस एक कमी थी।

आहिस्ता-आहिस्ता दस साल गुज़र गये। पंडित बजरंगनाथ के अस्सी से एक सौ पचास हो गये। इसी लिहाज से माहाना इखराजात (मासिक आय) में भी जियादती हो गई, लेकिन अपने ख़र्च के लिए अब भी वह किसी महीने में पच्चीस रुपये से ज्यादा न लेते थे। और वह भी इसलिए कि इतने दिनों में वक्त बहुत कुछ बदल चुका था और ज़रूरियात की जीज़ें महंगी हो गई थीं। विंध्येश्वरी ने अभी तक कोई बर्तन मांजने वाली न रखी थी। पर और सब कुछ हो गया। और उनकी औलाद की ख्वाहिश भी पूरी नहीं हुई वह अब तक अकेले थे। पहले यह ख़्वाहिश मजहबी अकाइद (विश्वास) के नीचे दबी हुई थी। सिर्फ कभी-कभी उनकी याद आ जाती थी, पर अब इन दिनों को ख़ासतौर से....विंध्येश्वरी को अपनी सूनी गोद देखकर दुख और महरूमी (अभाग्य) का एहसास होता था। उनका मज़हबी झुकाव पहले फ़ितरी (प्राकृतिक) और बिना लालच का था। पर अब उसमें लालच मिलता जा रहा था। वह अब दान देकर इसका उज्र (सत्कर्मों का प्रतिफल) भी हासिल करना चाहते थे। उनमें कभी-कभी बातें होतीं—ईश्वर कैसा मुंसिफ़ (न्यायकर्त्ता) है, जो रात-दिन खुदग़र्जियों के चक्कर और हवसनाकियों (लोलुपताओं) में डूबे हुए हैं उन्हें दूध-पूत सभी देता है और हमारी इतनी-सी दुआ भी क़बूल नहीं होती। यही भगत का मुक़द्दर है। मज़हबपरस्ती में सारी उम्र गुज़र गई और फिर भी कोई सुख नहीं। हमसे तो वही अच्छे हैं जो ऐशो-आराम में ज़िंदगी गुज़ारते हैं, लेकिन शायद भगवान् की भी यही

मर्जी है,. नहीं तो हमारे ऊपर इतना करम भी न होता। भगतों के लिए चारों पुरुषार्थ हाथ बांधे खड़े रहते हैं। यहां कुछ भी नहीं। मोक्ष न जाने होगा या नहीं। जैसा कि इतनी जरा-सी ख़्वाहिश पूरी नहीं हुई तो मोक्ष कौन देता है !

पंडित बजरंगनाथ अपनी बीवी को समझाते रहते थे, "भगवान् की मर्जी कौन जानता है। अगर बिना औलाद होने ही में हमारा कल्याण हो तो....? जब उनकी मेहरबानी होगी, मज़हब, औलाद, धन, मोक्ष सभी मिल जाएंगे। भगतों का फर्ज़ सिर्फ अपने तन-मन को भगवान् के चरणों पर निछावर कर देना है। फल की कोई उम्मीद नहीं करनी चाहिए। हम अपनी महदूद (सीमित) अक्ल से क्या जान सकते हैं कि हमारे लिए क्या सूद मन्द है और क्या नहीं।" विंध्येश्वरी यह उपदेश सुनकर चुप तो हो जाती पर उसके मन को इत्मीनान नहीं होता था और पंडितजी भी खुद साफ़ दिल से ये बातें नहीं करते थे। लड़के की ख़्वाहिश से उनका मन भी चंचल हो जाता था लेकिन वह इस दर्द को ज्यादा ज़ाहिर नहीं करते थे।

पंडितजी के पड़ोस में एक बनिया रहता था। दोनों घरों की दीवारें मिली हुई थी। बीच में बनिये ने एक छोटी-सी खिड़की खोल ली थी। कभी-कभी दोनों औरतें खिड़की के सामने खड़े होकर बातचीत किया करती थीं। बनियाइन के कई बच्चे थे। लेन-देन होता था और कपड़े की दूकान चलती थी। दोनों ही ज्यादा और कड़ा सूद लेने वाले थे। बनियाइन खुद भी कुछ लेन-देन किये हुए थी और रुपये पर एक आना सूद लेती थी। उनके दरवाज़े पर ऐसा ही कोई भाग्यवान भिखारी होगा जो ख़ैरात पा जाता, नहीं तो मुसलसिल (निरंतर) यही जवबा मिलता, फिर मांगो, हाथ ख़ाली नहीं है, वगैरह। भिखारी गालियां देते चले जाते थे। दीवार मिली रहने की वजह से कभी-कभी बनिये के घर की बातें इस घर में सुनाई देती थीं। खासतौर से इसलिए कि बनिये की बीवी की आवाज़ काफी तेज थी।

एक दिन रात को विंध्येश्वरी खाना खाकर आंगन में लेटी हुई थी और पंडितजी कोई समाचार-पत्र पढ़ रहे थे कि इतने में बनिया दूकान बढ़ाकर घर आया। उसकी बीवी ने पूछा, "आज कैसी बिक्री हुई ?"

बनिया बोला, "आज तो सारे दिन मक्खियां मारता रहा। बोहनी तक नहीं हुई।"

बनियाइन—"यहां भी न जाने किसका मुंह देखा था कि तेल की हांड़ी हाथ से छूट पड़ी और सारा तेल बह गया।

बनिया—"पड़ोस वाली पंडिताइन का मुंह तो नहीं देखा था ?"

बनियाइन—"हां, खूब याद आया। मैंने उठते ही खिड़की से झांका तो वह नहा रही थी।"

बनिया—"मैंने भी इसी पंडित का मुंह देखा था। घर से चला नहाने, तो बैठा मुंह धो रहा था।"

बनियाइन—"मैं भी बिना दिन चढ़े घर की खिड़की नहीं खोलूंगी।"

रात की ख़ामोशी आमतौर से ज्यादा गहरी होती है। यही वजह थी या उन दोनों ने इन लोगों को सुनाने के लिए यह बातें की थी, इसका फ़ैसला नहीं किया जा सकता। पर बातें साफ़-साफ़ सुनाई दीं। दोनों ने सुन लिया। विंध्येश्वरी ने दुखी आंखों से अपने शौहर

को देखा और फिर सिर झुका लिया। पंडितजी ने एक ठंडी सांस ली और अख़बार को ज़मीन पर रखकर आसमान की तरफ देखने लगे। उनकी मज़हबीयत (धार्मिक निष्ठा) कभी भी इतने सख़्त इम्तहान से नहीं गुज़री थी।

कुछ देर के बार विंध्येश्वरी ने कहा—"कोई दूसरा घर खोजो।"

बजरंगनाथ बोले—"हां, कल।"

घर तो दूसरे ही दिन बदल दिया गया। पर उन बातों से दिल को जो तकलीफ़ पहुंची थी, उसका इलाज न हो सका। जो आग पहले दबी हुई सुलगती रहती थी उसने अब भड़कना शुरू कर दिया था और उसकी लपटें जिन्दगी की ऊंची इक्दार (परम्परागत मूल्य) को छूने लगी थीं। अकीदत (धार्मिक विश्वास, आस्था), बंदगी, अमलपरस्ती पर से अब उनका एतमाद (विश्वास) उठने लगा था। मज़हबी ज़िंदगी अब उन्हें फरेब मालूम होती थी।

शाम का वक्त था। पंडित बजरंगनाथ माहाना तनख्वाह के डेढ़ सौ रुपये बीवी के हाथ में रखते हुए बोले, "अभी तो वक्त है, लाओ टहलता आऊं और गोशाला के पांच रुपये देता आऊं। उधर की पाठशाला का चंदा भी देता आऊंगा।"

विंध्येश्वरी ने रुपये संदूक में बंद करते हुए कहा, "अब से किसी को न दूंगी। क्या फायदा ? क्या और सब लोग खाना-पहनना जानते हैं और हम नहीं जानते। सिर्फ़ तीस रुपये घर पर तो भेज दो, बाक़ी रुपये घर के खर्च में आएंगे। कल तक कहार तलाश करके रख लो। तप करते-करते आधी उम्र बीत गई और इसका कछ फल ही नहीं मिला। अपने पेट खाते, अपने तन पहनते तो तस्कीन होती। दूसरों के लिए बेकार क्यों जान दें। काइनात (सृष्टि, संस्कार) खुदा की है। वह इसकी देखभाल करता ही है। हम क्यों अपनी ख्वाहिशात (इच्छाओं, कामनाओं) को खत्म करें।"

बजरंग ने हंसकर कहा—"लाओ, लाओ। देता आऊं। लोग क्या कहेंगे !"

विंध्येश्वरी—"दुनिया को किसी के कहने का डर नहीं है तो हमीं को क्यों हो? किसी को दूध भी और पूत भी। यहां एक से भी गये।"

बजरंग के दिल में भी यही ख़याल पैदा हो चुका था। एक बार और ऊपर दिल से कहा। फिर दो रुपये लेकर कलमी आम लेने बाज़ार चले गये।

आज से दोनों खुद अपनी सेवा में मह्व (तन्मय) हो गये। अच्छे-अच्छे भोजन बनाने लगे। सुन्दर कपड़े पहनने लगे। एक सौ रुपये होते ही क्या हैं ? खाने-पहनने ही में उड़ने लगे। पहले जितना दया-धरम करते थे, पेट और तन काटकर करते थे। अब मनपसंद भोजन और लिबास का ख़याल करने लगे तो महीने के लिए तनख्वाह काफ़ी न होती। ईश्वर की माया। जीवन की इस कायापलट के दूसरे ही साल विंध्येश्वरी के एक लड़का पैदा हुआ। खुशिया मनाई जाने लगीं। बाजे बजने लगे। जश्न की तैयारियां होने लगीं।

बच्चे की 'बरही' थी। डोमिनियां गा रही थीं। बाहर दोस्तों की महफ़िल थी। शनासाओं (परिचितों) और रिश्तेदारों को मद्ऊ (निमंत्रित) किया गया था। शामियाना तना हुआ था। मल्हार की तानें उड़ रही थीं। एक तरफ दावत का सामान हो रहा था। विंध्येश्वरी इस जश्न में खुशी के मारे फूली नहीं समा रही थी। बार-बार नवज़ायदा (सद्यःसपूत) बच्चे का मुंह देखती और उसको चूमने लगती। दिल खुश हो जाता। 'मेरे

लाल, तुमने आकर मेरा मुंह रोशन कर दिया। अब किसका मुंह है जो मुझे ताने दे सके।' उस पड़ासी बनिये को भी बुलाया गया था जिसने विंध्येश्वरी के ख़िलाफ अज़ीयतनाक (पीड़ाजनक) लफ्जों का इस्तेमाल किया था। बनियाइन कुछ अनमनी-सी बैठी थी और विंध्येश्वरी की सास जो घर से इस जश्न का इंतज़ाम करने आई थी, बार-बार बनियाइन को ताने दे रही थी। विंध्येश्वरी बड़ी बेचैनी से इंतजार कर रही थी कि कब जश्न ख़त्म हो और मैं अपने प्यारे लाल को उसके बाप को गोद में दे दूं।

उसकी आंखों में चमक आएगी। छाती एक गज की हो जाएगी।

ग्यारह बज गये थे। मेहमान रुख़सत हो गये थे। महफ़िल उठ चुकी थी। नौकर-चाकर निबटकर खाने बैठे थे। बाबू बजरंग बालक का मुंह देखने के लिए बेचैन हो रहे थे। मेहमानों को रुख़्सत कराके घर में गये। विंध्येश्वरी नहा-धोकर आ चुकी थी। उसका मुंह कमल की तरह खिला हुआ था बजरंग ज्यों ही घर में गये, मुस्कराकर कहा, "बेटा मुबारक हो !" और बालक को गोद में उठाकर पिता की गोद में दे दिया। संसार की माया पाकर भी उनका दिल इतना ख़ुश न होता। कितनी सुंदर मोहनी मूरती थी ! गोया आसमानी देवताओं की मेहरबानी से मुजस्सम (साकार) हो गया हो।

बालक को लेकर उसका मनोहर मुखड़ा देखा। आंखें जगमगा उठीं। छाती से लगाया, छाती फूल उठी .

विंध्येश्वरी ने कहा, "तुमसे कोई भारी इनाम लूंगी।"

"ख़ुदा बच्चे की उम्र दराज़ करे, यही तुम्हें मेरा सबसे बड़ा इनाम है।"

इस तरह बातें करते हुए दोनों सो गये। दिन-भर के थके-मांदे थे। फौरन नींद आ गई। मगर थोड़ी देर बाद बजरंगनाथ एक ख्वाब देखकर चौंक पड़े, जैसे एक महात्मा आकर बालक के सिरहाने खड़े होकर उनसे कह रहे हों—"ले, अब तेरी दिली ख्वाहिश पूरी हो गई। यह लालच का फल है। इस पर तू इतना ख़ुश है ! ख़ुदा की लगन का फल इसमें कहीं ज्यादा मीठा होता है। तू सोना न लेकर लोहे पर लटटू हो गया।" यह कहकर महात्मा गायब हो गये। चारों तरफ रात की ख़ामोशी छायी हुई थी। चिराग जल रहा था। बालक मीठी नींद में सो रहा था। गोया किसी दिल में कोई खूबसूरत नूर (ज्योति) सो रहा है। बजरंगनाथ के कानों में ख्वाब के अल्फाज गूंज रहे थे। उन्होंने लड़के के मुंह की तरफ़ देखकर दिल में कहा—क्या इससे भी अच्छी कोई शै (चीज) हो सकती है ? यकीन है। लालच का फल इतना हसीन, दिलखुशकुन (आनन्दप्रद) है तो ख़ुदा की लगन का फल कितना मनमोहक होगा।" वह फौरन घर से निकले। बच्चे की तरफ बड़ी दर्द भरी नज़र से देखा और जंगल की राह ली। फिर किसी को उनका पता न लगा।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी पत्रिका 'स्वाधीनता', 1933 के किसी अंक में प्रकाशित। प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। 'सोलह अप्राप्य कहानियां' और 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित। उर्दू अनुवाद 'शायर' (उर्दू मासिक पत्रिका, बम्बई) के मई-जून, 1969 के अंक में 'विराग' शीर्षक से प्रकाशित।]

नशा

ईश्वरी एक बड़े जमींदार का लड़का था और मैं एक गरीब क्लर्क था, जिसके पास मेहनत मजूरी के सिवा और कोई जायदाद न थी। हम दोनों में परस्पर बहसें होती रहती थीं। मैं जमींदारी की बुराई करता, उन्हें हिंसक पशु और खून चूसने वाली जोंक और वृक्षों की चोटी पर फूलनेवाला बंझा कहता। वह जमींदारों का पक्ष लेता; पर स्वभावतः उसका पहलू कुछ कमजोर होता था, क्योंकि उसके पास जमींदारों के अनुकूल कोई दलील न थी। यह कहना कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते, छोटे-बड़े हमेशा होते रहते हैं और होते रहेंगे, लचर दलील थी। किसी मानुषीय या नैतिक नियम से इस व्यवस्था का औचित्य सिद्ध करना कठिन था। मैं इस वाद-विवाद की गर्मा-गर्मी में अक्सर तेज हो जाता और लगनेवाली बातें कह जाता; लेकिन ईश्वरी हारकर भी मुस्कराता रहता था। मैंने उसे कभी गर्म होते नहीं देखा। शायद इसका कारण यह था कि वह अपने पक्ष की कमजोरी समझता था। नौकरों से वह सीधे मुँह बात न करता था। अमीरों में जो एक बेदर्दी और उद्दण्डता होती है, उसका उसे भी प्रचुर भाग मिला था। नौकर ने बिस्तर लगाने में जरा भी देर की, दूध जरूरत से ज्यादा गर्म या ठंडा हुआ; साइकिल अच्छी तरह साफ नहीं हुई, तो वह आपे से बाहर हो जाता। सुस्ती बदतमीजी उसे जरा भी बर्दाश्त न थी, पर दोस्तों से और विशेषकर मुझसे उसका व्यवहार सौहार्द्र और नम्रता से भरा होता था। शायद उसकी जगह मैं होता, तो मुझमें भी वही कठोरताएँ पैदा हो जातीं; जो उसमें थीं; क्योंकि मेरा लोक-प्रेम सिद्धान्तों पर नहीं, निजी दशाओं पर टिका हुआ था; लेकिन वह मेरी जगह होकर भी शायद अमीर ही रहता, क्योंकि वह प्रकृति से ही विलासी और ऐश्वर्य-प्रिय था।

अबकी दशहरे की छुट्टियों में मैंने निश्चय किया कि घर न जाऊँगा। मेरे पास किराये के लिए रुपये न थे और न मैं घरवालों को तकलीफ देना चाहता था। मैं जानता हूँ वे मुझे जो कुछ देते हैं वह उनकी हैसियत से बहुत ज्यादा है। इसके साथ ही परीक्षा का भी खयाल था। अभी बहुत-कुछ पढ़ना बाकी था और घर जाकर कौन पढ़ता है। बोर्डिंग हाउस में भूत की तरह अकेले पड़े रहने को भी जी न चाहता था। लेकिन जब ईश्वरी ने मुझे अपने घर चलने का नेवता दिया, तो मैं बिना आग्रह के राजी हो गया। ईश्वरी के साथ परीक्षा की तैयारी खूब हो जायगी। वह अमीर होकर भी मेहनती और जहीन है।

उसने इसके साथ ही कहा—लेकिन भाई एक बात का खयाल रखना। वहाँ अगर जमींदारों की निन्दा की तो मुआमिला बिगड़ जायगा और मेरे घरवालों को बुरा लगेगा। वह लोग तो असामियों पर इसी दावे से शासन करते हैं कि ईश्वर ने असामियों को उनकी सेवा के लिए पैदा किया है। असामी भी यही समझता है। अगर उसे सुझा दिया जाय कि जमींदार और असामी में कोई मौलिक भेद नहीं है, तो जमींदारी का कहीं पता न लगे।

मैंने कहा—तो क्या तुम समझते हो कि मैं वहाँ जाकर कुछ और हो जाऊँगा ?

'हाँ मैं तो यही समझता हूँ।'

'तो तुम गलत समझते हो।'

'ईश्वरी ने इसका कोई जवाब न दिया। कदाचित् उसने इस मुआमले को मेरे विवेक पर छोड़ दिया और बहुत अच्छा किया। अगर वह अपनी बात पर अड़ता, तो मैं भी जिद पकड़ लेता।'

2

सेकेण्ड क्लास तो क्या मैंने कभी इण्टर क्लास में भी सफर न किया था। अबकी सेकेण्ड क्लास में सफर करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गाड़ी तो नौ बजे रात को आती थी, पर यात्रा के हर्ष में हम शाम को ही स्टेशन जा पहुँचे। कुछ देर इधर-उधर सैर करने के बाद रिफ्रेशमेण्ट रूम में जाकर हम लोगों ने भोजन किया। मेरी वेश-भूषा और रंग-ढंग से पारखी खानसामों को यह पहचानने में देर न लगी कि मालिक कौन है और पिछलग्गू कौन; लेकिन न जाने मुझे उनकी गुस्ताखी बुरी लग रही थी। पैसे ईश्वरी के जेब से गये। शायद मेरे पिता को जो वेतन मिलता है, उससे ज्यादा इन खानसामों को इनाम-एकराम में मिल जाता हो। एक अठन्नी तो चलते समय ईश्वरी ही ने दी। फिर भी मैं उन सबों से उसी तत्परता और विनय की प्रतीक्षा करता था, जिससे वे ईश्वरी की सेवा कर रहे थे ! ईश्वरी के हुक्म पर सब-के-सब क्यों दौड़ते हैं, लेकिन मैं कोई चीज माँगता हूँ तो इतना उत्साह नहीं दिखाते ? मुझे भोजन में कुछ स्वाद न मिला। वह भेद मेरे ध्यान को सम्पूर्ण रूप से अपनी ओर खींचे हुए था।

गाड़ी आयी, हम दोनों सवार हुए। खानसामों ने ईश्वरी को सलाम किया। मेरी ओर देखा भी नहीं।

ईश्वरी ने कहा—कितने तमीजदार हैं ये सब। एक हमारे नौकर हैं कि कोई काम करने का ढंग नहीं।

मैंने खट्टे मन से कहा—इसी तरह अगर तुम अपने नौकरों को भी आठ आने रोज इनाम दिया करो तो शायद इससे ज्यादा तमीजदार हो जायें।

'तो क्या तुम समझते हो, यह सब केवल इनाम के लालच से इतना अदब करते हैं ?'

'जी नहीं, कदापि नहीं। तमीज और अदब तो इनके रक्त में मिल गया है !'

गाड़ी चली। डाक थी। प्रयाग से चली तो प्रतापगढ़ जाकर रुकी। एक आदमी ने हमारा कमरा खोला। मैं तुरन्त चिल्ला उठा—दूसरा दरजा है—सेकेण्ड क्लास है।

उस मुसाफिर ने डब्बे के अन्दर आकर मेरी ओर एक विचित्र उपेक्षा की दृष्टि से देखकर कहा—जी हाँ, सेवक भी इतना समझता है, और बीचवाले बर्थ पर बैठ गया। मुझे कितनी लज्जा आयी, कह नहीं सकता।

भोर होते-होते हम लोग मुरादाबाद पहुँचे। स्टेशन पर कई आदमी हमारा स्वागत करने के लिए खड़े थे। दो भद्र पुरुष थे। पाँच बेगार। बेगारों ने हमारा लगेज उठाया। दोनों भद्र पुरुष पीछे-पीछे चले। एक मुसलमान था, रियासत अली; दूसरा ब्राह्मण था, रामहरख। दोनों ने मेरी ओर अपरिचित नेत्रों से देखा, मानों कह रहे हैं, तुम कौवे होकर हंस के साथ कैसे ?

रियासत अली ने ईश्वरी से पूछा—यह बाबू साहब क्या आपके साथ पढ़ते हैं ?

ईश्वरी ने जवाब दिया—हाँ, साथ पढ़ते भी हैं, और साथ रहते भी हैं ? यों कहिए कि आप ही की बदौलत मैं इलाहाबाद पड़ा हुआ हूँ, नहीं कब का लखनऊ चला आया होता। अबकी मैं इन्हें घसीट लाया। इनके घर से कई तार आ चुके थे; मगर मैंने इन्कारी जवाब दिलवा दिये। आखिरी तार तो अर्जेण्ट था, जिसकी फीस चार आने प्रति शब्द है; पर यहाँ

से भी उसका जवाब इन्कारी ही गया।

दोनों सज्जनों ने मेरी ओर चकित नेत्रों से देखा। आतंकित हो जाने की चेष्टा करते हुए जान पड़े।

रियासत अली ने अर्द्ध शंका के स्वर में कहा—लेकिन आप बड़े सादे लिबास में रहते हैं !

ईश्वरी ने शंका निवारण की—महात्मा गाँधी के भक्त हैं साहब ! खद्दर के सिवा कुछ पहनते ही नहीं। पुराने सारे कपड़े जला डाले ! यों कहो कि राजा हैं। ढाई लाख सालाना की रियासत है; पर आपकी मूरत देखो तो मालूम होता है, अभी अनाथालय से पकड़कर आये हैं।

रामहरख बोले—अमीरों का ऐसा स्वभाव बहुत कम देखने में आता है। कोई भाँप ही नहीं सकता।

रियासत अली ने समर्थन किया—आपने महाराज चाँगली को देखा होता, तो दाँतों उंगली दबाते। एक गाढ़े की मिर्जई और चमरौधे जूते पहने बाजारों में घूमा करते थे। सुनते हैं, एक बार बेगार में पकड़े गये थे और उन्हीं ने दस लाख से कालेज खोल दिया।

मैं मन में कटा जा रहा था; पर न जाने क्या बात थी कि यह सफेद झूठ उस वक्त मुझे हास्यास्पद न जान पड़ा। उसके प्रत्येक वाक्य के साथ मानो मैं उस कल्पित वैभव के समीपतर आता जाता था।

मैं शहसवार नहीं हूँ। हाँ, लड़कपन में कई बार लद्दू घोड़ों पर सवार हुआ हूँ। यहाँ देखा तो दो कलाँ-रास घोड़े हमारे लिए तैयार खड़े थे। मेरी तो जान ही निकल गयी। सवार तो हुआ; पर बोटियाँ काँप रही थीं। मैंने चेहरे पर शिकन न पड़ने दिया। घोड़े को ईश्वरी के पीछे डाल दिया। खैरियत यह हुई कि ईश्वरी ने घोड़े को तेज न किया, वरना शायद मैं हाथ-पाँव तुड़वाकर लौटता। सम्भव है, ईश्वरी ने समझ लिया हो कि वह कितने पानी में

3

ईश्वरी का घर क्या था, किला था। इमामबाड़े का-सा फाटक, द्वार पर पहरेदार टहलता हुआ, नौकरों का कोई हिसाब नहीं, एक हाथी बँधा हुआ। ईश्वरी ने अपने पिता, चाचा, ताऊ आदि सबसे मेरा परिचय कराया, और उसी अतिशयोक्ति के साथ। ऐसी हवा बाँधी कि कुछ न पूछिए। नौकर-चाकर ही नहीं, घर के लोग भी मेरा सम्मान करने लगे। देहात के जमींदार, लाखों का मुनाफा, मगर पुलिस कान्सटेबिल को भी अफसर समझने वाले। कई महाशय तो मुझे हुजूर-हुजूर कहने लगे।

जब जरा एकान्त हुआ, तो मैंने ईश्वरी से कहा—'तुम बड़े शैतान हो यार, मेरी मिट्टी क्यों पलीद कर रहे हो ?'

ईश्वरी ने सुदृढ़ मुस्कान के साथ कहा—इन गधों के सामने यही चाल जरूरी थी; वरना सीधे मुँह बोलते भी नहीं।

जरा देर बाद एक नाई हमारे पाँव दबाने आया। कुँवर लोग स्टेशन से आये हैं, थक गए होंगे। ईश्वरी ने मेरी ओर इशारा करके कहा—पहले कुँवर साहब के पाँव दबा।

मैं चारपाई पर लेटा हुआ था। मेरे जीवन में ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी ने मेरे पाँव दबाये हों। मैं इसे अमीरों के चोंचले, रईसों का गधापन और बड़े आदमियों की मुटमरदी और जाने क्या-क्या कहकर ईश्वरी का परिहास किया करता और आज मैं पोतड़ों का रईस बनने का स्वाँग भर रहा था !

इतने में दस बज गये। पुरानी सभ्यता के लोग थे। नयी रोशनी अभी केवल पहाड़ की चोटी तक पहुँच पायी थी। अन्दर से भोजन का बुलावा आया। हम स्नान करने चले। मैं हमेशा अपनी धोती खुद छाँट लिया करता हूँ; मगर यहाँ मैंने ईश्वरी की ही भाँति अपनी धोती भी छोड़ दी। अपने हाथों अपनी धोती छाँटते शर्म आ रही थी। अन्दर भोजन करने चले। होटल में जूते पहने मेज पर डटते थे। यहाँ पाँव धोना आवश्यक था। कहार पानी लिये खड़ा था। ईश्वरी ने पाँव बढ़ा दिये। कहार ने उसके पाँव धोये। मैंने भी पाँव बढ़ा दिये। कहार ने मेरे पाँव भी धोये। मेरा वह विचार न जाने कहाँ चला गया था।

4

सोचा था, वहाँ देहात तें एकाग्र होकर खूब पढ़ेंगे; पर वहाँ सारा दिन सैर-सपाटे में कट जाता था। कहीं नदी में बजरे पर सैर कर रहे हैं; कहीं मछलियों या चिड़ियों का शिकार खेल रहे हैं, कहीं पहलवानों की कुश्ती देख रहे हैं, कहीं शतरंज पर जमे हैं। ईश्वरी खूब अण्डे मँगवाता और कमरे में 'स्टोव' पर आमलेट बनते। नौकरों का एक जत्था हमेशा घेरे रहता। अपने हाथ-पाँव को हिलाने की कोई जरूरत नहीं। केवल एक जबान हिला देना काफी है। नहाने बैठे तो आदमी नहलाने को हाजिर, लेटे तो आदमी पंखा झलने को खड़े। मैं महात्मा गाँधी का कुँअर चेला मशहूर था। भीतर से बाहर तक मेरी धाक थी। नाश्ते में जरा भी देर न होने पाये, कहीं कुँअर साहब नाराज न हो जाएँ, बिछावन ठीक समय पर लग जाय, कुँवर साहब के सोने का समय आ गया। मैं ईश्वरी से भी ज्यादा नाजुक दिमाग बन गया था, या बनने पर मजबूर किया गया था। ईश्वरी अपने हाथ से बिस्तर बिछा ले; लेकिन कुँवर मेहमान अपने हाथों से कैसे अपना बिछावन बिछा सकते हैं ! उनकी महानता में बट्टा लग जायगा।

एक दिन सचमुच यही बात हो गई। ईश्वरी घर में थे। शायद अपनी माता से कुछ बातचीत करने में देर हो गई। यहाँ दस बज गये। मेरी आँखें नींद से झपक रही थीं; मगर बिस्तर कैसे लगाऊँ ? कुँअर जो ठहरा। कोई साढ़े ग्यारह बजे महरा आया। बड़ा मुँहलगा नौकर था। घर के धन्धों में मेरा बिस्तर लगाने की उसे सुधि ही न रही। अब जो याद आई, तो भागा हुआ आया। मैंने ऐसी डाँट बताई कि उसने भी याद किया होगा।

ईश्वरी मेरी डाँट सुनकर बाहर निकल आया और बोला—तुमने बहुत अच्छा किया। यह सब हरामखोर इसी व्यवहार के योग्य हैं।

इसी तरह ईश्वरी एक दिन एक जगह दावत में गया हुआ था। शाम हो गई; पर लैम्प न जला। लैम्प मेज पर रखा हुआ था। दियासलाई भी वहीं थी; लेकिन ईश्वरी खुद कभी लैम्प नहीं जलाता। फिर कुँअर साहब कैसे जलायें ? मैं झुंझला रहा था। समाचार-पत्र आया रखा हुआ था। जी उधर लगा हुआ था; पर लैम्प नदारत। दैवयोग उसी वक्त मुंशी रियासत अली आ निकले। मैं उन्हीं पर उबल पड़ा ऐसी फटकार बताई कि बेचारा उल्लू हो

गया—तुम लोगों को इतनी फिक्र भी नहीं कि लैम्प जलवा दो ! मालूम नहीं, ऐसे कामचोर आदमियों का यहाँ कैसे गुजर होता है। मेरे यहाँ घंटे भर निर्वाह न हो। रियासत अली ने काँपते हुए हाथों से लैम्प जला दिया।

वहाँ एक ठाकुर अक्सर आया करता था। कुछ मनचला आदमी था, महात्मा गाँधी का परम भक्त। मुझे महात्मा जी का चेला समझ कर मेरा लिहाज करता था; पर मुझसे कुछ पूछते संकोच करता था। एक दिन मुझे अकेला देखकर आया और हाथ बाँधकर बोला—सरकार तो गाँधी बाबा के चेले हैं न ? लोग कहते हैं कि यहाँ सुराज हो जायगा तो जमींदार न रहेंगे।

मैंने शान जमाई—जमींदारों के रहने की जरूरत ही क्या है ? यह लोग गरीबों का खून चूसने के सिवा और क्या करते हैं ?

ठाकुर ने फिर पूछा—तो क्या सरकार, सब जमींदारों की जमीन छीन ली जायगी ?

मैंने कहा—बहुत से लोग खुशी से दे देंगे। जो लोग खुशी से न देंगे उनकी जमीन छीननी ही पड़ेगी। हम लोग तो तैयार बैठे हुए हैं। ज्योंही स्वराज्य हुआ, अपने सारे इलाके असामियों के नाम हिब्बा कर देंगे।

मैं कुरसी पर पाँव लटकाये बैठा था। ठाकुर मेरे पाँव दबाने लगा। फिर बोला—आजकल जमींदार लोग बड़ा जुलुम करते हैं सरकार ! हमें भी हुजूर अपने इलाके में थोड़ी-सी जमीन दे दें; तो चलकर वहीं आपकी सेवा में रहें।

मैंने कहा—अभी तो मेरा कोई अख्तियार नहीं है भाई, लेकिन ज्योंही अख्तियार मिला, मैं सबसे पहले तुम्हें बुलाऊँगा। तुम्हें मोटर-ड्राइवरी सिखाकर अपना ड्राइवर बना लूँगा।

सुना, उस दिन ठाकुर ने खूब भंग पी और अपनी स्त्री को खूब पीटा और गाँव के महाजन से लड़ने पर तैयार हो गया।

5

छुट्टी इस तरह तमाम हुई और हम फिर प्रयाग चले। गाँव के बहुत से लोग हम लोगों को पहुँचाने आये। ठाकुर तो हमारे साथ स्टेशन तक आया। मैंने भी अपना पार्ट खूब सफाई से खेला और अपनी कुबेरोचित विनय और देवत्व की मुहर हरेक हृदय पर लगा दी। जी तो चाहता था, हरेक को अच्छा इनाम दूँ, लेकिन यह सामर्थ्य कहाँ थी ? वापसी टिकट था ही, केवल गाड़ी में बैठना था; पर गाड़ी आयी तो ठसाठस भरी हुई। दुर्गा पूजा की छुट्टियाँ भोगकर सभी लोग लौट रहे थे। सेकेण्ड क्लास में तिल रखने की जगह नहीं। इण्टर क्लास की हालत उससे भी बदतर। यह आखिरी गाड़ी थी। किसी तरह रुक न सकते थे। बड़ी मुश्किल से तीसरे दर्जे में जगह मिली। हमारे ऐश्वर्य ने वहाँ अपना रंग जमा लिया; मगर मुझे उसमें बैठना बुरा लग रहा था। आये थे आराम से लेटे-लेटे, जा रहे थे सिकुड़े हुए। पहलू बदलने की भी जगह न थी।

कई आदमी पढ़े-लिखे भी थे। आपस में अंग्रेजी राज्य की तारीफ करते जा रहे थे। एक महाशय बोले—ऐसा न्याय तो किसी राज्य में नहीं देखा। छोटे-बड़े सब बराबर। राजा भी किसी पर अन्याय करे, तो अदालत उसकी भी गर्दन दबा देती है।

दूसरे सज्जन ने समर्थन किया—अरे साहब, आप खुद बादशाह पर दावा कर सकते हैं ! अदालत में बादशाह पर डिग्री हो जाती है।

एक आदमी, जिसकी पीठ पर बड़ा-सा गट्ठर बँधा था, कलकत्ते जा रहा था। कहीं गठरी रखने की जगह न मिलती थी। पीठ पर बाँधे हुए था। इससे बेचैन होकर बार-बार द्वार पर खड़ा हो जाता। मैं द्वार के पास ही बैठा हुआ था। उसका बार-बार आकर मेरे मुँह को अपनी गठरी से रगड़ना मुझे बहुत बुरा लग रहा था। एक तो हवा यों ही कम थी, दूसरे उस गँवार का आकर मेरे मुँह पर खड़ा हो जाना मानों मेरा गला दबाना था। मैं कुछ देर जब्त किये बैठा रहा। एकाएक मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसे पकड़कर ढकेल दिया और दो तमाचे जोर-जोर से लगाये।

उसने आँखें निकालकर कहा—क्यों मारते हो बाबूजी, हमने भी किराया दिया है।

मैंने उठकर दो-तीन तमाचे और जड़ दिये।

गाड़ी में तूफान आ गया। चारों ओर से मुझ पर बौछार पड़ने लगी।

'अगर इतने नाजुक मिजाज हो, तो अव्वल दर्जे में क्यों नहीं बैठे ?'

'कोई बड़ा आदमी होगा तो अपने घर का होगा। मुझे इस तरह मारते, तो दिखा देत। ।'

'क्या कसूर किया था बेचारे ने ? गाड़ी में साँस लेने की जगह नहीं, खिड़की पर जरा साँस लेने खड़ा हो गया तो उस पर इतना क्रोध ! अमीर होकर क्या आदमी अपनी इन्सानियत बिल्कुल खो देता है ?'

'यह भी अंग्रेजी राज है, जिसका आप बखान कर रहे थे !'

एक ग्रामीण बोला—दफ़्तरन माँ घुसन तो पावत नहीं, उस पर इत्ता मिजाज !

ईश्वरी ने अंग्रेजी में कहा—What an idiot you are Bir !

और मेरा नशा कुछ-कुछ उतरता हुआ मालूम होता था।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'चांद', फरवरी, 1934 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित।]

शान्ति-2

जब मैं ससुराल आयी, तो बिलकुल फूहड़ थी। न पहनने-ओढ़ने का सलीका, न बातचीत करने का ढंग। सिर उठा कर किसी से बातचीत न कर सकती थी। आँखें अपने आप झपक जाती थीं। किसी के सामने जाते शर्म आती, स्त्रियों तक के सामने बिना घूँघट के झिझक होती थी। मैं कुछ हिन्दी पढ़ी हुई थी; पर उपन्यास, नाटक आदि के पढ़ने में आनन्द न आता था। फुर्सत मिलने पर रामायण पढ़ती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। मैं उसे मनुष्य-कृत नहीं समझती थी। मुझे पूरा-पूरा विश्वास था कि उसे किसी देवता ने स्वयं रचा होगा। मैं मनुष्यों को इतना बुद्धिमान और सहृदय नहीं समझती थी। मैं दिन भर घर का कोई न कोई काम करती रहती। और कोई काम न रहता तो चर्खे पर सूत कातती।

अपनी बूढ़ी सास से थर-थर काँपती थी। एक दिन दाल में नमक अधिक हो गया। ससुर जी ने भोजन के समय सिर्फ इतना ही कहा—'नमक जरा अंदाज से डाला करो।' इतना सुनते ही हृदय काँपने लगा। मानो मुझे इससे अधिक कोई वेदना नहीं पहुँचायी जा सकती थी।

लेकिन मेरा यह फूहड़पन मेरे बाबू जी (पतिदेव) को पसन्द न आता था। वह वकील थे। उन्होंने शिक्षा की ऊँची से ऊँची डिगरियाँ पायी थीं। वह मुझ पर प्रेम अवश्य करते थे; पर उस प्रेम में दया की मात्रा अधिक होती थी। स्त्रियों के रहन-सहन और शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार बहुत ही उदार थे। वह मुझे उन विचारों से बहुत नीचे देख कर कदाचित् मन ही मन खिन्न होते थे; परन्तु उसमें मेरा कोई अपराध न देख कर हमारे रस्म-रिवाज पर झुँझलाते थे। उन्हें मेरे साथ बैठ कर बातचीत करने में जरा आनन्द न आता। सोने आते, तो कोई न कोई अँगरेजी पुस्तक साथ लाते, और नींद न आने तक पढ़ा करते। जो कभी मैं पूछ बैठती कि क्या पढ़ते हो, तो मेरी ओर करुण दृष्टि से देख कर उत्तर देते—तुम्हें क्या बतलाऊँ यह आसकर वाइल्ड की सर्वश्रेष्ठ रचना है। मैं अपनी अयोग्यता पर बहुत लज्जित थी। अपने को धिक्कारती, मैं ऐसे विद्वान् पुरुष के योग्य नहीं हूँ। मुझे किसी उजड्ड के घर पड़ना था। बाबू जी मुझे निरादर की दृष्टि से नहीं देखते थे, यही मेरे लिए सौभाग्य की बात थी।

एक दिन संध्या समय मैं रामायण पढ़ रही थी। भरत जी रामचंद्र जी की खोज में निकले थे। उनका करुण विलाप पढ़ कर मेरा हृदय गद्‌गद हो रहा था। नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। हृदय उमड़ा आता था। सहसा बाबू जी कमरे में आये। मैंने पुस्तक तुरंत बन्द कर दी। उनके सामने मैं अपने फूहड़पन को भरसक प्रकट न होने देती थी। लेकिन उन्होंने पुस्तक देख ली; और पूछा—रामायण है न ?

मैंने अपराधियों की भाँति सिर झुका कर कहा—हाँ, ज़रा देख रही थी।

बाबू जी—इसमें शक नहीं कि पुस्तक बहुत ही अच्छी, भावों से भरी हुई है; लेकिन इसमें मानव-चरित्र को वैसी खूबी से नहीं दिखाया गया जैसा अँगरेज़ या फ्रांसीसी लेखक दिखलाते हैं। तुम्हारी समझ में तो न आवेगा, लेकिन कहने में क्या हरज है, योरप में आजकल 'स्वाभाविकता' (Realism) का ज़माना है। वे लोग मनोभावों के उत्थान और पतन का ऐसा वास्तविक वर्णन करते हैं कि पढ़ कर आश्चर्य होता है। हमारे यहाँ कवियों को पग-पग पर धर्म तथा नीति का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिए कभी-कभी उनके भावों में अस्वाभाविकता आ जाती है, और यही त्रुटि तुलसीदास में भी है।

मेरी समझ में उस समय कुछ भी न आया। बोली—मेरे लिए तो यही बहुत है, अँगरेजी पुस्तकें कैसे समझूँ।

बाबू जी—कोई कठिन बात नहीं। एक घंटे भी रोज पढ़ो, तो थोड़े ही समय में काफ़ी योग्यता प्राप्त कर सकती हो; पर तुमने तो मानो मेरी बातें न मानने की सौगंध ही खा ली है। कितना समझाया कि मुझसे शर्म करने की आवश्यकता नहीं, पर तुम्हारे ऊपर कुछ असर न पड़ा। कितना कहता हूँ कि जरा सफाई से रहा करो, परमात्मा सुन्दरता देता है तो चाहता है कि उसका शृंगार भी होता रहे; लेकिन जान पड़ता है, तुम्हारी दृष्टि में उसका कुछ भी मूल्य नहीं ! या शायद तुम समझती हो कि मेरे-जैसे कुरूप मनुष्य के लिए तुम

चाहे जैसे भी रहो, आवश्यकता से अधिक अच्छी हो। यह अत्याचार मेरे ऊपर है। तुम मुझे ठोंक-पीटकर वैराग्य सिखाना चाहती हो। जब मैं दिन-रात मेहनत करके कमाता हूँ, तो स्वभावतः मेरी यह इच्छा होती है कि उस द्रव्य का सबसे उत्तम व्यय हो। परन्तु तुम्हारा फूहड़पन और पुराने विचार मेरे सारे परिश्रम पर पानी फेर देते हैं। स्त्रियाँ केवल भोजन बनाने, बच्चे पालने, पति की सेवा करने और एकादशी व्रत रखने के लिए नहीं हैं, उनके जीवन का लक्ष्य इससे बहुत ऊँचा है। वे मनुष्यों के समस्त सामाजिक और मानसिक विषयों में समान रूप से भाग लेने की अधिकारणी हैं। उन्हें भी मनुष्यों की भाँति स्वतंत्र रहने का अधिकार प्राप्त है। मुझे तुम्हारी यह बंदी-दशा देख कर बड़ा कष्ट होता है। स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी मानी गयी है, लेकिन तुम मेरी मानसिक और सामाजिक, किसी आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकतीं। मेरा और तुम्हारा धर्म अलग, आचार-विचार अलग, आमोद-प्रमोद के विषय अलग। जीवन के किसी कार्य में मुझे तुमसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती। तुम स्वयं विचार सकती हो कि ऐसी दशा में मेरी जिंदगी कैसी बुरी तरह कट रही है।

बाबू जी का कहना बिलकुल यथार्थ था। मैं उनके गले में एक जंजीर की भाँति पड़ी हुई थी। उस दिन से मैंने उन्हीं के कहे अनुसार चलने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली, अपने देवता को किस भाँति अप्रसन्न करती ?

2

यह तो कैसे कहूँ कि मुझे पहनने-ओढ़ने से प्रेम न था। था, और उतना ही था, जितना दूसरी स्त्रियों को होता है। जब बालक और वृद्ध तक शृंगार पसंद करते हैं, तो मैं युवती ठहरी। मन भीतर ही भीतर मचल कर रह जाता था। मेरे मायके में मोटा खाने और मोटा पहनने की चाल थी। मेरी माँ और दादी हाथों से सूत कातती थीं, और जुलाहे से उसी सूत के कपड़े बुनवा लिये जाते थे। बाहर से बहुत कम कपड़े आते थे। मैं ज़रा महीन कपड़ा पहनना चाहती या शृंगार की रुचि दिखाती तो अम्माँ फौरन टोकतीं और समझातीं कि बहुत बनाव-सँवार भले घर की लड़कियों को शोभा नहीं देता। ऐसी आदत अच्छी नहीं। यदि कभी वह मुझे दर्पण के सामने देख लेतीं, तो झिड़कने लगतीं, परन्तु अब बाबू जी की ज़िद से मेरी यह झिझक जाती रही। मेरी सास और ननदें मेरे बनाव-शृंगार पर नाक-भौं सिकोड़तीं; पर मुझे अब उनकी परवा न थी। बाबू जी की प्रेम-परिपूर्ण दृष्टि के लिए मैं झिड़कियाँ भी सह सकती थी। अब उनके और मेरे विचारों में समानता आती जाती थी। वह अधिक प्रसन्न चित्त जान पड़ते थे। वह मेरे लिए फैशनेबुल साड़ियाँ, सुंदर जाकटें, चमकते हुए जूते और कामदार स्लीपरें लाया करते; पर मैं इन वस्तुओं को धारण कर किसी के सामने न निकलती, ये वस्त्र केवल बाबू जी के ही सामने पहनने के लिए रखे थे। मुझे इस प्रकार बनी-ठनी देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। स्त्री अपने पति की प्रसन्नता के लिए क्या नहीं कर सकती। अब घर के काम-काज से मेरा अधिक समय बनाव-शृंगार तथा पुस्तकावलोकन में ही बीतने लगा। पुस्तकों से मुझे प्रेम होने लगा था।

यद्यपि अभी तक मैं अपने सास-ससुर का लिहाज करती थी, उनके सामने बूट और गाउन पहनकर निकलने का मुझे साहस न होता था, पर मुझे उनकी शिक्षा-पूर्ण बातें न

भाती थीं। मैं सोचती, जब मेरा पति सैकड़ों रुपये महीने कमाता है तो घर में चेरी बन कर क्यों रहूँ ? यों अपनी इच्छा से चाहे जितना काम करूँ, पर वे लोग मुझे आज्ञा देनेवाले कौन होते हैं ? मुझमें आत्माभिमान की मात्रा बढ़ने लगी। यदि अम्माँ मुझे कोई काम करने को कहतीं, तो मैं अदबदा कर टाल जाती। एक दिन उन्होंने कहा—सबेरे के जलपान के लिए कुछ दालमोट बना लो। मैं बात अनसुनी कर गयी। अम्माँ ने कुछ देर तक मेरी राह देखी; पर जब मैं अपने कमरे से न निकली, तो उन्हें गुस्सा हो आया। वह बड़ी ही चिड़चिड़ी प्रकृति की थीं। तनिक-सी बात पर तुनक जाती थीं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का इतना अभिमान था कि मुझे बिलकुल लौंडी समझती थीं। हाँ, अपनी पुत्रियों से सदैव नम्रता से पेश आतीं; बल्कि मैं तो यह कहूँगी कि उन्हें सिर चढ़ा रखा था। वह क्रोध में भरी हुई मेरे कमरे के द्वार पर आकर बोलीं—तुमसे मैंने दालमोट बनाने को कहा था, बनाया ?

मैं कुछ रुष्ट होकर बोली—अभी फुर्सत नहीं मिली।

अम्माँ—तो तुम्हारी जान में दिन-भर पड़े रहना ही बड़ा काम है ! यह आजकल तुम्हें हो क्या गया है ? किस घमंड में हो ? क्या यह सोचती हो कि मेरा पति कमाता है, तो मैं काम क्यों करूँ ? इस घमंड में न भूलना ! तुम्हारा पति लाख कमाये; लेकिन घर में राज मेरा ही रहेगा। आज वह चार पैसे कमाने लगा है, तो तुम्हें मालकिन बनने की हवस हो रही है; लेकिन उसे पालने-पोसने तुम नहीं आयी थीं, मैंने ही उसे पढ़ा-लिखा कर इस योग्य बनाया है। वाह ! कल की छोकरी और अभी से यह गुमान।

मैं रोने लगी। मुँह से एक बात न निकली। बाबू जी उस समय ऊपर कमरे में बैठे कुछ पढ़ रहे थे। ये बातें उन्होंने सुनीं। उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। रात को जब वह घर आये तो बोले—देखा तुमने आज अम्माँ का क्रोध ? यही अत्याचार है, जिससे स्त्रियों को अपनी जिंदगी पहाड़ मालूम होते लगती है। इन बातों से हृदय में कितनी वेदना होती है, इसका जानना असम्भव है। जीवन भार हो जाता है, हृदय जर्ज़र हो जाता है और मनुष्य की आत्मोन्नति उसी प्रकार रुक जाती है, जैसे जल, प्रकाश और वायु के बिना पौदे सूख जाते हैं। हमारे घरों में यह बड़ा अंधेर है। अब मैं उनका पुत्र ही ठहरा। उनके सामने मुँह नहीं खोल सकूँगा। मेरे ऊपर उनका बहुत बड़ा अधिकार है। अतएव उनके विरुद्ध एक शब्द भी कहना मेरे लिये लज्जा की बात होगी, और यही बंधन तुम्हारे लिए भी है। यदि तुमने उनकी बातें चुपचाप न सुन ली होतीं, तो मुझे बहुत ही दुःख होता। कदाचित् मैं विष खा लेता। ऐसी दशा में दो ही बातें सम्भव हैं, या तो सदैव उनकी घुड़कियों-झिड़कियों को सहे जाओ, या अपने लिए कोई दूसरा रास्ता ढूँढ़ो। अब इस बात की आशा करना कि अम्माँ के स्वभाव में कोई परिवर्तन होगा, बिलकुल भ्रम है। बोलो, तुम्हें क्या स्वीकार है।

मैंने डरते-डरते कहा—आपकी जो आज्ञा हो, वह करें। अब कभी न पढ़ूँ-लिखूँगी, और जो कुछ वह कहेंगी वही करूँगी। यदि वह इसी में प्रसन्न हैं तो यही सही। मुझे पढ़-लिख कर क्या करना है ?

बाबू जी—पर यह मैं नहीं चाहता। अम्माँ ने आज आरम्भ किया है। अब रोज बढ़ती ही जायँगी। मैं तुम्हें जितनी ही सभ्य तथा विचारशील बनाने की चेष्टा करूँगा, उतना ही उन्हें बुरा लगेगा, और उनका गुस्सा तुम्हीं पर उतरेगा। उन्हें पता नहीं कि जिस आबहवा में उन्होंने अपनी जिंदगी बितायी है, वह अब नहीं रही। विचार-स्वातंत्र्य और समयानुकूलता

उनकी दृष्टि में अधर्म से कम नहीं। मैंने यह उपाय सोचा है कि किसी दूसरे शहर में चल कर अपना अड्डा जमाऊँ। मेरी वकालत भी यहाँ नहीं चलती; इसलिए किसी बहाने की भी आवश्यकता न पड़ेगी।

मैं इस तजबीज़ के विरुद्ध कुछ न बोली। यद्यपि मुझे अकेले रहने से भय लगता था, तथापि वहाँ स्वतंत्र रहने की आशा ने मन को प्रफुल्लित कर दिया।

3

उसी दिन से अम्माँ ने मुझसे बोलना छोड़ दिया। महरियों, पड़ोसिनों और ननदों के आगे मेरा परिहास किया करतीं। यह मुझे बहुत बुरा मालूम होता था। इसके पहले यदि वह कुछ भली-बुरी बातें कह लेतीं, तो मुझे स्वीकार था। मेरे हृदय से उनकी मान-मर्यादा घटने लगी। किसी मनुष्य पर इस प्रकार कटाक्ष करना उसके हृदय से अपने आदर को मिटाने के समान है। मेरे ऊपर सबसे गुरुतर दोषारोपण यह था कि मैंने बाबू जी पर कोई मोहन-मंत्र फूँक दिया है, वह मेरे इशारों पर चलते हैं; पर यथार्थ में बात उल्टी ही थी।

भाद्र मास था। जन्माष्टमी का त्यौहार आया। घर में सब लोगों ने व्रत रखा। मैंने भी सदैव की भाँति व्रत रखा। ठाकुर जी का जन्म रात को बारह बजे होनवाला था, हम सब बैठी गाती-बजाती थीं। बाबू जी इन असभ्य व्यवहारों के बिलकुल विरुद्ध थे। वह होली के दिन रंग भी न खेलते, गाने-बजाने की तो बात ही अलग। रात को एक बजे जब मैं उनके कमरे में गयी, तो मुझे समझाने लगे—इस प्रकार शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ ? कृष्ण महापुरुष अवश्य थे, और उनकी पूजा करना हमारा कर्तव्य है; पर इस गाने-बजाने से क्या फायदा ? इस ढोंग का नाम धर्म नहीं है। धर्म का सम्बन्ध सचाई और ईमान से है, दिखावे से नहीं।

बाबू जी स्वयं इसी मार्ग का अनुकरण करते थे। वह भगवद्गीता की अत्यंत प्रशंसा करते पर उसका पाठ कभी न करते थे। उपनिषदों की प्रशंसा में उनके मुख से मानों पुष्प-वृष्टि होने लगती थी; पर मैंने उन्हें कभी कोई उपनिषद् पढ़ते नहीं देखा। वह हिंदू धर्म के गूढ़ तत्त्व ज्ञान पर लट्टू थे, पर उसे समयानुकूल नहीं समझते थे। विशेषकर वेदांत को तो भारत की अवनति का मूल कारण समझते थे। वह कहा करते कि इसी वेदांत ने हमको चौपट कर दिया; हम दुनिया के पदार्थों को तुच्छ समझने लगे, जिसका फल अब तक भुगत रहे हैं। अब उन्नति का समय है। चुपचाप बैठे रहने से निर्वाह नहीं। संतोष ने ही भारत को गारत कर दिया।

उस समय उनको उत्तर देने की शक्ति मुझमें कहाँ थी ? हाँ, अब जान पड़ता है कि वह योरोपियन सभ्यता के चक्कर में पड़े हुए थे। अब वह स्वयं ऐसी बातें नहीं करते, वह जोश अब ठंडा हो चला है।

4

इसके कुछ दिन बाद हम इलाहाबाद चले। बाबू जी ने पहले ही एक दो-मंजिला मकान ले

रखा था—सब तरह से सजा-सजाया। हमारे यहाँ पाँच नौकर थे—दो स्त्रियाँ, दो पुरुष और एक महाराज। अब मैं घर के कुल कामकाज से छुट्टी पा गयी। कभी जी घबराता तो कोई उपन्यास ले कर पढ़ने लगती।

यहाँ फूल और पीतल के बर्तन बहुत कम थे। चीनी की रकाबियाँ और प्याले आलमारियों में सजे रखे थे। भोजन मेज पर आता था। बाबू जी बड़े चाव से भोजन करते। मुझे पहले कुछ शरम आती थी; लेकिन धीरे-धीरे मैं भी मेज ही पर भोजन करने लगी। हमारे पास एक सुन्दर टमटम भी थी। अब हम पैदल बिलकुल न चलते। किसी से मिलने दस पग भी जाना होता, तो गाड़ी तैयार करायी जाती। बाबू जी कहते—यही फैशन है :

बाबू जी की आमदनी अभी बहुत कम थी। भली-भाँति खर्च भी न चलता था। कभी-कभी मैं उन्हें चिंताकुल देखती तो समझाती कि जब आय इतनी कम है तो व्यय इतना क्यों बढ़ा रखा है ? कोई छोटा-सा मकान ले लो। दो नौकरों से भी काम चल सकता है। लेकिन बाबू जी मेरी बातों पर हँस देते और कहते—मैं अपनी दरिद्रता का ढिंढोरा अपने-आप क्यों पीटूँ ? दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होने से अधिक दुःखदायी होता है। भूल जाओ कि हम लोग निर्धन हैं, फिर लक्ष्मी हमारे पास आप दौड़ी आयेगी। खर्च बढ़ना, आवश्यकताओं का अधिक होना ही द्रव्योपार्जन की पहली सीढ़ी है। इससे हमारी गुप्त शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं। और हम उन कष्टों को झेलते हुए आगे पग धरने के योग्य होते हैं। संतोष दरिद्रता का दूसरा नाम है।

अस्तु, हम लोगों का खर्च दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। हम लोग सप्ताह में तीन बार थियेटर जरूर देखने जाते। सप्ताह में एक बार मित्रों को भोजन अवश्य ही दिया जाता। अब मुझे सूझने लगा कि जीवन का लक्ष्य सुख-भोग ही है। ईश्वर को हमारी उपासना की इच्छा नहीं। उसने हमको उत्तम-उत्तम वस्तुएँ भोगने के लिए ही दी हैं। उसको भोगना ही उसकी सर्वोत्तम आराधना है। एक ईसाई लेडी मुझे पढ़ाने तथा गाना सिखाने आने लगी। घर में एक पियानो भी आ गया। इन्हीं आनन्दों में फँसकर मैं रामायण और भक्तमाल को भूल गयी। ये पुस्तकें मुझे अप्रिय लगने लगीं। देवताओं से विश्वास उठ गया।

धीरे-धीरे यहाँ के बड़े लोगों से स्नेह और सम्बन्ध बढ़ने लगा। यह एक बिलकुल नयी सोसायटी थी। इसके रहन-सहन, आहार-व्यवहार और आचार-विचार मेरे लिए सर्वथा अनोखे थे। मैं इस सोसायटी में ऐसी जान पड़ती, जैसे मोरों में कौआ। इन लेडियों की बातचीत कभी थियेटर और घुड़दौड़ के विषय में होती, कभी टेनिस, समाचार-पत्रों और अच्छे-अच्छे लेखकों के लेखों पर। उनके चातुर्य, बुद्धि की तीव्रता, फुर्ती और चपलता पर मुझे अचंभा होता। ऐसा मालूम होता कि वे ज्ञान और प्रकाश की पुतलियाँ हैं। वे बिना घूँघट बाहर निकलतीं। मैं उनके साहस पर चकित रह जाती। वे मुझे भी कभी-कभी अपने साथ ले जाने की चेष्टा करतीं, लेकिन मैं लज्जावश न जा सकती। मैं उन लेडियों को कभी उदास या चिंतित न पाती। मिस्टर दास बहुत बीमार थे परन्तु मिसेज दास के माथे पर चिन्ता का चिह्न तक न था। मिस्टर बागड़ी नैनीताल में तपेदिक का इलाज करा रहे थे, पर मिसेज बागड़ी नित्य टेनिस खेलने जाती थीं। इस अवस्था में मेरी क्या दशा होती मैं ही

जानती हूँ।

इन लेडियों की रीति-नीति में एक आकर्षण-शक्ति थी, जो मुझे खींचे लिये जाती थी। मैं उन्हें सदैव आमोद-प्रमोद के लिए उत्सुक देखती, और मेरा भी जी चाहता कि उन्हीं की भाँति मैं भी निस्संकोच हो जाती। उनका अंग्रेजी वार्तालाप सुन मुझे मालूम होता कि ये देवियाँ हैं। मैं अपनी इन त्रुटियों की पूर्ति के लिए प्रयत्न किया करती थी।

इसी बीच में मुझे एक खेदजनक अनुभव होने लगा। यद्यपि बाबू जी पहले से मेरा अधिक आदर करते, मुझे सदैव 'डियर-डार्लिंग' आदि कहकर पुकारते थे, तथापि मुझे उनकी बातों में एक प्रकार की बनावट मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता, मानो ये बातें उनके हृदय से नहीं, केवल मुख से निकलती हैं। उनके स्नेह और प्यार में हार्दिक भावों की जगह अलंकार ज्यादा होता था; किन्तु और भी अचम्भे की बात यह थी कि अब मुझे बाबू जी पर वह पहले की-सी श्रद्धा न रही। अव उनकी सिर की पीड़ा से मेरे हृदय में पीडा न होती थी। मुझमें आत्मगौरव का आविर्भाव होने लगा था। अब मैं अपना बनाव-शृंगार इसलिए करती थी कि संसार में यह भी मेरा कर्त्तव्य है; इसलिए नहीं कि मैं किसी एक पुरुष की व्रतधारिणी हूँ। अव मुझे भी अपनी सुन्दरता पर गर्व होने लगा था। में अव किसी दूसरे के लिए नहीं, अपने लिए जीती थी। त्याग तथा सेवा का भाव मेरे हृदय से लुप्त होने लगा था।

मैं अब भी परदा करती थी; परन्तु हृदय अपनी सुन्दरता की सराहना सुनने के लिए व्याकुल रहता था। एक दिन मिस्टर दास तथा और भी अनेक सभ्यगण बाबू जी के साथ बैठे हुए थे। मेरे और उनके बीच में केवल एक परदे की आड़ थी। बाबू जी मेरी इस झिझक से बहुत ही लज्जित थे। इसे वह अपनी सभ्यता में काला धब्बा समझते थे। कदाचित् यह दिखाना चाहते थे कि मेरी स्त्री इसलिए परदे में नहीं है कि वह रूप तथा वस्त्राभूषणों में किसी से कम है वल्कि इसलिए कि अभी उसे लज्जा आती है। वह मुझे किसी बहाने से बार-बार परदे के निकट बुलाते, जिसमें उनके मित्र मेरी सुन्दरता और वस्त्राभूषण देख लें। अन्त में कुछ दिन बाद मेरी झिझक गायब हो गयी। इलाहाबाद आने के पूरे दो वर्ष बाद मैं बाबू जी के साथ बिना परदे के सैर करने लगी। सैर के बाद टेनिस की नौबत आयी। अन्त में मैंने क्लब में जाकर दम लिया। पहले यह टेनिस और क्लब मुझे तमाशा-सा मालूम होता था मानो वे लोग व्यायाम के लिए नहीं बल्कि फैशन के लिए टेनिस खेलने आते थे। वे कभी न भूलते थे कि हम टेनिस खेल रहे हैं। उनके प्रत्येक काम में, झुकने में, दौड़ने में, उचकने में एक कृत्रिमता होती थी, जिससे यह प्रतीत होता था कि इस खेल का प्रयोजन कसरत नहीं केवल दिखावा है।

क्लब में इससे विचित्र अवस्था थी। वह पूरा स्वांग था, भद्दा और बेजोड़। लोग अँगरेज़ी के चुने हुए शब्दों का प्रयोग करते थे, जिसमें कोई सार न होता था, नकली हँसी हँसते थे, जिनका कोई असर न होता था। स्त्रियों की वह फूहड़ निर्लज्जता और पुरुषों की वह भाव-शून्य स्त्री-पूजा मुझे भी न भाती थी। चारों ओर अँगरेजी चाल-ढाल की हास्यजनक नकल थी। परन्तु क्रमशः मैं भी वह रंग पकड़ने और उन्हीं का अनुकरण करने लगी। अव मुझे अनुभव हुआ कि इस प्रदर्शन-लोलुपता में कितनी शक्ति है। मैं अव नित्य नये शृंगार करती, नित्य नया रूप भरती, केवल इसलिए कि क्लब में सवकी आँखों में चुभ जाऊँ !

अब मुझे बाबू जी के सेवा-सत्कार से अधिक अपने बनाव-शृंगार की धुन रहती थी। यहाँ तक की यह शौक एक नशा-सा बन गया। इतना ही नहीं, लोगों से अपने सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर मुझे एक अभिमान-मिश्रित आनंद का अनुभव होने लगा। मेरी लज्जाशीलता की सीमाएँ विस्तृत हो गयीं। वह दृष्टिपात जो कभी मेरे शरीर के प्रत्येक रोएँ को खड़ा कर देता और वह हास्यकटाक्ष, जो कभी मुझे विष खा लेने को प्रस्तुत कर देता, उनसे अब मुझे एक उन्मादपूर्ण हर्ष होता था। परन्तु जब कभी मैं अपनी अवस्था पर आंतरिक दृष्टि डालती तो मुझे बड़ी घबराहट होती थी। यह नाव किस घाट लगेगी ? कभी-कभी इरादा करती कि क्लब न जाऊँगी; परन्तु समय आते ही फिर तैयार हो जाती। मैं अपने वश में न थी। मेरी सत्कल्पनाएँ निर्बल हो गयी थीं।

5

दो वर्ष और बीत गये और अब बाबू जी के स्वभाव में एक विचित्र परिवर्तन होने लगा। वह उदास और चिंतित रहने लगे। मुझसे बहुत कम बोलते। ऐसा जान पड़ता कि इन्हें कठिन चिंता ने घेर रखा है, या कोई बीमारी हो गयी है। मुँह बिलकुल सूखा रहता था। तनिक-तनिक-सी बात पर नौकरों से झल्लाने लगते, और बाहर बहुत कम जाते।

अभी एक ही मास पहले वह सौ काम छोड़ कर क्लब अवश्य जाते थे, वहाँ गये बिना उन्हें कल न पड़ती थी; अब अधिकतर अपने कमरे में आराम-कुर्सी पर लेटे हुए समाचार-पत्र और पुस्तकें देखा करते थे। मेरी समझ में न आता कि बात क्या है।

एक दिन उन्हें बड़े जोर का बुखार आया, दिन-भर बेहोश रहे, परन्तु मुझे उनके पास बैठने में अनकुस-सा लगता था। मेरा जी एक उपन्यास में लगा हुआ था। उनके पास जाती थी और पल भर में फिर लौट आती। टेनिस का समय आया, तो दुविधा में पड़ गयी कि जाऊँ या न जाऊँ। देर तक मन में यह संग्राम होता रहा। अन्त को मैंने यही निर्णय किया कि मेरे यहाँ रहने से वह कुछ अच्छे तो हो नहीं जायँगे, इससे मेरा यहाँ बैठा रहना बिलकुल निरर्थक है। मैंने बढ़िया वस्त्र पहने, और रैकेट लेकर क्लब घर जा पहुँची। वहाँ मैंने मिसेज दास और मिसेज बागची से बाबू जी की दशा बतलायी, और सजल नेत्र चुपचाप बैठी रही। जब सब लोग कोर्ट में जाने लगे और मिस्टर दास ने मुझसे चलने को कहा तो मैं ठंडी आह भर कर कोर्ट में जा पहुँची और खेलने लगी।

आज से तीन वर्ष पूर्ण बाबू जी को इसी प्रकार बुखार आ गया था। मैं रात भर उन्हें पंखा झलती रही थी; हदय व्याकुल था और यही चाहता था कि इनके बदले मुझे बुखार आ जाय, परन्तु वह उठ बैठें। पर अब हृदय तो स्नेह शून्य हो गया था, दिखावा अधिक था। अकेले रोने की मुझमें क्षमता न रह गयी थी। मैं सदैव की भाँति रात को नौ बजे लौटी। बाबू जी का जी कुछ अच्छा जान पड़ा। उन्होंने मुझे केवल दबी दृष्टि से देखा और करवट बदल ली; परन्तु मैं लेटी, तो मेरा हृदय मुझे अपनी स्वार्थपरता और प्रमोदासक्ति पर धिक्कारता।

मैं अब अँगरेजी उपन्यासों को समझने लगी। हमारी बातचीत अधिक उत्कृष्ट और

आलोचनात्मक होती थी।

हमारा सभ्यता का आदर्श अब बहुत ही उच्च हो गया। हमको अब अपनी मित्र मण्डली से बाहर दूसरों से मिलने-जुलने में संकोच होता था। हम अपने से छोटी श्रेणी के लोगों से बोलने में अपना अपमान समझते थे। नौकरों को अपना नौकर समझते थे, और बस। हमको उनके निजी मामलों से कुछ मतलब न था। हम उनसे अलग रह कर उनके ऊपर अपना जोर जमाये रखना चाहते थे। हमारी इच्छा यह थी कि वह हम लोगों को साहब समझें। हिन्दुस्तानी स्त्रियों को देखकर मुझे उनसे घृणा होती थी, उनमें शिष्टता न थी। खैर!

बाबू जी का जी दूसरे दिन भी न सँभला। मैं क्लब न गयी। परन्तु जब लगातार तीन दिन तक उन्हें बुखार आता गया और मिसेज़ दास ने बार-बार एक नर्स बुलाने का आदेश किया, तो मैं सहमत हो गयी। उस दिन से रोगी की सेवा-शुश्रूषा से छुट्टी पाकर बड़ा हर्ष हुआ। यद्यपि दो दिन मैं क्लब न गयी थी, परंतु मेरा जी वहीं लगा रहता था, बल्कि अपने भीरुतापूर्ण त्याग पर क्रोध भी आता था।

6

एक दिन तीसरे पहर मैं कुर्सी पर लेटी हुई अँगरेजी पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक मन में यह विचार उठा कि बाबू जी का बुखार असाध्य हो जाय तो ? पर इस विचार से लेश-मात्र भी दुःख न हुआ। मैं इस शोकमय कल्पना का मन ही मन आनंद उठाने लगी। मिसेज़ दास, मिसेज़ नायडू, मिसेज़ श्रीवास्तव, मिस खरे, मिसेज़ शरगा अवश्य ही मातमपुर्सी करने आवेंगी। उन्हें देखते ही मैं सजल नेत्र हो उठूँगी, और कहूँगी—बहनो! मैं लुट गयी। हाय मैं लुट गयी। अब मेरा जीवन अँधेरी रात के भयावह वन या श्मशान के दीपक के समान है, परंतु मेरी अवस्था पर दुःख न प्रकट करो। मुझ पर जो पड़ेगी, उसे मैं उस महान् आत्मा के मोक्ष के विचार से सह लूँगी।

मैंने इस प्रकार मन में एक शोकपूर्ण व्याख्यान की रचना कर डाली। यहाँ तक कि अपने उस वस्त्र के विषय में भी निश्चय कर लिया, जो मृतक के साथ श्मशान जाते समय पहनूँगी।

इस घटना की शहर भर में चर्चा हो जायगी। सारे कैन्टोंमेंट के लोग मुझे समवेदना के पत्र भेजेंगे। तब मैं उनका उत्तर समाचार-पत्रों में प्रकाशित करा दूँगी कि मैं प्रत्येक शोक-पत्र का उत्तर देने में असमर्थ हूँ। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, उसे रोने के सिवा और किसी काम के लिए समय नहीं है। मैं इस हमदर्दी के लिए उन लोगों की कृतज्ञ हूँ, और उनसे विनयपूर्वक निवेदन करती हूँ कि वे मृतक की आत्मा की सद्गति के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना करें।

मैं इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी कि नर्स ने आ कर कहा—आपको साहब याद करते हैं। यह मेरे क्लब जाने का समय था। मुझे उनका बुलाना अखर गया, लेकिन एक मास हो गया था। वह अत्यंत दुर्बल हो रहे थे। उन्होंने मेरी ओर विनयपूर्ण दृष्टि से देखा। उसमें आँसू भरे हुए थे। मुझे उन पर दया आयी। बैठ गयी, और ढाढस देते हुए बोली—क्या

करूँ? कोई दूसरा डाक्टर बुलाऊँ ?

बाबू जी आँखें नीची करके अत्यंत करुण भाव से बोले—यहाँ कभी नहीं अच्छा हो सकता, मुझे अम्माँ के पास पहुँचा दो।

मैंने कहा—क्या आप समझते हैं कि वहाँ आपकी चिकित्सा यहाँ से अच्छी होगी?

बाबू जी बोले—क्या जाने क्यों मेरा जी अम्माँ के दर्शनों को लालायित हो रहा है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं वहाँ बिना दवा-दर्पन के भी अच्छा हो जाऊँगा।

मैं—यह आपका केवल विचार मात्र है।

बाबू जी—शायद ऐसा ही हो। लेकिन मेरी विनय स्वीकार करो। मैं इस रोग से नहीं इस जीवन से ही दुःखित हूँ।

मैंने अचरज से उनकी ओर देखा !

बाबू जी फिर बोले—हाँ, इस जिंदगी से तंग आ गया हूँ ! मैं अब समझ रहा हूँ मैं जिस स्वच्छ, लहराते हुए निर्मल जल की ओर दौड़ा जा रहा था, वह मरुभूमि है। मैं इस प्रकार जीवन के बाहरी रूप पर लट्टू हो रहा था; परंतु अब मुझे उसकी आंतरिक अवस्थाओं का बोध हो रहा है ! इन चार वर्षों में मैंने इस उपवन में खूब भ्रमण किया, और उसे आदि से अंत तक कंटकमय पाया। यहाँ न तो हृदय को शांति है, न आत्मिक आंनद। यह एक उन्मत्त, अशांतिमय, स्वार्थ-पूर्ण, विलाप-युक्त जीवन है। यहाँ न नीति है; न धर्म, न सहानुभूति, न सहृदयता। परमात्मा के लिए मुझे इस अग्नि से बचाओ। यदि और कोई उपाय न हो तो अम्माँ को एक पत्र ही लिख दो। वह अवश्य यहाँ आयेंगी। अपने अभागे पुत्र का दुःख उनसे न देखा जायगा। उन्हें इस सोसाइटी की हवा अभी नहीं लगी, वह आयेंगी। उनकी वह ममतापूर्ण दृष्टि, वह स्नेहपूर्ण शुश्रूषा मेरे लिए सौ औषधियों का काम करेगी। उनके मुख पर वह ज्योति प्रकाशमान होगी, जिसके लिए मेरे नेत्र तरस रहे हैं। उनके हृदय में स्नेह है, विश्वास है। यदि उनकी गोद में मैं मर भी जाऊँ तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी।

मैं समझी कि यह बुखार की बक-झक है। नर्स से कहा—जरा इनका टेम्परेचर तो लो, मैं अभी डाक्टर के पास जाती हूँ। मेरा हृदय एक अज्ञात भय से काँपने लगा। नर्स ने थरमामीटर निकाला; परन्तु ज्यों ही वह बाबू जी के समीप गयी, उन्होंने उसके हाथ से वह यंत्र छीन कर पृथ्वी पर पटक दिया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। फिर मेरी ओर एक अवहेलनापूर्ण दृष्टि से देख कर कहा—साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो कि मैं क्लब-घर जाती हूँ जिसके लिए तुमने ये वस्त्र धारण किये हैं और गाउन पहनी है। खैर, घूमती हुई यदि डाक्टर के पास जाना, तो कह देना कि यहाँ टेम्परेचर उस बिंदु पर पहुँच चुका है, जहाँ आग लग जाती है।

मैं और भी अधिक भयभीत हो गयी। हृदय में एक करुण चिन्ता का संचार होने लगा। गला भर आया। बाबू जी ने नेत्र मूँद लिये थे और उनकी साँस वेग से चल रही थी। मैं द्वार की ओर चली कि किसी को डाक्टर के पास भेजूँ। यह फटकार सुन कर स्वयं कैसे जाती ? इतने में बाबू जी उठ बैठे और विनीत भाव से बोले—श्यामा ! मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। बात दो सप्ताह से मन में थी; पर साहस न हुआ। आज मैंने निश्चय कर लिया है कि कह ही डालूँ। मैं अब फिर अपने घर जा कर वही पहले की-सी जिंदगी बिताना

चाहता हूँ। मुझे अब इस जीवन से घृणा हो गयी है, और यही मेरी बीमारी का मुख्य कारण है। मुझे शारीरिक नहीं मानसिक कष्ट है। मैं फिर तुम्हें वही पहले की-सी सलज्ज, नीचा सिर करके चलनेवाली, पूजा करनेवाली, रामायण पढ़नेवाली, घर का काम-काज करनेवाली, चरखा कातनेवाली, ईश्वर से डरनेवाली, पतिश्रद्धा से परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूँ। मैं विश्वास करता हूँ तुम मुझे निराश न करोगी। तुमको सोलहो आना अपनी बनाना और सोलहो आने तुम्हारा बनना चाहता हूँ। मैं अब समझ गया कि उसी सादे पवित्र जीवन में वास्तविक सुख है। बोलो, स्वीकार है ? तुमने सदैव मेरी आज्ञाओं का पालन किया है, इस समय निराश न करना; नहीं तो इस कष्ट और शोक का न जाने कितना भयंकर परिणाम हो।

मैं सहसा कोई उत्तर न दे सकी। मन में सोचने लगी—इस स्वतत्र जीवन में कितना सुख था ? ये मजे वहाँ कहाँ ? क्या इतने दिन स्वतंत्र वायु में विचरण करने के पश्चात् फिर उसी पिंजड़े में जाऊँ ? वही लौंडी बन कर रहूँ ? क्यों इन्होंने मुझे वर्षों स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया, वर्षो देवताओं की, रामायण की, पूजा-पाठ की, व्रत-उपवास की बुराई की, हँसी उड़ायी ? अब जब मैं उन बातों को भूल गयी, उन्हें मिथ्या समझने लगी, तो फिर मुझे उसी अंधकूप में ढकेलना चाहते हैं। मैं तो इन्हीं की इच्छा के अनुसार चलती हूँ, फिर मेरा अपराध क्या है ? लेकिन बाबू जी के मुख पर एक ऐसी दीनता-पूर्ण विनशता थी कि मैं प्रत्यक्ष अस्वीकार न कर सकी। बोली—आखिर यहाँ क्या कष्ट है ?

मैं उनके विचारों की तह तक पहुँचना चाहती थी।

बाबू जी फिर उठ बैठे और मेरी ओर कठोर दृष्टि से देख कर बोले—बहुत ही अच्छा होता कि तुम इस प्रश्न को मुझसे पूछने के बदले अपने ही हृदय से पूछ लेती। क्या अब मैं तुम्हारे लिए वही हूँ जो आज से तीन वर्ष पहले था। जब मैं तुमसे अधिक शिक्षा प्राप्त, अधिक बुद्धिमान, अधिक जानकार हो कर तुम्हारे लिए वह नहीं रहा जो पहले था—तुमने चाहे इसका अनुभव न किया हो परन्तु मैं स्वयं कर रहा हूँ—तो मैं कैसे अनुमान करूँ कि उन्हीं भावों ने तुम्हें स्खलित न किया होगा ? नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष चिन्ह देख पड़ते हैं कि तुम्हारे हृदय पर उन भावों का और भी अधिक प्रभाव पड़ा है। तुमने अपने को ऊपरी बनाव-चुनाव और विलास के भँवर में डाल दिया है, और तुम्हें उसकी लेशमात्र भी सुधि नहीं है। अब मुझे पूण विश्वास हो गया कि सभ्यता, स्वेच्छाचारिता का भूत स्त्रियों के कोमल हृदय पर बड़ी सुगमता से कब्जा कर सकता है। क्या अब से तीन वर्ष पूर्व भी तुम्हें यह साहस हो सकता था कि मुझे इस दशा में छोड़ कर किसी पड़ोसिन के यहाँ गाने-बजाने चली जातीं ? मैं बिछौने पर रहता, और तुम किसी के घर जा कर कलोलें करती ? स्त्रियों का हृदय आधिक्य-प्रिय होता है; परन्तु इस नवीन आधिक्य के बदले मुझे वह पुराना आधिक्य कहीं ज्यादा पसन्द है। उस आधिक्य का फल आत्मिक एवं शारीरिक अभ्युदय और हृदय की पवित्रता थी, पर इस आधिक्य का परिणाम है छिछोरापन, निर्लज्जता, दिखावा और स्वेच्छाचार। उस समय यदि तुम इस प्रकार मिस्टर दास के सम्मुख हँसती-बोलती, तो मैं या तो तुम्हें मार डालता, या स्वयं विष-पान कर लेता। परन्तु बेहयाई ऐसे जीवन का प्रधान तत्त्व है। मैं सब कुछ स्वयं देखता और सहता हूँ। कदाचित् सहे भी जाता यदि इस

बीमारी ने मुझे सचेत न कर दिया होता। अब यदि तुम यहाँ बैठी भी रहो, तो मुझे संतोष न होगा, क्योंकि मुझे यह विचार दुःखित करता रहेगा कि तुम्हारा हृदय यहाँ नहीं है। मैंने अपने को उस इन्द्रजाल से निकालने का निश्चय कर लिया है, जहाँ धन का नाम मान है, इन्द्रिय लिप्सा का सभ्यता और भ्रष्टता का विचार स्वातन्त्र्य। बोलो, मेरा प्रस्ताव स्वीकार है?

मेरे हृदय पर वज्रपात सा हो गया। बाबू जी का अभिप्राय पूर्णतया हृदयंगम हो गया। अभी हृदय में कुछ पुरानी लज्जा बाकी थी। यह यंत्रणा असह्य हो गयी। लज्जित हो उठी। अंतरात्मा ने कहा—अवश्य ! मैं अब वह नहीं हूँ, जो पहले थी। उस समय मैं इनको अपना इष्टदेव मानती थी, इनकी आज्ञा शिरोधार्य थी; पर अब वह मेरी दृष्टि में एक साधारण मनुष्य हैं। मिस्टर दास का चित्र मेरे नेत्रों के सामने खिंच गया। कल मेरे हृदय पर इस दुरात्मा की बातों का कैसा नशा छा गया था, यह सोचते ही नेत्र लज्जा से झुक गये। बाबू जी की आंतरिक अवस्था उनके मुखड़े ही से प्रकाशमान हो रही थी। स्वार्थ और विलास-लिप्सा के विचार मेरे हृदय से दूर हो गये। उनके बदले ये शब्द ज्वलंत अक्षरों में लिखे हुए नजर आये—तूने फैशन और वस्त्राभूषणों में अवश्य उन्नति की है, तुझमें अपने स्वार्थो का ज्ञान हो आया है, तुझमें जीवन के सुख भोगने की योग्यता अधिक हो गयी है, तू अब अधिक गर्विणी, दृढ़हृदय और शिक्षा-सम्पन्न भी हो गयी; लेकिन तेरे आत्मिक बल का विनाश हो गया, क्योंकि तू अपने कर्त्तव्य को भूल गयी।

मैं दोनों हाथ जोड़ कर बाबू जी के चरणों पर गिर पड़ी। कंठ रुँध गया, एक शब्द भी मुँह से न निकला, अश्रु धारा बह चली।

अब मैं फिर अपने घर पर आ गयी हूँ। अम्माँ जी अब मेरा अधिक सम्मान करती हैं बाबू जी संतुष्ट दीख पड़ते हैं। वह अब स्वयं प्रतिदिन संध्यावंदन करते हैं।

मिसेज दास के पत्र कभी-कभी आते हैं, वह इलाहाबादी सोसाइटी के नवीन समाचारों से भरे होते हैं। मिस्टर दास और मिस भाटिया के संबंध में कलुषित बातें उड़ रही हैं। मैं इन पत्रों का उत्तर तो देती हूँ, परन्तु चाहती हूँ कि वह अब न आते तो अच्छा होता। वह मुझे उन दिनों की याद दिलाते हैं, जिन्हें मैं भूल जाना चाहती हूँ।

कल बाबू जी ने बहुत-सी पुरानी पोथियाँ अग्निदेव को अर्पण कीं। उनमें आसकर वाइल्ड की कई पुस्तकें थीं। वह अब अँगरेजी पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। उन्हें कार्लाइल, रस्किन और एमरसन के सिवा और कोई पुस्तक पढ़ते मैं नहीं देखती। मुझे तो अपनी रामायण और महाभारत में फिर वही आनन्द प्राप्त होने लगा है। चरखा अब पहले से अधिक चलाती हूँ क्योंकि इस बीच चरखे ने खूब प्रचार पा लिया है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'भारती', फरवरी, 1934 में प्रकशित। 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित। उर्दू रूप 'सकूने कलब' शीर्षक से 'अस्मत' (दिल्ली), 1934 में कभी प्रकाशित। 'दूध की कीमत' में 'सकूने कलब' तथा 'वारदात' में 'शांति' शीर्षक से संकलित।]

'चन्द्रोदय खाकर देख चुका। सब लूटने की बाते हैं।'

'मंकी ग्लैंड लगवा लीजिए न ?'

'आप इस युवती से मेरी बातें पक्की करा दें। मैं तैयार हूँ।'

'हाँ, यह मेरा जिम्मा, मगर भाई हमारा हिस्सा भी रहेगा।'

'अर्थात् ?'

'अर्थात् यह कि कभी-कभी मैं आपके घर आकर अपनी आँखें ठंडी कर लिया करूँगा।'

'अगर आप इस इरादे से आयें तो मैं आपका दुश्मन हो जाऊँ।'

'ओ हो, आप तो मंकी ग्लैंड का नाम सुनते ही जवान हो गये।'

'मैं तो समझता हूँ, यह भी डाक्टरों ने लूटने का एक लटका निकाला है। सच !'

'अरे साहब, इस रमणी के स्पर्श में जवानी है, आप हैं किस फेर में ! उसके एक-एक अंग में, एक-एक चितवन में, एक-एक मुसकान में, एक-एक विलास में जवानी भरी हुई है। न सौ मंकी ग्लैंड न एक रमणी का बाहु-पाश।'

'अच्छा कदम बढ़ाइये, मुवक्किल आकर बैठे होंगे।'

'यह सूरत याद रहेगी।'

'फिर आपने याद दिला दी।'

'वह इस तरह सोई है, इसलिए कि लोग उसके रूप को, उसके अंग-विन्यास को, उसके बिखरे हुए केशों को, उसकी खुली हुई गर्दन को देखें और अपनी छाती पीटें। इस तरह चले जाना, उसके साथ अन्याय है। वह बुला रही है, और आप भागे जा रहे हैं।'

'हम जिस तरह दिल से प्रेम कर सकते हैं, जवान कभी कर सकता है ?'

'बिलकुल ठीक ! मुझे तो ऐसी औरतों से साबिका पड़ चुका है, जो रसिक बूढ़ों को खोजा करती हैं। जवान तो छिछोरे, उच्छृंखल, अस्थिर और गर्वीले होते हैं। वे प्रेम के बदले में कुछ चाहते हैं। यहाँ निःस्वार्थ भाव से आत्म-समर्पण करते हैं।'

'आपकी बातों से दिल में गुदगुदी हो गयी।'

'मगर एक बात याद रखिए, कहीं उसका जवान प्रेमी मिल गया तो ?'

'तो मिला करे, यहाँ ऐसों से नहीं डरते।'

'आपकी शादी की कुछ बातचीत थी तो ?'

'हाँ थी, मगर अपने ही लड़के जब दुश्मनी पर कमर बाँधें, तो क्या हो ! मेरा बड़ा लड़का यशवंत तो मुझे बन्दूक दिखाने लगा। यह जमाने की खूबी है।'

अक्टूबर की धूप तेज हो चली थी। दोनों मित्र निकल गये।

4

दो देवियाँ—एक वृद्धा, दूसरी नवयौवना पार्क के फाटक पर मोटर से उतरीं और पार्क में हवा खाने आयीं। उनकी निगाह भी उस नींद की माती युवती पर पड़ी।

वृद्धा ने कहा—बड़ी बेशर्म है !

नवयौवना ने तिरस्कार-भाव से उसकी ओर देखकर कहा—ठाट तो भले घर की देवियों के हैं !

'बस ठाट ही देख लो। इसी से मर्द कहते हैं—स्त्रियों को आजादी न मिलनी चाहिए।'

'मुझे तो कोई वेश्या मालूम होती है।'

'वेश्या ही सही, पर उसे इतनी बेशर्मी करके स्त्री-समाज को लज्जित करने का क्या अधिकार है ?'

'कैसे मजे से सो रही है, मानो अपने घर में है।'

'बेहयाई है' मैं परदा नहीं चाहती, पुरुषों की गुलामी नहीं चाहती; लेकिन औरतों में जो गौरवशीलता और सलज्जता है, उसे नहीं छोड़ना चाहती। मैं किसी युवती को सड़क पर सिगरेट पीते देखती हूँ, तो मेरे बदन में आग लग जाती है, उसी तरह आधी छाती का जम्फर भी मुझे नहीं सोहाता। क्या अपने धर्म की लाज छोड़ देने से ही साबित होगा कि हम बहुत फार्वर्ड हैं ? पुरुष अपनी छाती या पीठ खोले तो नहीं घूमते ?'

'इसी बात पर बाई जी, जब मैं आपको आड़े हाथों लेती हूँ, तो आप बिगड़ने लगती हैं। पुरुष स्वाधीन है, वह दिल में समझता है कि मैं स्वाधीन हूँ। वह स्वाधीनता का स्वाँग नहीं भरता। स्त्री अपने दिल में समझती रहती है कि वह स्वाधीन नहीं है, इसलिए वह अपनी स्वाधीनता का ढोंग करती है। जो बलवान् हैं, वे अकड़ते नहीं। जो दुर्बल हैं, वही अकड़ दिखाते हैं। क्या आप उन्हें अपने आँसू पोंछने के लिए इतना अधिकार भी नहीं देना चाहतीं ?

'मैं तो कहती हूँ, स्त्री अपने को छिपाकर पुरुष को जितना नचा सकती है, अपने को खोलकर नहीं नचा सकती।'

'स्त्री ही पुरुष के आकर्षण की फिक्र क्यों करे ? पुरुष क्यों स्त्री से पर्दा नहीं करता?'

'अब मुँह न खुलवाओ मीनू ! इस छोकरी को जगाकर कह दो—जाकर घर पर सोये। इतने आदमी आ-जा रहे हैं और निर्लज्ज टाँग फैलाये पड़ी है। यहाँ इसे नींद कैसे आ गई?'

'रात कितनी गर्मी थी बाई जी ! ठण्डक पाकर बेचारी की आँख लग गयी है।'

'रात-भर यहीं रही है, कुछ-कुछ बदती हूँ ?'

मीनू युवती के पास जाकर उसका हाथ पकड़कर हिलाती है—यहाँ क्यों सो रही हो देवीजी, इतना दिन चढ़ आया, उठकर घर जाओ।

युवती आँखें खोल देती है—ओ हो, इतना दिन चढ़ आया ? क्या मैं सो गयी थी ? मेरे सिर में चक्कर आ जाया करता है। मैंने समझा शायद हवा से कुछ लाभ हो। यहाँ आयी; पर ऐसा चक्कर आया कि मैं इस बैंच पर बैठ गयी, फिर मुझे कुछ होश न रहा। अब भी मैं खड़ी नहीं हो सकती।, मालूम होता है, मैं गिर पड़ूंगी। बहुत दवा की; पर कोई फायदा नहीं होता। आप डाक्टर श्यामनाथ को जानती होंगी, वह मेरे ससुर हैं।

युवती ने आश्चर्य से कहा—अच्छा ! वह तो अभी इधर ही से गये हैं।'

'सच ! लेकिन मुझे पहचान कैसे सकते हैं ? अभी मेरा गौना नहीं हुआ है।'

'तो क्या आप उनके लड़के वसन्तलाल की धर्मपत्नी हैं ?'

युवती ने शर्म से सिर झुकाकर स्वीकार किया। मीनू ने हँसकर कहा—वसन्तलाल तो अभी इधर से गये हैं ? मेरा उनसे युनिवर्सिटी का परिचय है।

'अच्छा ! लेकिन मुझे उन्होंने देखा कहाँ है ?'

'तो मैं दौड़कर डाक्टर को खबर दे दूँ।'

'जी नहीं, मैं थोड़ी देर में बिलकुल अच्छी हो जाऊँगी।'

'वसन्तलाल भी वह खड़ा है, उसे बुला दूँ।'

'जी नहीं, किसी को न बुलाइए।'

'तो चलो, अपने मोटर पर तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा दूँ।'

'आपकी बड़ी कृपा होगी।'

'किस मुहल्ले में ?'

'बेगमगंज, मि. जयरामदास के घर ?'

'मैं आज ही मि. वसन्तलाल से कहूँगी।'

'मैं क्या जानती थी कि वह इस पार्क में आते हैं।'

'मगर कोई आदमी तो साथ ले लिया होता ?'

'किसलिए ? कोई जरूरत न थी।'

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', मार्च 1934 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

जादू

नीला—तुमने उसे क्यों लिखा ?

मीना—किसको ?

'उसी को ?'

'मैं नहीं समझती !'

'खूब समझती हो ! जिस आदमी ने मेरा अपमान किया, गली-गली मेरा नाम बेचता फिरा, उसे तुम मुँह लगाती हो, क्या यह उचित है ?'

'तुम गलत कहती हो !'

'तुमने उसे खत, नहीं लिखा ?'

'कभी नहीं।'

'तो मेरी गलती थी क्षमा करो। तुम मेरी बहन न होतीं, तो मैं तुमसे यह सवाल भी न पूछती।'

'मैंने किसी को खत नहीं लिखा।'

'मुझे यह सुनकर खुशी हुई।'

'तुम मुस्कराती क्यों हो ?'

'मैं !'

'जी हाँ, आप !'

'मैं तो जरा भी नहीं मुस्करायी।'

'क्या मैं अन्धी हूँ ?'

'यह तो तुम अपने मुँह से ही कहती हो।'

'तुम क्यों मुस्करायीं ?'

'मैं सच कहती हूँ, जरा भी नहीं मुसकरायी।'

'मैंने अपनी आँखों देखा।'

'अब मैं कैसे तुम्हें विश्वास दिलाऊँ ?'

'तुम आँखों में धूल झोंकती हो।'

'अच्छा मुस्करायी। बस, या जान लोगी ?'

'तुम्हें किसी के ऊपर मुस्कराने का क्या अधिकार है ?'

'तेरे पैरों पड़ती हूँ नीला, मेरा गला छोड़ दे। मैं बिलकुल नहीं मुस्करायी।

'मैं ऐसी अनीली नहीं हूँ।'

'यह मैं जानती हूँ।'

'तुमने मुझे हमेशा झूठी समझा है।'

'तू आज किसका मुँह देखकर उठी है ?'

'तुम्हारा।'

'तू मुझे थोड़ा संखिया क्यों नहीं दे देती।'

'हाँ, मैं तो हत्यारिन हूँ ही।'

'मैं तो नहीं कहती।'

'अब और कैसे कहोगी, क्या ढोल बजाकर ? मैं हत्यारिन हूँ, मदमाती हूँ, दीदा-दिलेर हूँ; तुम सर्वगुणागरी हो, सीता हो, सावित्री हो। अब खुश हुईं ?'

'लो कहती हूँ, मैंने उन्हें पत्र लिखा फिर तुमसे मतलब ? तुम कौन होती हो, मुझसे जवाब-तलब करनेवाली ?'

'अच्छा किया, लिखा, सचमुच मेरी बेवकूफी थी कि मैंने तुमसे पूछा।'

'हमारी खुशी, हम ज़िसको चाहेंगे खत लिखेंगे। जिससे चाहेंगे बोलेंगे।'

'तुम कौन होती हो रोकनेवाली। तुमसे तो मैं नहीं पूछने जाती; हालाँकि रोज तुम्हें पुलिन्दों पत्र लिखते देखती हूँ।'

'जब तुमने शर्म ही भून खायी, तो जो चाहो करो, अख्तियार है।'

'और तुम कब से बड़ी लज्जावती बन गयीं ? सोचती होगी, अम्माँ से कह दूँगी, यहॉ इसकी परवाह नहीं है। मैंने उन्हें पत्र भी लिखा, उनसे पार्क में मिली भी। बातचीत भी की, जाकर अम्माँ से, दादा से और सारे मुहल्ले से कह दो।'

'जो जैसा करेगा, आप भोगेगा, मैं क्यों किसी से कहने जाऊँ ?'

'ओ हो, बड़ी धैर्यवाली, यह क्यों नहीं कहतीं, अंगूर खट्टे हैं ?'

'जो तुम कहो, वही ठीक है।'

'दिल में जली जाती हो।'

'मेरी बला जले।'

'रो दो जरा।'

'तुम खुद रोओ, मेरा अँगूठा रोये।'

'मुझे उन्होंने एक रिस्टवाच भेंट दी है, दिखाऊँ ?'

'मुबारक हो, मेरी आँखों का सनीचर न दूर होगा ?'

'मैं कहती हूँ, तुम इतनी जलती क्यों हो ?'

'अगर मैं तुमसे जलती हूँ, तो मेरी आँखें पट्टम हो जायँ।'

'तुम जितना ही जलोगी, मैं उतना ही जलाऊँगी।'

'मैं जलूँगी ही नहीं।'

'जल रही हो साफ।'

'कब सन्देशा आयेगा ?'

'जल मरो।'

'पहले तेरी भाँवरें देख लूँ।'

'भाँवरों की चाट तुम्हीं को रहती है।'

'अच्छा ! तो क्या बिना भाँवरों का ब्याह होगा ?'

'यह ढकोसले तुम्हें मुबारक रहें, मेरे लिए प्रेम काफी है।'

'तो क्या तू सचमुच...!'

'मैं किसी से नहीं डरती।'

'यहाँ तक नौबत पहुँच गयी ! और तू कह रही थी, मैंने उसे पत्र नहीं लिखा और कसमें खा रही थी ?'

'क्यों अपने दिल का हाल बतलाऊँ।'

'मैं तो तुझसे पूछती न थी, मगर तू आप-ही-आप बक चली।'

'तुम मुस्करायी क्यों ?'

'इसलिए कि वह शैतान तुम्हारे साथ भी वही दगा करेगा, जो उसने मेरे साथ किया और फिर तुम्हारे विषय में भी वैसे ही बातें कहता फिरेगा। और फिर तुम मेरी तरह उसके नाम को रोओगी।'

'तुमसे उन्हें प्रेम नहीं था ?'

'मुझसे ! मेरे पैरों पर सिर रखकर रोता था और कहता था कि मैं मर जाऊँगा और जहर खा लूँगा।'

'सच कहती हो ?'

'बिलकुल सच।'

'यह तो वह मुझसे भी कहते हैं।'

'सच ?'

'तुम्हारे सिर की कसम।'

'और मैं समझ रही थी, अभी वह दाने बिखेर रहा है।'

'क्या वह सचमुच।'

'पक्का शिकारी है।'

मीना सिर पर हाथ रखकर चिन्ता में डूब जाती है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अप्रैल-मई, 1934 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित।]

रियासत का दीवान

महाशय मेहता उन अभागों में थे, जो अपने स्वामी को प्रसन्न नहीं रख सकते थे। वह दिल से अपना काम करते थे और चाहते थे कि उनकी प्रशंसा हो। वह यह भूल जाते थे कि वह काम के नौकर तो हैं ही, अपने स्वामी के सेवक भी हैं। जब उनके अन्य सहकारी स्वामी के दरबार में हाजिरी देते थे, तो वह बेचारे दफ्तर में बैठे कागजों से सिर मारा करते थे। इसका फल यह था कि स्वामी के सेवक तो तरक्कियाँ पाते थे, पुरस्कार और पारितोषिक उड़ाते थे। और काम के सेवक मेहता किसी-न-किसी अपराध में निकाल दिये जाते थे। ऐसे कटु अनुभव उन्हें अपने जीवन में कई बार हो चुके थे; इसलिए अबकी जब राजा साहब सतिया ने उन्हें एक अच्छा पद प्रदान किया, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अब वह भी स्वामी का रुख देखकर काम करेंगे। और उनके स्तुति-गान में ही भाग्य की परीक्षा करेंगे। और इस प्रतिज्ञा को उन्होंने कुछ इस तरह निभाया कि दो साल भी न गुजरे थे कि राजा साहब ने उन्हें अपना दीवान बना लिया। एक स्वाधीन राज्य की दीवानी का क्या कहना ! वेतन तो पांच सौ रुपये मासिक ही था, मगर अख्तियार बड़े लम्बे। राई का पर्वत करो, या पर्वत से राई, कोई पूछनेवाला न था। राजा साहब भोग-विलास में पड़े रहते थे, राज्य-संचालन का सारा भार मि. मेहता पर था। रियासत के सभी अमले और कर्मचारी दण्डवत् करते, बड़े-बड़े रईस नजराने देते, यहाँ तक कि रानियाँ भी उनकी खुशामद करतीं। राजा साहब उग्र प्रकृति के मनुष्य थे, जैसे प्रायः राजे होते हैं। दुर्बलों के सामने शेर, सबलों के सामने भीगी बिल्ली। कभी मि. मेहता को डाँट-फटकार भी बताते; पर मेहता ने अपनी सफाई में एक शब्द भी मुँह से निकालने की कसम खा ली थी। सिर झुकाकर सुन लेते। राजा साहब की क्रोधाग्नि ईंधन न पाकर शान्त हो जाती।

गर्मियों के दिन थे। पोलिटिकल एजेन्ट का दौरा था। राज्य में उनके स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं। राजा साहब ने मेहता को बुलाकर कहा—मैं चाहता हूँ, साहब बहादुर यहाँ से मेरा कलमा पढ़ते हुए जायँ।

मेहता ने सिर झुकाकर विनीत भाव से कहा—चेष्टा तो ऐसी ही कर रहा हूँ, अन्नदाता !

'चेष्टा तो सभी करते हैं; मगर वह चेष्टा कभी सफल नहीं होती। मैं चाहता हूँ, तुम दृढ़ता के साथ कहो—ऐसा ही होगा।'

'ऐसा ही होगा।'

'रुपये की परवाह मत करो।'

'जो हुक्म।'

'कोई शिकायत न आये; वरना तुम जानोगे।'

'वह हुजूर को धन्यवाद देते जायँ तो सही।'

'हाँ, मैं यही चाहता हूँ।'

'जान लड़ा दूँगा, दीनबन्धु !'

'अब मुझे संतोष है !'

इधर तो पोलिटिकल एजेन्ट का आगमन था, उधर मेहता का लड़का जयकृष्ण

गर्मियों की छुट्टियाँ मनाने माता-पिता के पास आया। किसी विश्वविद्यालय में पढ़ता था। एक बार 1932 में कोई उग्र भाषण करने के जुर्म में 6 महीने की सजा काट चुका था। मि. मेहता की नियुक्ति के बाद जब वह पहली बार आया था तो राजा साहब ने उसे खासतौर पर बुलाया था और उससे जी खोलकर बातें की थीं, उसे अपने साथ शिकार खेलने ले गये और नित्य उसके साथ टेनिस खेला करते थे। जयकृष्ण पर राजा साहब के साम्यवादी विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा था। उसे ज्ञात हुआ कि राजा साहब केवल देश-भक्त ही नहीं, क्रांति के समर्थक भी हैं। रूस और फ्रांस की क्रांति पर दोनों में खूब बहस हुई थी। लेकिन अबकी यहाँ उसने कुछ और ही रंग देखा। रियासत के हर एक किसान और जमींदार से जबरन चन्दा वसूल किया जा रहा था। पुलिस गाँव-गाँव चन्दा उगाहती फिरती थी। रकम दीवान साहब नियत करते थे। वसूल करना पुलिस का काम था। फरियाद की कहीं सुनवाई न थी। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। हजारों मजदूर सरकारी इमारतों की सफाई, सजावट और सड़कों की मरम्मत में बेगार कर रहे थे। बनियों से डण्डों के जोर से रसद जमा की जा रही थी। जयकृष्ण को आश्चर्य हो रहा था कि यह क्या हो रहा है। राजा साहब के विचार और व्यवहार में इतना अन्तर कैसे हो गया। कहीं ऐसा तो नहीं है कि महाराज को इन अत्याचारों की खबर ही न हो, या उन्होंने जिन तैयारियों का हुक्म दिया हो, उनकी तामील में कर्मचारियों ने अपनी कारगुजारी की धुन में यह अनर्थ कर डाला हो। रात भर तो उसने किसी तरह जब्त किया। प्रातःकाल उसने मेहताजी से पूछा—आपने राजा साहब को इन अत्याचारों की सूचना नहीं दी ?

मेहताजी को स्वयं इस अनीति से ग्लानि हो रही थी। वह स्वभावतः दयालु मनुष्य थे; लेकिन परिस्थितियों ने उन्हें अशक्त कर रखा था। दुःखित स्वर में बोले—राजा साहब का यही हुक्म है, तो क्या किया जाय ?

'तो आपको ऐसी दशा में अलग हो जाना चाहिए था। आप जानते हैं, यह जो कुछ हो रहा है, उसकी सारी जिम्मेदारी आपके सिर लादी जा रही है, प्रजा आप ही को अपराधी समझती है।'

मैं मजबूर हूँ। मैंने कर्मचारियों से बार-बार संकेत किया कि यथासाध्य किसी पर सख्ती न की जाय : लेकिन हरेक स्थान पर मैं मौजूद तो नहीं रह सकता। अगर प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करूँ, तो शायद कर्मचारी लोग महाराज से मेरी शिकायत कर दें। ये लोग ऐसे ही अवसरों की ताक में तो रहते ही हैं। इन्हें तो जनता को लूटने का कोई बहाना चाहिए। जितना सरकारी कोष में जमा करते हैं; उससे ज्यादा अपने घर में रख लेते हैं। मैं कुछ नहीं कर सकता।

जयकृष्ण ने उत्तेजित होकर कहा—तो आप इस्तीफा क्यों नहीं दे देते ?

मेहता लज्जित होकर बोले—बेशक, मेरे लिए मुनासिब तो यही था; लेकिन जीवन में इतने धक्के खा चुका हूँ कि अब और सहने की शक्ति नहीं रही। यह निश्चय है कि नौकरी करके मैं अपने को बेदाग नहीं रख सकता। धर्म और अधर्म, सेवा और परमार्थ के झमेलों में पड़कर मैंने बहुत ठोकरें खायीं। मैंने देख लिया कि दुनिया दुनियादारों के लिए है, जो अवसर और काल देखकर काम करते हैं। सिद्धान्तवादियों के लिए यह अनुकूल स्थान नहीं है।

जयकृष्ण ने तिरस्कार-भरे स्वर में पूछा—मैं राजा साहब के पास जाऊँ।

'क्या तुम समझते हो, राजा साहब से ये बातें छिपी हैं ?'

'संभव है, प्रजा की दुःख-कथा सुनकर उन्हें कुछ दया आये।'

मि. मेहता को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी ? वह तो खुद चाहते थे किसी तरह अन्याय का बोझ उनके सिर से उतर जाय। हाँ, यह भय अवश्य था कि कहीं जयकृष्ण की सत्प्रेरणा उनके लिए हानिकर न हो और कहीं उन्हें इस सम्मान और अधिकार से हाथ न धोना पड़े। बोले—यह खयाल रखना कि तुम्हारे मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाय; जो महाराज को अप्रसन्न कर दे।

जयकृष्ण ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह ऐसी कोई बात न करेगा। क्या वह इतना नादान है ? मगर उसे क्या खबर थी कि आज के महाराजा साहब वह नहीं हैं, जो एक साल पहले थे, या सम्भव है, पोलिटिकल एजेंट के चले जाने के बाद वह फिर हो जायँ। वह न जानता था कि उनके लिए क्रांति और आतंक की चर्चा भी उसी तरह विनोद की वस्तु थी, जैसी हत्या, बलात्कार या जाल की वारदातें, या रूप के बाजार के आकर्षक समाचार। जब उसने ड्योढ़ी पर पहुँचकर अपनी इत्तला करायी, तो मालूम हुआ कि महाराज इस समय अस्वस्थ हैं, लेकिन वह लौट ही रहा था कि महाराज ने उसे बुला भेजा। शायद उससे सिनेमा-संसार के ताजे समाचार पूछना चाहते थे। उसके सलाम पर मुसकराकर बोले—तुम खूब आये भई, कहो एम. सी. सी. का मैच देखा या नहीं ? मैं तो इन बखेड़ों में ऐसा फँसा कि जाने की नौबत नहीं आयी। अब तो यही दुआ कर रहा हूँ कि किसी तरह एजेंट साहब खुश-खुश रुखसत हो जायँ। मैंने जो भाषण लिखवाया है, वह जरा तुम भी देख लो। मैंने इन राष्ट्रीय आन्दोलनों की खूब खबर ली है और हरिजनोद्धार पर भी छींटे उड़ा दिये हैं।

जयकृष्ण ने अपने आवेश को दबाकर कहा—राष्ट्रीय आन्दोलनों की आपने खबर ली, यह अच्छा किया; लेकिन हरिजनोद्धार को तो सरकार भी पसन्द करती है, इसीलिए उसने महात्मा गाँधी को रिहा कर दिया और जेल में भी उन्हें इस आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखने-पढ़ने और मिलने-जुलने की पूरी स्वाधीनता दे रखी थी।

राजा साहब ने तात्विक मुस्कान के साथ कहा—तुम जानते नहीं हो, यह सब प्रदर्शन-मात्र है। दिल में सरकार समझती है कि यह भी राजनैतिक आंदोलन है। वह इस रहस्य को बड़े ध्यान से देख रही है। लॉयलटी में जितना प्रदर्शन करो, चाहे वह औचित्य की सीमा के पार ही क्यों न हो जाय, उसका रंग चोखा ही होता है—उसी तरह जैसे कवियों की विरुदावली से हम फूल उठते हैं, चाहे वह हास्यास्पद ही क्यों न हो। हम ऐसे कवि को खुशामदी समझें, अहमक भी समझ सकते हैं; पर उससे अप्रसन्न नहीं हो सकते। वह हमें जितना ही ऊँचा उठाता है, उतना ही वह हमारी दृष्टि में ऊँचा उठता जाता है।

राजा साहब ने अपने भाषण की एक प्रति मेज की दराज से निकालकर जयकृष्ण के सामने रख दी, पर जयकृष्ण के लिए इस भाषण में अब कोई आकर्षण न था। अगर वह सभा-चतुर होता, तो जाहिरदारी के लिए ही इस भाषण को बड़े ध्यान से पढ़ता, उनके शब्द-विन्यास और भावोत्कर्ष की प्रशंसा करता और उसकी तुलना महाराजा बीकानेर या पटियाला के भाषणों से करता; पर अभी दरबारी दुनिया की रीति-नीति से अनभिज्ञ था। जिस चीज को बुरा समझता था, उसे बुरा कहता था और जिस चीज को अच्छा समझता

था, उसे अच्छा कहता था। बुरे को अच्छा और अच्छे को बुरा कहना अभी उसे न आया था। उसने भाषण पर सरसरी नजर डालकर उसे मेज पर रख दिया और अपनी स्पष्टवादिता का बिगुल फूँकता हुआ बोला—मैं राजनीति के रहस्यों को भला क्या समझ सकता हूँ लेकिन मेरा खयाल है कि चाणक्य के ये वंशज इन चालों को खूब समझते हैं और कृत्रिम भावों का उन पर कोई असर नहीं होता बल्कि इससे आदमी उनकी नजरों में और भी गिर जाता है। अगर एजेन्ट को मालूम हो जाय कि उसके स्वागत के लिए प्रजा पर कितने जुल्म ढाये जा रहे हैं, तो शायद वह यहाँ से प्रसन्न होकर न जाय। फिर, मैं तो प्रजा की दृष्टि देखता हूँ। एजेंट की प्रसन्नता आपके लिए लाभप्रद हो सकती है, प्रजा को तो उससे हानि ही होगी।

राजा साहब अपने किसी काम की आलोचना नहीं सह सकते थे। उनका क्रोध पहले जिरहों के रूप में निकलता, फिर तर्क का आकार धारण कर लेता। और अन्त में भूकम्प के आवेश से उबल पड़ता था, जिससे उनका स्थूल शरीर, कुर्सी, मेज, दीवारें और छत सभी में भीषण कम्पन होने लगता था। तिरछी आँखों से देखकर बोले—क्या हानि होगी, जरा सुनूँ ?

जयकृष्ण समझ गया कि क्रोध की मशीनगन चक्कर में है और घातक विस्फोट होने ही वाला है। सँभलकर बोला—इसे आप मुझसे ज्यादा समझ सकते हैं।

'नहीं, मेरी बुद्धि इतनी प्रखर नहीं है।'

'आप बुरा मान जायँगे।'

'क्या तुम समझते हो, मैं बारूद का ढेर हूँ ?'

'बेहतर है, आप इसे न पूछें।'

'तुम्हें बतलाना पड़ेगा।'

और आप-ही-आप उनकी मुट्ठियाँ बँध गयीं।

'तुम्हें बतलाना पड़ेगा, इसी वक्त !'

जयकृष्ण यह धौंस क्यों सहने लगा ? क्रिकेट के मैदान में राजकुमारों पर रोब जमाया करता था, बड़े-बड़े हुक्काम की चुटकियाँ लेता था। बोला—अभी आपके दिल में पोलिटिकल एजेंट का कुछ भय है, आप प्रजा पर जुल्म करते डरते हैं। जब वह आपके एहसानों से दब जायगा, आप स्वच्छन्द हो जायँगे और प्रजा की फरियाद सुनने वाला कोई न रहेगा।

राजा साहब प्रज्ज्वलित नेत्रों से ताकते हुए बोले—मैं एजेंट का गुलाम नहीं हूँ कि उससे डरूँ, कोई कारण नहीं है कि मैं उससे डरूँ, बिलकुल कारण नहीं है। मैं पोलिटिकल एजेंट की इसलिए खातिर करता हूँ कि वह हिज़ मैजेस्टी का प्रतिनिधि है। मेरे और हिज़ मैजेस्टी के बीच में भाई-चारा है, एजेंट केवल उनका दूत है। मैं केवल नीति का पालन कर रहा हूँ। मैं विलायत जाऊँ तो हिज़ मैजेस्टी भी इसी तरह मेरा सत्कार करेंगे ! मैं डरूँ क्यों? मैं अपने राज्य का स्वतन्त्र राजा हूँ। जिसे चाहूँ, फाँसी दे सकता हूँ। मैं किसी से क्यों डरने लगा ? डरना नामर्दों का काम है, मैं ईश्वर से भी नहीं डरता। डर क्या वस्तु है, यह मैंने आज तक नहीं जाना। मैं तुम्हारी तरह कालेज का मुँहफट छात्र नहीं हूँ कि क्रांति और आजादी की हाँक लगाता फिरूँ। तुम क्या जानो, क्रांति क्या चीज है ? तुमने केवल उसका नाम सुन लिया है। उसके लाल दृश्य आँखों से नहीं देखे। बन्दूक की आवाज सुनकर

तुम्हारा दिल काँप उठेगा। क्या तुम चाहते हो, मैं एजेंट से कहूँ—प्रजा तबाह है, आपके आने की जरूरत नहीं। मैं इतना आतिथ्य-शून्य नहीं हूँ। मैं अन्धा नहीं हूँ, अहमक नहीं हूँ, प्रजा की दशा का मुझे तुमसे कहीं अधिक ज्ञान है, तुमने उसे बाहर से देखा है, मैं उसे नित्य भीतर से देखता हूँ। तुम मेरी प्रजा को क्रांति का स्वप्न दिखाकर उसे गुमराह नहीं कर सकते। तुम मेरे राज्य में विद्रोह और असंतोष के बीज नहीं बो सकते। तुम्हें अपने मुँह पर ताला लगाना होगा, तुम मेरे विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाल सकते, चूँ भी नहीं कर सकते....

डूबते हुए सूरज की किरणें महराबी दीवानखाने के रंगीन शीशों से होकर राजा साहब के क्रोधोन्मत्त मुख-मंडल को और भी रंजित कर रही थीं। उनके बाल नीले हो गये थे, आँखें पीली, चेहरा लाल और देह हरी। मालूम होता था, प्रेतलोक का कोई पिशाच है। जयकृष्ण की सारी उद्दण्डता हवा हो गयी। राजा साहब को इस उन्माद की दशा में उसने कभी न देखा था, लेकिन इसके साथ ही उसका आत्म गौरव इस ललकार का जवाब देने के लिए व्याकुल हो रहा था। जैसे विनय का जवाब विनय है, वैसे ही क्रोध का जवाब क्रोध है, जब वह आतंक और भय, अदब और लिहाज के बन्धनों को तोड़कर निकल पड़ता है।

उसने भी राजा साहब को आग्नेय नेत्रों से देखकर कहा—मैं अपनी आँखों से यह अत्याचार देखकर मौन नहीं रह सकता।

राजा साहब ने आवेश से खड़े होकर, मानो उसकी गरदन पर सवार होते हुए कहा—तुम्हें यहाँ जबान खोलने का कोई हक नहीं है।

'प्रत्येक विचारशील मनुष्य को अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का हक है। आप वह हक मुझसे नहीं छीन सकते !'

'मैं सब कुछ कर सकता हूँ।'

'आप कुछ नहीं कर सकते।'

'मैं तुम्हें अभी जेल में बन्द कर सकता हूँ।'

'आप मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते।'

इसी वक्त मि. मेहता बदहवास-से कमरे में आये और जयकृष्ण की ओर कोप-भरी आँखें उठाकर बोले—कृष्णा, निकल जा यहाँ से, अभी मेरी आँखों से दूर हो जा और खबरदार ! फिर मुझे अपनी सूरत न दिखाना। मैं तुझ-जैसे कपूत का मुँह नहीं देखना चाहता। जिस थाल में खाता है, उसी में छेद करता है, बेअदब कहीं का ! अब अगर जबान खोली, तो मैं तेरा खून पी जाऊँगा।

जयकृष्ण ने हिंसा-विक्षिप्त पिता को घृणा की आँखों से देखा और अकड़ता हुआ, गर्व से सिर उठाये, दीवानखाने के बाहर निकल गया।

राजा साहब ने कोच पर लेटकर कहा—बदमाश आदमी है, पल्ले सिरे का बदमाश ! मैं नहीं चाहता कि ऐसा खतरनाक आदमी एक क्षण भी रियासत में रहे। तुम उससे जाकर कहो, इसी वक्त यहाँ से चला जाय वरना उसके हक में अच्छा न होगा। मैं केवल आपकी मुरौवत से गम खा गया; नहीं तो इसी वक्त इसका मजा चखा सकता था। केवल आपकी मुरौवत ने हाथ पकड़ लिया। आपको तुरन्त निर्णय करना पड़ेगा, इस रियासत की दीवानी या लड़का। अगर दीवानी चाहते हो, तो तुरन्त उसे रियासत से निकाल दो और कह दो कि

फिर कभी मेरी रियासत में पाँव न रखे। लड़के से प्रेम है, तो आज ही रियासत से निकल जाइए। आप यहाँ से कोई चीज नहीं ले जा सकते, एक पाई की भी चीज नहीं। जो कुछ है, वह रियासत की है। बोलिए, क्या मंजूर है ?

मि. मेहता ने क्रोध के आवेश में जयकृष्ण को डाँट तो बतलायी थी पर यह न समझे थे कि मामला इतना तूल खींचेगा। एक क्षण के लिए वह सन्नाटे में आ गये। सिर झुकाकर परिस्थिति पर विचार करने लगे—राजा उन्हें मिट्टी में मिला सकता है। वह यहाँ बिलकुल बेबस है, कोई उनका साथी नहीं, कोई उनकी फरियाद सुननेवाला नहीं। राजा उन्हें भिखारी बनाकर छोड़ देगा। इस अपमान के साथ निकाले जाने की कल्पना करके वह काँप उठे। रियासत में उनके बैरियों की कमी न थी। सब-के-सब मूसलों ढाल बजायेंगे। जो आज उनके सामने भीगी बिल्ली बने हुए हैं, कल शेरों की तरह गुर्रायेंगे। फिर इस उमर में अब उन्हें नौकर ही कौन रखेगा। निर्दयी संसार के सामने क्या फिर उन्हें हाथ फैलाना पड़ेगा ? नहीं, इससे तो यह कहीं अच्छा है कि वह यहीं पड़े रहें। कम्पित स्वर में बोले—मैं आज ही उसे घर से निकाल देता हूँ, अन्नदाता !

'आज नहीं, इसी वक्त !'

'इसी वक्त निकाल दूँगा !'

'हमेशा के लिए ?'

'हमेशा के लिए।'

'अच्छी बात है, जाइए और आधे घंटे के अन्दर मुझे सूचना दीजिए।'

मि. मेहता घर चले, तो मारे क्रोध के उनके पाँव काँप रहे थे। देह में आग-सी लगी हुई थी। इस लौंडे के कारण आज उन्हें कितना अपमान सहना पड़ा। गधा चला है यहाँ अपने साम्यवाद का राग अलापने। अब बच्चा को मालूम होगा, जबान पर लगाम न रखने का क्या नतीजा होता है। मैं क्यों उसके पीछे गली-गली ठोकरें खाऊँ। हाँ, मुझे यह पद और सम्मान प्यारा है। क्यों न प्यारा हो ? इसके लिए बरसों एड़ियाँ रगड़ी हैं, अपना खून और पसीना एक किया है। यह अन्याय बुरा जरूर लगता है; लेकिन बुरी लगने की एक यही बात तो नहीं है ! और हजारों बातें तो बुरी लगती हैं। जब किसी बात का उपाय मेरे पास नहीं, तो इस मुआमले के पीछे क्यों अपनी जिन्दगी खराब करूँ ?

उन्होंने घर आते-ही-आते पुकारा—जयकृष्ण !

सुनीता ने कहा—जयकृष्ण तो तुमसे पहले ही राजा साहब के पास गया था। तब से यहाँ कब आया ?

'अब तक यहाँ नहीं आया ! वह तो मुझसे पहले ही चल चुका था।'

वह फिर बाहर आये और नौकरों से पूछना शुरू किया। अब भी उसका पता न था। मारे डर के कहीं छिप रहा होगा और राजा ने आध घंटे में इत्तला देने का हुक्म दिया है। यह लौंडा न जाने क्या करने पर लगा हुआ है। आप तो जायगा ही मुझे भी अपने साथ ले डूबेगा।

सहसा एक सिपाही ने एक पुरजा लाकर उनके हाथ में रख दिया। अच्छा, यह तो जयकृष्ण की लिखावट है। क्या कहता है—इस दुर्दशा के बाद मैं इस रियासत में एक क्षण भी नहीं रह सकता। मैं जाता हूँ। आपको अपना पद और मान अपनी आत्मा से ज्यादा

प्रिय है, आप खुशी से उसका उपभोग कीजिए। मैं फिर आपको तकलीफ देने न आऊँगा। अम्माँ से मेरा प्रणाम कहिएगा।

मेहता ने पुरजा लाकर सुनीता को दिखाया और खिन्न होकर बोले—इसे न जाने कब समझ आयेगी, लेकिन बहुत अच्छा हुआ। जब लाला को मालूम होगा, दुनिया में किस तरह रहना चाहिए। बिना ठोकरें खाये, आदमी की आँखें नहीं खुलतीं। मैं ऐसे तमाशे बहुत खेल चुका, अब इस खुराफात के पीछे अपना शेष जीवन नहीं बरबाद करना चाहता—और तुरन्त राजा साहब को सूचना देने चले।

2

दम-से-दम में सारी रियासत में यह समाचार फैल गया। जयकृष्ण अपने शील-स्वभाव के कारण जनता में बड़ा प्रिय था। लोग बाजारों और चौरस्तों पर खड़े हो-होकर इस काण्ड पर आलोचना करने लगे—अजी, वह आदमी नहीं था, भाई, उसे किसी देवता का अवतार समझो। महाराज के पास जाकर बेधड़क बोला—अभी बेगार बन्द कीजिए वरना शहर में हंगामा हो जायगा। राजा साहब की तो जबान बन्द हो गयी। बगलें झाँकने लगे। शेर-है-शेर ! उम्र तो कुछ नहीं; पर आफत का परकाला है। और वह यह बेगार बन्द कराके रहता, हमेशा के लिए। राजा साहब को भागने की राह न मिलती। सुना, घिघियाने लगे थे। मुदा इसी बीच में दीवान साहब पहुँच गये और उसे देश-निकाले का हुक्म दे दिया। यह हुक्म सुनकर उसकी आँखों में खून उतर आया था, लेकिन बाप का अपमान न किया।

'ऐसे बाप को तो गोली मार देनी चाहिए। बाप है या दुश्मन !'

'वह कुछ भी हो, है तो बाप ही।'

सुनीता सारे दिन बैठी रोती रही। जैसे कोई उसके कलेजा में बर्छियाँ चुभो रहा था। बेचारा न-जाने कहाँ चला गया। अभी जलपान तक न किया था। चूल्हे में जाय ऐसा भोग-विलास, जिसके पीछे उसे बेटे को त्यागना पड़े। हृदय में ऐसा उद्वेग उठा कि इसी दम पति और घर को छोड़कर रियासत से निकल जाय, जहाँ, ऐसे नर-पिशाचों का राज्य है। इन्हें अपनी दीवानी प्यारी है, उसे लेकर रहें। वह अपने पुत्र के साथ उपवास करेगी, पर उसे आँखों से देखती तो रहेगी।

एकाएक वह उठकर महारानी के पास चली ! वह उनसे फरियाद करेगी, उन्हें भी ईश्वर ने बालक दिये हैं। उन्हें क्या एक अभिमानी माता पर दया न आवेगी ? इसके पहले भी वह कई बार महारानी के दर्शन कर चुकी थी। उसका मुरझाया हुआ मन आशा से लहलहा उठा।

लेकिन रनिवास में पहुँची तो देखा कि महारानी के तीवर भी बदले हुए हैं। उसे देखते ही बोली—तुम्हारा लड़का बड़ा उजड्ड है। जरा भी अदब नहीं। किससे किस तरह बात करनी चाहिए, इसका जरा भी सलीका नहीं। न-जाने विश्वविद्यालय में क्या पढ़ा करता है। आज महाराज से उलझ बैठा। कहता था कि बेगार बन्द कर दीजिए और एजेंट साहब के स्वागत-सत्कार की कोई तैयारी न कीजिए। इतनी समझ भी उसे नहीं है कि इस तरह कोई राजा कै घंटे गद्दी पर रह सकता है। एजेंट बहुत बड़ा अफसर न सही; लेकिन है तो बादशाह का प्रतिनिधि। उसका आदर-सत्कार करना तो हमारा धर्म है। फिर ये बेगार

किस दिन काम आयेंगे। उन्हें रियासत से जागीरें मिली हुई हैं। किस दिन के लिए ? प्रजा में विद्रोह की आग भड़काना कोई भले आदमी का काम है ? जिस पत्तल में खाओ, उसी में छेद करो। महाराज ने दीवान साहब का मुलाहजा किया, नहीं तो उसे हिरासत में डलवा देते! अब बच्चा नहीं है। खासा पाँच हाथ का जवान है। सब कुछ देखता और समझता है। हम हाकिमों से बैर करें, तो कै दिन निबाह हो। उसका क्या बिगड़ता है। कहीं सौ-पचास की चाकरी पा जायगा। यहाँ तो करोड़ों की रियासत बरबाद हो जायगी।

सुनीता ने आँचल फैलाकर कहा—महारानी बहुत सत्य कहती हैं; पर अब तो उसका अपराध क्षमा कीजिए। बेचारा लज्जा और भय के मारे घर नहीं गया। न-जाने किधर चला गया। हमारे जीवन का यही एक अवलम्ब है, महारानी ! हम दोनों रो-रोकर मर जायँगे। आँचल फैलाकर आपसे भीख माँगती हूँ, उसको क्षमा-दान दीजिए। माता के हृदय को आपसे ज्यादा और कौन समझेगा; आप महाराज से सिफारिश कर दें···

महारानी ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसकी ओर देखा मानो वह कोई बड़ी अनोखी बात कह रही हो और अपने रँगे हुए होठों पर अँगूठियों से जगमगाती हुई उँगली रखकर बोलीं—क्या कहती हो, सुनीता देवी ! उस युवक की महाराज से सिफारिश करूँ जो हमारी जड़ खोदने पर तुला हुआ है ? आस्तीन में साँप पालूँ ? तुम किस मुँह ऐसी बात कहती हो? और महाराज मुझे क्या कहेंगे ? ना मैं इसके बीच में न पड़ूँगी। उसने जो बीज बोये हैं; उनका वह फल खाये। मेरा लड़का ऐसा नालायक होता, तो उसका मुँह न देखती। और तुम ऐसे बेटे की सिफारिश करती हो ?

सुनीता ने आँखों में आँसू भर कर कहा—महारानी, ऐसी बातें आपके मुँह से शोभा नहीं देतीं।

महारानी मसनद टेककर उठ बैठीं और तिरस्कार-भरे स्वर में बोलीं—अगर तुमने सोचा था कि मैं तुम्हारे आँसू पोंछूँगी, तो तुमने भूल की। हमारे द्रोही की सिफारिश लेकर हमारे पास आना, इसके सिवा और क्या है कि तुम उसके अपराध को बाल-क्रीड़ा समझ रही हो। अगर तुमने उसके अपराध की भीषणता का ठीक अनुमान किया होता, तो मेरे पास कभी न आतीं। जिसने इस रियासत का नमक खाया हो, वह रियासत के द्रोही की पीठ सहलाये ! वह स्वयं राजद्रोही है ! इसके सिवा और क्या कहूँ ?

सुनीता भी गर्म हो गयी। पुत्र-स्नेह म्यान बाहर निकल आया। बोली—राजा का कर्त्तव्य केवल अपने अफसरों को प्रसन्न करना नहीं है। प्रजा को पालने की जिम्मेदारी इससे कहीं बढ़कर है।

उसी समय महाराज ने कमरे में कदम रखा ! रानी ने उठकर स्वागत किया और सुनीता सिर झुकाये निस्पंद खड़ी रह गयी।

राजा ने व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ पूछा—यह कौन महिला तुम्हें राजा के कर्त्तव्य का उपदेश दे रही थी ?

रानी ने सुनीता की ओर आँख मारकर कहा—यह दीवान साहब की धर्मपत्नी हैं। राजा साहब की त्योरियाँ चढ़ गयीं। ओठ चबाकर बोले—जब माँ ऐसी पैनी छुरी है, तो लड़का क्यों न जहर का बुझाया हुआ हो। देवीजी, मैं तुमसे यह शिक्षा नहीं लेना चाहता कि राजा का अपनी प्रजा के साथ क्या धर्म है। यह शिक्षा मुझे कई पीढ़ियों से मिलती चली

आयी है। बेहतर हो कि तुम किसी से यह शिक्षा प्राप्त कर लो कि स्वामी के प्रति उसके सेवक का क्या धर्म है और जो नमकहराम है, उसके साथ स्वामी को कैसा व्यवहार करना चाहिए।

यह कहते हुए राजा साहब उसी उन्माद की दशा में बाहर चले गये।

मि. मेहता घर जा रहे थे, राजा साहब ने कठोर स्वर में पुकारा--सुनिए मि. मेहता ! आपके सपूत तो विदा हो गये लेकिन मुझे अभी मालूम हुआ कि आपकी देवीजी राजद्रोह के मैदान में उनसे भी दो कदम आगे हैं; बल्कि मैं तो कहूँगा, वह केवल रेकार्ड है, जिसमें देवीजी की आवाज ही बोल रही है। मैं नहीं चाहता कि जो व्यक्ति रियासत का संचालक हो, उसके साये में रियासत के विद्रोहियों को आश्रय मिले। आप खुद इस दोष से मुक्त नहीं हो सकते। यह हरगिज मेरा अन्याय न होगा, यदि मैं यह अनुमान कर लूँ कि आप ही ने यह मन्त्र फूँका है।

मि. मेहता अपनी स्वामिभक्ति पर यह आक्षेप न सह सके। व्यथित कंठ से बोले--यह तो मैं किस जबान से कहूँ कि दीनबन्धु इस विषय में मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं, लेकिन मैं सर्वथा निर्दोष हूँ और मुझे यह देखकर दुःख होता है कि मेरी वफादारी पर यों संदेह किया जा रहा है।

'वफादारी केवल शब्दों से नहीं होती।'

'मेरा खयाल है कि मैं उसका प्रमाण दे चुका।'

'नयी-नयी दलीलों के लिए नये-नये प्रमाणों की जरूरत है। आपके पुत्र के लिए जो दण्ड-विधान था, वही आपकी स्त्री के लिए भी है। मैं इसमें किसी भी तरह का उज्र नहीं चाहता। और इसी वक्त इस हुक्म की तामील होनी चाहिए।'

'लेकिन दीनानाथ...'

'मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।'

'मुझे कुछ निवेदन करने की आज्ञा न मिलेगी ?'

'बिलकुल नहीं, यह मेरा आख़िरी हुक्म है।'

मि. मेहता यहाँ से चले, तो उन्हें सुनीता पर बेहद गुस्सा आ रहा था। इन सभी को न जाने क्या सनक सवार हो गयी है। जयकृष्ण तो खैर बालक है, बेसमझ है, इस बुढ़िया को क्या सूझी। न-जाने रानी साहब से जाकर क्या कह आयी। किसी को मुझसे हमदर्दी नहीं, सब अपनी-अपनी धुन में मस्त हैं। किस मुसीबत से मैं अपनी जिन्दगी के दिन काट रहा हूँ, यह कोई नहीं समझता। कितनी निराशा और विपत्तियों के बाद यहाँ जरा निश्चिन्त हुआ था कि इन सभी ने यह नया तूफान खड़ा कर दिया। न्याय और सत्य का ठीका क्या हमीं ने लिया है ? यहाँ भी वही हो रहा है, जो सारी दुनिया में हो रहा है ! कोई नयी बात नहीं है। संसार में दुर्बल और दरिद्र होना पाप है। इसकी सजा से कोई बच नहीं सकता। बाज कबूतर पर कभी दया नहीं करता। सत्य और न्याय का समर्थन मनुष्य की सज्जनता और सभ्यता का एक अंग है। बेशक इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता; लेकिन जिस तरह और सभी प्राणी केवल मुख से इसका समर्थन करते हैं, क्या उसी तरह हम भी नहीं कर सकते। और जिन लोगों का पक्ष लिया जाय, वे भी तो कुछ इसका महत्त्व समझें। आज राजा साहब इन्हीं बेगारों से जरा हँसकर बातें करें, तो वे अपने सारे दुखड़े भूल जायँगे और

उल्टे हमारे ही शत्रु बन जायँगे। शायद सुनीता महारानी के पास जाकर अपने दिल का बुखार निकाल आयी है। गधी यह नहीं समझती कि दुनिया में किसी तरह मान-मर्यादा का निर्वाह करते हुए जिन्दगी काट लेना ही हमारा धर्म है। अगर भाग्य में यश और कीर्ति बदी होती, तो इस तरह दूसरों की गुलामी क्यों करता ? लेकिन समस्या यह है कि इसे भेजूँ कहाँ! मैके में कोई है नहीं, मेरे घर में कोई है नहीं। उँह ! अब मैं इस चिन्ता में कहाँ तक मरूँ ? जहाँ जी चाहे जाय, जैसा किया वैसा भोगे।

वह इसी क्षोभ और ग्लानि की दशा में घर में गये और सुनीता से बोले—आखिर तुम्हें भी वही पागलपन सूझा, जो उस लौंडे को सूझा था। मैं कहता हूँ, आखिर तुम्हें कभी समझ आयेगी या नहीं ? क्या सारे संसार के सुधार का बीड़ा हमीं ने उठाया है? कौन राजा ऐसा है, जो अपनी प्रजा पर जुल्म न करता हो, उनके स्वत्वों का अपहरण न करता हो। राजा ही क्यों, हम तुम सभी तो दूसरों पर अन्याय कर रहे हैं। तुम्हें क्या हक है कि तुम दर्जनों खिदमतगार रखो और उन्हें जरा-जरा-सी बात पर सजा दो ? न्याय और सत्य निरर्थक शब्द हैं, जिनकी उपयोगिता इसके सिवा और कुछ नहीं कि बुद्धुओं की गर्दन मारी जाय और समझदारों की वाह-वाह हो। तुम और तुम्हारा लड़का उन्हीं बुद्धुओं में है। और इसका दण्ड तुम्हें भोगना पड़ेगा। महाराज का हुक्म है कि तुम तीन घंटे के अन्दर रियासत से निकल जाओ नहीं तो पुलिस आकर तुम्हें निकाल देगी। मैंने तो तय कर लिया है कि राजा साहब की इच्छा के विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से न निकालूँगा। न्याय का पक्ष लेकर देख लिया है। हैरानी और अपमान के सिवा और कुछ हाथ न आया। जिनकी हिमायत की थी, वे आज भी उसी दशा में हैं; बल्कि उससे भी और बदतर। मैं साफ कहता हूँ कि मैं तुम्हारी उद्दण्डताओं का तावान देने के लिए तैयार नहीं। मैं गुप्त रूप से तुम्हारी सहायता करता रहूँगा। इसके सिवा मैं और कुछ नहीं कर सकता।

सुनीता ने गर्व के साथ कहा—मुझे तुम्हारी सहायता की जरूरत नहीं। कहीं भेद खुल जाय, तो दीन-बन्धु तुम्हारे ऊपर कोप का बज्र गिरा दें। तुम्हें अपना पद और सम्मान प्यारा है, उसका आनन्द से उपभोग करो। मेरा लड़का और कुछ न कर सकेगा, तो पाव-भर आटा तो कमा ही लायेगा। मैं भी देखूँगी कि तुम्हारी स्वामिभक्ति कब तक निभती है और कब तक तुम अपनी आत्मा की हत्या करते हो।

मेहता ने तिलमिलाकर कहा—क्या तुम चाहती हो कि फिर उसी तरह चारों तरफ ठोकरें खाता फिरूँ ?

सुनीता ने घाव पर नमक छिड़का—नहीं, कदापि नहीं। अब तक तो मैं समझती थी, तुम्हें ठोकरें खाने में मजा आता है तथा पद और अधिकार से भी मूल्यवान् कोई वस्तु तुम्हारे पास है, जिसकी रक्षा के लिए तुम ठोकरें खाना अच्छा समझते हो। अब मालूम हुआ; तुम्हें अपना पद अपनी आत्मा से भी प्रिय है। फिर क्यों ठोकरें खाओ; मगर कभी-कभी अपना कुशल-समाचार तो भेजते रहोगे, या राजा साहब की आज्ञा लेनी पड़ेगी ?

'राजा साहब इतने न्याय-शून्य हैं कि मेरे पत्र-व्यवहार में रोक-टोक करें ?'

'अच्छा ! राजा साहब में इतनी आदमीयत है ? मुझे तो विश्वास नहीं आता।'

'तुम अब भी अपनी गलती पर लज्जित नहीं हो ?'

'मैंने कोई गलती नहीं की। मैं तो ईश्वर से चाहती हूँ कि जो मैंने आज किया, वह

बार-बार करने का मुझे अवसर मिले।'

मेहता ने अरुचि के साथ पूछा—तुमने कहाँ जाने का इरादा किया है ?

'जहन्नुम में !'

'गलती आप करती हो, गुस्सा मुझ पर उतारती हो ?'

'मैं तुम्हें इतना निर्लज्ज न समझती थी !'

'मैं भी इसी शब्द का तुम्हारे लिए प्रयोग कर सकता हूँ।'

'केवल मुख से, मन से नहीं।'

मि. मेहता लज्जित हो गये।

3

जब सुनीता की विदाई का समय आया, तो स्त्री-पुरुष दोनों खूब रोये और एक तरह से सुनीता ने अपनी भूल स्वीकार कर ली। वास्तव में इन बेकारी के दिनों में मेहता ने जो कुछ किया; वही उचित था, बेचारे कहाँ मारे-मारे फिरते।

पोलिटिकल एजेंट साहब पधारे और कई दिनों तक खूब दावतें खायीं और खूब शिकार खेला। राजा साहब ने उनकी तारीफ की। उन्होंने राजा साहब की तारीफ की। राजा साहब ने उन्हें अपनी लायलटी का विश्वास दिलाया, उन्होंने सतिया राज्य को आदर्श कहा और राजा साहब को न्याय और सेवा का अवतार स्वीकार किया और तीन दिन में रियासत को ढाई लाख की चपत देकर विदा हो गये !

मि. मेहता का दिमाग आसमान पर था। सभी उनकी कारगुजारी की प्रशंसा कर रहे थे। एजेंट साहब तो उनकी दक्षता पर मुग्ध हो गये। उन्हें 'राय साहब' की उपाधि मिली और उनके अधिकारों में भी वृद्धि हुई। उन्होंने अपनी आत्मा को उठाकर ताक पर रख दिया था। उनकी यह साधना कि महाराज और एजेंट दोनों उनसे प्रसन्न रहें, सम्पूर्ण रीति से पूरी हो गयी। रियासत में ऐसा स्वामि-भक्त सेवक दूसरा न था।

राजा साहब अब कम-से-कम तीन साल के लिए निश्चिन्त थे। एजेंट खुश है, तो फिर किसका भय ! कामुकता, लम्पटता और भाँति-भाँति के दुर्व्यसनों की लहर प्रचण्ड हो उठी। सुन्दरियों की टोह लगाने के लिए सुराग-रसानों का एक विभाग खुल गया, जिसका सम्बन्ध सीधे राजा साहब से था। एक बूढ़ा खुर्राट, जिसका पेशा हिमालय की परियों को फँसाकर राजाओं को लूटना था और जो इसी पेशे की बदौलत राज-दरबारों में पूजा जाता था, इस विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया। नयी-नयी चिड़ियाँ आने लगीं। भय, लोभ और सम्मान सभी अस्त्रों से शिकार खेला जाने लगा; लेकिन एक ऐसा अवसर भी पड़ा, जहाँ इस तिकड़म की सारी सामूहिक और वैयक्तिक चेष्टाएँ निष्फल हो गयीं और गुप्त विभाग ने निश्चय किया कि इस बालिका को किसी तरह उड़ा लाया जाय। और इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पादन का भार मि. मेहता पर रखा गया, जिनसे ज्यादा स्वामि-भक्त सेवक रियासत में दूसरा न था। उनके ऊपर महाराजा साहब को पूरा विश्वास था। दूसरों के विषय में सन्देह था कि कहीं रिश्वत लेकर शिकार बहका दें, या भण्डाफोड़ कर दें, या अमानत में खयानत कर बैठें। मेहता की ओर से किसी तरह की उन बातों की शंका न थी। रात को नौ बजे उनकी तलबी हुई—अन्नदाता ने हुजूर को याद किया है।

कातिल

जाड़ों की रात थी। दस बजे ही सड़कें बंद हो गई थीं और गलियों में सन्नाटा था। बूढ़ी बेवा मां ने अपने नौजवान बेटे धर्मवीर के सामने थाली परोसते हुए कहा—तुम इतनी रात तक कहां रहते हो बेटा ? रखे-रखे खाना ठंडा हो जाता है। चारों तरह सोता पड़ गया। आग भी तो इतनी नहीं रहती कि इतनी रात तक बैठी तापती रहूं।

धर्मवीर हृष्ट-पुष्ट, सुंदर नवयुवक था। थाली खींचता हुआ बोला—अभी तो दस भी नहीं बजे अम्मां। यहां के मुर्दादिल आदमी सरे-शाम ही सो जाएं तो कोई क्या करे। योरोप में लोग बारह-एक बजे तक सैर-सपाटे करते रहते हैं। जिंदगी के मजे उठाना कोई उनसे सीख ले। एक बजे से पहले तो कोई सोता ही नहीं।

मां ने पूछा—तो आठ-दस बजे सोकर उठते भी होंगे।

धर्मवीर ने पहलू बचाकर कहा—नहीं, वह छः बजे ही उठ बैठते हैं। हम लोग बहुत सोने के आदी हैं। दस से छः बजे तक, आठ घंटे होते हैं। चौबीस घंटों में आठ घंटे आदमी सोए तो काम क्या करेगा ? यह बिल्कुल गलत है कि आदमी को आठ घंटे सोना चाहिए। इंसान जितना कम सोए, उतना ही अच्छा। हमारी सभा ने अपने नियमों में दाखिल कर लिया है कि उसके मैंबरों को तीन घंटे से ज्यादा न सोना चाहिए।

मां इस सभा का जिक्र सुनते-सुनते तंग आ गई थी। यह न खाओ, वह न खाओ, यह न पहनो, वह न पहनो, न ब्याह करो, न शादी करो, न नौकरी करो, न चाकरी करो, यह सभा क्या लोगों को संन्यासी बनाकर छोड़ेगी ? इतना त्याग तो संन्यासी ही कर सकता है। त्यागी-संन्यासी भी तो नहीं मिलते। उनमें भी ज्यादातर इंद्रियों के गुलाम, नाम के त्यागी हैं। आज सोने की कैद भी लगा दी। अभी तीन महीनों का घूमना खत्म हुआ। जाने कहां-कहां मारे-मारे फिरते हैं। अब बारह बजे खाइए। या कौन जाने रात को खाना ही उड़ा दें। आपत्ति के स्वर में बोली—तभी तो यह सूरत निकल आई है कि चाहो तो एक-एक हड्डी गिन लो। आखिर सभा वाले कोई काम भी करते हैं या सिर्फ आदमियों पर कैदें ही लगाया करते हैं ?

धर्मवीर बोला—जो काम तुम करती हो वही हम करते हैं। तुम्हारा उद्देश्य भी राष्ट्र की सेवा करना है, हमारा उद्देश्य भी राष्ट्र की सेवा करना है।

बूढ़ी विधवा आजादी की लड़ाई में दिलो-जान से शरीक थी। दस साल पहले उसके पति ने एक राजद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में सजा पाई थी। जेल में उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और जेल ही में उसका स्वर्गवास हो गया। तब से यह विधवा बड़ी सच्चाई और लगन से राष्ट्र की सेवा में लगी हुई थी। शुरू में उसका नौजवान बेटा भी स्वयंसेवकों में शामिल हो गया था। मगर इधर पांच महीनों से वह इस नई सभा में शरीक हो गया और उसको जोशीले कार्यकर्ताओं में समझा जाता था।

मां ने संदेह के स्वर में पूछा—तो तुम्हारी सभा का भी कोई दफ्तर है ?

"हां, है।"

"उसमें कितने मैंबर हैं ?"

"अभी तो सिर्फ पचीस मैंबर हैं। लेकिन वह पचीस आदमी जो कुछ कर सकते हैं,

वह तुम्हारे पचीस हजार भी नहीं कर सकते। देखो अम्मां, किसी से कहना मत वर्ना सबसे पहले मेरी जान पर आफत आएगी। मुझे उम्मीद नहीं कि पिकेटिंग और जुलूसों से हमें आजादी हासिल हो सके। यह तो अपनी कमजोरी और बेबसी का साफ ऐलान है। झंडियां निकालकर और गीत गाकर कौमें नहीं आजाद हुआ करतीं। यहां के लोग अपनी अक्ल से काम नहीं लेते। एक आदमी ने कहा—यों स्वराज्य मिल जाएगा। बस आंखें बंद करके उसके पीछे हो लिए। वह आदमी गुमराह है और दूसरों को भी गुमराह कर रहा है। यह लोग दिल में इस खयाल से खुश हो लें कि हम आजादी के करीब आते-जाते हैं। मगर मुझे तो काम करने का यह ढंग बिल्कुल बच्चों का खेल-सा मालूम होता है। लड़कों के रोने-धोने और मचलने पर खिलौने और मिठाइयां मिला करती हैं। वही इन लोगों को मिल जाएगा। असली चीज तभी मिलेगी, जब हम उसकी कीमत देने को तैयार होंगे।"

मां ने कहा—उसकी कीमत क्या हम नहीं दे रहे हैं ? हमारे लाखों आदमी जेल नहीं गए ? हमने डंडे नहीं खाए ? हमने अपनी जायदादें नहीं जब्त कराईं ?

धर्मवीर—इससे अंग्रेजों का क्या नुकसान हुआ ? वे हिंदुस्तान उसी वक्त छोड़ेंगे, जब उन्हें यकीन जो जाएगा कि अब वे एक पल-भर भी नहीं रह सकते। अगर आज हिन्दोस्तान के एक हजार अंग्रेज कत्ल कर दिये जाएं तो आज ही स्वराज्य मिल जाए। रूस इसी तरह आजाद हुआ, आयरलैंड भी इसी तरह आजाद हुआ, हिन्दोस्तान भी इसी तरह आजाद होगा, और कोई तरीका नहीं। हमें उनका खात्मा कर देना है। एक गोरे अफसर के कत्ल कर देने से हुकूमत पर जितना डर छा जाता है, उतना एक हजार जुलूसों से मुमकिन नहीं।

मां सर से पांव तक कांप उठी। उसे विधवा हुए दस साल हो गए थे। यही लड़का उसकी जिंदगी का सहारा है। इसी को सीने से लगाए, मेहनत-मजदूरी करके अपने मुसीबत के दिन काट रही है। वह इस खयाल से खुश थी कि यह चार पैसे कमाएगा, घर में बहू आएगी, एह टुकड़ा खाऊंगी और पड़ी रहूंगी। आरजुओं के पतले-पतले तिनकों से उसने एक किश्ती बनाई थी और उसी पर बैठकर जिंदगी के दरिया को पार कर रही थी। वह किश्ती अब उसे लहरों में झकोले खाती मालूम हुई। उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह किश्ती दरिया में डूबी जा रही है। उसने अपने सीने पर हाथ रखकर कहा—बेटा, तुम कैसी बातें कर रहे हो। क्या तुम समझते हो, अंग्रेजों का कत्ल कर देने से हम आजाद हो जाएंगे? हम अंग्रेजों के दुश्मन नहीं। हम इस राज्य-प्रणाली के दुश्मन हैं। अगर यह राज्य-प्रणाली हमारे भाई-बंदों ही के हाथों में हो—और उसका बहुत बड़ा हिस्सा है भी—तो हम उसका भी इस तरह विरोध करेंगे। रूस में तो कोई दूसरी कौम राज न करती थी, फिर भी रूस वालों ने उस हुकूमत को उखाड़ फेंका तो उसका कारण यही था कि जार प्रजा की परवाह न करता था। अमीर लोग मजे उड़ाते थे, गरीबों को पीसा जाता था। यह बातें तुम मुझसे ज्यादा जानते हो। वही हाल हमारा है। यहां एक-एक ओहदेदार एक हजार गरीबों का हिस्सा खा जाता है। देश की संपत्ति एक-न-एक बहाने निकलती चली जाती है और हम गरीब होते जाते हैं। हम इस अवैधानिक शासन को बदलना चाहते हैं। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। इस सभा से अपना नाम कटवा लो। खामखाह आग में न कूदो। मैं अपनी आंखों से यह दृश्य नहीं देखना चाहती कि तुम अदालत में खून के जुर्म में लाए जाओ।

धर्मवीर पर इस विनती का कोई असर नहीं हुआ। बोला—इसका कोई डर नहीं। हमने इसके बारे में काफी एहतियात कर ली है। गिरफ्तार होना तो बेवकूफी है। हम लोग ऐसी हिकमत से काम करना चाहते हैं कि कोई गिरफ्तार न हो।

मां के चेहरे पर अब डर की जगह शर्मिंदगी की झलक नजर आई। बोली—यह तो उससे भी बुरा है। बेगुनाह सजा पाएं और कातिल चैन से बैठे रहें ! यह शर्मनाक हरकत है। मैं इसे कमीनापन समझती हूं। किसी को छिपकर कत्ल करना दगाबाजी है, मगर अपने बदले बेगुनाह भाइयों को फंसा देना देशद्रोह है। इन बेगुनाहों का खून भी कातिल की गर्दन पर होगा।

धर्मवीर ने अपनी मां की परेशानी का मजा लेते हुए कहा—अम्मां, तुम इन बातों को नहीं समझतीं। तुम अपने धरने दिए जाओ, जुलूस निकाले जाओ। हम जो कुछ करते हैं, हमें करने दो। गुनाह और सबाब, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, यह निरर्थक शब्द हैं। जिस काम को तुम पाप समझती हो, उसे मैं पुण्य समझता हूं। तुम्हें कैसे समझाऊं कि यह सापेक्ष शब्द हैं। तुमने भगवत-गीता तो पढ़ी है। भगवान् कृष्ण ने साफ कहा है—मारने वाला मैं हूं, जिलाने वाला मैं हूं, आदमी न किसी को मार सकता है, न जिला सकता है। फिर कहां रहा तुम्हारा पाप ? मुझे इस बात की क्यों शर्म हो कि मेरे बदले कोई दूसरा मुजरिम करार दिया गया। यह व्यक्तिगत लड़ाई नहीं, इंग्लैण्ड की सामूहिक शक्ति से युद्ध है। मैं मरूं या मेरे बदले कोई दूसरा मरे, इसमें कोई अंतर नहीं। जो आदमी राष्ट्र की ज्यादा सेवा कर सकता है, उसे जीवित रहने का ज्यादा अधिकार है।

मां आश्चर्य से लड़के का मुंह देखने लगी। उससे बहस करना बेकार था। अपनी दलीलों से वह उसे कायल न कर सकती थी। धर्मवीर खाना खाकर उठ गया। मगर वह ऐसी बैठी रही कि जैसे उसे लकवा मार गया हो। उसने सोचा—कहीं ऐसा तो नहीं कि वह किसी को कत्ल कर आया हो या कत्ल करने जा रहा हो। इस विचार से उसके शरीर में कंपकंपी आ गई। आम लोगों की तरह हत्या और खून के प्रति घृणा उसके शरीर के कण-कण में भरी हुई थी। उसका अपना बेटा खून करे, इससे ज्यादा लज्जा, अपमान, घृणा की बात उसके लिए और क्या हो सकती थी। वह राष्ट्र-सेवा की उस कसौटी पर जान देती थी जो त्याग, सदाचार, सच्चाई और साफदिली का वरदान है। उसकी आंखों में राष्ट्र का सेवक वह था नीच से नीच प्राणी का दिल भी न दुखाए, बल्कि जरूरत पड़ने पर खुशी से अपने को बलिदान कर दे। अहिंसा उसकी नैतिक भावनाओं का सबसे प्रधान अंग थी। अगर धर्मवीर किसी गरीब की हिमायत में गोली का निशाना बन जाता तो वह रोती जरूर मगर गर्दन उठाकर। उसे गहरा शोक होता, शायद इस शोक में उसकी जान भी चली जाती। मगर इस शोक में गर्व मिला हुआ होता। लेकिन वह किसी का खून कर आए यह एक भयानक पाप था, कलंक था। लड़के को रोके कैसे, यही सवाल उसके सामने था। वह यह नौबत हरगिज न आने देगी कि उसका बेटा खून के जुर्म में पकड़ा जाए। न उसे यही बर्दाश्त था कि उसके जुर्म की सजा बेगुनाहों को मिले। उसे ताज्जुब हो रहा था, लड़के में यह पागलपन आया क्योंकर ? वह खाना खाने बैठी मगर कौर गले के नीचे न जा सका। कोई जालिम हाथ धर्मवीर को उसकी गोद से छीने लेता है। वह उस हाथ को हटा देना चाहती थी। अपने जिगर के टुकड़े को वह एक क्षण के लिए भी अलग न करेगी। छाया की

तरह उसके पीछे-पीछे रहेगी। किसकी मजाल है, जो उसके लड़के को उसकी गोद से छीने।

धर्मवीर बाहर के कमरे में सोया करता था। उसे ऐसा लगा कि कहीं वह चला न गया हो। फौरन उसके कमरे में आई। धर्मवीर के सामने दीवट पर दीया जल रहा था। वह एक किताब खोले पढ़ता-पढ़ता सो गया था। किताब उसके सीने पर पड़ी थी। मां ने वहीं बैठकर अनाथ की तरह बड़ी सच्चाई और विनय के साथ परमात्मा से प्रार्थना की कि लड़के का हृदय-परिवर्तन कर दे। उसके चेहरे पर अब भी वही भोलापन, वही मासूमियत थी जो पंद्रह-बीस साल पहले नजर आती थी। कर्कशता या कठोरता का कोई चिह्न न था। मां की सिद्धांतपरता एक क्षण के लिए ममता के आंचल में छिप गई। मां ने हृदय से बेटे की हार्दिक भावनाओं को देखा। इस नौजवान के दिल में सेवा की कितनी उमंग है, कौम का कितना दर्द है, पीड़ितों से कितनी सहानुभूति है। अगर इसमें बूढ़ों की सी सूझ-बूझ, धीमी चाल और धैर्य है तो इसका क्या कारण है। जो व्यक्ति प्राण जैसी प्रिय वस्तु को बलिदान करने के लिए तत्पर हो, उसकी तड़प और जलन का कौन अंदाजा कर सकता है। काश, यह जोश, यह दर्द हिंसा के पंजे से निकल सकता तो जागरण की प्रगति कितनी तेज हो जाती !

मां की आहट पाकर धर्मवीर चौंक पड़ा और किताब सम्हालता हुआ बोला—तुम कब आ गईं अम्मां ? मुझे तो न जाने कब नींद आ गई।

मां ने दीवट को दूर हटाकर कहा—चारपाई के पास दीया रखकर न सोया करो। इससे कभी-कभी दुर्घटनाएं हो जाया करती हैं। और क्या सारी रात पढ़ते ही रहोगे ? आधी रात तो हुई, आराम से सो जाओ। मैं भी यहीं लेटी जाती हूं। मुझे अंदर न जाने क्यों डर लगता है।

धर्मवीर—तो मैं एक चारपाई लाकर डाले देता हूं।

"नहीं, मैं यहीं जमीन पर लेटी जाती हूं।"

"वाह, मैं चारपाई पर लेटूं और तुम जमीन पर पड़ी रहो। तुम चारपाई पर आ जाओ।"

"चल, मैं चारपाई पर लेटूं और तू जमीन पर पड़ा रहे, यह तो नहीं हो सकता।"

"मैं चारपाई लिए आता हूं। नहीं तो मैं भी अंदर ही लेटता हूं। आज आप डरीं क्यों?"

"तुम्हारी बातों ने डरा दिया। तू मुझे भी क्यों अपनी सभा में नहीं शरीक कर लेता ?"

धर्मवीर ने कोई जवाब न दिया। बिस्तर और चारपाई उठाकर अंदर वाले कमरे में चला। मां आगे-आगे चिराग दिखाती हुई चली। कमरे में चारपाई डालकर उस पर लेटता हुआ बोला—अगर तुम मेरी सभा में शरीक हो जाओ तो क्या पूछना। बेचारे कच्ची-कच्ची रोटियां खाकर बीमार हो रहे हैं। उन्हें अच्छा खाना मिलने लगेगा। फिर ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें एक बूढ़ी स्त्री जितनी आसानी से कर सकती है, नौजवान हरगिज नहीं कर सकते। मसलन किसी मामले का सुराग लगाना, औरतों में हमारे विचारों का प्रचार करना। मगर तुम दिल्लगी कर रही हो !

मां ने गंभीरता से कहा—नहीं बेटा, दिल्लगी नहीं कर रही। दिल से कह रही हूं। मां

का दिल कितना नाजुक होता है, इसका अंदाजा तुम नहीं कर सकते। तुम्हें इतने बड़े खतरे में अकेला छोड़कर मैं घर में नहीं बैठ सकती। जब तक मुझे कुछ न मालूम था, दूसरी बात थी। लेकिन अब यह बातें जान लेने के बाद मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती। मैं हमेशा तुम्हारे बगल में रहूंगी और अगर कोई ऐसा मौका आया तो तुमसे पहले मैं अपने को कुर्बान करूंगी। मरते वक्त तुम मेरे सामने होगे। मेरे लिए यही सबसे बड़ी खुशी है। यह मत समझो कि मैं नाजुक मौकों पर डर जाऊंगी, चीखूंगी, चिल्लाऊंगी। हरगिज नहीं। सख्त-से-सख्त खतरों के सामने भी तुम मेरी जुबान से एक चीख न सुनोगे। अपने बच्चे की हिफाजत के लिए गाय भी शेरनी बन जाती है।

धर्मवीर ने भक्ति से विह्वल होकर मां के पैरों को चूम लिया। उसकी दृष्टि में वह कभी इतने आदर और स्नेह के योग्य न थी।

2

दूसरे ही दिन परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ। यह दो दिन बुढ़िया ने रिवाल्वर चलाने के अभ्यास में खर्च किए। पटाखे की आवाज पर कानों पर हाथ रखने वाली, अहिंसा और धर्म की देवी, इतने साहस से रिवाल्वर चलाती थी और उसका निशाना इतना अचूक होता था कि सभा के नौजवानों को भी हैरत होती थी।

पुलिस के सबसे बड़े अफसर के नाम मौत का परवाना निकला और यह काम धर्मवीर के सुपुर्द हुआ।

दोनों घर पहुंचे तो मां ने पूछा—क्यों बेटा, इस अफसर ने तो कोई ऐसा काम नहीं किया फिर सभा ने क्यों उसको चुना ?

धर्मवीर मां की सरलता पर मुस्कराकर बोला—तुम समझती हो, हमारे कानिस्टिबिल और सब-इंसपेक्टर और सुपरिंटेंडेंट जो कुछ करते हैं, अपनी खुशी से करते हैं ? वे लोग जितने अत्याचार करते हैं, उनके लिए यही आदमी जिम्मेदार है। और फिर हमारे लिए तो इतना ही काफी है कि वह उस मशीन का एक खास पुर्जा है जो हमारे राष्ट्र को चरम निर्दयता से बर्बाद कर रही है। लड़ाई में व्यक्तिगत बातों से कोई प्रयोजन नहीं, वहां तो विरोधी पक्ष का सदस्य होना ही सबसे बड़ा अपराध है।

मां चुप हो गई। क्षण-भर बाद डरते-डरते बोली—बेटा, मैंने तुमस कभी कुछ नहीं मांगा। अब एक सवाल करती हूं, उसे पूरा करोगे ?

धर्मवीर ने कहा—यह पूछने की कोई जरूरत नहीं अम्मां, तुम जानती हो मैं तुम्हारे किसी हुक्म से इंकार नहीं कर सकता।

मां—हां बेटा, यह जानती हूं। इसी वजह से मुझे यह सवाल करने की हिम्मत हुई। तुम इस सभा से अलग हो जाओ। देखो, तुम्हारी बूढ़ी मां हाथ जोड़कर तुमसे यह भीख मांग रही है।

और वह हाथ जोड़कर भिखारिन की तरह बेटे के सामने खड़ी हो गई। धर्मवीर ने कहकहा मारकर कहा—यह तो तुमने बेढब सवाल किया, अम्मां। तुम जानती हो इसका नतीजा क्या होगा ? जिंदा लौटकर न आऊंगा। अगर यहां से कहीं भाग जाऊं तो भी जान नहीं बच सकती। सभा के सब मैंबर ही मेरे खून के प्यासे हो जाएंगे और मुझे उनकी

गोलियों का निशाना बनना पड़ेगा। तुमने मुझे यह जीवन दिया है, इसे तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर सकता हूं। लेकिन भारतमाता ने तुम्हें और मुझे दोनों ही को जीवन दिया है और उसका हक सबसे बड़ा है। अगर कोई ऐसा मौका हाथ आ जाए कि मुझे भारतमाता की सेवा के लिए तुम्हें कत्ल करना पड़े तो मैं इस अप्रिय कर्तव्य से भी मुंह न मोड़ सकूंगा। आंखों से आंसू जारी होंगे, लेकिन तलवार तुम्हारी गर्दन पर होगी। हमारे धर्म में राष्ट्र की तुलना में कोई दूसरी चीज नहीं ठहर सकती। इसलिए सभा को छोड़ने का तो सवाल ही नहीं है। हां, तुम्हें डर लगता हो तो मेरे साथ न जाओ। मैं कोई बहाना कर दूंगा और किसी दूसरे कामरेड को साथ ले लूंगा। अगर तुम्हारे दिल में कमजोरी हो, तो मुझे फौरन बतला दो।

मां ने कलेजा मजबूत करके कहा—मैंने तुम्हारे खयाल से कहा था भइया, वर्ना मुझे क्या डर।

अंधेरी रात के पर्दे में इस काम को पूरा करने का फैसला किया गया था। कोप का पात्र रात को क्लब से जिस वक्त लौटे वहीं उसकी जिंदगी का चिराग बुझा दिया जाए। धर्मवीर ने दोपहर ही को मौके का मुआइना कर लिया और उस खास जगह को चुन लिया जहां से वह निशाना मारेगा। साहब के बंगले के पास करील और करौंदे की एक छोटी-सी झाड़ी थी। वही उसकी छिपने की जगह होगी। झाड़ी के बाईं तरफ नीची जमीन थी। उसमें बेर और अमरूद के बाग थे। भाग निकलने का अच्छा मौका था।

साहब के क्लब जाने का वक्त सात और आठ बजे के बीच था, लौटने का वक्त ग्यारह या बारह बजे था। इन दोनों वक्तों की बात पक्की तरह मालूम कर ली गई थी। धर्मवीर ने तय किया कि नौ बजे चलकर उसी करौंदे वाली झाड़ी में छिपकर बैठ जाएं। वहीं एक मोड़ भी था। मोड़ पर मोटर की चाल कुछ धीमी पड़ जाएगी। ठीक इसी वक्त उसे रिवाल्वर का निशाना बना लिया जाय।

ज्यों-ज्यों दिन गुजरता जाता था, बूढी मां का दिल भय से सूखता जाता था। लेकिन धर्मवीर के दैनंदिन आचरण में तनिक भी अंतर न था। वह नियत समय पर उठा, नाश्ता किया, संध्या की और अन्य दिनों की तरह कुछ देर पढ़ता रहा। दो-चार मित्र आ गए। उनके साथ दो-तीन बाजियां शतरंज की खेलीं। इत्मीनान से खाना खाया और अन्य दिनों से कुछ अधिक। फिर आराम से सो गया, कि जैसे उसे कोई चिंता नहीं है। मां का दिल उचाट था। खाने-पीने का तो जिक्र ही क्या, वह मन मारकर एक जगह बैठ भी न सकती थी। पड़ोस की औरतें हमेशा की तरह आईं। वह किसी से कुछ न बोली। बदहवास-सी इधर-उधर दौड़ती फिरती थी कि जैसे चुहिया बिल्ली के डर से कोई सूराख ढूंढ़ती हो। कोई पहाड़-सा उसके सिर पर गिरता था। उससे कहीं मुक्ति नहीं। कहीं भाग जाए, ऐसी कोई जगह नहीं। वे घिसे-पिटे दार्शनिक विचार जिनसे अब तक उसे सांत्वना मिलती थी—भाग्य, पुनर्जन्म, भगवान् की मर्जी—वे सब इस भयानक विपत्ति के सामने व्यर्थ जान पड़ते थे। जिरहबख्तर और लोहे की टोपी तीर-तुपक से रक्षा कर सकते हैं लेकिन पहाड़ तो उसे उन सब चीजों के साथ कुचल डालेगा। उसके दिलो-दिमाग बेकार होते जाते थे। अगर कोई भाव शेष था, तो वह भय था। मगर शाम होते-होते उसके हृदय पर एक शांति-सी छा गई। उसके अंदर एक ताकत पैदा हुई जिसे मजबूरी की ताकत कह सकते हैं। चिड़िया उस

फिर एकाएक इस शोक भरी घटना की प्रतीति उसके अंदर चमक उठी—वह अपनी प्यारी मां का कातिल है ! उसके स्वभाव की सारी कठोरता और तेजी और गर्मी बुझ गई। आंसुओं की बढ़ती हुई थरथरी को अनुभव करता हुआ वह नीचे झुका, और मां के चेहरे की तरफ आंसुओं में लिपटी हुई शर्मिंदगी से देखकर बोला—यह क्या हो गया, अम्मां ! हाय, तुम कुछ बोलती क्यों नहीं ! यह कैसे हो गया ! अंधेरे में कुछ नजर भी तो नहीं आता। कहां गोली लगी, कुछ तो बताओ। आह ! इस बदनसीब के हाथों तुम्हारी मौत लिखी थी। जिसको तुमने गोद में पाला उसी ने तुम्हारा खून किया। किसको बुलाऊं, कोई नजर भी तो नहीं आता !

मां ने डूबती हुई आवाज में कहा—मेरा जन्म सुफल हो गया बेटा। तुम्हारे हाथों मेरी मिट्टी उठेगी। तुम्हारी गोद में मर रही हूं। छाती में घाव लगा है। ज्योंही तुमने गोली चलाई, मैं तुम्हारे सामने खड़ी हो गई। अब नहीं बोला जाता, परमात्मा तुम्हें खुश रखे। मेरी यह दुआ है। मैं और क्या करती बेटा। मां की आबरू तुम्हारे हाथ में है। मैं तो चली !

क्षण-भर बाद उस अंधेरे सन्नाटे में धर्मवीर अपनी प्यारी मां के नीमजान शरीर को गोद में लिए घर चला तो उसके ठंडे तलुओं से अपनी आंसू-भरी आंखें रगड़कर आत्मिक आह्लाद से भरी हुई दर्द की टीस अनुभव कर रहा था।

[प्रथम प्रकाश : उर्दू कहानी-संग्रह 'आखिरी तोहफा' (प्रथम संस्करण : मार्च 1934) में संकलित व प्रकाशित। हिन्दी रूप 'कातिल' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

बारात

आज बाबू देवकीनाथ अपनी पंद्रह साल की ब्याहता बीवी को छोड़कर नयी शादी करने जा रहे हैं। अज़ीज़ों-अकरिबा (रिश्तेदार, निकट संबंधी) जमा हैं। मगर कोई यह पूछने की ज़हमत ग़वारा नहीं करता कि आख़िर इस बेकस पर इतना इताब (कोप) क्यों है ? बाबू देवकीनाथ से क्यों बुरे बनें ? दरवाजे पर नौबत झड़ रही है। अंदर मस्तूरात (स्त्रियां) ब्याह के गीत गा रही हैं। नौकर-चाकर खुशरंग वर्दियां पहने इधर-उधर दौड़ रहे हैं। बराती असहाब (लोग) अपनी-अपनी ऐयाइश (साज-सज्जा) में मयरूफ़ (व्यस्त) हैं। मगर इस शादी के साथ एक अज़ीज जान का खून हो रहा है, इसकी किसी को परवाह नहीं।

आज पंद्रह साल हुए जब देवकीनाथ की शादी फूलवती से हुई थी। फूलवती हसीन थी। बातमीज़ (सुसंस्कृत, अच्छे स्वभाव वाली) थी। शीरींदहन (प्रिय मुखवाली, मधुभाषी) थी। तालीमयाफ़्ता थी। देवकीनाथ भी नेक अवतार (शिष्ट आचरण वाले), मुस्तकिल (स्थिर स्वभाव), रोशन ख़याल। मगर पहले ही दिन दुलहा-दुल्हन में कुछ ऐसी बदमज़गी (मनमुटाव) पैदा हुई कि दोनों में एक ख़लीज हायल (भीषण खाड़ी हो गई) हो गई। और ज़माने के साथ-साथ वह ख़लीज वसीअ (विस्तृत) होती चली गई। यहां तक कि आज देवकीनाथ नयी शादी करने पर आमदा हो गए।

और इस बदमज़गी का बाअस क्या था ? मआशरती मामलात (सामाजिक) में

इख़्तेलाफ़ (विरोध)। देवकीनाथ पुरानी तहज़ीब के क़ायल थे। फूलवती नयी रोशनी की दिलदादा (अनुरक्त)। पुरानी तहज़ीब परदा चाहती है। तहम्मुल (सहनशीलता) और सब्र चाहती है। नयी रोशनी आज़ादी चाहती है। ऐजाज़ (सम्मान) चाहती है। हुकूमत चाहती है। देवकीनाथ चाहते हैं फूलवती मेरी मां की ख़िदमत करे! बग़ैर इजाज़त घर से क़दम न निकाले। लंबा-सा घूंघट निकालकर चले। फूलवती को इन बातों में से एक भी पसंद न थी। दोनों में मुबाहिसे हुए। सख़्त कलामियों (कटु भाषण) की नौबत आई। शुक्र रंजी हुई। मियां ने बीवी के मैके वालों की तहकीर (अपमान) की। बीवी ने तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया। मियां ने डांट बताई। बीवी ने मैके की राह ली। मैका भी दूर न था। दस मिनट में घर जा पहुंची। महीनों तक दोनों खिंचे रहे। फिर फूलवती मनाई गई। ससुराल आई। मगर दो ही चार दिन में वही क़िस्से शुरू हो गये। न देवकीनाथ अपने अमल की इस्लाह (सुधार) कर सकते थे, न फूलवती अपने तर्जे-अमल की। अबके बरसों बोलचाल बंद रही। आख़िर अहबाब के समझाने से देवकीनाथ तीसरी बार बीवी को मना लाए। मगर अबके मामलात ने कुछ ऐसा तूल खींचा कि दायमी मुफ़ारक़त (स्थायी पृथकता) हो गई। न उन्होंने बुलाया, न वह आई, और आज मियां शौहर नयी शादी रचाकार अपने दिल की आग बुझा रहे हैं। क्या फूलवती के लिए भी यही आज़ादी है ? क्या उसे यह आज़ादी होती, तो देवकीनाथ को नयी शादी ठानने का हौसला होता ?

देवकीनाथ की मां संदूक में ज़ेबरों को सज़ा रही हैं। नयी बहू की खुशी में मतवाली हो रही हैं। इस पर सुन लिया है कि बहू होशियार है। ख़िदमत-गुजार है। शर्मीली है फिर क्या पूछना ! उस लक्ष्मी के आते ही घर की रौनक ही कुछ और हो जाएगी। पड़ोसिनें उसे चिढ़ाने को कहती हैं, "नयी बहूजी पढ़ी-लिखी तो खूब होंगी?"

सासजी मुंह बनाकर कहती हैं, "मुझे मेमसाहब की ज़रूरत नहीं। मैं दरगुज़री ऐसी पढ़ी-लिखी से। मुझे अब गंवारा बहू चाहिए।'

दरवाजे पर मुंशीजी आकर बोले, "भई, जल्दी करो। गाड़ी छूट जाएगी। फिर कोई दूसरी साइत नहीं है।"

सास कहती है, "आप अपना काम देखिए। मुझे कोई देर नहीं है। दर्ज़ी को बुलवा दीजिए। नौशा को कपड़े पहना दे।"

दर्ज़ी ने आकर जोड़ा पहनाया। माली ने आकर सेहरा बांधा। चमार ने आकर जूती पहनाई। फूफाजी पगड़ी संवार गये। बुआजी ने आकर आंखों में क़ाजल लगाया। मामाजी ने आकर बंदनवार बांध दी। दूल्हा आदमी से बंदर बन गया। पैंतालीस साल की उम्र। कुछ-कुछ बालों में सफ़ेदी आ चली थी। दो-चार दांत भी जवाब दे चुके थे। चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई मगर वज़ा (सज-धज) ऐसी गोया अभी उन्फुवाने-शबाब (जवानी) है।

2

इधर फूलवती के बाप को ख़बर मिली। दरिया-ए-तफ़क्कुर (चिंता-समुद्र) में डूब गये। पहले से ख़बर होती, तो हाथ-पांव मारते। मगर अब तो बारात जाने को तैयार है। इस तंग वक़्त में वह क्या कर सकते हैं ? सोच रहे थे—हम लोगों से तो नीची जातें ही अच्छी हैं। उनको कम-से-कम बिरादरी का तो खौफ़ है। हम लोगों ने तो बेग़ैरती पर कमर बांध ली

फिर एकाएक इस शोक भरी घटना की प्रतीति उसके अंदर चमक उठी—वह अपनी प्यारी मां का कातिल है ! उसके स्वभाव की सारी कठोरता और तेजी और गर्मी बुझ गई। आंसुओं की बढ़ती हुई थरथरी को अनुभव करता हुआ वह नीचे झुका, और मां के चेहरे की तरफ आंसुओं में लिपटी हुई शर्मिंदगी से देखकर बोला—यह क्या हो गया, अम्मां ! हाय, तुम कुछ बोलती क्यों नहीं ! यह कैसे हो गया ! अंधेरे में कुछ नजर भी तो नहीं आता। कहां गोली लगी, कुछ तो बताओ। आह ! इस बदनसीब के हाथों तुम्हारी मौत लिखी थी। जिसको तुमने गोद में पाला उसी ने तुम्हारा खून किया। किसको बुलाऊं, कोई नजर भी तो नहीं आता !

मां ने डूबती हुई आवाज में कहा—मेरा जन्म सुफल हो गया बेटा। तुम्हारे हाथों मेरी मिट्टी उठेगी। तुम्हारी गोद में मर रही हूं। छाती में घाव लगा है। ज्योंही तुमने गोली चलाई, मैं तुम्हारे सामने खड़ी हो गई। अब नहीं बोला जाता, परमात्मा तुम्हें खुश रखे। मेरी यह दुआ है। मैं और क्या करती बेटा। मां की आबरू तुम्हारे हाथ में है। मैं तो चली !

क्षण-भर बाद उस अंधेरे सन्नाटे में धर्मवीर अपनी प्यारी मां के नीमजान शरीर को गोद में लिए घर चला तो उसके ठंडे तलुओं से अपनी आंसू-भरी आंखें रगड़कर आत्मिक आह्लाद से भरी हुई दर्द की टीस अनुभव कर रहा था।

[प्रथम प्रकाशन [illegible] उर्दू कहानी-संग्रह 'आखिरी तोहफा' (प्रथम संस्करण : मार्च 1934) में संकलित व प्रकाशित। हिन्दी रूप 'कातिल' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

बारात

आज बाबू देवकीनाथ अपनी पंद्रह साल की ब्याहता बीवी को छोड़कर नयी शादी करने जा रहे हैं। अज़ीज़ों-अकरिबा (रिश्तेदार, निकट संबंधी) जमा हैं। मगर कोई यह पूछने की ज़हमत ग़वारा नहीं करता कि आख़िर इस बेकस पर इतना इताब (क्रोध) क्यों है ? बाबू देवकीनाथ से क्यों बुरे बनें ? दरवाजे पर नौबत झड़ रही है। अंदर मस्तूरात (स्त्रियां) ब्याह के गीत गा रही हैं। नौकर-चाकर खुशरंग वर्दियां पहने इधर-उधर दौड़ रहे हैं। बराती असहाब (लोग) अपनी-अपनी ऐयाइश (साज-सज्जा) में मसरूफ़ (व्यस्त) हैं। मगर इस शादी के साथ एक अज़ीज जान का खून हो रहा है, इसकी किसी को परवाह नहीं।

आज पंद्रह साल हुए जब देवकीनाथ की शादी फूलवती से हुई थी। फूलवती हसीन थी। बातमीज़ (सुसंस्कृत, अच्छे स्वभाव वाली) थी। शीरींदहन (प्रिय मुखवाली, मधुभाषी) थी। तालीमयाफ़्ता थी। देवकीनाथ भी नेक अवतार (शिष्ट आचरण वाले), मुस्तकिल (स्थिर स्वभाव), रोशन ख़याल। मगर पहले ही दिन दुलहा-दुल्हन में कुछ ऐसी बदमज़गी (मनमुटाव) पैदा हुई कि दोनों में एक ख़लीज हायल (भीषण खाड़ी हो गई) हो गई। और ज़माने के साथ-साथ वह ख़लीज वसीअ (विस्तृत) होती चली गई। यहां तक कि आज देवकीनाथ नयी शादी करने पर आमदा हो गए।

और इस बदमज़गी का बाअस क्या था ? मआशरती मामलात (सामाजिक) में

इख़्तेलाफ़ (विरोध)। देवकीनाथ पुरानी तहज़ीब के क़ायल थे। फूलवती नयी रोशनी की दिलदादा (अनुरक्त)। पुरानी तहज़ीब परदा चाहती है। तहम्मुल (सहनशीलता) और सब्र चाहती है। नयी रोशनी आज़ादी चाहती है। ऐजाज़ (सम्मान) चाहती है। हुकूमत चाहती है। देवकीनाथ चाहते हैं फूलवती मेरी मां की ख़िदमत करे। बग़ैर इजाज़त घर से क़दम न निकाले। लंबा-सा घूंघट निकालकर चले। फूलवती को इन बातों में से एक भी पसंद न थी। दोनों में मुबाहिसे हुए। सख़्त कलामियों (कटु भाषण) की नौबत आई। शुक्र रंजी हुई। मियां ने बीवी के मैके वालों की तहकीर (अपमान) की। बीवी ने तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया। मियां ने डांट बताई। बीवी ने मैके की राह ली। मैका भी दूर न था। दस मिनट में घर जा पहुंची। महीनों तक दोनों खिंचे रहे। फिर फूलवती मनाई गई। ससुराल आई। मगर दो ही चार दिन में वही क़िस्से शुरू हो गये। न देवकीनाथ अपने अमल की इस्लाह (सुधार) कर सकते थे, न फूलवती अपने तर्जे-अमल की। अबके बरसों बोलचाल बंद रही। आख़िर अहबाब के समझाने से देवकीनाथ तीसरी बार बीवी को मना लाए। मगर अबके मामलात ने कुछ ऐसा तूल खींचा कि दायमी मुफ़ारक़त (स्थायी पृथकता) हो गई। न उन्होंने बुलाया, न वह आई, और आज मियां शौहर नयी शादी रचाकार अपने दिल की आग बुझा रहे हैं। क्या फूलवती के लिए भी यही आज़ादी है ? क्या उसे यह आज़ादी होती, तो देवकीनाथ को नयी शादी ठानने का हौसला होता ?

देवकीनाथ की मां संदूक में ज़ेबरों को सजा रही हैं। नयी बहू की खुशी में मतवाली हो रही हैं। इस पर सुन लिया है कि बहू होशियार है। ख़िदमत-गुजार है। शर्मीली है फिर क्या पूछना ! उस लक्ष्मी के आते ही घर की रौनक ही कुछ और हो जाएगी। पड़ोसिनें उसे चिढ़ाने को कहती हैं, "नयी बहूजी पढ़ी-लिखी तो खूब होंगी?"

सासजी मुंह बनाकर कहती हैं, "मुझे मेमसाहब की ज़रूरत नहीं। मैं दरगुज़री ऐसी पढ़ी-लिखी से। मुझे अब गंवारा बहू चाहिए।'

दरवाजे पर मुंशीजी आकर बोले, "भई, जल्दी करो। गाड़ी छूट जाएगी। फिर कोई दूसरी साइत नहीं है।"

सास कहती है, "आप अपना काम देखिए। मुझे कोई देर नहीं है। दर्ज़ी को बुलवा दीजिए। नौशा को कपड़े पहना दे।"

दर्ज़ी ने आकर जोड़ा पहनाया। माली ने आकर सेहरा बांधा। चमार ने आकर जूती पहनाई। फूफाजी पगड़ी संवार गये। बुआजी ने आकर आंखों में क़ाजल लगाया। मामाजी ने आकर बंदनवार बांध दी। दूल्हा आदमी से बंदर वन गया। पैंतालीस साल की उम्र। कुछ-कुछ बालों में सफ़ेदी आ चली थी। दो-चार दांत भी जवाब दे चुके थे। चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई मगर वज़ा (सज-धज) ऐसी गोया अभी उन्फ़ुवाने-शबाब (जवानी) है।

2

इधर फूलवती के बाप को ख़बर मिली। दरिया-ए-तफ़क्कुर (चिंता-समुद्र) में डूब गये। पहले से ख़बर होती, तो हाथ-पांव मारते। मगर अब तो बारात जाने को तैयार है। इस तंग वक़्त में वह क्या कर सकते हैं ? सोच रहे थे—हम लोगों से तो नीची जातें ही अच्छी हैं। उनको कम-से-कम बिरादरी का तो खौफ़ है। हम लोगों ने तो बेग़ैरती पर कमर बांध ली

है। हाय। फूलवती को मालूम होगा तो उसकी क्या हालत होगी ! आज पंद्रह साल गुज़र गये, उसे आराम मिला ? बेवाओं की ज़िंदगी बसर कर रही हैं। उस पर यह नया सदामा ! यह नयी चोट उससे क्योंकर बर्दाश्त होगी ?

फूलवती उन आन पर जान देने वाली औरतों में से थी, जो दिल में एक बात ठानकर फिर पीछे हटना नहीं जानतीं। अगर वह जरा-सा भी दब सकती तो उसकी जिंदगी आराम से कट जाती। लेकिन पंद्रह साल की बेएतनाई (उदासीनता) भी उसकी खुद्दारी पर फ़तह न पा सकी। उसे ज्यूं ही यह ख़बर मिली, उसने दिल में तय कर लिया कि यह शादी मेरे जीते-जी नहीं होगी। हर्गिज नहीं होगी ! वह नयी वहू के साथ ज़िंदगी की बहार नहीं उड़ा सकते। अगर मैं रो-रोकर ज़िंदगी के दिन पूरे कर रही हूं तो तुमको भी यूं ही जलते रहना पड़ेगा। तुम मेरी छाती पर मूंग नहीं दल सकते। उसने घर में किसी से कुछ न कहा। वालिद को भी ख़बर न दी। आहिस्ता से घर से निकली। एक तांगा किराये पर लिया और ससुराल चली। रास्ते में सोचती जाती थी, आज इस ज़िंदगी का आखिरी फैसला करूंगी। दिखला दूंगी कि आज भी हिन्दुस्तान में ऐसी औरतों हैं जो अपनी बात के लिए हंसते-हंसते जान दे देती हैं। वे ऐश-आराम के लिए ज़िंदा नहीं रहतीं, बल्कि अपने धरम को पालने के लिए। उसकी हालत बिल्कुल दीवानों की-सी हो गई थी। कभी आप ही आप हंसती, कभी आप ही आप रोती। न जाने क्या बकती जाती थी। इसी बेहोशी के आलम में शौहर के मकान से बहुत दूर निकल गई। जब होश आया, तो तांगे वाले से पूछो, "यह कौन-सा मुहल्ला है ?"

बोला—"यह कटरा है।"

"वाह ! तुम यहां कहां आ गये ! मुझे तो सब्जीमंडी जाना है।"

"तो आपने पहले क्यों न कहा ? उसी तरफ से तो आया हूं। क्या आपको घर मालूम नहीं ?"

"मुझे ख़याल न था।"

"क्या सो गईं थीं ? मुझे इतना चक्कर पड़ा।"

"बक-बक मत करो। तांगा लौटा लो।"

आधे घंटे में तांगा देवकीनाथ के दरवाजे पर जा पहुंचा।

3

बारात तैयार थी। दूल्हा फूलों से सजी हुई मोटर पर बैठ चुका था। वाजे बज रहे थे। यह तमाशा देखकर फूलवती की सीने पर सांप-सा लोटने लगा। जी में आया, कुएं में कूद पड़ूं ताकि ज़िंदगी का ख़ात्मा हो जाए। जब अपना कोई पुरसां ही नहीं, तो इस ज़िंदगी से मौत कहीं अच्छी। पहले यह ख़याल आया, कि क्यों न मैं भी उनकी छाती पर मूंग दलूं ? उन्हें दुखाकर किसी से शादी कर लूं। फिर देखूं, यह हजरत क्या कर लेते हैं मेरा ? मगर इस ख़याल को उसने दिल से निकाल दिया। नहीं, मैं औरतों के नाम को दाग़ नहीं लगाऊंगी। अपने ख़ानदान को बदनाम न करूंगी। मगर इन हज़रात को बरात लेकर जाने न दूंगी, चाहे मेरी जान ही क्यों न जाए !

मोटर ने हॉर्न बजाए। और चलना ही चाहती थी, कि फूलवती तांगे से उतर पड़ी।

और आकर मोटर के सामने खड़ी हो गई।

देवकीनाथ उसे देखते ही जल-भुनकर ख़ाक हो गये। बोले, "तुम यहां क्यूं आई ? तुम्हें यहां किसने बुलाया ?"

फूलवती ने मुंह फेरते हुए कहा, "मुझे न्योते की ज़रूरत न थी।"

देवकीनाथ—"हट जाओ मेरे सामने से। मैं तुम्हारी सूरत देखना नहीं चाहता।

फूलवती—"तुम शादी करने नहीं जा सकते।"

देवकीनाथ—"मुझे तुम रोक लोगी ?"

फूलवती—"या तो रोक लूंगी या अपनी जान दे दूंगी।"

देवकीनाथ—"अगर जान देना चाहती हो, तो कुएं में कूद पड़ो। या ज़हर खा लो। उस पर भी सबर न आए, तो दूसरी शादी कर लो। या किसी को लेकर निकल जाओ। मैं तुम्हें नहीं रोकता। मैं क़सम खाता हूं कि मैं ज़बान तक न हिलाऊंगा। मेरे पीछे पड़ती हो? मैंने तुम्हारे लिए आधी ज़िंदगी तल्ख कर दी। अब मुझमें ज़ब्त की ताक़त नहीं है। मेरा कहना मानो, रास्ते से हट जाओ, वरना मैं मोटर चलाऊंगा।"

फूलवती—"मैं भी यही चाहती हूं। मुझे पैरों तले रौंदकर तुम जा सकते हो।"

देवकीनाथ—"तुम क्या चाहती हो ? मैं सारी ज़िंदगी तुम्हारे नाम को रोता रहूं। जो औरत अपने शौहर से दुश्मनी करे उसकी सूरत देखना गुनाह है।"

फूलवती—"मैं तुम्हें अपनी सूरत दिखाने नहीं आई हूं।"

देवकीनाथ—"तो फिर तिरिया-चरित्तर क्यों करती हो ? क्यों नहीं किसी तरफ़ अपना मुंह काला कर लेती ? मैं ऐसी औरतों के चरित्तर खूब जानता हूं।"

फूलवती ने खून-आब (खून भरी) आंखों से देखकर कहा, "जरा ज़बान संभालकर बातें करो, वरना मेरी आह पड़ जाएगी। मैं और सब कुछ बर्दाश्त कर सकती हूं तहक़ीर (अपमान) बर्दाश्त नहीं कर सकती।"

देवकीनाथ ने गर्दन हिलाकर कहा, "ऐसी ही तू बड़ी इस्मत मआब (परम सती) हो।"

फूलवती—"जो खुद बेवफा है, उन्हें दूसरों से वफ़ा की उम्मीद रखने का कोई हक़ नहीं'

देवकीनाथ फ़ौरन मोटर पर से उतर आए। बोले—"सामने से हटेगी या नहीं ?"

फूलवती ने मुस्तकिल अंदाज से कहा—"नहीं।"

देवकीनाथ दांत पीसकर बोले—"हट जा, नहीं तो मैं कुचल दूंगा। और सारी शेखी धरी रह जाएगी।"

फूलवती—"तुम्हें अख़्तियार है, जो चाहो करो। मैंने एक बार कह दिया। मैं सब कुछ बर्दाश्त कर सकती हूं, तहक़ीर नहीं बर्दाश्त कर सकती।"

देवकीनाथ—"मैं फिर समझाये देता हूं कि हट जा, नहीं तो मैं कुचल दूंगा। गधी कहीं की !"

फूलवती—"तो निकाल लो दिन का अरमान ना ! ज़बान क्यों ख़राब करते हो? मैं दिल में ठानकर आई हूं, कि मेरे जीते-जी तुम चैन न करने पाओगे।"

देवकीनाथ—"मैंने कह तो दिया, जाकर किसी से अपनी शादी कर ले। मुझसे

दस्तबरदारी (अधिकार मुक्ति) लिखा ले। मैं नहीं चाहता कि तू मेरे नाम को रोये।"

फूलवती—"मेरी शादी तो अब भगवान् के घर होगी। लेकिन जीते-जी यह सितम बर्दाश्त नहीं कर सकती।"

देवकीनाथ अब जब्त न कर सके। ड्राइवर से बोले—"चला दो मोटर। जो कुछ होगा, देखा जाएगा। मुझ पर धौंस जमाने चली।"

ड्राइवर ने मोटर चलाने से इन्कार किया। वह एक औरत पर दीदओ दानिस्ता (जान-बूझकर) मोटर चलाकर अपनी ज़िंदगी ख़तरे में नहीं डालना चाहता था। ज़िंदा रहेगा तो भीख मांग खायेगा। ऐसी नौकरी उसे मंजूर नहीं। वह मोटर से उतरकर चल दिया।

फूलवती ने ताज़ियान (चाबुक) जमाया, "तुम मुझे मौत से क्या धमकाते हो ! मौत से वह डरे जिसे ऐशो-आराम की आरजू हो। यहां तो मरने के लिए तैयार होकर आई हूं। ज़िंदा रहकर मुझे करना ही क्या है ? रोने से जी भर गया। अब उसकी ख़्वाहिश नहीं है।"

देवकीनाथ का गुस्सा तैश की हद तक जा पहुंचा। जब इन्सान की कुव्वते-तमीज सल्ब (विवेकशक्ति नष्ट) हो जाती है तो वह अंधा हो जाता है। इतने आदमियों के रूबरू एक औरत के हाथों वह ख़फ़ीफ़ (लज्जित) न होना चाहता था। सफ्फाकाना अज़्म (हिंसक दृढ़-निश्चय) के साथ हॉर्न बजाए।

फूलवती एक बार चौंक पड़ी। और फित्री हिफ्ज़े-बक़ा (प्राकृतिक अस्तित्व-रक्षा) के जेरे असर एक क़दम हट गई। मगर फ़ौरन संभलकर फिर मोटर के सामने आई और लेट गई। उसके तरकश का आख़िरी तीर था।

दोबरा हॉर्न बजा।

फूलवती ने जुम्बिश (हरकत, हिलना) न की। उसकी आंखें बंद थीं। और ऐसा मालूम होता था, गोया दिल बैठा जाता है।

मोटर ने तीसरी बार हॉर्न बजाए। और एक शाने-फरऊनियत (जालिम फरऊन की तरह) के साथ चल पड़ा। एक चीख़ की आवाज़ सुन पड़ी। और मोटर आगे निकल गई।

फूलवती का तन नाजुक ज़मीन पर पड़ा हुआ सितार के चोट खाये हुए तारों की तरह कांप रहा था। जिसने शौहर का एक कल्मा सख्त (कठोर) नहीं बर्दाश्त किया, वह आज क्या यह तहक़ीर (अपमान) बर्दाश्त कर सकती थी ?

4

नज़ारा इतना दर्दनाक था, इतना नफतअंगेज़, इतना वहशियाना कि हज़ारों तमाशाइयों की आंखों में खून उतर आया। इज्तिमाई ज़हानियत (सामूहिक वृत्ति) हमेशा इंतिहा की तरफ़ मायल (प्रवृत्त) होनी है। वह सब कुछ कर गुज़रती है, जो अफ़राद (व्यक्तियों) के लिए नाक़ाबिले ख़याल है। सैलाब अगर आबादियों को गर्क़ाव (डुबना) करता है तो ज़मीन को भी ज़रखेज़ (उपजाऊ) करता है। दरिया-ए-तहनशीं (खून का बदला, खुनी अनीति) के सकून में कुव्वते-अमल (क्रिया-शक्ति) कहां ?

इस मज्में में सितमे-नाखा (अनुचित अत्याचार) के ख़िलाफ़ एहतिजाज (क्रोधपूर्ण रोष) का एक सैलाव-वा आ गया। खूने बेदाद (खून का बदला, खूनी) के लिए मुश्तइल (उत्तेजित) हो गया। कानून पर तसर्रूफ (अधिकार) इस ज़हनियत की ख़सूसियत है।

सदहा (सैकड़ों) आदमी एक अन्धे जुनून के आलम में मोटर की तरफ़ दौड़े। देवकीनाथ का हाथ पकड़कर मोटर से खींच लिया और खूंख्वार दरिंदों की तरह उस पर चारों तरफ़ से टूट पड़े। और आने-वाहिदउ (एक क्षण में) में नोशा अपनी सारी तमन्नाएं ले एक तोदा-ए-उस्तुख्वां (हड्डियों का ढेर) बना खूनी सेहरा सिर पर रख के ज़मीन पर एड़ियां रगड़ रहा था।

दोनों लाशें आमने-सामने पड़ी थीं। दोनों पर हसरत बरस रही थी। कौन क़ातिल था? कौन-मक्तूल (मरने वाला, हत) ?

पहर रात गये दोनों जनाज़े चले। ढोल-मजीरे की जगह आहो-बुका (विलाप) की गरमबाज़ारी थी।

यह नयी बरात थी !

[प्रथम प्रकाशन उर्दू। उर्दू कहानी संग्रह 'आखिरी तोहफा' (प्रथम संस्करण : मार्च 1934) में संकलित एवं प्रकाशित। देवनागरी लिप्यंतर 'बारात' शीर्षक से 'सोलह अप्राप्य कहानियां' और 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

मनोवृत्ति

एक सुन्दर युवती, प्रातःकाल, गाँधी-पार्क में बिल्लौर के बेंच पर गहरी नींद में सोई पाई जाय, यह चौंका देनेवाली बात है। सुन्दरियाँ पार्कों में हवा खाने आती हैं, हँसती हैं, दौड़ती हैं, फूल-पौधों से खेलती हैं, किसी का इधर ध्यान नहीं जाता; लेकिन कोई युवती रविश के किनारे वाले बेंच पर बेखबर सोये, यह बिलकुल गैर मामूली बात है, अपनी ओर बल-पूर्वक आकर्षित करने वाली। रविश पर कितने आदमी चहलकदमी कर रहे हैं, बूढ़े भी, जवान भी, सभी एक क्षण के लिए वहाँ ठिठक जाते हैं, एक नजर वह दृश्य देखते हैं और तब चले जाते हैं। युवकवृन्द रहस्यभाव से मुसकिराते हुए, वृद्धजन चिन्ता-भाव से सिर हिलाते हुए और युवतियाँ लज्जा से आँखें नीचे किये हुए।

2

बसंत और हाशिम निकर और बनियाइन पहने नंगे पाँव दौड़ रहे हैं। बड़े दिन की छुट्टियों में ओलिम्पियन रेस होनेवाला है, दोनों उसी की तैयारी कर रहे हैं। दोनों इस स्थल पर पहुँचकर रुक जाते हैं और दबी आँखों से युवती को देखकर आपस में ख़याल दौड़ाने लगते हैं।

बसंत ने कहा—इसे और कहीं सोने की जगह ही नहीं मिली।

हाशिम ने जवाब दिया—कोई वेश्या है।

'लेकिन वेश्याएँ भी तो इस तरह बेशर्मी नहीं करतीं।'

'वेश्या अगर बेशर्म न हो तो वेश्या नहीं।'

'बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनमें कुलवधू और वेश्या दोनों एक व्यवहार करती हैं।

कोई वेश्या मामूली तौर पर सड़क पर सोना नहीं चाहती।'

'रूप-छवि दिखाने का नया आर्ट है।'

'आर्ट का सबसे सुन्दर रूप छिपाव है, दिखाव नहीं। वेश्या इस रहस्य को खूब समझती है।'

'उसका छिपाव केवल आकर्षण बढ़ाने के लिए है।'

'हो सकता है; मगर केवल यहाँ सो जाना यह प्रमाणित नहीं करता कि यह वेश्या है। इसकी माँग में सेंदुर है।'

'वेश्याएँ अवसर पड़ने पर सौभाग्यशाली बन जाती हैं। रात-भर प्याले के दौर चले होंगे। काम-क्रीड़ाएँ हुई होंगी। अवसाद के कारण, ठंडक पाकर सो गई होगी।'

'मुझे तो कुलवधू-सी लगती है ?'

'कुलवधू पार्क में सोने आयेगी ?'

'हो सकता है, घर से रूठकर आई हो ?'

'चलकर पूछ ही क्यों न लें।'

'निरे अहमक हो ! बगैर परिचय के आप किसी को जगा कैसे सकते हैं ?'

'अजी चलकर परिचय कर लेंगे। उलटे और एहसान जतायेंगे।

'और जो कहीं झिड़क दे ?'

'झिड़कने की कोई बात भी हो। उससे सौजन्य और सहृदयता में डूबी हुई बातें करेंगे। कोई युवती ऐसी बातें सुनकर चिढ़ नहीं सकती। अजी, गत-यौवनाएँ तक तो रस-भरी बातें सुनकर फूल ही उठती हैं। यह तो नवयौवना है। मैंने रूप और यौवन का ऐसा सुन्दर संयोग नहीं देखा था।'

'मेरे हृदय पर तो यह रूप अब जीवन-पर्यन्त के लिए अंकित हो गया ! शायद कभी न भूल सकूँ।'

'मैं तो फिर यही कहता हूँ कि कोई वेश्या है।'

'रूप की देवी वेश्या भी हो, उपास्य है।'

'यहीं खड़े-खड़े कवियों की-सी बातें करोगे, जरा वहाँ चलते क्यों नहीं। तुम केवल खड़े रहना, पाश तो मैं डालूँगा।'

'कोई कुलवधू है।'

'कुलवधू पार्क में आकर सोये, तो इसका इसके सिवा कोई अर्थ नहीं कि वह आकर्षित करना चाहती है, और यह वेश्या मनोवृत्ति है।'

''आजकल की युवतियाँ भी तो फार्वर्ड होने लगी हैं।'

'फार्वर्ड युवतियाँ युवकों से आँखें नहीं चुरातीं।'

'हाँ, लेकिन है, कुलवधू, कुलवधू से किसी तरह की बातचीत करना मैं वेहूदगी समझता हूँ।'

'तो चलो फिर दौड़ लगावें।'

'लेकिन दिल में तो वह मूर्ति दौड़ रही है।'

'तो आओ बैठें। जब वह उठकर जाने लगे; तो उसके पीछे चलें। मैं कहता हूँ वेश्या है।'

'और मैं कहता हूँ, कुलवधू है।'

'तो दस-दस की बाजी रही।'

3

दो वृद्ध पुरुष धीरे-धीरे जमीन की ओर ताकते आ रहे हैं, मानो खोई जवानी ढूँढ रहे हों। एक की कमर झुकी, बाल काले, शरीर स्थूल; दूसरे के बाल पके हुए, पर कमर सीधी, इकहरा शरीर। दोनों के दाँत टूटे; पर नकली दाँत लगाये, दोनों की आँखों पर ऐनक। मोटे महाशय वकील हैं, छरहरे महोदय डाक्टर।

वकील—देखा, यह बीसवीं सदी की करामात !

डाक्टर—जी हाँ देखा, हिन्दुस्तान दुनिया से अलग तो नहीं है।

'लेकिन आप इसे शिष्टता तो नहीं कह सकते ?

'शिष्टता की दुहाई देने का अब समय नहीं।'

'है किसी भले घर की लड़की।'

'वेश्या है साहब, आप इतना भी नहीं समझते।'

'वेश्या इतनी फूहड़ नहीं होती।'

'और भले घर की लड़कियाँ फूहड़ होती हैं ?'

'नई आजादी है, नया नशा है।'

'हम लोगों की तो बुरी-भली कट गई। जिनके सिर आयेगी, वह झेलेंगे।'

'अफ़सोस, जवानी रुख़सत हो गई।'

'जिन्दगी ज़हन्नुम से बदतर हो जायेगी।'

'मगर आँख तो नहीं रुख़सत हो गई; वह दिल तो नहीं रुख़सत हो गया।'

'बस आँख से देखा करो, दिल जलाया करो।'

'मेरा तो फिर जवान होने को जी चाहता है। सच पूछो तो आजकल के जीवन में ही जिन्दगी की बहार है। हमारे वक्तों में तो कहीं कोई सूरत ही नजर न आती थी। आज तो जिधर जाओ, हुस्न-ही-हुस्न के जलवे।'

'सुना, युवतियों को दुनिया में जिस चीज से सबसे ज्यादा नफरत है, वह बूढ़े मर्द हैं।'

'मैं इसका कायल नहीं। पुरुष का जौहर उसकी जवानी नहीं, उसका शक्तिसम्पन्न होना है। कितने ही बूढ़े जवानों से ज्यादा कड़ियल होते हैं। मुझे तो आये दिन इसके तज़रबे होते हैं। मैं ही अपने को किसी जवान से कम नहीं समझता।'

'यही सब सही है; पर बूढ़ों का दिल कमजोर हो जाता है। अगर यह बात न होती तो इस रमणी को इस तरह देखकर हम लोग यों न चले जाते। मैं तो आँखों भर देख भी न सका। डर लग रहा था कि कहीं उसकी आँखें खुल जायँ और वह मुझे ताकते देख ले तो दिल में क्या समझे।'

'खुश होती कि बूढ़े पर भी उसका जादू चल गया।'

'अजी रहने भी दो।'

'आप कुछ दिनों 'ओकासा' का सेवन कीजिए।'

मेहता साहब डयोढ़ी पर पहुँचे, तो राजा साहब पाईबाग में टहल रहे थे। मेहता को देखते ही बोले—आइए मि. मेहता, आपसे एक खास बात में सलाह लेनी है। यहाँ कुछ लोगों की राय है कि सिंहद्वार के सामने आपकी एक प्रतिमा स्थापित की जाय, जिससे चिरकाल तक आपकी यादगार कायम रहे। आपको तो शायद इसमें कोई आपत्ति न होगी। और यदि हो भी तो लोग इस विषय में आपकी अवज्ञा करने पर भी तैयार हैं। सतिया की आपने जो अमूल्य सेवा की है, उसका पुरस्कार तो कोई क्या दे सकता है, लेकिन जनता के हृदय में आपसे जो श्रद्धा है, उसे तो वह किसी-न-किसी रूप में प्रकट ही करेगी।

मेहता ने बड़ी नम्रता से कहा—यह अन्नदाता की गुण-ग्राहकता है, मैं तो एक तुच्छ सेवक हूँ। मैंने जो कुछ किया, यह इतना ही है कि नमक का हक अदा करने का सदैव प्रयत्न किया, मगर मैं इस सम्मान के योग्य नहीं हूँ।

राजा साहब ने कृपालु भाव से हँसकर कहा—आप योग्य हैं या नहीं इसका निर्णय आपके हाथ में नहीं है मि. मेहता, आपकी दीवानी यहाँ न चलेगी। हम आपका सम्मान नहीं कर रहे हैं; अपनी भक्ति का परिचय दे रहे हैं। थोड़े दिनों में न हम रहेंगे, न आप रहेंगे, उस वक्त भी यह प्रतिमा अपनी मूक वाणी से कहती रहेगी कि पिछले लोग अपने उद्धारकों का आदर करना जानते थे। मैंने लोगों से कह दिया है कि चन्दा जमा करें। एजेंट ने अबकी जो पत्र लिखा है, उसमें आपको खास तौर से सलाम लिखा है।

मेहता ने जमीन में गड़कर कहा—यह उनकी उदारता है, मैं तो जैसा आपका सेवक हूँ, वैसा ही उनका भी सेवक हूँ।

राजा साहब कई मिनट तक फूलों की बहार देखते रहे। फिर इस तरह बोले, मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो—तहसील खास में एक गाँव लगनपुर है, आप कभी वहाँ गये हैं ?

'हाँ अन्नदाता ! एक बार गया हूँ, वहाँ एक धनी साहूकार है। उसी के दीवानखाने में ठहरा था। अच्छा आदमी है।'

'हाँ, ऊपर से बहुत अच्छा आदमी है; लेकिन अन्दर से पक्का पिशाच। आपको शायद मालूम न हो, इधर कुछ दिनों से महारानी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है और मैं सोच रहा हूँ कि उन्हें किसी सैनेटोरियम में भेज दूँ। वहाँ सब तरह की चिन्ताओं एवं झंझटों से मुक्त होकर वह आराम से रह सकेंगी, लेकिन रनिवास में एक रानी का रहना लाजिमी है ! अफसरों के साथ उनकी लेडियाँ भी आती हैं, और भी कितने अंग्रेज मित्र अपनी लेडियों के साथ मेरे मेहमान होते रहते हैं। कभी राजे-महाराजे भी रानियों के साथ आ जाते हैं। रानी के बगैर लेडियों का आदर-सत्कार कौन करेगा ? मेरे लिए यह वैयक्तिक प्रश्न नहीं, राजनैतिक समस्या है, और शायद आप भी मुझसे सहमत होंगे, इसलिए मैंने दूसरी शादी करने का इरादा कर लिया है। उस साहूकार की एक लड़की है, जो कुछ दिनों अजमेर में शिक्षा पा चुकी है। मैं एक बार उस गाँव से होकर निकला, तो मैंने उसे अपने घर की छत पर खड़ी देखा। मेरे मन में तुरन्त भावना उठी कि अगर यह रमणी रनिवास में आ जाय, तो रनिवास की शोभा बढ़ जाय। मैंने महारानी की अनुमति लेकर साहूकार के पास सन्देशा भेजा, किन्तु मेरे द्रोहियों ने उसे कुछ ऐसी पट्टी पढ़ा दी कि उसने मेरा सन्देशा स्वीकार न किया। कहता है, कन्या का विवाह हो चुका है। मैंने कहला भेजा,

इसमें कोई हानि नहीं, मैं तावान देने को तैयार हूँ, लेकिन वह दुष्ट बराबर इन्कार किये जाता है। आप जानते हैं; प्रेम असाध्य रोग है। आपको भी शायद इसका कुछ-न-कुछ अनुभव हो। बस; यह समझ लीजिए कि जीवन निरानन्द हो रहा है। नींद और आराम हराम है। भोजन से अरुचि हो गयी है। अगर कुछ दिन यही हाल रहा, तो समझ लीजिए कि मेरी जान पर बन आयेगी। सोते-जागते वही मूर्ति आँखों के सामने नाचती रहती है। मन को समझाकर हार गया और अब विवश होकर मैंने कूटनीति से काम लेने का निश्चय किया है। प्रेम और समर में सब कुछ क्षम्य है। मैं चाहता हूँ, आप थोड़े-से मातबर आदमियों को लेकर जायँ और उस रमणी को किसी तरह ले आयें। खुशी से आये खुशी से, बल से आये बल से, इसकी चिन्ता नहीं। मैं अपने राज्य का मालिक हूँ। इसमें जिस वस्तु पर मेरी इच्छा हो, उस पर किसी दूसरे व्यक्ति का नैतिक या सामाजिक स्वत्व नहीं हो सकता। यह समझ लीजिए कि आप ही मेरे प्राणों की रक्षा कर सकते हैं। कोई दूसरा ऐसा आदमी नहीं है, जो इस काम को इतने सुचारु रूप से पूरा कर दिखाये। आपने राज्य की बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं। यह उस यज्ञ की पूर्णाहुति होगी और आप जन्म-जन्मान्तर तक राजवंश के इष्टदेव समझे जायँगे।'

मि. मेहता का मरा हुआ आत्म-गौरव एकाएक सचेत हो गया। जो रक्त चिरकाल से प्रवाह शून्य हो गया था, उसमें सहसा उद्रेक हो उठा। त्योरियाँ चढ़ाकर बोले—तो आप चाहते हैं, मैं उसे किडनैप करूँ ?

राजा साहब ने उनके तेवर देखकर आग पर पानी डालते हुए कहा—कदापि नहीं मि. मेहता, आप मेरे साथ घोर अन्याय कर रहे हैं ! मैं आपको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेज रहा हूँ। कार्य-सिद्धि के लिए आप जिस नीति से चाहें, काम ले सकते हैं। आपको पूरा अधिकार है।

मि. मेहता ने और भी उत्तेजित होकर कहा—मुझसे ऐसा पाजीपन नहीं हो सकता है।

राजा साहब की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

'अपने स्वामी की आज्ञा-पालन करना पाजीपन है ?'

'जो आज्ञा नीति और धर्म के विरुद्ध हो उसका पालन करना बेशक पाजीपन है।'

'किसी स्त्री से विवाह का प्रस्ताव करना नीति और धर्म के विरुद्ध है ?'

'इसे आप विवाह कहकर 'विवाह' शब्द को कलंकित करते हैं। यह बलात्कार है !'

'आप अपने होश में हैं ?'

'खूब अच्छी तरह ?'

'मैं आपको धूल में मिला सकता हूँ !'

'तो आपकी गद्दी भी सलामत न रहेगी !'

'मेरी नेकियों का यही बदला है, नमकहराम ?'

'आप अब शिष्टता की सीमा से आगे बढ़े जा रहे हैं; राजा साहब ! मैंने अब तक अपनी आत्मा की हत्या की है और आपके हर एक जा और बेजा हुक्म की तामील की है; लेकिन आत्मसेवा की भी एक हद होती है, जिसके आगे कोई भला आदमी नहीं जा सकता। आपका यह कृत्य जघन्य है और इसमें जो व्यक्ति आपका सहायक हो, वह इसी योग्य है कि उसकी गर्दन काट ली जाय। मैं ऐसी नौकरी पर लानत भेजता हूँ।'

यह कहकर वह घर आये और रातों-रात बोरिया-बकचा समेटकर रियासत से निकल गये; मगर इसके पहले सारा वृत्तान्त लिखकर उन्होंने एजेंट के पास भेज दिया।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अप्रैल-मई, 1934 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप इसी शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'दूध की कीमत' में संकलित।]

दूध का दाम

अब बड़े-बड़े शहरों में दाइयाँ, नर्सें और लेडी डॉक्टर, सभी पैदा हो गयी हैं; लेकिन देहातों में जच्चेखानों पर अभी तक भंगिनों का ही प्रभुत्व है और निकट भविष्य में इसमें कोई तब्दीली होने की आशा नहीं। बाबू महेशनाथ अपने गाँव के जमींदार थे, शिक्षित थे और जच्चेखानों में सुधार की आवश्यकता को मानते थे, लेकिन इसमें जो बाधाएँ थीं, उन पर कैसे विजय पाते ? कोई नर्स देहात में जाने पर राजी न हुई और बहुत कहने-सुनने से राजी भी हुई, तो इतनी लम्बी-चौड़ी फीस माँगी कि बाबू साहब को सिर झुकाकर चले आने के सिवा और कुछ न सूझा। लेडी डॉक्टर के पास जाने की उन्हें हिम्मत न पड़ी। उसकी फीस पूरी करने के लिए तो शायद बाबू साहब को अपनी आधी जायदाद बेचनी पड़ती; इसलिए जब तीन कन्याओं के बाद वह चौथा लड़का पैदा हुआ, तो फिर वही गूदड़ था और वही गूदड़ की बहू। बच्चे अक्सर रात ही को पैदा होते हैं। एक दिन आधीरात को चपरासी ने गूदड़ के द्वार पर ऐसी हाँक लगायी कि पास-पड़ोस में भी जाग पड़ गयी। लड़की न थी कि मरी आवाज से पुकारता।

गूदड़ के घर में इस शुभ अवसर के लिए महीनों से तैयारी हो रही थी। भय था तो यही कि फिर बेटी न हो जाय, नहीं तो वही बँधा हुआ एक रुपया और एक साड़ी मिलकर रह जायगी। इस विषय में स्त्री-पुरुष में कितने ही बार झगड़ा हो चुका था, शर्त लग चुकी थी। स्त्री कहती थी—अगर अबकी बेटा न हो तो मुँह न दिखाऊँ; हाँ-हाँ, मुँह न दिखाऊँ, सारे लच्छन बेटे के हैं। और गूदड़ कहता था—देख लेना, बेटी होगी और बीच खेत बेटी होगी। बेटा निकले तो मूँछें मुँड़ा लूँ, हाँ-हाँ, मूँछें मुड़ा लूँ। शायद गूदड़ समझता था कि इस तरह अपनी स्त्री में पुत्र-कामना को बलवान् करके वह बेटे की अवाई के लिए रास्ता साफ कर रहा है।

भूँगी बोली—अब मूँछ मुँड़ा ले दाढ़ीजार ! कहती थी, बेटा होगा। सुनता ही न था। अपनी ही रट लगाये जाता था। मैं आज तेरी मूँछें मूँड़ूँगी, खूँटी तक तो रखूँगी ही नहीं।

गूदड़ ने कहा—अच्छा मूँड़ लेना भलीमानस ! मूँछें क्या फिर निकलेंगी ही नहीं? तीसरे दिन देख लेना, फिर ज्यों-की-त्यों हैं, मगर जो कुछ मिलेगा, उसमें आधा रखा लूँगा, कहे देता हूँ।

भूँगी ने अँगूठा दिखाया और अपने तीन महीने के बालक को गूदड़ के सुपुर्द कर सिपाही के साथ चल खड़ी हुई।

गूदड़ ने पुकारा—अरी ! सुन तो, कहाँ भागी जाती है ? मुझे भी बधाई बजाने जाना

पड़ेगा। इसे कौन सँभालेगा ?

भूँगी ने दूर ही से कहा—इसे वहीं धरती पर सुला देना। मैं आके दूध पिला जाऊँगी

2

महेशनाथ के यहाँ अब भी भूँगी की खूब खातिरदारियाँ होने लगीं। सबेरे हरीरा मिलता, दोपहर को पूरियाँ और हलवा, तीसरे पहर को फिर और रात को फिर और गूदड़ को भी भरपूर परोसा मिलता था। भूँगी अपने बच्चे को दिन-रात में एक-दो बार से ज्यादा न पिला सकती थी। उसके लिए ऊपर के दूध का प्रबन्ध था। भूँगी का दूध बाबूसाहब का भाग्यवान् बालक पीता था। और यह सिलसिला बारहवें दिन भी न बन्द हुआ। मालकिन मोटी-ताजी देवी थी; पर अब की कुछ ऐसा संयोग कि उन्हें दूध हुआ ही नहीं। तीनों लड़कियों की बार इतने इफरात से दूध होता था कि लड़कियों को बदहजमी हो जाती थी। अब की एक बूँद नहीं। भूँगी दाई भी थी और दूध-पिलाई भी।

मालकिन कहतीं—भूँगी, हमारे बच्चे को पाल दे, फिर जब तक तू जिये, बैठी खाती रहना। पाँच बीघे माफी दिलवा दूँगी। नाती-पोते तक चैन करेंगे।

और भूँगी का लाड़ला ऊपर का दूध हजम न कर सकने के कारण बार-बार उलटी करता और दिन-दिन दुबला होता जाता था।

भूँगी कहती—बहूजी, मूँड़न में चूड़े लूँगी, कहे देती हूँ।

बहूजी उत्तर देतीं—हाँ हाँ, चूड़े लेना भाई, धमकाती क्यों है? चाँदी के लेगी या सोने के।

'वाह बहूजी ! चाँदी के चूड़े पहन के किसे मुँह दिखाऊँगी और किसकी हँसी होगी?'

'अच्छा, सोने के लेना भाई, कह तो दिया।'

'और ब्याह में कण्ठा लूँगी और चौधरी (गूदड़) के लिए हाथों के तोड़े।'

'वह भी लेना, भगवान् वह दिन तो दिखावे।'

घर में मालकिन के बाद भूँगी का राज्य था। महरियाँ, महराजिन, नौकर चाकर सब उसका रोब मानते थे। यहाँ तक कि खुद बहूजी भी उससे दब जाती थी। एक बार तो उसने महेशनाथ को भी डाँटा था। हँसकर टाल गये। बात चली थी भंगियों की। महेशनाथ ने कहा था—दुनिया में और चाहे जो कुछ हो जाय, भंगी भंगी ही रहेंगे। इन्हें आदमी बनाना कठिन है।

इस पर भूँगी ने कहा था—मालिक, भंगी तो बड़ों-बड़ों को आदमी बनाते हैं, उन्हें कोई क्या आदमी बनाये।

यह गुस्ताखी करके किसी दूसरे अवसर पर भला भूँगी के सिर के बाल बच सकते थे? लेकिन आज बाबूसाहब ठठाकर हँसे और बोले—भूँगी बात बड़े पते की कहती है।

3

भूँगी का शासनकाल साल-भर से आगे न चल सका। देवताओं ने बालक के भंगिन का दूध पीने पर आपत्ति की, मोटेराम शास्त्री तो प्रायश्चित्त का प्रस्ताव कर बैठे। दूध तो छुड़ा

दिया गया; लेकिन प्रायश्चित्त की बात हँसी में उड़ गयी। महेशनाथ ने फटकारकर कहा—प्रायश्चित्त की खूब कही शास्त्रीजी, कल तक उसी भंगिन का खून पीकर पला, अब उसमें छूत घुस गयी। वाह रे आपका धर्म।

शास्त्रीजी शिखा फटकारकर बोले—यह सत्य है, वह कल तक भंगिन का रक्त पीकर पला। मांस खाकर पला, यह भी सत्य है; लेकिन कल की बात कल थी, आज की बात आज। जगन्नाथपुरी में छूत-अछूत सब एक पंगत में खाते हैं, पर यहाँ तो नहीं खा सकते। बीमारी में तो हम भी कपड़े पहने खा लेते हैं, खिचड़ी तक खा लेते हैं बाबूजी; लेकिन अच्छे हो जाने पर तो नेम का पालन करना ही पड़ता है। आपद्धर्म की बात न्यारी है।

'तो इसका यह अर्थ है कि धर्म बदलता रहता है—कभी कुछ, कभी कुछ ?'

'और क्या ! राजा का धर्म अलग, प्रजा का धर्म अलग, अमीर का धर्म अलग, गरीब का धर्म अलग, राजे-महाराजे जो चाहें खायें, जिसके साथ चाहें खायें, जिसके साथ चाहें शादी-ब्याह करें, उनके लिए कोई बन्धन नहीं। समर्थ पुरुष हैं। बन्धन तो मध्यवालों के लिए है।'

प्रायश्चित्त तो न हुआ; लेकिन भूँगी को गद्दी से उतरना पड़ा ! हाँ, दान-दक्षिणा इतनी मिली की वह अकेले ले न जा सकी और सोने के चूड़े भी मिले। एक की जगह दो नयी, सुन्दर साड़ियाँ—मामूली नैनसुख की नहीं, जैसी लड़कियों की बार मिली थीं।

4

इसी साल प्लेग ने जोर बाँधा और गूदड़ पहले ही चपेट में आ गया। भूँगी अकेली रह गयी; पर गृहस्थी ज्यों-की-त्यों चलती रही। लोग ताक लगाये बैठे थे कि भूँगी अब गयी। फलाँ भंगी से बातचीत हुई, फलाँ चौधरी आये, लेकिन भूँगी न कहीं आयी, न कहीं गयी, यहां तक कि पाँच साल बीत गये और उसका बालक मंगल, दुर्बल और सदा रोगी रहने पर भी, दौड़ने लगा। सुरेश के सामने पिद्दी-सा लगता था।

एक दिन भूँगी महेशनाथ के घर का परनाला साफ कर रही थी। महीनों से गलीज जमा हो रहा था। आँगन में पानी भरा रहने लगा था। परनाले में एक लम्बा मोटा बाँस डालकर जोर से हिला रही थी। पूरा दाहिना हाथ परनाले के अन्दर था कि एकाएक उसने चिल्लाकर हाथ बाहर निकाल लिया और उसी वक्त एक काला साँप परनाले से निकलकर भागा। लोगों ने दौड़कर उसे मार तो डाला; लेकिन भूँगी का न बचा सके। समझे; पानी का साँप है, विषैला न होगा, इसलिए पहले कुछ गफलत की गयी। जब विष देह में फैल गया और लहरें आने लगीं, तब पता चला कि वह पानी का साँप नहीं, गेहुँवन था।

मंगल अब अनाथ था। दिन-भर महेशबाबू के द्वार पर मँडराया करता। घर में जूठन इतना बचता था कि ऐसे-ऐसे दस-पाँच बालक पल सकते थे। खाने की कोई कमी न थी। हाँ, उसे तब बुरा जरूर लगता था, जब उसे मिट्टी के कसोरों में ऊपर से खाना दिया जाता था। सब लोग अच्छे-अच्छे बरतनों में खाते हैं, उसके लिए मिट्टी के कसोरे !

यों उसे इस भेद भाव का बिलकुल ज्ञान न होता था, लेकिन गाँव के लड़के चिढ़ा-चिढ़ाकर उसका अपमान करते रहते थे। कोई उसे अपने साथ खेलाता भी न था। यहाँ तक कि जिस टाट पर वह सोता था, वह भी अछूत था। मकान के सामने एक नीम

का पेड़ था। इसी के नीचे मंगल का डेरा था। एक फटा-सा टाट का टुकड़ा, दो मिट्टी के कसोरे और एक धोती, जो सुरेश बाबू की उतारन थी, जाड़ा, गरमी, बरसात हरेक मौसम में वह जगह एक-सी आरामदेह थी और भाग्य का बली मंगल झुलसती हुई लू, गलते हुए जाड़े और मूसलाधार वर्षा में भी जिन्दा और पहले से कहीं स्वस्थ था। बस, उसका कोई अपना था, तो गाँव का एक कुत्ता, जो अपने सहवर्गियों के जुल्म से दुखी होकर मंगल की शरण आ पड़ा था। दोनों एक ही खाना खाते, एक ही टाट पर सोते, तबीयत भी दोनों की एक-सी थी और दोनों एक दूसरे के स्वभाव को जान गये थे। कभी आपस में झगड़ा न होता।

गाँव के धर्मात्मा लोग बाबूसाहब की इस उदारता पर आश्चर्य करते। ठीक द्वार के सामने—पचास हाथ भी न होगा—मंगल का पड़ा रहना उन्हें सोलहों आने धर्म-विरुद्ध जान पड़ा। छिः ! यही हाल रहा, तो थोड़े ही दिनों में धर्म का अन्त ही समझो। भंगी को भी भगवान् ने ही रचा है, यह हम भी जानते हैं। उसके साथ हमें किसी तरह का अन्याय न करना चाहिए, यह किसे नहीं मालूम ? भगवान् का तो नाम ही पतित-पावन है; लेकिन समाज की मर्यादा भी कोई वस्तु है ! उस द्वार पर जाते हुए संकोच होता है। गाँव के मालिक हैं, जान तो पड़ता ही है; लेकिन बस यही समझ लो कि घृणा होती है।

मंगल और टामी में गहरी बनती थी। मंगल कहता—देखो भाई टामी, जरा और खिसककर सोओ। आखिर मैं कहाँ लेटूँ ? सारा टाट तो तुमने घेर लिया।

टामी कूँ-कूँ करता, दुम हिलाता और खिसक जाने के बदले और ऊपर चढ़ आता एवं मंगल का मुँह चाटने लगता।

शाम को वह एक बार रोज अपना घर देखने और थोड़ी देर रोने जाता। पहले साल फूस का छप्पर गिर पड़ा, दूसरे साल एक दीवार गिरी और अब केवल आधी-आधी दीवारें खड़ी थीं, जिनका ऊपरी भाग नोकदार हो गया था। यही उसे स्नेह की सम्पत्ति मिली थी। वही स्मृति, वही आकर्षण, वही प्यार उसे एक बार उस ऊजड़ में खींच ले जाती थी और टामी सदैव उसके साथ होता था। मंगल नोकदार दीवार पर बैठ जाता और जीवन के बीते और आनेवाले स्वप्न देखने लगता और बार-बार उछलकर उसकी गोद में बैठने की असफल चेष्टा करता।

5

एक दिन कई लड़के खेल रहे थे। मंगल भी पहुँच कर दूर खड़ा हो गया। या तो सुरेश को उस पर दया आयी, या खेलनेवालों की जोड़ी पूरी न पड़ती थी, कह नहीं सकते। जो कुछ भी हो, तजवीज की कि आज मंगल को भी खेल में शरीक कर लिया जाय। यहाँ कौन देखने आता है। क्यों रे मंगल, खेलेगा।

मंगल बोला—ना भैया, कहीं मालिक देख लें, तो मेरी चमड़ी उधेड़ दी जाय। तुम्हें क्या, तुम तो अलग हो जाओगे।

सुरेश ने कहा—तो यहाँ कौन आता है देखने बे ? चल, हम लोग सवार-सवार खेलेंगे। तू घोड़ा बनेगा, हम लोग तेरे ऊपर सवारी करके दौड़ायेंगे ?

मंगल ने शंका की—मैं बराबर घोड़ा ही रहूँगा, कि सवारी भी करूँगा ? यह बता दो।

यह प्रश्न टेढ़ा था। किसी ने इस पर विचार न किया था। सुरेश ने एक क्षण विचार

करके कहा—तुझे कौन अपनी पीठ पर बिठायेगा, सोच ? आखिर तू भंगी है कि नहीं ?

मंगल भी कड़ा हो गया। बोला—मैं कब कहता हूँ कि मैं भंगी नहीं हूँ, लेकिन तुम्हें मेरी ही माँ ने अपना दूध पिला कर पाला है। जब तक मुझे भी सवारी करने को न मिलेगी, मैं घोड़ा न बनूँगा। तुम लोग बड़े चघड़ हो। आप तो मजे से सवारी करोगे और मैं घोड़ा ही बना रहूँ।

सुरेश ने डाँट कर कहा, तुझे घोड़ा बनना पड़ेगा और मंगल को पकड़ने दौड़ा। मंगल भागा। सुरेश ने दौड़ाया। मंगल ने कदम और तेज किया। सुरेश ने भी जोर लगाया; मगर वह बहुत खा-खाकर थुल-थुल हो गया था। और दौड़ने में उसकी साँस फूलने लगती थी।

आखिर उसने रुककर कहा—आकर घोड़ा बनो मंगल, नहीं तो कभी पा जाऊँगा, तो बुरी तरह पीटूँगा।

'तुम्हें भी घोड़ा बनना पड़ेगा।'

'अच्छा हम भी बन जायँगे।'

'तुम पीछे से निकल जाओगे। पहले तुम घोड़ा बन जाओ। मैं सवारी कर लूँ, फिर मैं बनूँगा।'

सुरेश ने सचमुच चकमा देना चाहा था। मंगल का यह मुतालबा सुनकर साथियों से बोला—देखते हो इसकी बदमाशी, भंगी है न !

तीनों ने मंगल को घेर लिया और उसे जबरदस्ती घोड़ा बना दिया। सुरेश ने चटपट उसकी पीठ पर आसन जमा लिया और टिकटिक करके बोला—चल घोड़े, चल!

मंगल कुछ देर तक तो चला, लेकिन उस बोझ से उसकी कमर टूटी जाती थी। उसने धीरे से पीठ सिकोड़ी और सुरेश की रान के नीचे से सरक गया। सुरेश महोदय लद से गिर पड़े और भोंपू बजाने लगे।

माँ ने सुना, सुरेश कहीं रो रहा है। सुरेश कहीं रोये, तो उनके तेज कानों में जरूर भनक पड़ जाती थी और उसका रोना भी बिलकुल निराला होता था, जैसे छोटी लाइन के इंजन की आवाज।

महरी से बोली—देख तो, सुरेश कहीं रो रहा है, पूछ तो किसने मारा है।

इतने में सुरेश खुद आँखें मलता हुआ आया। उसे जब रोने का अवसर मिलता था, तो माँ के पास फरियाद लेकर जरूर आता था। माँ मिठाई या मेवे देकर आँसू पोंछ देती थीं। आप थे तो आठ साल के, मगर थे बिलकुल गावदी। हद से ज्यादा प्यार ने उसकी बुद्धि के साथ वही किया था, जो हद से ज्यादा भोजन ने उसकी देह के साथ।

माँ ने पूछा—क्यों रोता है सुरेश, किसने मारा ?

सुरेश ने रोकर कहा—मंगल ने छू दिया।

माँ को विश्वास न आया। मंगल इतना निरीह था कि उससे किसी तरह की शरारत की शंका न होती थी; लेकिन जब सुरेश कसमें खाने लगा, तो विश्वास करना लाजिम हो गया। मंगल को बुलाकर डाँटा—क्यों रे मंगल, अब तुझे बदमाशी सूझने लगी। मैंने तुझसे कहा था, सुरेश को कभी मत छूना, याद है कि नहीं, बोल।

मंगल ने दबी आवाज से कहा—याद क्यों नहीं है।

'तो फिर तूने उसे क्यों छुआ ?'

'मैंने नहीं छुआ।'

'तूने नहीं छुआ, तो वह रोता क्यों था ?'

'गिर पड़े, इससे रोने लगे।'

चोरी और सीनाजोरी। देवीजी दाँत पीसकर रह गयीं। मारतीं, तो उसी दम स्नान करना पड़ता। छड़ी तो हाथ में लेनी ही पड़ती और छूत का विद्युत-प्रवाह इस छड़ी के रास्ते उनकी देह में पैवस्त हो जाता, इसलिए जहाँ तक गालियाँ दे सकीं, दीं और हुक्म दिया कि अभी-अभी यहाँ से निकल जा। फिर जो इस द्वार पर तेरी सूरत नजर आयी, तो खून ही पी जाऊँगी। मुफ्त की रोटियाँ खा-खाकर शरारत सूझती है; आदि।

मंगल में ग़ैरत तो क्या थी, हाँ, डर था। चुपके से अपने सकोरे उठाये, टाट का टुकड़ा बगल में दबाया, धोती कन्धे पर रखी और रोता हुआ वहाँ से चल पड़ा। अब वह यहाँ कभी न आयेगा। यही तो होगा कि भूखों मर जायेगा। क्या हरज है ? इस तरह जीने से फायदा ही क्या ? गाँव में उसके लिये और कहाँ ठिकाना था ? भंगी को कौन पनाह देता ? उसी खंडहर की ओर चला, जहाँ भले दिनों की स्मृतियाँ उसके आँसू पोंछ सकती थीं और खूब फूट-फूटकर रोया।

उसी क्षण टामी भी उसे ढूँढ़ता हुआ पहुँचा और दोनों फिर अपनी व्यथा भूल गये।

6

लेकिन ज्यों-ज्यों दिन का प्रकाश क्षीण होता जाता था, मंगल की ग्लानि भी क्षीण होती जाती थी। बचपन को बेचैन करने वाली भूख देह का रक्त पी-पीकर और भी बलवान होती जाती थी। आँखें बार-बार कसोरों की ओर उठ जातीं। वहाँ अब तक सुरेश की जूठी मिठाइयाँ मिल गयी होतीं। यहाँ क्या धूल फाँके ?

उसने टामी से सलाह की—खाओगे क्या टामी ? मैं तो भूखा लेट रहूँगा।

टामी ने कूँ-कूँ करके शायद कहा—इस तरह का अपमान तो जिन्दगी भर सहना है। यों हिम्मत हारोगे, तो कैसे काम चलेगा ? मुझे देखो न, कभी किसी ने डण्डा मारा, चिल्ला उठा, फिर जरा देर बाद दुम हिलाता हुआ उसके पास जा पहुँचा। हम-तुम दोनों इसीलिए बने हैं। भाई !

मंगल ने कहा—तो तुम जाओ, जो कुछ मिले खा लो, मेरी परवाह न करो।

टामी ने अपनी श्वान-भाषा में कहा—अकेला नहीं जाता, तुम्हें साथ लेकर चलूँगा।

'मैं नहीं जाता।'

'तो मैं भी नहीं जाता।'

'भूखों मर जाओगे।'

'तो क्या तुम जीते रहोगे ?'

'मेरा कौन बैठा है, जो रोयेगा ?'

'यहाँ भी वही हाल है भाई, क्वार में जिस कुतिया से प्रेम किया था, उसने बेवफाई की और अब कल्लू के साथ है। खैरियत यही हुई कि अपने बच्चे लेती गयी, नहीं तो मेरी जान गाढ़े में पड़ जाती। पाँच-पाँच बच्चों को कौन पालता ?'

एक क्षण के बाद भूख ने एक दूसरी युक्ति सोच निकाली।

'मालकिन हमें खोज रही होंगी, क्या टामी ?'

'और क्या ? बाबूजी और सुरेश खा चुके होंगे। कहार ने उनकी थाली से जूटन निकाल लिया होगा और हमें पुकार रहा होगा।'

'बाबूजी और सुरेश दोनों की थालियों में घी खूब रहता है और वह मीठी-मीठी चीज—हाँ मलाई।'

'सब-का-सब घूरे पर डाल दिया जायगा।'

'देखें, हमें खोजने कोई आता है ?'

'खोजने कौन आयेगा; क्या कोई पुरोहित हो ? एक बार 'मंगल-मंगल' होगा और बस, थाली परनाले में उँड़ेल दी जायेगी।'

'अच्छा, तो चलो चलें। मगर मैं छिपा रहूँगा, अगर किसी ने मेरा नाम लेकर न पुकारा; तो मैं लौट आऊँगा। यह समझ लो।'

दोनों वहाँ से निकले और आकर महेशनाथ के द्वार पर अँधेरे में दबककर खड़े हो गये; मगर टामी को सब्र कहाँ ? वह धीरे से अन्दर घुस गया। देखा, महेशनाथ और सुरेश थाली पर बैठ गये हैं। बरोठे में धीरे से बैठ गया, मगर डर रहा था कि कोई डण्डा न मार दे।

नोकर में बातचीत हो रही थी। एक ने कहा—आज मंगलवा नहीं दिखायी देता। मालकिन ने डाँटा था, इससे भागा है साइत।

दूसरे ने जवाब दिया—अच्छा हुआ, निकाल दिया गया। सवेरे-सवेरे भंगी का मुँह देखना पड़ता था।

मंगल और अँधेरे में खिसक गया। आशा गहरे जल में डूब गयी।

महेशनाथ थाली से उठ गये। नौकर हाथ धुला रहा है। अब हुक्का पीयेंगे और सोयेंगे। सुरेश अपनी माँ के पास बैठा कोई कहानी सुनता-सुनता सो जायगा ! गरीब मंगल की किसे चिन्ता है ? इतनी देर हो गयी, किसी ने भूल से भी न पुकारा।

कुछ देर तक वह निराश-सा वहाँ खड़ा रहा, फिर एक लम्बी साँस खींचकर जाना ही चाहता था कि कहार पत्तल में थाली का जूठन ले जाता नजर आया।

मंगल अँधेरे से निकलकर प्रकाश में आ गया। अब मन को कैसे रोके ?

कहार ने कहा—अरे, तू यहाँ था ? हमने समझा कि कहीं चला गया। ले, खा ले; मैं फेंकने ले जा रहा था।

मंगल ने दीनता से कहा—मैं तो बड़ी देर से यहाँ खड़ा था।

'तो बोला क्यों नहीं ?'

'मारे डर के।'

'अच्छा, ले खा ले।'

उसने पत्तल को ऊपर उठाकर मंगल के फैले हुए हाथों में डाल दिया। मंगल ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जिसमें दीन कृतज्ञता भरी हुई थी।

टामी भी अन्दर से निकल आया था। दोनों वहीं नीम के नीचे पत्तल में खाने लगे।

मंगल ने एक हाथ से टामी का सिर सहलाकर कहा—देखा, पेट की आग ऐसी होती है ! यह लात की मारी हुई रोटियाँ भी न मिलतीं, तो क्या करते ?

टामी ने दुम हिला दी।

'सुरेश को अम्माँ ने पाला था।'

टामी ने फिर दुम हिलायी।

'लोग कहते हैं, दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।'

टामी ने फिर दुम हिलायी।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', जुलाई, 1934 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू में यह कहानी 'दूध की कीमत' शीर्षक से प्रकाशित हुई।]

पण्डित मोटेराम की डायरी

क्या नाम कि कुछ समझ में नहीं आता कि डेरी और डेरी फार्म में क्या सम्बन्ध ! डेरी तो कहते हैं उस छोटी-सी सादी सजिल्द पोथी को, जिस पर रोज-रोज का वृत्तांत लिखा जाता है और जो प्रायः सभी महान् पुरुष लिखा करते हैं और डेरी फार्म उस स्थान को कहते हैं जहां गायें-भैंसें पाली जाती हैं और उनका दूध, मक्खन, घी तैयार किया जाता है। ऐसा मालूम होता है, डेरी फार्म इसलिए नाम पड़ा कि जैसे डेरी में नित्य-प्रति का समाचार लिखा जाता है, उस तरह वहां नित्यप्रति दूध-मक्खन बनता है। जो कुछ हो, मैं अब डेरी लिखने का निश्चय कर लिया है। कई साल पहले एक बार एक पुस्तक वाले ने मुझे एक डेरी भेंट की थी। तब मैंने उस पर एक महीने तक अपना हाल-लिखा; लेकिन मुझे उसमें लिखने को कुछ सूझता ही न था। रात को सोने के पहले घंटों बैठा सोचता—क्या लिखूं। लिखने लायक कोई बात भी हो? यह लिखना कि प्रातःकाल उठा, मुंह-हाथ धोया, स्नान किया, तिलक-चन्दन लगाया, पूजन किया, यजमानों से मिला, कहीं साइत बांचने लगा; फिर लौटकर भोजन किया और सोया। तीसरे पहर फिर उठा, भंग छानी, फिर स्नान किया, फिर तिलक लगाया और कथा बांचने चला गया; लौटकर फिर भोजन किया और सो रहा। यह सब लिखना मुझे अच्छा न लगता था। इसलिए उस डेरी पर मैंने धोबी के कपड़ों और आमदनी-खर्च लिखकर उसे पूरा किया। जब से वह डेरी समाप्त हुई, तबसे खर्च-आमदनी का हिसाब लिखना छोड़ दिया और धोबी के कपड़ों का हिसाब पंडिताइन के जिम्मे डाल दिया।

लेकिन अब से फिर डेरी लिखना आरम्भ कर रहा हूं, इसका क्या कारण है? मैंने सुना है कि इससे आयु बढ़ती है, और चारों पदार्थ हाथ आ जाते हैं। इसलिए अब मैं फिर भगवान् का नाम लेकर, और गणेश जी के सामने शीश झुकाकर डेरी लिखना आरम्भ करता हूं। ओम शांतिः शांतिः शांतिः।

क्या नाम कि आजकल साम्यवाद और समष्टिवाद की बड़ी चर्चा सुन रहा हूं। साम्यवाद का अर्थ यह है कि सभी मनुष्य बराबर हों। तो मैं अपने साम्यवादी विद्वानों से जो इस विषय के आचार्य हैं, जैसे—श्री सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव जी और आचार्य श्रीप्रकाशजी से पूछना चाहता हूं कि सब मनुष्य कैसे बराबर हो सकते हैं? आचार्य

नरेन्द्रदेवजी मुझे क्षमा करें या न करें, मगर उनके जैसे तीन आचार्य मेरे पेट में समा सकते हैं, फिर यह कैसा साम्यवाद? इसका मतलब तो यही हो सकता है कि या मैं वामन रूप धारण कर लूंगा वह विराट् रूप धारण कर लें।

अच्छा, अब दूसरी बात लीजिए। धन तो आप सबका बराबर कर देना चाहते हैं; लेकिन कृपा करके यह बतलाइए कि आप सबके पेट कैसे बराबर कर देंगे? आचार्य नरेन्द्रदेवजी एक-दो फुलके और एक आध घूंट दूध पीकर रह सकते हैं; मगर मुझे तो

पूजा करने के बाद, मध्याह्न, तीसरे पहर और रात को, चार बार तर माल चकाचक चाहिए, जिसमें लड्डू, हलवा, मलाई, बादाम कलाकन्द आदि का प्राधान्य हो। अगर आपका साम्यवाद इसकी गारण्टी करे कि वह मुझे इच्छापूर्ण भोजन देगा तो मैं उस पर विचार कर सकता हूं और अगर आप चाहते हो कि मैं भी दो फुलके और तोले भर दूध और दो तोले भाजी खाकर रहूं तो ऐसे साम्यवाद को मेरा दूर ही से प्रणाम है। मैं धन नहीं मांगता; लेकिन भोजन आंतफाड़ चाहता हूं, अगर इस तरह की गारंटी दी गई, तो वचन देता हूं कि मैं और मेरे अनेक मित्र साम्यवादी बनने को तैयार हो जायंगे।

लेकिन एक भोजन ही से तो काम नहीं चलता। कपड़ा ही ले लीजिए। आपको एक कुरता और एक टोपी चाहिए। कुरते में एक गज से अधिक खद्दर न लगेगा। मैं लम्बी अंगरखी पहनता हूं, जिसमें सात गज से कम कपड़ा नहीं लगता। मैंने दरजी के सामने बैठकर खुद कटवाया है और इसका विश्वास दिलाता हूं कि इससे कम से मेरी अंगरखी नहीं बन सकती। फिर बारह गज का साफा, पांच गज की चादर ऊपर से। साम्यवाद इसकी गारन्टी ले सकता है? धन लेकर मुझे क्या करना है, लेकिन भोजन और वस्त्र तो चाहिए ही।

आप कहेंगे, काम सबके बराबर करना पड़ेगा। मैं इसे स्वीकार करता हूं, अगर कोई सज्जन घड़ी भर पूजा करें, तो मैं दो घड़ी कर दूंगा; वह घड़ी भर स्नान करें तो मैं दो घड़ी पानी में रह सकता हूं; वह एक घड़ी शास्त्रार्थ करें तो मैं भोजन-पूजन आदि को छोड़कर दिन भर शास्त्रार्थ कर सकता हूं। इसमें किसी से पीछे हटने वाला नहीं।

एक बात और। स्थान की मुझे परवाह नहीं; झोंपड़ी भी हो तो मैं अपना निवाह कर सकता हूं। लेकिन रेल यात्रा करते समय अगर मुझसे सबके बराबर जगह मिली, तो उस पटरी पर बैठने वालों को छोड़कर भागना पड़ेगा; क्योंकि मैं एक पूरी पटरी से कम में समा नहीं सकता। दूसरी बात यह है कि मैं सन्नाटा मारकर नहीं सो सकता। निद्रा में एक विचित्र प्रकार का खर्राटा लेता हूं। कभी कोई सज्जन मेरे समीप सोते हैं; तो उन्हें रात को उठकर भागना पड़ता है। इसलिए अपने हित के लिए नहीं, दूसरों के हित के लिए मैं यह चाहूंगा कि मुझे एक पूरी कोठरी सोने को मिले। अगर साम्यवाद इसमें मीन मेख निकाले तो मैं उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखूंगा।

इतना लिख चुका था कि पण्डिताइन आकर खड़ी हो गई और पूछने लगीं—आज सबेरे-सबेरे यह क्या लिखने बैठ गये। सेठजी के लड़के की कुण्डली क्यों नहीं बना डालते? व्यर्थ शास्त्रार्थ करके अपना मूंड क्यों दुखवाते हो?

मैं स्त्रियों का अपमान नहीं करता। उन्हें घर की देवी समझता हूं। वे घर की लक्ष्मी है; लेकिन घर-गिरस्ती के सिवा उनसे किसी और बात में सलाह नहीं लेता। घर की लक्ष्मी

को घर तक ही रखना चाहता हूं। राजनीति, समाज, धर्म आदि के विषय से उन्हें क्या मतलब। स्त्रियों को सिर चढ़ाने की इन मुठ्ठी-भर पढ़े-लिखे बाबुओं को जो सनक सवार हुई है, मैं इसे पसन्द नहीं करता। पंडिताइन भी एक दिन आधी बांह की जम्पर पहने हुए निकलीं जिससे आधी छाती दिखाई दे रही थी, तो मैंने उसी दम वह जम्पर उतरवा कर छोड़ा। वह बहुत बिगड़ीं; लेकिन मैंने भी रौद्ररूप दिखाया। आखिरकार जब मैं डंडा लेने दौड़ा; तो उन्होंने धीरे से जम्पर उतार दिया और मुंह फुला बैठीं। मैंने कहा—चाहे मुंह फुलाओ, चाहे गाल फुलाओ, चाहे सारी देह फुलाकर कुप्पा हो जाओ, लेकिन इस भेष में मैं तुम्हें घर से निकलने न दूंगा। खैर, जब उन्होंने आकर मुझे डांट बताई; तो मैंने कह दिया, 'तुम यह बातें नहीं समझ सकती, जाकर अपना काम देखो।'

पंडिताइन बोलीं—तुमने चार अक्षर पढ़ लिया तो बड़े समझदार हो गये? अभी एक जून चूल्हा न जलाऊं तो सारी समझदारी निकल जाय।

कितना बेतुका जवाब था। मारो घुटना; फूटे आंखे! लेकिन मुझे आश्चर्य नहीं हुआ! उनसे मैं ऐसे जवाब सुनने का अभ्यस्त हो गया हूं। मैंने जरा कड़ाई के साथ कहा—तुम्हारे मतलब की कोई बात नहीं है देवी, नहीं तो मैं तुम्हें सुना देता।

'कोई कविताई करते होंगे। यही तो तुम्हें रोग है।'

'कविता करने का रोग मुझे अब था? बे-बात-की-बात करती हो। मैं कविताई से इतनी दूर हूं, जितना पूरब पच्छिम से। यह वेश-भूषा, यह डीलडौल कवियों का है? तुम क्या जानो, कवि किसे कहते हैं? कवि वह है, जिसकी सूरत से कविता बरसती हो। बस, मैं कविताई नहीं कर सकता हूं, एक सामाजिक प्रश्न पर कुछ शंकाएं उपस्थित करने का सौभाग्य-सन्दिूर प्राप्त कर रहा हूं।'

पण्डित के पाण्डित्यपूर्ण कथन से वह कुछ रोब में आ गई। लेकिन मैं थोड़ा-सा बुद्धू भी हूं। उसी वक्त मुझे हंसी आ गई। बस, पण्डिताइन लौट पड़ीं और मेरे हाथ से लेख छीनकर बोलीं—मैं समझ गई, किसी को प्रेमपत्र लिख रहे हो?

अब नहीं तो अब बनी।·मैं गंगाजल लेकर शपथ खा सकता हूं कि मैंने आज तक न जाना, प्रेम किस चिड़िया का नाम है। मेरी प्रेमिका तर माल है। दूसरी प्रेम मेरी समझ में ही नहीं आता; लेकिन पण्डिताइन को न जाने क्यों मुझ पर सन्देह होता रहता है। प्रेमियों की दशा देखकर तो मुझे उन पर हंसी आती है। जब देखो, रो रहे हैं। ठण्डी सांसें खींच रहे हैं। न कुछ खाते हैं, न पीते हैं, खासे लकलक बने हुए हैं, फूंक दो तो उड़ जायं। इस तरह का प्रेम करके तो मैं तीसरे दिन संसार से विदा हो जाऊं। लेकिन इस सन्देह का निवारण करना अब लाज़िम हो गया?

मैंने थोड़े से शब्दों में पण्डिताइन को साम्यवाद का तत्त्व समझाने की चेष्टा की। जब मैं अपना कथन समाप्त कर चुका, तो वह आंखें मटकाकर बोलीं—ऐ नौज तुम्हारा सामवाद! कुछ घास तो नहीं खा गये हो। जिसके बाल वंश न हों, वे सामवाद की बात सोचें। मुझे तो भगवान ने पांच-पांच पुत्र दिये हैं, और छठवां आने वाला है। मैं सामवाद के फेर में क्यों पड़ूं? 'मेरे बराबर हो पड़ोसन, गोदा-रोटी खाय।' अच्छा सामवाद है। मेरे लाल जीते जी रहेंगे, तो मांग खायेंगे।

वह और भी न जाने क्या-क्या अनाप-शनाप बकती रहीं; लेकिन उनकी बातों से मेरे

मन में एक शंका उत्पन्न हो गई। साम्यवाद में कहीं सन्तान-निग्रह का बन्धन तो नहीं है? क्योंकि इस तरह का कोई सम्बन्ध हुआ तो फिर मेरा उससे कोई सम्पर्क न रहेगा। मैं इस विषय में किसी से समझौता न करूंगा। पीदे से थुक्का-फजीहत करना मुझे पसन्द नहीं। आचार्य मुझे स्पष्ट बतला दें, कि मुझे गृहस्थाश्रम का त्याग तो न करना पड़ेगा? मैं इसकी स्वाधीनता चाहता हूं कि जितनी सन्तानें आवें उनका स्वागत करूं; क्योंकि मैं जानता हूं, जन्म देने वाले भगवान हैं और पालन करने वाले भी भगवान हैं। मैं तो निमित्त-मात्र हूं।

2

क्या नाम है कि मैं पण्डित मोटेराम वल्द पण्डित छोटेराम स्वर्गवासी, माकिन विश्वनाथपुरी जो शंकर भगवान के तिरसूल पर बसी है, आज बम्बई में दनदना रहा हूं। एक यजमान सेठजी ने तार भेजा, हम बड़े संकट में हैं, तुरंत आओ। तार के साथ डबल तीसरे दरजे का किराया भी। इसलिए हमने चटपट बम्बई को प्रस्थान कर दिया! अपने यजमान पर संकट पड़े, तो हम कैसे रुक सकते थे। सेठजी एक बार काशी आये थे। वहां मैं भी निमंत्रण में गया था। वहीं मेरी उनकी जान-पहचान हुई। बात करने में मैं पक्का फिकैत हूं। बस यही समझ लो कि कोई मुझे निमंत्रण भर दे दे, फिर मैं अपनी बातों से ज्ञान घोलता हूं वेदों-शास्त्रों की ऐसी व्याख्या करता हूं कि क्या मजाल जो यजमान उल्लू न हो जाय। योगासन, हस्तरेखा, सन्तानशास्त्र, वशीकरण आदि सभी विद्याएं, जिन पर सेठ-महाजनों का पक्का विश्वास है, मेरी जिह्वा पर हैं। अगर पूछो कि क्यों पण्डित मोटेरामजी शास्त्री, आपने इन विद्याओं को पढ़ा भी है? तो मैं डंके की चोट कहता हूं, मैंने कभी नहीं पढ़ा। इन विद्याओं का क्या रोना, हमने कुछ नहीं पढ़ा, पूरे लंठ हैं, निरक्षर महानः लेकिन फिर भी किसी बड़े-से-बड़े पुस्तक चाटू, शास्त्र घोंटू, पण्डित का सामना करा दो, चपेट न दूं तो मोटेराम नहीं। जी हां, चपेट दूं, ऐसा चपेटूं, ऐसा चपेटूं, ऐसा रगेदूं कि पण्डित जी को भागने का रास्ता न मिले! पाठक कहेंगे; यह असम्भव है, भला एक मूर्ख आदमी महान पण्डित को कैसे रगेदेगा। मैं कहता हूं प्रियवर, पुस्तक चाटने से कोई विद्वान नहीं हो जाता। जो विद्वान आज इस युग में श्राद्ध, पिण्डदान ओर वर्णाश्रम में विश्वास रखता है, जो आज गोबर और गौमूत्र को पवित्र समझता है, जो देवपूजा को मुक्ति का साधन समझता है, वह विद्वान कैसे हो सकता है? मैं खुद यजमानों से यह सब कृत्य कराता हूं, निःसन्देह जानता हूं, हलवा और कलाकन्द किसी आत्मा के पेट में नहीं, मेरे पेट में जाता है, फिर भी यजमानों को मूड़ता हूं, तो इसलिए कि मेरी यह जीविका है। जीविका नहीं छोड़ी जाती, और इसलिए यजमान खुद बेवकूफ बनना चाहता है, पांच पैसे का गऊदान करके भवसागर पार उतरना चाहता है, तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा है जो कहूं कि यह सब मिथ्या है। सरासर मिथ्या है। आती हुई लक्ष्मी को कौन दुतकारता है? लेकिन पण्डितों के बीच में दूसरी बात हो जाती है। वहां मुझे अपनी जीविका का डर नहीं रहता और मैं भिगो-भिगोकर लगाता हूं, कभी दाहने, कभी बायें, चौंधिया देता हूं, सांस नहीं लेने देता। बस पण्डितों के पास इसके सिवा और जवाब नहीं रहता कि तुम नास्तिक हो।

मगर मैं अपने विषय से बहककर कहां जा पहुंचा। जब मैं बम्बई चलने को तैयार हुआ, तो पण्डिताइन रोने लगीं। कहने लगीं, बताओ कै दिन में आओगे। दो-तीन दिन में

जरूर लौट आना। मैं जो उस वक्त बता दूं कि दो दिन पहुंचने में लग जायेंगे, तो फिर वह मेरा पिण्ड न छोड़तीं। इसलिए बड़े प्रेम भरे शब्दों में कहा—प्रिये, मेरा जी तुम्हीं में लगा रहेगा। खाऊंगा तो तुम्हारे करकमलों की गुदगुदी रोटियां और पतली दाल याद आयेगी। पानी पिऊंगा तो तुम्हारे पपड़ियाये हुए अधरों का ध्यान बना रहेगा। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस तुम्हारे ही पास मन मंडराता रहेगा। इससे उन्हें कुछ ढाढ़स हुआ। लेकिन क्या नाम कि स्त्री का हृदय कुछ अटपटा होता है। एकाएक बोल उठीं—मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं आता। कौन जाने तुम वहां कैसे हो जाओ। कहीं तुम कुछ गड़बड़ न कर बैठो। मैंने तुरन्त समझाया—प्राणप्रिये, मुझे तुम्हारे प्रेम में पगे लगभग पैंतालीस साल हुए। क्या तुम समझती हो कि इतने दिनों में जो रंग जमा है, वह दो-चार दिन में फीका पड़ जायगा? कहां तुम्हारा खयाल है! बोली—क्या जाने भाई, तुम मरदों का हाल कौन जाने? यहां तो ऐसी मीठी-मीठी बातें करते हो, वहां जाकर क्या जाने क्या कर बैठो। मैं वहां थोड़ी बैठी रहूंगी कि तुम्हारी देखभाल करती रहूं। मैं तो एक ही सरियत पर जाने दूंगी, कि तुम गंगाजल हाथ में लेकर कहो कि वहां कुछ गड़बड़-सड़बड़ न करूंगा। मैं मन में हंसा और गंगाजल लेकर क़सम खाई। तब जाके पण्डिताइन का चित्त शात हुआ।

चलने को तो चला; लेकिन हृदय मेरा भी कांपता था। प्रयाग तक तो मेरा मन ठिकाने रहा; लेकिन जब फिर भी बम्बई का कहीं पता न चला, तो मुझे रोना आ गया। भगवान! यह तो कालापानी है। दिन-भर चला, बम्बई नदारद। रात-भर चला, बम्बई नदारद। समझ गया कि काशी में मरना न बदा था। मजे से गंगास्नान करता था, विश्वनाथ के दर्शनों को पुन्न लूटता था और धेली बाहर आने कहीं-न-कहीं से पीट ही लाता था और यहां गाड़ी में बैठे न जाने किस लोक को चले जा रहे हैं। इतनी दूर तो चद्रमा भी न होंगे। मुझे भ्रम हो गया कि यात्री और रेल कर्मचारी सब मुझे धोखा दे रहे हैं। बम्बई जरूर पीछे छूट गई। बारे कोई दस बजे बम्बई का नाम सुना। जान आई। देखो तो यजमान सेठजी मेरा स्वागत करने के लिए खड़े थे। उन्होंने पालागन किया; मगर असीस कौन देता है, यहां तो चोला भसम हो रहा था। मैंने ब्रह्म तेज से गरजकर कहा—तुमने मुझे लिखा क्यों नहीं कि बम्बई लंका के पास है? अभी तक जल नहीं ग्रहण किया। प्राण छटपटा के निकलने जा रहा था; बारे मैंने योगबल से रोक लिया। मैं झूठ बोल रहा था। मैं रास्ते भर फलाहारी खाता रहा और रेल से उतरकर पानी पीता चला आ रहा था; लेकिन ऐसे यजमानों के सामने अपने नेम का डंका बजा देना फलदायक होता है। सेठजी ने दौड़कर मेरी अधारी कन्धे पर रखी और लगे धिधियाने—महाराज, क्षमा किया जाय, मैं क्या जानता था कि महाराज को बम्बई....

मैंने फिर डांटा—महाराज को बम्बई से क्या सम्बन्ध? अपने लोग तीर्थ स्थानों में रहते हैं कि राक्षसों के देश में? यहां वह रहे, जो धन का लोभी हो। हम ब्राह्मणों को अपना धर्म प्यारा है।

इस डांट से सेठजी की नानी मर गई। बाहर आये तो मोटर खड़ी थी बैठकर यजमान के घर चले। वाह रे बम्बई! वहां तो आदमी पागल हो जाय। सड़कें न जाने क्यों इतनी चौड़ी बनाई हैं। हमारी चौखंभे वाली कितनी गुलजार गली है कि वाह! यहां की सड़कें हैं कि बालेमियां का मैदान हैं। मगर बम्बई का हाल फिर लिखेंगे। इस वक्त तो सेठजी के

संकट की कथा कहानी है, जिसके लिए हम इतनी दूर से बुलाये गये हैं। संकट यह कि सेठजी ने सट्टा खेला है और चाहते हैं; मैं कोई ऐसा अनुष्ठान करूं कि सेठजी के पौ-बारह हो जायं। मामला गहरा है, कोई डेढ़ लाख का। मैंने यह वृत्तान्त सुनकर ऐसा गंभीर मुंह बनाया, मानो सब कुछ मेरे हाथ में है। फिर बोला--सेठजी, आप जो हैं सो मेरे यजमान हैं और मुझे जो कुछ विद्या आती है, उसमें कुछ उठा न रखूंगा। और यह आप जानते हैं कि मुझे किसी बात से ममता नहीं रही। ब्राह्मण को धन से क्या प्रयोजन? धन चाहता तो अब तक लाखों बटोर लेता। कितने यजमान मेरे अनुष्ठानों से करोड़पति हो गये, लखपतियों की तो गिनती ही नहीं। मैं वही ब्राह्मण का ब्राह्मण बना हूं। तो बात क्या है? हम ममता को पास नहीं आने देते। साढ़े सात सौ कोस से ही ललकारते हैं, खबरदार जो इधर मुंह किया! हां, बात इतनी है कि अनुष्ठानों में पैसे खरच होते हैं। अगर यही अनुष्ठान विधिपूर्वक करूं तो डेढ-दो सौ से कम न खर्च होंगे। यह समझ लीजिये।

लेकिन मैं इस पैंसठ साल की अवस्था में भी पोंगा ही रहा। मैंने डेढ़-दो सौ अपनी समझ में बहुत कहे थे। इससे ऊंचे जाने की मुझे हिम्मत ही न पड़ी। कभी इतना बड़ा शिकार तो फंसा नहीं था। उसने दांव-घात क्या समझता? सेठजी का मुंह लटक गया। उन्होंने जब बारह हजार का अनुमान किया था। डेढ़-दो सौ सुनकर मेरी सारी प्रतिष्ठा उनके हृदय पर से निकल भागी। क्या स्वर्ण संयोग दिया था भगवान् विश्वनाथ ने लेकिन तकदीर खोटी है तो उनका क्या बस? दस हजार कह देता तो जन्मभर के लिए अयाच्य हो जाता। बोलते-बोलते बोला क्या? डेढ़-दो सौ! धत् तेरे पोंगापन का सत्यानाश हो! अब तो यही जी चाहता है कि जाकर समुद्र में कूद पड़ूं। उसी दिन एक दूसरे घोंघानाथ शास्त्री के नाम तार गया। अब यह पट्ठा आकर इन सेठजी को मूंड़ेगा। बीस हजार से कम न लेगा; लेकिन अब पछताने से क्या होता हैं फिर भी मैंने सोचा, बला से मैं नहीं पा रहा हूं। कोई दूसरा क्यों ले जावे? मेरा क्या? यह धर्म नहीं है कि अपने यजमान की इन लुटेरों से रक्षा करूं? बोला, मैंने केवल सामग्री का मूल्य दिया। दक्षिणा मैं लेता नहीं। एक हज़ार रुपये विप्रों की दक्षिणा भी समझ लीजिए।

सेठ बोले—उससे कोई मतलब नहीं, वह तो यहां से अलग दिया जायगा। आपकी सामग्री तो कुल दो सौ रुपये की होगी?

मैंने कहा—बस, इससे अधिक नहीं। हां, ऐसे लोगों को भी जानता हूं, जो इसी अनुष्ठान के लिए पन्द्रह हजार, पन्द्रह हजार तक ले लेंगे। लगेगा तो ढाई-तीन सौ, शेप अपने पेट में ठूंस लेंगे। इसलिए ऐसे धूर्तों से सचेत रहिएगा।

लेकिन सेठ के कण्ठ तले यह बात न धंसी। बोला—यह आप क्या कहते हो शास्त्रीजी? गुड़ जितना ही डालो उतना ही मीठा पकवान होगा। आपका अनुष्ठान दो सौ रुपये का है। आप कीजिए। लेकिन बिना बड़े अनुष्ठान के मेरा काम न चलेगा।

बड़े भी मुझे उल्लू फांसने का मौका था। कह सकता था, सेठजी, आपका काम तो छोटे अनुष्ठान से ही निकल सकता है, लेकिन आपकी इच्छा है तो मैं महा-महा-महा मृत्जुय-पाठ और ब्रह्म-प्रवीक्षक क्रिया भी कर सकता हूं। हां, उसमें कोई साढ़े तेरह हज़ार का खर्च है; मगर यह तो अब सूझ रही है। उस वक्त अक्ल पर पत्थर पड़ गया था। मेरी भी विचित्र खोपड़ी है। जब सूझती है, अवसर निकल जाने पर। हां, मैंने यह निश्चय कर

लिया कि पंडित घोंघानाथ को बिना दस-पांच घिस्से दिये न छोड़ूंगा। या तो बेटा से आधा रखा लूंगा, या फिर यहीं बम्बई के मैदान में हमारी उनकी ठनेगी। वह विद्वान् होंगे। यहां सारी जवानी अखाड़ें में कटी है। भुरकुस निकाल दूंगा।

अपनी इस पिछिल-सूझता पर पछता रहा था कि डाकिया एक तिकोना-सा बैरंग लिफाफा लाकर मुझे दे गया। समझ गया, पण्डिताइन की कृपा है। आज यह पत्र हाथ में लेकर मुझे सचमुच उनकी याद आ गई। बेचारी ने मेरे पैंतालीस साल काट दिये, और मैं बराबर उसे बातों में टालता रहा। आंखें सजल हो गईं। पत्र खोला। लिखा था—स्वस्ति श्री सर्व उपमा योग....सो तुम जाय के बम्बई में बैठि रह्यौ, कान में नेल डारिकै। हमका रोज सपना दिखात है। डरन के मारे नींद नहीं आवति है। कतों तुम कुछ गड़वडि न करि बैठो, यही चिन्ता में हमार परान सूखा जात है। तुम कहिहौ हम पैसठ साल के होए गएन, अबका जन्म भ॒ गड़बड़े करत रहिबे। मुला सुनित है, बैदन सब अइस-अइस बिरवा निकारेन हैं कि ओहिका खायके मनई बौराय जात है। एक वैद झांसी मां है, एक और कतों है। तुहार हाथ जोरित है, तुम कौनो औखद न खायो। तुम गंगाजल उठाय के जौन परन किह्यौ ओहिका निबाह करै का परी। हम तुमका सांड़ न बनै देब।

लीजिए साहब, अब मैं सांड़ हो गया। कमर सीधी होती नहीं, डेढ़ सेर मलाई भी नहीं पचाये पचती, और वहां पण्डिताइन मुझे सांड़ बना रही हैं। सो यहां भी अपनी ही भूल है। मैं पण्डिताइन के सामने अपनी जवांमरदी और पुरुषार्थ की डींग मारा करता हूं। अब गऊ क्या जाने, यह लबाड़िया है। मैं जो कुछ कहता हूं, उसे ब्रह्मवाक्य समझ बैठती हैं और उसका यह फल है। इस यात्रा में संभवतः मेरी दृष्टि कुछ सूक्ष्म हो रही है।

3

क्या नाम कि जब मैंने देखा कि अब तो मुझसे भूल हो ही गई और बहुत खींचतान करने पर भी दो सौ से बेशी न मिलेंगे, तो मैंने सोचा, लाओ और कुछ न सही तो इसके सौ पचास रुपये भोजनों में ही बिगाड़ दो। यह भी क्या समझेगा कि किसी से पाला पड़ा था। बस, मैंने शंकर भगवान् का सुमिरन किया और विनती की—हे उमापति, अब तुम्हीं मेरी रक्षा करो, मैं तो अब प्राणों से हाथ धोकर भोजन पर जुटता हूं। नाश्ता आया तो मैंने कह दिया—मुझे आपके महाराज के हाथ की बनी चीजों में कोई स्वाद नहीं आता, मुझे तो आप सामग्री दे दीजिए, मैं अपना भोजन आप पका लूंगा। भंडारी ने कहा--जैसी आपकी इच्छा, जो आज्ञा हो वह हाजिर करूं। मैंने नाश्ते का नुसखा बताया—सवा सेर ताजा मक्खन, आधा सेर बदाम, आध सेर पिश्ते, आधा तोले केसर, सेर भर सूजी और सेर भर शक्कर। भंडारी मेरा मुंह ताकने लगा। मैंने कहा—मुंह क्या ताकते हो, क्या बांधकर ले जाने को मांगता हूं। जाकर चटपट लाओ। बस मैंने घोटी भंग और चढ़ाया गोला और विश्वनाथ का नाम लेकर हलवा बनाने बैठ गया। शंकर की दया से ऐसी स्वादिष्ट पदार्थ बना कि क्या कहूं। पलवी मारके जो बैठा, तो आध घंटे में साफ। मक्खी के लिए भी न बचा। भंडारी के होश उड़ गये। दोपहर को फिर मैंने पूरियां पकाई। आधोआध मोयन देकर। रात को कुछ खाने की इच्छा न होने पर भी मैंने सवा सेर मलाई चढ़ा ली।

लेकिन अब वह जवानी तो है नहीं कि ईंट-पत्थर जो पेट में पहुंच जाय, वह सब

भस्म। तीसरे ही दिन मुझे उदर-विकार के लक्षण दिखे। मैंने सोचा—यहां किसी से कहता हूं तो सब यही कहेंगे कि ब्राह्मण की जात, खाने के पीछे प्राण दे रहा है। इसलिए मुहल्ले ही में एक डॉक्टर के पास कोई पाचक-बटी लेने चला गया। बड़ा भारी मकान, मोटर, फोन। मैंने अपना परिचय दिया तो डाक्टर ने मुझे गौर से देखा और बोले—काशी से आता है?

मैंने कहा—हां साहब, विश्वनाथजी आपको प्रसन्न रखें, यहां कुछ भोजन प्रकृति के अनुकूल न मिलने के कारण पाचन दूषित हो गया है। कोई औषधि प्रदान कीजिए।

डॉक्टर मुझे एक अलग कमरे में ले गया और एक मेज पर लेटाकर मेरा पेट टटोलने लगा। फिर सीने की परीक्षा की, पीठ ठोंकी, आंखें देखीं, जीभ निकलवाकर परीक्षा ली। इस तरह कोई आघ घण्टे तक तेरी दलेल करने के बाद बोला—वेल पंडितजी, आपको कुछ टी. बी. का आसार मालूम देता है। आपको उसका दवाई करने होगा। हम टी. बी. का इसपिसलिस्ट है। आपको अच्छा करने सकता है; पर आपको अभी एक दूसरा डॉक्टर के पास अपने खून का मुलाहजा कराना होगा। बिना खून देखे हम कुछ नहीं कर सकता। हम आपको चिट्ठी देता है। आप डॉक्टर सूबेदार के पास जायं। वह चौपाटी में रहता है। हम चिट्ठी देता है। आपके ब्लड का मुलाहज़ा करके हमको लिखेगा।

मेरे होश फ़ाकता हो गये। पंडिताइन की याद आई। भगवान्, क्या बम्बई में मेरी मिट्टी की दुरदशा [illegible]। आया था कि कुछ कमाकर जाऊंगा; सो यहां जानने पर बीता चाहती है। अभी काशी से चला हूँ तो कोई बात न थी। खासा साठा-पाठा बना हुआ था कि बम्बई का पानी है, और कुछ नहीं। दुबे विजयानन्द ने कहा था, बम्बई का पानी खराब है, जरा संभलकर रहना। लेकिन यह क्या जानता था कि दस-पांच दिन में ही सिल धरे लेता है; लेकिन अब पछताये क्या होता है। चलो, लहू भी दिखा लो, और फिर डर किस बात का है। मर ही तो जायंगे। यहां अमर कौन है। जरा कच्ची गिरस्ती है; यही चिन्ता है। अगर जानता कि अन्त इतना निकट है तो पिछले दो लड़के क्यों होते और तीसरा गर्भ क्यों रहता। लेकिन हरि की इच्छा। तुलसीदास जी ने कहा भी तो है—

सुत बनितादि जानि स्वारथरत न करू नेह सबही ते,
अंतहुं तोहि तजेंगे पामर, तू न तजे अबही ते।

मैं यहां से चला तो दिल बहुत छोटा हो गया था; लेकिन डॉक्टर साहब ने तुरन्त टोका—हमारा फीस बत्तीस रुपये हुआ। सेठजी के पास बिल भेज देगा न?

अगर अभी तक यमराज न आये थे, तो अब आ गये, बत्तीस रुपये फीस! जो उमर में कभी नहीं दी! बैद, डॉक्टर को अमीर लोग पैसा देते हैं? हम शंकर के उपासक तो केवल आशीर्वाद से काम निकालते हैं। काशी में जब कभी काम पड़ता था, डॉक्टर चौधरी, डॉक्टर बनर्जी, डॉ. सेठ आदि जिसके पास चला गया दबाई ले लाया, ऊपर से रुपये-आठ आने बिदाई झटक आया। और यहां जरा-सी परीक्षा की तो बत्तीस रुपये फीस। आंखों तले अंधेरा छा गया; लेकिन फिर सोचा अब तो मर ही रहे हो, रुपये-पैसे के माया मोह में क्यों पड़े हो। बत्तीस रुपये खर्च हुए तो हुए, मालूम तो हो गया कि तपेदिक हो गया है। नहीं यों ही एक दिन चल देते, किसी को पता न चलता। दवा दारू करने की नौबत ही न आती। भला, दवा करने का अवसर मिल गया। और आदमी कमाता ही किसलिए है। लेकिन यह

पूछ लेना आवश्यक मालूम हुआ कि डॉ. सूबेदार को तो कुछ न देना पड़ेगा। अतएवं मैंने इस विषय का प्रश्न किया।

डॉ. साहब जोर से हंसे। बोले—तुम काशी का विद्वान् लोग बड़ा मज़ाक करता है। काशी के एक पंडित को दक्षना देने से सब पंडित तो नहीं परसन हो जायगा। बोले?

हमने कलेजा थामकर पूछा—तो उनकी क्या फीस होगी?

'उसका फीस केवल दस रुपये है।'

मैंने मन में कहा—चलो मन यह दस रुपये भी ग़म खाओ। बम्बई में जो कमाना है, वह सब देकर भी प्राण बचे तो समझना चाहिए, नया जीवन पाया। नहीं यहीं बैठे-बैठे टें हो जायंगे, कोई रोने वाला भी न मिलेगा। उस वक्त ऐसा वैराग्य सवार हुआ कि सब छोड़-छाड़कर निकल भागूं, कबीर का वह पद्य याद आया जिसे पढ़कर मैं कभी-कभी हंसा करता था। धूर्तताई में जीवन कट गया। अब इस काया की क्या दुरदसा होगी भगवान—

दिवाने मन भजन बिना दुख गैहो।
पहिला जन्म भूत का पैहो, सात जनम पंछतै हो;
कीरा पर के पानी पैही, प्यासन की मरि जैहो।
दूजा जनम सुवाका पैहो, बाग बसेरा लैहो;
टूटे पंख बाज मंडराने, अधफड़ प्रान गंवैहो।
बाजीगर के बानर होइहौ, लकड़िन नाच नचैहो;
ऊंच-नीच के हाथ पसरिहौ, मांगे भीख न पैहो।
तेलिन के घर बैला होइहौ, आखिन ढांप ढैपैहौ;
कोस पचास घरै मां चलिहौ, बाहर होन न पैहो।
पांचवां जनम ऊंट का पैहो, बिन ताले बो लदैहो;
बैठे तो उठन न पैहो, धुरच-धुरच मरि जैहो।
धोबी घाट के गदहा होइहौ, कटी घास न पैहो;
लादी लादि आपु चढ़ बैठे लैके घाट पहुंचैहो।

आखिर यही कहना पड़ा कि हां सेठजी के पास बिल भेज देना। फिर वहां का पता पूछता हुआ डॉक्टर सूबेदार के पास पहुंचा। कोई दस बजे गये थे, पेट में मीठा-मीठा दर्द होने लगा था; लेकिन सोचा इस झमेले से निबट लो, फिर विश्वनाथजी की जैसी इच्छा होगी, वह तो होगा ही।

डॉ. सूबेदार युवक-से लगते, कोट-पैन्ट से लैस। मैंने पत्र जो दिया, आपने ले जाकर भीतर के कमरे में लेटा दिया और ऐसे जोर से मेरी बांह से सुई चुभो दिया कि मैं ऐंठकर रह गया। बांह में से रक्त निकल पड़ा। उसने एक शीशे को नलकी में ले लिया और मेरी बांह में कुछ पोतकर एक तीसरी कोठरी में जाकर न जाने क्या करता रहा। फिर आकर बोला—वेल पंडितजी, आपके ब्लड में टी. बी. का जर्म दिखाई देता है। आपको किसी पहाड़ पर जाना होगा और वहां आराम से रहना होगा। आपको पढ़ना-लिखना बन्द करना होगा, लेकिन अभी हम कुछ ठीक-ठीक नहीं कह सकता, आप डॉ. घोड़े पुरकर के पास जाय, वह आपका यूरीन देखेगा। उसका रिपोर्ट लेकर तब हम अपना रिपोर्ट देगा। तब आप डॉक्टर लम्पट के पास जायगा। फिर वह जो कुछ कहेगा, वह आपको करना होगा।

मेरे बदन में आग लग गई। जी में तो आया, मारूं गोली इन डॉक्टरों को और चलकर दो पैसे की हड़ मंगवाकर उसकी फंकी फांक लूं। मरना ही बदा है, तो सारी दुनिया के डॉक्टर भी तो नहीं जिला सकते, लेकिन जान का लोभ बड़ा बलवान होता हैं उनकी चिट्ठी लेकर पता पूछता हुआ चला डॉक्टर घोड़े पुरकर के पास। इसने मुझसे एक चोंगे में लघुशंका करवाई और बड़ी देर तक न जाने क्या करता रहा। फिर मुझे रिपोर्ट लिखकर दी और कहा —डॉ. सूबेदार के पास जाइए। सूबेदार के पास फिर पहुंचा, तो तीन बज गये थे। आपने अपनी रिपोर्ट दी, तो आया डा. लम्पट के पास। डॉक्टर लम्पट ने दोनों रिपोर्टो को बड़े ध्यान से देखा और बोले—मेरा अनुमान ठीक था पण्डितजी, आपको टी. बी. हो गया है।

मैंने सजल-नेत्र होकर पूछा—तो मैं मर जाऊंगा?

'नहीं, नहीं, हम आपको मरने नहीं देगा। आपको पहाड़ पर रहना होगा। अच्छा भोजन करने से आप बच सकता है। आपको अण्डों का सेवन करना होगा।'

मैंने कानों पर हाथ रखकर कहा—क्या कहा, अण्डों का? मैं अण्डे हाथ से नहीं छू सकता, खाने की कौन कहे!

'ओह! यह सब आरथोडाक्सी यहां नहीं चलेगा। तुमको अण्डे खाना होगा।'

'अण्डे मैं किसी तरह नहीं खा सकता।'

'तुम मर जायगा।'

'कोई चिन्ता नहीं'

'हम दवाई देता है, इसे तो पी सकता है।'

'ना! अब न कोई दवा खाऊंगा; न किसी डाक्टर के पास जाऊंगा।'

यह कहकर मैं सेठजी की कोठी पर लौट आया। दिन-भर जो कुछ भोजन न किया था, तो भूख चमचमा उठी थी। बूटी छानी, शौच गया और फिर खूब डटकर भोजन किया।

सहसा सेठजी घबड़ाये हुए आये और बोले—पण्डितजी, क्या आपका मुलाहज़ा किया था लम्पट साहब ने? आपको तो टी. बी. बताते हैं।

मैंने कहा—वह आपके घर आने का पुरस्कार है, और क्या?

'आप आज ही काशी चले जाइए।'

'मैं बिना अनुष्ठान पूरा किये नहीं जा सकता।'

'नहीं, नहीं, कोई दरकार नहीं, आप इसी नौ बजे की गाड़ी से चले जायं।'

मैंने उसकी घबराहट देखी तो समझ गया, वह ब्रह्म हत्या से डर रहा है। बस, फिर क्या था। मेरी लह गई।

मैंने कहा—बिना अनुष्ठान पूरा किये लौट जाने में प्राणों का भय है। इसका उपचार करने में कम-से-कम एक हजार का खरच है। मैं वह कहां से लाऊंगा। फिर मरने से क्या डरना! यहीं मर जाऊंगा तो क्या चिंता।

सेठजी कांपते हुए बोले—नहीं पण्डितजी, आपका जो कुछ खर्च पड़े, वह लीजिए और आज ही चल दीजिए।

बस मुनीमजी बुलाये गये और फिर सौ-सौ के दस नोट मेरे चरणों पर रख दिये। मैंने विश्वनाथजी को धन्यवाद दिया, नोट गांठ में किये और टी. बी. को ऐसा भूला कि वह भी मुझे भूल गया।

4

क्या नाम कि मैं जहां जाता हूं, वहीं कुछ-न-कुछ लोग मेरे पीछे पड़ जाते हैं, और आ-आकर मुझे दिक करते हैं। बम्बई में भी भले आदमियों से गला न छूटा। यह तो होता नहीं कि आकर एक मोहर मेरे चरणों पर रक्खें और तब अपनी कथा सुनाये। बस आकर लगते हैं अपनी कथा सुनाने और चाहते हैं कि सेंत-मेंत में उन्हें अनुष्ठान बता दूं। तो यहा ऐसे उल्लू नहीं हैं। सुनने को सुन लेते हैं, लेकिन अनुष्ठान बताने के लिए पचासों बार दौड़ाते हैं, ऐसा पदाते हैं कि वह भाग खड़ा होता है। जब कोई डॉक्टर सेंत-मेंत में किसी रोगी को नहीं देखता, कोई वकील सेंत में कोई मिसिल नहीं छूता तो मैं क्यों सेंत में अपनी विद्या लुटाता फिरूं? वह विद्या क्या है, यह मैं जानता हूं, उसी तरह जैसे वकील और डॉक्टर अपनी विद्या को जानते हैं; लेकिन भाई, एक दूसरे का पर्दा क्यों खोलो। संसार उसका है, जो उसे बेवकूफ बनाये, जिसे यह कला नहीं आती, वह कौड़ी का तीन है।

कल भंग-बूटी से निपटकर मलाई पर हाथ साफ कर रहा था कि एक सज्जन आकर बैठ गये, कोट, पैंट, कालर, बूट, हैट खासे साहब बहादुर थे। चेहरा लटका हुआ, मानो पत्नी मर गई हो, बोले—आपका नाम पंडित मोटेराम शास्त्री है?

मैंने कहा—हां, मेरा ही नाम है। कहिए, आपकी क्या सेवा करूं?

साहब बहादुर ने जेब से रूमाल निकाला और सिर का पसीना पोंछते हुए कहा—मैं बड़े संकट में पड़ गया हूं महाशय! कुछ अक्ल काम नहीं करती। अब आप ही बेड़ा पार लगाइए तो लगे।

मेरे हृदय में गुदगुदी हुई यह तो कोई शिकार मालूम होता है। बोला—भगवान की दया से सारी बाधाएं दूर हो जायंगी, कुछ चिन्ता मत कीजिए।

'क्या कहूं महोदय, कहते संकोच हो रहा है।'

'संकोच की कोई बात नहीं, सन्तान तो मेरी मुट्ठी में है। कहिए तो बालकों से आपका घर भर दूं। बस एक अनुष्ठान....'

'जी नहीं, बालकों से तो मुझे प्रेम नहीं। मैं सन्तान विरोधी हूं।'

'अच्छा तो क्या धन की इच्छा है?'

'धन की इच्छा किसे न होगी; लेकिन इस वक्त मैं इस हेतु से आपकी सेवा में नहीं आया था।'

'तो कहो न? पौष्टिक अनुष्ठानों की भी मेरे पास कमी नहीं। चूर्ण, अवलेह, गोली, भस्म, आसव, क्वाथ, किसी चीज के सेवन करने की आवश्यकता नहीं, बस पांच बार उस मंत्र का जप करके सो जाइए, फिर उसकी करामात देखिए।'

'मैं इस समय एक दूसरे ही काम से सेवा में आया था।' मुझे कुछ निराशा होने लगी। हत्थे पर चढ़ने वाला नहीं जान पड़ता। फिर भी मैंने दिलासा दिया—जो इच्छा हो वह निस्संकोच कहो।

उसने पूछा—आप उसमें अपना अपमान तो न समझेंगे?

अब मेरे कान खड़े हुए, उत्सुकता और बढ़ी।

'अपमान की बात होगी, तो अवश्य अपमान समझूंगा।'

'बात यह है कि कल सन्ध्या समय मेरे माता-पिता देश से आ गये हैं।'

'बहुत अच्छी बात है तुम्हें उनका आदर-सत्कार करना चाहिए।'

'लेकिन करूं कैसे यह समझ में नहीं आता। कलसे उन्होंने भोजन नहीं किया!'

'भोजन नहीं किया! यह तो बड़ा अनर्थ है। कुछ उदर विकार हो गया है? मैं आयुर्वेद भी जानता हूं।'

'नहीं नहीं शास्त्रीजी, वह तो आपसे भी भारी डीलडौल के हैं।'

'भारी डीलडौल के लोग क्या बीमार नहीं पड़ते?

'पड़ते होंगे; पर फादर कभी बीमार नहीं पड़ते और मदर के सिर में तो कभी दर्द भी नहीं हुआ।'

'तो वह और आप दोनों भाग्यवान् हैं।'

'समस्या यह है कि वे दोनों ही बड़े नेम से रहते हैं।'

'बड़े हर्ष की बात है। आप वास्तव में भाग्यशाली हैं।'

'लेकिन वह मेरे खांसामा के हाथ का भोजन तो नहीं कर सकते!'

'तो एक-दो दिन तुम्हारी स्त्री ही भोजन पका लेगी तो क्या छोटी हो जायंगी? सास-ससुर की सेवा करना ही स्त्री का परम धर्म है।'

'मैं इसे नहीं स्वीकार करता, महोदय। बुरा न मानिएगा। आप सौ बरस की पुरानी बात कह रहे हैं। सास-ससुर को ऐसी जरा-जरा-सी बातों के लिए पुत्र और पुत्रवधु को संकट में न डालना चाहिए। समय बहुत आगे बढ़ गया है। अब ऐसे माता-पिता के लिए स्थान नहीं रहा।'

'यह आप बहुत ठीक कह रहे हैं; लेकिन जब माता-पिता दो-ही चार दिन के लिउ आये हैं, तो स्त्री को थोड़ा-सा कष्ट भी हो तो सह लेना चाहिए।' इस पर सज्जन ने कुछ भौंवें सिकोड़कर कहा—लेकिन भोजन पकाने का उन्हें बिलकुल अभ्यास नहीं है, श्रीमान्! जब कभी खांसामा बैठ रहता है, तो हम लोग होटल में खा लेते हैं। एक बार घर में रुपये न थे, और होटल में नगद दाम देना पड़ता है; इसलिए स्त्री ने सोचा, कुछ पका लें, तो साहब, आटा ऐसा हो गया जैसे गाढ़ा दूध और चावल जलकर कोयला हो गया। उस पर तीन दिन श्रीमतीजी के सिर में दर्द होता रहा। हारकर हमें फांका करना पड़ा। तो साहब, फिर वह विपत्ति नहीं मोल लेना चाहता। न जाने क्यों होटल में खाना खाते इन लोगों की नानी मरती हैं मैं इसे उनकी कोरी जिद समझता हूं। मां-बाप हैं, क्या कहूं। क्या आप इतनी कृपा न करेंगे कि एक-दो दिन जब तक वह लोग यहां रहें, उनका भोजन पका दें? आपको कष्ट तो होगा, लेकिन आप ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण को परोपकार के लिए अपने कष्ट की परवाह नहीं होती।

मेरा खून खौल उठा। जी मैं आया, उठा के पटक दूं, लेकिन मैंने सब्र किया। क्या क़दर की है आपने ब्राह्मण की! और मज़ा यह है कि इस मूर्ख को मुझसे ऐसी बात कहते संकोच भी न हुआ। मुझे चुप देखकर उसने कहा—क्या बुरा मान गये?

मैंने कहा—नहीं, बुरा क्या मानूंगा, लेकिन आपने इस काम के लिए किसी पानी-पांड़े को पकड़ा होता, मुझे आप शायद नहीं जानते?

उसने कहा—मैं आपको खूब जानता हूं, आप काशी के शास्त्री हैं। जब मैं होस्टल में था तो एक काशी के शास्त्री मेरे सहपाठी थे। वह बराबर अपना भोजन आप पकाया करते थे, और जब कभी हमारे मेस का रसोइयादार बीमार पड़ जाता या भाग जाता तो वह मेरा

भोजन पका देते थे और आग्रह करके खिलाते थे। इसीलिए मैंने आपसे यह प्रार्थना की।

मेरे पास इसका क्या जवाब था। पुरखों ने जो कुछ किया है, उसका तावान तो देना ही पड़ेगा।

मैंने कहा—आपकी इच्छा है तो मैं चलकर भोजन बना दूंगा। लेकिन एक शर्त है, अगर आप उसे स्वीकार करें।

'कहिए', कहिए, आप जोकुछ कहेंगे वह मुझे स्वीकार है। आपने आज मेरी लाज रखी ली।'

'मैं रसोई में बैठकर बताता जाऊंगा, काम श्रीमती:जी को करना पड़ेगा।'

'लेकिन उनके सिर में दर्द हुआ तब?'

'उसकी मेरे पास दवा है। सिर में चक्कर आ जाय, आंखों के सामने अंधेरा छा जाय. मैं बात-की-बात में अच्छा कर सकता हूं।'

'और जो उन्हें गर्मी लगे?'

'आप खड़े पंखा झलते रहिएगा।'

'और उन्होंने क्रोध में आकर आपको कुछ कह दिया ?'

'तो मुझे भी क्रोध आ जायगा और क्रोध में मैं लाट साहब को भी कुछ नहीं समझता। हां, इतना कह सकता हूं कि इसके बाद उन्हें फिर कभी क्रोध न आयेगा।'

'और जो उन्होंने बहस शुरू कर दी? उनकी दलीलों का आप जवाब दे सकते हैं?'

'वाह! और मैंने उम्र भर किया क्या है? पहले तो दलील का जवाब दलील से देता हूं। जब इससे काम नहीं चलता तो हाथ-पांव से भी काम ले लेता हूं। कितने ही शास्त्रार्थों में सम्मिलित हुआ हूं और कभी परास्त होकर नहीं आया। बड़े-बड़े महामहोपाध्यायों को गुड़-हल्दी पिलाकर छोड़ दिया है।

सज्जन ने एक क्षण विचार किया और फिर आने का वादा करके चले गये। तब से अब तक सूरत नहीं दिखाई।

[हिन्दी कहानी। साप्ताहिक हिन्दी पत्र 'जागरण', जुलाई, 1934 में प्रकाशित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई। कहानी-संग्रह 'कफन' में संकलित।]

मुफ्त का यश

उन दिनों संयोग से हाकिम-जिला एक रसिक सज्जन थे। इतिहास और पुराने सिक्कों की खोज में उनहोंने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। ईश्वर जाने दफ्तर के सूखे कामों से उन्हें ऐतिहासिक छान-बीन के लिए कैसे समय मिल जाता था। वहाँ तो जब किसी अफसर से पूछिए, तो वह यही कहता है—'मारे काम के मरा जाता हूँ, सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती।' शायद शिकार और सैर भी उनके काम में शामिल है ? उन सज्जन की कीर्तियाँ मैंने देखी थीं और मन में उनका आदर करता था; लेकिन उनकी अफसरी किसी प्रकार की घनिष्ठता में बाधक थी। मुझे यह संकोच था कि अगर मेरी ओर से पहल हुई तो लोग यही

कहेंगे कि इसमें मेरा कोई स्वार्थ है और मैं किसी दशा में भी यह इलजाम अपने सिर नहीं लेना चाहता। मैं तो हुक्काम की दावतों और सार्वजनिक उत्सवों में नेवता देने का भी विरोधी हूँ और जब कभी सुनता हूँ कि किसी अफसर को किसी आम जलसे का सभापति बनाया गया या कोई स्कूल, औषधालय या विधवाश्रम किसी गवर्नर के नाम से खोला गया, तो अपने देश-बन्धुओं की दास-मनोवृत्ति पर घंटों अफसोस करता हूँ; मगर जब एक दिन हाकिम-जिला ने खुद मेरे नाम एक रुक्का भेजा कि मैं आपसे मिलना चाहता हूँ; क्या आप मेरे बँगले पर आने का कष्ट स्वीकार करेंगे, तो मैं बड़े दुविधे में पड़ गया। क्या जवाब दूँ? अपने दो-एक मित्रों से सलाह ली। उन्होंने कहा—'साफ लिख दीजिए, मुझे फुरसत नहीं। वह हाकिम-जिला होंगे, तो अपने घर के होंगे, कोई सरकारी वा जाब्ते का काम होता, तो आपका जाना अनिवार्य था; लेकिन निजी मुलाकात के लिए जाना आपकी शान के खिलाफ है। आखिर वह खुद आपके मकान पर क्यों नहीं आये ? इससे क्या उनकी शान में बट्टा लगा जाता था ? इसीलिए तो खुद नहीं आये कि वह हाकिम-जिला हैं। इन अहमक हिन्दुस्तानियों को कब यह समझ आयेगी कि दफ्तर के बाहर वे भी वैसे ही साधारण मनुष्य हैं, जैसे हम या आप। शायद ये लोग अपनी घरवालियों से भी अफसरी जताते होंगे। अपना पद उन्हें कभी नहीं भूलता।'

एक मित्र ने, जो लतीफों के चलते-फिरते तिजोरी हैं, हिन्दुस्तानी अफसरों के विषय में कई बड़ी मनोरंजक घटनाएँ सुनायीं। एक अफसर साहब ससुराल गये। शायद स्त्री को विदा कराना था। जैसा आम रिवाज है, ससुर जी ने पहले ही वादे पर लड़की को विदा करना उचित न समझा। कहने लगे—बेटा, इतने दिनों के बाद आयी है अभी कैसे विदा कर दूँ ? भला, छः महीने तो रहने दो। उधर धर्मपत्नीजी ने भी नाइन से सन्देश कहला भेजा—अभी मैं नहीं जाना चाहती। आखिर माता-पिता से भी तो मेरा कोई नाता है । कुछ तुम्हारे हाथ बिक थोड़े ही गयी हूँ ? दामाद साहब अफसर थे, जामे से बाहर हो गये। तुरन्त घोड़े पर बैठे और सदर की राह ली। दूसरे ही दिन ससुरजी पर सम्मन जारी कर दिया। बेचारा बूढ़ा आदमी तुरन्त लड़की को साथ लेकर दामाद की सेवा में जा पहुँचा। तब जाके उनकी जान बची। ये लोग ऐसे मिथ्याभिमानी होते हैं और फिर तुम्हें हाकिम-जिला से लेना ही क्या है ? अगर तुम कोई विद्रोहात्मक गल्प वा लेख लिखोगे, तो फौरन गिरफ्तार कर लिये जाओगे। हाकिम-जिला जरा भी मुरौवत न करेंगे। कह देंगे—यह गवर्नमेंट का हुक्म है, मैं क्या करूँ ? अपने लड़के के लिए कानूनगोई या नायब तहसीलदारी की लालसा तुम्हें है नहीं। व्यर्थ क्यों दौड़े जाओ।

लेकिन, मुझे मित्रों की यह सलाह पसन्द न आयी। एक भला आदमी जब निमन्त्रण देता है, तो केवल इसलिए अस्वीकार कर देना कि हाकिम-जिला ने भेजा है, मुटमर्दी है। बेशक हाकिम साहब मेरे घर आ जाते, तो उनकी शान कम न होती। उदार हृदय वाला आदमी बेतकल्लुफ चला आता; लेकिन भाई, जिले की अफसरी बड़ी चीज है। और एक उपन्यासकार की हस्ती ही क्या है। इंगलैंड या अमेरिका में गल्प लेखकों और उपन्यासकारों की मेज पर निमंत्रित होने में प्रधान मन्त्री भी अपना गौरव समझेगा, हाकिम-जिला की तो गिनती ही क्या है ? लेकिन यह भारतवर्ष है, जहाँ हर एक रईस के दरबार में कवि-सम्राटों का जत्था रईस के कीर्तिमान के लिए जमा रहता था और आज भी ताजपोशी में हमारे

लेखक-वृन्द बिना बुलाये राजाओं की खिदमत में हाजिर होते हैं, कसीदे पेश करते हैं और इनाम के लिए हाथ पसारते हैं। तुम ऐसे कहाँ के बड़े वह हो कि हाकिम-जिला तुम्हारे घर चला आये। जब तुममें इतनी अकड़ और तुनुकमिजाज़ी है, तो वह तो जिले का बादशाह है। अगर उसे कुछ अभिमान भी हो तो, उचित है। इसे उसकी कमजोरी कहो, बेहूदगी कहो, मूर्खता कहो, उजड्डता कहो, फिर भी उचित है। देवता होना गर्व की बात है; लेकिन मनुष्य होना भी अपराध नहीं।

और मैं तो कहता हूँ—ईश्वर को धन्यवाद दो कि हाकिम-जिला तुम्हारे घर नहीं आये; वरना तुम्हारी कितनी भद होती। उनके आदर-सत्कार का सामान तुम्हारे पास कहाँ था ? गत की एक कुर्सी भी नहीं है। उन्हें क्या तीन टाँगोंवाले सिंहासन पर बैठाते या मटमैले जाजिम पर ? तीन पैसे की चौबीस बीड़ियाँ पीकर दिल खुश कर लेते हो। है सामर्थ्य रुपये के दो सिगार खरीदने की ? तुम तो इतना भी नहीं जानते कि वह सिगार मिलता कहाँ है; उसका नाम क्या है। अपना भाग्य सराहो कि अफसर साहब तुम्हारे घर नहीं आये और तुम्हें बुला लिया। चार-पाँच रुपये बिगड़ भी जाते और लज्जित भी होना पड़ता। और कहीं तुम्हारे परम दुर्भाग्य और पापों के दण्ड स्वरूप उनकी धर्मपत्नी भी उनके साथ होतीं, तब तो तुम्हें धरती में समा जाने के सिवा और कोई ठिकाना न था। तुम या तुम्हारी धर्मपत्नी उस महिला का सत्कार कर सकती थी ? तुम्हारी तो घिग्घी बँध जाती साहब, बदहवास हो जाते! वह तुम्हारे दीवानखाने तक ही न रहती जिसे तुमने गरीबामऊ ढंग से सजा रखा है। वहाँ तुम्हारी गरीबी अवश्य है, पर फूहड़पन नहीं। अन्दर तो पग-पग पर फूहड़पन के दृश्य नजर आते। तुम अपने में फटे पुराने पहनकर और अपनी विपन्नता में मगन रहकर जिन्दगी बसर कर सकते हो; लेकिन कोई भी आत्माभिमानी आदमी यह पसन्द नहीं कर सकता कि उसकी दुरावस्था दूसरों के लिए विनोद की वस्तु बने। इन लेडी साहबा के सामने तो तुम्हारी जबान बंद हो जाती।

चुनाँचे मैंने हाकिम-जिला का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और यद्यपि उनके स्वभाव में कुछ अनावश्यक अफसरी की शान थी; लेकिन उनके स्नेह और उदारता ने उसे यथासाध्य प्रकट न होने दिया। कम-से-कम उन्होंने मुझे शिकायत का कोई मौका न दिया। अफ़सराना प्रकृति को तब्दील करना उनकी शक्ति के बाहर था।

मुझे इस प्रसंग को कोई महत्त्व देने की कोई बात भी न थी, महत्त्व न दिया। उन्होंने मुझे बुलाया, मैं चला गया। कुछ गप-शप किया और लौट आया। किसी से इसकी जिक्र करने की जरूरत ही क्या ? मानो भाजी खरीदने बाजार गया था।

लेकिन टोहियों ने जाने कैसे टोह लगा लिया। विशेष समुदायों में यह चर्चा होने लगी कि हाकिम-जिला से मेरी बड़ी गहरी मैत्री है और वह मेरा बड़ा सम्मान करते हैं। अतिशयोक्ति ने मेरा सम्मान और भी बढ़ा दिया। यहाँ तक मशहूर हुआ कि वह मुझसे सलाह लिये बगैर कोई फैसला या रिपोर्ट नहीं लिखते।

कोई भी समझदार आदमी इस ख्याति से लाभ उठा सकता था। स्वार्थ में आदमी बावला हो जाता है। तिनके का सहारा ढूँढ़ता फिरता है। ऐसों को विश्वास दिलाना कुछ मुश्किल न था कि मेरे द्वारा उनका काम निकल सकता है, लेकिन मैं ऐसी बातों से घृणा करता हूँ ? सैकड़ों व्यक्ति अपनी कथाएँ लेकर मेरे पास आये। किसी के साथ पुलिस ने

बेजा ज्यादती की थी। कोई इन्कम टैक्स वालों की सख्तियों से दुःखी था, किसी की यह शिकायत थी कि दफ्तर में उसकी हकतलफी हो रही है और उसके पीछे के आदमियों को दनादन तरक्कियाँ मिल रही हैं। उसका नम्बर आता है, तो कोई परवाह नहीं करता। इस तरह का कोई-न-कोई प्रसंग नित्य ही मेरे पास आने लगा, लेकिन मेरे पास उन सबके लिए एक ही जवाब था—मुझसे कोई मतलब नहीं।

एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा था, कि मेरे बचपन के एक सहपाठी मित्र आ टपके। हम दोनों एक ही मकतब में पढ़ने जाया करते थे। कोई पैतालिस साल की पुरानी बात है। मेरी उम्र उन्नीस साल से अधिक न थी। वह भी लगभग इसी उम्र के रहे होंगे; लेकिन मुझसे कहीं बलवान और हृष्ट-पुष्ट। मैं जहीन था, वह निरे कौदन। मौलवी साहब उनसे हार गये थे और उन्हें सबक पढ़ाने का भार मुझ पर डाल दिया था। अपने से दुगुने व्यक्ति को पढ़ाना मैं अपने लिए गौरव की बात समझता था और खूब मन लगा कर पढ़ाता था। फल यह हुआ कि मौलवी साहब की छड़ी जहाँ असफल रही, वहाँ मेरा प्रेम सफल हो गया। बलदेव चल निकला, खालिकबारी तक जा पहुँचा, मगर इस बीच में मौलवी साहब का स्वर्गवास हो गया और वह शाखा टूट गयी। उनके छात्र भी इधर-उधर हो गये। तब से बलदेव को केवल मैंने दो-तीन बार रास्ते में देखा, (मैं अब भी वही सींकिया पहलवान हूँ और वह अब भी वही भीमकाय) राम-राम हुई, क्षेम-कुशल पूछा और अपनी-अपनी राह चले गये।

मैंने उनसे हाथ मिलाते हुए कहा—आओ भाई बलदेव, मजे में तो हो ? कैसे याद किया, क्या करते हो आजकल ?

बलदेव ने व्यथित कंठ से कहा—जिन्दगी के दिन पूरे कर रहे हैं भाई, और क्या। तुमसे मिलने की बहुत दिनों से इच्छा थी। याद करो वह मकतबवाली बात, जब तुम मुझे पढ़ाया करते थे। तुम्हारी बदौलत चार अक्षर पढ़ गया और अपनी जमींदारी का काम सँभाल लेता हूँ, नहीं तो मूर्ख ही बना रहता। तुम मेरे गुरु हो भाई, सच कहता हूँ; मुझ-जैसे गधे को पढ़ाना तुम्हारा ही काम था। न-जाने क्या बात थी कि मौलवी साहब से सबक पढ़कर अपनी जगह पर आया नहीं कि बिलकुल साफ। तुम जो पढ़ाते थे, वह बिना याद किये ही याद हो जाता था। तुम तब भी बड़े जहीन थे।

यह कहकर उन्होंने मुझे सगर्व-नेत्रों से देखा।

मैं बचपन के साथियों को देखकर फूल उठता हूँ। सजल नेत्र होकर बोला—मैं तो जब तुम्हें देखता हूँ, तो यही जी में आता है कि दौड़कर तुम्हारे गले लिपट जाऊँ। 45 वर्ष का युग मानो बिलकुल गायब हो जाता है। वह मकतब आँखों के सामने फिरने लगता है और बचपन सारी मनोहरताओं के साथ ताजा हो जाता है।

बलदेव ने भी द्रवित कंठ से उत्तर दिया—मैंने तो भाई, तुम्हें सदैव अपना इष्टदेव समझा है। जब तुम्हें देखता हूँ, तो छाती गज-भर की हो जाती है कि वह मेरा बचपन का संगी जा रहा है, जो समय आ पड़ने पर कभी-दगा न देगा। तुम्हारी बड़ाई सुन-सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो जाता हूँ, लेकिन यह बताओ, क्या तुम्हें खाना नहीं मिलता ? कुछ खाते-पीते क्यों नहीं ? सूखते क्यों जाते हो ? घी न मिलता हो, तो दो-चार कनस्तर भिजवा

दूँ। अब तुम भी बूढ़े हुए, खूब डटकर खाया करो। अब तो देह में जो कुछ तेज और बल है, वह केवल भोजन के अधीन है। मैं तो अब भी सेर-भर दूध और पाव-भर घी उड़ाये जाता हूँ। इधर थोड़ा मक्खन भी खाने लगा हूँ। जिन्दगी-भर बाल-बच्चों के लिए मर मिटे। अब कोई यह नहीं पूछता कि तुम्हारी तबियत कैसी है। अगर आज कंधा डाल दूँ, तो कोई एक लोटे पानी को न पूछे। इसलिए खूब खाता हूँ और सबसे ज्यादा काम करता हूँ। घर पर अपना रोब बना हुआ है। वही जो तुम्हारा जेठा लड़का है, उस पर पुलिस ने एक झूठा मुकदमा चला दिया है। जवानी के मद में किसी को कुछ समझता नहीं है। है भी अच्छा खासा पहलवान। दारोगाजी से एक बार कुछ कहा-सुनी हो गयी। तब से घात में लगे हुए थे। इधर गाँव में एक डाका पड़ गया। दारोगाजी ने तहकीकात में उसे भी फाँस लिया। आज एक सप्ताह से हिरासत में है। मुकदमा मुहम्मद खलील, डिप्टी के इजलास में है और मुहम्मद खलील और दारोगाजी से दाँत-काटी रोटी है। अवश्य सजा हो जायगी। अब तुम्हीं बचाओ, तो उसकी जान बच सकती है। और कोई आशा नहीं है। सजा तो जो होगी वह होगी ही; इज्जत भी खाक में मिल जायगी। तुम जाकर हाकिम-जिला से इतना कह दो कि मुकदमा झूठा है, आप खुद चलकर तहकीकात कर लें ! बस, देखो भाई, बचपन के साथी हो, 'नहीं' न करना। जानता हूँ, तुम इन मुआमलों में नहीं पड़ते और तुम्हारे-जैसे आदमी को पड़ना भी न चाहिए। तुम प्रजा की लड़ाई लड़ने वाले जीव हो, तुम्हें सरकार के आदमियों से मेल-जोल बढ़ाना उचित नहीं; नहीं तो जनता की नजरों से गिर जाओगे। लेकिन यह घर का मुआमला है। इतना समझ लो कि मुआमला बिलकुल झूठ न होता, तो मैं कभी तुम्हारे पास न आता। लड़के की माँ रो-रोकर जान दिये डालती है, बहू ने दाना-पानी छोड़ रखा है। सात दिन से घर में चूल्हा नहीं जला। मैं तो थोड़ा सा-दूध पी लेता हूँ, लेकिन दोनों सास-बहू तो निराहार पड़ी हुई हैं, अगर बच्चा को सजा हो गयी, तो दोनों मर जायँगी। मैंने यही कहकर उन्हें ढाढस दिया है कि जब तक हमारा छोटा भाई सलामत है, कोई हमारा बाल बाँका नहीं कर सकता। तुम्हारी भाभी ने तुम्हारी एक पुस्तक पढ़ी है। वह तो तुम्हें देवतुल्य समझती है और जब कोई बात होती है, तुम्हारी नजीर देकर मुझे लज्जित करती है। मैं भी साफ कह देता हूँ—मैं उस छोकरे की-सी बुद्धि कहाँ से लाऊँ ? तुम्हें उसकी नजरों से गिराने के लिए तुम्हें छोकरा, मरियल सभी कुछ कहता हूँ, पर तुम्हारे सामने मेरा रंग नहीं जमता।

मैं बड़े संकट में पड़ गया। मेरी ओर से जितनी आपत्तियाँ हो सकती थीं, उन सबका जवाब बलदेवसिंह ने पहले ही से दे दिया था। इनको फिर दुहराना व्यर्थ था। इसके सिवा कोई जवाब न सूझा कि मैं आकर साहब से कहूँगा। हाँ, इतना मैंने अपनी तरफ से और बढ़ा दिया कि मुझे आशा नहीं कि मेरे कहने का विशेष खयाल किया जाय, क्योंकि सरकारी मुआमलों में हुक्काम हमेशा अपने मातहतों का पक्ष लिया करते हैं।

बलदेवसिंह ने प्रसन्न होकर कहा—इसकी चिन्ता नहीं, तकदीर में जो लिखा है, वह तो होगा ही। बस, तुम जाकर कह भर दो।

'अच्छी बात है।'

'तो कल जाओगे ?'

'हाँ अवश्य, जाऊँगा ?'

'यह जरूर कहना कि आप चलकर तहकीकात कर लें।'

'हाँ, यह जरूर कहूँगा।'

'और यह भी कह देना कि बलदेवसिंह मेरा भाई है।'

'झूठ बोलने के लिए मुझे मजबूर न करो।'

'तुम मेरे भाई नहीं हो ? मैंने तो हमेशा तुम्हें अपना भाई समझा है।'

'अच्छा, यह भी कह दूँगा।'

बलदेवसिंह को विदा करके मैंने अपना खेल समाप्त किया और आराम से भोजन करके लेटा। मैंने उससे गला छुड़ाने के लिए झूठा वादा कर दिया। मेरा इरादा हाकिम-जिला से कुछ कहने का नहीं था। मैंने पेशबन्दी के तौर पर पहले ही जता दिया था कि हुक्काम आमतौर पर पुलिस के मुआमलों में दखल नहीं देते; इसलिए सजा हो भी गयी, तो मुझे यह कहने की काफी गुंजाइश थी कि साहब ने मेरी बात स्वीकार नहीं की।

कई दिन गुजर गये थे। मैं इस वाकिये को बिलकुल भूल गया था। सहसा एक दिन बलदेवसिंह अपने पहलवान बेटे के साथ मेरे कमरे में दाखिल हुए। बेटे ने मेरे चरणों पर सिर रख दिया और अदब से एक किनारे खड़ा हो गया। बलदेवसिंह बोले—बिलकुल बरी हो गया भैया ! साहब ने दारोगा को बुलाकर खूब डाँटा कि तुम भले आदमियों को सताते और बदनाम करते हो ! अगर फिर ऐसा झूठा मुकदमा लाये, तो बर्खास्त कर दिये जाओगे। दारोगाजी बहुत झेंपे। मैंने उन्हें झुककर सलाम किया। बचा पर घड़ों पानी पड़ गया। यह तुम्हारी सिफारिश का चमत्कार है, भाईजान ! अगर तुमने मदद न की होती, तो हम तबाह हो गये थे। यह समझ लो कि तुमने चार प्राणियों की जान बचा ली। मैं तुम्हारे पास बहुत डरते-डरते आया था। लोगों ने कहा था—उनके पास नाहक जाते हो, वह बड़ा बेमुरौवत आदमी है, उसकी जात से किसी का उपकार नहीं हो सकता। आदमी वह है; जो दूसरों का हित करे। वह क्या आदमी है, जो किसी की कुछ सुने ही नहीं ! लेकिन भाईजान, मैंने किसी की बात न मानी। मेरे दिल में मेरा राम बैठा कह रहा था—तुम चाहे कितने ही रूखे और बेलाग हो; लेकिन मुझपर अवश्य दया करोगे।

यह कहकर बलदेवसिंह ने अपने बेटे को इशारा किया। वह बाहर गया और एक बड़ा-सा गट्ठर उठा लाया, जिसमें भाँति-भाँति की देहाती सौगातें बँधी हुई थीं। हालाँकि मैं बराबर कहे जाता था—तुम ये चीज़ें नाहक लाये, इनकी क्या जरूरत थी, कितने गँवार हो, आखिर तो ठहरे देहाती, मैंने कुछ नहीं कहा, मैं तो साहब के पास गया भी नहीं, लेकिन कौन सुनता है। खोया, दही, मटर की फलियाँ, अमावट, ताजा गुड़ और जाने क्या-क्या आ गया।

मैंने कहने को तो एक तरह से कह दिया—मैं साहब के पास गया ही नहीं, जो कुछ हुआ, खुद हुआ, मेरा कोई एहसान नहीं है, लेकिन उसका मतलब यह निकाला गया कि मैं केवल नम्रता से और सौगातों को लौटा देने का कोई बहाना ढूँढ़ने के लिए ऐसा कह रहा हूँ। मुझे इतनी हिम्मत न हुई कि मैं इस बात का विश्वास दिलाता। इसका जो अर्थ निकाला गया, वही मैं चाहता था। मुफ्त का एहसान छोड़ने का जी न चाहता था, अन्त में जब मैंने जोर देकर कहा कि किसी से इस बात का जिक्र न करना, नहीं तो मेरे पास फरियादों का

मेला लग जायगा, तो मानो मैंने स्वीकार कर लिया कि मैंने सिफारिश की—और जोरों से की।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अगस्त, 1934 में प्रकाशित। मानसरोवर भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'मुफ्त करम, दाश्तन' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'वारदात' में संकलित।]

बासी भात में खुदा का साझा

शाम को जब दीनानाथ ने घर आकर गौरी से कहा कि मुझे एक कार्यालय में पचास रुपये की नौकरी मिल गई है, तो गौरी खिल उठी। देवताओं में उसकी आस्था और भी दृढ़ हो गयी। इधर एक साल से बुरा हाल था। न कोई रोजी न रोजगार। घर में जो थोड़े-बहुत गहने थे, वह बिक चुके थे। मकान का किराया सिर पर चढ़ा हुआ था। जिन मित्रों से कर्ज मिल सकता था, सबसे ले चुके थे। साल-भर का बच्चा दूध के लिए बिलख रहा था। एक वक्त का भोजन मिलता, तो दूसरे जून की चिन्ता होती। तकाजों के मारे बेचारे दीनानाथ को घर से निकलना मुश्किल था। घर से निकला नहीं, कि चारों ओर से चिथाड़ मच जाती—वाह बाबूजी, वाह ! दो दिन का वादा कर के ले गये और आज दो महीने से सूरत नहीं दिखायी ! भाई साहब, यह तो अच्छी बात नहीं, आपको अपनी जरूरत का खयाल है, मगर दूसरों की जरूरत का जरा भी खयाल नहीं? इसी से कहा है, दुश्मन को चाहे कर्ज दे दो, दोस्त को कभी न दो। दीनानाथ को ये वाक्य तीरों-से लगते थे और उसका जी चाहता था कि जीवन का अन्त कर डाले, मगर बेजबान स्त्री और अबोध बच्चे का मुँह देखकर कलेजा थाम के रह जाता। बारे, आज भगवान् ने उस पर दया की और संकट के दिन कट गये।

गौरी ने प्रसन्नमुख होकर कहा—मैं कहती थी कि नहीं, ईश्वर सबकी सुधि लेते हैं। और कभी-न-कभी हमारी भी सुधि लेंगे, मगर तुमको विश्वास ही न आया था। बोलो, अब तो ईश्वर की दयालुता के कायल हुए ?

दीनानाथ ने हठधर्मी करते हुए कहा—यह मेरी दौड़-धूप का नतीजा है, ईश्वर की क्या दयालुता ? ईश्वर को तो तब जानता, जब कहीं से छप्पर फाड़कर भेज देते।

लेकिन मुँह से चाहे कुछ कहे, ईश्वर के प्रति उसके मन में श्रद्धा उदय हो गयी थी।

2

दीनानाथ का स्वामी बड़ा ही रूखा आदमी था और काम में बड़ा चुस्त। उसकी उम्र पचास के लगभग थी और स्वास्थ्य भी अच्छा न था, फिर भी वह कार्यालय में सबसे ज्यादा काम करता। मजाल न थी कि कोई आदमी एक मिनट की भी देर करे, या एक मिनट भी समय के पहले चला जाय। बीच में पन्द्रह मिनट की छुट्टी मिलती थी, उसमें जिसका जी चाहे पान खा ले, या सिगरेट पी ले या जलपान कर ले। इसके अलावा एक मिनट का अवकाश

न मिलता था। वेतन पहली तारीख को मिल जाता था। उत्सवों में भी दफ्तर बंद रहता था और नियत समय के बाद कभी काम न लिया जाता था। सभी कर्मचारियों को बोनस मिलता था और प्रॉविडेन्ट फंड की भी सुविधा थी। फिर भी कोई आदमी खुश न था। काम या समय की पाबन्दी की किसी को शिकायत न थी। शिकायत थी केवल स्वामी के शुष्क व्यवहार की। कितना ही जी लगाकर काम करो, कितना ही प्राण दे दो, पर उसके बदले धन्यवाद का एक शब्द भी न मिलता था।

कर्मचारियों में और कोई सन्तुष्ट हो या न हो, दीनानाथ को स्वामी से कोई शिकायत न थी। वह घुड़कियाँ और फटकार पाकर भी शायद उतने ही परिश्रम से काम करता था। साल-भर में उसने कर्ज चुका दिये और कुछ संचय भी कर लिया। वह उन लोगों में था, जो थोड़े में भी संतुष्ट रह सकते हैं—अगर नियमित रूप से मिलता जाय। एक रुपया भी किसी खास काम में खर्च करना पड़ता, तो दम्पती में घंटों सलाह होती और बड़े झाँव-झाँव के बाद कहीं मंजूरी मिलती थी। बिल गौरी की तरफ से पेश होता, तो दीनानाथ विरोध में खड़ा होता। दीनानाथ की तरफ से पेश होता, तो गौरी उसकी कड़ी आलोचना करती। बिल को पास करा लेना प्रस्तावक की जोरदार वकालत पर मुनहसर था। सर्टिफाई करने वाली कोई तीसरी शक्ति वहाँ न थी।

और दीनानाथ अब पक्का आस्तिक हो गया था। ईश्वर की दया या न्याय में अब उसे कोई शंका न थी! नित्य संध्या करता और नियमित रूप से गीता का पाठ करता। एक दिन उसके एक नास्तिक मित्र ने जब ईश्वर की निन्दा की, तो उसने कहा—भाई, इसका तो आज तक निश्चय नहीं हो सका ईश्वर है या नहीं। दोनों पक्षों के पास इस्पात की-सी दलीलें मौजूद हैं; लेकिन मेरे विचार में नास्तिक रहने से आस्तिक रहना कहीं अच्छा है। अगर ईश्वर की सत्ता है, तब तो नास्तिकों को नरक के सिवा कहीं ठिकाना नहीं। आस्तिक के दोनों हाथों में लड्डू है। ईश्वर है तो पूछना ही क्या, नहीं है, तब भी क्या बिगड़ता है। दो-चार मिनट का समय ही तो जाता है ?

नास्तिक मित्र इस दोरुखी बात पर मुँह बिचकाकर चल दिये।

3

एक दिन जब दीनानाथ शाम को दफ्तर से चलने लगा, तो स्वामी ने उसे अपने कमरे में बुला भेजा और बड़ी खातिर से उसे कुर्सी पर बैठाकर बोला—तुम्हें यहाँ काम करते कितने दिन हुए ? साल-भर तो हुआ ही होगा ?

दीनानाथ ने नम्रता से कहा—जी हाँ, तेरहवाँ महीना चल रहा है।

'आराम से बैठो, इस वक्त घर जाकर जलपान करते हो ?'

'जी नहीं, मैं जलपान का आदी नहीं।'

'पान-वान तो खाते ही होगे ? जवान आदमी होकर अभी से इतना संयम।'

यह कहकर उसने घण्टी बजायी और अर्दली से पान और कुछ मिठाइयाँ लाने को कहा।

दीनानाथ को शंका हो रही थी—आज इतनी खातिरदारी क्यों हो रही है। कहाँ तो सलाम भी नहीं लेते थे, कहाँ आज मिठाई और पान सभी कुछ मँगाया जा रहा है ! मालूम

होता है मेरे काम से खुश हो गये हैं। इस खयाल से उसे कुछ आत्मविश्वास हुआ और ईश्वर की याद आ गयी। अवश्य परमात्मा सर्वदर्शी और न्यायकारी है; नहीं तो मुझे कौन पूछता ?

अर्दली मिठाई और पान लाया। दीनानाथ आग्रह से विवश होकर मिठाई खाने लगा।

स्वामी ने मुस्कराते हुए कहा--तुमने मुझे बहुत रूखा पाया होगा। बात यह है कि हमारे यहाँ अभी तक लोगों को अपनी जिम्मेदारी का इतना कम ज्ञान है कि अफसर जरा भी नर्म पड़ जाय, तो लोग उसकी शराफत का अनुचित लाभ उठाने लगते हैं और काम खराब होने लगता है। कुछ ऐसे भाग्यशाली हैं, जो नौकरों से हेल-मेल भी रखते हैं, उनसे हँसते-बोलते भी हैं, फिर भी नौकर नहीं बिगड़ते, बल्कि और भी दिल लगाकर काम करते हैं। मुझमें वह कला नहीं है, इसलिए मैं अपने आदमियों से कुछ अलग-अलग रहना ही अच्छा समझता हूँ। और अब तक मुझे इस नीति से कोई हानि भी नहीं हुई; लेकिन मैं आदमियों का रंग-ढंग देखता रहता हूँ और सब को परखता रहा हूँ। मैंने तुम्हारे विषय में जो मत स्थिर किया है; वह यह है कि तुम वफादार हो और मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास कर सकता हूँ, इसलिए मैं तुम्हें ज्यादा जिम्मेदारी का काम देना चाहता हूँ, जहाँ तुम्हें खुद बहुत कम काम करना पड़ेगा, केवल निगरानी करनी पड़ेगी। तुम्हारी वेतन में पचास रुपये की और तरक्की हो जायेगी। मुझे विश्वास है, तुमने अब तक जितनी तनदेही से काम किया है, उससे भी ज्यादा तनदेही से आगे करोगे।

दीनानाथ की आँखों में आँसू भर आये और कण्ठ की मिठाई कुछ नमकीन हो गयी। जी में आया, स्वामी के चरणों पर सिर रख दे और कहे--आपकी सेवा के लिए मेरी जान हाजिर है। आपने मेरा जो सम्मान बढ़ाया है, मैं उसे निभाने में कोई कसर न उठा रखूँगा; लेकिन स्वर काँप रहा था और वह केवल कृतज्ञता-भरी आँखों से देखकर रह गया।

सेठजी ने एक मोटा-सा लेजर निकालते हुए कहा--मैं एक ऐसे काम में तुम्हारी मदद चाहता हूँ, जिस पर इस कार्यालय का सारा भविष्य टिका हुआ है। इतने आदमियों में मैंने केवल तुम्हीं को विश्वास-योग्य समझा है। और मुझे आशा है कि तुम मुझे निराश न करोगे। यह पिछले साल का लेजर है और इसमें कछ ऐसी रकमें दर्ज हो गयी हैं; जिनके अनुसार कम्पनी को कई हजार लाभ होता है, लेकिन तुम जानते हो, हम कई महीनों से घाटे पर काम कर रहे हैं। जिस क्लर्क ने यह लेजर लिखा था, उसकी लिखावट तुम्हारी लिखावट से बिलकुल मिलती है। अगर दोनों लिखावटें आमने-सामने रख दी जायँ, तो किसी विशेषज्ञ को भी उनमें भेद करना कठिन हो जायेगा। मैं चाहता हूँ, तुम लेजर में एक पृष्ठ फिर से लिखकर जोड़ दो और उसी नम्बर का पृष्ठ उसमें से निकाल लो। मैंने पृष्ठ का नम्बर छपवा लिया है; एक दफ्तरी भी ठीक कर लिया है, जो रात भर में लेजर की जिल्दबन्दी कर देगा। किसी को पता तक न चलेगा। जरूरत सिर्फ यह है कि तुम अपनी कलम से उस पृष्ठ की नकल कर दो।

दीनानाथ ने शंका की--जब उस पृष्ठ की नकल ही करनी है, तो उसे निकालने की क्या जरूरत है ?

सेठजी हँसे--तो क्या तुम समझते हो, उस पृष्ठ की हूबहू नकल करनी होगी ! मैं कुछ रकमों में परिवर्तन कर दूँगा। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं केवल कार्यालय की

भलाई के खयाल से यह कार्रवाई कर रहा हूँ। अगर यह रद्दोबदल न किया गया, तो कार्यालय के एक सौ आदमियों की जीविका में बाधा पड़ जायगी। इसमें कुछ सोच-विचार करने की जरूरत ही नहीं। केवल आध घंटे का काम है। तुम बहुत तेज लिखते हो।

कठिन समस्या थी। स्पष्ट था कि उससे जाल बनाने को कहा जा रहा है। उसके पास इस रहस्य के पता लगाने का कोई साधन न था कि सेठजी जो कुछ कह रहे हैं, वह स्वार्थवश होकर या कार्यालय की रक्षा के लिए; लेकिन किसी दशा में भी है यह जाल, घोर जाल। क्या वह अपनी आत्मा की हत्या करेगा ? नहीं; किसी तरह नहीं।

उसने डरते-डरते कहा—मुझे आप क्षमा करें, मैं यह काम न कर सकूँगा।

सेठजी ने उसी अविचलित मुस्कान के साथ पूछा—क्यों ?

'इसलिए कि यह सरासर जाल है।'

'जाल किसे कहते हैं ?'

'किसी हिसाब में उलटफेर करना जाल है।'

'लेकिन उस उलटफेर से एक सौ आदमियों की जीविका बनी रहे, तो इस दशा में भी वह जाल है ? कम्पनी की असली हालत कुछ और है, कागजी हालत कुछ और; अगर यह तब्दीली न की गयी, तो तुरन्त कई हजार रुपये नफे के देने पड़ जायँगे और नतीजा यह होगा कि कम्पनी का दिवाला हो जायगा और सारे आदमियों को घर बैठना पड़ेगा। मैं नहीं चाहता कि थोड़े से मालदार हिस्सेदारों के लिए इतने गरीबों का खून किया जाय। परोपकार के लिए कुछ जाल भी करना पड़े, तो वह आत्मा की हत्या नहीं है।'

दीनानाथ को कोई जवाब न सूझा। अगर सेठजी का कहना सच है और इस जाल से सौ आदमियों की रोजी बनी रहे तो वास्तव में वह जाल नहीं, कठोर कर्तव्य है; अगर आत्मा की हत्या होती भी हो, तो सौ आदमियों की रक्षा के लिए उसकी परवाह न करनी चाहिए, लेकिन नैतिक समाधान हो जाने पर अपनी रक्षा का विचार आया। बोला—लेकिन कहीं मुआमला खुल गया, तो मैं मिट जाऊँगा। चौदह साल के लिए काले पानी भेज दिया जाऊँगा।

सेठ ने जोर से कहकहा मारा—अगर मुआमला खुल गया, तो तुम न फँसोगे, मैं फँसूँगा। तुम साफ इनकार कर सकते हो।

'लिखावट तो पकड़ी जायगी ?'

'पता ही कैसे चलेगा कि कौन पृष्ठ बदला गया, लिखावट तो एक-सी है।

दीनानाथ परास्त हो गया। उसी वक्त उस पृष्ठ की नकल करने लगा।

4

फिर भी दीनानाथ के मन में चोर पैदा हुआ था। गौरी से इस विषय में वह एक शब्द भी न कह सका।

एक महीने के बाद उसकी तरक्की हुई। सौ रुपये मिलने लगे। दो सौ बोनस के भी मिले।

यह सब कुछ था, घर में खुशहाली के चिह्न नजर आने लगे; लेकिन दीनानाथ का अपराधी मन एक बोझ से दबा रहता था। जिन दलीलों से सेठजी ने उसकी जुबान बन्द

कर दी थी, उन दलीलों से गौरी को सन्तुष्ट कर सकने का उसे विश्वास न था।

उसकी ईश्वर-निष्ठा उसे सदैव डराती रहती थी। इस अपराध का कोई भयंकर दंड अवश्य मिलेगा। किसी प्रायश्चित्त, किसी अनुष्ठान से उसे रोकना असम्भव है। अभी न मिले; साल-दो साल न मिले, दस-पाँच साल न मिले; पर जितनी ही देर में मिलेगा, उतना ही भयंकर होगा, मूलधन ब्याज के साथ बढ़ता जायेगा। वह अक्सर पछताता, मैं क्यों सेठजी के प्रलोभन में आ गया। कार्यालय टूटता या रहता, मेरी बला से; आदमियों की रोजी जाती या रहती, मेरी बला से; मुझे तो यह प्राण-पीड़ा न होती, लेकिन अब तो जो कुछ होना था हो चुका और दंड अवश्य मिलेगा। इस शंका ने उसके जीवन का उत्साह, आनन्द और माधुर्य सब कुछ हर लिया।

मलेरिया फैला हुआ था। बच्चे को ज्वर आया। दीनानाथ के प्राण नहों में समा गये। दण्ड का विधान आ पहुँचा। कहाँ जाय, क्या करे, जैसे बुद्धि भ्रष्ट हो गयी।

गौरी ने कहा—जाकर कोई दवा लाओ, या किसी डॉक्टर को दिखा दो, तीन दिन तो हो गये।

दीनानाथ ने चिन्तित मन से कहा—हाँ, जाता हूँ, लेकिन मुझे बड़ा भय लग रहा है।

'भय की कौन-सी बात है, बेबात की बात मुँह से निकालते हो। आजकल किसे ज्वर नहीं आता ?'

'ईश्वर इतना निर्दयी क्यों है ?'

'ईश्वर निर्दयी है पापियों के लिए। हमने किसका क्या हर लिया है ?'

'ईश्वर पापियों को कभी क्षमा नहीं करता ?'

'पापियों को दण्ड न मिले, तो संसार में अनर्थ हो जाय।'

'लेकिन आदमी ऐसे काम भी तो करता है, जो एक दृष्टि से पाप हो सकते हैं, दूसरी दृष्टि से पुण्य।'

'मैं नहीं समझी।'

'मान लो, मेरे झूठ बोलने से किसी की जान बचती हो, तो क्या वह पाप है ?'

'मैं तो समझती हूँ, ऐसा झूठ पुण्य है।'

'तो जिस पाप से मनुष्य का कल्याण हो, वह पुण्य है ?'

'और क्या।'

दीनानाथ की अमंगल शंका थोड़ी देर के लिए दूर हो गयी। डॉक्टर को बुला लाया, इलाज शुरू किया, बालक एक सप्ताह में चंगा हो गया।

मगर थोड़े दिन बाद वह खुद बीमार पड़ा। वह अवश्य ही ईश्वरीय दण्ड है और वह बच नहीं सकता। साधारण मलेरिया ज्वर था; पर दीनानाथ की दण्ड-कल्पना ने उसे सन्निपात का रूप दे दिया। ज्वर में, नशे की हालत की तरह यों भी कल्पनाशक्ति तीव्र हो जाती है। पहले केवल मनोगत शंका थी, वह भीषण सत्य बन गयी। कल्पना ने यमदूत रच डाले, उनके भाले और गदाएँ रच डालीं, नरक का अग्निकुण्ड दहका दिया। डॉक्टर की एक घूँट दवा एक हजार मन की गदा के आवाज और आग के उबलते हुए समुद्र के दाह पर क्या असर करती ? दीनानाथ मिथ्यावादी न था। पुराणों की रहस्यमय कल्पनाओं में उसे विश्वास न था। न हीं, वह बुद्धिवादी था और ईश्वर में भी तभी उसे विश्वास आया, जब

उसकी तर्कबुद्धि कायल हो गयी। लेकिन ईश्वर के साथ उसकी दया भी आयी, उसका दण्ड भी आया। दया ने उसे रोजी दी, मान दिया। ईश्वर की दया न होती, तो शायद वह भूखों मर जाता, लेकिन भूखों मरना अग्निकुण्ड में ढकेल दिये जाने से कहीं सरल था, खेल था। दण्ड-भावना जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार से ऐसी बद्धमूल हो गयी थी, मानो उसकी बुद्धि का, उसकी आत्मा का, एक अंग हो गयी हो। उसका तर्कवाद और बुद्धिवाद इन मन्वन्तरों के जमे हुए संस्कार पर समुद्र की ऊँची लहरों की भाँति आता था पर एक क्षण में उन्हें जल-मग्न करके फिर लौट जाता था और वह पर्वत ज्यों-का-त्यों अचल खड़ा रह जाता था।

जिन्दगी बाकी थी, बच गया। ताकत आते ही दफ्तर जाने लगा। एक दिन गौरी बोली—जिन दिनों तुम बीमार थे और एक दिन तुम्हारी हालत बहुत नाजुक हो गयी थी, तो मैंने भगवान् से कहा था कि यह अच्छे हो जायँगे, तो पचास ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगी। दूसरे ही दिन से तुम्हारी हालत सुधरने लगी। ईश्वर ने मेरी विनती सुन ली। उसकी दया न हो जाती, तो मुझे कहीं माँगे भीख न मिलती। आज बाजार से सामान ले आओ, तो मनौती पूरी कर दूँ। पचास ब्राह्मण नेवते जायँगे, तो सौ अवश्य आयेंगे। पचास कँगले भी समझ लो और मित्रों में बीस-पचीस निकल ही आयेंगे। दो सौ आदमियों का डौल है। मैं सामग्रियों की सूची लिख देती हूँ।

दीनानाथ ने माथा सिकोड़कर कहा—तुम समझती हो, मैं भगवान् की दया से अच्छा हुआ

'और कैसे अच्छे हुए ?'

'अच्छा हुआ इसलिए कि जिन्दगी बाकी थी।'

'ऐसी बातें न करो। मनौती पूरी करनी होगी।'

'कभी नहीं। मैं भगवान् को दयालु नहीं समझता।'

'और क्या भगवान् निर्दयी है ?'

'उनसे बड़ा निर्दयी कोई संसार में न होगा। जो अपने रचे हुए खिलौनों को उनकी भूलों और बेवकूफियों की सजा अग्निकुण्ड में ढकेलकर दे, वह भगवान् दयालु नहीं हो सकता। भगवान् जितना दयालु है, उससे असंख्य गुना निर्दयी है। और ऐसे भगवान् की कल्पना से मुझे घृणा होती है। प्रेम सबसे बड़ी शक्ति कही गयी है। विचारवानों ने प्रेम को ही जीवन की और संसार की सबसे बड़ी विभूति मानी है। व्यवहार में न सही, आदर्श में प्रेम ही हमारे जीवन का सत्य है, मगर तुम्हारा ईश्वर दण्ड-भय से सृष्टि का संचालन करता है। फिर उसमें और मनुष्य में क्या फर्क हुआ ? ऐसे ईश्वर की उपासना मैं नहीं करना चाहता, नहीं कर सकता। जो मोटे हैं, उनके लिए ईश्वर दयालु होगा, क्योंकि वे दुनिया को लूटते हैं। हम जैसों को तो ईश्वर की दया कहीं नजर नहीं आती। हाँ, भय पग-पग पर खड़ा घूरा करता है। यह मत करो, नहीं तो ईश्वर दण्ड देगा ! वह मत करो, नहीं तो ईश्वर दण्ड देगा। प्रेम से शासन करना मानवता है, आतंक से शासन करना बर्बरता है। आतंकवादी ईश्वर से तो ईश्वर का न रहना ही अच्छा है। उसे हृदय से निकाल कर मैं उसकी दया और दण्ड दोनों से मुक्त हो जाना चाहता हूँ। एक कठोर दण्ड बरसों के प्रेम को मिट्टी में मिला देता है। मैं तुम्हारे ऊपर बराबर जान देता रहता हूँ; लेकिन किसी दिन डण्डा लेकर पीट चलूँ, तो तुम मेरी सूरत न देखोगी। ऐसे आतंकमय, दण्डमय जीवन के लिए मैं ईश्वर का

एहसान नहीं लेना चाहता। बासी भात में खुदा के साझे की जरूरत नहीं। अगर तुमने ओज-भोज पर जोर दिया, तो मैं जहर खा लूँगा।'

गौरी उसके मुँह की ओर भयातुर नेत्रों से ताकती रह गयी।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अक्टूबर, 1934 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'कहर खुदा का' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'जादे राह' में संकलित।]

खुदाई फौजदार

सेठ नानकचन्द को आज फिर वही लिफाफा मिला और वही लिखावट सामने आयी तो उनका चेहरा पीला पड़ गया। लिफाफा खोलते हुए हाथ और हृदय दोनों काँपने लगे। खत में क्या है, यह उन्हें खूब मालूम था। इसी तरह के दो खत पहले पा चुके थे। इस तीसरे खत में भी वही धमकियाँ है, इसमें उन्हें सन्देह न था। पत्र हाथ में लिये हुए आकाश की ओर ताकने लगे। वह दिल के मजबूत आदमी थे, धमकियों से डरना उन्होंने न सीखा था, मुर्दो से भी अपनी रकम वसूल कर लेते थे। दया या उपकार जैसी मानवीय दुर्बलताएँ उन्हें छू भी न गयी थीं, नहीं तो महाजन ही कैसे बनते ! उस पर धर्मनिष्ठ भी थे। हर पूर्णमासी को सत्यनारायण की कथा सुनते थे। हर मंगल को महाबीर जी को लड्डू चढ़ाते थे, नित्य-प्रति जमुना में स्नान करते थे और हर एकादशी को व्रत रखते और ब्राह्मणों को भोजन कराते थे और इधर जबसे घी में करारा नफा होने लगा था, एक धर्मशाला बनवाने की फिक्र में थे। जमीन ठीक कर ली थी। उनके असामियों में सैकड़ों ही थवई और बेलदार थे, जो केवल सूद में काम को तैयार थे। इन्तजार यही था कि कोई ईंट और चूने वाला फँस जाय और दस-बीस हजार का दस्तावेज लिखा ले, तो सूद में ईट और चूना भी मिल जाय। इस धर्मनिष्ठा ने उनकी आत्मा को और भी शक्ति प्रदान कर दी थी। देवताओं के आशीर्वाद और प्रताप से उन्हें कभी किसी सौदे में घाटा नहीं हुआ और भीषण परिस्थितियों में भी वह स्थिरचित्त रहने के आदी थे; किन्तु जबसे यह धमकियों से भरे हुए पत्र मिलने लगे थे, उन्हें बरबस तरह-तरह की शंकाएँ व्यथित करने लगी थीं। कहीं सचमुच डाकुओं ने छापा मारा, तो कौन उनकी सहायता करेगा ? दैवी बाधाओं में तो देवताओं की सहायता पर वह तकिया कर सकते थे, पर सिर पर लटकती हुई इस तलवार के सामने वह श्रद्धा कुछ काम न देती थी। रात को उनके द्वार पर केवल एक चौकीदार रहता है। अगर दस-बीस हथियारबन्द आदमी आ जायँ, तो वह अकेला क्या कर सकता है ? शायद उनकी आहट पाते ही भाग खड़ा हो। पड़ोसियों में ऐसा कोई नज़र न आता था, जो इस संकट में काम आवे। यद्यपि सभी उनके असामी थे या रह चुके थे। लेकिन यह एहसान-फरामोशों का सम्प्रदाय है, जिस पत्तल में खाता है, उसी में छेद करता है; जिसके द्वार पर अवसर पड़ने पर नाक रगड़ता है, उसी का दुश्मन हो जाता है। इनसे कोई आशा नहीं। हाँ, किवाड़ें सुदृढ़ हैं; उन्हें तोड़ना आसान नहीं, फिर अन्दर का दरवाजा भी तो है। सौ आदमी लग जायँ

तो हिलाये न हिले। और किसी ओर से हमले का खटका नहीं। इतनी ऊँची सपाट दीवार पर कोई क्या खा के चढ़ेगा ? फिर उनके पास रायफलें भी तो हैं। एक रायफल से वह दर्जनों आदमियों को भूनकर रख देंगे। मगर इतने प्रतिबन्धों के होते हुए भी उनके मन में एक हूक-सी समायी रहती थी। कौन जाने चौकीदार भी उन्हीं में मिल गया हो, खिदमतगार भी आस्तीन के साँप हो गये हों ! इसलिये वह अब बहुधा अन्दर ही रहते थे। और जब तक मिलने वालों का पता-ठिकाना न पूछ लें, उनसे मिलते न थे। फिर भी दो-चार घंटे तो चौपाल में बैठने ही पड़ते थे; नहीं तो सारा कारोबार मिट्टी में न मिल जाता ! जितनी देर बाहर रहते थे, उनके प्राण जैसे सूली पर टँगे रहते थे। उधर उनके मिजाज में बड़ी तब्दीली हो गयी थी। इतने विनम्र और मिष्टभाषी वह कभी न थे। गालियाँ तो क्या, किसी से तू-तकार भी न करते। सूद की दर भी कुछ घटा दी थी; लेकिन फिर भी चित्त को शान्ति न मिलती थी। आखिर कई मिनट तक दिल को मजबूत करने के बाद उन्होंने पत्र खोला, और जैसे गोली लग गयी। सिर में चक्कर आ गया और सारी चीजें नाचती हुई मालूम हुईं। साँस फूलने लगी, आँखें फैल गयीं। लिखा था, तुमने हमारे दोनों पत्रों पर कुछ भी ध्यान न दिया। शायद तुम समझते होगे कि पुलिस तुम्हारी रक्षा करेगी; लेकिन यह तुम्हारा भ्रम है। पुलिस उस वक्त आयेगी, जब हम अपना काम करके सौ कोस निकल गये होंगे। तुम्हारी अक्ल पर पत्थर पड़ गया है, इसमें हमारा कोई दोष नहीं। हम तुमसे सिर्फ़ 25 हजार रुपये माँगते हैं। इतने रुपये दे देना तुम्हारे लिये कुछ भी मुश्किल नहीं। हमें पता है कि तुम्हारे पास एक लाख की मोहरें रखी हुई हैं; लेकिन विनाशकाले विपरीत बुद्धिः अब हम तुम्हें और ज्यादा न समझायेंगे। तुमको समझाने की चेष्टा करना ही व्यर्थ है। आज शाम तक अगर रुपये न आ गये, तो रात को तुम्हारे ऊपर धावा होगा। अपनी हिफाजत के लिए जिसे बुलाना चाहो, बुला लो, जितने आदमी और हथियार जमा करना चाहो, जमा कर लो। हम ललकार कर आयेंगे और दिनदहाड़े आयेंगे। हम चोर नहीं हैं, हम वीर हैं और हमारा विश्वास बाहुबल में है। हम जानते हैं कि लक्ष्मी उसी के गले में जयमाल डालती है, जो धनुष तोड़ सकता है, मछली को वेध सकता है। यदि....

सेठ ने तुरन्त बही-खाते बन्द कर दिये और रोकड़ सँभालकर तिजोरी में रख दिया और सामने का द्वार भीतर से बन्द करके मरे हुए से केसर के पास आकर बोले—आज फिर वही खत आया, केसर ! अब आज ही आ रहे हैं।

केसर दोहरे बदन की स्त्री थी, यौवन बीत जाने पर भी युवती, शौक-सिंगार में लिप्त रहने वाली, उस फलहीन वृक्ष की तरह, जो पतझड़ में भी हरी-भरी पत्तियों से लदा रहता है। सन्तान की विफल कामना में जीवन का बड़ा भाग बिता चुकने के बाद, अब उसे अपनी संचित माया को भोगने की धुन सवार रहती थी। मालूम नहीं, कब आँखें बन्द हो जायँ, फिर यह थाती किसके हाथ लगेगी, कौन जाने ? इसलिये उसे सबसे अधिक भय बीमारी का था, जिसे वह मौत का पैगाम समझती थी और नित्य ही कोई-न-कोई दवा खाती रहती थी। काया के इस वस्त्र को उस समय तक उतारना न चाहती थी, जब तक उसमें एक तार भी बाकी न रहे। बाल-बच्चे होते तो वह मृत्यु का स्वागत करती, लेकिन अब तो उसके जीवन ही के साथ अन्त था, फिर क्यों न वह अधिक-से-अधिक समय तक जिये। हाँ, वह जीवन निरानन्द अवश्य था, उस मधुर ग्रास की भाँति, जिसे हम इसलिये खा जाते हैं कि

रखे-रखे सड़ जायगा।

उसने घबड़ाकर कहा—मैं तुमसे कब से कह रही हूँ कि दो-चार महीनों के लिए यहाँ से कहीं भाग चलो, लेकिन तुम सुनते ही नहीं। आखिर क्या करने पर तुले हुए हो ?

सेठजी सशंक तो थे और यह स्वाभाविक था—ऐसी दशा में कौन शान्त रह सकता था—लेकिन वह कायर नहीं थे। उन्हें अब भी विश्वास था कि अगर कोई संकट आ पड़े तो वह पीछे कदम न हटायेंगे। जो कुछ कमजोरी आ गयी थी, वह संकट को सिर पर मँडराते देखकर भाग गयी थी। हिरन भी तो भागने की राह न पाकर शिकारी पर चोट कर बैठता है। कभी-कभी नहीं, अक्सर संकट पड़ने पर ही आदमी के जौहर खुलते हैं। इतनी देर में सेठजी ने एक तरह से भावी विपत्ति का सामना करने का पक्का इरादा कर लिया था। डर क्यों, जो कुछ होना है, वह होकर रहेगा। अपनी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है, मरना-जीना विधि के हाथ में है। सेठानीजी को दिलासा देते हुए बोले—तुम नाहक इतना डरती हो केसर, आखिर वे सब भी तो आदमी हैं, अपनी जान का मोह उन्हें भी है, नहीं तो यह कुकर्म ही क्यों करते ? मैं खिड़की की आड़ से दस-बीस आदमियों को गिरा सकता हूँ। पुलिस को इत्तला देने भी जा रहा हूँ। पुलिस का कर्तव्य है कि हमारी रक्षा करे। हम दस हजार सालाना टैक्स देते हैं, किसलिए ? मैं अभी दरोगा जी के पास जाता हूँ। जब सरकार हमसे टैक्स लेती है, तो हमारी मदद करना उसका धर्म हो जाता है।

राजनीति का यह तत्त्व उसकी समझ में नहीं आया। वह तो किसी तरह उस भय से मुक्त होना चाहती थी, जो उसके दिल में साँप की भाँति बैठा फुफकार रहा था। पुलिस का उसे जो अनुभव था, उससे चित्त को सन्तोष न होता था। बोली—पुलिसवालों को बहुत देख चुकी। वारदात के समय तो उनकी सूरत नहीं दिखाई देती। जब वारदात हो चुकती है, तब अलबत्ता शान के साथ आकर रोब जमाने लगते हैं।

'पुलिस तो सरकार का राज चला रही है। तुम क्या जानो ?'

'मैं तो कहती हूँ, यों अगर कल वारदात होने वाली होगी, तो पुलिस को खबर देने से आज ही हो जायगी। लूट के माल में इनका भी साझा होता है।'

'जानता हूँ, देख चुका हूँ, और रोज देखता हूँ; लेकिन मैं सरकार को दस हजार का सालाना टैक्स देता हूँ। पुलिसवालों का आदर-सत्कार भी करता रहता हूँ। अभी जाड़ों में सुपरिंटेंडेंट साहब आये थे, तो मैंने कितनी रसद पहुँचायी थी। एक पूरा कनस्तर घी और एक शक्कर की पूरी बोरी भेज दी थी। यह सब खिलाना-पिलाना किस दिन काम आयेगा। हाँ, आदमी को सोलहो आने दूसरों के भरोसे न बैठना चाहिए; इसलिए मैंने सोचा है, तुम्हें भी बन्दूक चलाती सिखा दूँ ? हम दोनों बन्दूकें छोड़ना शुरू करेंगे, तो डाकुओं की क्या मजाल है कि अन्दर कदम रख सकें ?'

प्रस्ताव हास्यजनक था। केसर ने मुसकराकर कहा—हाँ और क्या, अब आज मैं बन्दूक चलाना सीखूँगी ! तुमको जब देखो, हँसी ही सूझती है।

'इसमें हँसी की क्या बात है ? आजकल तो औरतों की फौजें बन रही हैं। सिपाहियों की तरह औरतें भी कवायद करती हैं, बन्दूक चली हैं, मैदानों में खेलती हैं। औरतों के घर में बैठने का जमाना अब नहीं है।'

'विलायत की औरतें बन्दूक चलाती होंगी, यहाँ की औरतें क्या चलायेंगी। हाँ, हाथ

भर की जबान चाहे चला लें।'

'यहाँ की औरतों ने बहादुरी के जो-जो काम किये हैं, उनसे इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। आज दुनिया उन वृत्तान्तों को पढ़कर चकित हो जाती है।'

'पुराने जमाने की बातें छोड़ो। तब औरतें बहादुर रही होंगी। आज कौन बहादुरी कर रही हैं ?'

'वाह ! अभी हजारों औरतें घर-बार छोड़कर हँसते-हँसते जेल चली गयीं। यह बहादुरी नहीं थी ? अभी पंजाब में हरनाद कुँवर ने अकेले चार सशस्त्र डाकुओं को गिरफ्तार किया और लाट साहब तक ने उसकी प्रशंसा की।'

'क्या जाने वे कैसी औरतें हैं। मैं तो डाकुओं को देखते ही चक्कर खाकर गिर पड़ूँगी।'

उसी वक्त नौकर ने आकर कहा—'सरकार, थाने से चार कानिस्टिबिल आये हैं। आपको बुला रहे हैं।'

सेठजी प्रसन्न होकर बोले—'थानेदार भी हैं ?'

'नहीं सरकार, अकेले कानिस्टिबिल हैं।'

'थानेदार क्यों नहीं आया ?'—यह कहते हुए सेठजी ने पान खाया और बाहर निकले।

2

सेठजी को देखते ही चारों कानिस्टिबिलों ने झुककर सलाम किया, बिलकुल अँगरेजी कायदे से, मानो अपने किसी अफ़सर को सैल्यूट कर रहे हों। सेठजी ने उन्हें बेंचों पर बैठाया और बोले—दरोगाजी का मिजाज तो अच्छा है ? मैं तो उनके पास आनेवाला था।

चारों में जो सबसे प्रौढ़ था, जिसकी आस्तीन पर कई बिल्ले लगे हुए थे, बोला—आप क्यों तकलीफ करते हैं, वह तो खुद ही आ रहे थे; पर एक बड़ी जरूरी तहकीकात आ गयी, इससे रुक गये। कल आपसे मिलेंगे। जबसे यहाँ डाकुओं की खबरें आयी हैं, बेचारे बहुत घबराये हुए हैं। आपकी तरफ हमेशा उनका ध्यान रहता है। कई बार कह चुके हैं कि मुझे सबसे ज्यादा फिकर सेठजी की है। गुमनाम खत तो आपके पास भी आये होंगे ?

सेठजी ने लापरवाही दिखाकर कहा—अजी, ऐसी चिट्ठियाँ आती ही रहती हैं, इनकी कौन परवाह करता है। मेरे पास तो तीन खत आ चुके हैं, मैंने किसी से जिक्र भी नहीं किया।

कानिस्टेबिल हँसा—दरोगाजी को खबर मिली थी।

'सच !'

'हाँ, साहब ? रत्ती-रत्ती खबर मिलती रहती है। यहाँ तक मालूम हुआ है कि कल आपके मकान पर उनका धावा होनेवाला है। जभी तो आज दरोगा जी ने मुझे आपकी खिदमत में भेजा।'

'मगर वहाँ कैसे खबर पहुँची ? मैंने तो किसी से कहा ही नहीं।'

कानिस्टेबिल ने रहस्यमय भाव से कहा—हुजूर, यह न पूछें। इलाके के सबसे बड़े सेठ के पास ऐसे खत आयें और पुलिस को खबर न हो ! भला, कोई बात है। फिर ऊपर

से बराबर ताकीद आती रहती है कि सेठजी को शिकायत का कोई मौका न दिया जाय। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की खास ताकीद है आपके लिए। और हुजूर, सरकार भी तो आप ही के बूते पर चलती है। सेठ-साहूकारों के जान-माल की हिफाजत न करे, तो रहे कहाँ ? हमारे होते मजाल है कि कोई आपकी तरफ तिरछी आँखों से देख सके; मगर यह कम्बख्त डाकू इतने दिलेर और तादाद में इतने ज्यादा हैं कि थाने के बाहर उनसे मुकाबिला करना मुश्किल है। दरोगाजी गारद मँगाने की बात सोच रहे थे; मगर ये हत्यारे कहीं एक जगह तो रहते नहीं, आज यहाँ हैं, तो कल यहाँ से दो सौ कोस पर। गारद मँगाकर ही क्या किया जाय ? इलाके की रिआया की तो हमें ज्यादा फिक्र नहीं, हुजूर मालिक हैं, आपसे क्या छिपायें, किसके पास रखा है इतना माल-असबाब! और अगर किसी के पास दो-चार सौ की पूँजी निकल ही आयी तो उसके लिए पुलिस डाकुओं के पीछे अपनी जान हथेली पर लिये न फिरेगी। उन्हें क्या, वह तो छूटते ही गोली चलाते हैं और अक्सर छिपकर। हमारे लिए तो हजार बन्दिशें हैं। कोई बात बिगड़ जाय तो उलटे अपनी ही जान आफत में फँस जाय। हमें तो ऐसे रास्ते चलना है कि साँप मरे और लाठी न टूटे, इसलिए दरोगाजी ने आपसे यह अर्ज करने को कहा है कि आपके पास जोखिम की जो चीज़ें हों, उन्हें लाकर सरकारी खजाने में जमा कर दीजिए। आपको उसकी रसीद दे दी जायगी। ताला और मुहर आप ही की रहेगी। जब यह हंगामा ठण्डा हो जाय तो मँगवा लीजिएगा। इससे आपको भी बेफिक्री हो जायगी और हम भी जिम्मेदारी से बच जायँगे। नहीं खुदा न करे, कोई वारदात हो जाय, तो हुजूर को तो जो नुकसान हो वह तो हो ही हमारे ऊपर भी जवाबदेही आ जाय। और यह जालिम सिर्फ माल-असबाब लेकर ही तो जान नहीं छोड़ते—खून करते हैं, घर में आग लगा देते हैं, यहाँ तक कि औरतों की बेइज्जती भी करते हैं। हुजूर तो जानते हैं, होता है वही जो तकदीर में लिखा है। आप इकबालवाले आदमी हैं, डाकू आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। सारा कस्बा आपके लिए जान देने को तैयार है। आपका पूजा-पाठ, धर्म-कर्म खुदा खुद देख रहा है। यह उसी की बरकत है कि आप मिट्टी भी छू लें, तो सोना हो जाय, लेकिन आदमी भरसक अपनी हिफाजत करता है। हुजूर के पास मोटर है ही, जो कुछ रखना हो, उस पर रख दीजिए। हम चार आदमी आपके साथ हैं, कोई खटका नहीं। वहाँ एक मिनट में आपको फुरसत हो जायगी। पता चला है कि इस गोल में बीस जवान हैं। दो तो बैरागी बने हुए हैं, दो पंजाबियों के भेस में धुस्से और अलवान बेचते फिरते हैं। इन दोनों के साथ दो बहँगीवाले भी हैं। दो आदमी बलूचियों के भेस में छूरियाँ और ताले बेचते हैं। कहाँ तक गिनाऊँ, हुजूर ! हमारे थाने में तो हर एक का हुलिया रखा हुआ है।

खतरे में आदमी का दिल कमजोर हो जाता है और वह ऐसी बातों पर विश्वास कर लेता है, जिन पर शायद होश-हवास में न करता। जब किसी दवा से रोगी को लाभ नहीं होता, तो हम दुआ, ताबीज, ओझों और सयानों की शरण लेते हैं और वहाँ तो सन्देह करने का कोई कारण ही न था। सम्भव है, दरोगाजी का कुछ स्वार्थ हो, मगर सेठजी इसके लिए तैयार थे। अगर दो-चार सौ बल खाने पड़ें, तो कोई बड़ी बात नहीं। ऐसे अवसर तो जीवन में आते ही रहते हैं और इस परिस्थिति में इससे अच्छा दूसरा क्या इन्तजाम हो सकता था; बल्कि इसे तो ईश्वरीय प्रेरणा समझना चाहिए। माना, उनके पास दो-दो बन्दूकें हैं, कुछ लोग मदद करने के लिए निकल ही आयेंगे, लेकिन है जान जोखिम। उन्होंने निश्चय

किया, दरोगाजी की इस कृपा से लाभ उठाना चाहिए। इन्हीं आदमियों को कुछ दे-दिलाकर सारी चीजें निकलवा लेंगे। दूसरों का क्या भरोसा ? कहीं कोई चीज़ उड़ा दें तो बस ?

उन्होंने इस भाव से कहा, मानो दरोगाजी ने उन पर कोई विशेष कृपा नहीं की है; वह तो उनका कर्तव्य ही था—मैंने यहाँ ऐसा प्रबन्ध किया था कि यहाँ वह सब आते तो उनके दाँत खट्टे कर दिये जाते। सारा कस्बा मदद के लिए तैयार था। सभी से तो अपना मित्र-भाव है, लेकिन दरोगाजी की तजवीज मुझे पसन्द है। इससे वह भी अपनी जिम्मेदारी से बरी हो जाते हैं और मेरे सिर से भी फिक्र का बोझ उतर जाता है, लेकिन भीतर से चीजें बाहर निकाल-निकालकर लाना मेरे बूते की बात नहीं। आप लोगों की दुआ से नौकर-चाकरों की तो कमी नहीं है, मगर किसकी नीयत कैसी है, कौन जान सकता है ? आप लोग कुछ मदद करें तो काम आसान हो जाय।

हेड कानिस्टेबल ने बड़ी खुशी से यह सेवा स्वीकार कर ली और बोला—हम सब हुजूर के ताबेदार हैं, इसमें मदद की कौन-सी बात है ? तलब सरकार से पाते हैं, यह ठीक है, मगर देनेवाले तो आप ही हैं। आप केवल सामान हमें दिखाये जायँ, हम बात-की-बात में सारी चीज़ें निकाल लायेंगे। हुजूर की खिदमत करेंगे तो कुछ इनाम-इकराम मिलेगा ही। तनख्वाह में गुजर नहीं होती सेठजी, आप लोगों की रहम की निगाह न हो, तो एक दिन भी निबाह न हो। बाल-बच्चे भूखों मर जायँ पन्द्रह-बीस रुपये में क्या होता है हुजूर, इतना तो हमारे लिए ही पूरा नहीं पड़ता।

सेठजी ने अन्दर जाकर केसर से यह समाचार कहा तो उसे जैसे आँखें मिल गयीं। बोली—भगवान् ने सहायता की, नहीं मेरे प्राण संकट में पड़े हुए थे।

सेठजी ने सर्वज्ञता के भाव से फरमाया—इसी को कहते हैं सरकार का इंतजाम ! इसी मुस्तैदी के बल पर सरकार का राज थमा हुआ है। कैसी सुव्यवस्था है कि जरा-सी कोई बात हो, वहाँ तक खबर पहुँच जाती है और तुरन्त उसके रोकथाम का हुक्म हो जाता है। और यहाँ वाले ऐसे बुद्धू हैं कि स्वराज्य-स्वराज्य चिल्ला रहे हैं। इनके हाथ में अख्तियार आ जाय तो दिन-दोपहर लूट मच जाय, कोई किसी की न सुने। ऊपर से ताकीद आयी है। हाकिमों का आदर-सत्कार कभी निष्फल नहीं जाता। मैं तो सोचता हूँ, कोई बहुमूल्य वस्तु घर में न छोड़ूँ। साले आयें तो अपना-सा मुँह लेकर रह जायँ।

केसर ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कहा—कुंजी उनके सामने फेंक देना कि जो चीज चाहो निकाल ले जाओ।

'साले झेंप जायेंगे।'

'मुँह में कालिख लग जायगी।'

'घमण्ड तो देखो कि तिथि तक बता दी। यह नहीं समझे कि अंग्रेजी सरकार का राज है। तुम डाल-डाल चलो, तो वह पात-पात चलते हैं।'

'समझे होंगे कि धमकी में आ जायेंगे।'

तीन कांस्टेबिलों ने आकर सन्दूकचे और सेफ निकालने शुरू किये। एक बाहर सामान को मोटर पर लाद रहा था और एक हरेक चीज को नोटबुक पर टाँकता जाता था। आभूषण, मुहरें, नोट, रुपये, कीमती कपड़े, साड़ियाँ; लहँगे, शाल-दुशाले, सब कार में रख दिये। मामूली बरतन, लोहे-लकड़ी के सामान, फर्श आदि के सिवा घर में और कुछ न

बचा। और डाकुओं के लिए ये चीज़ें कौड़ी की भी नहीं। केसर का सिंगारदान खुद सेठजी आये और हेड के हाथ में देकर बोले—इसे बड़ी हिफाजत से रखना भाई !

हेड ने सिंगारदान लेकर कहा—मेरे लिए एक-एक तिनका इतना ही कीमती है।

सेठजी के मन में एक सन्देह उठा। पूछा—खजाने की कुंजी तो मेरे ही पास रहेगी ?

'और क्या, यह तो मैं पहले ही अर्ज कर चुका; मगर यह सवाल आपके दिल से क्यों पैदा हुआ ?'

'योंही, पूछा था'—सेठजी लज्जित हो गये।

'नहीं, अगर आपके दिल में कुछ शुबहा हो, तो हम लोग यहाँ भी आप की खिदमत के लिए हाजिर हैं। हाँ, हम जिम्मेदार न होंगे।'

'अजी नहीं हेड साहब, मैंने योंही पूछ लिया था। यह फिहरिस्त तो मुझे दे दोगे न ?'

'फिहरिस्त आपको थाने में दारोगाजी के दस्तखत से मिलेगी। इसका क्या एतबार ?'

कार पर सारा सामान रख दिया गया। कस्बे के सैकड़ों आदमी तमाशा देख रहे थे। कार बड़ी थी, पर ठसाठस भरी हुई थी। बड़ी मुश्किल से सेठजी के लिए जगह निकली। चारों कान्स्टेबिल आगे की सीट पर सिमटकर बैठे।

कार चली। केसर द्वार पर इस तरह खड़ी थी, मानो उसकी बेटी बिदा हो रही हो। बेटी ससुराल जा रही है, जहाँ वह मालकिन बनेगी; लेकिन उसका घर सूना किये जा रही है।

3

थाना यहाँ से पाँच मील पर था। कस्बे से बाहर निकलते ही पहाड़ों का पथरीला सन्नाटा था, जिसके दामन में हरा-भरा मैदान था और इसी मैदान के बीच में लाल मोरम की सड़क चक्कर खाती हुई लाल साँप-जैसी निकल गयी थी।

हेड ने सेठजी से पूछा—यह कहाँ तक सही है सेठजी, कि आज से पचीस साल पहले आपके बाप केवल लोटा-डोर लेकर यहाँ खाली हाथ आये थे ?

सेठजी ने गर्व करते हुए कहा—'बिलकुल सही है। मेरे पास कुल तीन रुपये थे। उसी से आटे-दाल की दूकान खोली थी। तकदीर का खेल है, भगवान् की दया चाहिए, आदमी के बनते-बिगड़ते देर नहीं लगती। लेकिन मैंने कभी पैसे को दाँतों से नहीं पकड़ा। यथाशक्ति धर्म का पालन करता गया। धन की शोभा धर्म ही से है, नहीं तो धन से कोई फायदा नहीं।'

'आप बिलकुल ठीक कहते हैं सेठजी। आपकी मूरत बनाकर पूजना चाहिए। तीन रुपये से लाख कमा लेना मामूली काम नहीं है !'

'आधी रात तक सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती, खाँ साहब !'

'आपको तो यह सब कारोबार जंजाल-सा लगता होगा।'

'जंजाल तो है ही, मगर भगवान् की ऐसी माया है कि आदमी सब कुछ समझकर भी इसमें फँस जाता है और सारी उम्र फँसा रहता है। मौत आ जाती है, तभी छुट्टी मिलती है बस, यही अभिलाषा है कि कुछ यादगार छोड़ जाऊँ।'

'आपके कोई औलाद हुई ही नहीं ?'

'भाग्य में न थी खाँ साहब, और क्या कहूँ ! जिनके घर में भूनी भाँग नहीं है, उनके

यहाँ घास-फूस की तरह बच्चे-ही-बच्चे देख लो, जिन्हें भगवान् ने खाने को दिया है, वे सन्तान का मुँह देखने को तरसते हैं।'

'आप बिलकुल ठीक कहते हैं, सेठजी ! जिन्दगी का मजा सन्तान से है। जिसके आगे अँधेरा है, उसके लिए धन-दौलत किस काम का ?'

'ईश्वर की यही इच्छा है तो आदमी क्या करे। मेरा बस चलता, तो मायाजाल से निकल भागता खाँ साहब, एक क्षण-भर यहाँ न रहता, कहीं तीर्थस्थान में बैठकर भगवान् का भजन करता। मगर करूँ क्या ? मायाजाल तोड़े नहीं टूटता।'

'एक बार दिल मजबूत करके तोड़ क्यों नहीं देते ? सब उठाकर गरीबों को बाँट दीजिए। साधु-सन्तों को नहीं, न मोटे ब्राह्मणों को बल्कि उनको, जिनके लिए यह जिन्दगी बोझ हो रही है, जिसकी यही एक आरजू है कि मौत आकर उनकी विपत्ति का अन्त कर दे।'

'इस मायाजाल को तोड़ना आदमी का काम नहीं है, खाँ साहब ! भगवान् की इच्छा होती है, तभी मन में वैराग्य आता है।'

'आज भगवान् ने आपके ऊपर दया की है। हम इस मायाजाल को मकड़ी के जाले की तरह तोड़कर आपको आजाद करने के लिए भेजे गये हैं। भगवान् आपकी भक्ति से प्रसन्न हो गये हैं और आपको इस बन्धन में नहीं रखना चाहते, जीवन-मुक्त कर देना चाहते हैं।'

'ऐसी भगवान् की दया हो जाती, तो क्या पूछना खाँ साहब !'

'भगवान् की ऐसी ही दया है सेठजी, विश्वास मानिए। हमें इसीलिए उन्होंने मृत्युलोक में तैनात किया है। हम कितने ही मायाजाल के कैदियों की बेड़ियाँ काट चुके हैं। आज आपकी बारी है।'

सेठजी की नाड़ियों में जैसे रक्त का प्रवाह बन्द हो गया। सहमी हुई आँखों से सिपाहियों को देखा। फिर बोले—आप बड़े हँसोड़ हो, खाँ साहब ?

'हमारे जीवन का सिद्धान्त है कि किसी को कष्ट मत दो; लेकिन ये रुपये वाले कुछ ऐसी औंधी खोपड़ी के लोग हैं कि जो उनका उद्धार करने आता है, उसी के दुश्मन हो जाते हैं। हम आपकी बेड़ियाँ काटने आये हैं; लेकिन अगर आपसे कहें कि यह सब जमा-जथा और लता-पता छोड़कर घर की राह लीजिए, तो आप चीखना-चिल्लाना शुरू कर देंगे। हम लोग वही खुदाई फौजदार हैं, जिनके इत्तलाई खत आपके पास पहुँच चुके हैं।'

सेठजी मानो आकाश से पाताल में गिर पड़े। सारी ज्ञानेन्द्रियों ने जवाब दे दिया और इसी मूर्च्छा की दशा में वह मोटर कार से नीचे ढकेल दिये गये और गाड़ी चल पड़ी।

सेठजी की चेष्टा जाग पड़ी। बदहवास गाड़ी के पीछे दौड़े—हुजूर, सरकार, तबाह हो जायँगे, दया कीजिए, घर में एक कौड़ी भी नहीं है...

हेड साहब ने खिड़की से बाहर हाथ निकाला और तीन रुपये जमीन पर फेंक दिये। मोटर की चाल तेज हो गयी।

सेठजी सिर पकड़कर बैठ गये और विक्षिप्त नेत्रों से मोटरकार को देखा, जैसे कोई शव स्वर्गारोही प्राण को देखे। उनके जीवन का स्वप्न उड़ा चला जा रहा था।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'चांद', नवम्बर, 1934 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'इन्साफ की पुलिस' शीर्षक से उर्दू-कहानी संग्रह 'वारदात' और 'देहात के अफसाने' में संकलित।]

बड़े भाई साहब

मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे; लेकिन केवल तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था जब मैंने शुरू किया था; लेकिन तालीम जैसे महत्त्व के मामले में वह जल्दबाजी से काम लेना पसन्द न करते थे। इस भावना की बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे, जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पायेदार बने !

मैं छोटा था, वह बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल की थी, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा और जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को कानून समझूँ।

वह स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते। और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार-बार सुन्दर अक्षरों में नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता, न कोई सामंजस्य। मसलन एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी—स्पेशल, अमीना, भाइयों-भाइयों, दर-असल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घंटे तक—इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने बहुत चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूँ; लेकिन असफल रहा और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवीं जमात में थे, मैं पाँचवी में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुँह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिलकुल न लगता था। एक घंटा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता और कभी कंकरियाँ उछालता, कभी कागज की तितलियाँ उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया, तो पूछना ही क्या। कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे हैं, कभी फाटक पर सवार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनन्द उठा रहे हैं, लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का वह रौद्र-रूप देखकर प्राण सूख जाते ! उनका पहला सवाल यह होता—'कहाँ थे ?' हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में हमेशा पूछा जाता था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मेरे मुँह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुए शब्दों में मेरा सत्कार करें।

'इस तरह अंग्रेजी पढ़ोगे, तो जिन्दगी भर पढ़ते रहोगे और हर्फ न आयेगा। अंग्रेजी पढ़ना कोई हँसी-खेल नहीं है कि जो चाहे, पढ़ ले; नहीं ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा सभी अंग्रेजी के विद्वान हो जाते। यहाँ रात-दिन आँखें फोड़नी पड़ती हैं और खून जलाना पड़ता है, तब कहीं यह विद्या आती है। और आती क्या है, हाँ कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान भी शुद्ध अंग्रेजी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूँ, तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नहीं लेते। मैं कितनी मिहनत करता हूँ, यह तुम अपनी आँखों से देखते हो, अगर नहीं देखते, तो यह

तुम्हारी आँखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है ? रोज ही क्रिकेट और हाकी-मैच होते हैं। मैं पास नहीं फटकता। हमेशा पढ़ता रहता हूँ। उस पर भी एक-एक दरजे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूँ; फिर भी तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कूद में वक्त गँवाकर पास हो जाओगे ? मुझे तो दो ही तीन साल लगते हैं, तुम उम्र-भर इसी दरजे में पड़े सड़ते रहोगे ! अगर तुम्हें इस तरह उम्र गँवानी है तो बेहतर है; घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डण्डा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रुपये क्यों बरबाद करते हो ?'

मैं यह लताड़ सुनकर आँसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे ? भाई साहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते, कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत टूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने की शक्ति मैं अपने में न पाता था और उस निराशा में जरा देर के लिए मैं सोचने लगता—क्यों न घर चला जाऊँ। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिन्दगी खराब करूँ। मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था, लेकिन उतनी मेहनत ! मुझे तो चक्कर आ जाता था; लेकिन घंटे-दो-घंटे के बाद निराशा के बादल छँट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढ़ूँगा। चटपट एक टाइम-टेबिल बना डालता। बिना पहले से नक्शा बनाये, कोई स्कीम तैयार किये काम कैसे शुरू करूँ। टाइम टेबिल में खेलकूद की मद बिलकुल उड़ जाती। प्रातःकाल उठना; छः बजे मुँह-हाथ धो, नाश्ता कर, पढ़ने बैठ जाना। छः से आठ तक अंग्रेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढ़े नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढ़े तीन बजे स्कूल से वापस होकर आध घण्टा आराम, चार से पाँच तक भूगोल, पाँच से छः तक ग्रामर; आध घंटा होस्टल के सामने ही टहलना, साढ़े छः से सात तक अंग्रेजी कम्पोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध-विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेबिल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन उसकी अवेहलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के हल्के-हल्के झोंके, फुटबाल की तरह उछलकूद, कबड्डी के वह दाँव-घात, बालीबाल की वह तेजी और फुरती, मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जानलेवा टाइम-टेबिल, आँखफोड़ पुस्तकें, किसी को याद न रहती, और भाई साहब को नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साये से भागता, उनकी आँखों से दूर रहने की चेष्टा करता, कमरे में इस तरह दबे पाँव आता कि उन्हें खबर न हो। उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर एक नंगी तलवार-सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच भी आदमी मोह और माया के बन्धन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियाँ खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता।

2

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गये, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम

आया। मेरे और उनके बीच में केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथों लूँ—आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गयी ? मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दरजे में अव्वल भी हूँ। लेकिन वह इतने दुखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हाँ, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्मसम्मान भी बढ़ा। भाई साहब का वह रौब मुझ पर न रहा। आजादी से खेलकूद में शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर फजीहत की, तो साफ कह दूँगा—आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दरजे में अव्वल आ गया। जबान से यह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतंक मुझ पर नहीं था। भाई साहब ने इसे भाँप लिया—उनकी सहज-बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली-डंडे की भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा तो भाई साहब ने मानो तलवार खींच ली और मुझ पर टूट पड़े—देखता हूँ, इस साल पास हो गये और दरजे में अव्वल आ गये, तो तुम्हें दिमाग हो गया है; मगर भाईजान, घमंड तो बड़े-बड़े का नहीं रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है ? इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया ? या यों ही पढ़ गये ? महज इम्तहान पास कर लेना कोई चीज नहीं, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भूमण्डल का स्वामी था। ऐसे राजाओं को चक्रवर्ती कहते हैं। आजकल अंग्रेजी के राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है; पर इन्हें चक्रवर्ती नहीं कह सकते। संसार में अनेकों राष्ट्र अंग्रेजी का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते, बिल्कुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था, संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे; मगर उसका अन्त क्या हुआ ? घमंड ने उसका नामो-निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चुल्लू पानी देनेवाला भी न बचा। आदमी और जो कुकर्म चाहे करे; पर अभिमान न करे, इतराये नहीं। अभिमान किया, और दीन-दुनिया दोनों से गया। शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अभिमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढ़कर सच्चा भक्त कोई है ही नहीं ! अंत में यह हुआ कि स्वर्ग से नरक में ढकेल दिया गया। शाहेरूम ने भी एक बार अहंकार किया था। भीख माँग-माँगकर मर गया। तुमने तो अभी केवल एक दरजा पास किया है, और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया, तब तो तुम आगे पढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नहीं पास हुए, अन्धे के हाथ बटेर लग गयी। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं लग सकती। कभी-कभी गुल्ली-डण्डे में भी अंधा-चोट निशाना पड़ जाता है। इससे कोई सफल खिलाड़ी नहीं हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है, जिसका कोई निशाना खाली न जाय। मेरे फेल होने पर मत जाओ। मेरे दरजे में आओगे, तो दाँतों पसीना आ जायगा, जब अलजबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे, और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा। बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ-आठ हेनरी ही गुजरे हैं। कौन-सा कांड किस हेनरी के समय में हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो ? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवाँ लिखा और सब नम्बर गायब ! सफाचट। सिफर भी ना मिलेगा, सिफर भी ! हो किस ख्याल में। दरजनों तो जेम्स हुए हैं, दरजनों विलियम,

कोड़ियों चार्ल्स ! दिमाग चक्कर खाने लगता है। आँधी रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, सोयम, चहारुम, पंजुम लगाते चले गये। मुझसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता और जामेट्री तो बस खुदा की पनाह ! अ ब ज की जगह अ ज ब लिख दिया और सारे नम्बर कट गये। कोई इन निर्दयी मुमतहिनों से नहीं पूछता कि आखिर अ ब ज और अ ज ब में क्या फर्क है, और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का खून करते हो। दात-भात-रोटी या भात-दाल-रोटी खाई, इसमें क्या रखा है, मगर इन परीक्षकों को क्या परवाह। वह तो वही देखते हैं जो पुस्तक में लिखा है। चाहते हैं कि लड़के अक्षर-अक्षर रट डालें। और इसी रटन्त का नाम शिक्षा रख छोड़ा है। और आखिर इन बे-सर-पैर की बातों के पढ़ने से फायदा ? इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगुना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन ? दुगुना नहीं, चौगुना हो जाय, या आधा ही रहे, मेरी बला से; लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करनी पड़ेगी। कह दिया—'समय की पाबन्दी' पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ में लिये उसके नाम को रोइए। कौन नहीं जानता कि समय की पाबन्दी बहुत अच्छी बात है, इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरों का उस पर स्नेह होने लगता है और उसके कारोबार में उन्नति होती है; लेकिन इस जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें। जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्नों में लिखने की जरूरत ? मैं तो इसे हिमाकत कहता हूँ। यह तो समय की किफायत नहीं; बल्कि उसका दुरुपयोग है कि व्यर्थ में किसी बात को ठूँस दिया जाय। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे, अपनी राह ले। मगर नहीं, आपको चार पन्ने रँगने पड़ेंगे; चाहे जैसे लिखिए। और पन्ने भी पूरे फुलस्केप के आकार के। यह छात्रों पर अत्याचार नहीं तो और क्या है ? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है, संक्षेप में लिखो। समय की पाबन्दी पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। ठीक ! संक्षेप में तो चार पन्ने हुए, नहीं शायद सौ-दो-सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौड़िये और धीरे-धीरे भी। उल्टी बात है या नहीं ? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है; लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज भी नहीं। उस पर दावा है कि हम अध्यापक हैं। मेरे दरजे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे में अव्वल आ गये हो, तो जमीन पर पाँव नहीं रखते। इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन तुमसे बड़ा हूँ, संसार का मुझे तुमसे कहीं ज्यादा अनुभव है, जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बाँधिए, नहीं पछताइयेगा।

स्कूल का समय निकट था, नहीं ईश्वर जाने यह उपदेश-माला कब समाप्त होती भोजन आज मुझे निःस्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर शायद प्राण ही ले लिये जायँ। भाई साहब ने अपने दरजे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खींचा था; उसने मुझे भयभीत कर दिया। स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा, यही ताज्जुब है; लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों में मेरी अरुचि ज्यों-की-त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता। पढ़ता भी; मगर बहुत कम, बस इतना ही रोज का टास्क पूरा हो जाय और दरजे में जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा था, वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरों का-सा जीवन कटने लगा।

3

फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मैं फिर पास हुआ और भाई साहब फेल हो गये। मैंने बहुत मेहनत नहीं की; पर न जाने कैसे दरजे में अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणांतक परिश्रम किया। कोर्स का एक-एक शब्द चाट गये थे, दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उधर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने के पहले मुद्रा कांति-हीन हो गयी थी; मगर बेचारे फेल हो गये। मुझे उन पर दया आती थी! नतीजा सुनाया गया, तो वह रो पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने की खुशी आधी हो गयी ! मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई साहब को इतना दुःख न होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले।

मेरे और भाई साहब के बीच में अब केवल एक दरजे का अन्तर और रह गया। मेरे मन में एक कुटिल भावना उदय हुई कि कहीं भाई साहब एक साल और फेल हो जायँ, तो मैं उनके बराबर हो जाऊँ, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बलपूर्वक निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डाँटते हैं। मुझे इस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर वह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनादन पास हो जाता हूँ और इतने अच्छे नम्बरों से।

अब भाई साहब बहुत कुछ नर्म पड़ गये थे। कई बार मुझे डाँटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डाँटने का अधिकार उन्हें नहीं रहा, या रहा भी, तो बहुत कम। मेरी स्वच्छन्दता भी बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं पास हो ही जाऊँगा, पढ़ूँ या न पढ़ूँ, मेरी तकदीर बलवान है; इसलिए भाई साहब के डर से जो थोड़ा बहुत पढ़ लिया करता था, वह भी बन्द हुआ। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी की ही भेंट होता था; फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। माँझा देना, कन्ने बाँधना, पतंग टूरनामेंट की तैयारियाँ आदि समस्याएँ सब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। मैं भाई साहब को यह सन्देह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरों में कम हो गया है।

एक दिन संध्या समय, होस्टल से दूर मैं एक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौड़ा जा रहा था। आँखें आसमान की ओर थीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मन्द गति से झूमता पतन की ओर चला आ रहा था, मानों कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नये संस्कार ग्रहण करने आ रही हो। बालकों की पूरी सेना लग्गे और झाड़दार बाँस लिये इनका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतंग के साथ ही आकाश में उड़ रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटरकारें हैं, ट्राम, न गाड़ियाँ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गयी, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होंने वहीं हाथ पकड़ लिया और उग्र भाव से बोले—इन बाजारी लौंडों के साथ धेले के कनकौए के लिए दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती ? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमाअत में नहीं हो; बल्कि आठवीं जमाअत में आ गये हो और मुझसे केवल एक दरजा

नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ तो अपने पोजीशन का खयाल करना चाहिये। एक जमाना था कि लोग आठवाँ दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडिलचियों को जानता हूँ, जो आज अव्वल दरजे के डिप्टी मैजिस्ट्रेट या सपुरिंटेंडेंट हैं। कितने ही आठवीं जमाअतवाले हमारे लीडर और समाचारपत्रों के सम्पादक हैं। बड़े-बड़े विद्वान उनकी मातहती में काम करते हैं। और तुम उसी आठवें दरजे में आकर बाजारी लौंडों के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअक्ली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमे शक नहीं, लेकिन वह जेहन किस काम का, जो हमारे आत्म-गौरव की हत्या कर डाले। तुम अपने दिल में समझते होंगे, मैं भाई साहब से महज एक दरजा नीचे हूँ, और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नहीं; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ—और परीक्षकों का यही हाल है; तो निस्सन्देह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे और शायद एक साल बाद मुझसे आगे भी निकल जाओ—लेकिन मुझमें और तुममें जो पाँच साल का अन्तर है; उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुमसे पॉच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूँगा ! मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजरबा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम.ए. और डी.लिट्. औरा डी.फिल. ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती, दुनिया देखने से आती है। हमारी अम्माँ ने कोई दरजा नहीं पास किया, और दादा भी शायद पाँचवीं-छठी जमाअत के आगे नहीं गये; लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़ लें, अम्माँ और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता हैं; बल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज्यादा तजरबा है और रहेगा। अमेरिका में किस तरह राज-व्यवस्था है, और आठवें हेनरी ने कितने ब्याह किये और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह बातें चाहे उन्हें न मालूम हों; लेकिन हजारों ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान उन्हें हमसे और तुमसे ज्यादा है। दैव न करे, आज मैं बीमार हो जाऊँ, तो तुम्हारे हाथ-पाँव फूल जायेंगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबरायें, न बदहवास हों। पहले खुद मर्ज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमें सफल न हुए, तो किसी डाक्टर को बुलायेंगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज़ है। हम तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने भर का खर्च महीना भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस-बाईस तक खर्च कर डालते हैं, और फिर पैसे-पैसे को मुहताज हो जाते हैं। नाश्ता बन्द हो जाता है, धोबी और नाई से मुँह चुराने लगते हैं, लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं, उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और कुटुम्ब का पालन किया है जिसमें सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेडमास्टर साहब ही को देखो। एम.ए. हैं कि नहीं; और यहाँ के एम.ए. नहीं, ऑक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते हैं; लेकिन उनके घर का इन्तजाम कौन करता है ? उनकी बूढ़ी माँ। हेडमास्टर साहब की डिग्री यहाँ आकर बेकार हो गई। पहले खुद घर का इन्तजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जब से उनकी माता जी ने प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाईजान, यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गये हो और अब स्वतंत्र हो। मेरे देखते तुम

बेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। मैं जानता हूँ तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही हैं...

मैं उनकी इस नई युक्ति से नत-मस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई मैंने सजल आँखों से कहा—हरगिज नही। आप जो फरमा रहे हैं, वह बिल्कुल सच है और आपको उसको कहने का अधिकार है।

भाई साहब ने मुझे गले से लगा लिया और बोले—मैं कनकौए उड़ाने को मना नहीं करता। मेरा भी जी ललचाता है; लेकिन करूँ क्या, खुद बेराह चलूँ, तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ ? यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर है !

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लम्बे हैं ही ! उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', नवम्बर, 1934 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप 'जादे राह' (उर्दू कहानी संग्रह) में संकलित।]

स्वांग

राजपूत खानदान में पैदा हो जाने ही से कोई सूरमा नहीं हो जाता और न नाम के पीछे 'सिंह' की दुम लगा देने ही से बहादुरी आती है। गजेन्द्रसिंह के पुरखे किसी जमाने में राजपूत थे इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं। लेकिन इधर तीन पुश्तों से, तो नाम के सिवा उनमें राजपूती के कोई लक्षण न थे। गजेन्द्रसिंह के दादा वकील थे और जिरह या बहस में कभी-कभी राजपूती का प्रदर्शन कर जाते थे। बाप ने कपड़े की दुकान खोलकर इस प्रदर्शन की भी गुंजाइश न रखी और गजेन्द्रसिंह ने तो लुटिया ही डुबो दी। डील-डौल में भी फर्क आता गया। भूपेन्द्रसिंह का सीना लंबा-चौड़ा न था, नरेन्द्रसिंह का पेट लंबा-चौड़ा था, लेकिन गजेन्द्रसिंह का कुछ भी लंबा-चौड़ा न था। वह हल्के-फुल्के, गोरे-चिट्टे ऐनकबाज, नाजुक-बदन, फैशनेबुल बाबू थे। उन्हें पढ़ने-लिखने से दिलचस्पी थी।

मगर राजपूत कैसा ही हो उसकी शादी तो राजपूत खानदान ही में होगी। गजेन्द्रसिंह की शादी जिस खानदान में हुई थी, उस खानदान में राजपूती जौहर बिल्कुल फना न हुआ था। उनके ससुर पेंशनर सूबेदार थे। साले शिकारी और कुश्तीबाज। शादी हुए दो साल हो गए थे, लेकिन अभी तक एक बार भी ससुराल न आ सका। इम्तहानों से फुरसत ही न मिलती थी। लेकिन अब पढ़ाई खत्म हो चुकी थी, नौकरी की तलाश थी। इसलिए अब की होली के मौके पर ससुराल से बुलावा आया तो उसने कोई हीला-हुज्जत न की। सूबेदार की बड़े-बड़े अफसरों से जान-पहचान थी, फौजी अफसरों की हुक्काम कितनी कद्र और इज्जत करते हैं, यह उसे खूब मालूम था। समझा, मुमकिन है, सूबेदार साहब की सिफारिश से नायब तहसीलदारी में नामजद हो जाए। इधर श्यामदुलारी से भी साल भर से

मुलाकात न हुई थी। एक निशाने से दो शिकार हो रहे थे। नया रेशमी कोट बनवाया और होली के एक दिन पहले ससुराल जा पहुंचा। अपने गरांडील सालों के सामने वच्चा-सा मालूम होता था।

तीसरे पहर का वक्त था, गजेन्द्रसिंह अपने सालों से विद्यार्थी काल के कारनामे बयान कर रहा था। फुटबाल में किस तरह एक देव जैसे लंबे-तड़ंगे गोरे को पटखनी दी, हाकी मैच में किस तरह अकेले गोल कर लिया, कि इतने में सूबेदार साहब देव की तरह आकर खड़े हो गए और बड़े लड़के से बोले—अरे सुनो, तुम यहां बैठे क्या कर रहे हो ? बाबूजी शहर से आए हैं, इन्हें ले जाकर जरा जंगल की सैर करा लाओ। कुछ शिकार-विकार खिलाओ। यहां ठेठर-वेठर तो है नहीं, इनका जी घबराता होगा। वक्त भी अच्छा है, शाम तक लौट आओगे।

शिकार का नाम सुनते ही गजेन्द्रसिंह की नानी मर गई। बेचारे ने उम्र-भर कभी शिकार न खेला था। यह देहाती उजड्ड लौंडे उसे न जाने कहां-कहां दौड़ाएंगे, कहीं किसी जानवर का सामना हो गया तो कहीं के न रहे। कौन जाने हिरन ही चोट कर बैठे। हिरन भी तो भागने की राह न पाकर कभी-कभी पलट पड़ता है। कहीं भेड़िया निकल आए तो काम ही तमाम कर दे। बोले—मेरा तो इस वक्त शिकार खेलने को जी नहीं चाहता, बहुत थक गया हूं।

सूबेदार साहब ने फरमाया—तुम घोड़े पर सवार हो लेना। यही तो देहात की बहार है। चुन्नू, जाकर बंदूक ला, मैं भी चलूंगा। कई दिन से बाहर नहीं निकला। मेरी राइफल भी लेते आना।

चुन्नू और मुन्नू खुश-खुश बंदूक लेने दौड़े, इधर गजेन्द्र की जान सूखने लगी। पछता रहा था कि नाहक इन लौंडों के साथ गप-शप करने लगा। जानता कि यह बला सिर पर आने वाली है, तो आते ही फौरन बीमार बनकर चारपाई पर पड़ रहता। अब तो कोई हीला भी नहीं कर सकता। सबसे बड़ी, मुसीबत घोड़े की सवारी। देहाती घोड़े यों ही थान पर बंधे-बंधे टर्रे हो जाते हैं और आसन का कच्चा सवार देखकर तो वह और भी शोखियां करने लगते हैं। कहीं अलफ हो गया या मुझे लेकर किसी नाले की तरफ बेतहाशा भागा तो खैरियत नहीं।

दोनों साले बंदूकें लेकर आ पहुंचे। घोड़ा भी खिंचकर आ गया। सूबेदार साहब शिकारी कपड़े पहनकर तैयार हो गए। अब गजेन्द्र के लिए कोई हीला न रहा। उसने घोड़े की तरफ कनखियों से देखा—बार-बार जमीन पर पैर पटकता था, हिनहिनाता था, उठी हुई गर्दन, लाल आंखें, कनौतियां खड़ी, बोटी-बोटी फड़क रही थी। उसकी तरफ देखते हुए डर लगता था। गजेन्द्र दिल में सहम उठा मगर बहादुरी दिखाने के लिए घोड़े के पास जाकर उसकी गर्दन पर इस तरह थपकियां दीं कि जैसे पक्का शहसवार है, और बोला—जानवर तो जानदार है मगर मुनासिब नहीं मालूम होता कि आप लोग तो पैदल चलें और मैं घोड़े पर बैठूं। ऐसा कुछ बहुत थका नहीं हूं। मैं भी पैदल ही चलूंगा, इसका मुझे अभ्यास है।

सूबेदार ने कहा—बेटा, जंगल दूर है, थक जाओगे। बड़ा सीधा जानवर है, बच्चा भी सवार हो सकता है।

गजेन्द्र ने कहा—जी नहीं, मुझे भी यों ही चलने दीजिए। गप-शप करते हुए चले

चलेंगे। सवारी में वह लुत्फ कहां। आप बुजुर्ग हैं, सवार हो जाएं।

चारों आदमी पैदल चले। लोगों पर गजेन्द्र की इस नम्रता का बहुत अच्छा असर हुआ। सभ्यता और सदाचार तो शहर वाले ही जानते हैं। तिस पर इल्म की बरकत !

थोड़ी दूर के बाद पथरीला रास्ता मिला। एक तरफ हरा-भरा मैदान, दूसरी तरफ पहाड़ का सिलसिला। दोनों ही तरफ बबूल, करील, करौंदे और ढाक के जंगल थे। सूबेदार साहब अपनी फौजी जिंदगी के पिटे हुए किस्से कहते चले आते थे। गजेन्द्र तेज चलने की कोशिश कर रहा था। लेकिन बार-बार पिछड़ जाता था और उसे दो-चार कदम दौड़कर उनके बराबर होना पड़ता था। पसीने से तर हांफता हुआ, अपनी बेवकूफी पर पछताता चला जाता था। यहां आने की जरूरत ही क्या थी, श्यामदुलारी महीने-दो महीने में जाती ही। मुझे इस वक्त कुत्तों की तरह दौड़ते आने की क्या जरूरत थी। अभी से यह हाल है। शिकार नजर आ गया तो मालूम नहीं क्या आफत आएगी। मील-दो-मील की दौड़ तो उनके लिए मामूली बात है मगर यहां तो कचूमर ही निकल जाएगा। शायद बेहोश होकर गिर पडूं। पैर अभी से मन-मन के हो रहे थे।

यकायक रास्ते में सेमल का एक पेड़ नजर आया। नीचे लाल-लाल फूल बिछे हुए थे, ऊपर सारा पेड़ गुलनार हो रहा था। गजेन्द्र वहीं खड़ा हो गया और उस पेड़ को मस्ताना निगाहों से देखने लगा।

चुन्नू ने पूछा—क्या है जीजाजी, रुक कैसे गए ?

गजेन्द्रसिंह ने मुग्ध भाव से कहा—कुछ नहीं, इस पेड़ का आकर्षक सौंदर्य देखकर दिल बाग-बाग हुआ जा रहा है। अहा, क्या बहार है, क्या रौनक है, क्या शान है कि जैसे जंगल की देवी ने गोधूलि के आकाश को लज्जित करने के लिए केसरिया जोड़ा पहन लिया हो या ऋषियों की पवित्र आत्माएं अपनी शाश्वत यात्रा में यहां आराभ कर रही हों, या प्रकृति का मधुर संगीत मूर्तिमान होकर दुनिया पर मोहिनी मंत्र डाल रहा हो ! आप लोग शिकार खेलने जाइए, मुझे इस अमृत से तृप्त होने दीजिए !

दोनों नौजवान आश्चर्य से गजेन्द्र का मुंह ताकने लगे। उनकी समझ ही में न आया कि यह महाशय कह क्या रहे हैं। देहात के रहने वाले, जंगलों में घूमने वाले, सेमल उनके लिए कोई अनोखी चीज न थी। उसे रोज देखते थे, कितनी ही बार उस पर चढ़े थे, उसके नीचे दौड़े थे, उसके फूलों की गेंद बनाकर खेले थे, उन पर यह मस्ती कभी न छाई थी, सौंदर्य का उपभोग करना बेचारे क्या जानें।

सूबेदार साहब आगे बढ़ गए थे। इन लोगों को ठहरा हुआ देखकर लौट आए और बोले—क्यों बेटा, ठहर क्यों गए ?

गजेन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा—आप लोग मुझे माफ कीजिए, मैं शिकार खेलने न जा सकूंगा। फूलों की यह बहार देखकर मुझ पर मस्ती-सी छा गई है, मेरी आत्मा स्वर्ग के संगीत का मजा ले रही है। अहा, यह मेरा ही दिल है जो फूल बनकर चमक रहा है। मुझमें भी वही लाली है, वही सौंदर्य है, वही रस है। मेरे हृदय पर केवल अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है। किसका शिकार करें ? जंगल के मासूम जानवरों का ? हमीं तो जानवर हैं, हमीं तो चिड़ियां हैं, यह हमारी ही कल्पनाओं का दर्पण है जिसमें भौतिक संसार की झलक दिखाई पड़ रही है। क्या अपना ही खून करें ? नहीं, आप लोग शिकार खेलने जाएं, मुझे इस मस्ती

और बहार में डूबकर इसका आनंद उठाने दें। बल्कि मैं तो प्रार्थना करूंगा कि आप भी शिकार से दूर रहें। जिंदगी खुशियों का खजाना है। उसका खून न कीजिए। प्रकृति के दृश्यों से अपने मानस-चक्षुओं को तृप्त कीजिए। प्रकृति के एक-एक कण में, एक-एक फूल में, एक-एक पत्ती में इसी आनंद की किरणें चमक रही हैं। खून करके आनंद के इस अक्षय स्रोत को अपवित्र न कीजिए।

इस दार्शनिक भाषण ने सभी को प्रभावित कर दिया। सूबेदार साहब ने चुन्नू से धीमे से कहा—उम्र तो कुछ नहीं है लेकिन कितना ज्ञान भरा हुआ है ! चुन्नू ने भी अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया—विद्या से आत्मा जाग जाती है शिकार खेलना है बुरा।

सूबेदार साहब ने ज्ञानियों की तरह कहा—हां, बुरा तो है, चलो लौट चलें। जब हर एक चीज में उसी का प्रकाश है, तो शिकारी कौन और शिकार कौन, अब कभी शिकार न खेलूंगा।

फिर वह गजेन्द्र से बोले—भइया, तुम्हारे उपदेश ने हमारी आंखें खोल दीं। कसम खाते हैं, अब कभी शिकार न खेलेंगे।

गजेन्द्र पर मस्ती छाई हुई थी, उसी नशे की हालत में बोला—ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद है कि उसने आप लोगों को यह सुबुद्धि दी। मुझे खुद शिकार का कितना शौक था, बतला नहीं सकता। अनगिनत जंगली सूअर, हिरन, तेंदुए, नीलगाएं, मगर मारे होंगे, एक बार चीते को मार डाला। मगर आज ज्ञान की मदिरा का वह नशा हुआ कि कहीं अस्तित्व ही नहीं रहा।

2

होली जलने का मुहूर्त नौ बजे रात को था। आठ ही बजे से गांव के औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे गाते-बजाते अबीरें उड़ाते होली की तरफ चले। सूबेदार साहब भी बाल-बच्चों को लिए हुए मेहमान के साथ होली जलाने चले।

गजेन्द्र ने अभी तक किसी बड़े गांव की होली न देखी थी। उसके शहर में तो हर मुहल्ले में लकड़ी के मोटे-मोटे दो-चार कुंदे जला दिए जाते थे, जो कई-कई दिन जलते रहते थे। यहां की होली एक लंबे-चौड़े मैदान में किसी पहाड़ की ऊंची चोटी की तरह आसमान से बातें कर रही थी। ज्योंही पंडितजी ने मंत्र पढ़कर नए साल का स्वागत किया, आतिशबाजी छूटने लगी। छोटे-बड़े सभी पटाखे, छछूंदरें, हवाइयां छोड़ने लगे। गजेन्द्र के सिर पर से कई छछूंदरें सनसनाती हुई निकल गईं। हरेक पटाखे पर बेचारा दो-दो, चार-चार कदम पीछे हट जाता था और दिल में इन उजड्ड देहातियों को कोसता था। यह क्या बेहूदगी है, बारूद कहीं कपड़े में लग जाए, कोई और दुर्घटना हो जाए तो सारी शरारत निकल जाए। रोज ही तो ऐसी वारदातें होती रहती हैं, मगर इन गंवारों को क्या खबर। यहां तो दादा ने जो कुछ किया वही करेंगे। चाहे उसमें कुछ तुक हो या न हो !

अचानक नजदीक से एक बमगोले के छूटने की गगनभेदी आवाज आई कि जैसे बिजली कड़की हो। गजेन्द्रसिंह चौंककर कोई दो फुट ऊंचे उछल गए। अपनी जिंदगी में वह शायद कभी इतना न कूदे थे। दिल धक्-धक् करने लगा, गोया तोप के निशाने के सामने खड़े हों। फौरन दोनों कान उंगलियों से बंद कर लिए और दस कदम और पीछे हट गए।

चुन्नू ने कहा—जीजाजी, आप क्या छोड़ेंगे, क्या लाऊं ?

मुन्नू बोला—हवाइयां छोड़िए जीजाजी, बहुत अच्छी हैं। आसमान में निकल जाती हैं।

चुन्नू—हवाइयां बच्चे छोड़ते हैं कि यह छोड़ेंगे ? आप बमगोला छोड़िए भाई साहब।

गजेंद्र—भाई, मुझे इन चीजों का शौक नहीं। मुझे तो ताज्जुब हो रहा है कि बूढ़े भी कितनी दिलचस्पी से आतिशबाजी छुड़ा रहे हैं।

मुन्नू—दो-चार महताबियां तो जरूर छोड़िए।

गजेन्द्र को महताबियां निरापद जान पड़ीं। उनकी लाल, हरी, सुनहरी चमक के सामने उनके गोरे चेहरे और खूबसूरत बालों और रेशमी कुर्ते की मोहकता कितनी बढ़ जाएगी। कोई खतरे की बात भी नहीं। मजे से हाथ में लिए खड़े हैं, गुल टप-टप नीचे गिर रहा है और सबकी निगाहें उनकी तरफ लगी हुई हैं। उनकी दार्शनिक बुद्धि भी आत्मप्रदर्शन की लालसा से मुक्त न थी। फौरन महताबी ले ली, उदासीनता की एक अजब शान के साथ। मगर पहली ही महताबी छोड़ना शुरू की थी कि दूसरा बमगोला छूटा। आसमान कांप उठा। गजेन्द्र को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कान के पर्दे फट गए या सिर पर कोई हथोड़ा-सा गिर पड़ा। महताबी हाथ से छूटकर गिर पड़ी और छाती धड़कने लगी। अभी इस धमाके से सम्हलने न पाए थे कि दूसरा धमाका हुआ। जैसे आसमान फट पड़ा। सारे वायुमंडल में कंपन-सा आ गया, चिड़ियां घोसलों से निकल-निकल शोर मचाती हुई भागीं, जानवर रस्सियां तुड़ा-तुड़ाकर भागे और गजेन्द्र भी सिर पर पांव रखकर भागे, सरपट और सीधे घर पर आकर दम लिया। चुन्नू और मुन्नू दोनों घबरा गए। सूबेदार साहब के होश उड़ गए। तीनों आदमी बगटुट दौड़े हुए गजेन्द्र के पीछे चले। दूसरों ने जो उन्हें भागते देखा तो समझे शायद कोई वारदात हो गई। सब के सब उनके पीछे हो लिए। गांव में एक प्रतिष्ठित अतिथि का आना मामूली बात न थी। सब एक-दूसरे से पूछ रहे थे—मेहमान को हो क्या गया ? माजरा क्या है ? क्यों यह लोग दौड़े जा रहे हैं ?

एक पल में सैकड़ों आदमी सूबेदार साहब के दरवाजे पर हाल-चाल पूछने के लिए जमा हो गए। गांव का दामाद कुरूप होने पर भी दर्शनीय और बदहाल होते हुए भी सबका प्रिय होता है।

सूबेदार ने सहमी हुई आवाज से पूछा—तुम वहां से क्यों भाग आए, भइया ?

गजेन्द्र को क्या मालूम था कि उसके चले आने से यह तहलका मच जाएगा। मगर उसके हाजिर दिमाग ने जवाब सोच लिया था और जवाब भी ऐसा कि गांव वालों पर उसकी अलौकिक दृष्टि की धाक जमा दे।

बोला—कोई खास बात न थी, दिल में कुछ ऐसा ही आया कि यहां से भाग जाना चाहिए।

"नहीं, कोई बात जरूर थी।"

"आप पूछकर क्या करेंगे ? मैं उसे जाहिर करके आपके आनंद में विघ्न नहीं डालना चाहता।"

"जब तक बतला न दोगे बेटा, हमें तसल्ली न होगी। सारा गांव घबराया हुआ है।"

गजेन्द्र ने फिर सूफियों का-सा चेहरा बनाया, आंखें बंद कर लीं, जम्हाइयां लीं और

आसमान की तरफ देखकर बोले—बात यह है कि ज्यों ही मैंने महताबी हाथ में ली, मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने उसे मेरे हाथ से छीनकर फेंक दिया। मैंने कभी आतिशबाजियां नहीं छोड़ीं, हमेशा उनको बुरा-भला कहता रहा हूं। आज मैंने वह काम किया जो मेरी अंतरात्मा के खिलाफ था। बस, गजब ही तो हो गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है। शर्म से मेरी गर्दन झुक गई और मैं इसी हालत में वहां से भागा। अब आप लोग मुझे माफ करें, मैं आपके जश्न में न शरीक हो सकूंगा।

सूबेदार साहब ने इस तरह गर्दन हिलाई कि जैसे उनके सिवा वहां कोई इस अध्यात्म का रहस्य नहीं समझ सकता। उनकी आंखें कह रही थीं—आती हैं तुम लोगों की समझ में यह बातें ? तुम भला क्या समझोगे, हम भी कुछ-कुछ ही समझते हैं।

होली तो नियत समय पर जलाई गई थी मगर आतिशबाजियां नदी में डाल दी गई। शरीर लड़कों ने कुछ इसलिए छिपाकर रख लीं कि गजेन्द्र चले जाएंगे तो मजे से छुड़ाएंगे।

श्यामदुलारी ने एकांत में कहा—तुम तो वहां से खूब भागे !

गजेन्द्र अकड़कर बोले—भागता क्यों, भागने की तो कोई बात न थी।

"मेरी तो जान निकल गई कि न मालूम क्या हो गया। तुम्हारे ही साथ मैं भी दौड़ी आई। टोकरी-भर आतिशबाजी पानी में फेंक दी गई।"

"यह तो रुपये को आग में फूंकना है।"

"होली में भी न छोड़ें तो कब छोड़ें। त्योहार इसलिए तो आते हैं।"

"त्योहार में गाओ-बजाओ, अच्छी-अच्छी चीजें पकाओ-खाओ, खैरात करो, यार-दोस्तों से मिलो, सबसे मुहब्बत से पेश आओ, बारूद उड़ाने का नाम त्योहार नहीं है।"

रात के बारह बज गए थे। किसी ने दरवाजे पर धक्का मारा। गजेन्द्र ने चौंककर पूछा—यह धक्का किसने मारा ?

श्यामा ने लापरवाही से कहा—बिल्ली-विल्ली होगी।

कई आदमियों के फट-फट करने की आवाजें आई, फिर किवाड़ पर धक्का पड़ा। गजेन्द्र को कंपकंपी छूट गई, लालटेन लेकर दराज से झांका तो चेहरे का रंग उड़ गया—चार-पांच आदमी कुर्ते पहने, पगड़ियां बांधे, दाढ़ियां लगाए, कंधे पर बंदूकें रखे किवाड़ को तोड़ डालने की जबर्दस्त कोशिश में लगे हुए थे। गजेन्द्र कान लगाकर उनकी बातें सुनने लगा—

"दोनों सो गए हैं, किवाड़ तोड़ डालो, माल अलमारी में है।"

"और अगर दोनों जाग गए ?"

"औरत क्या कर सकती है, मर्द को चारपाई से बांध देंगे।"

"सुनते हैं गजेन्द्रसिंह कोई बड़ा पहलवान है।"

"कैसा ही पहलवान हो, चार हथियारबंद आदमियों के सामने क्या कर सकता है।"

गजेन्द्र के काटो तो बदन में खून नहीं ! श्यामदुलारी से बोले—यह डाकू मालूम होते हैं। अब क्या होगा, मेरे तो हाथ-पांव कांप रहे हैं !

"चोर-चोर पुकारो, जाग हो जाएगी, आप भाग जाएंगे। नहीं मैं चिल्लाती हूं। चोर का दिल आधा।"

"ना-ना, कहीं ऐसा गजब न करना। इन सबों के पास बंदूकें हैं। गांव में इतना

सन्नाटा क्यों है ? घर के आदमी क्या हुए ?"

"भइया और मुन्नू दादा खलिहान में सोने गए हैं, काका दरवाजे पर पड़े होंगे, उनके कानों पर तोप छूटे तब भी न जागेंगे।"

"इस कमरे में कोई दूसरी खिड़की भी तो नहीं है कि बाहर आवाज पहुंचे। मकान हैं या कैदखाने।"

"मैं तो चिल्लाती हूं।"

"अरे नहीं भाई, क्यों जान देने पर तुली हो। मैं तो सोचता हूं, हम दोनों चुप साधकर लेट जाएं और आंखें बंद कर लें। बदमाशों को जो कुछ ले जाना हो ले जाएं, जान तो बचे। देखो, किवाड़ हिल रहे हैं। कहीं टूट न जाएं। हे ईश्वर, कहां जाएं, इस मुसीबत में तुम्हारा ही भरोसा है। क्या जानता था कि यह आफत आने वाली है, नहीं आता ही क्यों ? बस, चुप्पी ही साध लो। अगर हिलाए-विलाएं तो भी सांस मत लेना।"

"मुझसे तो चुप्पी साधकर पड़ा न रहा जाएगा।"

"जेवर उतार कर रख क्यों नहीं देतीं, शैतान जेवर ही तो लेंगे।"

"जेवर तो न उतारूंगी चाहे कुछ ही क्यों न हो जाए।"

"क्यों जान देने पर तुली हुई हो ?"

"खुशी से तो जेवर न उतारूंगी, जबरदस्ती की और बात है।"

"खामोश, सुनो सब क्या बातें कर रहे हैं।"

बाहर से आवाज आई—किवाड़ खोल दो नहीं तो हम किवाड़ तोड़कर अंदर आ जाएंगे।

गजेन्द्र ने श्यामदुलारी की मिन्नत की—मेरी बात मानो श्यामा, जेवर उतारकर रख दो, मैं वादा करता हूं बहुत जल्द नए जेवर बनवा दूंगा।

बाहर से आवाज आई—क्यों, शामतें आई हैं ! बस, एक मिनट की मुहलत और देते हैं, अगर किवाड़ न खोले तो खैरियत नहीं।

गजेन्द्र ने श्यामदुलारी से पूछा—खोल दूं ?

"हां, बुला लो, तुम्हारे भाई-बंद हैं न ? वह दरवाजे को बाहर से ढकेलते हैं, तुम अंदर से बाहर को ठेलो।"

"और जो दरवाजा मेरे ऊपर गिर पड़े ? पांच-पांच जवान हैं।"

"वह कोने में लाठी रखी है, लेकर खड़े हो जाओ।"

"तुम पागल हो गई हो ?"

"चुन्नी दादा होते तो पांचों को गिराते।"

"मैं लट्ठबाज नहीं हूं।"

"तो आओ मुंह ढांपकर लेट जाओ, मैं उस सबों से समझ लूंगी।"

"तुम्हें तो औरत समझकर छोड़ देंगे, माथे मेरे जाएगी।"

"मैं तो चिल्लाती हूं।"

"तुम मेरी जान लेकर छोड़ोगी !"

"मुझसे तो अब सब्र नहीं होता, मैं किवाड़ खोले देती हूं।"

उसने दरवाजा खोल दिया। पांचों चोर कमरे में भड़भड़ाकर घुस आए। एक ने अपनी

साथी से कहा—मैं इस लौंडे को पकड़े हुए हूं, तुम औरत के सारे गहने उतार लो।

दूसरा बोला—इसने तो आंखें बंद कर लीं। अरे, तुम आंखें क्यों नहीं खोलते जी ?

तीसरा—यार, औरत तो हसीन है !

चौथा—सुनती है ओ मेहरिया, जेवर दे दे नहीं गला घोंट दूंगा।

गजेन्द्र दिल में बिगड़ रहे थे, यह चुड़ैल जेवर क्यों नहीं उतार देती।

श्यामदुलारी ने कहा—गला घोंट दो, चाहे गोली मार दो, जेवर न उतारूंगी।

पहला—इसे उठा ले चलो। यों न मानेगी, मंदिर खाली है।

दूसरा—बस, यही मुनासिब है। क्यों री छोकरी, हमारे साथ चलेगी ?

श्यामदुलारी—तुम्हारे मुंह में कालिख लगा दूंगी।

तीसरा—न चलेगी तो इस लौंडे को ले जाकर बेच डालेंगे।

श्याम—एक-एक के हथकड़ी लगवा दूंगी।

चौथा—क्यों इतना बिगड़ती है महारानी, जरा हमारे साथ चली क्यों नहीं चलती। क्या हम इस लौंडे से भी गए-गुजरे हैं। क्या रह जाएगा, अगर हम तुझे जबर्दस्ती उठा ले जाएंगे। यों सीधी तरह नहीं मानती हो। तुम जैसी हसीन औरत पर जुल्म करने को जी नहीं चाहता।

पांचवां—या तो सारे जेवर उतार कर दे दो या हमारे साथ चलो।

श्यामदुलारी—काका आ जाएंगे तो एक-एक की खाल उधेड़ डालेंगे।

पहला—यह यों न मानेगी, इस लौंडे को उठा ले चलो। तब आप ही पैरों पड़ेगी।

दो आदमियों ने एक चादर से गजेन्द्र के हाथ-पांव बांधे। गजेन्द्र मुर्दे की तरह पड़े हुए थे, सांस तक न आती थी, दिल में झुंझला रहे थे—हाय, कितनी बेवफा औरत है, जेवर न देगी चाहे यह सब मुझे जान से मार डालें। अच्छा, जिंदा बचूंगा तो देखूंगा। बात तक तो पूछूं नहीं।

डाकुओं ने गजेन्द्र को उठा लिया और लेकर आंगन में जा पहुंचे तो श्यामदुलारी दरवाजे पर खड़ी होकर बोली—इन्हें छोड़ दो तो मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूं।

पहला—पहले ही क्यों न राजी हो गई थी। चलेगी न ?

श्यामदुलारी—चलूंगी। कहती तो हूं।

तीसरा—अच्छा तो चल। हम इसे छोड़े देते हैं।

दोनों चोरों ने गजेन्द्र को लाकर चारपाई पर लिटा दिया और श्यामदुलारी को लेकर चल दिए। कमरे में सन्नाटा छा गया। गजेन्द्र ने डरते-डरते आंखें खोलीं। कोई नजर न आया। उठकर दरवाजे से झांका। सहन में भी कोई न था। तीर की तरह निकलकर सदर दरवाजे पर आए लेकिन बाहर निकलने का हौसला न हुआ। चाहा कि सूबेदार साहब को जगाएं, मुंह से आवाज न निकली।

उसी वक्त कहकहे की आवाज आई। पांच औरतें चुहल करती हुई श्यामदुलारी के कमरे में आईं। गजेन्द्र का वहां पता न था।

एक—कहां चले गए ?

श्यामदुलारी—बाहर चले गए होंगे।

दूसरी—बहुत शर्मिंदा होंगे।

तीसरी—डर के मारे उनकी सांस तक बंद हो गई थी।

गजेन्द्र ने बोलचाल सुनी तो जान में जान आई। समझे शायद घर में जाग हो गई। लपककर कमरे के दरवाजे पर आए और बोले—जरा देखिए श्यामा कहां है ? मेरी तो नींद ही न खुली। जल्द किसी को दौड़ाइए।

यकायक उन्हीं औरतों के बीच में श्यामा को खड़े हंसते देखकर हैरत में आ गए।

पांचों सहेलियों ने हंसना और तालियां पीटना शुरू कर दिया।

एक ने कहा—वाह जीजाजी, देख ली आपकी बहादुरी।

श्यामदुलारी—तुम सबकी सब शैतान हो।

तीसरी—बीवी तो चोरों के साथ चली गई और आपने सांस तक न ली।

गजेन्द्र समझ गए, बड़ा धोखा खाया। मगर जुबान के शेर थे, फौरन बिगड़ी बात बना ली, बोले—तो क्या करता, तुम्हारा स्वांग बिगाड़ देता ! मैं भी इस तमाशे का मजा ले रहा था। अगर सबों को पकड़कर मूंछें उखाड़ लेता तो तुम कितनी शर्मिंदा होतीं। मैं इतना बेरहम नहीं हूं।

सबकी सब गजेन्द्र का मुंह देखती रह गई।

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू। उर्दू मासिक पत्रिका 'जामिया', जनवरी, 1935 में प्रकाशित। उर्दू कहानी-संग्रह 'वारदात' में संकलित। हिन्दी रूप 'स्वांग' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

कातिल की माँ

रात को रामेश्वरी सोयी तो क्या ख्वाब देखती है कि विनोद ने किसी ऑफीसर को मार डाला है और कहीं रूपोश (गायब) हो गया है। पुलिस उसकी तलाश में बेगुनाहों को ज़दोकोब (मारपीट) कर रही है। और तमाम शहर में शोरोशर (शोर और फसाद) बरपा है। इसी घबराहट में उसकी आँख खुल गई। देखा तो विनोद सो रहा था। उठकर विनोद के पास गयी। प्यार से सिर पर हाथ फेरने लगी और सोचने लगी, मैंने क्या बेसिर-पैर का ख्वाब देखा। उसके साथ कुछ मुतफक्किर (चिन्तित) भी हो गयी। फिर लेटी, मग़र नींद न आयी। दिल में एक खौफ़ समा गया था।

सुबह को विनोद ने माँ को मुतफक्किर देखकर पूछा, "अम्माँ, आज उदास क्यों हो ?"

माँ विनोद को मुहब्बत से लबरेज़ आँखों से देखकर बोली, "बेटा ! तुमसे क्या कहूँ ? रात को मैंने एक बहुत बुरा ख्वाब देखा है, जैसे तुम किसी अफ़सर को मारकर भाग गये हो और बेगुनाहों पर मार पड़ रही है।"

विनोद ने हँसकर कहा, "क्या तुम चाहती थी कि मैं पकड़ लिया जाता ?"

माँ ने कहा, "मैं तो चाहती हूँ कि तुम ऐसे कार्यों के नज़दीक ही न जाओ, पकड़े जाने का सवाल ही क्यों उठे। हमारा धरम है कि खुद जिएँ और दूसरों को भी जीने दें। दूसरों को मारकर खुद जीना मेरे धरम के खिलाफ़ है।"

विमोद–"धरम और नीति का ज़माना नहीं है।"

माँ–"धरम और नीति को हमेशा फतह हासिल हुई है। और आइंदा भी होगी। स्वराजज्य क़त्ल-खून से नहीं मिलता, त्याग, तप और आत्मशुद्धि से मिलता है। लालच छोड़ते नहीं, बुरी ख्वाहशात (इच्छाएँ) छोड़ते नहीं, अपनी बुराइयाँ देखते नहीं, इस पर दावा है स्वराज्य लेने का ! यह समझ लो जो स्वराज्य क़त्ल व खून से मिलेगा वह क़त्ल व खून पर ही कायम रहेगा। आवाम की कोशिश से जो स्वराज्य मिलेगा, वह मुल्क की चीज़ होगी, अफराद (जनता) की चीज होगी और थोड़े से आदमियों का एक गिरोह तलवार के ज़ोर से इन्तज़ाम न करेगा। हम अवाम का स्वराज्य चाहते हैं, क़त्ल व खून की ताक़त रखने वाले गिरोह का नहीं।"

विनोद ने कहा, "तुम तो स्टेज पर खड़ी होकर बोलती। यहाँ कौन सुनने वाला है ?"

माँ ने कहा, "बेटा ! तुम हँसते हो और मेरा जी दुःखी है। कई दिन से दायीं आँख बराबर फड़क रही है। यक़ीनन कोई मुसीबत आने वाली है।"

विनोद ने कहा, "मैं मुसीबत से नहीं डरता। अभी कौन-सा सुख भोग रहे हैं, जो मुसीबतों से डरें।"

यह कहता हुआ विनोद बाहर चला गया।

2

आज सुबह ही से विनोद का पता न था। मालूम नहीं कहाँ गया ? रामेश्वरी ने पहले तो समझा कि काँग्रेस के दफ़्तर में होगा, लेकिन जब एक बज गया और वह लौटकर न आया तो उसे फिकर हुई। दस बजे के बाद वह कहीं न रुकता था। फिर सोचा; शायद किसी काम से चला गया हो। रात का ख्वाब उसे बेचैन व परेशान करने लगा और वक्त के साथ-साथ बेचैनी भी बढ़ने लगी। जब शाम हो गयी तो उससे न रहा गया। कांग्रेस के दफ़्तर गयी।

वहाँ दरयाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि आज विनोद सुबह से एक बार भी नहीं आया। रामेश्वरी का दिल किसी नामालूम खौफ़ से परेशान हो गया और वह ख्वाब मुजस्सम (साकार) बनकर उसे डसने लगा। कुछ देर तक वह हवासबाख्ता (चेतना शून्य) चुपचाप खड़ी रही फिर ख़याल आया शायद घर गया हो। फ़ौरन घर लौटी। लेकिन यहाँ विनोद का अब तक पता न था।

ज्यूँ-ज्यूँ अँधेरा होता जाता था उसकी जान खुश्क होती जाती थी। इस पर दायीं आँख भी फड़कने लगी। ख़यालत और भी खौफ़नाक सूरत अख़्तियार करने लगे। कोई देवी या देवता न बचा जिसकी उसने मन्नत न मानी हो। कभी सहन में आकर बैठ जाती, कभी दरवाज़े पर जाकर खड़ी होती। उसका दिल किसी खौफ़जदा तायर (भयभीत पक्षी) की मानिंद कभी नशेमन (घोंसले) में आ बैठता और कभी शाख़ पर। खाना पकाने का ख़याल किसे था ! बार-बार यही सोचती–भगवान, मैंने ऐसा क्या क़सूर किया है, जिसकी सज़ा दे रहे हो। अगर कोई ग़लती हो गई हो तो मुआफ करो। मैं तो खुद ही मुसीबतज़दा (पीड़ित)

हूँ। अब और बर्दाश्त करने की ताक़त मुझमें नहीं है।

रामेश्वरी सर पर हाथ रखकर रोने लगी। आसमान पर स्याह बादल घिरे हुए थे। नन्ही-नन्ही बूँदें पड़ रही थीं। ऐसा मालूम होता था, जैसे वे बेकस के साथ कोई रोने वाला न देखकर उसका साथ देती हों।

3

निस्फ शब (अर्द्धरात्रि) गुज़र चुकी थी। रामेश्वरी अभी तक दरवाजे पर खड़ी विनोद का रास्ता देख रही थी। इतने में कोई शख़्स निहायत तेज़ी से दौड़ा हुआ आया और दरवाज़े पर खड़ा हो गया। उसके जिस्म पर एक स्याह कंबल था जिसे उसने इस तरह ओढ़ लिया था कि मुँह का बड़ा हिस्सा छुप गया था।

रामेश्वरी ने डरकर पूछा, "कौन है ?"

वह विनोद था। जल्दी से अन्दर दाख़िल होकर माँ से दरवाजा बन्द करने को कहा, फिर आँगन में आकर कंबल को रख दिया और खाने को माँगा।

रामेश्वरी ने ख़ायफ (भयभीत) होकर पूछा, "तुम आज दिन भर कहाँ थे ? मैं तमाम दिन तुम्हें ढूँढ़ती रही।"

विनोद ने क़रीब आकर कहा, "मैं एक निहायत ज़रूरी काम से गया था और अभी फिर लौट जाना है। सिर्फ़ तुमसे यह कहने आया हूँ कि अब दो-चार महीने में यहाँ न रह सकूँगा। डरने की कोई बात नहीं है। मैंने वही किया है, जो मैं अपना धरम समझता था। हिफाज़ते-जाने (जीवन-रक्षा) की ख़ातिर मुझे यहाँ से भाग जाना ज़रूरी है।"

रामेश्वरी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। बोली, "क्यों बेटा ! तुमने वही किया जिसका मुझे खौफ़ था। ईश्वर ने तुम्हारी बुद्धि क्यों हर ली ?"

विनोद ने कहा, "न ईश्वर ने मेरी बुद्धि हरी है, न मुझ पर कोई आफ़त आयी है। मैंने छावनी में एक ऑफ़िसर को मार डाला है। ऐसा निशाना मारा, एक ही गोली में ठंडा हो गया। हिला तक नहीं।"

"दया वहाँ कोई और न था ?"

"कोई नहीं, बिल्कुल सन्नाटा था।"

"पुलिस को ख़बर तो हो गयी होगी ?"

"हाँ, कई शख़्स पकड़े गये हैं। मैं तो साफ बच निकला।"

रामेश्वरी की हालत बदल गई। बेटे की मुहब्बत में अश्कबार ((अश्रुपूर्ण)) आँखें गुस्से से सुर्ख़ हो गयीं। बोली, "मैं इसे बचना नहीं कहती कि मुजरिम तो मुँह छुपाकर भाग जाए और बेगुनाहों को सज़ा मिले। तुम ख़ूनी हो। मुझे मालूम नहीं था कि मेरी कोख से ऐसा सपूत पैदा होगा, वरना पैदा होते ही गला घोंट देती। अगर मर्द है तो जाकर अदालत में अपना कसूर तस्लीम कर ले, वरना उन बेगुनाहों का खून भी तेरे सिर पर होगा।"

यह फटकार सुनकर विनोद को गुस्सा आ गया। बोला, "तुम्हारे कहने से मैं खूनी नहीं हुआ जाता। और लोग यही काम करते हैं तो लीडर हो जाते हैं। उनकी जय-जयकार होती है। लोग उनकी पूजा करते हैं। मैंने किया तो हत्यारा हो गया।"

रामेश्वरी—"हत्यारा तो तू है ही। और जो दूसरों की हत्या करते हैं वे तमाम हत्यारे हैं। तेरी माँ होकर मैं भी पाप की हिस्सेदार हो गई। मेरे मुँह में भी स्याही लग गई। लीडर वह होते हैं जो दूसरों के लिए मरते हैं। जो दूसरों की हिफाज़त करे, वही बहादुर और सूरमा है। उन्हीं का जन्म मुबारक है। उन्हीं की माएँ खुशनसीब हैं। तुझे शर्म नहीं आती कि तू खून करके अपनी बड़ाई कर रहा है।"

विनोद ने फिर कम्बल उठा लिया और बोला, "तुम मेरी माँ न होती तो इसी वक्त लगे हाथ मैं तुम्हारा काम भी तमाम कर देता। जीते-जी फिर तुम्हारा मुँह न देखूँगा।"

यह कहता हुआ वह जोश में घर से निकल पड़ा।

4

दम भर रामेश्वरी भी उसी जोश में घर से निकली। बेटा है तो क्या ? वह यह नाइन्साफ़ी नहीं गवारा कर सकती, वह उसी वक्त कोतवाली में जाकर उस खून की ख़बर दे देगी। विनोद का फाँसी पर चढ़ना इससे कहीं बेहतर है कि बेगुनाहों को फाँसी हो।

लेकिन कुछ दूर चलने के बाद माँ का दिल बेचैन हो गया। वह लौट पड़ी और घर आकर खूब रोयी। जिस बेटे को उसने ऐसी-ऐसी मुसीबतें झेलकर पाला, क्या उसे फाँसी दिला देगी ?

लेकिन फिर खयाल आया, उन बेचारों की माँएँ भी तो होंगी जो बेगुनाह फाँसी पाएँगे। उन्हें भी तो अपने बेटे इतने ही प्यारे होंगे। नहीं-नहीं, वह यह जुल्म नहीं कर सकती। उसे बग़ैर बेटे के होना मंजूर है, मगर उसके देखते बेगुनाहों का खून न होगा।

रामेश्वरी इसी उलझन में पड़ी हुई थी। जब कोई रास्ता न नज़र आता तो वह रोने लग जाती थी। फिर सोचती, क्यों न खुदकशी कर लूँ कि तमाम दुखों से नजात मिल जाए, लेकिन उसकी मौत से उन बेगुनाहों की जान तो बचेगी। उन माताओं का कलेजा तो न ठंडा होगा। वे उस पाप से तो न आज़ाद होंगे। वह अपने आप ही बोल उठी—ख्वाह कुछ हो, मैं बेगुनाहों का खून न होने दूँगी। इजलास में जाकर साफ़-साफ़ कह दूँगी कि गुनाहगार मैं हूँ, क्योंकि मेरे बेटे ने यह खून किया है। हम दोनों ही कसूरबार हैं। दोनों को फाँसी दीजिए। मैं अपने धरम से मुनहरिफ (विमुख) न हूँगी; ख्वाह मेरी आँखों के सामने ही विनोद की बोटी-बोटी क्यों न कर डाली जाय। हाँ; मैं अपनी आँखों से उसको फाँसी पर चढ़ता देखूँगी; क्योंकि मैंने उसको जन्म दिया है। भगवान् ! मुझे ताक़त दो कि अपने फर्ज़ पर डटी रहूँ। मैं कमजोर हूं, पापिन हूँ, हत्यारी हूँ।

रामेश्वरी बेहोश होकर गिर पड़ी।

5

जब रामेश्वरी को होश आया तो उसका इरादा मुस्तहकम (पक्का) हो चुका था, मगर दिली तकलीफ़ हो रही थी। क्या इसीलिए बेटे को जन्म दिया था ? इसलिए पाला-पोसा था कि एक दिन फाँसी पर चढ़ते देखूँगी ? विनोद उसकी जिंदगी का सहारा था। आज उसी विनोद से उसका नाता टूट रहा है। विनोद की सूरत उसकी आँखों के सामने फिरने लगी।

एक दिन वह था कि वह उसे छाती से लगाये फिरती थी। बड़े दुख झेलकर भी खुश थी। एक दिन यह है कि उसे फाँसी दिलाने जा रही है। विनोद की किताबें और कपड़े कमरे में रखे थे। उसने एक-एक चीज़ को छाती से लगाया। आह ! फर्ज़ का रास्ता किस कदर दुश्वार गुजार है। विनोद को आख़िरी बार गले लगाने और उसका आख़िरी बोसा लेने के लिए उसका दिल बेचैन हो गया। क्या लड़के को सज़ा देते हुए माँ मुहब्बत छोड़ देती है ?

रामेश्वरी विनोद को सज़ा देने जा रही थी, जोश-मुहब्बत से भरी हुई।

6

एक हफ़्ता गुज़र गया। पुलिस ने साज़िश का पता लगाया। शहर के दस जवान गिरफ़्तार कर लिये गये। उन्हीं में से एक सरकारी गवाह भी बन गया और मजिस्ट्रेट के इजलास में मुक़दमा दायर हो गया।

विनोद का उसी दिन से पता न था। रामेश्वरी फर्ज़ और मुहब्बत के दरमियान उस किश्ती की मानिंद डाँवाडोल हो रही थी जिसके ऊपर तूफ़ानी आसमान हो और नीचे तूफ़ानी समन्दर ! कभी फर्ज़ कलेजे को मज़बूत कर देता, कभी मुहब्बत दिल को कमज़ोर कर देती। लेकिन ज्यूँ-ज्यूँ दिन गुज़रते थे, फर्ज़ पसपा (पराजित) होता जाता था। नयी-नयी दलीलें उसके अहसासे-फर्ज़ को कमज़ोर करती जाती थीं। जब तमाम काम ईश्वर की मर्जी से होता है तो इसमें भी उसकी मर्ज़ी होगी। यही सबसे ज़बर्दस्त दलील थी। इन सात दिनों में उसने सिर्फ़ पानी पीकर दिन काटे थे और वह पानी भी आँखों के रास्ते निकल जाता था। ऐसी हो गई थी, जैसे बरसों की मरीज हो।

दस बजे का वक्त था। वह कांग्रेस के दफ़्तर की तरफ चली। इसी वक्त रोजाना एक बार विनोद का पता लेने के लिये यहाँ आया करती थी।

नागहाँ (नागाह) उसने नौ-दस जवानों को हथकड़ियाँ पहने एक दर्जन मुसल्लह (सशस्त्र) पुलिस के सिपाहियों के पंजे में गिरफ़्तार देखा। पीछे थोड़ी दूर पर कुछ मर्द-औरत सर झुकाये रंजो-यास (शोकव निराशा) की तस्वीर बने आहिस्ता-आहिस्ता चले जा रहे थे।

रामेश्वरी ने दौड़कर एक सिपाही से पूछा—"क्या ये कांग्रेस के आदमी हैं ?"

सिपाही ने कहा—"कांग्रेस वालों के सिवा अंग्रेज़ों को कौन मारेगा ?"

"कौन मारा गया ?"

"एक पुलिस के सार्जेन्ट को इन सबने क़त्ल कर दिया। आज आठवाँ दिन है।"

"कांग्रेस के आदमी हत्या नहीं करते।"

"कसूर न साबित होता तो आप छूट जायेंगे।"

रामेश्वरी दम भर वहीं खड़ी रही। फिर उन्हीं लोगों के पीछे-पीछे कचहरी की तरफ चली। फर्ज़ यह नयी ताक़त पाकर सँभल गया। नहीं ! वह इतने बेकसूर नौजवानों को मौत के मुँह में न जाने देगी। अपने खूनी बेटे की हिफाज़त के लिए इतने बेगुनाहों का खून न होने देगी।

कचहरी में बहुत बड़ा मजमा था। रामेश्वरी ने एक अर्दली से पूछा—"क्या साहब आ गये ?"

उसने जवाब दिया—"अभी नहीं आये। आते ही होंगे।"

"बहुत देर से आते हैं, बारह तो बजे होंगे।"

अर्दली ने झुँझलाकर कहा–"तो क्या वह तुम्हारे नौकर हैं कि जब तुम्हारी मर्ज़ी हो आकर बैठ जाएँ। बादशाह हैं, जब मर्जी होगी आएँगे।"

रामेश्वरी चुप हो गई।

उसके पास ही कई औरतें बैठी हुई थीं। एक ने पूछा–"क्यों बहन ! तुम्हारे घर का भी कोई लड़का पकड़ा गया है ?"

रामेश्वरी अपनी फिक्रों में डूबी हुई थी। कुछ न बोली।

उस औरत ने फिर कहा–"क्या कहूँ ? न जाने किस पापी ने खून किया। आप तो मुँह में स्याही लगाकर छुप रहा और हम लोगों के मत्थे मढ़ गयी।"

कई औरतें रो रही थीं। रामेश्वरी भी रोने लगी।

एक जईफ (बूढ़ी) औरत उसे समझाने लगी -"बहन, चुप हो जाओ। जो हमारी किस्मत में लिखा है, वही होगा। मेरा बेटा बिल्कुल बेकसूर पकड़ा गया है। कांग्रेस में काम करता था। तुम्हारा कौन गिरफ़्तार है ?"

रामेश्वरी ने उसे भी कुछ जवाब न दिया। बार-बार लोगों से पूछती थी, "साहब कब तक आएँगे ?"

दो बजे साहब की मोटर आयी। इजलास में हलचल मच गई। ज्योंही साहब कुर्सी पर बैठे, सरकारी वकील ने यह खून का मुकदमा पेश कर दिया। पुलिस के अफ़सर आ गये। मुलजिम भी सामने खड़े कर दिये गये।

ऐन उसी वक्त रामेश्वरी ने इलजास के रूबरू आकर सलाम किया, और साफ़ लफ़्जों में बोली–"हुजूर ! इस मुकदमे के पेश होने से पहले मैं कुछ अर्ज करना चाहती हूँ।"

सबके सब उसकी तरफ हैरत से देखने लगे। कमरे में सन्नाटा छा गया।

साहब ने उसकी तरफ तेज़ निगाहों से देखकर कहा–"क्या बात है ?"

रामेश्वरी–"मैं इसलिए आपके सामने आयी हूँ कि इस मुकदमे का सच्चा हाल बयान करूँ। सार्जेन्ट का खून करने वाला मेरा बेटा है। यह तमाम मुलजिम बेगुनाह हैं।"

साहब ने मुतहय्यिर (चकित) होकर पूछा–"तुम अपने होश में हो या नहीं ?"

रामेश्वरी ने कहा–"मैं अपने होश में हूँ और बिल्कुल सच कहती हूँ। सार्जेन्ट को मेरे बेटे ने मारा है। उसका नाम विनोद बिहारी है। मेरे घर में उसका फ़ोटो रखा हुआ है। वह इसी दिन से लापता हो गया है। मैं अपने होश में हूँ। अपने बेटे से मेरी कोई दुश्मनी नहीं है। मैं उसी तरह प्यार करती हूँ, जैसे हर एक बेवा अपने इकलौते बेटे को। एक हफ़्ता पेश्तर (पहले) वही मेरा सब कुछ था, लेकिन जब मेरे हरचंद मना करने पर भी उसने यह खून किया तो मैंने समझ लिया मेरा कोई बेटा न था। उसकी जान बचाने के लिए मैं इतने घर बर्बाद न होने दूँगी। मेरी इन बहनों को भी तो अपनी औलाद उतनी ही प्यारी है। उन्हें बेऔलाद बनाकर मैं औलाद वाली नहीं रहना चाहती। मैंने असल वाकिया बयान कर दिया। इन्साफ़ आपके हाथ में है।

कमरे में हलचल मच गयी। मर्द, औरत सबने रामेश्वरी को चारों तरफ़ से घेर लिया। कई औरतें उसके क़दमों पर सिर रखकर रोने लगीं। अपनी खुशी में किसी को इस बात का ख़याल न रहा कि उस बदनसीब के दिल पर क्या गुज़र रही है। वह बेहिस्सो हरकत

(चेतन्यशून्य) दरमियान में खड़ी थी। न कुछ सूझता था, न कुछ सुनाई देता था। बस विनोद की सूरत आँखों के सामने थी।

यकायक मज्जे में से एक आदमी निकलकर रामेश्वरी के सामने आया और उसके सीने में ख़ंजर उतार दिया। रामेश्वरी चीख़ मारकर गिर पड़ी और हमलावर के चेहरे की तरफ देखकर चौंक पड़ी। उसके मुँह से बेअख्तियार निकल गया, "अरे तू, है, विनोद!"

उसकी आँखों से आँसू के दो कतरे (बूँदे) निकले और आँखें हमेशा के लिए बंद हो गयीं।

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू। उर्दू कहानी संग्रह 'वारदात' (पांडुलिपि तैयार : मार्च 1935, प्रथम संस्करण : 1938 में संकलित। हिन्दी रूप 'सोलह अप्राप्य कहानियां' तथा 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में इसी शीर्षक से संकलित।]

कोई दुःख न हो तो बकरी खरीद लो[1]

उन दिनों दूध की तकलीफ थी। कई डेरी फार्मों की आजमाइश की, अहीरों का इम्तहान लिया, कोई नतीजा नहीं। दो-चार दिन तो दूध अच्छा मिलता फिर मिलावट शुरू हो जाती। कभी शिकायत होती दूध फट गया, कभी उसमें से नागवार बू आने लगती, कभी मक्खन के रेजे निकलते। आखिर एक दिन एक दोस्त से कहा—भाई, आओ साझे में एक गाय ले लें। तुम्हें भी दूध का आराम होगा, मुझे भी। लागत आधी-आधी, खर्च आधा-आधा, दूध भी आधा-आधा। दोस्त साहब राजी हो गए। मेरे घर में जगह न थी और गोबर वगैरह से मुझे नफरत है। उनके मकान में काफी जगह थी इसलिए प्रस्ताव हुआ कि गाय उन्हीं के घर रहे। इसके बदले में उन्हें गोबर पर एकछत्र अधिकार रहे। वह उसे पूरी आजादी से पाथें, उपले बनाएं, घर लीपें, पड़ोसियों को दें या उसे किसी आयुर्वेदिक उपयोग में लाएं, इकरार करने वाले को इसमें किसी प्रकार की आपत्ति या प्रतिवाद न होगा और इकरार करने वाला सही होश-हवास में इकरार करता है कि वह गोबर पर कभी अपना अधिकार जमाने की कोशिश न करेगा और न किसी को उसे इस्तेमाल करने के लिए आमादा करेगा।

दूध आने लगा, रोज-रोज की झंझट से मुक्ति मिली। एक हफ्ते तक किसी तरह की शिकायत न पैदा हुई। गरम-गरम दूध पीता था और खुश होकर गाता था—

रब का शुक्र अदा कर भाई जिसने हमारी गाय बनाई।
ताजा दूध पिलाया उसने लुत्फे-हयात चखाया उसने।
दूध में भीगी रोटी मेरी उसके करम ने बख्शी सेरी।
खुदा की रहमत की है मूरत कैसी भोली-भाली सूरत।

मगर धीरे-धीरे यहां भी पुरानी शिकायतें पैदा होने लगीं। यहां तक नौबत पहुंची कि दूध सिर्फ नाम का रह गया। कितना ही उबालो, न कहीं मलाई का पता न मिठास। पहले

1. एक फारसी कहावत

तो शिकायत कर लिया करता था, इससे दिल का बुखार निकाल जाता था। शिकायत से सुधार न होता तो दूध बंद कर देता था। अब तो शिकायत का भी मौका न था, बंद कर देने का जिक्र ही क्या। भिखारी का गुस्सा अपनी जान पर, पियो या नाले में डाल दो। आठ आने रोज का नुस्खा किस्मत में लिखा हुआ। बच्चा दूध को मुंह न लगाता, पीना तो दूर रहा। आधोंआध शक्कर डालकर कुछ दिनों दूध पिलाया तो फोड़े निकलने शुरू हुए और मेरे घर में रोज बमचख मची रहती थी। बीवी नौकर से फरमातीं—दूध ले जाकर उन्हीं के सर पटक आ। मैं नौकर को मना करता। वह कहतीं—अच्छे दोस्त हैं तुम्हारे, उसे शरम भी नहीं आती। क्या इतना अहमक है कि इतना भी नहीं समझता कि यह लोग दूध देखकर क्या कहेंगे। गाय को अपने घर मंगवा लो, बला से बदबू आएगी, मच्छर होंगे, दूध तो अच्छा मिलेगा। रुपये खर्चे हैं तो उसका मजा तो मिलेगा।

चड्ढा साहब मेरे पुराने मेहरबान हैं। खासी बेतकल्लुफी है उनसे। यह हरकत उनकी जानकारी में होती हो यह बात किसी तरह गले के नीचे नहीं उतरती। या तो उनकी बीवी की शरारत है या नौकर की लेकिन जिक्र कैसे करूं। और फिर उनकी बीवी से भी तो राह-रस्म है। कई बार मेरे घर आ चुकी हैं। मेरी बीवीजी भी उनके यहां कई बार मेहमान जा चुकी हैं। क्या वह यकायक इतनी बेवकूफ हो जाएंगी, सरीहन आंखों में धूल झोंकेंगी ! और फिर चाहे किसी की शरारत हो, मेरे लिए यह गैरमुमकिन था कि उनसे दूध की खराबी की शिकायत करता। खैरियत यह हुई कि तीसरे महीने चड्ढा का तबादला हो गया। मैं अकेले गाय रख न सकता था। साझा टूट गया। गाय आधे दामों में बेच दी गई। मैंने उस दिन इत्मीनान की सांस ली।

आखिर यह सलाह हुई कि एक बकरी रख ली जाए। वह बीच आंगन के एक कोने में पड़ी रह सकती है। उसे दुहने के लिए न ग्वाले की जरूरत, न उसका गोबर उठाने, नांद धोने, चारा-भूसा डालने के लिए किसी अहीरिन की जरूरत। बकरी तो मेरा नौकर भी आसानी से दुह लेगा। थोड़ी-सी चोकर डाल दी, चलिए किस्सा तमाम हुआ। फिर बकरी का दूध फायदेमंद भी ज्यादा है, बच्चों के लिए खासतौर पर। जल्दी हजम होता है, न गर्मी करे न सर्दी, स्वास्थ्यवर्द्धक है। संयोग से मेरे यहां जो पंडितजी मेरे मसौदे नकल करने आया करते थे, इन मामलों में काफी तजुर्बेकार थे। उनसे जिक्र आया तो उन्होंने एक बकरी की स्तुति गाई, उसका ऐसा कसीदा पढ़ा कि मैं बिन देखे ही उसका प्रेमी हो गया। पछांही नस्ल की बकरी है, ऊंचे कद की, बड़े-बड़े थन जो जमीन से लगते चलते हैं। बेहद कमखोर लेकिन बेहद दुधार। एक वक्त में दो-ढाई सेर दूध ले लीजिए। अभी पहली बार ही बियाई है। पच्चीस रुपये में आ जाएगी। मुझे दाम कुछ ज्यादा मालूम हुए लेकिन पंडितजी पर मुझे एतबार था। फरमाइश कर दी गई और तीसरे दिन बकरी आ पहुंची। मैं देखकर उछल पड़ा। जो-जो गुण बताए गए थे उनसे कुछ ज्यादा ही निकले। एक छोटी-सी मिट्टी की नांद मंगवाई गई, चोकर का भी इंतजाम हो गया। शाम को मेरे नौकर ने दूध निकाला तो सचमुच ढाई सेर। मेरी छोटी पतीली लबालब भर गई थी। अब मूसलों ढोल बजाएंगे। यह मसला इतने दिनों के बाद जाकर कहीं हल हुआ। पहले ही यह बात सूझती तो क्यों इतनी परेशानी होती। पंडितजी का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया। मुझे सवेरे तड़के और शाम को उसके सींग पकड़ने पड़ते थे तब आदमी दुह पाता था। लेकिन यह

तकलीफ इस दूध के मुकाबले में कुछ न थी। बकरी क्या है, कामधेनु है। बीवी ने सोचा इसे कहीं नजर न लग जाय इसलिए उसके थन के लिए एक गिलाफ तैयार हुआ, उसकी गर्दन में नीले चीनी के दानों का एक माला पहनाया गया। घर में जो कुछ जूठा बचता, देवीजी खुद जाकर उसे खिला आती थीं।

लेकिन एक ही हफ्ते में दूध की मात्रा कम होने लगी। जरूर नजर लग गई। बात क्या है। पंडितजी से हाल कहा तो उन्होंने कहा—साहब, देहात की बकरी है। जमींदार की। बेदरेग अनाज खाती थी और सारे दिन बाग में घूमा-चरा करती थी। यहां, बंधे-बंधे दूध कम हो जाए तो ताज्जुब नहीं। इसे जरा टहला दिया कीजिए।

लेकिन शहर में बकरी को टहलाए कौन और कहां ? इसलिए यह तय हुआ कि बाहर कहीं मकान लिया जाए। वहां बस्ती से जरा निकलकर खेत और बाग होंगे, कहार घंटे-दो घंटे टहला लाया करेगा। झटपट मकान बदला और गो कि मुझे दफ्तर आने-जाने में तीन मील का फासला तय करना पड़ता था लेकिन अच्छा दूध मिले तो मैं इसका दुगना फासला तय करने को तैयार था। यहां मकान खूब खुला हुआ था, मकान के सामने सहन था, जरा और बढ़कर आम और महुए वगैरह का बाग। बाग से निकलिए तो काछियों के खेत थे, किसी में आलू, किसी में गोभी। एक काछी से तय कर लिया कि रोजाना बकरी के लिए कुछ हरियाली दे जाया करे। मगर इतनी कोशिश करने पर भी दूध की मात्रा में कुछ खास बढ़ोत्तरी नहीं हुई। ढाई सेर की जगह मुश्किल से सेर भर दूध निकलता था लेकिन यह तस्कीन थी कि दूध खालिस है, यही क्या कम है।

मैं यह कभी नहीं मान सकता कि खिदमतगारी के मुकाबले में बकरी चराना ज्यादा जलील काम है। हमारे देवताओं और नबियों का बहुत सम्मानित वर्ग गल्ले चराया करता था। कृष्णजी गायें चराते थे। कौन कह सकता है कि उस गल्ले में बकरियां न रही होंगी। हजरत ईसा और हजरत मुहम्मद दोनों ही भेड़ें चराते थे। लेकिन आदमी रूढ़ियों का दास है। जो कुछ बुजुर्गों ने नहीं किया उसे वह कैसे करे। नए रास्ते पर चलने के लिए जिस संकल्प और दृढ़ आस्था की जरूरत है वह हर एक में तो होती नहीं। धोबी आपके गंदे कपड़े धो लेगा लेकिन आपके दरवाजे पर झाड़ू लगाने में अपनी हतक समझता है। जरायमपेशा कौमों के लोग बाजार से कोई चीज कीमत देकर खरीदना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। मेरे खिदमतगार को बकरी लेकर बाग में जाना बुरा मालूम होता था। घर से तो ले जाए लेकिन बाग में उसे छोड़कर खुद किसी पेड़ के नीचे सो जाता। बकरी पत्तियां चर लेती थी। मगर एक दिन उसके जी में आया कि जरा बाग से निकलकर खेतों की सैर करे। यों वह बहुत ही सभ्य और सुसंस्कृत बकरी थी, उसके चेहरे से गंभीरता झलकती थी। लेकिन बाग और खेत में उसे यकसां आजादी नहीं है, इसे वह शायद न समझ सकी। एक रोज किसी खेत में घुस गई और गोभी की कई क्यारियां साफ कर गई। काछी ने देखा तो उसके कान पकड़ लिए और मेरे पास लाकर बोला—बाबूजी, इस तरह आपकी बकरी हमारे खेत चरेगी तो हम तो तबाह हो जाएंगे। आपको बकरी रखने का शौक है तो इसे बांधकर रखिए। आज तो हमने आपका लिहाज किया लेकिन फिर हमारे खेत में गई तो हम या तो उसकी टांग तोड़ देंगे या कानीहौद भेज देंगे।

अभी वह अपना भाषण खत्म न कर पाया था कि उसकी बीवी आ पहुंची और उसने

इसी विचार को और भी जोरदार शब्दों में अदा किया—हां-हां करती ही रही मगर रांड खेत में घुस गई और सारा खेत चौपट कर दिया, इसके पेट में भवानी बैठें ! यहां कोई तुम्हारा दबैला नहीं है। हाकिम होंगे अपने घर के होंगे। बकरी रखना है तो बांधकर रखो नहीं गला ऐंठ दूंगी !

मैं भीगी बिल्ली बना हुआ खड़ा था। जितनी फटकार आज सहनी पड़ी उतनी जिंदगी में कभी न सही। और जिस धीरज से आज काम लिया अगर उससे दूसरे मौकों पर काम लिया होता तो आज आदमी होता। कोई जवाब ही न सूझता था। बस यही जी चाहता था कि बकरी का गला घोंट दूं और खिदमतगार को डेढ़ सौ हण्टर जमाऊं। मेरी खामोशी से वह औरत और भी शेर होती जाती थी। आज मुझे मालूम हुआ कि किन्हीं-किन्हीं मौकों पर खामोशी नुकसानदेह साबित होती है। खैर, मेरी बीवी ने घर में यह गुल-गपाड़ा सुना तो दरवाजे पर आ गई और हेकड़ी से बोलीं—तू कानीहौज पहुंचा दे और क्या करेगी, नाहक टर्र-टर्र कर रही है, घंटे-भर से। जानवर ही है, एक दिन खुल गई तो क्या उसकी जान लेगी? खबरदार जो एक बात भी मुंह से निकाली होगी। क्यों नहीं खेत के चारों तरफ झाड़ लगा देती, कांटों से रूंध दे। अपनी गलती तो मानती नहीं, ऊपर से लड़ने आई है। अभी पुलिस में इत्तला कर दें तो बंधे-वंधे फिरो।

बात करने की इस शासनपूर्ण शैली ने उन दोनों को ठंडा कर दिया। लेकिन उनके चले जाने के बाद मैंने देवी की खूब खबर ली—गरीबों का नुकसान भी करती हो, ऊपर से रोब जमाती हो। इसी का नाम इंसाफ है ?

देवीजी ने गर्वपूर्वक उत्तर दिया—मेरा एहसान तो न मानोगे कि शैतानों को कितनी आसानी से भगा दिया, लगे उल्टे डांटने। गंवारों को राह बतलाने का सख्ती के सिवा दूसरा कोई तरीका नहीं। सज्जनता या उदारता उनकी समझ में नहीं आती। उसे यह लोग कमजोरी समझते हैं और कमजोर को कौन नहीं दबाना चाहता।

खिदमतगार से जवाब तलब किया तो उसने साफ कह दिया—साहब, बकरी चराना मेरा काम नहीं है।

मैंने कहा—तुमसे बकरी चराने को कौन कहता है, जरा उसे देखते रहा करो कि किसी खेत में न जाए, इतना भी तुमसे नहीं हो सकता ?

"मैं बकरी नहीं चरा सकता साहब, कोई दूसरा आदमी रख लीजिए।"

आखिर मैंने खुद शाम को उसे बाग में चरा लाने का फैसला किया। इतने जरा से काम के लिए एक नया आदमी रखना मेरी हैसियत से बाहर था। और अपने इस नौकर को जवाब भी नहीं देना चाहता था जिसने कई साल तक वफादारी से मेरी सेवा की थी और ईमानदार था। दूसरे दिन मैं दफ्तर से जरा जल्द चला आया और चटपट बकरी को लेकर बाग में जा पहुंचा। जाड़ों के दिन थे। ठंडी हवा चल रही थी। पेड़ों के नीचे सूखी पत्तियां गिरी हुई थीं। बकरी पत्तियों पर टूटी पड़ती थी गोया महीनों की भूखी हो। अभी इस पेड़ के नीचे थी, एक पल में वह जा पहुंची। मेरी दलेल हो रही थी, उसके पीछे-पीछे दौड़ता फिरता था। दफ्तर से लौटकर जरा आराम किया करता था, आज यह कवायद करनी पड़ी, थक गया, मगर मेहनत सुफल हो गई, आज बकरी ने कुछ ज्यादा दूध दिया।

यह ख्याल आया, अगर सूखी पत्तियां खाने से दूध की मात्रा बढ़ गई तो यकीनन हरी

पत्तियां खिलाई जाएं तो इससे कहीं बेहतर नतीजा निकले। लेकिन हरी पत्तियां आएं कहां से ? पेड़ों से तोडूं तो बाग का मालिक जरूर एतराज करेगा, कीमत देकर हरी पत्तियां मिल न सकती थीं। सोचा क्यों न एक बार बांस के लग्गे से पत्तियां तोड़ें। मालिक ने शोर मचाया तो उससे आरजू-मिन्नत कर लेंगे। राजी हो गया तो खैर, नहीं देखी जाएगी। थोड़ी-सी पत्तियां तोड़ लेने से पेड़ का क्या बिगड़ा जाता है। चुनांचे एक पड़ोसी से एक पतला-लम्बा बांस मांग लाया, उसमें एक आंकुश बांधा और शाम को बकरी को साथ लेकर पत्तियां तोड़ने लगा। चोर आंखों से इधर-उधर देखता जाता था, कहीं मालिक तो नहीं आ रहा है। अचानक वही काछी एक तरफ से आ निकला और मुझे पत्तियां तोड़ते देखकर बोला—यह क्या करते हो बाबूजी, आपके हाथ में यह लग्गा अच्छा नहीं लगता। बकरी पालना हम गरीबों का काम है कि आप जैसे सरीफों का। मैं कट गया, कुछ जवाब न सूझा। इसमें क्या बुराई है, अपने हाथ से अपना काम करने में क्या शर्म वगैरह जवाब कुछ हल्के, बेहकीकत, बनावटी मालूम हुए। सफेदपोशी के आत्मगौरव ने जुबान बंद कर दी। क़ाछी ने पास आकर मेरे हाथ से लग्गा ले लिया और देखते-देखते हरी पत्तियों का ढेर लगा दिया और पूछा--पत्तियां कहां रख आऊं ?

मैंने झेंपते हुए कहा—तुम रहने दो, मैं उठा ले जाऊंगा।

उसने थोड़ी-सी पत्तियां बगल में उठा लीं और बोला—आप क्या पत्तियां रखने जाएंगे, चलिए मैं रख आऊं।

मैंने बरामदे में पत्तियां रखवा लीं। उसी पेड़ के नीचे उसकी चौगुनी पत्तियां पड़ी हुई थीं, काछी ने उनका एक गट्ठा बनाया और सर पर लादकर चला गया। अब मुझे मालूम हुआ, यह देहाती कितने चालाक होते हैं। कोई बात मतलब से खाली नहीं।

मगर दूसरे दिन बकरी को बाग में ले जाना मेरे लिए कठिन हो गया। काछी फिर देखेगा और न जाने क्या-क्या फिकरे चुस्त करे। उसकी नजरों में गिर जाना मुंह में कालिख लगाने से कम शर्मनाक न था। हमारे सम्मान और प्रतिष्ठा की जो कसौटी लोगों ने बना रखी है, हमको उसका आदर करना पड़ेगा, नक्कू बनकर रहे तो क्या रहे।

लेकिन बकरी इतनी आसानी से अपनी निर्द्वंद्व आजाद चहलकदमी से हाथ न खींचना चाहती थी जिसे उसने अपनी साधारण दिनचर्या समझना शुरू कर दिया था। शाम होते ही उसने इतने जोर-जोर से प्रतिवाद का स्वर उठाया कि घर में बैठना मुश्किल हो गया। गिटकिरीदार 'में में' का निरंतर स्वर आ-आकर कान के पर्दों को क्षत-विक्षत करने लगा। कहां भाग जाऊं ? बीवी ने उसे गालियां देना शुरू कीं। मैंने गुस्से में आकर कई डंडे रसीद किए, मगर उसे सत्याग्रह स्थगित न करना था न किया। बड़े संकट में जान थी।

आखिर मजबूर हो गया। अपने किए का क्या इलाज ! आठ बजे रात। जाड़ों के दिन। घर से बाहर मुंह निकालना मुश्किल और मैं बकरी को बाग में टहला रहा था और अपनी किस्मत को कोस रहा था। अंधेरे में पांव रखते मेरी रूह कांपती है। एक बार मेरे सामने से एक सांप निकल गया था। अगर उसके ऊपर पैर पड़ जाता तो जरूर काट लेता। तब से मैं अंधेरे में कभी न निकलता था। मगर आज इस बकरी के कारण मुझे इस खतरे का भी सामना करना पड़ा। जरा भी हवा चलती और पत्ते खड़कते तो मेरी आंखें ठिठुर जातीं और पिंडलियां कांपने लगतीं। शायद उस जन्म में मैं बकरी रहा हूंगा और यह बकरी मेरी

मालकिन रही होगी। उसी का प्रायश्चित्त इस जिंदगी में भोग रहा था। बुरा हो उस पंडित का, जिसने यह बला मेरे सिर मढ़ी। गिरस्ती भी जंजाल है। बच्चा न होता तो क्यों इस मूजी जानवर की इतनी खुशामद करनी पड़ती। और यह बच्चा बड़ा हो जाएगा तो बात न सुनेगा, कहेगा, आपने मेरे लिए क्या किया है। कौन-सी जायदाद छोड़ी है ! यह सजा भुगतकर नौ बजे रात को लौटा। अगर रात को बकरी मर जाती तो मुझे जरा भी दुःख न होता।

दूसरे दिन सुबह से ही मुझे यह फिक्र सवार हुई कि किसी तरह रात की बेगार से छुट्टी मिले। आज दफ्तर में छुट्टी थी। मैंने एक लंबी रस्सी मंगवाई और शाम को बकरी के गले में रस्सी डाल एक पेड़ की जड़ से बांधकर सो गया—अब चरे जितना चाहे। अब चिराग जलते-जलते खोल लाऊंगा। छुट्टी ही थी, शाम को सिनेमा देखने की ठहरी। एक अच्छा-सा खेल आया हुआ था। नौकर को भी साथ लिया वर्ना बच्चे को कौन संभालता। जब नौ बजे रात को घर लौटे और मैं लालटेन लेकर बकरी लेने गया तो क्या देखता हूं कि उसने रस्सी को दो-तीन पेड़ों में लपेटकर ऐसा उलझा डाला है कि सुलझना मुश्किल है। इतनी रस्सी भी न बची थी कि वह एक कदम भी चल सकती। लाहौलविलाकूवत, जी में आया कि कम्बख्त को यहीं छोड़ दूं, मरती है तो मर जाए, अब इतनी रात को लालटेन की रोशनी से कौन रस्सी सुलझाने बैठे। लेकिन दिल न माना। पहले उसकी गर्दन से रस्सी खोली, फिर उसकी पेंच-दर-पेंच ऐंठन छुड़ाई, एक घंटा लग गया। मारे सर्दी के हाथ ठिठुरे जाते थे और जी जल रहा था वह अलग। यह तरकीब और भी तकलीफदेह सावित हुई।

अब क्या करूं कुछ अक्ल काम न करती थी। दूध का खयाल न होता तो किसी को मुफ्त दे देता। शाम होते ही चुड़ैल अपनी चीख-पुकार शुरू कर देगी और घर में रहना मुश्किल हो जाएगा और आवाज भी कितनी कर्कश और मनहूस होती है। शास्त्रों में लिखा भी है, जितनी दूर उसकी आवाज जाती है उतनी दूर देवता नहीं आते। स्वर्ग की बसने वाली हस्तियां, जो अप्सराओं के गाने सुनने की आदी हैं, उसकी कर्कश आवाज से नफरत करें तो क्या ताज्जुब ! मुझ पर उसकी कर्णकटु पुकारों का ऐसा आतंक सवार था कि दूसरे दिन दफ्तर से आते ही मैं घर से निकल भागा। लेकिन एक मील निकल जाने पर भी ऐसा लग रहा था कि उसकी आवाज मेरा पीछा किए चली आती है। अपने इस चिड़चिड़ेपन पर शर्म भी आ रही थी। जिसे एक बकरी रखने की भी सामर्थ्य न हो वह इतना नाजुक दिमाग क्यों बने और फिर तुम सारी रात तो घर से बाहर रहोगे नहीं, आठ बजे पहुंचोगे तो क्या वह गीत तुम्हारा स्वागत न करेगा ?

सहसा एक नीची शाखों वाला पेड़ देखकर मुझे बरबस उस पर चढ़ने की इच्छा हुई। सपाट तनों पर चढ़ना मुश्किल होता है, यहां तो छः-सात फुट की ऊंचाई पर शाखें फूट गई थीं। हरी-हरी पत्तियों से पेड़ लदा खड़ा था और पेड़ भी था गूलर का जिसकी पत्तियों से बकरियों को खास प्रेम है। मैं इधर तीस साल से किसी रूख पर नहीं चढ़ा। वह आदत जाती रही। इसलिए आसान चढ़ाई के बावजूद मेरे पांव कांप रहे थे पर मैंने हिम्मत न हारी और पत्तियां तोड़-तोड़ नीचे गिराने लगा। यहां अकेले में कौन मुझे देखता है कि पत्तियां तोड़ रहा हूं। अभी अंधेरा हुआ जाता है। पत्तियों का एक गट्ठा बगल में दबाऊंगा और घर जा पहुंचूंगा। अगर इतने पर भी बकरी ने कुछ चीं-चपड़ की तो उसकी शामत ही आ जाएगी।

मैं अभी ऊपर ही था कि बकरियों और भेड़ों का एक गोल न जाने किधर से आ निकला और पत्तियों पर पिल पड़ा। मैं ऊपर से चीख रहा हूं मगर कौन सुनता है। चरवाहे का कहीं पता नहीं। कहीं दुबक रहा होगा कि देख लिया जाऊंगा तो गालियां पड़ेंगी। झल्लाकर नीचे उतरने लगा। एक-एक पल में पत्तियां गायब होती जाती थीं। उतरकर एक-एक की टांग तोड़ूंगा। यकायक पांव फिसला और मैं दस फिट की ऊंचाई से नीचे आ रहा। कमर में ऐसी चोट आई कि पांच मिनट तक आंखों तले अंधेरा छा गया। खैरियत हुई कि और ऊपर से नहीं गिरा, नहीं तो यहीं शहीद हो जाता। बारे, मेरे गिरने के धमाके से बकरियां भागीं और थोड़ी-सी पत्तियां बच रहीं। जब जरा होश ठिकाने हुए तो मैंने उन पत्तियों को जमा करके गट्ठा बनाया और मजदूरों की तरह उसे कंधे पर रखकर शर्म की तरह छिपाए घर चला। रास्ते में कोई दुर्घटना न हुई। जब मकान कोई चार फर्लांग रह गया और मैंने कदम तेज किए कि कहीं कोई देख न ले तो वह काछी सामने से आता दिखाई दिया। कुछ न पूछो उस वक्त मेरी क्या हालत हुई। रास्ते के दोनों तरफ खेतों की ऊंची मेड़ें थीं जिनके ऊपर नागफनी के कांटे लगे हुए थे। अगर रस्ते-रस्ते जाता हूं तो वह जालिम मेरे बगल से होकर निकलेगा और भगवान् जाने क्या सितम ढाए। कहीं मुड़ने का रास्ता नहीं और वह मरदूद जमदूत की तरह चला आता था। मैंने धोती ऊपर सरकाई, चाल बदल ली और सिर झुकाकर इस तरह निकल जाना चाहता था कि कोई मजदूर है। तले की सांस तले थी, ऊपर-की-ऊपर, जैसे वह काछी कोई खूंखार शेर हो। बार-बार ईश्वर को याद कर रहा था कि हे भगवान्, तू ही आफत के मारे हुओं का मददगार है, इस मरदूद की जुबान बंद कर दे। एक क्षण के लिए इसकी आंखों की रोशनी गायब कर दे...आह, वह यंत्रणा का क्षण जब मैं उसके बराबर एक गज के फासले से निकला ! एक-एक कदम तलवार की धार पर पड़ रहा था कि शैतानी आवाज कानों में आई—कौन है रे, कहां से पत्तियां तोड़े लाता है।

मुझे मालूम हुआ, नीचे से जमीन निकल गई है और मैं उसके गहरे पेट में जा पहुंचा हूं। रोएं, बर्छियां बने हुए थे, दिमाग में उबाल-सा आ रहा था, शरीर को लकवा-सा मार गया था, जवाब देने का होश न रहा। तेजी से दो-तीन कदम आगे बढ़ गया, मगर वह ऐच्छिक क्रिया न थी, प्राण-रक्षा की सहज क्रिया थी।

कि एक जालिम हाथ गट्ठे पर पड़ा और गट्ठा नीचे गिर पड़ा। फिर मुझे याद नहीं, क्या हुआ। मुझे जब होश आया तो मैं अपने दरवाजे पर पसीने में तर खड़ा था गोया मिरगी के दौरे के बाद उठा हूं। इस बीच मेरी आत्मा पर उपचेतना का आधिपत्य था और बकरी की वह घृणित आवाज, वह कर्कश आवाज, वह हिम्मत तोड़ने वाली आवाज, वह दुनिया की सारी मुसीबतों का खुलासा, वह दुनिया की सारी लानतों की रूह कानों में चुभी जा रही थी।

बीवी ने पूछा—आज कहां चले गए थे ? इस चुड़ैल को जरा बाग भी न ले गए, जीना मुहाल किए देती है। घर से निकलकर कहां चली जाऊं !

मैंने इत्मीनान दिलाया—आज चिल्ला लेने दो कल सबसे पहला यह काम करूंगा कि इसे घर से निकाल बाहर करूंगा, चाहे कसाई को देना पड़े।

"और लोग न जाने कैसे बकरियां पालते हैं।"

"बकरी पालने के लिए कुत्ते का दिमाग चाहिए।"

सुबह को बिस्तर से उठकर इसी फिक्र में बैठा था कि इस काली बला से क्योंकर

मुक्ति मिले कि सहसा एक गड़रिया बकरियों का एक गल्ला चराता हुआ आ निकला। मैंने उसे पुकारा और उससे अपनी बकरी को चराने की बात कही। गड़रिया राजी हो गया। यही उसका काम था। मैंने पूछा—क्या लोगे ?

"आठ आने बकरी मिलते हैं हुजूर !"

"मैं एक रुपया दूंगा लेकिन बकरी कभी मेरे सामने न आए।"

गड़रिया हैरत में रह गया—मरकही है क्या बाबूजी ?

"नहीं, नहीं, बहुत सीधी है, बकरी क्या मारेगी, लेकिन मैं उसकी सूरत नहीं देखना चाहता।"

"अभी तो दूध देती है ?"

"हां, सेर-सवा सेर दूध देती है।"

"दूध आपके घर पहुंच जाया करेगा।"

"तुम्हारी मेहरबानी।"

जिस वक्त बकरी घर से निकली है मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे घर का पाप निकला जा रहा है। बकरी भी खुश थी गोया कैद से छूटी है। गड़रिये ने उसी वक्त दूध निकाला और घर में रखकर बकरी को लिए चला गया। ऐसा बेगरज गाहक उसे जिंदगी में शायद पहली ही बार मिला होगा।

एक हफ्ते तक तो दूध थोड़ा-बहुत आता रहा फिर उसकी मात्रा कम होने लगी, यहां तक कि एक महीना खत्म होते-होते दूध बिल्कुल बंद हो गया। मालूम हुआ बकरी गाभिन हो गई है। मैंने जरा भी एतराज न किया। काछी के पास गाय थी, उससे दूध लेने लगा। मेरा नौकर खुद जाकर दुहा लाता था।

कई महीने गुजर गए। गड़रिया महीने में एक बार आकर अपना रुपया ले जाता। मैंने कभी उससे बकरी का जिक्र न किया। उसके खयाल ही से मेरी आत्मा कांप जाती थी। गड़रिये को अगर चेहरे का भाव पढ़ने की कला आती होती तो वह बड़ी आसानी से अपनी सेवा का पुरस्कार दुगना कर सकता था।

एक दिन मैं दरवाजे पर बैठा हुआ था कि गड़रिया अपनी बकरियों का गल्ला लिये आ निकला। मैं उसका रुपया लाने अंदर गया कि क्या देखता हूं मेरी बकरी दो बच्चों के साथ मकान में आ पहुंची। वह पहले सीधी उस जगह गई जहां बंधा करती थी फिर वहां से आंगन में आई और शायद परिचय दिखलाने के लिए मेरी बीवी की तरफ ताकने लगी। उन्होंने दौड़कर एक बच्चे को गोद में ले लिया और कोठरी में जाकर महीनों का जमा चोकर निकाल लाई और ऐसी मुहब्बत से बकरी को खिलाने लगीं कि जैसे बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई सहेली आ गई हो। न वह पुरानी कटुता थी न वह मनमुटाव। कभी बच्चे को चुमकारती थीं, कभी बकरी को सहलाती थीं और बकरी डाकगाड़ी की रफ्तार से चोकर उड़ा रही थी।

तब मुझसे बोलीं—कितने खूबसूरत बच्चे हैं !

"हां, बहुत खूबसूरत।"

"जी चाहता है, एक पाल लूं।"

"अभी तबीयत नहीं भरी।"

"तुम बड़े निर्मोही हो।"

चोकर खत्म हो गई, बकरी इत्मीनान से विदा हो गई। दोनों बच्चे भी उसके पीछे फुदकते चले गए। देवीजी आंख में आंसू भरे यह तमाशा देखती रहीं।

गड़रिये ने चिलम भरी और घर में आग मांगने आया। चलते वक्त बोला—कल से दूध पहुंचा दिया करूंगा मालिक।

देवीजी ने कहा—और दोनों बच्चे क्या पिएंगे ?

"बच्चे कहां तक पिएंगे बहूजी। दो सेर दूध देती है, अभी दूध अच्छा न होता था, इस मारे नहीं लाया।"

मुझे रात की वह मर्मांतक घटना याद आ गई।

मैंने कहा—दूध लाओ या न लाओ, तुम्हारी खुशी, लेकिन बकरी को इधर न लाना।

उस दिन से न वह गड़रिया नजर आया और न वह बकरी, और न मैंने पता लगाने की कोशिश की। लेकिन देवीजी उसके बच्चों को याद करके कभी-कभी आंसू बहा लेती हैं।

[उर्दू कहानी। 'गम नदारी बजंजर खरीद लो' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'वारदात' (पांडुलिपि तैयार : मार्च, 1935, प्रथम संस्करण 1938) में संकलित। हिन्दी रूप 'कोई दुःख न हो तो बकरी खरीद लो' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

रोशनी

आई. सी. एस. का इम्तहान पास करके हिंदोस्तान आया तो मुझे मुमालिके-मुत्तहिदा (संयुक्त प्रान्त) के एक कोहिस्तान(पहाड़ी) इलाके में एक सब-डिवीज़न का चार्ज मिला। मुझे शिकार का बहुत शौक़ था और कोहिस्तानी इलाके में शिकार की क्या कमी ! मेरी दिली मुगदवर (पूर्ण होना) आई। एक पहाड़ के दामन में मेरा बंगला था। बंगले ही पर कचहरी कर लिया करता था। अगर कोई शिकायत थी तो यह कि सोसायटी न थी; इसलिए सैर व शिकार और अख़बारात व रसायल (पत्रिका) से इस कमी को पूरा किया करता था। अमरीका और यूरोप के कई अखबार-रिसाले आते थे। उनके मज़ामीन की शिगुफ्तगी (प्रफुल्लता, विकास) और जिद्दत (नवीनता) और ख़याल-आराई (भाव-सज्जा, काल्पनिकता) के मुक़ाबिले में हिंदोस्तानी अख़बार और रिसाले भला क्या जंचते ! सोचता था वह दिन कब आएगा कि हमारे यहां भी ऐसे ही शानदार रिसाले निकलेंगे।

बहार का मौसम था। फागुन का महीना। मैं दौरे पर निकला और लंघौर के थाने का मुआयना करके गजनपूर के थाने को चला। कोई अठारह मील की मसाफ़त (दूरी) थी मगर मंज़र (दृश्य) निहायत सुहाना। धूप में किसी क़दर तेज़ी थी, मगर नाखुशगवार (असह्य) नहीं। हवा में भीनी-भीनी खुशबू थी। आम के दरख्तों में बौर आ गये थे और कोयल कूकने लगी थी। कंधे पर बंदूक रख ली थी कि कोई शिकार मिल जाए तो लेता चलूं! कुछ अपनी हिफ़ाज़त का भी ख़याल था। क्योंकि उन दिनों जा-व-जा (जगह-जगह) डाके पड़ रहे थे। मैंने घोड़े की गर्दन सहलाई और कहा, "चलो, बेटा, चलो ! ढाई घंटे की दौड़ है। शाम होते-होते गजनपुर पहुंच जाएंगे।" और साथ के मुलाज़िम पहले ही रवाना कर दिये गये थे।

काश्तकार खेतों में काम करते नज़र आते थे। रबी की फसल तैयार हो चली थी। ऊख और ख़रबूज़े के लिए ज़मीन तैयार की जा रही थी। ज़रा-ज़रा से मज़रा (खेत) थे। वही बाबा आदम के ज़माने के बोसीदा (बेदम) हल, वही अफ़सोसनाक जहालत (अज्ञान), वही शर्मनाक बरहनगी (वस्त्रहीन), इस क़ौम का खुदा ही हाफिज़ है। गवर्नमेंट लाखों रुपये ज़राअती इस्लाहों (कृषि-सुधारों) पर सर्फ करती हैं नयी-नयी तहक़ीक़ातें और ईजादें होती हैं। डाइरेक्टर, इन्स्पेक्टर, सब मौजूद और हालत में कोई इस्लाह, कोई तग़य्युर (बड़ा परिवर्तन) नहीं। तालीम का तूफाने बेतमीज़ी बरपा है। यहां मदरसों में कुत्ते लोटते हैं। जब मदरसे में पहुंच जाता हूं तो मुदर्रिस को खाट पर नीम ग़ुनूदगी (ऊंघते) को हालत में लेट पाता हूं। बड़ी दवा दविश (भाग-दौड़) से दस-बीस लड़के जोड़े जाते हैं। जिस क़ौम पर जमूद (जड़ता) ने इस हद तक ग़लबा (छा जाना) कर लिया हो उसका मुस्तक़बिल (भविष्य) इन्तिहा दर्जा मायूसकुन (निराशाजनक) है। अच्छे-अच्छे तालीमयाफ्ता आदमियों को सलफ (अतीत) की याद में आंसू बहाते देखता हूं। माना कि एशिया के जज़ायर (द्वीप-समूह) में आर्यन मुबल्लिग़ों (धर्म-प्रचारकों) ने मज़हब की रूह फूंकी थी। यह भी मान लिया कि किसी जमाने में ऑस्ट्रेलिया भी आर्यन तहज़ीब का मग़नून (उपकृत) था। लेकिन इस सलफपरवरी (अतीत पूजा) से क्या हासिल ? आज तो मग़ारिब दुनिया का मशअले हिदायत (शिक्षा का पथ-प्रदर्शक) है। नन्हा-सा इंग्लैंड निस्फ कुर्र-ए-ज़मीन (आधी पृथ्वी) पर हावी है। अपनी सनअते हिर्फत (कला-शिप्प, व्यवसाय) की बदौलत बेशक मग़रिब ने दुनिया को एक नया पैग़ाम-अमल अता किया है। और जिस क़ौम में इस पैग़ाम पर अमल करने की कुव्वत (सामर्थ्य) नहीं है, उसका मुस्तकबिल तारीक (अन्धकारपूर्ण) है, जहां आज भी नीमबरहना (अर्दनग्न) गोशानशीन (एकांत निवासी) फकीरों की अज़मत (महत्ता, बड़प्पन) के रोग अलापे जाते हैं, जहां आज भी शजर व हजर (वृक्ष और पत्थर) की इबादत होती है, जहां आज भी ज़िंदगी के हर एक शोबे (अंग, शाखा) में मज़हब घुसा हुआ है, उसकी अगर यह हालत है तो ताज्जुब का कोई मुकाम नहीं।

मैं इन्हीं तसव्वुरात (विचारों) में डूबा हुआ चला जा रहा था। दफअतन (एकाएक) ठंडी हवा का एक झोंका जिस्म में लगा तो मैंने सिर ऊपर उठाया। मशरिक की जानिब मंज़र गर्दआलूद (धूल-धूसरित) हो रहा था। उफक (क्षितिज) गर्द-गुबार के पर्दे में छिप गया था। आंधी की अलामत (चिह्न) थी। मैंने घोड़े को तेज़ किया, लेकिन लमहा-ब-लमहा (विशाल और विस्तृत) गुबार का परदा वसीअ और बसीत (विशाल और विस्तृत) होता था और मेरा रास्ता भी मशरिक ही की जानिब था। गोहा मैं यक्का व नन्हा तूफ़ान का मुक़ाबला करने दौड़ा जा रहा था। हवा तेज़ हो गई, वह पर्द-ए-गुबार सिर पर आ पहुंचा और दफअतन मैं गर्द के समंदर में डूब गया। हवा इतनी तुंद (भीषण, तेज) थी कि कई बार मैं घोड़े से गिरते-गिरते बचा। वह सरसराहट और गड़गड़ाहट थी कि अल्अमान (ईश्वर रक्षा करे) गोया फितरत ने आंधी में तूफ़ान की रूह डाल दी है। दस-बीस हज़ार तोपें एक साथ छूटें, तब भी इतनी हौलनाक सदा (भयंकर आवाज) न पैदा होती। मारे गर्द के कुछ न सूझता था। यहां तक कि रास्ता भी नज़र न आता था। उफ ! एक कयामत थी जिसकी याद से आज भी कलेजा कांप जाता है। मैं घोड़े की गर्दन से चिपट गया और उसके अयालों (घोड़े की गर्दन के लम्बे बालों) में मुंह छुपा लिया। संगरेज़े (कंकड़) गर्द के साथ

उड़कर मुंह पर इस तरह लगते थे, जैसे कोई कंकरियों को पिचकारी में भरकर मार रहा हो। एक अजीब दहशत मुझ पर मुसल्लत (व्याप्त) हो गई। किसी दरख़्त के उखड़ने की आवाज़ कानों में आ जाती तो पेट में मेरी आंतें तक सिमट जातीं, कहीं कोई दरख़्त पहाड़ से मेरे ऊपर गिरे तो यहीं रह जाऊं। तूफ़ान में ही बड़े-बड़े तोदे (टीला, दूह) भी तो टूट जाते हैं। कोई ऐसा तोदा लुढ़कता हुआ आ जाए तो खात्मा है, हिलने की भी तो गुंजाएश नहीं। पहाड़ी रास्ता कुछ सुझाई देता नहीं। एक कदम दाहिने-बाएं हो जाऊं तो एक हज़ार फीट गहरे खड्ड में पहुंच जाऊं ! अजीब हयाजान (संकट) में मुब्तला था। कहीं शाम तक तूफ़ान जारी रहा तो मौत ही है। रात को कोई दरिन्दा आकर सफाया कर देगा। दिल पर बेअख्तियार रिक्कत (भावावेश) का ग़लबा (आधिक्य) हुआ। मौत भी आई तो इस हालत में कि लाश का भी पता न चले। उफ्फो ! कितनी ज़ोर से बिजली चमकी है कि मालूम हुआ एक नेज़ा (बरछा) सीने के अंदर घुस गया।

दफअतन झन-झन की आवाज़ सुनकर मैं चौंक पड़ा। इस अर्राहट में भी झन-झन की आवाज़ सुनाई दे रही थी, जैसे कोई सांडनी दौड़ी आ रही हो। सांडनी पर कोई सवार तो होगा ही, मगर उसे रास्ता क्योंकर सूझ रहा है। कहीं सांडनी एक कदम भी इधर या उधर हो जाए तो बच्चा तहतस्सर (पाताल लोक) में पहुंच जाएं। कोई ज़मींदार होगा। मुझे देखकर शायद पहचाने भी नहीं, चेहरे पर मनों गर्द पड़ी हुई है। मगर है बला का हिम्मत वाला।

एक लमहे में झन-झन की आवाज़ क़रीब आ गई। फिर मैंने देखा कि एक ज़वान औरत सिर पर एक खांची रखे क़दम बढ़ाती चली आ रही है। एक गज़ के फासले से भी उसका सिर्फ धुंधला-सा अक्स नज़र आया। वह औरत होकर अकेली मर्दानावार चली जा रही है। न आंधी का खौफ है, न टूटने वाले दरख़्तों का अंदेशा, न चट्टानों के गिरने का ग़म; गोया यह भी कोई रोज़मर्रा का मामूली वाकि़या है। मुझे दिल में ग़ैरत का अहसास कभी इतना शदीद (तीव्र) न हुआ था।

मैंने जेब से रूमाल निकालकर मुंह पोंछा और उससे बोला—"ओ औरत ! गजनपूर यहां से कितनी दूर है ?" मैंने पूछा तो बुलंद लहजे में, मगर आवाज़ दस गज़ न पहुंची। औरत ने कोई जवाब न दिया। शायद उसने मुझे देखा ही नहीं।

मैंने चीख़कर पुकारा, "ओ औरत ! ज़रा ठहर जा। गजनपुर यहां से कितनी दूर है?"

औरत रुक गई। उसने मेरे क़रीब आकर, मुझे देखकर, जरा सिर झुकाकर कहा, "कहां जाओगे ?"

"गजनपूर कितनी दूर है ?"

"चले आओ। आगे हमारा गांव है। उसके बाद गजनुपर है।"

"तुम्हारा गांव कितनी दूर है ?"

"वह क्या आगे दिखाई देता है।"

"तुम इस आंधी में कहीं रुक क्यों नहीं गई ?"

"छोटे-छोटे बच्चे घर पर हैं। कैसे रुक जाती ? मर्द तो भगवान् के घर चला गया।" आंधी का ऐसा रेला आया कि मैं शायद दो-तीन क़दम आगे खिसक गया। गर्दो-गुबार की एक धौंकनी-सी मुंह पर लगी। उस औरत का क्या हशर हुआ, मुझे ख़बर नहीं। मैं फिर वहीं खड़ा रह गया। फलसफ़े (दर्शनशास्त्र) पे कहा—इस औरत के लिए ज़िंदगी में क्या

राहत है ? कोई टूटा-फूटा झोंपड़ा होगा, दो-तीन फाकाकश बच्चे। बेकसी में मौत का क्या ग़म ? मौत तो उसे बाइसे नजात (मोक्ष का कारण) होगी। मेरी हालत और है। जिंदगी अपनी तमाम दिल-फरेबियों और रंगीनियों के साथ मेरी नाज़बरदारी (नाज उठाना, नखरा उठाना) कर रही है। हौसले हैं, इरादे हैं। मैं उसे क्योंकर ख़तरे में डाल सकता हूं ?

मैंने फिर घोड़े के अयालों में मुंह छिपा लिया—शुतुरमुर्ग़ की तरह, जो ख़तरे से बचने की कोई राह न पाकर बालू में सिर छुपा लेता है।

2

वह आंधी की आखिरी सांस थी। उसके बाद बतदरीज (क्रमशः, धीरे-धीरे) जोर कम होने लगा। यहां तक कि कोई पंद्रह मिनट में मतला (दशा, धूंध) साफ़ हो गया। न गर्दो-गुबार का निशान था, न हवा के झोंकों का--हवा में एक फरहतबख्श खुनकी (सुखद शीतलता) आ गई थी। अभी मुश्किल से पांच बजे होंगे। सामने एक पहाड़ी थी। उसके दामन में एक छोटा-सा मौज़ा था। मैं ज्यों ही उस गांव में पहुंचा, वही औरत एक बच्चे को गोद में लिये मेरी तरफ आ रही थी। मुझे देखकर उसने पूछा, "तुम कहां रह गये थे ? मैं डरी कि तुम रास्ता न भूल गये हो। तुम्हें ढूंढ़ने जा रही थी।

मैंने उसकी इन्सानियत से मुतस्सिर होकर कहा, "मैं इसके लिए तुम्हारा बहुत ममनूंन (उपकृत) हूं। आंधी का ऐसा रेला आया कि मुझे रस्ता न सूझा। मैं वहीं खड़ा हो गया। यही तुम्हारा गांव है ? यहां से गजनपुर कितनी दूर होगा ?"

"बस कोई धाप भर समझ लो। रास्ता बिल्कुल सीधा है। कहीं दाहिने-बाएं मुड़ियो नहीं। सूरज़ डूबते-डूबते पहुंच जाओगे।"

"यही तुम्हारा बच्चा है ?"

"नहीं। एक और इससे बड़ा है। जब आंधी आई तो दोनों नंबरदार की चौपाल में जाकर बैठे थे कि झोंपड़ियां कहीं उड़ न जाएं। जब से आई हूं, यह मेरी गोद से नहीं उतरता। कहता है, 'तू फिर कहीं भाग जाएगी।' बड़ा शैतान है। बड़ा लड़कों में खेल रहा है। मेहनत-मज़दूरी करती हूं बाबूजी। इनको पालना तो है। अब मेरे कौन बैठा हुआ है जिस पर टेक करूं ? घास लेकर बेचने गई थी। कहीं जाती हूं, मन इन बच्चों में लगा रहता है।"

मेरा दिल इतना असरपिंज़ोर (प्रभाव ग्रहण करने वाला) तो नहीं है, लेकिन इस दहकान औरत (देहाती स्त्री) के बेलौस अंदाजे-गुफ़्तगू, उसकी सादगी और जज़्बा-ए-मादरी (मां की भावना) ने मुझ पर तसखीर (जादू-मन्तर) का-सा अमल किया। उसके हालात से मुझे गूना (अनेक प्रकार की) दिलचस्पी हो गई। पूछा, "तुम्हें बेवा हुए कितने दिन हो गए ?"

औरत की आंखें नम हो गईं। अपने आंसुओं को छुपाने के लिए बच्चे के रुखसार (गाल) को अपनी आंखों से लगाकर बोली— 'अभी तो कल छह महीने हुए हैं, बाबूजी। भगवान् की मर्ज़ी में आदमी का क्या बस ! भले-चंगे हल लेकर लौटे, एक लोटा पानी पीया, कै हुई, बस आंखें बंद हो गईं। न कुछ कहा, न सुना। मैं समझी थके हैं, सो रहे हैं। जब खाना खाने को उठाने लगी तो बदन ठंडा। तब से बाबूजी ! घास छीलकर पेट पालती हूं और बच्चों को खिलाती हूं। खेती मेरे मान की न थी। बैल-बछिए बेचकर उन्हीं के

किरिया-करम में लगा दिए। भगवान् तुम्हारे इन दोनों गुलामों को जिलावे। मेरे लिए यही बहुत हैं।"

मैं मौक़ा और महल समझता हूं और नफ़सियात (मनोविज्ञान) में भी दख़ल रखता हूं, लेकिन उस वक्त मुझ पर ऐसी रिक्क़तहारी (आर्द्रता) हुई कि मैं आबदीदा (अश्रुपूर्ण) हो गया। और जेब से पांच रुपये निकालकर उस औरत की तरफ हाथ बढ़ाते हुए कहा, "मेरी तरफ से ये बच्चों के मिठाई खाने के लिए लो ! मुझे मौक़ा मिला तो फिर कभी आऊंगा।" यह कहकर मैंने बच्चे के रुख़सारों को अंगुली से छू दिया।

मां एक कदम पीछे हटकर बोली—"नहीं बाबूजी, यह रहने दीजिए। मैं ग़रीब हूं, लेकिन भिखारिन नहीं हूं।"

"यह भीख नहीं है। बच्चों की मिठाई खाने के लिए है।"

"नहीं, बाबूजी।"

"मुझे अपना भाई समझकर ले लो।"

"नहीं बाबूजी, जिससे ब्याह हुआ उसकी इज्ज़त तो मेरे ही हाथ है। भगवान् तुम्हारा भला करे। अब चले जाओ, नहीं, देर हो जाएगी।"

"मैं दिल में इतना खफीफ (लज्जित) कभी न हुआ था। जिन्हें मैं जाहिल, कार बातिन (अविवेकी, अन्धात्मा), बेखबर समझता था उसी तबके की एक मामूली औरत में यह खुद्दारी, यह फर्ज़नशनासी (कर्त्तव्य-पालन), यह तवक्कुल (सांसारिक साधनों का भरोसा त्यागकर सारे कार्य ईश्वरेच्छा पर छोड़ना) ! अपने जुअफ (मूर्खता) के एहसास से मेरा दिल जैसे पामाल (पददलित, दुर्दशाग्रस्त) हो गया। अगर तालीम फिलअस्ल (यर्थाथतः) तहज़ीबे-नफ्स (आत्मिक संस्कृति) है और महज आला डिग्रियां नहीं, तो यह औरत तालीम की मेअराज़ (ऊंची सीढ़ी या श्रेणी) पर पहुंची हुई है।

मैंने नादिम (लज्जित) होकर नोट जेब में रख लिया और घोड़े को एड़ लगाते हुए पूछा, "तुम्हें इस आंधी में ज़रा भी डर न मालूम होता था ?"

औरत मुस्कराई, "डर किस बात का ? भगवान् तो सभी जगह हैं। अगर वह मारना चाहें तो क्या यहां नहीं मार सकते ? मेरा आदमी तो घर आकर बैठे-बैठे चल दिया। आज वह होता तो तुम इस तरह गजनपुर अकेले न जा पाते। जाकर तुम्हें पहुंचा आता। तुम्हारी खिदमत करता।"

घोड़ा उड़ा। मेरा दिल उससे ज्यादा तेज़ी से उड़ रहा था। जैसे कोई मुफलिस सोने का डला पाकर दिल में एक तरह की परवाज (उड़ान) का एहसास करता है वही हालत मेरी थी। उस दहकान औरत ने मुझे वह तामील दी जो फलसफा (दर्शनशास्त्र) और माबादत्तबीआत (अलौकिक) के दफ्तरों से भी न हासिल हुई होती। मैं उस मुफलिस की तरह उस सोने के डले को गिरह में बांधता हुआ एक ग़ैर-मुतकाब्बिर (अहंहीन) नियामत (अलभ्य पदार्थ) के ग़रूर से मसरूर (प्रसन्न), इस अंदेशे से खायफ (भयभीत) कि कहीं यह असर दिल से मिट न जाए, उड़ा चला जाता था। बस यही फिक्र थी कि इस पार ए-ज़र (स्वर्ण खंड) को दिल के किसी गोशे में छुपा लूं जहां किसी हरीस (लोभी) की उस पर निगाह न पड़े।

3

गजनपुर अभी पांच मील से कम न था। रास्ता निहायत पेचीदा, बीहड़ बेबर्गोबार (पत्ता व फलरहित)। घोड़े को रोकना पड़ा। तेज़ी में जान का खतरा था। आहिस्ता-आहिस्ता संभलता हुआ चला जाता था कि आसमान पर अब्र घिर आया। कुछ-कुछ तो पहले ही से छाया हुआ है। फिर अब उसने एक अजीब सूरत इख़्तियार की। बर्क (बिजली) की चमक और रअद (मेघ) की गरज शुरू हुई। फिर उफ़के मशरिक (पूर्व क्षितिज) की तरफ से ज़र्द (पीला) रंग के अंबर की एक नयी तह उस मटियाले रंग पर ज़र्द लेप करती हुई तेज़ी से ऊपर की जानिब दौड़ती नज़र आई। मैं समझ गया, ओले हैं। फागुन के महीने में इस रंग के बादल और गरज की यह मुहीब (भयानक) गड़गड़ाहट ज़ालाबारी (ओले बरसना) की अलामत (निशानी) है। घटा सर पर बढ़ती चली जाती थी। यकायक सामने एक कफ़ंदस्त मैदान (हथेली की तरफ साफ मैदान) आ गया, जिसके परले सिरे पर गजनपुर के ठाकुरद्वारे का कलश साफ नज़र आ रहा था। कहीं किसी दरख़्त की भी आड़ न थी, लेकिन मेरे दिल में मुतलक कमज़ोरी न थी। ऐसा महसूस होता था कि मुझ पर किसी का साया है; जो मुझे हर आफतो-ज़द (विपत्ति के आघात) से महफूज रखेगा।

अब्र की ज़र्दी हर लमहा बढ़ती जाती थी। शायद घोड़ा इस ख़तरे को समझ रहा था। वह बार-बार हिनहिनाता था, और उड़कर खेतों से बाहर निकल जाना चाहता था। मैंने भी देखा, रास्ता साफ है। लगाम ढीली कर दी। घोड़ा उड़ा। मैं उसकी तेजी का लुत्फ उठा रहा था। दिल में खौफ का मुतलक एहसास न था।

एक मील निकल गया हूंगा कि एक रपट (फिसलना) आ पड़ी। पहाड़ी नदी थी जिसके पेटे में कोई पचास गज़ लंबी रपट बनी हुई थी। पानी की हल्की धार रपट पर से अब भी बह रही थी। रपट के दोनों तरफ पानी जमा था। मैंने देखा, एक अंधा लाठी टेकता हुआ रपट से गुज़र रहा था। वह रपट के एक किनारे से इतना क़रीब था कि मैं डर रहा था, कहीं गिर न पड़े। अगर पानी में गिरा तो मुश्किल होगी, क्योंकि वहां पानी गहरा था। मैंने चिल्लाकर कहा, "बुड्ढे ! और दाहिने को हो जा।"

बुड्ढा चौंका और घोड़े की टापों की आवाज़ सुनकर शायद डर गया। दाहिने तो नहीं हुआ, और बायीं तरफ हो लिया और फिसलकर पानी में गिर पड़ा। उसी वक्त एक नन्हा-सा ओला मेरे सामने गिरा। दोनों मुसीबतें एक साथ नाज़िल (आ पहुंची) हुई।

नदी के इस पार एक मंदिर था। उसमें बैठने की जगह काफी थी। मैं एक मिनट में वहां पहुंच सकता था। लेकिन यह नया उक्दा (जटिल समस्या, गुत्थी) सामने आ गया। क्या उस अंधे को मरने के लिए छोड़कर अपनी जान बचाने के लिए भागूं ? हमीयत (गैरत) ने इसे गवारा न किया। ज्यादा पशोपेश का मौका न था। मैं फौरन घोड़े से कूदा। और कई ओले मेरे चारों तरफ गिरे। मैं पानी में कूद पड़ा। हाथी-डुबाऊ पानी था। रपट के लिए जो बुनियाद खोदी गई थी, वह जरूरत से ज्यादा चौड़ी थी। ठेकेदार ने दस फीट चौड़ी रपट तो बना दी, मगर खुदी हुई मिट्टी बराबर न की। बुड्ढा इसी गड्ढे में गिरा था। मैं भी एक गोता खा गया लेकिन तैरना जानता था, कोई अंदेशा न था। मैंने दूसरी डुबकी लगाई और अंधे को बाहर निकाला। इतनी देर में वह सेरों पानी पी चुका था। जिस्म बेज़ान हो रहा था। मैं उसे लिये बड़ी मुश्किल से बाहर निकला। देखा तो घोड़ा भागकर मंदिर में जा

पहुंचा है। इस नीमजां (अधमरी) लाश को लिये हुए एक फर्लांग चलना आसान न था। ऊपर ओले तेजी से गिरने लगे थे। कभी सिर पर, कभी शाने (कन्धे) पर, कभी पीठ में गोली-सी लगा जाती थी। मैं तिलमिला उठता था, लेकिन इस लाश को सीने से लगाये मंदिर की तरफ लपका जाता था। मैं अगर इस वक्त अपने दिल के जज्बात बयान करूं तो शायद खयाल हो, मैं तहलील (शेखी, अत्युक्ति) कर रहा हूं। अच्छे काम करने में एक खास मसर्रत होती है। मगर मेरी खुशी एक दूसरी ही किस्म की थी। वह फातेहाना (विजयी) मसर्रत थी। मैंने अपने ऊपर फतह पायी थी। आज से पहले गालेबन मैं इस अंधे को पानी में डूबते देखकर या तो अपनी राह चला जाता या पुलिस को रिपोर्ट करता। खास ऐसी हालत में जबकि सिर पर ओले पड़ रहे हों, मैं कभी पानी में न घुसता। हर लहजा खतरा था कि कोई बड़ा-सा ओला सिर पर गिरकर अज़ीज़ जान का खात्मा कर दे। मगर मैं खुश था क्योंकि आज मेरी ज़िंदगी में एक नये दौर का आगाज (आरम्भ) था।

मैं मंदिर में पहुंचा तो सारा जिस्म ज़ख्मी हो रहा था। मुझे अपनी फिक्र न थी। एक ज़माना हुआ मैंने फौरी इम्दाद (फर्स्टऐड) की मश्क की थी। वह इस वक्त काम आई। मैंने आध घंटे में उस अंधे को उठाकर बिठा दिया। इतने में दो आदमी अंधे को ढूंढ़ते हुए मंदिर में आ पहुंचे। मुझे उसकी तीमारदार से नजात मिली। ओले निकल गये थे। मैंने घोड़े की पीठ ठोंकी। रूमाल से साज हो साफ किया और गजनपुर चला। बेखौफ, बेखतर, दिल में एक गैबी (दैवी) ताकत महसूस करता हुआ। उसी अंधे ने पूछा, "तुम कौन हो, भाई ? मुझे तो कोई महात्मा मालूम होते हो।"

मैंने कहा, "तुम्हारा खादिम हूं।"

"तुम्हारे सिर पर किसी देवता का साया मालूम होता है।"

"हां, एक देवी का साया है।"

"वह कौन देवी है ?"

"वह देवी पीछे गांव में रहती है।"

"तो क्या वह औरत है ?"

"नहीं, मेरे लिए तो वह देवी है।"

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू में, उर्दू कहानी-संग्रह 'वारदात' (पांडुलिपि तैयार : मार्च, 1935, प्रथम संस्करण) में संकलित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'सोलह अप्राप्य कहानियां' तथा 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

देवी-2

बूढ़ों में जो एक तरह की बच्चों की-सी बेशर्मी आ जाती है वह इस वक्त भी तुलिया में न आयी थी, यद्यपि उसके सिर के बाल चांदी हो गये थे और गाल लटककर दाढ़ों के नीचे आ गये थे। वह खुद तो निश्चित रूप से अपनी उम्र न बता सकती थी, लेकिन लोगों का अनुमान था कि वह सौ की सीमा को पार कर चुकी है। और अभी तक वह चलती तो

अंचल से सिर ढांककर, आंखें नीची किये हुए, मानो नवेली बहू है। थी तो चमारिन, पर क्या मजाल कि किसी के घर का पकवान देखकर उसका जी ललचाय। गांव में ऊंची जातों के बहुत से घर थे। तुलिया का सभी जगह आना-जाना था। सारा गांव उसकी इज्जत करता था और गृहिणियां तो उसे श्रद्धा की आंखों से देखती थीं। उसे आग्रह के साथ अपने घर बुलातीं, उसके सिर में तेल डालतीं, मांग में सिंदूर भरतीं, कोई अच्छी चीज पकायी होती, जैसे हलवा या खीर या पकौड़ियां, तो उसे खिलाना चाहतीं, लेकिन बुढ़िया को जीभ से सम्मान कहीं प्यारा था। कभी न खाती। उसके आगे-पीछे कोई न था। उसके टोले के लोग कुछ तो गांव छोड़कर भाग गये थे, कुछ प्लेग और मलेरिया की भेंट हो गये थे और अब थोड़े से खण्डहर मानो उनकी याद में नंगे सिर खड़े छाती-सी पीट रहे थे। केवल तुलिया की मड़ैया ही जिन्दा बच रही थी, और यद्यपि तुलिया जीवन-यात्रा की उस सीमा के निकट पहुंच चुकी थी, जहां आदमी धर्म और समाज के सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता है और अब श्रेष्ठ प्राणियों को भी उससे उसकी जात के कारण कोई भेद न था, सभी उसे अपने घर में आश्रय देने को तैयार थे, पर मानप्रिय बुढ़िया क्यों किसी का एहसान ले, क्यों अपने मालिक की इज्जत में बट्टा लगाये, जिसकी उसने सौ बरस पहले केवल एक बार सूरत देखी थी। हां, केवल एक बार !

तुलिया की जब सगाई हुई तो वह केवल पांच साल की थी और उसका पति अठारह साल का बलिष्ठ युवक था। विवाह करके वह पूरब कमाने चला गया। सोचा, अभी इस लड़की के जवान होने में दस-बारह साल की देर है। इतने दिनों में क्यों न कुछ धन कमा लूं और फिर निश्चिंत होकर खेती-बारी करूं। लेकिन तुलिया जवान भी हुई, बूढ़ी भी हो गयी, वह लौटकर घर न आया। पचास साल तक उसके खत हर तीसरे महीने आते रहे। खत के साथ जवाब के लिए एक पता लिखा हुआ लिफाफा भी होता था और तीस रुपये का मनीऑर्डर। खत में वह बराबर अपनी विवशता, पराधीनता और दुर्भाग्य का रोना रोता था—क्या करूं तूला, मन में तो बड़ी अभिलाषा है कि अपनी मड़ैया को आबाद कर देता और तुम्हारे साथ सुख से रहता, पर सब कुछ नसीब के हाथ है, अपना कोई बस नहीं। जब भगवान् लावेंगे तब आऊंगा। तुम धीरज रखना। मेरे जीते जी तुम्हें कोई कष्ट न होगा। तुम्हारी बांह पकड़ी है तो मरते दम तक निबाह करूंगा' जब आंखें बन्द हो जायेंगी तब क्या होगा, कौन जाने ? प्रायः सभी पत्रों में थोड़े से फेर-फार के साथ यही शब्द और यही भाव होते थे। हां, हां, जवानी के पत्रों में विरह की जो ज्वाला होती थी, उसकी जगह अब निराशा की राख ही रह गयी थी। लेकिन तुलिया के लिए सभी पत्र एक-से प्यारे थे, मानो उसके हृदय के अंग हों। उसने एक खत भी कभी न फाड़ा था—ऐसे शगुन के पत्र कहीं फाड़े जाते हैं—उनका एक छोटा-सा पोथा जमा हो गया था। उनके कागज का रंग उड़ गया था, स्याही भी उड़ गयी थी, लेकिन तुलिया के लिए वे अभी उतने ही सजीव, उतने ही सतृष्ण, उतने ही व्याकुल थे। सबके सब उसकी पेटारी में, लाल डोरे में बंधे हुए, उसके दीर्घ जीवन के संचित सोहाग की भांति, रखे हुए थे। इन पत्रों को पाकर तुलिया गद्‌गद् हो जाती। उसके पांव जमीन पर न पड़ते, उन्हें बार-बार पढ़वाती और बार-बार रोती। उस दिन वह अवश्य केशों में तल डालती, सिन्दूर से मांग भरवाती, रंगीन साड़ी पहनती, अपनी पुरखिनों के चरन छूती और आशीर्वाद लेती। उसका सोहाग जाग उठता था। गांव की

बिरहनियों के लिए पत्र पत्र नहीं, जो पढ़कर फेंक दिया जाता है, अपने प्यारे परदेसी के प्राण हैं, देह से मूल्यवान। उनमें देह की कठोरता नहीं, कलुषता नहीं, आत्मा की आकुलता और अनुराग है। तुलिया पति के पत्रों ही को शायद पति समझती थी। पति का कोई दूसरा रूप उसने कहां देखा था ?

रमणियां हंसी से पूछतीं—क्यों बुआ, तुम्हें फूफा की कुछ याद आती है—तुमने उनको देखा तो होगा ? और तुलिया के झुर्रियों से भरे हुए मुखमण्डल पर यौवन चमक उठता, आंखों में लाली आ जाती। पुलककर कहती—याद क्यों नहीं आती बेटा, उनकी सूरत तो आज भी मेरी आंखों के सामने है। बड़ी-बड़ी आंखें, लाल-लाल ऊंचा माथा, चौड़ी छाती, गठी हुई देह, ऐसा तो अब यहां कोर पट्ठा ही नहीं है। मोतियों के से दांत थे बेटा। लाल-लाल कुरता पहने हुए थे। जब ब्याह हो गया तो मैंने उनसे कहा, मेरे लिए बहुत से गहने बनवाओगे न, नहीं मैं तुम्हारे घर नहीं रहूंगी। लड़कपन था बेटा, सरम-लिहाज कुछ थोड़ा ही था। मेरी बात सुनकर वह बड़े जोर से ठट्ठा मारकर हंसे और मुझे अपने कंधे पर बैठाकर बोले—मैं तुझे गहनों मे लाद दूंगा, तुलिया, कितने गहने पहनेगी। मैं परदेस कमाने जाता हूं, वहां से रुपये भेजूंगा, तू बहुत से गहने बनवाना। जब वहां से आऊंगा तो अपने साथ भी सन्दूक भर गहने लाऊंगा। मेरा डोला हुआ था बेटा, मां-बाप की ऐसी हैसियत कहां थी कि उन्हें बारात के साथ अपने घर बुलाते। उनहीं के घर मेरी उनसे सगाई हुई और एक ही दिन में मुझे वह कुछ ऐसे भाये कि जब वह चलने लगे तो मैं उनके गले लिपटर रोती थी और कहती थी कि मुझे भी अपने साथ लेते चलो, मैं तुम्हारा खाना पकाऊंगी, तुम्हारी खाट बिछाऊंगी, तुम्हारी धोती छांटूंगी। वहां उन्हीं के उमर के दो तीन लड़के और बैठे हुए थे। उन्हीं के सामने वह मुस्कराकर मेरे कान में बोले—और मेरे साथ सोयेगी नहीं ? बस, मैं उनका गला छोड़कर अलग खड़ी हो गयी और उनके ऊपर एक कंकड़ फेंककर बोली—मुझे गाली दोगे तो कहे देती हूं, हां !

और यह जीवन-कथा नित्य के सुमिरन और जाप से जीवन-मन्त्र बन गयी थी। उस समय कोई उसका चेहरा देखता ! खिला पड़ता था। घूंघट निकालकर, भाव बताकर, मुंह फेरकर हंसती हुई, मानो उसके जीवन में दुःख जैसी कोई चीज है ही नहीं। वह अपने जीवन की इस पुण्य स्मृति का वर्णन करती, अपने अन्तस्तल के इस प्रकाश को दर्शाती जो सौ बरसों से उसके जीवन-पथ को कांटों और गढ़ों से बचाता आता था। कैसी अनन्त अभिलाषा थी, जिसे जीवन-सत्यों ने जरा भी धूमिल न कर पाया था।

2

वह दिन भी थे, जब तुलिया जवान थी, सुन्दर थी और पतंगों को उसके रूप-दीपक पर मंडराने का नशा सवार था। उनके अनुराग और उन्माद तथा समर्पण की कथाएं जब वह कांपते हुए स्वरों और सजल नेत्रों से कहती तो शायद उन शहीदों की आत्माएं स्वर्ग में आनन्द से नाच उठती होंगी, क्यों जीते-जी उन्हें जो कुछ न मिला वही अब तुलिया उन पर दोनों हाथों से निछावर कर रही थी। उसकी उठती हुई जवानी थी। जिधर से निकल जाती युवक समाज कलेजे पर हाथ रखकर रह जाता। तब बंसीसिंह नाम का एक ठाकुर था, बड़ा छैला, बड़ा रसिया, गांव का सबसे मनचला जवान, जिसकी तान रात के सन्नाटे में कोस

भर से सुनायी पड़ती थी। दिन में सैकड़ों बार तुलिया के घर के चक्कर लगाता। तालाब के किनारे, खेत में, खलिहान में, कुएं पर जहां वह जाती, परछाईं की तरह उसके पीछे लगा रहता। कभी दूध लेकर उसके घर जाता, कभी घी लेकर। कहता, तुलिया, मैं तुमसे कुछ नहीं चाहता, बस जो कुछ मैं तुझे भेंट किया करूं, वह ले लिया कर। तू मुझसे नहीं बोलता चाहती, मत बोल, मेरा मुंह नहीं देखना चाहती, मत देख, लेकिन मेरे चढ़ावों को ठुकरा मत। बस, मैं इसी से सन्तुष्ट हो जाऊंगा। तुलिया ऐसी भोली न थी, जानती थी यह उंगली पकड़ने की बातें हैं, लेकिन न जाने कैसे वह एक दिन उसके धोखे में आ गई—नहीं, धोखे में नहीं आयी—उसकी जवानी पर उसे दया आ गयी। एक दिन वह पके हुए कलमी आमों की एक टोकरी लाया। तुलिया ने कभी कलमी आम न खाये थे। टोकरी उससे ले ली। फिर तो आए दिन आम की डलियां आने लगीं। एक दिन जब तुलिया टोकरी लेकर घर में जाने लगी तो बंसी ने धीरे से उसका हाथ पकड़कर अपने सीने पर रख लिया और चट उसके पैरों पर गिर पड़ा। फिर बोला—तुलिया, अगर अब भी तुझे मुझ पर दया नहीं आती तो आज मुझे मार डाल। तेरे हाथों से मर जाऊं, बस यही साध है।

तुलिया ने टोकरी पटक दी, अपने पांव छुड़ाकर एक पग पीछे हट गयी और रोषभरी आंखों से ताकती हुई बोली—अच्छा ठाकुर, अब यहां से चले जाव, नहीं तो या तो तुम न रहोगे या मैं न रहूंगी। तुम्हारे आमों में आग लगे, और तुमको क्या कहूं ! मेरा आदमी काले कोसों मेरे नाम पर बैठा हुआ है, इसीलिए कि मैं यहां उसके साथ कपट करूं ? वह मर्द है, चार पैसे कमाता है, क्या वह दूसरी न रख सकता था ? क्या औरतों की संसार में कमी है? लेकिन वह मेरे नाम पर बैठा हुआ है, मर्द होकर बैठा हुआ है। तुमसे कम पट्ठा नहीं है, तुम्हारा जैसा बांगा चाहे न हो। पढ़ोगे उसकी चिट्ठियां जो वह मेरे नाम भेजता है ? आप चाहे जिस दिशा में हो, मैं कौन यहां बैठी देखती हूं, लेकिन मेरे पास बराबर रुपये भेजता है। इसीलिए कि मैं यहां दूसरों से विहार करूं ? जब तक वह मुझको अपनी और अपने को मेरा समझता रहेगा, तुलिया उसी की रहेगी, मन से भी, करम से भी। जब उससे मेरा ब्याह हुआ तब मैं पांच साल की अल्हड़ छोकरी थी। उसने मेरे साथ कौन-सा सुख उठाया? बांह पकड़ने की लाज ही तो निभा रहा है ? जब वह मर्द होकर प्रीत निभाता है तो मैं औरत होकर उसके साथ दगा करूं !

यह कहकर वह भीतर गयी और पत्रों की पिटारी लाकर ठाकुर के सामने पटक दी। मगर ठाकुर की आंखों से आंसुओं का तार बंधा हुआ था, होंठ बिचके जा रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि भूमि में धंसा जा रहा है।

एक क्षण के बाद उसने हाथ जोड़कर कहा—मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया तुलिया। मैंने तुझे पहचाना न था। अब इसकी यही सजा है कि इसी क्षण मुझे मार डाल। ऐसे पापी के उद्धार का यही एक मार्ग है।

तुलिया को उस पर दया नहीं आयी। वह समझती थी कि यह अभी तक शरारत किये जाता है। झल्लाकर बोली—मरने को जी चाहता है तो मर जाव। क्या संसार में कुएं-तालाब नहीं हैं, या तुम्हारे पास तलवार-कटार नहीं है ? मैं किसी को क्यों मारूं ?

ठाकुर ने हताश आंखों से देखा।

"तो यही तेरा हुक्म है ?"

"मेरा हुक्म क्यों होने लगा ? मरने वाले किसी से हुक्म नहीं मांगते।"

ठाकुर चला गया और दूसरे दिन उसकी लाश नदी में तैरती हुई मिली। लोगों ने समझा तड़के नहाने आया होगा, पांव फिसल गया होगा। महीनों तक गांव में इसकी चर्चा रही, पर तुलिया ने जबान तक न खोली, उधर का आना-जाना बन्द कर दिया।

बंसीसिंह के मरते ही छोटे भाई ने जायदाद पर कब्जा कर लिया और उसकी स्त्री और बालक को सताने लगा। देवरानी ताने देती, देवर ऐब लगाता। आखिर अनाथ विधवा एक दिन जिन्दगी से तंग आकर घर से निकल पड़ी। गांव में सोता पड़ गया था। तुलिया भोजन करके हाथ में लालटेन लिए गाय को रोटी खिलाने निकली थी। प्रकाश में उसने ठकुराइन को दबे पांव जाते देखा। सिसकती और अंचल से आंसू पोंछती जाती थी। तीन साल का बालक गोद में था।

तुलिया ने पूछा—इतनी रात गये कहां जाती हो ठकुराइन ? सुनो, बात क्या है, तुम तो रो रही हो।

ठकुराइन घर से जा तो रही थी, पर उसे खुद न मालूम था कहां। तुलिया की ओर एक वार भीत नेत्रों से देखकर बिना कुछ जवाब दिये आगे बढ़ी। जवाब कैसे देती ? गले में तो आंसू भरे हुए थे और इस समय न जाने क्यों और उमड़ आये थे।

तुलिया सामने आकर बोली—जब तक तुम बता न दोगी, मैं एक पग भी आगे न जाने दूंगी।

ठकुराइन खड़ी हो गयी और आंसू-भरी आंखों में क्रोध भरकर बोली—तू क्या करेगी पूछकर ? तुझसे मतलब ?

"मुझसे कोई मतलब ही नहीं ? क्या मैं तुम्हारे गांव में नहीं रहती ? गांव वाले एक-दूसरे के दुख-दर्द में साथ न देंगे तो कौन देगा ?"

"इस जमाने में कौन किसका साथ देता है तुलिया ? जब अपने घर वालों ने ही साथ नहीं दिया और तेरे भैया के मरते ही मेरे खून के प्यासे हो गये, तो फिर मैं और किससे आशा रखूं ? तुझसे मेरे घर का हाल कुछ छिपा है ? वहां मेरे लिए अब जगह नहीं है। जिस देवर-देवरानी के लिए मैं प्राण देती थी, वही अब मेरे दुश्मन हैं। चाहते हैं कि यह एक रोटी खाए और अनाथों की तरह पड़ी रहे। मैं रखैली नहीं हूं, उढ़री नहीं हूं, ब्याहता हूं, दस गांव के बीच में ब्याह के आयी हूं। अपनी रत्ती भर जायदाद न छोड़ूंगी। आज कोई न दे, मैं दुखिया हूं, लेकिन चाहे मेरी आबरू जाय, इनको मिटा के छोड़ूंगी और अपना आधा लेकर रहूंगी।"

"तेरे भैया' ये दो शब्द तुलिया को इतने प्यारे लगे कि उसने ठकुराइन को गले लगा लिया और उसका हाथ पकड़कर बोली—तो बहिन, मेरे घर में चलकर रहो। और कोई साथ दे या न दे, तुलिया मरते दम तक तुम्हारा साथ देगी। मेरा घर तुम्हारे रहने लायक नहीं है, लेकिन घर में और कुछ नहीं शान्ति तो है और मैं कितनी ही नीच हूं, तुम्हारी बहिन तो हूं।

ठकुराइन ने तुलिया के चेहरे पर अपनी विस्मयभरी आंखें जमा दीं।

"ऐसा न हो मेरे पीछे मेरा देवर तुम्हारा भी दुश्मन हो जाए।"

"मैं दुश्मनों से नहीं डरती, नहीं इस टोले में अकेली न रहती।"

"लेकिन मैं तो नहीं चाहती कि मेरे कारन तुझ पर आफत आवे।"

"तो उनसे कहने ही कौन जाता है, और किसे मालूम होगा कि अन्दर तुम हो।"

ठकुराइन को ढांढ़स बंधा। सकुचाती हुई तुलिया के साथ अन्दर आयी। उसका हृदय भारी था। जो एक विशाल पक्के भवन की स्वामिनी थी, आज इस झोंपड़ी में पड़ी हुई है।

घर में एक ही खाट थी, ठकुराइन बच्चे के साथ उस पर सोती। तुलिया जमीन पर पड़ रहती। एक ही कम्बल था, ठकुराइन उसको ओढ़ती, तुलिया टाट का टुकड़ा ओढ़कर रात काटती। मेहमान का क्या सत्कार करे, कैसे रखे, यही सोचा करती। ठकुराइन के जूठे बरतन मांजना, कपड़े छांटना, उसके बच्चे को खिलाना, ये सारे काम वह इतने उमंग से करती, मानो देवी की उपासना कर रही हो। ठकुराइन इस विपत्ति में भी ठकुराइन थी, गर्विणी, विलासप्रिय, कल्पनाहीन। इस तरह रहती थी मानो उसी का घर है और तुलिया पर इस तरह रोब जमाती थी मानो वह उसकी लौंडी है। लेकिन तुलिया अपने अभागे प्रेमी के साथ प्रीति की रीति का निबाह कर रही थी, उसका मन कभी न मैला होता, माथे पर कभी न बल पड़ता।

एक दिन ठकुराइन ने कहा—तूला, तुम बच्चे को देखती रहना, मैं दो-चार दिन के लिए जरा बाहर जाऊंगी। इस तरह तो यहां जिन्दगी-भर तुम्हारी रोटियां तोड़ती रहूंगी, पर दिल की आग कैसे ठण्डी होगी ? उस बेहया को इसकी लाज कहां कि उसकी भावज कहां चली गयी। वह तो दिल में खुश होगा कि अच्छा हुआ उसके मार्ग का कांटा हट गया। ज्यों ही पता चला कि मैं अपने मैके नहीं गयी, कहीं और पड़ी हूं, वह तुरन्त मुझे बदनाम कर देगा और तब सारा समाज उसी का साथ देगा। अब तुझे कुछ अपनी फिक्र करनी चाहिए।

तुलिया ने पूछा—कहां जाना चाहती हो बहिन ? कोई हर्ज न हो तो मैं भी साथ चलूं। अकेली कहां जाओगी ?

"उस सांप को कुचलने के लिए कोई लाठी खोजूंगी।"

तुलिया इसका आशय न समझ सकी। उसके मुख की ओर ताकने लगी।

ठकुराइन ने निर्लज्जता के साथ कहा—तू इतनी मोटी-सी बात भी नहीं समझी ! साफ-साफ ही सुनना चाहती है ? अनाथ स्त्री के पास अपनी रक्षा का अपने रूप के सिवा दूसरा कौन अस्त्र है ? अब उसी अस्त्र से काम लूंगी। जानती है इस रूप के क्या दाम होंगे? उस भेड़िये का सिर। इस परगने का हाकिम जो कोई भी हो उसी पर मेरा जादू चलेगा। और ऐसा कौन मर्द है जो किसी युवती के जादू से बच सके, चाहे वह ऋषि ही क्यों न हो। धर्म जाता है जाए, मुझे परवाह नहीं। मैं यह नहीं देख सकती कि मैं वन-वन की पत्तियां तोडूं और वह शोहदा मूंछों पर ताव देकर राज करे।

तुलिया को मालूम हुआ कि इस अभिमानिनी के हृदय पर कितनी गहरी चोट है; इस व्यथा को शान्त करने के लिए वह जान ही पर नहीं खेल रही है, धर्म पर खेल रही है जिसे वह प्राणों से भी प्रिय समझती है। वंसीसिंह की वह प्रार्थी मूर्ति उसकी आंखों के सामने आ खड़ी हुई। वह बलिष्ठ था, अपनी फौलादी शक्ति से वह बड़ी आसानी के साथ तुलिया पर बल प्रयोग कर सकता था, और उस रात के सन्नाटे में उस अनाथा की रक्षा करने वाला ही कौन बैठा हुआ था। पर उसकी सतीत्व-भरी भर्त्सना ने वंसीसिंह को किस तरह मोहित कर लिया, जैसे कोई काला भयंकर नाग महुअर का सुरीला राग सुनकर मस्त हो गया हो। उसी सच्चे सूरमा की कुल-मर्यादा आज संकट में है। क्या तुलिया उस मर्यादा

को लूटने देगी और कुछ न करेगी ? नहीं-नहीं ! अगर बंसीसिंह ने उसके सत् को अपने प्राणों से प्रिय समझता तो वह भी उसकी आबरू को अपने धर्म से बचायेगी।

उसने ठकुराइन को तसल्ली देते हुए कहा—अभी तुम कहीं मत जाओ बहिन, पहले मुझे अपनी शक्ति आजमा लेने दो। मेरी आबरू चली भी गयी तो कौन हंसेगा। तुम्हारी आबरू के पीछे तो एक कुल की आबरू है।

ठकुराइन ने मुस्कराकर उसको देखा। बोली—तू यह कला क्या जाने तुलिया ?

"कौन-सी कला ?"

"यही मर्दों को उल्लू बनाने की।"

"मैं नारी नहीं हूं ?"

"लेकिन पुरुषों का चरित्र तो नहीं जानती ?"

"यह तो हम-तुम दोनों मां के पेट से सीखकर आयी हैं।"

"कुछ बता तो क्या करेगी ?"

"वही तो तुम करने जा रही हो। तुम परगने के हाकिम पर अपना जादू डालना चाहती हो, मैं तुम्हारे देवर पर जाल फेंकूंगी।"

"बड़ा घाघ है तुलिया।"

"यही तो देखना है।"

3

तुलिया ने बाकी रात कार्यक्रम और उसका विधान सोचते काटी। कुशल सेनापति की भांति उसने धावे और मार-काट की एक योजना-सी मन में बना ली। उसे अपनी विजय का विश्वास था। शत्रु निश्शंक था, इस धावे की उसे ज़रा भी खबर न थी।

बंसीसिंह का छोटा भाई गिरधर कंधे पर छः फीट का एक मोटा लट्ठ रखे अकड़ता चला आता था कि तुलिया ने पुकारा—ठाकुर, तनिक यह घास का गट्ठा उठाकर मेरे सिर पर रख दो। मुझसे नहीं उठता।

दोपहर हो गया था। मजदूर खेतों से लौटकर आ चुके थे। बगूले उठने लगे थे। तुलिया एक पेड़ के नीचे घास का गट्ठा रखे खड़ी थी। उसके माथे से पसीने की धार बह रही थी।

ठाकुर ने चौंककर तुलिया की ओर देखा। उसी वक्त तुलिया का अंचल खिसक गया और नीचे की लाल चोली झलक पड़ी। उसने झट अंचल सम्हाल लिया, पर उतावली में जूड़े में गूंथी हुई फूलों की बेनी बिजली की तरह आंखों में कौंध गयी। गिरधर का मन चंचल हो उठा। आंखों में हल्का-सा नशा पैदा हुआ और चेहरे पर हल्की-सी सुर्खी और हल्की-सी मुस्कराहट। नस-नस में संगीत-सा गूंज उठा।

उसने तुलिया को हजारों बार देखा था, प्यासी आंखों से, ललचायी आंखों से, मगर तुलिया अपने रूप और सत् के घमण्ड में उसकी तरफ कभी आंखें तक न उठाती थी। उसकी मुद्रा और ढंग में कुछ ऐसी रुखाई, कुछ ऐसी निठुरता होती थी कि ठाकुर के सारे हौसले पस्त हो जाते थे, सारा शौक ठण्डा पड़ जाता था। आकाश में उड़ने वाले पंछी पर उसके जाल और दाने का क्या असर हो सकता था ? मगर आज वह पंछी सामने वाली

डाली पर आ बैठा था और ऐसा जान पड़ता था कि भूखा है। फिर वह क्यों न दाना और जाल लेकर दौड़े।

उसने मस्त होकर कहा—मैं पहुंचाये देता हूं तुलिया, तू क्यों सिर पर उठायेगी।

"और कोई देख ले तो यही कहे कि ठाकुर को क्या हो गया है ?"

"मुझे कुत्तों के भूंकने की परवा नहीं है।"

"लेकिन मुझे तो है।"

ठाकुर ने न माना। गट्ठा सिर पर उठा लिया और इसी तरह आकाश में पांव रखता चला मानो तीनों लोक का खजाना लूटे लिये जाता हो।

4

एक महीना गुजर गया। तुलिया ने ठाकुर पर मोहिनी डाल दी थी और अब उसे मछली की तरह खेला रही थी। कभी वंसी ढीली कर देती, कभी कड़ी। ठाकुर शिकार करने चला था, खुद जाल में फ़ंस गया। अपना ईमान और धर्म और प्रतिष्ठा सब कुछ होम करके वह देवी का वरदान न पा सकता था। तुलिया आज भी उससे उतनी ही दूर थी जितनी पहले।

एक दिन वह तुलिया से बोला—इस तरह कब तक जलायेगी तुलिया। चल कहीं भाग चलें।

तुलिया ने फंदे को और कसा—हां, और क्या। जब तुम मुंह फेर लो तो कहीं की न रहूं। दीन से भी जाऊं, दुनिया से भी।

ठाकुर ने शिकायत के स्वर में कहा—अब भी तुझे मुझ पर विश्वास नहीं आता ?

"भौंरे फूल का रस लेकर उड़ जाते हैं।"

"और पतंगे जलकर राख नहीं हो जाते ?"

"पतियाऊं कैसे ?"

"मैंने तेरा कोई हुक्म टाला है ?"

"तुम समझते होंगे कि तुलिया को एक रंगीन साड़ी और दो-एक छोटे-मोटे गहने देकर फंसा लूंगा। मैं ऐसी भोली नहीं हूं।"

तुलिया ने ठाकुर के दिल की बात भांप ली थी। ठाकुर हैरत में आकर उसका मुंह ताकने लगा।

तुलिया ने फिर कहा—आदमी अपना घर छोड़ता है तो पहले कहीं बैठने का ठिकाना कर लेता है।

ठाकुर प्रसन्न होकर बोला—तो तू चलकर मेरे घर में मालकिन बनकर रह। मैं तुझसे कितनी बार कह चुका।

तुलिया आंखें मटकाकर बोली—आज मालकिन बनकर रहूं, कल लौंडी बनकर भी न रहने पाऊं, क्यों ?

"तो जिस तरह तेरा मन भरे वह कर। मैं तो तेरा गुलाम हूं।"

"वचन देते हो ?"

"हां, देता हूं। एक बार नहीं, सौ बार, हजार बार।"

"फिर तो न जाओगे ?"

"वचन देकर फिर जाना नामर्दों का काम है।"

"तो अपनी आधी जमीन-जायदाद मेरे नाम लिख दो।"

ठाकुर अपने घर की एक कोठरी, दस-पांच बीघे खेत, गहने-कपड़े तो उसके चरणों पर चढ़ा देने को तैयार था, लेकिन आधी जायदाद उसके नाम लिख देने का साहस उसमें न था। कल को तुलिया उससे किसी बात पर नाराज हो जाए, तो उसे आधी जायदाद से हाथ धोना पड़े। ऐसी औरत का क्या एतबार ! उसे गुमान तक न था कि तुलिया उसके प्रेम की इतनी कड़ी परीक्षा लेगी। उसे तुलिया पर क्रोध आया। यह चमार की बिटिया जरा सुन्दर क्या हो गयी है कि समझती है, मैं अप्सरा हूं। उसकी मुहब्बत केवल उसके रूप का मोह थी। वह मुहब्बत, जो अपने को मिटा देती है और मिट जाना ही अपने जीवन की सफलता समझती है, उसमें न थी।

उसने माथे पर बल लाकर कहा—मैं जानता था, तुझे मेरी जमीन-जायदाद से प्रेम है तुलिया, मुझसे नहीं !

तुलिया ने छूटते ही जवाब दिया—तो क्या मैं न जानती थी कि तुम्हें मेरे रूप और जवानी ही से प्रेम है, मुझसे नहीं ?

"तू प्रेम को बाजार का सौदा समझती है ?"

"हां, समझती हूं। तुम्हारे लिए प्रेम चार दिन की चांदनी होगी, मेरे लिए तो अंधेरा पाख हो जाएगा। मैं जब अपना सब कुछ तुम्हें दे रही हूं तो उसके बदले में सब कुछ लेना भी चाहती हूं। तुम्हें अगर मुझसे प्रेम होता तो तुम क्या पूरी जायदाद मेरे नाम लिख देते ? मैं जायदाद क्या सिर पर उठा ले जाऊंगी। लेकिन तुम्हारी नीयत मालूम हो गयी। अच्छा ही हुआ। भगवान् न करे कि ऐसा कोई समय आवे, लेकिन दिन बराबर किसी के नहीं जाते, अगर ऐसा कोई समय आया कि तुमको मेरे सामने हाथ पसारना पड़ा तो तुलिया दिखा देगी कि औरत का दिल कितना उदार हो सकता है।"

तुलिया झल्लायी हुई वहां से चली गयी, पर निराश न थी, न बेदिल। जो कुछ हुआ वह उसके सोचे हुए विधान का एक अंग था। इसके आगे क्या होने वाला है, इसके बारे में भी उसे कोई सन्देह न था।

5

ठाकुर ने जायदाद तो बचा ली थी, पर बड़े महंगे दामों। उसके दिल का इत्मीनान गायब हो गया था। जिन्दगी में जैसे कुछ रह ही न गया हो। जायदाद आंखों के सामने थी, तुलिया दिल के अन्दर। तुलिया जब रोज सामने आकर अपनी तिरछी चितवनों से उसके हृदय में वाण चलाती थी, तब वह ठोस सत्य थी। अब जो तुलिया उसके हृदय में बैठी हुई थी, वह स्वप्न थी जो सत्य से कहीं ज्यादा मादक है, विदारक है।

कभी-कभी तुलिया स्वप्न की एक झलक-सी नजर आ जाती, और स्वप्न ही की भांति विलीन भी हो जाती। गिरधर उससे अपने दिल का दर्द कहने का अवसर ढूंढ़ता रहता लेकिन तुलिया उसके साये से भी परहेज करती। गिरधर को अब अनुभव हो रहा था कि उसके जीवन को सुखी वनाने के लिए उसकी जायदाद जितनी जरूरी है, उससे कहीं ज्यादा जरूरी तुलिया है। उसे अब अपनी कृपणता पर क्रोध आता। जायदाद क्या तुलिया

के नाम रही, क्या उसके नाम। इस जरा-सी बात में क्या रखा है। तुलिया तो इसलिए अपने नाम लिखा रही थी कि कहीं मैं उसके साथ बेवफाई कर जाऊं तो वह अनाथ न हो जाए। जब मैं उसका बिना कौड़ी का गुलाम हूं तो बेवफाई कैसी ? मैं उसके साथ बेवफाई करूंगा, जिसकी एक निगाह के लिए, एक शब्द के लिए तरसता रहता हूं ? कहीं उससे एक बार एकान्त में भेंट हो जाती तो उससे कह देता—तूला, मेरे पास जो कुछ है, वह सब कुछ तुम्हारा है। कहो बख्शिशनामा लिख दूं, कहो ब्यनामा लिख दूं। मुझसे जो अपराध हुआ उसके लिए नादिम हूं। जायदाद से मनुष्य को जो एक संस्कारगत प्रेम है, उसी ने मेरे मुंह से वह शब्द निकलवाये। यही रिवाजी लोभ मेरे और तुम्हारे बीच में आकर खड़ा हो गया। पर अब मैंने जाना कि दुनिया में वही चीज सबसे कीमती है जिससे जीवन में आनन्द और अनुराग पैदा हो। अगर दरिद्रता और वैराग्य में आनन्द मिले तो वही सबसे प्रिय वस्तु है, जिस पर आदि जमीन और मिल्कियत सब कुछ होम कर देगा। आज भी लाखों माई के लाल हैं जो संसार के सुखों पर लात मारकर जंगलों और पहाड़ों की सैर करने में मस्त हैं। और उस वक्त मैं इतनी छोटी-सी बात न समझा। हाय रे दुर्भाग्य !

6

एक दिन ठाकुर के यपास तुलिया ने पैगाम भेजा—मैं बीमार हूं, आकर देख जाव। कौन जाने बचूं कि न बचूं।

इधर कई दिन से ठाकुर ने तुलिया को न देखा था। कई बार उसके द्वार के चक्कर भी लगाये, पर वह न दीख पड़ी। अब जो यह संदेश मिला तो वह जैसे पहाड़ से नीचे गिर पड़ा। रात के दस बजे होंगे। पूरी बात भी न सुनी और दौड़ा। छाती धड़क रही थी और सिर उड़ा जाता था। तुलिया बीमार है ! क्या होगा भगवान् ! तुम मुझे क्यों नहीं बीमर कर देते? मैं तो उसके बदले मरने को तैयार हूं। दोनों ओर के काले-काले वृक्ष मौत के दूतों की तरह दौड़े चले आते थे। रह-रहकर उसके प्राणों से एक ध्वनि निकलती थी, हसरत और दर्द में डूबी हुई। तुलिया बीमार है।

उसकी तुलिया ने उसे बुलाया है। उस कृतघ्नी, अधम, नीच, हत्यारे को बुलाया है कि आकर मुझे देख जाओ, कौन जाने बचूं कि न बचूं। तू अगर न बचेगी तुलिया तो मैं भी न बचूंगा, हाय, न बचूंगा ! दीवार से सिर फोड़कर मर जाऊंगा। फिर मेरी और तेरी चिता एक साथ बनेगी, दोनों के जनाजे एक साथ निकलेंगे।

उसने कदम और तेज किये। आज वह अपना सब कुछ तुलिया के कदमों पर रख देगा। तुलिया उसे बेदफा समझती है। आज वह दिखायेगा, वफा किसे कहते हैं। जीवन में अगर उसने वफा न की तो मरने के बाद करेगा। इस चार दिन की जिन्दगी में जो कुछ न कर सका वह अनन्त युगों तक करता रहेगा। उसका प्रेम कहानी बनकर घर-घर फैल जाएगा।

मन में शंका हुई, तुम अपने प्राणों का मोह छोड़ सकोगे ? उसने जोर से छाती पीटी और चिल्ला उठा—प्राणों का मोह किसके लिए ? और प्राण भी तो वही है, जो बीमार है। देखूं, मौत कैसे प्राण ले जाती है और देह को छोड़ देती है।

उसंने धड़कते हुए दिल और थरथराते हुए पांवों से तुलिया के घर में कदम रखा।

तुलिया अपनी खाट पर एक चादर ओढ़े सिमटी पड़ी थी और लालटेन के अंधे प्रकाश में उसका पीला मुख मानो मौत की गोद में विश्राम कर रहा था।

उसने उसके चरणों पर सिर रख दिया और आंसुओं में डूबी हुई आवाज से बोला—तूला, यह अभागा तुम्हारे चरणों पर पड़ा हुआ है। क्या आंखें न खोलोगी ?

तुलिया ने आंखें खोल दीं और उसकी ओर करुण दृष्टि डालकर कराहती हुई बोली—तुम हो गिरधरसिंह, तुम आ गये ? अब मैं आराम से मरूंगी। तुम्हें एक बार देखने के लिए जी बहुत बेचैन था। मेरा कहा-सुना माफ कर देना और मेरे लिए रोना मत। इस मिट्टी की देह में क्या रखा है गिरधर ! वह तो मिट्टी में मिल जाएगी। लेकिन मैं कभी तुम्हारा साथ न छोडूंगी। परछाईं की तरह नित्य तुम्हारे साथ रहूंगी। तुम मुझे देख न सकोगे, मेरी बातें सुन न सकोगे, लेकिन तुलिया आठों पहर सोते-जागते तुम्हारे साथ रहेगी। मेरे लिए अपने को बदनाम मत करना गिरधर ! कभी किसी के सामने मेरा नाम जुबान पर न लाना। हां, एक बार तो मेरी चिता पर पानी के छींटे मार देना। इससे मेरे हृदय की ज्वाला शान्त हो जाएगी।

गिरधर फूट-फूटकर रो रहा था। हाथ में कटार होती तो इस वक्त जिगर में मार लेता और उसके सामने तड़पकर मर जाता।

जरा दम लेकर तुलिया ने फिर कहा—मैं बचूंगी नहीं गिरधर, तुमसे एक विनती करती हूं, मानोगे ?

गिरधर ने छाती ठोंककर कहा—मेरी लाश भी तेरे साथ ही निकलेगी तुलिया। अब जीकर क्या करूंगा और जिऊं भी तो कैसे ? तू मेरा प्राण है तुलिया।

उसे ऐसा मालूम हुआ तुलिया मुस्करायी।

"नहीं-नहीं, ऐसी नादानी मत करना। तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, उनका पालन करना। अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम है, तो ऐसा कोई काम मत करना जिससे किसी को इस प्रेम की ग़न्ध भी मिले। अपनी तुलिया को मरने के पीछे बदनाम मत करना।"

गिरधर ने रोकर कहा—जैसी तेरी इच्छा।

"मेरी तुमसे एक विनती है।"

"अब तो जिउंगा ही इसलिए कि तेरा हुक्म पूरा करूं। यही मेरे जीवन का ध्येय होगा।"

"मेरी यही विनती है कि अपनी भाभी को उसी तरह मान-मर्यादा के साथ रखना जैसे वह बंसीसिंह के सामने रहती थी। उसका आधा उसको दे देना।"

"लेकिन भाभी तो तीन महीने से अपने मैके में हैं और कह गयी हैं कि अब कभी न आऊंगी।"

"यह तुमने बुरा किया है गिरधर, बहुत बुरा किया। अब मेरी समझ में आया कि क्यों मुझे बुरे-बुरे सपने आ रहे थे। अगर चाहते हो कि मैं अच्छी हो जाऊं, तो जितनी जल्द हो सके, लिखा-पढ़ी करके कागज-पत्तर मेरे पास रख दो। तुम्हारी यह बददियानती ही मेरी जान की गाहक हो रही है। अब मुझे मालूम हुआ कि बंसीसिंह क्यों मुझे बार-बार सपना देते थे। मुझे और कोई रोग नहीं है। बंसीसिंह ही मुझे सता रहे हैं। बस, अभी जाओ। देर की तो मुझे जीता न पाओगे। तुम्हारी बेइन्साफी का दण्ड बंसीसिंह मुझे दे रहे हैं।

गिरधर ने दबी जुबान से कहा—लेकिन रात को कैसे लिखा-पढ़ी होगी तूला ? स्टाम्प कहां मिलेगा ? लिखेगा कौन ? गवाह कहां हैं ?

"कल सांझ तक भी तुमने लिखा-पढ़ी कर ली तो मेरी जान बच जाएगी, गिरधर। मुझे बंसीसिंह लगे हुए हैं, वही मुझे सता रहे हैं, इसलिए कि वह जानते हैं तुम्हें मुझसे प्रेम है। मैं तुम्हारे ही प्रेम के कारण मारी जा रही हूं। अगर तुमने देर की तो तुलिया को जीता न पाओगे।"

"मैं अभी जाता हूं तुलिया। तेरा हुक्म सिर और आंखों पर। अगर तूने पहले ही यह बात मुझसे कह दी होती तो क्यों यह हालत होती ? लेकिन कहीं ऐसा न हो, मैं तुझे देख न सकूं और मन की लालसा मन में ही रह जाए।"

"नहीं-नहीं, मैं कल सांझ तक नहीं मरूंगी, विश्वास रखो।"

गिरधर उसी छन वहां से निकला और रातों-रात पच्चीस कोस की मंजिल काट दी। दिन निकलते-निकलते सदर पहुंचा, वकीलों से सलाह-मशविरा किया, स्टाम्प लिया, भावज के नाम आधी जायदाद लिखी, रजिस्ट्री करायी और चिराग जलते-जलते हैरान-परेशान, थका-मांदा, बेदाना-पानी, आशा और दुराशा से कांपता हुआ आकर तुलिया के सामने खड़ा हो गया। रात के दस बज गये थे। उस वक्त न रेलें थीं, न लारियां। बेचारे को पचास कोस की कठिन यात्रा करनी पड़ी। ऐसा थक गया था कि एक-एक पग पहाड़ मालूम होता था। पर भय था कि कहीं देर हो गयी तो अनर्थ हो जाएगा।

तुलिया ने प्रसन्न मन से पूछा—तुम आ गए गिरधर ? काम कर आये ?

गिरधर ने कागज उसके सामने रख दिया और बोला—हां तूला, कर आया, मगर अब भी तुम अच्छी न हुईं तो तुम्हारे साथ मेरी जान भी जाएगी। दुनिया चाहे हंसे चाहे रोये, मुझे परवाह नहीं है। कसम ले लो, जो एक घूंट पानी भी पिया हो।

तुलिया उठ बैठी और कागज को अपने सिरहाने रखकर बोली—अब मैं बहुत अच्छी हूं। सवेरे तक बिल्कुल अच्छी हो जाऊंगी। तुमने मेरे साथ जो नेकी की है, वह मरते दम तक न भूलूंगी। लेकिन अभी-अभी मुझे जरा नींद आ गयी थी। मैंने सपना देखा कि बंसीसिंह मेरे सिरहाने खड़े हैं और मुझसे कह रहे हैं, तुलिया, तू ब्याहता है, तेरा आदमी हजार कोस पर बैठा तेरे नाम की माला जप रहा है। चाहता तो दूसरी कर लेता लेकिन तेरे नाम पर बैठा हुआ है और जन्म-भर बैठा रहेगा। अगर तूने उससे दगा की तो मैं तेरा दुश्मन हो जाऊंगा और फिर जान लेकर ही छोड़ूंगा। अपना भला चाहती है तो अपने सत् पर रह। तूने उससे कपट किया, उसी दिन मैं तेरी सांसत कर डालूंगा। बस यह कहकर वह लाल-लाल आंखों से मुझे तरेरते हुए चले गये।

गिरधर ने एक छन तुलिया के चेहरे की तरफ देखा, जिस पर इस समय एक दैवी तेज विराज रहा था और एकाएक जैसे उसकी आंखों के सामने से पर्दा हट गया और सारी साजिश समझ में आ गयी। उसने सच्ची श्रद्धा से तुलिया के चरणों को चूमा और बोला—समझ गया तुलिया, तू देवी है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'चांद', अप्रैल, 1935 में प्रकाशित। 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

जीवन का शाप

कावसजी ने पत्र निकाला और यश कमाने लगे। शापूरजी ने रुई की दलाली शुरू की और धन कमाने लगे ? कमाई दोनों ही कर रहे थे, पर शापूरजी प्रसन्न थे; कावसजी विरक्त। शापूरजी को धन के साथ सम्मान और यश आप-ही-आप मिलता था। कावसजी को यश के साथ धन दूरबीन से देखने पर भी दिखायी न देता था; इसलिए शापूरजी के जीवन में शांति थी, सहृदयता थी, आशीर्वाद था, क्रीड़ा थी। कावसजी के जीवन में अशांति थी, कटुता थी, निराशा थी, उदासीनता थी। धन को तुच्छ समझने की वह बहुत चेष्टा करते थे; लेकिन प्रत्यक्ष को कैसे झुठला देते ? शापूरजी के घर में विराजने वाले सौजन्य और शांति के सामने उन्हें अपने घर के कलह और फूहड़पन से घृणा होती थी। मृदुभाषणी मिसेज शापूर के सामने उन्हें अपनी गुलशन बानू संकीर्णता और ईर्ष्या का अवतार-सी लगती थी। शापूरजी घर में आते, तो शीरीं-बाई मृदु हास से उनका स्वागत करती। वह खुद दिन-भर के थके-माँदे घर आते तो गुलशन अपना दुखड़ा सुनाने बैठ जाती और उनको खूब फटकारें बतातीं—तुम भी अपने को आदमी कहते हो। मैं तो तुम्हें बैल समझती हूँ, बैल बड़ा मेहनती है, गरीब है, सन्तोषी है, माना लेकिन उसे विवाह करने का क्या हक था ?

कावसजी से एक लाख बार यह प्रश्न किया जा चुका था कि जब तुम्हें समाचार-पत्र निकालकर अपना जीवन बरबाद करना था, तो तुमने विवाह क्यों किया ? क्यों मेरी जिन्दगी तबाह कर दी ? जब तुम्हारे घर में रोटियाँ न थीं, तो मुझे क्यों लाये ! इस प्रश्न का जवाब देने की कावसजी में शक्ति न थी। उन्हें कुछ सूझता ही न था। वह सचमुच अपनी गलती पर पछताते थे। एक बार बहुत तंग आकर उन्होंने कहा था—अच्छा भाई अब तो जो होना था; हो चुका; लेकिन मैं तुम्हें बाँधे तो नहीं हूँ, तुम्हें जो पुरुष ज्यादा सुखी रख सके, उसके साथ जाकर रहो, अब मैं क्या कहूँ ? आमदनी नहीं बढ़ती, तो मैं क्या करूँ ? क्या चाहती हो, जान दे दूँ ? इस पर गुलशन ने उनके दोनों कान पकड़कर जोर से ऐंठे और गालों पर दो तमाचे लगाये और पैनी आँखों से काटती हुई बोली—अच्छा, अब चोंच सँभालो, नहीं तो अच्छा न होगा। ऐसी बात मुँह से निकालते तुम्हें लाज नहीं आती। हयादार होते, तो चुल्लू भर पानी में डूब मरते। उस दूसरे पुरुष के महल में आग लगा दूँगी, उसका मुँह झुलस दूँगी। तब से बेचारे कावसजी के पास इस प्रश्न का कोई जवाब न रहा। कहाँ तो यह असन्तोष और विद्रोह की ज्वाला और कहाँ वह मधुरता और भद्रता की देवी शीरीं, जो कावसजी को देखते ही फूल की तरह खिल उठतीं, मीठी-मीठी बातें करतीं, चाय, मुरब्बे और फूलों से सत्कार करती और अक्सर उन्हें अपनी कार पर घर पहुँचा देती। कावसजी ने कभी मन में भी इसे स्वीकार करने का साहस नहीं किया; मगर उनके हृदय में यह लालसा छिपी हुई थी कि गुलशन की जगह शीरीं होतीं, तो उनका जीवन कितना गुलजार होता ! कभी-कभी गुलशन की कटूक्तियों से वह इतने दुखी हो जाते कि यमराज का आवाहन करते। घर उनके लिए कैदखाने से कम जान-लेवा न था और उन्हें जब अवसर मिलता, सीधे शीरीं के घर जाकर अपने दिल की जलन बुझा आते।

2

एक दिन कावसजी सबेरे गुलशन से झल्लाकर शापूरजी के टेरेस में पहुँचे, तो देखा शीरीं बानू की आँखें लाल हैं और चेहरा भभराया हुआ है, जैसे रोकर उठी हों। कावसजी ने चिन्तित होकर पूछा—आपका जी कैसा है, बुखार तो नहीं आ गया।

शीरीं ने दर्द-भरी आँखों से देखकर रोनी आवाज से कहा—नहीं, बुखार तो नहीं है, कम-से-कम देह का बुखार तो नहीं है।

कावसजी इस पहेली का कुछ मतलब न समझे।

शीरीं ने एक क्षण मौन रहकर फिर कहा—आपको मैं अपना मित्र समझती हूं मि. कावसजी ! आपसे क्या छिपाऊँ। मैं इस जीवन से तंग आ गयी हूँ। मैंने अब तक हृदय की आग हृदय में रखी; लेकिन ऐसा मालूम होता हे कि अब उसे बाहर न निकालूँ, तो मेरी हड्डियाँ तक जल जायेंगी। इस वक्त आठ बजे हैं, लेकिन मेरे रंगीले पिया का कहीं पता नहीं। रात को खाना खाकर वह एक मित्र से मिलने का बहाना करके घर से निकले थे और अभी तक लौटकर नहीं आये। यह आज कोई नई बात नहीं है, इधर कई महीनों से यह इनकी रोज की आदत है। मैंने आज तक आपसे कभी अपना दर्द नहीं कहा, मगर उस समय भी, जब मैं हँस-हँसकर आपसे बातें करती थी, मेरी आत्मा रोती रहती थी।

कावसजी ने निष्कपट भाव से कहा—तुमने पूछा नहीं, कहाँ रह जाते हो ?

'पूछने से क्या लोग अपने दिल की बातें बता दिया करते हैं ?'

'तुमसे तो उन्हें कोई भेद न रखना चाहिए।'

'घर में जी न लगे तो आदमी क्या करे ?'

'मुझे यह सुनकर आश्चर्य हो रहा है। तुम जैसी देवी जिस घर हो, वह स्वर्ग है। शापूरजी को तो अपना भाग्य सराहना चाहिए !'

'आपका यह भाव तभी तक है, जब तक आपके पास धन नहीं है। आज तुम्हें कहीं से दो-चार लाख रुपये मिल जायँ, तो तुम यों न रहोगे और तुम्हारे ये भाव बदल जायँगे। यही धन का सबसे बड़ा अभिशाप है। ऊपरी सुख-शांति के नीचे कितनी आग हे, यह तो उसी वक्त खुलता है, जब ज्वालामुखी फट पड़ता है। वह समझते हैं, धन से घर भर कर उन्होंने मेरे लिए वह सब कुछ कर दिया जो उनका कर्तव्य था और अब मुझे असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं। यह नहीं जानते कि ऐश के ये सामान उस मिश्री-तहखानों में गड़े हुए पदार्थों की तरह हैं, मृतात्मा के भोग के लिए रखे जाते थे।

कावसजी आज एक नयी बात सुन रहे थे। उन्हें अब तक जीवन का जो अनुभव हुआ था, वह यह था कि स्त्री अन्तःकरण से विलासिनी होती है। उस पर लाख प्राण वारो, उनके लिए मर ही क्यों न मिटो, लेकिन व्यर्थ। वह केवल खरहरा नहीं चाहती, उससे कहीं ज्यादा दाना और घास चाहती है। लेकिन एक यह देवी हे, जो विलास की चीजों को तुच्छ समझती है और केवल मीठे स्नेह और सहवास से ही प्रसन्न रहना चाहती है। उनके मन में गुदगुदी-सी उठी।

मिसेज शापूर ने फिर कहा—उनका यह व्यापार मेरी बर्दाश्त के बाहर हो गया हे, मि. कावसजी ! मेरे मन में विद्रोह की ज्वाला उठ रही है और मैं धर्मशास्त्र और मर्यादा इन सभी का आश्रय लेकर भी त्राण नहीं पाती ! मन को समझाती हूं—क्या संसार में लाखों विधवाएँ

नहीं पड़ी हुई हैं; लेकिन किसी तरह चित्त नहीं शान्त होता। मुझे विश्वास आता जाता है कि वह मुझे मैदान में आने के लिए चुनौती दे रहे हैं। मैंने अब तक उनकी चुनौती नहीं ली हैं; लेकिन अब पानी सिर के ऊपर चढ़ गया है। और मैं किसी तिनके का सहारा ढूँढ़े बिना नहीं रह सकती। वह जो चाहते हैं, वह हो जायगा। आप उनके मित्र हैं, आपसे बन पड़े, तो उनको समझाइए। मैं इस मर्यादा की बेड़ी को अब और न पहन सकूँगी।

मि. कावसजी मन में भावी सुख का एक स्वर्ग निर्माण कर रहे थे। बोले—हाँ-हाँ मैं अवश्य समझाऊँगा। यह तो मेरा धर्म है; लेकिन मुझे आशा नहीं कि मेरे समझाने का उन पर कोई असर हो। मैं तो दरिद्र हूँ, मेरे समझाने का उनकी दृष्टि में मूल्य ही क्या ?

'यों वह मेरे ऊपर बड़ी कृपा रखते हैं बस, उनकी यही आदत मुझे पसन्द नहीं !'

'तुमने इतने दिनों बर्दाश्त किया, यही आश्चर्य है। कोई दूसरी औरत तो एक दिन न सहती।'

'थोड़ी-बहुत तो यह आदत सभी पुरुषों में होती है; लेकिन ऐसे पुरुषों की स्त्रियाँ भी वैसी ही होती हैं। कर्म से न सही, मन से ही सही। मैंने तो सदैव इनको अपना इष्टदेव समझा !'

'किन्तु जब पुरुष इसका अर्थ ही न समझे, तो क्या हो ? मुझे भय है, वह मन में कुछ और न सोच रहे हों।'

'और क्या सोच सकते हैं ?'

'आप अनुमान कर सकती हैं ?'

'अच्छा, वह बात ! मगर मेरा अपराध ?'

'शेर और मेमने वाली कथा आपने नहीं सुनी ?'

मिसेज शापूर एकाएक चुप हो गयीं। सामने से शापूरजी की कार आती दिखायी दी। उन्होंने कावसजी को ताकीद और विनय-भरी आँखों से देखा और दूसरे द्वार के कमरे से निकलकर अन्दर चली गयीं। मि. शापूर लाल आँखें किये कार से उतरे और मुस्कराकर कावसजी से हाथ मिलाया। स्त्री की आँखें भी लाल थीं, पति की आँखें भी लाल। एक रुदन से, दूसरी रात की खुमारी से।

3

शापूरजी ने हैट उतारकर खूँटी पर लटकाते हुए कहा—क्षमा कीजिएगा, मैं रात को एक मित्र के घर सो गया था। दावत थी। खाने में देर हुई, तो मैंने सोचा अब कौन घर जाय।

कावसजी ने व्यंग्य मुस्कान के साथ कहा—किसके यहाँ दावत थी। मेरे रिपोर्टर ने तो कोई खबर नहीं दी। जरा मुझे नोट करा दीजिए।

उन्होंने जेब से नोटबुक निकाली।

शापूरजी ने सतर्क होकर कहा—ऐसी कोई बड़ी दावत नहीं थी, जो दो-चार मित्रों का प्रीतिभोज था।

'फिर भी समाचार तो जानना चाहिए। जिस प्रीतिभोज में आप-जैसे प्रतिष्ठित लोग शरीक हों, वह साधारण बात नहीं हो सकती। क्या नाम है मेजबान साहब का ?'

'आप चौंकेंगे तो नहीं ?'

'बताइए तो।'

'मिस गौहर !'

'मिस गौहर !!'

'जी हाँ, आप चौंके क्यों ? क्या आप इसे तस्लीम नहीं करते कि दिन-भर रुपये-आने-पाई से सिर मारने के बाद मुझे कुछ मनोरंजन करने का भी अधिकार है, नहीं तो जीवन भार हो जाय।'

'मैं इसे नहीं मानता।'

'क्यों ?'

'इसीलिए कि मैं इस मनोरंजन को अपनी ब्याहता स्त्री के प्रति अन्याय समझता हूँ।'

शापूरजी नकली हँसी हँसे—यही दकियानूसी बात। आपको मालूम होना चाहिए; आज का समय ऐसा कोई बन्धन स्वीकार नहीं करता।

'और मेरा खयाल है कि कम-से-कम इस विषय में आज का समाज एक पीढ़ी पहले के समाज से कहीं परिष्कृत है। अब देवियों का यह अधिकार स्वीकार किया जाने लगा है।

'यानी देवियाँ पुरुषों पर हुकूमत कर सकती हैं ?'

'उसी तरह जैसे पुरुष देवियों पर हुकूमत कर सकते हैं।'

'मैं इसे नहीं मानता। पुरुष स्त्री का मुहताज नहीं है, स्त्री पुरुष की मुहताज है।'

'आपका आशय यही तो है कि स्त्री अपने भरण-पोषण के लिए पुरुष पर अवलम्बित है ?'

'अगर आप इन शब्दों में कहना चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, मगर अधिकार की बागडोर जैसे राजनीति में, वैसे ही समाज-नीति में धनबल के हाथ रही है और रहेगी।'

'अगर दैवयोग से धनोपार्जन का काम स्त्री कर रही हो और पुरुष कोई काम न मिलने के कारण घर बैठा हो, तो स्त्री को अधिकार है कि अपना मनोरंजन जिस तरह चाहे करे ?'

'मैं स्त्री को अधिकार नहीं दे सकता।'

'यह आपका अन्याय है।'

'बिलकुल नहीं। स्त्री पर प्रकृति ने ऐसे बन्धन लगा दिये हैं कि वह जितना भी चाहे, पुरुष की भाँति स्वच्छन्द नहीं रह सकती और न पशुबल में पुरुष का मुकाबला ही कर सकती है। हाँ, गृहिणी का पदत्याग कर या अप्राकृतिक जीवन का आश्रय लेकर, वह सब कुछ कर सकती है।'

'आप लोग उसे मजबूर कर रहे हैं कि अप्राकृतिक जीवन का आश्रय ले।'

'मैं ऐसे समय की कल्पना ही नहीं कर सकता, जब पुरुषों का आधिपत्य स्वीकार करने वाला औरतों का काल पड़ जाय। कानून और सभ्यता मैं नहीं जानता। पुरुषों ने स्त्रियों पर हमेशा राज किया है और करेंगे।'

सहसा कावसजी ने पहलू बदला। इतनी थोड़ी-सी देर में ही वह अच्छे-खासे कूटनीति-चतुर हो गये थे। शापूरजी को प्रशंसा-सूचक आँखों से देखकर बोले—तो हम और

आप दोनों एक विचार के हैं। मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। मैं भी स्त्री को गृहिणी, माता और स्वामिनी, सब कुछ मानने को तैयार हूँ, पर उसे स्वच्छन्द नहीं देख सकता। अगर कोई स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है तो उसके लिए मेरे घर में स्थान नहीं है। अभी मिसेज़ शापूर की बातें सुनकर मैं दंग रह गया। मुझे इसकी कल्पना भी न थी कि कोई नारी मन में इतने विद्रोहात्मक भावों को स्थान दे सकती है।

मि. शापूर की गर्दन की नसें तन गयीं; नथने फूल गये। कुर्सी से उठकर बोले—अच्छा, तो अब शीरीं ने यह ढंग निकाला ! मैं अभी उससे पूछता हूँ—आपके सामने पूछता हूँ—अभी फैसला कर डालूँगा। मुझे उसकी परवाह नहीं है। किसी की परवाह नहीं है। बेवफा औरत ? जिसके हृदय में जरा भी संवेदना नहीं, जो मेरे जीवन में जरा-सा आनन्द भी नहीं सह सकती चाहती है, मैं उसके अंचल में बँधा-बँधा घूमूँ ! शापूर से यह आशा रखती है ? अभागिनी भूल जाती है कि आज मैं आँखों का इशारा कर दूँ, तो एक सौ एक शीरियाँ मेरी उपासना करने लगें; जी हाँ, मेरे इशारों पर नाचें। मैंने इसके लिए जो कुछ किया, बहुत कम पुरुष किसी स्त्री के लिए करते हैं। मैंने....मैंने....

उन्हें खयाल आ गया कि वह जरूरत से ज्यादा बहके जा रहे हैं। शीरीं की प्रेममय सेवाएँ याद आयीं, रुककर बोले—लेकिन मेरा खयाल है कि वह अब भी समझ से काम ले सकती है। मैं उसका दिल नहीं दुखाना चाहता। मैं यह भी जानता हूँ कि वह ज्यादा-से-ज्यादा जो कर सकती है, वह शिकायत है। इसके आगे बढ़ने की हिमाकत वह नहीं कर सकती। औरतों को मना लेना बहुत मुश्किल नहीं है, कम-से-कम मुझे तो यही तजरबा है।

कावसजी ने खण्डन किया—मेरा तजरबा तो कुछ और है।

'हो सकता है; मगर आपके पास खाली बातें हैं, मेरे पास लक्ष्मी का आशीर्वाद है।'

'जब मन में विद्रोह के भाव जम गये, तो लक्ष्मी के टाले भी नहीं टल सकते।

शापूरजी ने विचारपूर्ण भाव से कहा—शायद आपका विचार ठीक है।

4

कई दिन के बाद कावसजी की शीरीं से पार्क में मुलाकात हुई। वह इसी अवसर की खोज में थे। उसका स्वर्ग तैयार हो चुका था। केवल उसमें शीरीं को प्रतिष्ठित करने की कसर थी। उस शुभ-दिन की कल्पना में वह पागल-से हो रहे थे। गुलशन को उन्होंने उसके मैके भेज दिया था। भेज क्या दिया था, वह रूठकर चली गयी थी। जब शीरीं उनकी दरिद्रता का स्वागत कर रही है, तो गुलशन की खुशामद क्यों की जाय ? लपककर शीरीं से हाथ मिलाया और बोले—आप खूब मिलीं। मैं आज आने वाला था।

शीरीं ने गिला करते हुए कहा—आपकी राह देखते-देखते आँखें थक गयीं। आप भी जवानी हमदर्दी ही करना जानते हैं। आपको क्या खबर, इन कई दिनों में मेरी आँखों से कितने आँसू बहे हैं।

कावसजी ने शीरीं बानू की उत्कण्ठापूर्ण मुद्रा देखी, जो बहुमूल्य रेशमी साड़ी की आब से और भी दमक उठी थी, और उनका हृदय अंदर से बैठता हुआ जान पड़ा। उस छात्र की-सी दशा हुई, जो आज अन्तिम परीक्षा पास कर चुका हो और जीवन का प्रश्न उसके सामने अपने भयंकर रूप में खड़ा हो। काश ! वह कुछ दिन और परीक्षाओं की भूल-भुलैया

में जीवन के स्वप्नों का आनन्द ले सकता ! उस स्वप्न के सामने यह सत्य कितना डरावना था। अभी तक कावसजी ने मधुमक्खी का शहद ही चखा था। इस समय वह उनके मुख पर मँडरा रही थी और वह डर रहे थे कि कहीं डंक न मारे।

दबी हुई आवाज से बोले–मुझे यह सुनकर बड़ा दुख हुआ। मैंने तो शापूर को बहुत समझाया था।

शीरीं ने उनका हाथ पकड़कर एक बेंच पर बिठा दिया और बोली–उन पर अब समझाने-बुझाने का कोई असर न होगा। और मुझे ही क्या गरज पड़ी है कि मैं उनके पाँव सहलाती रहूँ। आज मैंने निश्चय कर लिया है, अब उस घर मे लौटकर न जाऊँगी। अगर उन्हें अदालत में जलील होने का शौक है, तो मुझ पर दावा करें, मैं तैयार हूँ। मैं जिसके साथ नहीं रहना चाहती, उसके साथ रहने के लिए ईश्वर भी मुझे मजबूर नहीं कर सकता, अदालत क्या कर सकती है ? अगर तुम मुझे आश्रय दे सकते हो, तो मैं तुम्हारी बनकर रहूँगी, तब तक तुम मेरे पास रहोगे। अगर तुममें इतना आत्मबल नहीं है, तो मेरे लिए दूसरे द्वार खुल जायँगे। अब साफ-साफ बतलाओ, क्या वह सारी सहानुभूति जबानी थी।

कावसजी ने कलेजा मजबूत करके कहा–नहीं-नहीं, शीरीं खुदा जानता है, मुझे तुमसे कितना प्रेम है। तुम्हारे लिए मेरे हृदय में स्थान है।

'मगर गुलशन को क्या करोगे ?'

'उसे तलाक दे दूँगा।'

'हाँ, यही मैं भी चाहती हूँ। तो मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, अभी, इसी दम। शापूर से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।'

कावसजी को अपने दिल में कम्पन का अनुभव हुआ। बोले–लेकिन अभी तो वहाँ कोई तैयारी नहीं है।

'मेरे लिए किसी तैयारी की जरूरत नहीं। तुम सब कुछ हो। टैक्सी ले लो। मैं इसी वक्त चलूँगी।'

कावसजी टैक्सी की खोज में पार्क से निकले। वह एकान्त में विचार करने के लिए थोड़ा-सा समय चाहते थे, इस बहाने से उन्हें समय मिल गया। उन पर अब जवानी का वह नशा न था, जो विवेक की आँखों पर छाकर बहुधा हमें गड्ढे में गिरा देता था। अगर कुछ नशा था, तो अब तक हिरन हो चुका था। वह किस फन्दे में गला डाल रहे हैं, वह खूब समझते थे। शापूरजी उन्हें मिट्टी में मिला देने के लिए पूरा जोर लगायेंगे, यह भी उन्हें मालूम था। गुलशन उन्हें सारी दुनिया में बदनाम कर देगी, यह भी वह जानते थे। ये सब विपत्तियाँ झेलने को वह तैयार थे। शापूर की जबान बन्द करने के लिए उनके पास काफी दलीलें थीं। गुलशन को भी स्त्री-समाज में अपमानित करने का उनके पास काफ़ी मसाला था। डर था, तो यह कि शीरीं का यह प्रेम टिक सकेगा या नहीं। अभी तक शीरीं ने केवल उसके सौजन्य का परिचय पाया है, केवल उनकी न्याय, सत्य और उदारता से भरी बातें सुनी हैं। इस क्षेत्र में शापूरजी से उन्होंने बाजी मारी है, लेकिन उनके सौजन्य और उनकी प्रतिमा का जादू उनके बेसरोसामान घर में कुछ दिन रहेगा, इसमें उन्हें सन्देह था। हलवे की जगह चुपड़ी रोटियाँ भी मिलें तो आदमी सब्र कर सकता है। रूखी भी मिल जायँ, तो वह सन्तोष कर लेगा; लेकिन सूखी घास सामने देखकर तो ऋषि-मुनि भी जामे से बाहर हो

जायेंगे। शीरीं उनसे प्रेम करती है; लेकिन प्रेम के त्याग की भी तो सीमा है। दो-चार दिन भावुकता के उन्माद में यह सब्र कर ले; लेकिन भावुकता कोई टिकाऊ चीज तो नहीं है। वास्तविकता के आघातों के सामने यह भावुकता कै दिन टिकेगी। उस परिस्थिति की कल्पना करके कावसजी काँप उठे। अब तक वह रनिवास में रही है। अब उसे एक खपरैल का कॉटेज मिलेगा, जिसकी फर्श पर कालीन की जगह टाट भी नहीं; कहाँ वरदीपोश नौकरों की पलटन, कहाँ एक बुढ़िया मामा की संदिग्ध सेवाएँ जो बात-बात पर भुनभुनाती है, धमकाती है, कोसती है। उनका आधा वेतन तो संगीत सिखाने वाला मास्टर ही खा जायगा और शापूर जी ने कहीं ज्यादा कमीनापन से काम लिया, तो उनको बदमाशों से पिटवा भी सकते हैं ? पिटने से वह नहीं डरते। यह तो उनकी फतह होगी; लेकिन शीरीं की भोग-लालसा पर कैसे विजय पायें। बुढ़िया मामा जब मुँह लटकाये आकर उसके सामने रोटियाँ और सालन परोस देगी, तब शीरीं के मुख पर कैसी विदग्ध विरक्ति छा जायेगी ! कहीं वह खड़ी होकर उनको और अपनी किस्मत को कोसने न लगे। नहीं, अभाव की पूर्ति सौजन्य से नहीं हो सकती। शीरी का वह रूप कितना विकराल होगा।

सहसा एक कार सामने से आती दिखायी दी। कावसजी ने देखा—शापूर जी बैठे हुए थे। उन्होंने हाथ उठाकर कार को रुकवा लिया और पीछे दौड़ते हुए जाकर शापूरजी से बोले—आप कहाँ जा रहे हैं ?

'यों ही जरा घूमने निकला था।'

'शीरींबानू पार्क में हैं, उन्हें भी लेते जाइए।'

'वह तो मुझसे लड़कर आयी हैं कि अब इस घर में कभी कदम न रखूँगी।'

'और आप सैर करने जा रहे हैं ?'

'तो क्या आप चाहते हैं, बैठकर रोऊँ ?'

'वह बहुत रो रही हैं।'

'सच !'

'हाँ, बहुत रो रही हैं।'

'तो शायद उसकी बुद्धि जाग रही है।'

'तुम इस समय उन्हें मना लो, तो वह हर्ष से तुम्हारे साथ चली जायँ।'

'मैं परीक्षा करना चाहता हूँ कि वह बिना मनाये मानती है या नहीं।'

'मैं बड़े असमंजस में पड़ा हुआ हूँ। मुझ पर दया करो; तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ।'

'जीवन में जो थोड़ा-सा आनन्द है, उसे मनावन के नाट्य में नहीं छोड़ना चाहता।'

कार चल पड़ी और कावसजी कर्त्तव्य-भ्रष्ट से वहीं खड़े रह गये। देर हो रही थी। सोचा—कहीं शीरीं यह न समझ ले कि मैंने भी उसके साथ दगा की; लेकिन जाऊँ भी तो क्योंकर ? अपने सम्पादकीय कुटीर में उस देवी को प्रतिष्ठित करने की कल्पना ही उन्हें हास्यास्पद लगी। वहाँ के लिए तो गुलशन ही उपयुक्त है। कुढ़ती है, कठोर बातें कहती है, रोती है, लेकिन वक्त से भोजन तो देती है। फटे हुए कपड़ों को रफू तो कर देती है, कोई मेहमान आ जाता है, तो कितने प्रसन्न-मुख से उसका आदर-सत्कार करती है, मानो उसके मन में आनन्द-ही-आनन्द है। कोई छोटी-सी चीज भी दे दी, तो कितना फूल उठती है। थोड़ी-सी तारीफ करके चाहे उससे गुलामी करवा लो। अब उन्हें अपनी जरा-जरा सी बात

पर झुँझला पड़ना, उसकी सीधी-सी बातों का टेढ़ा जवाब देना, विकल करने लगा। उस दिन उसने यही तो कहा था कि उसकी छोटी बहन के साल-गिरह पर कोई उपहार भेजना चाहिए। इसमें बरस पड़ने की कौन-सी बात थी। माना वह अपना सम्पादकीय नोट लिख रहे थे, लेकिन उनके लिए सम्पादकीय नोट जितना महत्त्व रखता है, क्या गुलशन के लिए उपहार भेजना उतना ही या उससे ज्यादा महत्त्व नहीं रखता ? बेशक, उनके पास उस समय रुपये न थे, तो क्या वह मीठे शब्दों में यह नहीं कह सकते थे कि डार्लिंग ? मुझे खेद है, अभी हाथ खाली है, दो-चार रोज में मैं कोई प्रबन्ध कर दूँगा। यह जवाब सुनकर वह चुप हो जाती। और अगर कुछ भुनभुना ही लेती तो उनका क्या बिगड़ जाता था ? अपनी टिप्पणियों में वह कितनी शिष्टता का व्यवहार करते हैं। कलम जरा भी गर्म पड़ जाय, तो गर्दन नापी जाय। गुलशन पर वह क्यों बिगड़ जाते हैं ? इसीलिए कि वह उनके अधीन है और उन्हें रूठ जाने के सिवा कोई दण्ड नहीं दे सकती। कितनी नीच कायरता है कि हम सबलों के सामने दुम हिलायें और जो हमारे लिए अपने जीवन का बलिदान कर रही है, उसे काटने दौड़े।

सहसा एक ताँगा आता हुआ दिखायी दिया और सामने आते ही उस पर से एक स्त्री उतर कर उनकी ओर चली। अरे ! यह तो गुलशन है। उन्होंने आतुरता से आगे बढ़कर उसे गले लगा लिया और बोले—तुम इस वक्त यहाँ कैसे आयी ? मैं अभी-अभी तुम्हारा ही खयाल कर रहा था।

गुलशन ने गद्‌गद कण्ठ से कहा—तुम्हारे ही पास जा रही थी। शाम को बरामदे में बैठी तुम्हारा लेख पढ़ रही थी। न-जाने कब झपकी आ गयी और मैंने एक बुरा सपना देखा। मारे डर के मेरी नींद खुल गयी और तुमसे मिलने चल पड़ी। इस वक्त यहाँ कैसे खड़े हो ? कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी ? रास्ते भर मेरा कलेजा धड़क रहा था।

कावसजी ने आश्वासन देते हुए कहा—मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ। तुमने क्या स्वप्न देखा ?

'मैंने देखा—जैसे तुमने एक रमणी को कुछ कहा है और वह तुम्हें बाँध कर घसीटे लिये जा रही है।'

'कितना बेहूदा स्वप्न है; और तुम्हें इस पर विश्वास भी आ गया ? मैं तुमसे कितनी बार कह चुका कि स्वप्न केवल चिन्तित मन की क्रीड़ा है।'

'तुम मुझसे छिपा रहे हो। कोई न कोई बात हुई है जरूर। तुम्हारा चेहरा बोल रहा है। अच्छा, तुम इस वक्त यहाँ क्यों खड़े हो ? यह तो तुम्हारे पढ़ने का समय है।'

'यों ही, जरा घूमने चला आया था।'

'झूठ बोलते हो। खा जाओ मेरे सिर की कसम।'

'अब तुम्हें एतबार ही न आये तो क्या करूँ ?'

'कसम क्यों नहीं खाते ?'

'कसम को मैं झूठ का अनुमोदन समझता हूँ।'

गुलशन ने फिर उनके मुख पर तीव्र दृष्टि डाली। फिर एक क्षण के बाद बोली—अच्छी बात है। चलो, घर चलें।

कावसजी ने मुस्कराकर कहा—तुम फिर मुझसे लड़ाई करोगी।

'सरकार से लड़कर भी तुम सरकार की अमलदारी में रहते हो कि नहीं ? मैं भी तुमसे लड़ूँगी; मगर तुम्हारे साथ रहूँगी।'

'हम इसे कब मानते हैं कि यह सरकार की अमलदारी है।'

'यह तो मुँह से कहते हो। तुम्हारा रोआँ-रोआँ इसे स्वीकार करता है। नहीं तो तुम इस वक्त जेल में होते।'

'अच्छा, चलो, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।'

'मैं अकेली नहीं जाने की। आखिर सुनूँ, तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?'

कावसजी ने बहुत कोशिश की कि गुलशन वहाँ से किसी तरह चली जाय; लेकिन वह जितना ही इस पर जोर देते थे, उतना ही गुलशन का आग्रह भी बढ़ता जाता था। आखिर मजबूर होकर कावसजी को शीरीं और शापूर के झगड़े का वृत्तान्त कहना ही पड़ा; यद्यपि इस नाटक में उनका अपना जो भाग था उसे उन्होंने बड़ी होशियारी से छिपा देने की चेष्टा की।

गुलशन ने विचार करके कहा—तो तुम्हें भी यह सनक सवार हुई !

कावस जी ने तुरन्त प्रतिवाद किया—कैसी सनक ! मैंने क्या किया ? अब यह तो इंसानियत नहीं है कि एक मित्र की स्त्री मेरी सहायता माँगे और मैं बगलें झाँकने लगूँ !

'झूठ बोलने के लिए बड़ी अक्ल की जरूरत होती है प्यारे, और वह तुममें नहीं है; समझे ? चुपके से जाकर शीरींबानू को सलाम करो और कहो कि आराम से अपने घर में बैठें। सुख कभी सम्पूर्ण नहीं मिलता। विधि इतना घोर पक्षपात नहीं कर सकता। गुलाब में काँटे होते ही हैं। अगर सुख भोगना है तो उसे उसके दोषों के साथ भोगना पड़ेगा। अभी विज्ञान ने कोई ऐसा उपाय नहीं निकाला कि हम सुख के काँटों को अलग कर सकें ! मुफ्त का माल उड़ाने वाले को ऐयाशी के सिवा और सूझेगी क्या''? अगर धन सारी दुनिया का विलास न मोल लेना चाहे तो वह धन ही कैसा ? शीरीं के लिए भी क्या वे द्वार नहीं खुले हैं, शापूरजी के लिए खुले हैं ? उससे कहो—शापूर के घर में रहे, उनके धन को भोगे और भूल जाय कि वह शापूर की स्त्री है, उसी तरह जैसे शापूर भूल गया है कि वह शीरीं का पति है। जलना और कुढ़ना छोड़कर विलास का आनन्द लूटे। उसका धन एक-से-एक रूपवान्, विद्वान् नवयुवकों को खींच लायेगा। तुमने ही एक बार मुझसे कहा था कि एक जमाने में फ्रांस में धनवान् विलासिनी महिलाओं का समाज पर आधिपत्य था। उनके पति सब कुछ देखते थे और मुँह खोलने का साहस न करते थे। और मुँह क्या खोलते ? वे खुद इसी धुन में मस्त थे। यही धन का प्रसाद है। तुमसे न बने, तो चलो, मैं शीरीं को समझा दूँ। ऐयाश मर्द की स्त्री अगर ऐयाश न हो तो यह उसकी कायरता है—लतखोरपन है !'

कावसजी ने चकित होकर कहा—लेकिन तुम भी तो धन की उपासक हो ?

गुलशन ने शर्मिन्दा होकर कहा—यही तो जीवन का शाप है। हम उसी चीज पर लपकते हैं, जिसमें हमारा अमंगल है, सत्यानाश है। मैं बहुत दिन पापा के इलाके में रही हूँ। चारों तरफ किसान और मजदूर रहते थे। बेचारे दिन-भर पसीना बहाते थे, शाम को घर जाते। ऐयाशी और बदमाशी का कहीं नाम न था। और यहाँ शहर में देखाती हूँ कि सभी बड़े घरों में यही रोना है। सब-के-सब हथकंडों से पैसे कमाते हैं और अस्वाभाविक जीवन बिताते हैं। आज तुम्हें कहीं से धन मिल जाय, तो तुम भी शापूर बन जाओगे, निश्चय।

'तब शायद तुम भी अपने बताये हुए मार्ग पर चलोगी, क्यों

'शायद नहीं, अवश्य।'

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', जून, 1935 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'लानत' शीर्षक से 'जादे राह' में संकलित।]

गृह-नीति

जब माँ, बेटे से बहू की शिकायतों का दफ्तर खोल देती है और यह सिलसिला किसी तरह खत्म होते नजर नहीं आता, तो बेटा उकता जाता है और दिन-भर की थकान के कारण कुछ झुँझलाकर माँ से कहता है—तो आखिर तुम मुझसे क्या करने को कहती हो अम्माँ ? मेरा काम स्त्री को शिक्षा देना तो नहीं है। यह तो तुम्हारा काम है ! तुम उसे डाँटो, मारो, जो सजा चाहे दो। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात हो सकती है कि तुम्हारे प्रयत्न से वह आदमी बन जाय ? मुझसे मत कहो कि उसे सलीका नहीं है, तमीज नहीं है, बे-अदब है। उसे डाँटकर सिखाओ।

माँ—वाह, मुँह से बात निकालने नहीं देती, डाटूँ तो मुझे ही नोच खाय। उसके सामने अपनी आबरू बचाती फिरती हूँ, कि किसी के मुंह पर मुझे कोई अनुचित शब्द न कह बैठे।

बेटा—तो फिर इसमें मेरी क्या खता है ? मैं तो उसे सिखा नहीं देता कि तुमसे बे-अदबी करे !

माँ—तो और कौन सिखाता है ?

बेटा—तुम तो अन्धेर करती हो अम्माँ !

माँ—अन्धेर नहीं करती, सत्य कहती हूँ। तुम्हारी ही शह पाकर उसका दिमाग बढ़ गया है। जब वह तुम्हारे पास जा कर टेसुवे बहाने लगती है, तो कभी तुमने उसे डाँटा, कभी समझाया कि तुझे अम्माँ का अदब करना चाहिए ? तुम तो खुद उसके गुलाम हो गये हो। वह भी समझती है, मेरा पति कमाता है, फिर मैं क्यों न गनी बनूँ, क्यों किसी से दबूँ? मर्द जब तक शह न दे, औरत का इतना गुर्दा हो ही नहीं सकता।

बेटा—तो क्या मैं उससे कह दूँ कि मैं कुछ नहीं कमाता, बिलकुल निखट्टू हूँ ? क्या तुम समझती हो, तब वह मुझे जलील न समझेगी ? हर एक पुरुष चाहता है कि उसकी स्त्री उसे कमाऊ, योग्य, तेजस्वी समझे और सामान्यतः वह जितना है, उससे बढ़कर अपने को दिखाता है। मैंने कभी नादानी नहीं की, कभी स्त्री के सामने डींग नहीं मारी; लेकिन स्त्री की दृष्टि में अपना सम्मान खोना तो कोई भी न चाहेगा।

माँ—तुम कान लगाकर, ध्यान देकर और मीठी मुस्कराहट के साथ उसकी बातें सुनोगे, तो वह क्यों न शेर होगी ? तुम खुद चाहते हो कि स्त्री के हाथों मेरा अपमान कराओ। मालूम नहीं, मेरे किन पापों का तुम मुझे यह दंड दे रहे हो। किन अरमानों से, कैसे-कैसे कष्ट झेलकर; मैंने तुम्हें पाला। खुद नहीं पहना, तुम्हें पहनाया; खुद नहीं खाया, तुम्हें खिलाया। मेरे लिए तुम उस मरने वाली की निशानी थे और मेरी सारी अभिलाषाओं

के केन्द्र। तुम्हारी शिक्षा पर मैंने अपने हजारों के आभूषण होम कर दिये। विधवा के पास दूसरी कौन-सी निधि थी। इसका तुम मुझे यह पुरस्कार दे रहे हो।

बेटा—मेरी समझ में नहीं आता कि आप मुझसे चाहती क्या हैं ? आपके उपकारों को मैं कब मेट सकता हूँ ? आपने मुझे केवल शिक्षा ही नहीं दिलायी, मुझे जीवन-दान दिया, मेरी सृष्टि की। अपने गहने ही नहीं होम किये, अपना रक्त तक पिलाया। अगर मैं सौ बार अवतार लूँ, तो भी इसका बदला नहीं चुका सकता। मैं अपनी जान में आपकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करता, यथासाध्य आपकी सेवा में कोई बात उठा नहीं रखता; जो कुछ पाता हूँ, लाकर आपके हाथों पर रख देता हूँ; और मुझसे क्या चाहती हैं ! और मैं कर ही क्या सकता हूँ ? ईश्वर ने हमें तथा आपको और सारे संसार को पैदा किया। उसका हम उसे क्या बदला देते हैं ? क्या बदला दे सकते हैं ? उसका नाम भी तो नहीं लेते। उसका यश भी तो नहीं गाते। इससे क्या उसके उपकारों का भार कुछ कम हो जाता है। माँ के बलिदानों का प्रतिशोध कोई बेटा नहीं कर सकता, चाहे वह भू-मण्डल का स्वामी ही क्यों न हो। ज्यादा-से-ज्यादा मैं आपकी दिलजोई ही तो कर सकता हूँ और मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी आपको असन्तुष्ट किया हो।

माँ—तुम मेरी दिलजोई करते हो ! तुम्हारे घर में मैं इस तरह रहती हूँ जैसे कोई लौंडी। तुम्हारी बीवी कभी मेरी बात भी नहीं पूछती। मैं भी कभी बहू थी। रात को घंटे-भर सास की देह दबाकर; उनके सिर में तेल डालकर, उन्हें दूध पिलाकर तब बिस्तर पर जाती थी। तुम्हारी स्त्री नौ बजे अपनी किताबें लेकर अपनी सहनची में जा बैठती है, दोनों खिड़कियाँ खोल लेती है और मजे से हवा खाती है। मैं मरूँ या जीऊँ, उससे मतलब नहीं, इसीलिए मैंने पाला था ?

बेटा—तुमने मुझे पाला था, तो यह सारी सेवा मुझसे लेनी चाहिए थी; मगर तुमने मुझसे कभी नहीं कहा। मेरे अन्य मित्र भी हैं। उनमें भी मैं किसी को माँ की देह में मुक्कियाँ लगाते नहीं देखता। आप मेरे कर्तव्य का भार मेरी स्त्री पर क्यों डालती हैं ? यों अगर वह आपकी सेवा करे, तो मुझसे ज्यादा प्रसन्न और कोई न होगा। मेरी आँखों में उसकी इज्जत दूनी हो जायेगी। शायद उससे और ज्यादा प्रेम करने लगूँ। लेकिन अगर वह आपकी सेवा नहीं करती, तो आपको उससे अप्रसन्न होने का कोई कारण नहीं है। शायद उसकी जगह मैं होता, तो मैं भी ऐसा ही करता। सास मुझे अपनी लड़की की तरह प्यार करती, तो मैं उसके तलुए सहलाता, इसलिए नहीं कि वह मेरे पति की माँ होती, बल्कि इसलिए कि वह मुझसे मातृवत् स्नेह करती, मगर मुझे खुद यह बुरा लगता है कि बहू सास के पाँव दबाये। कुछ दिन पहले स्त्रियाँ पति के पाँव दबाती थीं। आज भी उस प्रथा का लोप नहीं हुआ है, लेकिन मेरी पत्नी मेरे पांव दबाये, तो मुझे ग्लानि होगी। मैं उससे कोई ऐसी खिदमत नहीं लेना चाहता, जो मैं उसकी भी न कर सकूँ। यह रस्म उस जमाने की यादगार है, जब स्त्री पति की लौंडी समझी जाती थी ! अब पत्नी और पति दोनों बराबर हैं। कम-से-कम मैं ऐसा ही समझता हूँ।

माँ—तो मैं कहती हूँ कि तुम्हीं ने उसे ऐसी-ऐसी बातें पढ़ाकर शेर कर दिया है। तुम्हीं मुझसे बैर साध रहे हो। ऐसी निर्लज्ज, ऐसी बदजबान, ऐसी टर्री, फूहड़ छोकरी संसार में न होगी ! घर में अक्सर महल्ले की बहनें मिलने आती रहती हैं। यह राजा की

बेटी न जाने किन गँवारों में पली है कि किसी का भी आदर-सत्कार नहीं करती। कमरे से निकलती तक नहीं। कभी-कभी जब वे खुद उसके कमरे में चली जाती हैं, तो भी यह गधी चारपाई से नहीं उठती। प्रणाम तक नहीं करती, चरण छूना तो दूर की बात है।

बेटा—वह देवियाँ तुमसे मिलने आती होंगी। तुम्हारे और उनके बीच में न-जाने क्या बातें होती हों, अगर तुम्हारी बहू बीच में आ कूदे तो मैं उसे बदतमीज कहूँगा। कम-से-कम मैं तो कभी पसन्द न करूँगा कि जब मैं अपने मित्रों से बातें कर रहा हूँ, तो तुम या तुम्हारी बहू वहाँ जाकर खड़ी हो जाय। स्त्री भी अपनी सहेलियों के साथ बैठी हो, तो मैं वहाँ बिना बुलाये न जाऊँगा। यह तो आजकल का शिष्टाचार है।

माँ—तुम तो हर बात में उसी का पक्ष करते हो बेटा, न-जाने उसने कौन-सी जड़ी सुँघा दी है तुम्हें। यह कौन कहता है कि वह हम लोगों के बीच में आ कूदे, लेकिन बड़ों का उसे कुछ तो आदर-सत्कार करना चाहिए।

बेटा—किस तरह ?

माँ—आकर अंचल से उसके चरण छुए, प्रणाम करे, पान खिलाये, पंखा झले। इन्हीं बातों से बहू का आदर होता है। लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। नहीं तो सब-की सब यही कहती होंगी कि बहू को घमण्ड हो गया है, किसी से सीधे मुँह बात नहीं करती !

बेटा—(विचार करके) हाँ, यह अवश्य उसका दोष है। मैं उसे समझा दूँगा।

माँ—(प्रसन्न होकर) तुमसे सच कहती हूँ बेटा, चारपाई से उठती तक नहीं, सब औरतें थुड़ी-थुड़ी करती हैं, मगर उसे तो शर्म जैसे छू ही नहीं गयी और मैं हूँ, कि मारे शर्म के मरी जाती हूँ।

बेटा—यही मेरी समझ में नहीं आता कि तुम हर बात में अपने को उसके कामों का जिम्मेदार क्यों समझ लेती हो ? मुझ पर दफ्तर में न जाने कितनी घुड़कियाँ पड़ती हैं; रोज ही तो जवाब-तलब होता है, लेकिन तुम्हें उलटे मेरे साथ सहानुभूति होती है। क्या तुम समझती हो, अफसरों को मुझसे कोई बैर है, जो अनायास ही मेरे पीछे पड़े रहते हैं, या उन्हें उन्माद हो गया है, जो अकारण ही मुझे काटने दौड़ते हैं ? नहीं इसका कारण यही है कि मैं अपने काम में चौकस नहीं हूँ। गल्तियाँ करता हूँ, सुस्ती करता हूँ, लापरवाही करता हूँ। जहाँ अफसर सामने से हटा कि लगे समाचार-पत्र पढ़ने या ताश खेलने। क्या उस वक्त हमें यह खयाल नहीं रहता कि काम पड़ा हुआ है। और यह साहब डांट ही तो बतायेंगे, सिर झुकाकर सुन लेंगे, बाधा टल जायगी। पर ताश खेलने का अवसर नहीं है, लेकिन कौन परवाह करता है। सोचते हैं, तुम मुझे दोषी समझकर भी मेरा पक्ष लेती हो और तुम्हारा बस चले, तो हमारे बड़े बाबू को मुझसे जवाब-तलब करने के अभियोग में कालेपानी भेज दो।

माँ—(खिलकर) मेरे लड़के को कोई सजा देगा, तो क्या मैं पान-फूल से उसकी पूजा करूँगी ?

बेटा—हरेक बेटा अपनी माता से इसी तरह की कृपा की आशा रखता है और सभी माताएँ अपने लड़को के ऐबों पर पर्दा डालती हैं। फिर बहुओं की ओर से क्यों उनका हृदय इतना कठोर हो जाता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारी बहू पर जब दूसरी स्त्रियाँ चोट करें, तो तुम्हारे मातृ-स्नेह का यह धर्म है कि तुम उसकी तरफ से क्षमा माँगो, कोई बहाना कर दो, उनकी नजरों में उसे उठाने की चेष्टा करो। इस तिरस्कार में तुम क्यों उनसे

सहयोग करती हो ? तुम्हें क्यों उसके अपमान में मजा आता है ? मैं भी तो हरेक ब्राह्मण या बड़े-बूढ़े का आदर-सत्कार नहीं करता। मैं किसी ऐसे व्यक्ति के सामने सिर झुका ही नहीं सकता, जिससे मुझे हार्दिक श्रद्धा न हो। केवल सफेद बाल, सिकुड़ी हुई खाल, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर किसी को आदर का पात्र नहीं बना देती और न जनेऊ या तिलक या पण्डित और शर्मा की उपाधि ही भक्ति की वस्तु है। मैं लकीर-पीटू सम्मान को नैतिक अपराध समझता हूं। मैं तो उसी का सम्मान करूँगा जो मनसा-वाचा-कर्मणा हर पहलू से सम्मान के योग्य है। जिसे मैं जानता हूँ कि मक्कारी, स्वार्थ-साधन और निन्दा के सिवा और कुछ नहीं करता, जिसे मैं जानता हूँ कि रिश्वत और सूद तथा खुशामद की कमाई खाता है, वह अगर ब्रह्मा की आयु लेकर भी मेरे सामने आये, तो भी मैं उसे सलाम न करूँ। इसे तुम मेरा अहंकार कह सकती हो। लेकिन मैं मजबूर हूँ, जब तक मेरा दिल न झुके, मेरा सिर भी न झुकेगा। मुमकिन है, तुम्हारी बहू के मन में भी उन देवियों की ओर से अश्रद्धा के भाव हों। उनमें से दो-चार को मैं भी जानता हूँ। है वे सब बड़े घर की; लेकिन सबके दिल छोटे, विचार छोटे। कोई निन्दा की पुतली है, तो कोई खुशामद में युक्त, कोई गाली-गलौज में अनुपम। सभी रूढ़ियों की गुलाम, ईर्ष्या-द्वेष से जलने वाली। एक भी ऐसा नहीं, जिसने अपने घर को नरक का नमूना न बना रखा हो। अगर तुम्हारी बहू ऐसी औरतों के आगे सिर नहीं झुकाती, तो मैं उसे दोषी नहीं समझता।

माँ–अच्छा, अब चुप रहो बेटा, देख लेना तुम्हारी यह रानी एक दिन तुमसे चूल्हा न जलवाये और झाड़ू न लगवाये, तो सही। औरतों को बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं होता। इस निर्लज्जता की भी कोई हद हं, कि बूढ़ी सास तो खाना पकाये और जवान बहू बैटी उपन्यास पढ़ती रहे।

बेटा–बेशक यह बुरी बात है और मैं हर्गिज नहीं चाहता कि तुम खाना पकाओ और वह उपन्यास पढ़े चाहे वह उपन्यास प्रेमचंद जी ही के क्यों न हों; लेकिन यह भी तो देखना होगा कि उसने अपने घर कभी खाना नहीं पकाया। वहाँ रसोइया महाराज है। और जब चूल्हे के सामने जाने से उसके सिर में दर्द होने लगता है; तो उसे खाना पकाने के लिए मजबूर करना उस पर अत्याचार करना है। मैं तो समझता हूँ ज्यों-ज्यों हमारे घर की दशा का उसे ज्ञान होगा, उसके व्यवहार में आप-ही-आप इस्लाह होती जायगी। यह उसके घरवालों की गलती है, कि उन्होंने उसकी शादी किसी धनी घर में नहीं की। हमने भी यह शरारत की कि अपनी असली हालत उनसे छिपायी और यह प्रकट किया कि हम पुराने रईस हैं। अब हम किस मुँह से यह कह सकते हैं कि तू खाना पका, या बरतन मांज अथवा झाड़ू लगा ? हमने उन लोगों से छल किया है और उसका फल हमें चखना पड़ेगा। अब तो हमारी कुशल इसी में है कि अपनी दुर्दशा को नम्रता, विनय और सहानुभूति से ढांकें और उसे अपने दिल को यह तसल्ली देने का अवसर दें कि बला से धन नहीं मिला, घर के आदमी तो अच्छे मिले। अगर यह तसल्ली भी हमने उससे छीन ली, तो तुम्हीं सोचो, उसको कितनी विदारक वेदना होगी ! शायद वह हम लोगों की सूरत से भी घृणा करने लगे।

माँ–उसके घर वालों को सौ दफे गरज थी, तब हमारे यहाँ ब्याह किया। हम कुछ उनसे भीख माँगने गये थे ?

बेटा–उनको अगर लड़के की गरज थी, तो हमें धन और कन्या दोनों की गरज थी।

माँ—यहाँ के बड़े-बड़े रईस हमसे नाता करने को मुँह फैलाये हुए थे।

बेटा—इसीलिए कि हमने रईसों का स्वांग बना रखा है। घर की असली हालत खुल जाय, तो कोई बात भी न पूछे !

माँ—तो तुम्हारे ससुराल वाले ऐसे कहाँ के रईस हैं। इधर जरा वकालत चल गयी, तो रईस हो गये, नहीं तो तुम्हारे ससुर के बाप मेरे सामने चपरासगीरी करते थे। और लड़की का यह दिमाग कि खाना पकाने से सिर में दर्द होता है। अच्छे-अच्छे घरों की लड़कियाँ गरीबों के घर आती हैं और घर की हालत देखकर वैसा ही बर्ताव करती हैं। यह नहीं कि बैठी अपने भाग्य को कोसा करें। इस छोकरी ने हमारे घर को अपना समझा ही नहीं।

बेटा—जब तुम समझने भी दो। जिस घर में घुड़कियों, गालियों और कटुताओं के सिवा और कुछ न मिले, उसे अपना घर कौन समझे ? घर तो वह है जहाँ स्नेह और प्यार मिले। कोई लड़की डोली से उतरते ही सास को अपनी माँ नहीं समझ सकती। माँ तभी समझेगी, जब सास पहले उसके साथ मां का-सा वर्ताव करे, बल्कि अपनी लड़की से ज्यादा प्रिय समझे।

माँ—अच्छा, अब चुप रहो। जी न जलाओ। यह जमाना ही ऐसा है कि लड़कों ने स्त्री का मुँह देखा और उसके गुलाम हुए। ये सब न-जाने कौन-सा मंतर सीखकर आती हैं। यह बहू-बेटी के लच्छन है कि पहर दिन चढ़े सोकर उठें ? ऐसी कुलच्छनी बहू का तो मुँह न देखे।

बेटा—मैं भी तो देर में सोकर उठता हूँ, अम्माँ। मुझे तो तुमने कभी नहीं कोसा।

माँ—तुम हर बात में उससे अपनी बराबरी करते हो ?

बेटा—यह उसके साथ घोर अन्याय है; क्योंकि जब तक वह इस घर को अपना नहीं समझती, तब तक उसकी हैसियत मेहमान की है और मेहमान की हम खातिर करते हैं, उसके ऐब नहीं देखते।

माँ—ईश्वर न करे कि किसी को ऐसी वहू मिले !

बेटा—तो वह तुम्हारे घर में रह चुकी।

माँ—क्या संसार में औरतों की कमी है ?

बेटा—औरतों की कमी तो नहीं; मगर देवियों की कमी जरूर है !

माँ—नौज ऐसी औरत। सोने लगती है, तो बच्चा चाहे रोते-रोते बेदम हो जाय, मिनकती तक नहीं। फूल-सा बच्चा लेकर मैके गयी थी, तीन महीने में लौटी, तो बच्चा आधा भी नहीं है।

बेटा—तो क्या मैं यह मान लूँ कि तुम्हें उसके लड़के से जितना प्रेम है, उतना उसे नहीं है ? यह तो प्रकृति के नियम के विरूद्ध है। और मान लो, वह निरमोहिन ही है, तो यह उसका दोष है। तुम क्यों उसकी जिम्मेदारी अपने सिर लेती हो ? उसे पूरी स्वतन्त्रता है, जैसे चाहे अपने बच्चे को पाले, अगर वह तुमसे कोई सलाह पूछे, प्रसन्न-मुख से दे दो, न पूछे तो समझ लो, उसे तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं है। सभी माताएं अपने बच्चे को प्यार करती हैं और वह अपवाद नहीं हो सकती।

माँ—तो मैं सब कुछ देखूँ, मुँह न खोलूँ ? घर में आग लगते देखूँ और चुपचाप मुंह में कालिख लगाये खड़ी रहूँ ?

बेटा—तुम इस घर को जल्द छोड़ने वाली हो, उसे बहुत दिन रहना है। घर की हानि-लाभ

की जितनी चिन्ता उसे हो सकती है, तुम्हें नहीं हो सकती। फिर मैं कर ही क्या सकता हूँ ? ज्यादा-से-ज्यादा उसे डाँट बता सकता हूँ; लेकिन वह डाँट की परवाह न करे और तुर्की-बतुर्की जवाब दे, तो मेरे पास ऐसा कौन-सा साधन है, जिससे मैं उसे ताड़ना दे सकूँ ?

माँ—तुम दो दिन न बोलो, तो देवता सीधे हो जायँ, सामने नाक रगड़े।

बेटा—मुझे इसका विश्वास नहीं है। मैं उससे न बोलूँगा, वह भी मुझसे न बोलेगी। ज्यादा पीछे पड़ेगा, तो अपने घर चली जायगी।

माँ—ईश्वर यह दिन लाये। मैं तुम्हारे लिए नयी बहू लाऊं।

बेटा—सम्भव हैं, इसकी भी चची हो।

(सहसा बहू आकर खड़ी हो जाती है। माँ और बेटा दोनों स्तम्भित हो जाते हैं, मानो कोई बम गोला आ गिरा हो। रूपवती, नाजुक-मिजाज, गर्वीली रमणी है, जो मानो शासन करने के लिए ही बनी है। कपोल तमतमाये हुए हैं; पर अधरों पर विष भरी मुस्कान है और आँखों में व्यंग्य-मिला परिहास।)

माँ—(अपनी झेंप छिपाकर) तुम्हें कौन बुलाने गया था ?

बहू—क्यों यहाँ जो तमाशा हो रहा है, उसका आनन्द मैं न उठाऊँ ?

बेटा—माँ-बेटे के बीच में तुम्हें दखल देने का कोई हक नहीं।

(बहू की मुद्रा सहसा कठोर हो जाती है।)

बहू—अच्छा, आप जबान बन्द रखिए। जो पति अपनी स्त्री की निन्दा सुनता रहे, वह पति बनने के योग्य नहीं। वह पति-धर्म का क ख ग भी नहीं जानता। मुझसे अगर कोई तुम्हारी बुराई करता, चाहे वह मेरी प्यारी माँ ही क्यों न होती, तो मैं उसकी जबान पकड़ लेती ! तुम मेरे घर जाते हो, तो वहां तो जिसे देखती हूं, तुम्हारी प्रशंसा ही करता है। छोटे से बड़े तक गुलामों की तरह दौड़ते फिरते हैं। अगर उनके बस में हो, तो तुम्हारे लिए स्वर्ग के तारे तोड़ लायें और उसका जवाब मुझे यहां यह मिलता है कि बात-बात पर ताने-मेहने, तिरस्कार-बहिष्कार। मेरे घर तो तुमसे कोई नहीं कहता कि तुम देर में क्यों उठे, तुमने अमुक महोदय को सलाम नहीं किया, अमुक के चरणों पर सिर क्यों नहीं पटका ? मेरे बाबूजी कभी गवारा न करेंगे कि तुम उनकी देह पर मुक्कियाँ लगाओ, या उनकी धोती धोओ, या उन्हें खाना पका कर खिलाओ। मेरे साथ यहाँ यह बर्ताव क्यों ? मैं यहाँ लौंडी बनकर नहीं आयी हूं। तुम्हारी जीवन-संगिनी बन कर आयी हूँ। मगर जीवन-संगिनी का यह अर्थ तो नहीं कि तुम मेरे ऊपर सवार होकर मुझे जलाओ। यह मेरा काम है कि जिस तरह चाहूँ, तुम्हारे साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करूँ। उसकी प्रेरणा मेरी आत्मा से होनी चाहिए, ताड़ना या तिरस्कार से नहीं। अगर कोई मुझे कुछ सिखाना चाहता है, तो माँ की तरह प्रेम से सिखाये, मैं सीखूँगी, लेकिन कोई जबरदस्ती, मेरी छाती पर चढ़ कर, अमृत भी मेरे कण्ठ में ठूँसना चाहे तो मैं ओंठ बन्द कर लूँगी। मैं अब कब की इस घर को अपना समझ चुकी होती; अपनी सेवा और कर्त्तव्य का निश्चय कर चुकी होती; मगर यहाँ तो हर घड़ी हर पल, मेरी देह में सुई चुभाकर मुझे याद दिलाया जाता है कि तू इस घर की लौंडी है, तेरा इस घर से कोई नाता नहीं, तू सिर्फ गुलामी करने के लिये यहाँ लायी गयी है, और मेरा रक्त खौल कर रह जाता है। अगर यही हाल रहा, तो एक दिन तुम दोनों मेरी जान लेकर रहोगे।

माँ—सुन रहे हो अपनी चहेती रानी की बातें ? वह यहां लौंडी बन कर नहीं, रानी बन कर आयी है, हम दोनों उसकी टहल करने के लिए हैं, उसका काम हमारे ऊपर शासन करना है, उसे कोई कुछ काम करने कौन कहे, मैं खुद मरा करूँ। और तुम उसकी बातें कान लगाकर सुनते हो। तुम्हारा मुँह कभी नहीं खुलता कि उसे डाँटो या समझाओ। थर-थर काँपते रहते हो।

बेटा—अच्छा अम्माँ, ठंडे दिल से सोचो। मैं इसकी बातें न सुनूँ, तो कौन सुने ? क्या तुम इसके साथ इतनी हमदर्दी भी नहीं देखना चाहतीं। आखिर बाबूजी जीवित थे, तब वह तुम्हारी बातें सुनते थे या नहीं ? तुम्हें प्यार करते थे या नहीं ? फिर मैं अपनी बीवी की बातें सुनता हूँ तो कौन-सी नयी बात करता हूँ। और इसमें तुम्हारे बुरा मानने की कौन बात है। ?

माँ—हाय बेटा, तुम अपनी स्त्री के सामने मेरा अपमान कर रहे हो ! इसी दिन के लिए मैंने तुम्हें पाल-पोस कर बड़ा किया था ? क्यों मेरी छाती नहीं फट जाती ?

(वह आँसू पोंछती, आपे से बाहर, कमरे से निकल जाती है। स्त्री-पुरुष दोनों कौतुक-भरी आँखों से उसे देखते हैं, जो बहुत जल्द हमदर्दी में बदल जाती हैं।)

पति—मां का हृदय....

स्त्री—माँ का हृदय नहीं, स्त्री का हृदय ....

पति—अर्थात् ?

स्त्री—जो अन्त तक पुरुष का सहारा चाहता है, स्नेह चाहता है और उस पर किसी दूसरी स्त्री का असर देखकर ईर्ष्या से जल उठता है।

पति—क्या पगली की-सी बातें करती हो ?

स्त्री—यथार्थ कहती हूं।

पति—तुम्हारा दृष्टिकोण बिलकुल गलत है। और इसका तजरबा तुम्हें तब होगा, जब तुम खुद सास होगी।

स्त्री—मुझे सास बनना ही नहीं है। लडका अपने हाथ-पाँव का हो जाये, ब्याह करे और अपना घर संभाले। मुझे बहू से क्या सरोकार ?

पति—तुम्हें यह अरमान बिलकुल नहीं है कि तुम्हारा लड़का योग्य हो, तुम्हारी बहू लक्ष्मी हो, और दोनों का जीवन सुख से कटे ?

स्त्री—क्या मैं माँ नहीं हूँ ?

पति—माँ और सास में क्या कोई अन्तर है ?

स्त्री—उतना ही जितना जमीन और आसमान में है ! माँ प्यार करती हैं, सास शासन करती है। कितनी ही दयालु, सहनशील सतोगुणी स्त्री हो, सास बनते ही मानों ब्यायी हुई गाय हो जाती है। जिसे पुत्र से जितना ही ज्यादा प्रेम है, वह बहू पर उतनी ही निर्दयता से शासन करती है। मुझे भी अपने ऊपर विश्वास नहीं है। अधिकार पाकर किसे मद नहीं हो जाता ? मैंने तय कर लिया है, सास बनूँगी ही नहीं। औरत की गुलामी सासों के बल पर कायम है। जिस दिन सासें न रहेंगी, औरत की गुलामी का अन्त हो जायगा।

पति—मेरा खयाल हैं, तुम जरा भी सहज बुद्धि से काम लो, तो तुम अम्माँ पर भी शासन कर सकती हो। तुमने हमारी बातें कुछ सुनीं ?

स्त्री—बिना सुने ही मैंने समझ लिया कि क्या बातें हो रही होंगी। वही बहू का रोना।

पति—नहीं, नहीं तुमने बिलकुल गलत समझा। अम्माँ के मिजाज में आज मैंने विस्मयकारी अन्तर देखा, बिलकुल अभूतपूर्व। आप वह जैसे अपनी कटुताओं पर लज्जित हो रही थीं। हां, प्रत्यक्ष रूप से नहीं, संकेत रूप से। अब तक वह तुमसे इसलिए नाराज रहती थीं कि तुम देर में उठती हो। अब शायद उन्हें यह चिन्ता हो रही है कि कहीं सबेरे उठने से तुम्हें ठण्ड न लग जाय। तुम्हारे लिए पानी गर्म करने को कह रही थीं !

स्त्री—(प्रसन्न होकर) सच !

पति—हाँ, मुझे तो सुनकर आश्चर्य हुआ।

स्त्री—तो अब मैं मुँह-अँधेरे उठूँगी। ऐसी ठण्ड क्या लग जायगी; लेकिन तुम मुझे चकमा तो नहीं दे रहे हो ?

पति—अब इस बदगुमानी का क्या इलाज। आदमी को कभी-कभी अपने अन्याय पर खेद तो होता ही है।

स्त्री—तुम्हारे मुंह में घी-शक्कर। अब मैं गजरदम उठूँगी। वह बेचारी मेरे लिए क्यों पानी गर्म करेंगी ? मैं खुद गर्म कर लूँगी। आदमी करना चाहे तो क्या नहीं कर सकता ?

पति—मुझे उनकी बात सुन-सुनकर ऐसा लगता था, जैसे किसी दैवी आदेश ने उनकी आत्मा को जगा दिया हो। तुम्हारे अल्हड़पन और चपलता पर कितना भन्नाती हैं। चाहती थीं कि घर में कोई बड़ी-बूढ़ी आ जाय, तो तुम उसके चरण छुओ; लेकिन शायद अब उन्हें मालूम होने लगा है कि इस उम्र में सभी थोड़े बहुत अल्हड़ होते हैं। शायद उन्हें अपनी जवानी याद आ रही है। कहती थीं, यही तो शौक-सिंगार, पहनने-ओढ़ने, खाने-खेलने के दिन थे। बुढ़ियों का तो दिन-भर ताँता लगा रहता है, कोई कहाँ तक उनके चरण छुए और क्यों छुए ? ऐसी कहाँ की बड़ी देवियाँ है।

स्त्री—मुझे तो हर्षोन्माद हुआ चाहता है।

पति—मुझे तो विश्वास ही न आता था। स्वप्न देखने का सन्देह हो रहा था।

स्त्री—अब आई हैं राह पर।

पति—कोई दैवी प्रेरणा समझो।

स्त्री—मैं कल से ठेठ बहू बन जाऊँगी। किसी को खबर भी न होगी कि कब अपना मन-आप करती हूँ। सिनेमा के लिए भी सप्ताह में एक दिन काफी है। बूढ़ियों के पाँव छू लेने में ही क्या हरज है ? वे देवियाँ न सही, चुड़ैलें ही सही; मुझे आशीर्वाद तो देंगी, मेरा गुण तो गावेंगी।

पति—सिनेमा का तो उन्होंने नाम भी नहीं लिया।

स्त्री—तुमको जो इसका शौक है। अब तुम्हें भी न जाने दूँगी।

पति—लेकिन सोचो, तुमने कितनी ऊंची शिक्षा पायी है, किस कुल की हो, इन खूसट बुढ़ियों के पांव पर सिर रखना तुम्हें बिलकुल शोभा न देगा।

स्त्री—तो क्या ऊंची शिक्षा के यह मानी हैं कि हम दूसरों को नीचा समझें ? बुड्ढे कितने ही मूर्ख हों; लेकिन दुनिया का तजरबा तो रखते हैं। कुल की प्रतिष्ठा भी नम्रता और सद्व्यवहार से होती है, हेकड़ी और रुखाई से नहीं।

पति—मुझे तो यही ताज्जुब होता है कि इतनी जल्द इनकी कायापलट कैसे हो

गयी। अब इन्हें बहुओं का सास के पांव दबाना या उनकी साड़ी धोना, या उनकी देह में मुक्कियां लगाना बुरा लगने लगा है। कहती थीं, बहू कोई लौंडी थोड़े ही है कि बैठी सास का पांव दबाये।

स्त्री—मेरी कसम ?

पति—हाँ जी, सच कहता हूँ। और तो और, अब वह तुम्हें खाना भी न पकाने देंगी। कहती थीं, जब बहू के सिर में दर्द होता है, तो क्यों उसे सताया जाय ? कोई महाराज रख लो।

स्त्री—(फूली न समाकर) मैं तो आकाश में उड़ी जा रही हूँ। ऐसी सास के तो चरण धो-धोकर पियें; मगर तुमने पूछा नहीं; अब तक तुम क्यों उसे मार-मारकर हकीम बनाने पर तुली रहती थीं।

पति—पूछा क्यों नहीं, भला मैं छोड़नेवाला था। बोलीं, मैं अच्छी हो गयी थी, मैंने हमेशा खाना पकाया है, फिर वह क्यों न पकाये। लेकिन अब उनकी समझ में आया है कि वह निर्धन बाप की बेटी थीं, तुम सम्पन्न कुल की कन्या हो !

स्त्री—अम्माँजी दिल की साफ हैं। इन्हें मैं क्षमा के योग्य समझती हूँ। जिस जलवायु में हम पलते हैं, उसे एकबारगी नहीं बदल सकते। जिन रूढ़ियों और परम्पराओं में उनका जीवन बीता है, उन्हें तुरन्त त्याग देना उनके लिए कठिन है। वह क्यों, कोई भी नहीं छोड़ सकता। वह तो फिर भी बहुत उदार हैं। तुम अभी महाराज मत रखो। ख्वामख्वाह जेरबार क्यों होंगे, जब तरक्की हो जाय, तो महाराज रख लेना। अभी मैं खुद पका लिया करूँगी। तीन-चार प्राणियों का खाना ही क्या। मेरी जात से कुछ अम्माँ को आराम मिले। मैं जानती हूँ सब कुछ; लेकिन कोई रोब जमाना चाहे, तो मुझसे बुरा कोई नहीं।

पति—मगर यह तो मुझे बुरा लगेगा कि तुम रात को अम्माँ के पांव दबाने बैठो।

स्त्री—बुरा लगने की कौन बात है, जब उन्हें मेरा इतना खयाल है, तो मुझे भी उनका लिहाज करना ही चाहिए। जिस दिन मैं उनके पाँव दबाने बैठूँगी, वह मुझ पर प्राण देने लगेंगी। आखिर बहू-बेटे का कुछ सुख उन्हें भी तो हो ! बड़ों की सेवा करने में हेठी नहीं होती। बुरा जब लगता है, जब वह शासन करत हैं और अम्माँ मुझसे पाँव दबवायेंगी थोड़े ही। सेंत का यश मिलेगा।

पति—अब तो अम्माँ को तुम्हारा फजूलखर्ची भी बुरी नहीं लगती। कहती थीं, रुपये-पैसे बहू के हाथ में दे दिया करो।

स्त्री—चिढ़कर तो नहीं कहती थीं ?

पति—नहीं, नहीं, प्रेम से कह रही थीं। उन्हें अब भय हो रहा है, कि उनके हाथ में पैसे रहने से तुम्हें असुविधा होती होगी। तुम बार-बार उनसे माँगती लजाती भी होगी और डरती भी होगी एवं तुम्हें अपनी जरूरतों को रोकना पड़ता होगा।

स्त्री—ना भैया, मैं यह जंजाल अभी अपने सिर न लूँगी। तुम्हारी थोड़ी सी तो आमदनी है, कहीं जल्दी से खर्च हो जाय, तो महीना कटना मुश्किल हो जाय। थोड़े में निर्वाह करने की विद्या उन्हीं को आती है। मेरी ऐसी जरूरतें ही क्या हैं। ? मैं तो केवल अम्माँजी को चिढ़ाने के लिए उनसे बार-बार रुपये माँगती थी। मेरे पास तो खुद सौ-पचास रुपये पड़े रहते हैं। बाबूजी का पत्र आता है, तो उसमें दस-बीस के नोट जरूर होते हैं;

लेकिन अब मुझे हाथ रोकना पड़ेगा। आखिर बाबूजी कब तक देते चले जायेंगे और यह कौन-सी अच्छी बात है कि मैं हमेशा उन पर टैक्स लगाती रहूँ ?

पति—देख लेना अम्माँ अब तुम्हें कितना प्यार करती हैं।

स्त्री—तुम भी देख लेना, मैं उनकी कितनी सेवा करती हूँ।

पति—मगर शुरू तो उन्होंने किया ?

स्त्री—केवल विचार में। व्यवहार में आरम्भ मेरी ही ओर से होगा। भोजन पकाने का समय आ गया, चलती हूँ। आज कोई खास चीज तो नहीं खाओगे ?

पति—तुम्हारे हाथों की रूखी रोटियाँ भी पकवान का मजा देंगी।

स्त्री—अब तुम नटखटी करने लगे।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'चांद', अगस्त, 1935 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'जाविए निगाह' शीर्षक से 'दूध की कीमत' में संकलित।]

पेपुजी

सिद्धान्त का सबसे बड़ा दुश्मन है मुरौवत। कठिनाइयों, बाधाओं, प्रलोभनों का सामना आप कर सकते हैं दृढ़ संकल्प और आत्मबल से। लेकिन एक दिली दोस्त से बेमुरौवती तो नहीं की जाती, सिद्धान्त रहे या जाए। कई साल पहले मैंने जनेऊ हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की थी कि अब कभी किसी की बरात में न जाऊंगा चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाए। ऐसी विकट प्रतिज्ञा करने की जरूरत क्यों पड़ी, इसकी कथा लम्बी है और आज भी उसे याद करके मेरी प्रतिज्ञा को जीवन मिल जाता है। बरात थी कायस्थों की। समधी थे मेरे पुराने मित्र। बरातियों में अधिकांश जान-पहचान के लोग थे। देहात में जाना था। मैंने सोचा, चलो दो-तीन दिन देहात की सैर रहेगी, चल पड़ा। लेकिन मुझे यह देखकर हैरत हुई कि बरातियों की वहां जाकर बुद्धि ही कुछ भ्रष्ट हो गयी है। बात-बात पर झगड़ा-तकरार। सभी कन्यापक्ष वालों से मानो लड़ने को तैयार। यह चीज नहीं आयी, वह चीज नहीं भेजी, यह आदमी है या जानवर, पानी बिना बरफ के कौन पियेगा। गधे ने बरफ भेजी भी तो दस सेर। पूछो दस सेर बरफ लेकर आंखों में लगायें या किसी देवता को चढ़ावे ! अजब चिल-पों मची हुई थी। कोई किसी की न सुनता था, समधी साहब सिर पीट रहे थे कि यहां उनके मित्रों की जितनी दुर्गति हुई, उसका उन्हें उम्र-भर खेद रहेगा। वह क्या जानते थे कि लड़की वाले इतने गंवार हैं। गंवार क्यों, मतलबी कहिए। कहने को शिक्षित हैं, सभ्य हैं, भद्र हैं, धन भी भगवान् की दया से कम नहीं, मगर दिल के इतने छोटे। दस सेर बरफ भेजते हैं ! सिगरेट की एक डिबिया भी नहीं ! फंस गया और क्या।

मैंने उनसे बिना सहानुभूति दिखाये कहा—सिगरेट नहीं भेजे तो कौन-सा बड़ा अनर्थ हो गया, खमीरा तम्बाकू तो दस सेर भेज दिया, पीते क्यों नहीं घोल-घोलकर।

मेरे समधी मित्र ने विस्मयभरी आंखों से मुझे देखा मानो उन्हें अपने कानों पर विश्वास न हो। ऐसी अनीति !

बोले—आप भी अजीब आदमी हैं, खमीरा यहां कौन पीता है। मुद्दत हुई लोगों ने गुड़गुड़ियां और फर्शियां गुदड़ी बाजार में बेच डालीं। थोड़े से दकियानूसी अब भी हुक्का गुड़गुड़ाते हैं लेकिन बहुत कम। यहां तो ईश्वर की कृपा से नयी रोशनी, नये विचार, नये जमाने के लोग हैं और कन्या वाले यह बात जानते हैं, फिर भी सिगरेट नहीं भेजी। यहां कई सज्जन आठ-दस डिबिया रोज पी जाते हैं। एक साहब तो बारह तक पहुंच जाते हैं। और चार-पांच डिबिया तो आम बात है। इतने आदमियों के बीच में सौ डिबिया भी न हो तो क्या हो। और बरफ देखी आपने, जैसे दवा के लिए भेजी है। यहां इतनी बरफ घर-घर आती है। मैं तो अकेला ही दस सेर पी जाता हूं। देहातियों को कभी अक्ल न आयेगी, पढ़-लिख कितने ही जाएं।

मैंने कहा—तो आपको अपने साथ एक गाड़ी सिगरेट और टन भर बरफ लेते आना चाहिए था।

वह स्तम्भित हो गये—आप भंग तो नहीं खा गये ?

—जी नहीं, कभी उम्र भर नहीं खायी।

—तो फिर ऐसी ऊल-जलूल बातें क्यों करते हो ?

—मैं तो संपूर्णतः अपने होश में हूं।

-होश में रहने वाला आदमी ऐसी बात नहीं कर सकता। हम यहां लड़का ब्याहने आये हैं, लड़की वालों को हमारी सारी फरमाइशें पूरी करनी पड़ेंगी, सारी। हम जो कुछ मांगेंगे उन्हें देना पड़ेगा, रो-रोकर देना पड़ेगा। दिल्लगी नहीं है। नाकों चने न चबवा दें तो कहिएगा। यह हमारा खुला अपमान है। द्वार पर बुलाकर जलील करना। मेरे साथ जो लोग आये हैं वे नाई-कहार नहीं हैं, बड़े आदमी हैं। मैं उनकी तौहीन नहीं देख सकता। अगर इन लोगों की यह जिद है तो बारात लौट जाएगी।

मैंने देखा यह इस वक्त ताव में हैं, इनसे बहस करना उचित नहीं। आज जीवन में पहली बार, केवल दो दिन के लिए, इन्हें एक आदमी पर अधिकार मिल गया है। उसकी गर्दन इनके पांव के नीचे है। फिर इन्हें क्यों न नशा हो आए, क्यों न सिर फिर जाए, क्यों न उस पर दिल खोलकर रोब जमायें। वरपक्ष वाले कन्यापक्ष वालों पर मुद्दतों से हुकूमत करते चले आये हैं और उस अधिकार को त्याग देना आसान नहीं। इन लोगों के दिमाग में इस वक्त यह बात कैसे आयेगी कि तुम कन्यापक्ष वालों के मेहमान और वे तुम्हें जिस तरह रखना चाहें तुम्हें रहना पड़ेगा। मेहमान को जो आदर-सत्कार, चूनी-चोकर रूखा-सूखा मिले, उस पर उसे सन्तुष्ट होना चाहिए। शिष्टता यह कभी गवारा नहीं कर सकती कि वह जिनका मेहमान है, उनसे अपनी खातिरदारी का टैक्स वसूल करे। मैंने वहां से टल जाना ही मुनासिब समझा।

लेकिन जब विवाह का मुहूर्त आया, इधर से एक दर्जन ह्विस्की की बोतलों की फरमाइश हुई और कहा गया कि जब तक बोतलें न आ जायेंगी, हम विवाह-संस्कार के लिए मण्डप में न जायेंगे, तब मुझसे न देखा गया। मैंने समझ लिया कि ये सब पशु हैं, इन्सानियत से खाली। इनके साथ एक क्षण रहना भी अपनी आत्मा का खून करना है। मैंने उसी वक्त प्रतिज्ञा की कि अब कभी किसी बरात में न जाऊंगा और अपना बोरिया-बकचा लेकर उसी क्षण वहां से चल दिया।

इसलिए जब गत मंगलवार को मेरे परम मित्र सुरेश बाबू ने मुझे अपने लड़के के विवाह का निमन्त्रण दिया तो मैंने साहस को दोनों हाथों में पकड़कर कहा—जी नहीं, मुझे क्षमा कीजिए, मैं न जाऊंगा।

उन्होंने खिन्न होकर कहा—आखिर क्यों ?

"मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि अब किसी बरात में न जाऊंगा।"

"अपने बेटे की बरात में भी नहीं ?"

"बेटे की बरात में खुद अपना स्वामी रहूंगा।"

"तो समझ लीजिए यह आप ही का पुत्र है और आप यहां अपने स्वामी हैं।"

मैं निरुत्तर हो गया। फिर भी मैंने अपना पक्ष न छोड़ा।

"आप लोग वहां कन्या पक्ष वालों से सिगरेट, बर्फ, तेल, शराब आदि-आदि चीजों के लिए आग्रह तो न करेंगे ?"

"भूलकर भी नहीं, इस विषय में मेरे विचार वही हैं जो आपके।"

"ऐसा तो न होगा कि मेरे जैसे विचार रखते हुए भी आप वहां दुराग्रहियों की बातों में आ जाएं और वे अपने हथकण्डे शुरू कर दें ?"

"मैं आप ही को अपना प्रतिनिधि बनाता हूं। आपके फैसले की वहां कहीं अपील न होगी।"

दिल में तो मेरे अब भी कुछ संशय था, लेकिन इतना आश्वासन मिलने पर और ज्यादा अड़ना असज्जनता थी। आखिर मेरे वहां जाने से यह बेचारे तर तो नहीं जाएंगे। केवल मुझसे स्नेह रखने के कारण ही तो सब कुछ मेरे हाथों में सौंप रहे हैं। मैंने चलने का वायदा कर लिया। लेकिन जब सुरेश बाबू विदा होने लगे तो मैंने घड़े को जरा और ठोंका—

"लेन-देन का तो कोई झगड़ा नहीं है ?"

"नाम को नहीं। वे लोग अपनी खुशी से जो कुछ दे देंगे, वह हम ले लेंगे। मांगने न मांगने का अधिकार आपको रहेगा।"

"अच्छी बात है, मैं चलूंगा।"

शुक्रवार को बरात चली। केवल रेल का सफर था और वह भी पचास मील का। तीसरे पहर के एक्सप्रेस से चले और शाम को कन्या के द्वार पर पहुंच गये। वहां हर तरह का सामान मौजूद था। किसी चीज के मांगने की जरूरत न थी। बरातियों की इतनी खातिरदारी भी हो सकती है, इसकी मुझे कल्पना भी न थी। घराती इतने विनीत हो सकते हैं, कोई बात मुंह से निकली नहीं कि एक की जगह पर चार आदमी हाथ बांधे हाजिर।

लग्न का मुहूर्त आया। हम सभी मंडप में पहुंचे। वहां तिल रखने की जगह भी न थी। किसी तरह धंस-धंसाकर अपने लिए जगह निकाली। सुरेश बाबू मेरे पीछे खड़े थे। बैठने को वहां जगह न थी।

कन्यादान संस्कार शुरू हुआ। कन्या का पिता एक पीताम्बर पहने आकर वर के सामने बैठ गया और उसके चरणों को धोकर उन पर अक्षत, फूल आदि चढ़ाने लगा। मैं अब तक सैकड़ों बरातों में जा चुका था, लेकिन विवाह-संस्कार देखने का मुझे कभी अवसर न मिला था। इस समय वर के सगे-संबंधी ही जाते हैं। अन्य बराती जनवासे में पड़े सोते हैं। या नाच देखते हैं, या ग्रामोफोन के रिकार्ड सुनते हैं। और कुछ न हुआ तो कई टोलियों

में ताश खेलते हैं। अपने विवाह की मुझे याद नहीं। इस वक्त कन्या के वृद्ध पिता को एक युवक के चरणों की पूजा करते देखकर मेरी आत्मा को चोट लगी। यह हिन्दू विवाह का आदर्श है या उसका परिहास ? जामाता एक प्रकार से अपना पुत्र है, उसका धर्म है कि अपने धर्मपिता के चरण धोये, उस पर पान-फूल चढ़ाये। यह तो नीति-संगत मालूम होता है। कन्या का पिता वर के पांव पूजे यह तो न शिष्टता है, न धर्म, न मर्यादा। मेरी विद्रोही आत्मा किसी तरह शांत न रह सकी। मैंने झल्लाये हुए स्वर में कहा—यह क्या अनर्थ हो रहा है, भाइयो ! कन्या के पिता का यह अपमान ! क्या आप लोगों में आदमियत रही ही नहीं ?

मंडप में सन्नाटा छा गया। मैं सभी आंखों का केन्द्र बन गया। मेरा क्या आशय है, यह किसी की समझ में न आया।

आखिर सुरेश बाबू ने पूछा—कैसा अपमान और किसका अपमान ? यहां तो किसी का अपमान नहीं हो रहा है।

"कन्या का पिता वर के पांव पूजे, यह अपमान नहीं तो क्या है ?"

"यह अपमान नहीं, भाई साहब, प्राचीन प्रथा है।"

कन्या के पिता महोदय बोले—यह मेरा अपमान नहीं है मान्यवर, मेरा अहोभाग्य कि आज यह शुभ अवसर आया। आप इतने ही से घबरा गये। अभी तो कम-से-कम एक सौ आदमी पैपुजी के इंतजार में बैठे हुए हैं। कितने ही तरसते हैं कि कन्या होती तो वर के पांव पूजकर अपना जन्म सफल करते।

मैं लाजवाब हो गया। समधी साहब पांव पूज चुके तो स्त्रियों और पुरुषों का एक समूह वर की तरफ उमड़ पड़ा और प्रत्येक प्राणी लगा उसके पांव पूजने। जो आता था, अपनी हैसियत के अनुसार कुछ-न-कुछ चढ़ा जाता था। सब लोग प्रसन्न-चित्त और गद्‌गद नेत्रों से यह नाटक देख रहे थे और मैं मन में सोच रहा था—जब समाज में औचित्य ज्ञान का इतना लोप हो गया है और लोग अपने अपमान को अपना सम्मान समझते हैं तो फिर क्यों न स्त्रियों की समाज में यह दुर्दशा हो, क्यों न वे अपने को पुरुष के पांव की जूती समझें, क्यों न उनके आत्मसम्मान का सर्वनाश हो जाए !

जब विवाह-संस्कार समाप्त हो गया और वर-वधू मंडप से निकले तो मैंने जल्दी से आगे बढ़कर उसी थाल से थोड़े से फूल चुन लिये और एक अर्द्ध-चेतना की दशा में, न जाने किन भावों से प्रेरित होकर, उन फूलों को वधू के चरणों पर रख दिया और उसी वक्त वहां से घर चल दिया।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', अक्टूबर, 1935 में प्रकाशित। 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

लॉटरी

जल्दी से मालदार हो जाने की हवस किसे नहीं होती ? उन दिनों जब लॉटरी के टिकट आये, तो मेरे दोस्त, विक्रम के पिता, चचा, अम्मा, और भाई, सभी ने एक-एक टिकट

खरीद लिया। कौन जाने, किसकी तकदीर जोर करे ? किसी के नाम आये, रुपया रहेगा तो घर में ही।

मगर विक्रम को सब्र न हुआ। औरों के नाम रुपये आयेंगे, फिर उसे कौन पूछता है? बहुत होगा, दस-पाँच हजार उसे दे देंगे। इतने रुपयों में उसका क्या होगा ? उसकी जिन्दगी में बड़े-बड़े मंसूबे थे। पहले तो उसे सम्पूर्ण जगत की यात्रा करनी थी, एक-एक कोने की। पीरू और ब्राजील और टिम्बकटू और होनोलूलू, ये सब उसके प्रोग्राम में थे। वह आँधी की तरह महीने-दो-महीने उड़कर लौट आने वालों में न था। वह एक-एक स्थान में कई-कई दिन ठहरकर वहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का अध्ययन करना और संसार-यात्रा का एक वृहद् ग्रंथ लिखना चाहता था। फिर उसे एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाना था, जिसमें दुनिया-भर की उत्तम रचनाएँ जमा की जायँ। पुस्तकालय के लिए वह दो लाख तक खर्च करने को तैयार था, बँगला, कार और फर्नीचर तो मामूली बातें थीं। पिता या चचा के नाम रुपये आये, तो पाँच हजार से ज्यादा का डौल नहीं, अम्माँ के नाम आये, तो बीस हजार मिल जायँगे; लेकिन भाई साहब के नाम आ गये, तो उसके हाथ धेला भी न लगेगा। वह आत्माभिमानी था। घर वालों से खैरात या पुरस्कार के रूप में कुछ लेने की बात उसे अपमान-सी लगती थी। कहा करता था—भाई, किसी के सामने हाथ फैलाने से तो किसी गड्ढे में डूब मरना अच्छा है। जब आदमी अपने लिए संसार में कोई स्थान न निकाल सके, तो यहाँ से प्रस्थान कर जाय ?

वह बहुत बेकरार था। घर में लॉटरी-टिकट के लिए उसे कौन रुपए देगा और वह माँगेगें भी तो कैसे ? उसने बहुत सोच-विचार कर कहा—क्यों न हम-तुम साझे में एक टिकट ले लें ?

तजवीज मुझे भी पसंद आयी। मैं उन दिनों स्कूल-मास्टर था। बीस रुपये मिलते थे। उसमें बड़ी मुश्किल से गुजर होती थी। दस रुपये का टिकट खरीदना मेरे लिए सुफेद हाथी खरीदना था। हाँ, एक महीना दूध, घी जल-पान और ऊपर के सारे खर्च तोड़कर पाँच रुपये की गुंजाइश निकल सकती थी। फिर भी जी डरता था। कहीं से कोई बलाई रकम मिल जाय, तो कुछ हिम्मत बढ़े।

विक्रम ने कहा—कहो तो अपनी अँगूठी बेच डालूँ? कह दूँगा, उँगली से फिसल पड़ी।

अँगूठी दस रुपये से कम न थी। उसमें पूरा टिकट आ सकता था; अगर कुछ खर्च किये बिना ही टिकट में आधा-साझा हुआ जाता है, तो क्या बुरा है ?

सहसा विक्रम फिर बोला—लेकिन भई, तुम्हें नकद देने पड़ेंगे। मैं पाँच रुपये नकद लिये बगैर साझा न करूँगा।

अब मुझे औचित्य का ध्यान आ गया। बोला—नहीं दोस्त, यह बुरी बात है, चोरी खुल जायेगी, तो शर्मिन्दा होना पड़ेगा और तुम्हारे साथ मुझ पर भी डाँट पड़ेगी।

आखिर यह तय हुआ कि पुरानी किताबें किसी सेकेन्ड हैंड किताबों की दूकान पर बेच डाली जायँ और उस रुपये से टिकट लिया जाय। किताबों से ज्यादा बेजरूरत हमारे पास और कोई चीज न थी। हम दोनों साथ ही मैट्रिक पास हुए थे और यह देखकर कि जिन्होंने डिग्रियाँ लीं, अपनी आँखें फोड़ीं और घर के रुपये बरबाद किये, वह भी जूतियाँ चटका रहे थे, हमने वहीं हाल्ट कर दिया। मैं स्कूल-मास्टर हो गया और विक्रम मटरगश्ती

करने लगा ? हमारी पुरानी पुस्तकें अब दीमकों के सिवा हमारे किसी काम की न थीं। हमसे जितना चाटते बना चाटा; उनका सत्त निकाल लिया। अब चूहे चाटें या दीमक, हमें परवाह न थी। आज हम दोनों ने उन्हें कूड़ेखाने से निकाला और झाड़-पोंछ कर एक बड़ा-सा गट्ठर बाँधा। मास्टर था, किसी बुकसेलर की दूकान पर किताब बेचते हुए झेंपता था। मुझे सभी पहचानते थे; इसलिए यह खिदमत विक्रम के सुपुर्द हुई और वह आध घंटे में दस रुपये का एक नोट लिये उछलता-कूदता आ पहुँचा। मैंने उसे इतना प्रसन्न कभी न देखा था। किताबें चालीस रुपये से कम की न थीं; पर यह दस रुपये उस वक्त में हमें जैसे पड़े हुए मिले। अब टिकट में आधा साझा होगा। दस लाख की रकम मिलेगी। पाँच लाख मेरे हिस्से में आयेंगे, पाँच विक्रम के। हम अपने इसी में मगन थे।

मैंने संतोष का भाव दिखाकर कहा—पाँच लाख भी कुछ कम नहीं होते जी !

विक्रम इतना संतोषी न था। बोला—पाँच लाख क्या, हमारे लिए तो इस वक्त पाँच सौ भी बहुत है भाई, मगर जिन्दगी का प्रोग्राम तो बदलना पड़ गया। मेरी यात्रा वाली स्कीम तो टल नहीं सकती। हाँ, पुस्तकालय गायब हो गया।

मैंने आपत्ति की—आखिर यात्रा में तुम दो लाख से ज्यादा तो न खर्च करोगे ?

'जी नहीं, उसका बजट है साढ़े तीन लाख का। सात वर्ष का प्रोग्राम है। पचास हजार रुपये साल ही तो हुए ?'

'चार हजार महीना कहो। मैं समझता हूँ, दो हजार में तुम बड़े आराम से रह सकते हो।

विक्रम ने गर्म होकर कहा—मैं शान से रहना चाहता हूँ; भिखारियों की तरह नहीं।

'दो हजार में भी तुम शान से रह सकते हो।'

'जब कब आप अपने हिस्से में से दो लाख मुझे न दे देंगे, पुस्तकालय न बन सकेगा।'

'कोई जरूरी नहीं कि तुम्हारा पुस्तकालय शहर में बेजोड़ हो ?'

'मैं तो बेजोड़ ही बनवाऊँगा।'

'इसका तुम्हें अख्तियार है, लेकिन मेरे रुपये में से तुम्हें कुछ न मिल सकेगा। मेरी जरूरतें देखो। तुम्हारे घर में काफी जायदाद हैं। तुम्हारे सिर कोई बोझ नहीं, मेरे सिर तो सारी गृहस्थी का बोझ है। दो बहनों का विवाह है, दो भाइयों की शिक्षा है, नया मकान बनवाना है। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि सब रुपये सीधे बैंक में जमा कर दूँगा। उनके सूद से काम चलाऊँगा। कुछ ऐसी शर्तें लगा दूँगा, कि मेरे बाद भी कोई इस रकम में हाथ न लगा सके।

विक्रम ने सहानुभूति के भाव से कहा—हाँ, ऐसी दशा में तुमसे कुछ माँगना अन्याय है। खैर, मैं ही तकलीफ उठा लूँगा; लेकिन बैंक के सूद की दर तो बहुत गिर गयी है।

हमने कई बैंकों में सूद की दर देखी, अस्थायी कोष की भी; सेविंग बैंक की भी। बेशक दर बहुत कम थी। दो-ढाई रुपये सैकड़े ब्याज पर जमा करना व्यर्थ है। क्यों न लेन-देन का कारोबार शुरू किया जाय ? विक्रम भी अभी यात्रा पर न जायगा। दोनों के साझे में कोठी चलेगी, जब कुछ धन जमा हो जायगा, तब वह यात्रा करेगा। लेन-देन में सूद भी अच्छा मिलेगा और अपना रोब-दाब भी रहेगा। हाँ, जब तक अच्छी जमानत न हो, किसी

को रुपया न देना चाहिए; चाहे असामी कितना ही मातबर क्यों न हो। और जमानत पर रुपये दे ही क्यों ? जायदाद रेहन लिखाकर रुपये देंगे। फिर तो कोई खटका न रहेगा।

यह मंजिल भी तय हुई। अब यह प्रश्न उठा कि टिकट पर किसका नाम रहे। विक्रम ने अपना नाम रखने के लिए बड़ा आग्रह किया। अगर उसका नाम न रहा, तो वह टिकट ही न लेगा ! मैंने कोई उपाय न देखकर मंजूर कर लिया और बिना किसी लिखा-पढ़ी के, जिससे आगे चलकर मुझे बड़ी परेशानी हुई !

2

एक-एक करके इन्तजार के दिन काटने लगे। भोर होते ही हमारी आँखें कैलेंडर पर जातीं। मेरा मकान विक्रम के मकान से मिला हुआ था। स्कूल जाने के पहले और स्कूल से आने के बाद हम दोनों साथ बैठकर अपने-अपने मंसूबे बाँधा करते और इस तरह सायँ-सायँ कि कोई सुन न ले। हम अपने टिकट खरीदने का रहस्य छिपाये रखना चाहते थे। यह रहस्य जब सत्य का रूप धारण कर लेगा, उस वक्त लोगों को कितना विस्मय होगा ! उस दृश्य का नाटकीय आनन्द हम नहीं छोड़ना चाहते थे।

एक दिन बातों-बातों में विवाह का जिक्र आ गया। विक्रम ने दार्शनिक गम्भीरता से कहा—भई, शादी-शादी का जंजाल तो मैं नहीं पालना चाहता। व्यर्थ की चिंता और हाय-हाय। पत्नी की नाज बरदारी में ही बहुत से रुपये उड़ जायँगे।

मैंने इसका विरोध किया—हाँ, यह तो ठीक है; लेकिन जब तक जीवन के सुख-दुःख का कोई साथी न हो; जीवन का आनन्द ही क्या ? मैं तो विवाहित जीवन से इतना विरक्त नहीं हूँ। हाँ; साथी ऐसा चाहता हूँ जो अन्त तक साथ रहे और ऐसा साथी पत्नी के सिवा दूसरा नहीं हो सकता।

विक्रम जरूरत से ज्यादा तुनुकमिजाजी से बोला—खैर, अपना-अपना दृष्टिकोण है। आपको बीवी मुबारक और कुत्तों की तरह उसके पीछे-पीछे चलना तथा बच्चों को संसार की सबसे बड़ी विभूति और ईश्वर की सबसे बड़ी दया समझना मुबारक। बन्दा तो आजाद रहेगा, अपने मजे से चाहा और जब चाहा उड़ गये और जब चाहा घर आ गये। यह नहीं कि हर वक्त एक चौकीदार आपके सिर पर सवार हो। जरा-सी देर हुई घर आने में और फौरन जवाब तलब हुआ—कहाँ थे अब तक ? आप कहीं बाहर निकले और फौरन सवाल हुआ—कहाँ जाते हो ? और जो कहीं दुर्भाग्य से पत्नीजी भी साथ हो गयीं, तब तो डूब मरने के सिवा आपके लिए कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। न भैया, मुझे आपसे जरा भी सहानुभूति नहीं। बच्चे को जरा-सा जुकाम हुआ और आप बेतहाशा दौड़े चले जा रहे हैं होमियोपैथिक डाक्टर के पास। जरा उम्र खिसकी और लौंडे मनाने लगे कि कब आप प्रस्थान करें और वह गुलछर्रे उड़ायें। मौका मिला तो आपको जहर खिला दिया और मशहूर किया कि आपको कालरा हो गया था। मैं इस जंजाल में नहीं पड़ता।

कुन्ती आ गयी। वह विक्रम की छोटी बहन थी, कोई ग्यारह साल की। छठे में पढ़ती थी और बराबर फेल होती थी। बड़ी चिबिल्ली, बड़ी शोख। इतने धमाके से द्वार खोला कि हम दोनों चौंककर उठ खड़े हुए।

विक्रम ने बिगड़कर कहा—तू बड़ी शैतान है कुन्ती, किसने तुझे बुलाया यहाँ ?

कुन्ती ने खुफिया पुलिस की तरह कमरे में नजर दौड़ाकर कहा—तुम लोग हरदम यहाँ किवाड़ बन्द किये बैठे क्या बातें किया करते हो ? जब देखो, यहीं बैठे हो। न कहीं घूमने जाते हो, न तमाशा देखने; कोई जादू मन्तर जगाते होंगे !

विक्रम ने उसकी गरदन पकड़कर हिलाते हुए कहा—हाँ एक मन्तर जगा रहे हैं, जिसमें तुझे ऐसा दूल्हा मिले, जो रोज गिनकर पाँच हजार हण्टर जमाये सड़ासड़।

कुन्ती उसकी पीठ पर बैठकर बोली—मैं ऐसे दूल्हे से ब्याह करूँगी, जो मेरे सामने खड़ा पूँछ हिलाता रहेगा। मैं मिठाई के दोने फेंक दूँगी और वह चाटेगा। जरा भी चीं-चपड़ करेगा, तो कान गर्म कर दूँगी। अम्माँ को लॉटरी के रुपये मिलेंगे, तो पचास हजार मुझे दे दें। बस, चैन करूँगी। मैं दोनों वक्त ठाकुरजी से अम्माँ के लिए प्रार्थना करती हूँ। अम्माँ कहती हैं, कुँवारी लड़कियों की दुआ कभी निष्फल नहीं होती। मेरा मन तो कहता है, अम्माँ को जरूर रुपये मिलेंगे।

मुझे याद आया, एक बार मैं अपने ननिहाल देहात में गया था, तो सूखा पड़ा हुआ था। भादों का महीना आ गया था; मगर पानी की बूँद नहीं। सब लोगों ने चन्दा करके गाँव की सब कुँवारी लड़कियों की दावत की थी। और उसके तीसरे ही दिन मूसलाधार वर्षा हुई थी। अवश्य ही कुँवारियों की दुआ में असर होता है।

मने विक्रम को अर्थपूर्ण आँखों से देखा, विक्रम ने मुझे। आँखों ही में हमने सलाह कर ली और निश्चय भी कर लिया। विक्रम ने कुन्ती से कहा—अच्छा, तुझसे एक बात कहें किसी से कहोगी तो नहीं ? नहीं तू तो बड़ी अच्छी लड़की है, किसी से न कहेगी। मैं अबकी तुझे खूब पढ़ाऊँगा और पास करा दूँगा। बात यह है कि हम दोनों ने भी लॉटरी का टिकट लिया है। हम लोगों के लिए भी ईश्वर से प्रार्थना किया कर। अगर हमें रुपये मिले, तो तेरे लिए अच्छे-अच्छे गहने बनवा देंगे। सच !

कुन्ती को विश्वास न आया। हमने कसमें खायीं। वह नखरे करने लगी। जब हमने उसे सिर से पाँव तक सोने और हीरे से मढ़ देने की प्रतिज्ञा की, तब वह हमारे लिए दुआ करने पर राजी हुई।

लेकिन उसके पेट में मनों मिठाई पच सकती थी; वह जरा-सी बात न पची। सीधे अन्दर भागी और एक क्षण में सारे घर में वह खबर फैल गयी। अब जिसे देखिए, विक्रम को डाँट रहा है, अम्माँ भी, चचा भी, पिता भी—केवल विक्रम की शुभ-कामना से या और किसी भाव से, कौन जाने—बैठे-बैठे तुम्हें हिमाकत ही सूझती है। रुपये लेकर पानी में फेंक दिये। घर में इतने आदमियों ने तो टिकट लिया ही था, तुम्हें लेने की क्या जरूरत थी ? क्या तुम्हें उसमें से कुछ न मिलते ? और तुम भी मास्टर साहब, बिलकुल घोंघा हो। लड़के को अच्छी बातें क्या सिखाओगे, उसे और चौपट किये डालते हो।

विक्रम तो लाड़ला बेटा था। उसे और क्या कहते। कहीं रूठकर एक-दो जून खाना न खाये, तो आफत ही आ जाय। मुझपर सारा गुस्सा उतरा। इसकी साहबत में लड़का बिगड़ा जाता है।

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली कहावत मेरी आँखों के सामने थी। मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आयी। होली का दिन था। शराब की एक बोतल मँगवायी गयी थी। मेरे मामूँ साहब उन दिनों आये हुए थे। मैंने चुपके से कोठरी में जाकर गिलास

में एक घूँट शराब डाली और पी गया। अभी गला जल ही रहा था और आँखें लाल ही थीं, कि मामूँ साहब कोठरी में आ गये और मुझे मानों सेंध में गिरफ्तार कर लिया और इतना बिगड़े—इतना बिगड़े कि मेरा कलेजा सूखकर छुहारा हो गया। अम्माँ ने भी डाँटा, पिताजी ने भी डाँटा, मुझे आँसुओं से उनकी क्रोधाग्नि शान्त करनी पड़ी; और दोपहर ही को मामूँ साहब नशे में पागल होकर गाने लगे, फिर रोये, फिर अम्माँ को गालियाँ दीं, दादा के मना करने पर भी मारने दौड़े और आखिर में कै करके जमीन पर बेसुध पड़े नजर आये।

3

विक्रम के पिता बड़े ठाकुर साहब और ताऊ छोटे ठाकुर साहब दोनों जड़वादी थे, पूजा-पाठ की हँसी उड़ाने वाले, पूरे नास्तिक; मगर अब दोनों बड़े निष्ठावान् और ईश्वर भक्त हो गये थे। बड़े ठाकुर साहब प्रातःकाल गंगा-स्नान करने जाते और मन्दिरों के चक्कर लगाते हुए दोपहर को सारी देह में चन्दन लपेटे घर लौटते। छोटे ठाकुर साहब घर पर ही गर्म पानी से स्नान करते और गठिया से ग्रस्त होने पर भी राम-नाम लिखना शुरू कर देते। धूप निकल आने पर पार्क की ओर निकल जाते और चींटियों को आटा खिलाते। शाम होते ही दोनों भाई अपने ठाकुरद्वारे में जा बैठते और आधी रात तक भागवत की कथा तन्मय होकर सुनते। विक्रम के बड़े भाई प्रकाश को साधु-महात्माओं पर अधिक विश्वास था। वह मठों और साधुओं के अखाड़ों तथा कुटियों की खाक छानते और माताजी को तो भोर से आधी रात तक स्नान, पूजा और व्रत के सिवा दूसरा काम ही न था। इस उम्र में भी उन्हें सिंगार का शौक था; पर आजकल पूरी तपस्विनी बनी हुई थीं। लोग नाहक लालसा को बुरा कहते हैं। मैं तो समझता हूँ, हममें जो यह भक्ति-निष्ठा और धर्म-प्रेम है, वह केवल हमारी लालसा, हमारी हवस के कारण। हमारा धर्म हमारे स्वार्थ के बल पर टिका हुआ है। हवस मनुष्य के मन और बुद्धि का इतना संस्कार कर सकती है, यह मेरे लिए बिलकुल नया अनुभव था। हम दोनों भी ज्योतिषियों और पण्डितों से प्रश्न करके अपने को कभी दुखी कर लिया करते थे।

ज्यों-ज्यों लॉटरी का दिवस समीप आता जाता था, हमारे चित्त की शान्ति उड़ती जाती थी। हमेशा उसी ओर मन टँगा रहता। मुझे आप-ही-आप अकारण सन्देह होने लगा कि कहीं विक्रम मुझे हिस्सा देने से इन्कार कर दे, तो मैं क्या करूँगा। साफ इन्कार कर जाय कि तुमने टिकट में साझा किया ही नहीं। न कोई तहरीर है, न कोई दूसरा सबूत। सब कुछ विक्रम की नीयत पर है। उसकी नीयत जरा भी डावाँडोल हुई कि काम-तमाम। कहीं फरियाद नहीं कर सकता, मुँह तक नहीं खोल सकता। अब अगर कुछ कहूँ भी तो कुछ लाभ नहीं। अगर उसकी नीयत में फितूर आ गया है तब तो वह अभी से इन्कार कर देगा; अगर नहीं आया है, तो इस सन्देह से उसे मर्मान्तक वेदना होगी। आदमी ऐसा तो नहीं है; मगर भाई, दौलत पाकर ईमान सलामत रखना कठिन है। अभी तो रुपये नहीं मिले हैं। इस वक्त ईमानदार बनने में क्या खर्च होता है ? परीक्षा का समय तो तब आयेगा, जब दस लाख रुपये हाथ में होंगे। मैंने अपने अन्तःकरण को टटोला—अगर टिकट मेरे नाम का होता और मुझे दस लाख मिल जाते, तो क्या मैं आधे रुपये बिना कान-पूँछ हिलाये विक्रम के हवाले कर देता ? कौन कह सकता है; मगर अधिक सम्भव यही था कि मैं

हीले-हवाले करता, कहता—तुमने मुझे पाँच रुपये उधार दिये थे। उसके दस ले लो, सौ ले लो और क्या करोगे; मगर नहीं, मुझसे इतनी बद-दियानती न होती।

दूसरे दिन हम दोनों अखबार देख रहे थे कि सहसा विक्रम ने कहा—कहीं हमारा टिकट निकल आये, तो मुझे अफसोस होगा कि नाहक तुमसे साझा किया !

वह सरल भाव से मुस्कराया, मगर यह थी उसके आत्मा की झलक जिसे वह विनोद की आड़ में छिपाना चाहता था।

मैंने चौंककर कहा—सच ! लेकिन इसी तरह मुझे भी तो अफसोस हो सकता है ?

'लेकिन टिकट तो मेरे नाम का है ?'

'इससे क्या।'

'अच्छा, मान लो, मैं तुम्हारे साझे से इन्कार कर जाऊँ ?'

मेरा खून सर्द हो गया। आँखों के सामने अँधेर छा गया।

'मैं तुम्हें इतना बदनीयत नहीं समझता था।'

'मगर है बहुत संभव। पाँच लाख। सोचो ! दिमाग चकरा जाता है !'

'तो भाई, अभी से कुशल है, लिखा-पढ़ी कर लो ! यह संशय रहे ही क्यों ?'

विक्रम ने हँसकर कहा—तुम बड़े शक्की हो यार ! मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। भला, ऐसा कहीं हो सकता है ? पाँच लाख क्या, पाँच करोड़ भी हों, तब भी ईश्वर चाहेगा, तो नीयत में खलल न आने दूँगा।

किन्तु मुझे उसके इस आश्वासनों पर बिलकुल विश्वास न आया। मन में एक संशय बैठ गया।

मैंने कहा—यह तो मैं जानता हूँ, तुम्हारी नीयत कभी विचलित नहीं हो सकती, लेकिन लिखा-पढ़ी कर लेने में क्या हरज है ?

'फजूल है।'

'फजूल ही सही।'

'तो पक्के कागज पर लिखना पड़ेगा। दस लाख की कोर्ट-फीस ही साढ़े सात हजार हो जायगी। किस भ्रम में हैं आप ?'

मैंने सोचा, बला से सादी लिखा-पढ़ी के बल पर कोई कानूनी कार्रवाई न कर सकूँगा। पर इन्हें लज्जित करने का, इन्हें जलील करने का, इन्हें सबके सामने बेईमान सिद्ध करने का अवसर तो मेरे हाथ आयेगा और दुनिया में बदनामी का भय न हो, तो आदमी न जाने क्या करे। अपमान का भय कानून के भय से किसी तरह कम क्रियाशील नहीं होतीं। बोला—मुझे सादे कागज पर ही विश्वास आ जायगा।

विक्रम ने लापरवाही से कहा—जिस कागज का कोई कानूनी महत्त्व नहीं, उसे लिखकर क्या समय नष्ट करें ?

मुझे निश्चय हो गया कि विक्रम की नीयत में अभी से फितूर आ गया। नहीं तो सादा कागज लिखने में क्या बाधा हो सकती है   बिगड़कर कहा—तुम्हारी नीयत तो अभी से खराब हो गयी।

उसने निर्लज्जता से कहा—तो क्या तुम साबित करना चाहते हो कि ऐसी दशा में तुम्हारी नीयत न बदलती ?

'मेरी नीयत इतनी कमजोर नहीं है ?'

'रहने भी दो। बड़ी नीयतवाले ! अच्छे-अच्छे को देखा है !'

'तुम्हें इसी वक्त लेखाबद्ध होना पड़ेगा। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं रहा।'

'अगर तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं है, तो मैं भी नहीं लिखता।'

'तो क्या तुम समझते हो, तुम मेरे रुपये हजम कर जाओगे ?'

'किसके रुपये और कैसे रुपये ?'

'मैं कहे देता हूँ विक्रम, हमारी दोस्ती का ही अन्त न हो जायगा, बल्कि इससे कहीं भयंकर परिणाम होगा।'

हिंसा की एक ज्वाला-सी मेरे अन्दर दहक उठी।

सहसा दीवानखाने में झड़प की आवाज सुन कर मेरा ध्यान उधर चला गया। यहाँ दोनों ठाकुर बैठा करते थे। उनमें ऐसी मैत्री थी, जो आदर्श भाइयों में हो सकती है। राम और लक्ष्मण में भी इतनी ही रही होगी। झड़प की तो बात ही क्या, मैंने उनमें कभी विवाद होते भी न सुना था। बड़े ठाकुर जो कह दें, वह छोटे ठाकुर के लिए कानून था और छोटे ठाकुर की इच्छा देखकर ही बड़े ठाकुर कोई बात कहते थे। हम दोनों को आश्चर्य हुआ दीवानखाने के द्वार पर जाकर खड़े हो गये। दोनों भाई अपनी-अपनी कुर्सियों से उठकर खड़े हो गये थे, एक-एक कदम आगे भी बढ़ आये थे, आँखें लाल, मुख विकृत, त्योरियाँ चढ़ी हुई, मुट्ठियाँ बँधी हुई। मालूम होता था, बस हाथापाई हुआ ही चाहता है।

छोटे ठाकुर ने हमें देखकर पीछे हटते हुए कहा—सम्मिलित परिवार में जो कुछ भी और कहीं से भी और किसी के नाम भी आये, वह सबका है, बराबर।

बड़े ठाकुर ने विक्रम को देखकर एक कदम और आगे बढ़ाया—हरगिज नहीं, अगर मैं कोई जुर्म करूँ, तो मैं पकड़ा जाऊँगा, सम्मिलित परिवार नहीं। मुझे सजा मिलेगी, सम्मिलित परिवार को नहीं। यह वैयक्तिक प्रश्न है।

'इसका फैसला अदालत से होगा।'

'शौक से अदालत जाइए। अगर मेरे लड़के, मेरी बीवी या मेरे नाम लॉटरी निकली, तो आपका उससे कोई सम्बन्ध न होगा, उसी तरह जैसे आपके नाम लॉटरी निकले; तो मुझसे, मेरी बीवी से या मेरे लड़के से उससे कोई सम्बन्ध न होगा।'

'अगर मैं जानता कि आपकी ऐसी नीयत है, तो मैं भी बीवी-बच्चों के नाम से टिकट ले सकता था।'

'यह आपकी गलती है।'

'इसीलिए कि मुझे विश्वास था, आप भाई हैं।'

'यह जुआ है, आपको समझ लेना चाहिए था। जुए की हार-जीत का खानदान पर कोई असर नहीं पड़ सकता। अगर आप कल को दस-पाँच हजार रेस में हार आयें; तो खानदान उसका जिम्मेदार न होगा।'

'मगर भाई का हक दबाकर आप सुखी नहीं रह सकते ?'

'आप न ब्रह्मा हैं, न ईश्वर और न कोई महात्मा।'

विक्रम की माता ने सुना कि दोनों भाइयों में ठनी हुई है और मल्लयुद्ध हुआ चाहता है, तो दौड़ी हुई बाहर आयीं और दोनों को समझाने लगीं।

छोटे ठाकुर ने बिगड़कर कहा—आप मुझे क्या समझती हैं, उन्हें समझाइए, जो चार-चार टिकट लिये हुए बैठे हैं। मेरे पास क्या है, एक टिकट। उसका क्या भरोसा। मेरी अपेक्षा जिन्हें रुपये मिलने का चौगुना चांस है, उनकी नीयत बिगड़ जाय, तो लज्जा और दुःख की बात है।

ठकुराइन ने देवर को दिलासा देते हुए कहा—अच्छा, मेरे रुपये में से आधे तुम्हारे। अब तो खुश हो।

बड़े ठाकुर ने बीवी की जबान पकड़ी—क्यों आधे ले लेंगे ? मैं एक धेला भी न दूँगा। हम मुरौवत और सहृदयता से काम लें, फिर भी उन्हें पाँचवें हिस्से से ज्यादा किसी तरह न मिलेगा। आधे का दावा किस नियम मे हो सकता है ?—न बौद्धिक, न धार्मिक, न नैतिक।

छोटे ठाकुर ने खिसियाकर कहा—सारी दुनिया का कानून आप ही तो जानते हैं।

'जानते ही हैं, तीस साल तक वकालत नहीं की है ?'

'यह वकालत निकल जायगी, जब सामने कलकत्ते का बैरिस्टर खड़ा कर दूँगा।'

'बैरिस्टर की ऐसी-तैसी, चाहे वह कलकत्ते का हो या लन्दन का !'

'मैं आधा लूँगा, उसी तरह जैसे घर की जायदाद में मेरा आधा है।'

इतने में विक्रम के बड़े भाई साहब सिर और हाथ में पट्टी बाँधे, लँगड़ाते हुए, कपड़ों पर ताजा खून के दाग लगाये, प्रसन्न-मुख आकर एक आरामकुर्सी पर गिर पड़े। बड़े ठाकुर ने घबड़ाकर पूछा—यह तुम्हारी क्या हालत है जी ? ऐं, यह चोट कैसे लगी ? किसी से मार-पीट तो नहीं हो गयी ?

प्रकाश ने कुर्सी पर लेटकर एक बार कराहा, फिर मुस्कराकर बोले—जी, कोई बात नहीं, ऐसी कुछ बहुत चोट नहीं लगी।

'कैसे कहते हो कि चोट नहीं लगी ? सारा हाथ और सिर सूज गया है। कपड़े खून से तर। यह मुआमला क्या है ? कोई मोटर दुर्घटना तो नहीं हो गयी ?'

'बहुत मामूली चोट है साहब, दो-चार दिन में अच्छी हो जायगी। घबराने की कोई बात नहीं।'

प्रकाश के मुख पर आशापूर्ण, शान्त मुस्कान थी। क्रोध, लज्जा या प्रतिशोध की भावना का नाम भी न था।

बड़े ठाकुर ने और व्यग्र होकर पूछा—लेकिन हुआ क्या, यह क्यों नहीं बतलाते ? किसी से मार-पीट हुई हो तो थाने में रपट करवा दूँ।

प्रकाश ने हलके मन से कहा—मार-पीट किसी से नहीं हुई साहब। बात यह है कि मैं जरा झक्कड़ बाबा के पास चला गया था। आप तो जानते हैं, वह आदमियों की सूरत से भागते हैं और पत्थर लेकर मारने दौड़ते हैं। जो डरकर भागा, वह गया। जो पत्थर की चोटें खाकर भी उनके पीछे लगा रहा, वह पारस हो गया। वह यही परीक्षा लेते हैं। आज मैं वहाँ पहुँचा, तो कोई पचास आदमी जमा थे, कोई मिठाई लिये, कोई बहुमूल्य भेंट लिये, कोई कपड़ों के थान लिये। झक्कड़ बाबा ध्यानावस्था में बैठे हुए थे। एकाएक उन्होंने आँखें खोलीं और यह जन-समूह देखा, तो कई पत्थर चुनकर उनके पीछे दौड़े। फिर क्या था, भगदड़ मच गयी। लोग गिरते-पड़ते भागे। हुर्र हो गये। एक भी न टिका। अकेला मैं

घंटेघर की तरह वहीं डटा रहा। बस उन्होंने पत्थर चला ही तो दिया। पहला निशाना सिर में लगा। उनका निशाना अचूक पड़ता है। खोपड़ी भन्ना गयी, खून की धारा बह चली; लेकिन मैं हिला नहीं। फिर बाबाजी ने दूसरा पत्थर फेंका। वह हाथ में लगा। मैं गिर पड़ा और बेहोश हो गया। जब होश आया, तो वहाँ सन्नाटा था। बाबाजी भी गायब हो गये थे। अन्तर्धान हो जाया करते हैं। किसे पुकारूँ, किससे सवारी लाने को कहूँ ? मारे दर्द के हाथ फटा पड़ता था और सिर से अभी तक खून जारी था। किसी तरह उठा और सीधा डॉक्टर के पास गया। उन्होंने देखकर कहा—हड्डी टूट गयी है और पट्टी बाँध दी; गर्म पानी से सेंकने को कहा है। शाम को फिर आयेंगे, मगर चोट लगी तो लगी; अब लॉटरी मेरे नाम आयी धरी है। यह निश्चय है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि झक्कड़ बाबा की मार खाकर कोई नामुराद रह गया हो। मैं तो सबसे पहले बाबा की कुटी बनवा दूँगा।

बड़े ठाकुर साहब के मुख पर संतोष की झलक दिखायी दी। फौरन पलंग बिछ गया। प्रकाश उस पर लेटे। ठकुराइन पंखा झलने लगीं, उनका भी मुख प्रसन्न था। इतनी चोट खाकर दस लाख पा जाना कोई बुरा सौदा न था।

छोटे ठाकुर साहब के पेट में चूहे दौड़ रहे थे। ज्योंही बड़े ठाकुर भोजन करने गये और ठकुराइन भी प्रकाश के लिए भोजन का प्रबन्ध करने गयीं, त्योंही छोटे ठाकुर ने प्रकाश से पूछा—क्या बहुत जोर से पत्थर मारते हैं ? जोर से तो क्या मारते होंगे !

प्रकाश ने उनका आशय समझकर कहा—अरे साहब, पत्थर नहीं मारते, बमगोले मारते हैं। देव-सा तो डील-डौल है और बलवान् इतने हैं कि एक घूँसे में शेरों का काम तमाम कर देते हैं। कोई ऐसा-वैसा आदमी हो, तो एक ही पत्थर में टें हो जाय। कितने ही तो मर गये; मगर आज तक झक्कड़ बाबा पर मुकदमा नहीं चला। और दो-चार पत्थर मारकर ही नहीं रह जाते, जब तक आप गिर न पड़ें और बेहोश न हो जायँ, वह मारते ही जायँगे; मगर रहस्य यही है कि आप जितने ज्यादा चोटें खायेंगे, उतने ही अपने उद्देश्य के निकट पहुँचेंगे।...

प्रकाश ने ऐसा रोएँ खड़े कर देने वाला चित्र खींचा कि छोटे ठाकुर साहब थर्रा उठे। पत्थर खाने ही हिम्मत न पड़ी।

4

आखिर भाग्य के निपटारे का दिन आया—जुलाई की बीसवीं तारीख कत्ल की रात ! हम प्रातःकाल उठे, तो जैसे एक नशा चढ़ा हुआ था, आशा और भय के द्वन्द्व का। दोनों ठाकुरों ने घड़ी रात रहे गंगा-स्नान किया था और मन्दिर में बैठे पूजन कर रहे थे। आज मेरे मन में श्रद्धा जागी। मन्दिर में जाकर मन-ही-मन ठाकुरजी की स्तुति करने लगा—अनाथों के नाथ, तुम्हारी कृपादृष्टि क्या हमारे ऊपर न होगी ? तुम्हें क्या मालूम नहीं, हमसे ज्यादा तुम्हारी दया कौन डिज़र्ब (deserve) करता है ? विक्रम सूट-बूट पहने मन्दिर के द्वार पर आया, मुझे इशारे से बुलाकर इतना कहा—मैं डाकखाने जाता हूँ और हवा हो गया। जरा देर में प्रकाश मिठाई के थाल लिए हुए घर में से निकले और मन्दिर के द्वार पर खड़े होकर कंगालों को बाँटने लगे, जिनकी एक भीड़ जमा हो गयी थी। और दोनों ठाकुर भगवान् के चरणों में लौ लगाये हुए थे, सिर झुकाते, आँखें बन्द किये हुए, अनुराग में डूबे हुए।

बड़े ठाकुर ने सिर उठाकर पुजारी की ओर देखा और बोले—भगवान् तो बड़े भक्त-वत्सल हैं, क्यों पुजारी जी ?

पुजारीजी ने समर्थन किया—हाँ सरकार, भक्तों की रक्षा के लिए तो भगवान् क्षीरसागर से दौड़े और गज को ग्राह के मुँह से बचाया।

एक क्षण के बाद छोटे ठाकुर साहब ने सिर उठाया और पुजारीजी से बोले—क्यों पुजारीजी, भगवान् तो सर्व-शक्तिमान् हैं, अन्तर्यामी, सबके दिल का हाल जानते हैं।

पुजारी ने समर्थन किया—हाँ सरकार, अन्तर्यामी न होते तो सबके मन की बात कैसे जान जाते ? शबरी का प्रेम देखकर स्वयं उसकी मनोकामना पूरी की।

पूजन समाप्त हुआ। आरती हुई। दोनों भाइयों ने आज ऊँचे स्वर से आरती गायी और बड़े ठाकुर ने दो रुपये थाल में डाले। छोटे ठाकुर ने चार रुपये डाले। बड़े ठाकुर ने एक बार कोप-दृष्टि-से देखा और मुँह फेर लिया।

सहसा बड़े ठाकुर ने पुजारी से पूछा—तुम्हारा मन क्या कहता है पुजारीजी ?

पुजारी बोला—सरकार की फते है।

छोटे ठाकुर ने पूछा—और मेरी ?

पुजारी ने उसी मुस्तैदी से कहा—आप की भी फते है।

बड़े ठाकुर श्रद्धा से डूबे भजन गाते हुए मन्दिर से निकले—

'प्रभुजी, मैं तो आयो सरन तिहारे, हाँ प्रभु जी !'

एक मिनट में छोटे ठाकुर साहब भी मन्दिर से गाते हुए निकले—

'अब पत राखो मोरे दयानिधान तोरी गति लखि ना परे !'

मैं भी पीछे निकला और जाकर मिठाई बाँटने में प्रकाश बाबू की मदद करना चाहा; उन्होंने थाल हटाकर कहा—आप रहने दीजिए, मैं अभी बाँटे डालता हूँ। अब रह ही कितनी गयी है ?

मैं खिसियाकर डाकखाने की तरफ चला कि विक्रम मुस्कराता हुआ साइकिल पर आ पहुँचा। उसे देखते ही सभी जैसे पागल हो गये। दोनों ठाकुर साम्ने ही खड़े थे। दोनों बाज की तरह झपटे। प्रकाश के थाल में थोड़ी-सी मिठाई बच रही थी। उसने थाल जमीन पर पटका और दौड़ा। और मैंने तो उस उन्माद में विक्रम को गोद म उठा लिया; मगर कोई उससे कुछ पूछता नहीं, सभी जय-जयकार की हाँक लगा रहे हैं।

बड़े ठाकुर ने आकाश की ओर देखा—बोलो राजा रामचन्द्र की जय !

छोटे ठाकुर ने छलाँग मारी—बोलो हनुमानजी की जय !

प्रकाश तालियाँ बजाता हुआ चीखा—दुहाई झक्कड़ बाबा की !

विक्रम ने और जोर से कहकहा मारा और फिर अलग खड़ा होकर बोला जिसका नाम आया है, उससे एक लाख लूँगा ! बोलो, है मंजूर ?

बड़े ठाकुर ने उसका हाथ पकड़ा—पहले बता तो !

'ना ! यों नहीं बताता।'

'छोटे ठाकुर बिगड़े....महज बताने के लिए एक लाख ? शाबाश !

प्रकाश ने भी त्योरी चढ़ायी—क्या डाकखाना हमने देखा नहीं है ?

'अच्छा, तो अपना-अपना नाम सुनने के लिए तैयार हो जाओ।'

सभी लोग फौजी-अटेंशन की दशा में निश्चल खड़े हो गये।

'होश-हवाश ठीक रखना !'

सभी पूर्ण सचेत हो गये।

'अच्छा, तो सुनिए कान खोलकर इस शहर का सफाया है। इस शहर का ही नहीं, सम्पूर्ण भारत का सफाया है। अमेरिका के एक हब्शी का नाम आ गया।'

बड़े ठाकुर झल्लाये—झूठ-झूठ, बिल्कुल झूठ !

छोटे ठाकुर ने पैंतरा बदला—कभी नहीं। तीन महीने की तपस्या योंही रही ? वाह ?

प्रकाश ने छाती ठोंक कर कहा—यहाँ सिर मुड़वाये और हाथ तुड़वाये बैठे हैं, दिल्लगी है !

इतने में और पचासों आदमी उधर से रोनी सूरत लिये निकले। ये बेचारे भी डाकखाने से अपनी किस्मत को रोते चले आ रहे थे। मार ले गया, अमेरिका का हब्शी ! अभागा ! पिशाच ! दुष्ट !

अब कैसे किसी को विश्वास न आता ? बड़े ठाकुर झल्लाये हुए मन्दिर में गये और पुजारी को डिसमिस कर दिया—इसीलिए तुम्हें इतने दिनों से पाल रखा है। हराम का माल खाते हो और चैन करते हो।

छोटे ठाकुर साहब की तो जैसे कमर टूट गयी। दो-तीन बार सिर पीटा और वहीं बैठ गये; मगर प्रकाश के क्रोध का पारावार न था। उसने अपना मोटा-सोटा लिया और झक्कड़ बाबा की मरम्मत करने चला।

माताजी ने केवल इतना कहा—सभी ने बेईमानी की है। मैं कभी मानने की नहीं। हमारे देवता क्या करें ? किसी के हाथ से थोड़े ही छीन लायेंगे ?

रात को किसी ने खाना नहीं खाया। मैं भी उदास बैठा हुआ था कि विक्रम आकर बोला—चलो, होटल से कुछ खा आयें। घर में तो चूल्हा नहीं जला।

मैंने पूछा—तुम डाकखाने से आये, तो बहुत प्रसन्न क्यों थे।

उसने कहा—जब मैंने डाकखाने के सामने हजारों की भीड़ देखी, तो मुझे अपने लोगों के गधेपन पर हँसी आयी। एक शहर में जब इतने आदमी हैं, तो सारे हिन्दुस्तान में इसके हजार गुने से कम न होंगे। और दुनिया में तो लाख गुने से भी ज्यादा हो जायँगे। मैंने आशा का जो एक पर्वत-सा खड़ा कर रखा था, वह जैसे एकबारगी इतना छोटा हुआ कि राई बन गया, और मुझे हँसी आयी। जैसे कोई दानी पुरुष छटाँक-भर अन्न हाथ में लेकर एक लाख आदमियों को नेवता दे बैठे—और यहाँ हमारे घर का एक-एक आदमी समझ रहा है कि....

मैं भी हँसा—हाँ, बात तो यथार्थ में यही है और हम दोनों लिखा-पढ़ी के लिए लड़े मरते थे; मगर सच बताना, तुम्हारी नीयत खराब हुई थी कि नहीं ?

विक्रम—मुस्कराकर बोला—अब क्या करोगे पूछ कर ? परदा ढका रहने दो।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अक्टूबर, 1935 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'जादे राह' (उर्दू कहानी-संग्रह) में संकलित।]

कफ़न

झोंपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव-वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह-रहकर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज़ निकलती थी, कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई, सारा गाँव अन्धकार में लय हो गया था।

घीस ने कहा—मालूम होता है, बचेगी नही। सारा दिन दौड़ते हुए हो गया, जा देख तो आ।

माधव चिढ़कर बोला—मरना ही है तो ज़ल्दी मर क्यों नहीं जाती ? देखकर क्या करूँ?

'तू बड़ा बेदर्द है बे ! साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई !'

'तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना नहीं देखा जाता।'

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना काम-चोर था कि आध घण्टे काम करता तो घंटे-भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी-भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी। जब दो-चार फाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव बाजार में बेच आता। और जब तक वह पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थ। मगर इन दोनों को उसी वक्त बुलाते, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए, संयम और नियम की बिलकुल जरूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका ! घर में मिट्टी के दो-चार बर्तन के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जिये जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त ! कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई भी गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिलकुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज दे देते थे। मटर, आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भानकर खा लेते या दस-पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाश-वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी खेत से खोद लाये थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए, देहान्त हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जब से यह औरत आई थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी और इन दोनों बे-गैरतों का दोजख भरती रहती थी। जब से वह आई, यह दोनों और भी आरामतलब हो गये थे। बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निर्ब्याज भाव से दुगनी मजदूरी माँगते। वही औरत आज

प्रसव-वेदना से मर रही थी और यह दोनों शायद इसी इन्तजार में थे कि वह मर जाय, तो आराम से सोयें।

घीसू ने आलू निकालकर छीलते हुए कहा—जाकर देख तो, क्या दशा है उसकी ? चुड़ैल का फिसाद होगा, और क्या ? यहाँ तो ओझा भी एक रुपया माँगता है !

माधव को भय था, कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा। बोला—मुझे वहाँ जाते डर लगता है।

'डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही।'

'तो तुम्हीं जाकर देखो न ?'

'मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं; और फिर मुझसे लजायेगी कि नहीं ? जिसका कभी मुँह नहीं देखा; आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखूँ ! उसे तन की सुध भी तो न होगी ? मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ-पाँव भी न पटक सकेगी !'

'मैं सोचता हूँ कोई बाल-बच्चा हुआ, तो क्या होगा ? सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी, तो नहीं है घर में !'

'सब कुछ आ जायगा। भगवान् दें तो ! जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था; मगर भगवान् ने किसी-न-किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।'

जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और सिकानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान् था और किसानों के विचार-शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी, कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की-सी जाँ-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती, और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा तो नहीं उठाते ! दोनों आलू निकाल-निकालकर जलते-जलते खाने लगे। कल से कुछ नहीं खाया था। इतना सब्र न था कि उन्हें ठण्डा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें जल गईं। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा कुछ ज्यादा गर्म न मालूम होता; लेकिन दाँतों के तले पड़ते ही अन्दर का हिस्सा जबान, हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे को मुँह में रखने से ज्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाय। वहाँ उसे ठण्डा करने के लिए काफी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द-जल्द निगल जाते। हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते।

घीसू को उस वक्त ठाकुर की बारात याद आई, जिसमें बीस साल पहले वह गया था। उस दावत में उसे जो तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में एक याद रखने लायक बात थी, और आज भी उसकी याद ताजी थी। बोला—वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस

तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सबको भरपेट पूड़ियाँ खिलाई थीं, सबको ! छोटे-बड़े सबने पूड़ियाँ खाई और असली घी की ! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई, अब क्या बताऊँ कि उस भोज में क्या स्वाद मिला, कोई रोक-टोक नहीं थी, जो चीज चाहो, माँगो, जितना चाहो, खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, कि किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि पत्तल में गर्म-गर्म गोल-गोल सुवासित कचौड़ियाँ डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिये, पत्तल पर हाथ से रोके हुए हैं, मगर वह हैं कि दिये जाते हैं। और जब सबने मुँह धो लिया, तो पान-इलायची भी मिली। मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी ? खड़ा हुआ न जाता था। चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दिल-दरियाव था वह ठाकुर!

माधव ने इन पदार्थों का मन-ही-मन मजा लेते हुए कहा—अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।

'अब कोई क्या खिलायेगा ? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूचती है। सादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो। पूछो, गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहाँ रखोगे ? बटोरने में तो कमी नहीं है। हां, खर्च में किफायत सूझती है।'

'तुमने एक बीस पूरियाँ खाई होंगी ?'

'बीस से ज्यादा खाई थीं !'

'मैं पचास खा जाता !'

'पचास से कम मैंने न खाई होंगी। अच्छा पट्ठा था। तू तो मेरा आधा भी नहीं है।'

आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर पाँव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अजगर गेंडुलिया मारे पड़े हों।

और बुधिया अभी तक कराह रही थी।

2

सबेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा, तो उसकी स्त्री ठण्डी हो गई थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारी देह धूल से लथपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनों जोर-जोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। पड़ोस वालों ने यह रोना-धोना सुना, तो दौड़े हुए आये और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफ़न की और लकड़ी की फिक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोंसले में माँस ?

बाप-बेटे रोते हुए गाँव के जमींदार के पास गये। वह इन दोनों की सूरत से नफ़रत करते थे। कई बार उन्हें अपने हाथों से पीट चुके थे। चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए। पूछा—क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है ? अब तो तू कहीं दिखलाई भी

नहीं देता ! मालूम होता है, इस गाँव में रहना नहीं चाहता।

घीसू ने जमीन पर सिर रखकर आँखों में आँसू भरे हुए कहा—सरकार ! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुजर गई। रात-भर तड़पती रही सरकार ! हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मुदा वह हमें दगा दे गई। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक ! तबाह हो गये। घर उज़ड़ गया। आपका गुलाम हूँ, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगायेगा। हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब तो दवा-दारू में उठ गया। सरकार ही की दया होगी तो उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किसके द्वार पर जाऊँ।

जमींदार साहब दयालु थे। मगर घीसू पर दया करना काले कम्बल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया, कह दें, चल, दूर हो यहाँ से। यों तो बुलाने से भी नहीं आता, आज जब गरज़ पड़ी तो आकर खुशामद कर रहा है। हरामखोर कहीं का, बदमाश ! लेकिन यह क्रोध या दण्ड का अवसर न था। जी में कुढ़ते हुए दो रुपये निकालकर फेंक दिये। मगर सान्त्वना का एक शब्द भी मुँह से न निकला। उसकी तरफ़ ताका तक नहीं। जैसे सिर का बोझ उतारा हो।

अब ज़मींदार साहब ने दो रुपये दिये, तो गाँव के बनिये-महाजनों को इनकार का साहस कैसे होता ? घीसू ज़मींदार के नाम का ढिंढोरा भी पीटना जानता था। किसी ने दो आने दिये, किसी ने चार आने। एक घंटे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रकम जमा हो गई। कहीं से नाज मिल गया, कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू और माधव बाज़ार से कफ़न लाने चले। इधर लोग बाँस-वाँस काटने लगे।

गाँव की नर्म दिल स्त्रियाँ आ-आकर लाश देखती थीं और उसकी बेकसी पर दो बूँद आँसू गिराकर चली जाती थीं।

3

बाजार में पहुँचकर घीसू बोला—लकड़ी तो उसे जलाने-भर को मिल गई है, क्यों माधव!

माधव बोला—हाँ, लकड़ी तो बहुत है, अब कफ़न चाहिए।

'तो चलो, कोई हलका-सा कफ़न ले लें।'

'हाँ, और क्या ! लाश उठते-उठते रात हो जायगी। रात को कफ़न कौन देखता है ?'

'कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।'

'कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है।'

'और क्या रखा रहता है ? यही पाँच रुपये पहले मिलते, तो कुछ दवा-दारू कर लेते।'

दोनों एक दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बज़ाज की दूकान पर गये, कभी उसकी दूकान पर ! तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गई। तब दोनों न-जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुँचे। और जैसे किसी पूर्व-निश्चित व्यवस्था से

अन्दर चले गये। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा—साहुजी, एक बोतल हमें भी देना।

उसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछली आई और दोनों बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गये।

घीसू बोला—कफ़न लगाने से क्या मिलता ? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानो देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो—दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बाँभनों को हजारों रुपये क्यों दे देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं !

'बड़े आदमियों के पास धन है, फूँके। हमारे पास फूँकने को क्या है ?'

'लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे ? लोग पूछेंगे नहीं, कफ़न कहाँ है ?'

घीसू हँसा—अबे, कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गये। बहुत ढूँढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास न आयेगा, लेकिन फिर वही रुपये देंगे।

माधव भी हँसा—इस अनपेक्षित सौभाग्य पर। बोला--बड़ी अच्छी थी बेचारी ! मरी तो खूब खिला-पिलाकर !

आधी बोतल से ज़्यादा उड़ गई। घीसू ने दो सेर पूड़ियाँ मँगाई। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबखाने के सामने ही दूकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारे सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया खर्च हो गया। सिर्फ थोड़े से पैसे बच रहे।

दोनों इस वक्त इस शान में बैठे पूड़ियाँ खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ़ था, न बदनामी की फ़िक्र। इन सब भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला—हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्न न होगा ?

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक़ की—ज़रूर-से-ज़रूर होगा। भगवान्, तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वह कभी उम्रभर न मिला था।

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी। बोला—क्यो दादा, हम लोग भी एक-न-एक दिन वहाँ जाएँगे ही ?

घीसू ने इस भोले-भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

'जो वहाँ हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफ़न क्यों नहीं दिया तो क्या कहोगे ?'

'कहेंगे तुम्हारा सिर !'

'पूछेगी तो ज़रूर !'

तू कैसे जानता है कि उसे कफ़न न मिलेगा ? तू मुझे ऐसा गधा समझता है ? साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ ? उसको कफ़न मिलेगा और बहुत अच्छा मिलेगा!'

माधव को विश्वास न आया। बोला—कौन देगा ? रुपये तो तुमने चट कर दिये। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी माँग में सेंदुर मैंने डाला था।

घीसू गर्म होकर बोला—मैं कहता हूँ, उसे कफ़न मिलेगा, तू मानता क्यों नहीं ?

'कौन देगा, बताते क्यों नहीं ?'

'वही लोग देंगे, जिन्होंने अबकी दिया। हाँ, अबकी रुपये हमारे हाथ न आयेंगे।'

ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था।

वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए वह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं। या न जीते हैं, न मरते हैं।

और यह दोनों बाप-बेटे अब भी मजे ले-लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहें इनकी ओर जमी हुई थीं। दोनों कितने भाग्य के बली हैं ! पूरी बोतल बीच में है।

भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूड़ियों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और देने के गौरव, आनन्द और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा—ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे ! जिसकी कमाई है, वह तो मर गई। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुँचेगा। रोयें-रोयें से आशीर्वाद दो, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं !

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा—वह बैकुण्ठ में जायगी दादा, बैकुण्ठ की रानी बनेगी।

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला—हाँ, बेटा बैकुण्ठ में जायगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुण्ठ में जायगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं ?

श्रद्धालुता का यह रंग तुरन्त ही बदल गया। अस्थिरता नशे की खासियत है। दुःख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला—मगर दाद, बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दुःख भोगा। कितना दुःख झेलकर मरी !

वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा, चीखें मार-मारकर।

घीसू ने समझाया—क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गई, जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया-मोह के बन्धन तोड़ दिये।

और दोनों खड़े होकर गाने लगे—

'ठगिनी क्यों नैना झमकावे ! ठगिनी।

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और यह दोनों अपने दिल में मस्त

गाये जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बताये, अभिनय भी किये। और आखिर नशे से मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू में। उर्दू मासिक पत्रिका 'जामिया', दिसम्बर, 1935 में प्रकाशित। उर्दू में असंकलित। हिन्दी रूप 'कफन' शीर्षक से 'चांद', अप्रैल, 1936 में प्रकाशित। कहानी-संग्रह 'कफन और शेष रचनाएं' (संकलन—श्रीपतराय, प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण—मार्च, 1937) में संकलित। बाद में हंस प्रकाशन, इलाहाबाद से यह पुस्तक 'कफन' शीर्षक से प्रकाशित हुई, जिसका प्रथम संस्करण अज्ञात है।]

दो बहनें

दोनों बहनें दो साल के बाद एक तीसरे नातेदार के घर मिलीं और खूब रो-धोकर खुश हुई तो बड़ी बहन रूपकुमारी ने देखा कि छोटी बहन रामदुलारी सिर से पांव तक गहनों से लदी हुई है, कुछ उसका रंग खुल गया है, स्वभाव में कुछ गरिमा आ गई है और बातचीत करने में ज्यादा चतुर हो गई है। कीमती बनारसी साड़ी और बेलदार उन्नावी मखमल के जम्पर ने उसक रूप को और भी चमका दिया—वही रामदुलारी, लड़कपन में सिर के बाल खोले, फूहड़-सी इधर-उधर खेला करती थी। अन्तिम बार रूपकुमारी ने उसे उसके विवाह में देखा था, दो साल पहले। तब भी उसकी शक्ल-सूरत में कुछ ज्यादा अन्तर न हुआ था। लम्बी तो हो गई थी, मगर थी उतनी ही दुबली, उतनी ही फूहड़, उतनी ही मंदबुद्धि। जरा-जरा सी बात पर रूठने वाली, मगर आज तो कुछ हालत ही और थी, जैसे कली खिल गई हो और यह रूप इसने छिपा कहाँ रखा था ? नहीं, आँखों को धोखा हो रहा है। यह रूप नहीं केवल आँखों को लुभाने की शक्ति है, रेशम और मखमल और सोने के बल पर वह रूपरेखा थोड़े ही बदल जायेगी। फिर भी. आँखों में समाई जाती है। पच्चासों स्त्रियाँ जमा हैं, मगर यह आकर्षण, यह जादू और किसी में नहीं।

कहीं आईना मिलता तो वह जरा अपनी सूरत भी देखती। घर से चलते समय उसने आईना देखा था। अपने रूप को चमकाने के लिए जिनता सान चढ़ा सकती थी, उससे कुछ अधिक ही चढ़ाया था। लेकिन अब वह सूरत जैसे स्मृति से मिट गई है, उसकी धुँधली-सी परछाहीं भर हृदय-पट पर है। उसे फिर से देखने के लिए वह बेकरार हो रही है। वह अब तुलनात्मक दृष्टि से देखेगी, रामदुलारी में यह आकर्षण कहाँ से आया, इस रहस्य का पता लगायेगी। यों उसके पास मेकअप की सामग्रियों के साथ छोटा-सा आईना भी है, लेकिन भीड़-भाड़ में वह आईना देखने या बनाव-सिंगार करने की आदी नहीं है। ये औरतें दिल में न जाने क्या समझें। मगर यहाँ कोई आईना तो होगा ही। ड्राइंग-रूम में जरूर ही होगा। वह उठकर ड्राइंग-रूम में गई और कद्देआदम शीशे में अपनी सूरत देखी। वहाँ इस वक्त और कोई न था। मर्द बाहर सहन में थे, औरतें गाने-बजाने में लगी हुई थीं। उसने आलोचनात्मक दृष्टि से एक-एक अंग का, अंगों के एक-एक विन्यास को देखा। उसका अंग-विन्यास, उसकी मुखछवि निष्कलंक है। मगर वह ताजगी, वह मादकता, वह माधुर्य

नहीं है। हाँ, नहीं है। वह अपने को धोखे में नहीं डाल सकती। कारण क्या है ? यही कि रामदुलारी आज खिली है, उसे खिले जमाना हो गया। लेकिन इस ख्याल से उसका चित्त शान्त नहीं होता। वह रामदुलारी से हेठी बन कर नहीं रह सकती। ये पुरुष भी कितने गावदी होते हैं। किसी में भी सच्चे सौंदर्य की परख नहीं। इन्हें तो जवानी और चंचलता और हाव-भाव चाहिये। आँखें रखकर भी अन्धे बनते हैं। भला इन बातों का आपसे क्या सम्बन्ध ! ये तो उम्र के तमाशे हैं। असली रूप तो वह है, जो समय की परवाह न करे। उसके कपड़ों में रामदुलारी को खड़ा कर दो, फिर देखो, यह सारा जादू कहाँ उड़ जाता है। चुड़ैल-सी नजर आये। मगर इन अन्धों को कौन समझाये। मगर रामदुलारी के घरवाले तो इतने सम्पन्न न थे। विवाह में जो जोड़े और गहने आये थे, वे तो बहुत ही निराशाजनक थे। खुशहाली का दूसरा कोई सामान भी न था। इसके ससुर एक रियासत के मुख्तारआम थे, और दूल्हा कालेज में पढ़ता था। इन दो साल में कहाँ से यह हुन बरस गया। कौन जाने, गहने कहीं से माँग लाई हो। कपड़े भी माँगे के हो सकते हैं। कुछ औरतों को अपनी हैसियत बढ़ाकर दिखाने की लत होती है। तो वह स्वाँग रामदुलारी को मुबारक रहे। मैं जैसी हूँ, वैसी अच्छी हूँ। प्रदर्शन का यह रोग कितना बढ़ता जाता है। घर में रोटियों का ठिकाना नहीं है, मर्द पच्चीस-तीस रुपये पर क़लम घिस रहा है; लेकिन देवीजी घर से निकलेंगी तो इस तरह बन-ठन कर, मानो कहीं की राजकुमारी हैं। बिसातियों के और दरजियों के तकाजे सहेंगी, बजाज के सामने हाथ जोड़ेंगी, शौहर की घुड़कियाँ खायेंगी, रोयेंगी, रूठेंगी, मगर प्रदर्शन के उन्माद को नहीं रोकतीं। घरवाले भी सोचते होंगे, कितनी छिछोरी तबियत है इसकी ! मगर यहाँ तो देवीजी ने बेहयाई पर कमर बाँध ली है। कोई कितना ही हँसे, बेहया की बला दूर। उन्हें तो बस यही धुन सवार है कि जिधर से निकल जायँ, उधर लोग हृदय पर हाथ रखकर रह जायँ। रामदुलारी ने जरूर किसी से गहने और जेवर माँग लिये बेशर्म जो है !

उसके चेहरे पर आत्म-सम्मान की लाली दौड़ गई। न सही उसके पास जेवर और कपड़े। उसे किसी के सामने लज्जित तो नहीं होना पड़ता ! किसी से मुँह तो नहीं चुराना पड़ता। एक-एक लाख के तो उसके दो लड़के हैं। भगवान् उन्हें चिरायु करे, वह इसी में खुश है। खुद अच्छा पहन लेने और अच्छा खा लेने से तो जीवन का उद्देश्य नहीं पूरा हो जाता। उसके घरवाले ग़रीब हैं, पर उनकी इज्जत तो है, किसी का गला तो नहीं दबाते, किसी का शाप तो नहीं लेते !

इस तरह अपने मन को ढाढ़स देकर वह फिर बरामदे में आई, तो रामदुलारी ने जैसे उसे दया की आँखों से देखकर कहा—जीजाजी की कुछ तरक्की-वरक्की हुई कि नहीं बहन? या अभी तक वही पिचत्तर रुपये पर क़लम घिस रहे हैं ?

रूपकुमारी की देह में आग-सी लग गई। ओफ्फोह रे दिमाग़ ! मानो इसका पति लाट ही तो है। अकड़कर बोली—तरक्की क्यों नहीं हुई। अब सौ के ग्रेड में हैं। आजकल यह भी ग़नीमत है, नहीं, अच्छे-अच्छे एम. ए. पासों को देखती हूँ कि कोई टके को नहीं पूछता। तेरा शौहर तो अब बी. ए. में होगा ?

रामदुलारी ने नाक सिकोड़कर कहा—उन्होंने तो पढ़ना छोड़ दिया बहन, पढ़कर औकात खराब करना था और क्या। एक कम्पनी के एजेंट हो गये हैं। अब ढाई सौ रुपये

माहवार पाते हैं। कमीशन ऊपर से। पाँच रुपये रोज सफर-खर्च के भी मिलते हैं। यह समझ लो कि पाँच सौ का औसत पड़ जाता है। डेढ़ सौ माहवार तो उनका निज का खर्च है बहन ! ऊँचे ओहदे के लिए अच्छी हैसियत भी तो चाहिए। साढ़े तीन सौ बेदाग़ घर दे देते हैं। उसमें से सौ रुपये मुझे मिलते हैं, ढाई सौ में घर का खर्च खुशफैली से चल जाता है। एम. ए. पास करके क्या करते !

रूमकुमारी इस कथन को शेखचिल्ली की दास्तान से ज्यादा महत्त्व नहीं देना चाहती, मगर रामदुलारी के लहजे में इतनी विश्वासोत्पादकता है कि वह अपनी निम्नचेतना में उससे प्रभावित हो रही है और उसके मुख पर पराजय की खिन्नता साफ झलक रही है। मगर यदि उसे बिलकुल पागल नहीं हो जाना है तो इस ज्वाला को हृदय से निकाल देना पड़ेगा। जिरह करके अपने मन को विश्वास दिलाना पड़ेगा कि इसके काव्य में एक चौथाई से ज्यादा सत्य नहीं है। एक चौथाई तक वह सह सकती है। इससे ज्यादा उससे न सहा जायगा। इसके साथ ही उसके दिल में धड़कन भी है कि कहीं यह कथा सत्य निकली तो वह रामदुलारी को कैसे मुँह दिखायेगी। उसे भय है कि कहीं उसकी आँखों से आँसू न निकल पड़ें। कहाँ पछत्तर और कहाँ पाँच सौ ! इतनी बड़ी रकम आत्मा की हत्या करके भी क्यों न मिले, फिर भी रूपकुमारी के लिए असह्य है। आत्मा का मूल्य अधिक से अधिक सौ रुपये हो सकता है। पाँच सौ किसी हालत में भी नहीं।

उसने परिहास के भाव से पूछा—जब एजेंटी में इतना वेतन और भत्ता मिलता है तो ये सारे कालेज बन्द क्यों नहीं हो जाते ? हजारों लड़के क्यों अपनी जिन्दगी खराब करते हैं ?

रामदुलारी बहन के खिसियानेपन का आनन्द उठाती हुई बोली—बहन, तुम यहाँ भूल कर रही हो। एम. ए. तो सभी पास हो सकते हैं, मगर एजेंटी बिरले ही किसी को आती है। यह तो ईश्वर की देन है। कोई जिन्दगी-भर पढ़ता रहे, मगर यह जरूरी नहीं कि वह अच्छा एजेंट भी हो जाय। रुपये पैदा करना दूसरी बात है। आलिम-फ़ाज़िल हो जाना दूसरी बात। अपने माल की श्रेष्ठता का विश्वास पैदा कर देना, यह दिल में जमा देना कि इससे सस्ता और टिकाऊ माल बाजार में मिल ही नहीं सकता, आसान काम नहीं है। एक-से-एक घाघों से उनका साबका पड़ता है। बड़े-बड़े राजाओं और रईसों का मत फेरना पड़ता है, तब जाके कहीं माल बिकता है। मामूली आदमी तो राजाओं और नवाबों के सामने जा ही न सके। पहुँच ही न हो। और किसी तरह पहुँच भी जाय तो ज़बान न खुले। पहले-पहल तो इन्हें भी झिझक हुई थी, मगर अब तो इस सागर के मगर हैं। अगले साल तरक्की होने वाली है।

रूपकुमारी की धमनियों में रक्त की गति जैसे बन्द हुई जा रही है। निर्दयी आकाश गिर क्यों नहीं पड़ता ! पाषाण-हृदया धरती फट क्यों नहीं जाती ! यह कहाँ का न्याय है कि रूपकुमारी जो रूपवती है, तमीजदार है, सुघड़ है, पति पर जान देती है, बच्चों को प्राणों से ज्यादा चाहती है, थोड़े में गृहस्थी को इतने अच्छे ढंग से चलाती है, उसकी तो यह दुर्गति, और यह घमंडिन, बदतमीज, विलासिनी, चंचल, मुँहफट छोकरी, जो अभी तक सिर खोले घूमा करती थी, रानी बन जाय ? मगर उसे अब भी कुछ आशा बाकी थी। शायद आगे चलकर उसके चित्त की शांति का कोई मार्ग निकल आये।

उसी परिहास के स्वर में बोली—तब तो शायद एक हजार मिलने लगें ?

'एक हजार तो नहीं, पर छः सौ में संदेह नहीं।'

'कोई आँखों का अंधा मालिक फँस गया होगा ?'

'व्यापारी आँखों के अंधे नहीं होते दीदी ! उनकी आँखें हमारी-तुम्हारी आँखों से कहीं तेज होती हैं। जब तुम उन्हें छः हजार कमाकर दो, तब कहीं छः सौ मिलें। जो सारी दुनिया को चराये उसे कौन बेवकूफ बनायेगा।'

परिहास से काम न चलते देखकर रूमकुमारी ने अपमान का अस्त्र निकाला—मैं तो इसे कोई बहुत अच्छा पेशा नहीं समझती। सारे दिन झूठ के तूमार बाँधो। यह तो ठग-विद्या है।

रामदुलारी जोर से हँसी। बहन पर उसने पूरी विजय पाई थी।

'इस तरह तो जितने वकील-बैरिस्टर हैं; सभी ठग-विद्या करते हैं। अपने मुवक्किल के फायदे के लिए उन्हें क्या नहीं करना पड़ता ? झूठी शहादतें तक बनानी पड़ती हैं। मगर उन्हीं वकीलों और बैरिस्टरों को हम अपना लीडर कहते हैं, उन्हें अपनी कौमी सभाओं का प्रधान बनाते हैं, उनकी गाड़ियाँ खींचते हैं, उन पर फूलों और अशर्फियों की वर्षा करते हैं, उनके नाम से सड़कें, प्रतिमाएँ और संस्थाएँ बनाते हैं। आजकल दुनिया पैसा देखती है। आजकल ही क्यों ? हमेशा से धन की यही महिमा रही है। पैसे कैसे आयें, यह कोई नहीं देखता। जो पैसेवाला है, उसी की पूजा होती है। जो अभागे हैं, अयोग्य हैं, या भीरु हैं, वे आत्मा और सदाचार की दुहाई देकर अपने आँसू पोंछते हैं। नहीं, आत्मा और सदाचार को कौन पूछता है।'

रूपकुमारी खामोश हो गई। अब उसे यह सत्य उसकी सारी वेदनाओं के साथ स्वीकार करना पड़ेगा कि रामदुलारी उससे ज्यादा भाग्यवान् है। इससे अब त्राण नहीं। परिहास या अनादर से वह अपनी तंगदिली का प्रमाण देने के सिवा और क्या पायेगी। उसे किसी बहाने से राम्दुलारी के घर जाकर असलियत की छान-बीन करनी पड़ेगी। अगर रामदुलारी वास्तव में लक्ष्मी का वरदान पा गई है तो रूपकुमारी अपनी किस्मत ठोंककर बैठ रहेगी। समझ लेगी कि दुनिया में कहीं न्याय नहीं है, कहीं ईमानदारी की पूछ नहीं है।

मगर क्या सचमुच उसे इस विचार से सन्तोष होगा ? यहाँ कौन ईमानदार है ? वही, जिसे बेईमानी करने का अवसर नहीं है और न इतनी बुद्धि या मनोबल है कि वह अवसर पैदा कर ले। उसके पति पिचत्तर रुपये पाते हैं; पर क्या दस-बीस रुपये और ऊपर से मिल जायँ तो वह खुश होकर ले न लेंगे ? उनकी ईमानदारी और सत्यवादिता उसी समय तक है, जब तक अवसर नहीं मिलता। जिस दिन मौका मिला, सारी सत्यवादिता धरी रह जायगी। और क्या रूपकुमारी में इतना नैतिक बल है कि वह अपने पति को हराम का माल हजम करने से रोक दे ? रोकना तो दूर की बात है, वह प्रसन्न होगी, शायद पतिदेव की पीठ ठोकेगी। अभी उनके दफ्तर से आने के समय वह मन मारे बैठी रहती है। तब वह द्वार पर खड़ी होकर उनकी बाट जोहेगी, और ज्योंही वह घर में आयेंगे, उनकी जेबों की तलाशी लेगी।

आँगन में गाना-बजाना हो रहा था। रामदुलारी उमंग के साथ गा रही थी, और रूमकुमारी वहीं बरामदे में उदास बैठी हुई थी। न जाने क्यों उसके सिर में दर्द होने लगा

था। कोई गाये, कोई नाचे, उससे प्रयोजन नहीं। वह तो अभागिन है। रोने के लिए पैदा की गई है।

नौ बजे रात को मेहमान रुखसत होने लगे। रूपकुमारी भी उठी। एक्का मँगवाने जा रही थी कि रामदुलारी ने कहा—एक्का मँगवाकर क्या करोगी बहन, मुझे लेने के लिए कार आती होगी; चलो दो-चार दिन मेरे यहाँ रहो, फिर चली जाना। मैं जीजाजी को कहला भेजूँगी तुम्हारा इन्तजार न करें।

रूपकुमारी का यह अंतिम अस्त्र भी बेकार हो गया। रामदुलारी के घर जाकर हाल-चाल की टोह लेने की इच्छा गायब हो गई। वह अब अपने घर जायेगी और मुँह ढाँपकर पड़ रहेगी। इन फटेहालों क्यों किसी के घर जाय। बोली—नहीं, अभी तो मुझे फुरसत नहीं है, बच्चे घबरा रहे होंगे। फिर कभी आऊँगी।'

'क्या रात-भर भी न ठहरोगी ?'

'नहीं।'

'अच्छा बताओ, कब आओगी ? मैं सवारी भेज दूँगी।'

'मैं खुद कहला भेजूँगी।'

'तुम्हें याद न रहेगी। साल-भर हो गया, भूलकर भी याद न किया। मैं इसी इन्तजार में थी कि कभी बुलावें तो चलूँ। एक ही शहर में रहते हैं, फिर भी इतनी दूर कि साल-भर गुजर जाय और मुलाकात तक न हो।'

रूपकुमारी इसके सिवा और क्या कहे कि घर के कामों से छुट्टी नहीं मिलती। कई बार उसने इरादा किया कि दुलारी को बुलाये, मगर अवसर ही न मिला।

सहसा रामदुलारी के पति मि. गुरुसेवक ने आकर बड़ी साली को सलाम किया। बिलकुल अँगरेजी सज-धज, मुँह में चुरुट, कलाई पर सोने की घड़ी, आँखों पर सुनहरी ऐनक, जैसे कोई सिविलियन हो। चेहरे से जेहानत और शराफत बरस रही थी। वह इतना रूपवान् और सजीला है, रूपकुमारी को अनुमान न था। कपड़े जैसे उसकी देह पर खिल रहे थे।

आशीर्वाद देकर बोली—आज यहाँ न आती तो मुझसे मुलाकात क्यों होती !

गुरुसेवक हँसकर बोला—यह उलटी शिकायत ! क्यों न हो। कभी आपने बुलाया और मैं न गया ?

'मैं नहीं जानती थी कि तुम अपने को मेहमान समझते हो। वह भी तो तुम्हारा ही घर है।'

रामदुलारी देख रही थी कि मन में उससे ईर्ष्या रखते हुए भी वह कितनी वाणी-मधुर, कितनी स्निग्ध, कितनी अनुग्रह-प्रार्थिनी होती जा रही है।

गुरुसेवक ने उदार मन से कहा—हाँ, अब मान गया भाभी साहब, बेशक मेरी गलती है। इस दृष्टि से मैंने विचार नहीं किया था। मगर आज तो मेरे घर रहिए।

'नहीं आज बिलकुल अवकाश नहीं है। फिर कभी आऊँगी। लड़के घबरा रहे होंगे।'

रामदुलारी बोली—मैं कितना कहके हार गई, मानती ही नहीं।

दोनों बहनें कार के पिछली सीट पर बैठीं। गुरुसेवक ड्राइव करता हुआ चला। जरा देर में उसका मकान आ गया। रामदुलारी ने फिर बहन से उतरने के लिए आग्रह किया,

पर वह न मानी। लड़के घबरा रहे होंगे। आखिर रामदुलारी उससे गले मिलकर अन्दर चली गई। गुरुसेवक ने कार बढ़ाई। रूपकुमारी ने उड़ती हुई निगाह से रामदुलारी का मकान देखा और वह ठोस सत्य एक शलाका की भाँति उसके कलेजे में चुभ गया।

कुछ दूर चलकर गुरुसेवक बोला—भाभी, मैंने तो अपने लिए अच्छा रास्ता निकाल लिया। अगर दो-चार साल इसी तरह काम चलता रहा तो आदमी बन जाऊँगा।

राम्कुमारी ने सहानुभूति के साथ कहा—रामदुलारी ने मुझसे बताया था। भगवान् करे, जहाँ रहो, खुश रहो। मगर जरा हाथ-पैर सँभाल के रहना।

'मैं मालिक की आँख बचाकर एक पैसा भी लेना पाप समझता हूँ, भाभी। दौलत का मजा तो तभी है कि ईमान सलामत रहे। ईमान खोकर पैसे मिले तो क्या ! मैं ऐसी दौलत को त्याज्य समझता हूँ, और आँख किसकी बचाऊँ। सब सियाह-सुफेद तो मेरे हाथ में है। मालिक तो रहा नहीं, केवल उसकी बेवा है। उसने सब कुछ मेरे हाथ में छोड़ रखा है। मैंने उसका कारोबार सँभाल न लिया होता तो सब कुछ चौपट हो जाता। मेरे सामने तो मालिक सिर्फ तीन महीने जिन्दा रहे। मगर आदमी को परखना खूब जानते थे। मुझे सौ रुपये पर रखा और एक महीने में दो सौ रुपये कर दिया। आप लोगों की दुआ से पहले ही महीने में मैंने बारह हजार का काम किया।'

'काम क्या करना पड़ता है ?' रूपकुमारी ने बिना किसी उद्देश्य के पूछा।

'वही मशीनों की एजेंटी' तरह-तरह की मशीनें मँगाना और बेचना।—ठंडा जवाब था।

रूपकुमारी का मनहूस घर आ गया। द्वार पर एक लालटेन टिमटिमा रही थी। उसके पति उमानाथ द्वार पर टहल रहे थे। मगर रूपकुमारी ने गुरुसेवक से उतरने के लिए आग्रह नहीं किया। एक बार शिष्टाचार के नाते कहा जरूर, पर जोर नहीं दिया, और उमानाथ तो गुरुसेवक से मुखातिब भी न हुए।

रूपकुमारी को वह घर अब कब्रस्तान-सा लग रहा था, जैसे फूटा हुआ भाग्य हो। न कहीं फर्श, न फर्नीचर, न गमले। दो-चार टूटी-टाटी तिपाइयाँ, एक लँगड़ी मेज, चार-पाँच पुरानी-धुरानी खाटें, यही उस घर की बिसात थी। आज सुबह तक रूपकुमारी इसी घर में खुश थी। लेकिन अब यह घर उसे काटे खा रहा है। लड़के अम्माँ-अम्माँ करके दौड़े, मगर उसने दोनों को झिड़क दिया। उसके सिर में दर्द है, वह किसी से न बोलेगी, कोई उसे न छेड़े। अभी घर में खाना नहीं पका। पकाता कौन ? लड़कों ने तो दूध पी लिया है, किन्तु उमानाथ ने कुछ नहीं खाया। इसी इन्तजार में थे कि रूपकुमारी आये तो पकाये। पर रूपकुमारी के सिर में दर्द है। मजबूर होकर बाजार से पूरियाँ लानी पड़ेंगी।

रूपकुमारी ने तिरस्कार के स्वर में कहा—तुम अब तक मेरा इन्तजार क्यों करते रहे? मैंने तो खाना पकाने की नौकरी नहीं लिखाई है, और जो मैं रात को वहीं रह जाती ? आखिर तुम कोई महराजिन क्यों नहीं रख लेते ? क्या जिन्दगी भर मुझी को पीसते रहोगे?

उमानाथ ने उसकी तरफ आहत विस्मय की आँखों से देखा। उसके बिगड़ने का कोई कारण उनकी समझ में न आया। रूपकुमारी से उन्होंने हमेशा निरापद सहयोग पाया है, निरापद ही नहीं, सहानुभूतिपूर्ण भी। उन्होंने कई बार उससे महराजिन रख लेने का प्रस्ताव खुद किया था, पर उसने बराबर यही जवाब दिया कि आखिर मैं बैठे-बैठे क्या करूँगी ?

चार-पाँच रुपये का खर्च बढ़ाने से क्या फायदा ? यह पैसे तो बच्चों के मक्खन में खर्च होते हैं।

और आज वह इतनी निर्ममता से उलाहना दे रही है, जैसे गुस्से में भरी हो।

अपनी सफाई देते हुए बोले—महराजिन रखने के लिए तो मैंने खुद तुमसे कई बार कहा।

'तो लाकर रख क्यों न दिया ? मैं उसे निकाल देती तो कहते !'

'हाँ यह गलती हुई।'

'तुमने कभी सच्चे दिल से नहीं कहा, रूपकुमारी ने और भी प्रचंड होकर कहा—तुमने केवल मेरा मन लेने के लिए कहा। मैं ऐसी भोली नहीं हूँ कि तुम्हारे मन का रहस्य न समझूँ। तुम्हारे दिल में कभी मेरे आराम का विचार आया ही नहीं। तुम तो खुश थे कि अच्छी लौंडी मिल गई है। एक रोटी खाती है और चुपचाप पड़ी रहती है। महज खाने और कपड़े पर। यह भी जब घर की जरूरतों से बचे। पचहत्तर रुपल्लियाँ लाकर मेरे हाथ पर रख देते हो और सारी दुनिया का खर्च। मेरा दिल ही जानता है, मुझे कितनी कतर-ब्योंत करनी पड़ती है। क्या पहनूँ और क्या ओढ़ूँ ! तुम्हारे साथ जिन्दगी खराब हो गई ! संसार में ऐसे मर्द भी हैं, जो स्त्री के लिए आसमान के तारे तोड़ लाते हैं। गुरुसेवक ही को देखो, दूर क्यों जाओ। तुमसे कम पढ़ा है, उम्र में तुमसे कहीं कम है, मगर पाँच सौ का महीना लाता है, और रामदुलारी रानी बनी बैठी रहती है। तुम्हारे लिए यही पिचत्तर रुपये बहुत हैं। राँड माँड़ ही में मगन ! तुम नाहक मर्द हुए, तुम्हें तो औरत होना चाहिए था। औरतों के दिल में कैसे-कैसे अरमान होते हैं। मगर मैं तो तुम्हारे लिए घर की मुर्गी का बासी साग हूँ। तुम्हें तो कोई तकलीफ होती नहीं। तुम्हें तो कपड़े भी अच्छे चाहिए, खाना भी अच्छा चाहिए, क्योंकि पुरुष हो, बाहर से कमाकर लाते हो। मैं चाहे जैसे रहूँ तुम्हारी बला से।'

वाग्बाणों का यह सिलसिला कई मिनट तक जारी रहा, और उमानाथ चुपचाप सुनते रहे। अपनी जान में उन्होंने रूपकुमारी को शिकायत का कभी मौका नहीं दिया। उनका वेतन कम है, यह सत्य है, पर यह उनके वश की बात तो नहीं। वह दिल लगाकर अपना काम करते हैं, अफसरों को खुश रखने की सदैव चेष्टा करते हैं। दो साल बड़े बाबू के छोटे सुपुत्र को छः महीने तक बिला नागा पढ़ाया, इसीलिए तो कि वह प्रसन्न रहे। अब वह और क्या करें। रूपकुमारी की खफ़गी का रहस्य वह समझ गये। अगर गुरुसेवक वास्तव में पाँच सौ रुपये लाता है तो बेशक वह भाग्य का बली है। लेकिन दूसरों की ऊँची पेशानी देखकर अपना माथा तो नहीं फोड़ा जाता। किसी संयोग से उसे यह अवसर मिल गया। मगर हरएक को तो ऐसे अवसर नहीं मिलते। वह इसका पता लगायेंगे कि सचमुच उसे पाँच सौ ही मिलते हैं, यह महज डींग है। और मान लिया कि पाँच सौ ही मिलते हैं, तो क्या इससे रूपकुमारी को यह हक है कि वह उनको ताने दे, और उन्हें जली-कटी सुनाये। अगर इसी तरह वह भी रूपकुमारी से ज्यादा रूपवती और सुशीला रमणी को देखकर रूपकुमारी को कोसना शुरु करें तो कैसा हो ! रूपकुमारी सुन्दरी है, मृदुभाषिणी है, त्यागमयी है लेकिन उससे बढ़कर सुन्दरी, मृदुभाषिणी, त्यागमयी देवियों से दुनिया खाली नहीं है। तो क्या इस कारण वह रूपकुमारी का अनादर करें ?

एक समय था, जब उनकी नज़रों में रूपकुमारी से ज्यादा रूपवती रमणी संसार में न

थी; लेकिन वह उन्माद कब का शान्त हो गया। भावुकता के संसार से वास्तविक जीवन में आये उन्हें एक युग बीत गया। अब तो विवाहित जीवन का उन्हें काफी अनुभव हो गया है। एक को दूसरे के गुण-दोष मालूम हो गये हैं। अब तो सन्तोष ही में उनका जीवन सुखी रह सकता है। मगर रूपकुमारी समझदार होकर भी इतनी मोटी-सी बात नहीं समझती !

फिर भी उन्हें रूपकुमारी से सहानुभूति ही हुई। वह उदार प्रकृति के आदमी थे और कल्पनाशील भी। उसकी कटु बातों का कुछ जवाब न दिया। शरबत की तरह पी गये। अपनी बहन के ठाट देखकर एक क्षण के लिए रूपकुमारी के मन में ऐसे निराशाजनक, अन्यायपूर्ण, दुःखद भावों का उठना बिलकुल स्वाभाविक है। रूपकुमारी कोई संन्यासिनी नहीं, विरागिनी नहीं कि हर एक दशा में अविचलित रहे।

इस तरह अपने मन को समझाकर उमानाथ ने गुरुसेवक के विषय में तहक़ीकात करने का संकल्प किया।

2

एक सप्ताह तक रूपकुमारी मानसिक अशांति की दशा में रही। बात-बात पर झुँझलाती, लड़कों को डाँटती; पति को कोसती, अपने नसीबों को रोती। घर का काम तो करना ही पड़ता था, लेकिन अब इस काम में उसे आनन्द न आता था। बेगार-सी टालती थी। घर की जिन पुरानी-धुरानी चीजों से उसका आत्मीय सम्बन्ध-सा हो गया था, जिनकी सफाई और सजावट में वह व्यस्त रहा करती थी, उनकी तरफ अब आँख उठाकर भी न देखती। घर में एक ही खिदमतगार था। उसने जब देखा, बहूजी घर की तरफ से खुद ही लापरवाह हैं तो उसे क्या गरज थी कि सफाई करता। जो चीज जहाँ पड़ी थी, वहीं पड़ी रहती। कौन उठाकर ठिकाने से रखे। बच्चे माँ से बोलते डरते थे, और उमानाथ तो उसके साये से भागते थे। जो कुछ सामने थाली में आ जाता उसे पेट में डाल लेते और दफ्तर चले जाते। दफ्तर से लौटकर दोनों बच्चों को साथ ले लेते और कहीं घूमने निकल जाते। रूपकुमारी से कुछ कहना बारूद में दियासलाई लगाना था। हाँ, उनकी यह तहक़ीकात जारी थी।

एक दिन उमानाथ दफ्तर से लौटे तो उनके साथ गुरुसेवक भी थे। रूपकुमारी ने आज कई दिनों के बाद परिस्थिति से सहयोग कर लिया था और इस वक्त झाड़न लिये कुरसियाँ और तिपाइयाँ साफ कर रही थी, कि गुरुसेवक ने अन्दर पहुंचकर सलाम किया। रूपकुमारी दिल में कट गई। उमानाथ पर ऐसा क्रोध आया कि उसका मुँह नोच ले। इन्हें लाकर यहाँ क्यों खड़ा कर दिया ? न कहना, न सुनना, बस बुला लाये। उसे इस दशा में देखकर गुरुसेवक दिल में क्या कहता होगा। मगर इन्हें अक्ल आई ही कब थी। वह अपना परदा ढाँकती फिरती है और आप उसे खोलते फिरते हैं। जरा भी लज्जा नहीं। जैसे बेहयाई का बाना पहन लिया है। बरबस उसका अपमान करते हैं। न जाने उसने उनका क्या बिगाड़ा है ?

आशीर्वाद देकर कुशल-समाचार पूछा और कुरसी रख दी। गुरुसेवक ने बैठते हुए कहा—आज भाई साहब ने मेरी दावत की है, मैं उनकी दावत पर तो न आता; लेकिन जब उन्होंने कहा, तुम्हारी भाभी का कड़ा तक़ाज़ा है, तब मुझे समय निकालना पड़ा।

रूपकुमारी ने बात बनाई। घर का कलह छिपाना पड़ा—तुमसे उस दिन कुछ

बातचीत न हो पाई। जी लगा हुआ था।

गुरुसेवक ने कमरे के चारों तरफ नज़र दौड़ाकर कहा—इस पिंजड़े में तो आप लोगों को बड़ी तकलीफ होती होगी ?

रूपकुमारी को ज्ञात हुआ, यह युवक कितना सुरुचिहीन, कितना अरसिक है। दूसरों के मनोभावों का आदर करना जैसे जानता ही नहीं। इसे इतनी-सी बात भी नहीं मालूम कि दुनिया में सभी भाग्यशाली नहीं होते। लाखों में एक ही कहीं भाग्यवान् निकलता है। और उसे भाग्यवान् ही क्यों कहा जाय ? जहाँ बहुतों को दाना न मयस्सर हो, वहाँ थोड़े से आदमियों के भोग-विलास में कौन-सा सौभाग्य ! जहाँ बहुत-से आदमी भूखों मर रहे हों, वहाँ दो-चार आदमी मोहनभोग उड़ायें तो यह उनकी बेहयाई और हृदयहीनता है, सौभाग्य कभी नहीं।

कुछ चिढ़कर बोली—पिंजड़े में कठघरे में रहने से अच्छा है। पिंजड़े में निरीह पक्षी रहते हैं, कठघरा तो घातक जन्तुओं का ही निवास स्थान है।

गुरुसेवक शायद यह संकेत न समझ सका, बोला—मेरा तो इस घर में दम घुट जाय। मैं आपके लिए अपने घर के पास ही एक मकान ठीक करा दूँगा। खूब लम्बा-चौड़ा। आपसे कुछ किराया न लिया जायगा। मकान हमारी मालकिन का है। मैं भी उसी के एक मकान में रहता हूँ। सैकड़ों मकान हैं उसके पास, सैकड़ों। सब मेरे अख्तियार में हैं। जिसे जो मकान चाहूँ, दे दूँ। मेरे अख्तियार में है। किराया लूँ या न लूँ। मैं आपके लिए सबसे अच्छा मकान ठीक करूँगा। मैं आपका बहुत अदब करता हूँ।

रूपकुमारी समझ गई, महाशय इस वक्त नशे में हैं। जभी यों बहक रहे हैं। जब उसने गौर से देखा तो उनकी आँखें सिकुड़ गई थीं, गाल कुछ फूल गये थे। ज़बान भी लड़खड़ाने लगी थी। एक जवान, खूबसूरत, शरीफ चेहरा कुछ ऐसा शेखीबाज और निर्लज्ज हो गया कि उसे देखकर घृणा होती थी।

उसने एक क्षण बाद फिर बहकना शुरु किया—मैं आपका बहुत अदब करता हूँ, जी हाँ ! आप मेरी बड़ी भाभी हैं। आपके लिए मेरी जान हाजिर है। आपके लिए एक मकान नहीं, सौ मकान तैयार हैं। मैं मिसेज लोहिया का मुख्तार हूँ। सब कुछ मेरे हाथ में है। सब कुछ, मैं जो कुछ कहता हूँ, वह आँखें बन्द करके मंजूर कर लेती है। मुझे अपना बेटा समझती है। मैं उसकी सारी जायदाद का मालिक हूँ। मि. लोहिया ने मुझे बीस रुपये पर रखा था, बीस रुपये पर। वह बड़ा मालदार था। मगर किसी को नहीं मालूम; उसकी दौलत कहाँ से आती थी। किसी को नहीं मालूम। मेरे सिवा कोई नहीं जानता। वह खुफियाफ़रोश था। किसी से कहना नहीं। वह चोरी से कोकीन बेचता था। लाखों की आमदनी थी उसकी। अब वही व्यापार मैं करता हूँ। हर शहर में हमारे खुफिया एजेन्ट हैं। मि. लोहिया ने मुझे इस फन में उस्ताद बना दिया। जी हाँ ! मजाल नहीं कि कोई मुझे गिरफ्तार कर ले; बड़े-बड़े अफसरों से मेरा याराना है। उनके मुँह में नोटों के पुलिन्दे ठूँस-ठूँसकर उनकी आवाज बन्द कर देता हूँ। कोई चूँ नहीं कर सकता। दिन-दहाड़े बेचता हूँ। हिसाब में लिखता हूँ, एक हजार रिश्वत दी। देता हूँ पाँच सौ। बाकी यारों का है। बेदिरेग़ रुपये आते हैं और बेदिरेग़ खर्च करता हूँ। बुढ़िया को तो राम नाम से मतलब है। सत्तर चूहे खाके अब हज करने चली है। कोई मेरा हाथ पकड़नेवाला नहीं, कोई बोलने वाला नहीं, (जेब से नोटों

का एक बण्डल निकाल कर) यह आपके चरणों की भेंट है मुझे दुआ दीजिए कि इसी शान से जिन्दगी कट जाय। जो आत्मा और सदाचार के उपासक हैं उन्हें कुबेर लातें मारता है। लक्ष्मी उनको पकड़ती है, जो उसके लिए अपना दीन और ईमान सब कुछ छोड़ने को तैयार हैं। मुझे बुरा न कहिए। मैं कौन मालदार हूँ ? जितने धनी हैं, वे सब-के-सब लुटेरे हैं, पक्के लुटेरे, डाकू। कल मेरे पास रुपये हो जायँ और मैं एक धर्मशाला बनवा दूँ। फिर देखिए मेरी कितनी वाह-वाह होती है। कौन पूछता है, मुझे दौलत कहाँ से मिली। जिस महात्मा को कहिए, बुलाकर उससे अपनी प्रशंसा करवा लूँ। मि. लोहिया को महात्माओं ने धर्म-भूषण की उपाधि दी थी, इन स्वार्थी, पेट के बन्दरों ने। उस बुड्ढे को जिससे बड़ा कुकर्मी संसार में न होगा। यहाँ तो लूट है। एक वकील आध घण्टा बहस करके पाँच सौ मार लेता है, एक डाक्टर जरा-सा नश्तर लगाकर एक हजार सीधा कर लेता है, एक जुआरी स्पेकुलेशन में एक-एक दिन में लाखों का वारा-न्यारा करता है। अगर उनकी आमदनी जायज़ है तो मेरी आमदनी भी जायज़ है। जी हाँ, जायज़ है, मेरी निगाह में बड़े-से-बड़े मालदार की भी कोई इज्जत नहीं। मैं जानता हूँ, वह कितना बड़ा हथकण्डेबाज है। यहाँ जो आदमी आँखों में धूल झोंक सके, वही सफल है ! गरीबों को लूटकर मालदार हो जाना समाज की पुरानी परिपाटी है। मैं भी वही करता हूँ, जो दूसरे करते हैं। जीवन का उद्देश्य है ऐसा करना। खूब लूटूँगा, खूब ऐश करूँगा और बुढ़ापे में खूब खैरात करूँगा। और एक दिन लीडर बन जाऊँगा। कहिए गिना दूँ। यहाँ कितने लोग जुआ खेल-खेलकर करोड़पति हो गये, कितने औरतों का बाज़ार लगाकर करोड़पति हो गये....

सहसा उमानाथ ने आकर कहा—मि. गुरुसेवक, क्या कर रहे हो ? चलो चाय पी लो। ठण्डी हो रही है।

गुरुसेवक ऐसा हड़बड़ा उठा, मानो अपने सचेत रहने का प्रमाण देना चाहता हो। मगर पाँव लड़खड़ाये और जमीन पर गिर पड़ा। फिर सँभलकर उठा और झूमता-झूमता, ठोकरें खाता, बाहर चला गया। रूपकुमारी ने आजादी की साँस ली। यहाँ बैठे-बैठे उसे हौलदिल-सा हो रहा था। कमरे की हवा जैसे कुछ भारी हो गई थी। जो प्रेरणाएँ कई दिन से अच्छे-अच्छे मनोहर रूप भरकर उसके मन में आ रही थीं, आज उसे उनका असली वीभत्स, घिनावना रूप नजर आया। जिस त्याग, सादगी और साधुता के वातावरण में अब तक उसकी जिन्दगी गुजरी थी, उसमें इस तरह के दाँव-पेंच, छल-कपट और पतित स्वार्थ का घुसना बिलकुल ऐसा ही था, जैसे किसी बाग में साँड़ों का एक झुण्ड घुस आये। इन दामों वह दुनिया की सारी दौलत और सारा ऐश खरीदने को भी तैयार न हो सकती थी। नहीं, अब रामदुलारी के भाग्य से अपने भाग्य का बदला न करेगी। वह अपने हाल में खुश है। रामदुलारी पर उसे दया आई, जो भोग-विलास की धुन और अमीर कहलाने के मोह में अपनी आत्मा का सर्वनाश कर रही है। मगर वह बेचारी भी क्या करे ? और गुरुसेवक का भी क्या दोष है ? जिस समाज में दौलत पुजती है, जहाँ मनुष्य का मोल उसके बैंक-एकाउण्ट और टीम-टाम से आँका जाता है, जहाँ पग-पग पर प्रलोभनों का जाल बिछा हुआ है और समाज की कुव्यवस्था आदमी में ईर्ष्या, द्वेष, अपहरण और नीचता के भावों को उकसाती और उभारती रहती है, गुरुसेवक और रामदुलारी उस जाल में फँस जायँ, उस प्रवाह में बह जायँ तो कोई अचरज नहीं।

उसी वक्त उमानाथ ने आकर कहा—गुरुसेवक यहाँ बैठा-बैठा क्या बहक रहा था ? मैंने तो उसे विदा कर दिया। जी डरता था, कहीं पुलिस उसके पीछे न लगी हो, नहीं तो मैं भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिस जाऊँ।

रूपकुमारी ने क्षमा-प्रार्थी नेत्रों से उन्हें देखकर जवाब दिया—वही अपनी खुफ़ियाफ़रोशी की डींग मार रहा था।

'मुझे भी मिसेज लोहिया से मिलने को कह गया।'

'जी नहीं, आप अपनी क्लर्की किये जाइए। इसी में हमारा कल्याण है।'

'मगर क्लर्की में वह ऐश कहाँ ? क्यों न साल-भर की छुट्टी लेकर जरा उस दुनिया की भी सैर करूँ !'

'मुझे अब उस ऐश का मोह नहीं रहा।'

'दिल से कहती हो ?'

'सच्चे दिल से।'

उमानाथ एक मिनट तक चुप रहने के बाद फिर बोले—मैं आकर तुमसे यह वृत्तान्त कहता तो तुम्हें विश्वास आता या नहीं, सच कहना ?

'कभी नहीं, मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकती कि अपने स्वार्थ के लिए कोई आदमी दुनिया को विष खिला सकता है !'

'मुझे सारा हाल पुलिस के सब इंस्पेक्टर से मालूम हो गया था। मैंने उसे खूब शराब पिला दी थी कि नशे में बहकेगा जरूर और सारा कुछ खुद उगल देगा।'

'ललचता तो तुम्हारा जी भी था।'

'हाँ ललचता तो था, और अब भी ललच रहा है। मगर ऐश करने के लिए जिस हुनर की जरूरत है, वह कहाँ से लाऊँगा ?'

'ईश्वर न करे, वह हुनर तुममें आये। मुझे तो उस बेचारे पर तरस आता है। मालूम नहीं खैरियत से घर पहुँच गया या नहीं।'

'उसकी कार थी। कोई चिन्ता नहीं।'

रूपकुमारी एक क्षण जमीन की तरफ ताकती रही। फिर बोली—तुम मुझे दुलारी के घर पहुँचा दो। अभी शायद मैं उसकी कुछ मदद कर सकूँ। जिस बाग की वह सैर कर रही है उसके चारों तरफ निशाचर घात लगाये बैठे हैं। शायद मैं उसे बचा सकूँ।

उमानाथ ने देखा, उसकी छवि कितनी दया-पुलकित हो उठी है।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', अगस्त, 1936 में प्रकाशित। 'कफन' में संकलित। उर्दू रूप इसी शीर्षक से 'अस्मत', सितम्बर-अक्टूबर, 1936 में प्रकाशित।]

रहस्य

विमल प्रकाश ने सेवाश्रम के द्वार पर पहुँचकर जेब से रुमाल निकाला और बालों पर पड़ी हुई गर्द साफ की, फिर उसी रुमाल से जूतों की गर्द झाड़ी और अन्दर दाखिल हुआ। सुबह

को वह रोज़ टहलने जाता है और लौटती बार सेवाश्रम की देख-भाल भी कर लेता है। वह इस आश्रम का बानी भी है, और संचालक भी।

सेवाश्रम का काम शुरू हो गया था। अध्यापिकाएँ लड़कियों को पढ़ा रही थीं, माली फूलों की क्यारियों में पानी दे रहा था और एक दरजे की लड़कियाँ हरी-हरी घास पर दौड़ लगा रही थीं। विमल को लड़कियों की सेहत का बड़ा खयाल है।

विमल एक क्षण वहीं खड़ा प्रसन्न मन से लड़कियों की बाल-क्रीड़ा देखता रहा, फिर आकर दफ्तर में बैठ गया। क्लर्क ने कल की आई हुई डाक उसके सामने रख दी। विमल ने सारे पत्र एक-एक करके खोले और सरसरी तौर पर पढ़कर रख दिये, उसके मुख पर चिन्ता और निराशा का धूमिल रंग दौड़ गया। उसने धन के लिए समाचार-पत्रों में जो अपील निकाली थी, उसका कोई असर नहीं हुआ। कैसे यह संस्था चलेगी ? लोग क्या इतने अनुदार हैं ? वह तन-मन से इस काम में लगा हुआ है। उसके पास जो कुछ था वह सब उसने इस आश्रम को भेंट कर दी। अब लोग उससे और क्या चाहते हैं ? क्या अब भी वह उनकी दया और विश्वास के योग्य नहीं है ?

वह इसी चिन्ता में डूबा हुआ उठा और घर पर आकर सोचने लगा, यह संकट कैसे टाले? अभी साल का आधा भी नहीं गुज़रा और आश्रम पर बारह हज़ार का कर्ज हो गया था। साल पूरा-पूरा होते तो वह बीस हज़ार तक पहुँचेगा। अगर वह लड़कियों की फ़ीस एक-एक रुपया बढ़ा दे, तो पाँच सौ रुपये की आमदनी बढ़ सकती है। होस्टल की फीस दो-दो रुपये बढ़ा दे, तो पाँच सौ रुपये और आ सकते हैं। इस तरह वह आश्रम की आमदनी में बारह हजार सालाना की बढ़ती कर सकता है; लेकिन फिर उसका वह आदर्श कहाँ रहेगा कि गरीबों की लड़कियों को नाममात्र फीस लेकर ऊँची शिक्षा दी जाय ! काश, उसे ऐसी अध्यापिकाओं की काफ़ी तादाद मिल जाती तो केवल गुजारे पर काम करतीं। क्या इतने बड़े देश में ऐसी दस-बीस पढ़ी-लिखी देवियाँ भी नहीं हैं ? उसने कई बार अखबारों में यह जरूरत छपवाई थी, मगर आज तक किसी ने जवाब न दिया। अब फ़ीस बढ़ाने के सिवा उसके लिए और कौन-सा रास्ता है ?

इसी वक्त उसके द्वार के सामने एक ताँगा आकर रुका और एक महिला उतरकर बरामदे में आई। विमल ने कमरे से बाहर निकलकर उनका स्वागत किया और उन्हें अन्दर ले जाकर एक कुरसी पर बैठा दिया। देवीजी रूपवती तो न थीं, पर उनके मुख पर शिष्टता और कुलीनता की आभा जरूर थी। औसत क़द, कोमल गात, चम्पई रंग, प्रसन्न मुख, खूब बनी-सँवरी हुई; मगर उस बनाव-सँवार में ही जैसे अभाव की झलक थी। विमल के लिए यह कोई नई बात न थी। जब से उसने सेवाश्रम खोला था, भले घरों की देवियाँ अकसर उससे मिलने आती रहती थीं।

देवीजी ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—पहले अपना नाम बता दूँ। मुझे मंजुला कहते हैं। मैंने कुछ दिन हुए, 'लीडर' में आपकी नोटिस देखी थी और उसी प्रयोजन से आपकी सेवा में आई हूँ। यों तो आपसे मिलने का शौक बहुत दिनों से था; पर कोई अवसर न निकाल पाती थी, और बरबस आकर आपका कीमती समय नष्ट न करना चाहती थी। आपने जिस त्याग और तन्मयता से नारियों की सेवा की है, उसने आपके प्रति मेरे मन में इतनी श्रद्धा पैदा कर दी है कि मैं उसे प्रकट करूँ तो शायद आप खुशामद समझें। मेरे मन

में भी इसी तरह की सेवा की इच्छा बहुत दिनों से है; पर जितना सोचती हूँ; उतना कर नहीं सकती। आपके प्रोत्साहन से सम्भव है; मैं भी कुछ कर सकूँ !

विमल मौन सेवका में था। अपनी प्रशंसा उसके लिए सबसे कठिन परीक्षा थी। उसकी ठीक वही दशा हो जाती थी, जैसे कोई पानी में डुबकियाँ खा रहा हो। वह खुद किसी के मुँह पर उसकी तारीफ़ न करता था; इसलिए तारीफ़ के भूखे उसे तंगदिल समझते थे। वह पीठ के पीछे तारीफ़ करता था। हाँ, बुराइयाँ वह मुँह पर करता था और दूसरों से भी यही आशा रखता था।

उसने अपना उखड़ा हुआ पाँव जमाते हुए कहा—यह तो बहुत अच्छी बात होगी। आप शौक से आयें। सेवाश्रम की आर्थिक दशा तो आपको मालूम होगी ?

'मैं इस इरादे से यहाँ नहीं आई हूँ।'

'यह मैं पहले ही समझ गया था। मेरी यह आशा न थी। यों ही कह दिया। अच्छा, आपका मकान यहीं है ?'

मंजुला देवी का घर लखनऊ में है। जालंधर के कन्या-विद्यालय में शिक्षा पाई है। अंग्रेजी में अच्छी लियाकत है। घर के काम-धन्धे में भी कुशल है ! और सबसे बड़ी बात यह है कि उनके हृदय में सेवा का उत्साह है। अगर ऐसी स्त्री सेवाश्रम का भार अपने ऊपर ले ले, तो क्या कहना !

मगर विमल के मन में एक प्रश्न उठा। पूछा आपके पति भी आपके साथ रहेंगे ?

साधारण-सा सवाल था; मगर मंज़ुला को नागवार लगा। बोली—जी नहीं। वह अपने घर रहेंगे। वह एक बैंक में नौकर हैं और अच्छा वेतन पाते हैं।

विमल के मन का प्रश्न और भी जटिल हो गया। जो आदमी अच्छा वेतन पाता है, उसकी पत्नी क्यों उससे अलग, काशी में रहना चाहती है ?

केवल इतना मुँह से निकला—अच्छा !

मंजुला ने शायद उनके मन का भाव ताड़कर कहा—आपको यह कुछ अनोखी-सी बात लगती होगी, लेकिन क्या आपके ख्याल में शादी का आशय यह है कि स्त्री को पुरुष के दामन में छिपा रहना चाहिए ?

विमल ने जोश के साथ कहा—'हर्गिज नहीं।'

'जब मैं अपनी जरूरतों को घटाकर सिफ़र तक पहुँचा सकती हूँ, तो किसी पर भार क्यों बनूँ ?'

'बेशक !'

'हम दोनों में मतभेद है और उसके अनेक कारण हैं। मैं भक्ति और पूजा को मानव-जीवन का सत्य समझती हूँ। पर इसे लचर समझते हैं, यहाँ तक कि ईश्वर में भी उनका विश्वास नहीं है। मैं हिन्दू संस्कृति को सबसे ऊँचा समझती हूँ। उन्हें हमारी संस्कृति में ऐब-ही-ऐब नज़र आते हैं। ऐसे आदमी के साथ मेरा निबाह कैसे हो सकता है।'

विमल खुद भक्ति और पूजा को ढोंग समझते थे, और इतनी सी बात पर किसी स्त्री का पुरुष से अलग हो जाना उनकी समझ में न आया। उन्हें ऐसी कई मिसालें याद थीं, जहाँ स्त्रियों ने पति के विधर्मी हो जाने पर भी अपने व्रत का पालन किया। इस समस्या का

व्यावहारिक अंग ही उनके सामने था। पूछा—लेकिन उन्हें कोई आपत्ति तो न होगी ?

मंजुला ने गर्व के साथ कहा—मैं ऐसी आपत्तियों की परवाह नहीं करती। अगर पुरुष स्वतन्त्र है, तो स्त्री भी स्वतन्त्र है।

फिर उसने नर्म होकर करुण स्वर में कहा—यों कहिए कि हम और वह तीन साल से अलग हैं। रहते हैं एक ही मकान में; लेकिन बोलते नहीं। जब कभी वह बीमार पड़े हैं, मैंने उनकी तीमारदारी की है। उन पर कोई संकट आया है, तो मैंने उनसे सच्ची सहानुभूति की है; लेकिन मैं मर भी जाऊँ तो उन्हें दुःख न होगा। वह खुश होंगे कि गला छूट गया। वह मेरा पालन-पोषण करते हैं, इसलिए···

उसका गला भर आया था। एक क्षण तक वह चुपचाप ज़मीन की ओर ताकती रही। फिर उसे भय हुआ कि कहीं विमल उसे हलका और ओछी न समझ रहा हो, जो अपने जीवन के गुप्त रहस्यों का ढिंढोरा पीटती फिरती है। इस भ्रम को विमल के मन से निकालना जरूरी था। उसने उन्हें यकीन दिलाया कि आज तक किसी ने उसके मुँह से ये शब्द नहीं सुने, यहाँ तक कि उसने अपने मन की व्यथा कभी अपनी माता से भी नहीं कही। विमल वह पहले व्यक्ति हैं जिनसे उसने ये बातें कहने का साहस किया है और इसका कारण यही है कि वह जानती है; उनके दिल में दर्द है और एक स्त्री की विवशता का अन्दाज़ा कर सकते हैं।

विमल ने लजाते हुए कहा—यह आपकी कृपा है, जो मेरे बारे में ऐसा ख़याल करती हैं।

और उनके मन में मंजुला के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। बहुत दिनों के बाद उसे एक देवी नजर आई, जो सिद्धान्त के लिए इतना साहस कर सकती है। वह खुद मन-ही-मन समाज से विद्रोह करता रहता था। सेवाश्रम भी उनके मानसिक विद्रोह का ही फल था। ऐसी स्त्री के हाथों में वह सेवाश्रम बड़ी खुशी से सौंप देगा। मंजुला इसके लिए तैयार होकर आई थी।

2

मंजुला के जीवन में आत्मदान की मात्रा ही ज्यादा थी। देह को वह इस भावना की पूर्ति का साधन-मात्र समझती थी। दुनिया की बड़ी से बड़ी विभूति भी उसे शान्ति न दे सकती थी। मिस्टर मेहरा से उसे केवल इसलिए अरुचि थी कि वह भी साधारण प्राणियों की भाँति भोग-विलास के प्रेमी थे। जीवन उनके लिए इच्छाओं में बहने का नाम था। स्वार्थ की सिद्धि में नीति या धर्म की बाधा उनके लिए असह्य थी। अगर उनमें कुछ उदारता होती और मंजुला से मतभेद होने पर भी वह उसकी भावनाओं का आदर करते और कम-से-कम मुख से ही उसमें सहयोग करते, तो मंजुला का जीवन सुखी होता; पर उस भले आदमी की पत्नी से ज़रा भी सहानुभूति न थी और वह हर एक अवसर पर उसके मार्ग में आकर खड़े हो जाते थे और मंजुला मन-ही-मन सिमटकर रह जाती थी। यहाँ तक कि उसकी भावनाएँ विकास का मार्ग न पाकर टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर जाने लगीं। अगर वह इस अभाव को कला का रूप दे सकती, तो उसकी आत्मा को उसमें शान्ति मिलती। जीवन में जो कुछ न मिला, उसे कला में पाकर वह प्रसन्न होती; मगर उसमें वह प्रतिभा, वह रचना-शक्ति न थी। और

उसकी आत्मा पिंजड़े में बन्द पक्षी की भाँति हमेशा बेचैन रहती थी। उसका अहमूभाव इतना प्रच्छन्न हो गया था कि वह जीवन से विरक्त होकर बैठ सकती थी। वह अपने व्यक्तित्व को स्वतन्त्र और पृथक रखना चाहती थी। उसे इसमें गर्व और उल्लास होता था कि वह भी कुछ है। वह केवल किसी वृक्ष पर फैलने वाली और उसके सहारे जीने वाली बेल नहीं है। उसकी अपनी अलग हस्ती है, अपना अलग कार्यक्षेत्र है।

लेकिन यथार्थताओं के इस संसार में आकर उसे मालूम हुआ कि आत्मदान का जो आशय उसने समझ रखा था, वह सरासर ग़लत था। सेवाश्रम में ऐसे लोग अकसर आते रहते थे, जिनसे थोड़ी-सी खुशामद करके बहुत कुछ सहायता ली जा सकती थी; लेकिन मंजुला का आत्माभिमान खुशामद पर किसी तरह राजी न होता था। उनके यश-गान से भरे हुए अभिनन्दन-पत्र पढ़ना, उनके भवनों पर जाकर उन्हें सेवाश्रम के मुआयने का नेवता देना, या रेलवे स्टेशन पर जाकर उनका स्वागत करना, ये ऐसे काम थे जिनसे उसे हार्दिक घृणा होती थी; लेकिन सेवाश्रम के संचालन का भार उस पर था और उसे अपने मन को दबाकर और कर्तव्य का आदर्श सामने रखकर यह सारी नाज़बरदारियाँ करनी पड़ती थीं, यद्यपि वह इन विद्रोही भावों को मक़दूर-भर छिपाती थी। पर जिस काम में मन न हो, वहाँ उल्लास और उत्साह कहाँ से आये ? जिन समझौतों से घबराकर वह भागी थी, वह यहाँ और भी विकृत रूप में उसका पीछा कर रहे थे। उसके मन में कटुता आती जाती थी और एकाग्र-सेवा की धुन मिटती जाती थी।

इसके विरुद्ध वह विमल को देखती थी कि उसके चेहरे पर कभी शिकन नहीं आती। वही सहास्य मुख, वही उत्सर्ग से भरा हुआ उद्भाव, वही क्रियाशील तन्मयता। छोटे-से-छोटे काम के लिए हमेशा हाज़िर सेवाश्रम की कोई कन्या या अध्यापिका बीमार पड़ जाय, विमल उसकी तीमारदारी के लिए मौजूद है। सहानुभूति का न जाने कितना बड़ा कोष उसके पास है कि उसमें ज़रा भी क्षति नहीं आती। उसके मन में किसी प्रकर का सन्देह या संशय नहीं है। उसने एक रास्ता पकड़ लिया है, और उस पर कदम बढ़ाता चला जा रहा है। उसे विश्वास है, इसी रास्ते से वह अपने ध्येय पर पहुँचेगा। राह में जो यात्री मिल जाते हैं, उन्हें अपना संगी बना लेता है। जो कलेवा लेकर चला है, वह संगियों को बाँटकर खाने में आनन्द पाता है। उसे नित्य परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं, ख़ुशामदें करनी पड़ती हैं, अपमान सहने पड़ते हैं, अयोग्य व्यक्तियों के सामने सिर झुकाना पड़ता है, भीख माँगनी पड़ती है; मगर उसे ग़म नहीं। वह कभी निराश नहीं होता, कभी बुरा नहीं मानता। उसके अंदर कोई ऐसी चीज है, जो हज़ारों ठोकरें खाने पर भी ज्यों-की-त्यों उछलती और दौड़ती रहती हैं। अध्यापिकाएँ अकसर साधारण-सी बातों पर शिकायतें करने लगती हैं, कभी-कभो रूठ जाती हैं और सेवाश्रम से विदा हो जाना चाहती हैं। अगर धोबन ने कपड़े खराब धोये या कहारिन ने उनकी साड़ी में दाग़ डाल दिए या चौकीदार ने उनके कुत्ते को दुत्कार दिया, या उनके कमरे में झाड़ू नहीं लगी, या ग्वाले न दूध में पानी मिला दिया, तो इसमें सेवाश्रम के अधिकारियों का क्या दोष ? मगर इन्हीं बातों पर यहाँ रोना-गाना मच जाता है, दुनिया सिर पर उठा ली जाती है। और विमल सेवक की भाँति अनुनय-विनय करके उनका गुस्सा ठण्डा करता है। उनकी घुड़कियाँ सुनता है और हँसकर रह जाता है। फल यह है कि अध्यापिकाओं की उस पर श्रद्धा होती जाती है। वह उसे अपना

अफ़सर नहीं, अपना मित्र और बन्धु समझती हैं।

मगर मंजुला विमल से कुछ खिंची रहती है। कभी उससे कोई शिकायत नहीं करती, कभी उससे किसी मुआमले में सलाह नहीं लेती। यद्यपि वह दिल में समझती है कि जिस दुनियादारी को वह आत्मा का पतन कहकर उसे हेय समझती है, वह वास्तव में विकसित मानवता का ही रूप है, फिर भी अपने सिद्धान्त-प्रेम के अभिमान को तोड़ डालना उसके लिए कठिन है। और इस अभिमान के होते हुए भी विमल की विशुद्ध, निःस्वार्थ व्यावहारिकता उसे जबरदस्ती अपनी ओर खींचती है। उसने साधारण मनुष्यों के विषय में अनुभव से मन में जो सीमाएँ खींच ली थीं, विमल उनसे ऊपर था। उसमें स्वार्थ का लेश भी नहीं है। अभिमान उसे छू भी नहीं गया है। उसके त्याग की कोई सीमा नहीं। मंजुला के आध्यात्मिक जीवन में मनुष्य का यही सबसे ऊँचा आदर्श था; लेकिन विमल को उस आदर्श के समीप देखकर उसे एक प्रकार का हार का बोध होता था। आदर्श का महत्त्व इसी में है कि वह पहुँच के बाहर हो। अगर वह साध्य हो जाय, तो आदर्श ही क्यों रहे ? मंजुला अपनी आदर्श-भावना को और ऊँचा बनाकर इस विचार में सन्तोष पाना चाहती है कि विमल अभी उस आदर्श से बहुत दूर है; लेकिन विमल जैसे जबरन उनका श्रद्धापात्र बनता जाता है, वह अपने को प्रवाह में बहने से रोकने के लिए लकड़ी का सहारा लेती है; पर उसके पैरों के साथ वह लकड़ी भी उखड़ जाती है, और वह फिर किसी दूसरी रोक की तलाश करने लगती है। और अन्त में उसे यह सहारा मिल जाता है।

उसने अपनी तीव्र दृष्टि में देख लिया है कि विमल उसकी कारगुजारियों से संतुष्ट नहीं है। फिर वह उससे शिकायत क्यों नहीं करता, उससे जवाब क्यों नहीं माँगता ? उसी तीव्र दृष्टि से उसने यह भी ताड़ लिया है कि विमल उसके रूप-रंग से अप्रभावित नहीं है। फिर यह शीतलता और उदासीनता क्यों ? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह कपटी या कायर है ? औरों से वह कितना खुलकर मिलता है, कितनी हमदर्दी से पेश आता है, तो मंजुला से वह क्यों दूर-दूर रहता है ? क्यों उससे ऊपरी मन से बातें करता है ? वह पहले दिन का निष्कपट व्यवहार कहाँ गया ? क्या वह यह दिखाना चाहता है कि मंजुला की उसे बिलकुल परवा नहीं है या उससे केवल इसलिए नाराज है कि धनियों की चौखट पर सिर नहीं झुकाती ? यह खुशामद उसे मुबारक रहे। मंजुला सेवा करेगी; पर अपने आत्माभिमान को अछूता रखकर।

एक दिन प्रातःकाल मंजुला बग़ीचे में टहल रही थी कि विमल ने आकर उसे प्रणाम किया और उसे सूचना दी कि सेवाश्रम का वार्षिकोत्सव निकट आ रहा है। उसके लिए तैयारी करनी चाहिए।

मंजुला ने उदासीन भाव से पूछा—यह जलसा तो हर साल ही होता है।

विमल ने कहा—जी हाँ, हर साल; मगर अबकी ज्यादा समारोह से करने का विचार है।

'मेरे किये जो कुछ हो सकता है, वह मैं भी करूँगी, हालाँकि आप जानते हैं, मैं इस विषय में ज्यादा निपुण नहीं हूँ।'

'इसकी सफलता का सारा भार आप ही के ऊपर है।'

'मेरे ऊपर ?'

'जी हाँ, आप चाहें तो यह आश्रम कहीं-से-कहीं पहुँच जाय।'

'मेरे विषय में आपका अनुमान गलत है।'

विमल ने विश्वास-भरे हुए स्वर में कहा—मेरा अनुमान ग़लत है या आपका अनुमान ग़लत है; यह तो जल्द ही मालूम हुआ जाता है।

आज यह पहली प्रेरणा थी, जो विमल ने मंजुला से की। जिस दिन से उसने सेवाश्रम उसके हाथ में सौंपा था, उस दिन से कभी इस विषय में कोई आदेश न दिया था। उसे कभी इसका साहस ही न हुआ। मुलाकातों में इधर-उधर की बातें होकर रह जातीं। शायद विमल समझता था कि मंजुला ने जो त्याग किया है, वह काफी से ज्यादा है। और उस पर अब और बोझ डालना जुल्म होगा। या शायद वह देख रहा था कि मंजुला का मन इस संस्था में रम जाय तो कुछ कहे। आज जो उसने विनय और आग्रह से भरा हुआ यह आदेश दिया तो मंजुला में एक नई स्फूर्ति दौड़ गई। सेवाश्रम से ऐसा निजत्व उसे कभी न हुआ था। विमल से उसे जो दुर्भावनाएँ थीं, सब जैसे काई की तरह फट गई और वह पूर्ण तन्मयता के साथ तैयारियों में लग गई। अब तक वह क्यों आश्रम से इतनी उदासीन थी, इस पर उसे आश्चर्य होने लगा। एक सप्ताह तक वह रात-दिन मेहमानों के आदर-सत्कार में व्यस्त रही। खाने तक की फुरसत न मिलती। दोपहर का खाना तीसरे पहर मिलता। कोई मेहमान किसी गाड़ी से आता, कोई किसी गाड़ी से। अक्सर उसे रात को भी स्टेशन जाना पड़ता। उस पर तरह-तरह के करतबों का रिहर्सल भी कराना पड़ता। अपने भाषण की तैयारी अलग। इस साधना का पुरस्कार तो मिला, कि जलसा हर एक दृष्टि से सफल रहा और कई हजार की रक़म चन्दे में मिल गई। मगर जिस दिन मेहमान रुखसत हुए उसी दिन मंजुला को नये मेहमान का स्वागत करना पड़ा, जिसने तीन दिन तक उसे सिर न उठाने दिया। ऐसा बुखार उसे कभी न आया था। तीन ही दिन में रोगी हो गई, जैसे बरसों की बीमार हो।

विमल भी दौड़-धूप में लगा हुआ था। पहले तो कई दिन पंडाल बनवाने और मेहमानों की दावत का इन्तज़ाम करने में लगा रहा। जलसा खत्म हो जाने पर जहाँ-जहाँ से जो सामान आये थे उन्हें सहेज-सहेजकर लौटाने की पड़ गई। मंजुला को धन्यवाद देने भी न आ सका, किसी ने कहा जरूर कि देवीजी बीमार हैं, मगर उसने समझा, थकन से कुछ हरारत हो आई होगी, ज्यादा परवा न की। लेकिन चौथे दिन खबर मिली कि बुखार अभी तक नहीं उतरा और बड़े जोर का है, तो वह बदहवास दौड़ा हुआ आया और अपराधी-भाव से उसके सामने खड़ा होकर बोला—अब कैसी तबीयत है ? आपने मुझे बुला क्यों न लिया ?

मंजुला को ऐसा जान पड़ा जैसे एकाएक उसका बुखार हल्का हो गया है। सिर का दर्द भी कुछ शान्त होता हुआ जान पड़ा। लेटे-लेटे विवश आँखों से ताकती हुई बोली—बैठ जाइए, आप खड़े क्यों हैं ? फिर मुझे भी उठना पड़ेगा।

विमल ने इस भाव से देखा मानो उसका बस होता, तो यह सारा ताप और दर्द खुद ले लेता। फिर आग्रह से बोला—नहीं-नहीं, आप लेटी रहें, मैं बैठ जाता हूँ। इसका अपराधी मैं हूँ। मैंने ही आपको इस ज़हमत में डाला। मुझे क्षमा कीजिए। मैंने आपसे वह काम लिया जो मुझे खुद करना चाहिये था। मैं अभी जाकर डाक्टर को बुला लाता हूँ। क्या कहूँ, मुझे जरा भी खबर न हुई। फ़िज़ूल के कामों में ऐसा फँसा रहा

और उसने पीठ फेरी ही थी कि मंजुला ने हाथ उठाकर मना करते हुए कहा—नहीं-नहीं; *डाक्टर की कोई जरूरत नहीं। आप जरा भी परेशान न हों। मैं बिलकुल अच्छी हूँ।* कल *तक उठ बैठूँगी।*

उसके मन में और कितनी ही बातें उठीं, मगर उसने ओठ बन्द कर लिये। इस आवेश में वह न जाने क्या-क्या बक जायेगी। अभी तक विमल ने शायद उसे देवी समझकर उसके सामने सिर झुकाया है। उससे दूर अवश्य रहा है; मगर इसलिए नहीं कि वह समीप आना नहीं चाहता, बल्कि इसलिए कि अपनी सरलता में, अपनी साधना में, उसके समीप आने में झिझकता है, कि कहीं देवी को नागवार न गुजरे। विमल ने अपने मन में उसे जिस ऊँचे आसन पर बैठा दिया है उससे नीचे वह न आयेगी। विमल को मालूम नहीं, वह कितना सात्विक, कितना विशालात्मा पुरुष है। ऐसे आदमी की स्मृति में हमेशा के लिए एक आकाश में उड़नेवाली, निष्कलंक, निष्कपट, सती की धुँधली छाया छोड़ जाना कितना बड़ा मोह है !

उसने विनोद-भाव से कहा—हाँ; क्यों नहीं; क्योंकि आप तो मनुष्य हैं और मैं काठ की पुतली।

'नहीं आप देवी हैं।'

'नहीं, एक नादान औरत।'

'आपने जो कुछ कर दिखाया, वह मैं सौ जन्म लेकर भी न कर सकता था।'

'उसका कारण भी आपने सोचा ? यह स्त्री की विजय नहीं, उसकी हार है। अगर इन दोषों के साथ मैं स्त्री न होकर पुरुष होती, तो शायद इसकी चौथाई सफलता भी न मिलती। यह मेरी जीत नहीं, मेरे नारीत्व की जीत है। रूप तो असार वस्तु है, जिसकी कोई हक़ीकत नहीं। वह धोखा है, फ़रेब है, दुर्बलताओं के छिपाने का परदा मात्र !'

विमल ने आवेश में कहा—यह आप क्या कहती हैं मंजुला देवी ? रूप संसार का सबसे बड़ा सत्य है। रूप को भयंकर समझकर हमारे महात्माओं और पंडितों ने दुनिया के साथ घोर अन्याय किया है।

मंजुला की सुन्दर छवि गर्व के प्रकाश से चमक उठी। रूप को असत्य समझने के प्रयास में सदैव असफल रही थी। और अपनी निष्ठा और भक्ति से मानो अपने रूप का प्रायश्चित्त कर रही थी। उसी रूप के इस समर्थन ने एक क्षण के लिए उसे मुग्ध कर दिया मगर वह संभलकर बोली—आप धोखे में हैं, विमल बाबू, मुझे क्षमा कीजिएगा; मगर यह रूप की उपासना आप में कोई नई बात नहीं है। मरदों ने हमेशा रूप की उपासना की है। थोड़े से पण्डितों या महात्माओं ने चाहे रूप की निन्दा की हो, पर मरदों ने प्रायः रूपासक्ति ही का प्रमाण दिया है। यहाँ तक कि रूप के लिए धर्म की परवा नहीं की और उन पण्डितों और महात्माओं ने भी जबान या क़लम से चाहे रूप के विरुद्ध विष उगला हो; लेकिन अन्तःकरण में वे भी उसकी पूजा करते हैं। जब कभी रूप ने उनकी परीक्षा की है उनकी तपस्या पर विजय पाई है। फिर भी जो असत्य है, वह असत्य ही रहेगा। रूप का आकर्षण केवल बाहरी आँखों के लिए है। ज्ञानियों की निगाह में उसका कोई मूल्य नहीं। कम-से-कम आपके मुख से मैं रूप का बखान नहीं सुनना चाहती क्योंकि मैं आपको देवतुल्य समझती हूँ और दिल से आप पर श्रद्धा रखती हूँ।

विमल विक्षिप्त-सा जमीन की तरफ ताकता रहा और बराबर ताकता ही चला गया; जैसे वह मूर्छावस्था में हो। फिर चौंककर उठा और अपराधियों की भाँति सिर झुकाये, संदिग्ध भाव से कदम उठाता हुआ कमरे से निकल गया।

और मंजुला निश्चिन्त बैठी रही।

3

उस दिन से एकाएक विमल का सारा उत्साह और कर्मण्यता जैसे ठण्डी पड़ गई। जैसे उसमें अब अपना मुँह दिखलाने की हिम्मत नहीं है। मानो इस रहस्य का पर्दा खुल गया है और चारों तरफ उसकी हँसी उड़ रही है। वह अब सेवाश्रम में बहुत कम आता है और आता भी है, तो अध्यापिकाओं से कुछ बातचीत नहीं करता। सबसे जैसे मुँह चुराता फिरता है। मंजुला को मिलने का कोई अवसर नहीं देता, और जब मंजुला हारकर उसके घर जाती है, तो कहला देता है, घर में नहीं है, हालांकि वह घर में छिपा बैठा रहता है।

और मंजुला उसके मनोरहस्य को समझने में असमर्थ है। विमल ने अपनी साधना और सद्भावना से उसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, इसमें सन्देह नहीं। वह एक नारी की गहरी अन्तर्दृष्टि से देख रही है कि विमल भी उसका उपासक बन बैठा है और जरा भी प्रोत्साहन पाने पर अपने को उसके चरणों पर डाल देगा। उसने बरसों से जो जिन्दगी बसर की है उसमें प्रेम नहीं है सेवा और कर्त्तव्य का दामन पकड़कर भी उसे अपनी अपूर्णता का ज्ञान होता रहता है। जिस पुरुष में उसका प्रेम नहीं है, न विश्वास है, उसके प्रति वह किसी तरह का नैतिक या धार्मिक बन्धन नहीं स्वीकार करती। वह अपने को स्वच्छन्द समझती है। चाहे समाज उसकी स्वच्छन्दता न माने, पर उसकी आत्मा इस विषय में अपने को आजाद समझती है; मगर विमल की नज़रों में आदर और भक्ति पाने का मोह उसमें इतना प्रबल है कि वह उस स्वच्छन्दता की भावना को सिर नहीं उठाने देती। वह विमल से संसर्ग की घनिष्ठता तो चाहती है; पर अपने आत्माभिमान की रक्षा करते हुए। इसके साथ ही विमल के पवित्र और निर्मल जीवन में वह दाग नहीं लगाना चाहती। उसने सोचा था, विमल को दवा का हल्का-सा घूँट पिलाकर वह स्वस्थ कर देगी। वह स्वस्थ होकर उसके मनोद्यान में आयेगा, फूलों को देखकर प्रसन्न होगा, हरी-हरी दूब पर लेटेगा, पक्षियों का गाना सुनेगा। उससे वह इतना ही संसर्ग चाहती थी। दीपक के प्रकाश का आनन्द तो दीपक से दूर रहकर ही लिया जा सकता है। उसे स्पर्श करके तो वह अपने को जला सकता है; मगर अब उसे मालूम हुआ कि दवा की वह घूँट बाधा को हरने के बदले एक दूसरा रोग पैदा कर गई। विमल में निर्लेप होकर रहने की शक्ति न थी। वह जिस चीज की ओर झुकता था, तन-मन से उसी का हो जाता था और जब खिंचता था, तो मानो नाता ही तोड़ लेता था। उसके इस नये व्यवहार को मंजुला अपना अपमान समझती है। और मन यहाँ से उचाट होता जाता है।

आखिर एक दिन उसने विमल को पकड़ ही लिया था। मंजुला जानती थी, विमल रोज दरिया किनारे सैर करने जाता है। एक दिन उसने वहीं जा घेरा और अपना इस्तीफ़ा उसके हाथ में रख दिया।

विमल के गले में जैसे फाँसी पड़ गई। ज़मीन की ओर ताकता हुआ बोला–ऐसा क्यों ?

'इसलिए कि मैं अपने को इस काम के योग्य नहीं पाती।'

'संस्था तो खूब चल रही है ?'

'फिर भी मैं यहाँ रहना नहीं चाहती।'

'मुझसे कोई अपराध हुआ है ?'

'आप अपने दिल से पूछिए।'

विमल ने इस वाक्य का वह आशय समझ लिया, जो मंजुला की कल्पना से भी कोसों दूर था। उसके मुख का रंग उड़ गया, जैसे रक्त की गति बन्द हो गई हो। इसका उसके पास कोई जवाब न था। ऐसा फैसला था जिसकी कहीं अपील न थी।

आहत स्वर में बोला–जैसी आपकी इच्छा। मुझ पर दया दीजिए।

मंजुला ने आर्द्र होकर कहा–तो मैं चली जाऊँ ?

'जैसी आपकी इच्छा !''

और वह जैसे गले का फंदा छुड़ाकर भाग खड़ा हुआ। मंजुला करुण नेत्रों से उसे देखती रही, मानो सामने कोई नौका डूबी जा रही हो।

4

चाबुक खाकर विमल फिर सेवाश्रम की गाड़ी में जुत गया। कह दिया गया मंजुला देवी के पति वीमार थे। चली गईं। काम-काजी आदमी प्रेम का रोग नहीं पालता, उसे कविता करने और प्रेम-पत्र लिखने और ठण्डी आहें भरने की कहाँ फुरसत ? उसके सामने तो कर्त्तव्य है, प्रगति की इच्छा है, आदर्श है। विमल भी काम-धन्धे में लग गया। हाँ, कभी-कभी एकान्त में मंजुला की याद आ जाती थी और लज्जा से उसका मस्तक आप-ही-आप झुक जाता था। उसे हमेशा के लिए सबक़ मिल गया था। ऐसी सती-साध्वी के प्रति उसने कितनी बेहूदगी की !

तीन साल गुजर गये थे। गर्मियों के दिन थे। विमल अबकी मंसूरी की सैर करने गया हुआ था और एक होटल में ठहरा था। एक दिन बैंड स्टैंड के समीप खड़ा बैंड सुन रहा था कि बगल की एक बेंच पर मंजुला बैठी नजर आई, आभूषणों और रंगों से जगमगाती हुई। उसके पास ही एक युवक कोट-पैंट पहने बैठा हुआ था। दोनों मुसकरा-मुसकरा कर बातें कर रहे थे। दोनों के चेहरे खिले हुए, दोनों प्रेम के नशे में मस्त। विमल के मन में सवाल उठा, यह युवक कौन है ? मंजुला का पति तो नहीं हो सकता। या संभव है, उसका पति ही हो। दम्पति में अब मेल हो गया हो। उसे मंजुला के सामने जाने का साहस न हुआ।

दूसरे दिन वह एक अँगरेजी तमाशा देखने सिनेमा हॉल गया था। इंटरवेल में बाहर निकला तो केफे में फिर मंजुला दिखायी दी। सिर से पाँव तक अँग्रेजी पहनावे में। वही कल वाला युवक आज भी उसके साथ था। आज विमल से ज़ब्त न हो सका। इसके पहले कि वह मन में कुछ निश्चय कर सके, वह मंजुला के सामने खड़ा था।

मंजुला उसे देखते ही सन्नाटे में आ गई। मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, मगर एक ही

क्षण में उसने अपने को सँभाल लिया और मुसकराकर बोली—हल्लो, विमल बाबू ! आप यहाँ कैसे ?

और उसने उस नवयुवक से विमल का परिचय कराया—आप महात्मा पुरुष हैं, काशी के सेवाश्रम के संचालक और यह मेरे मित्र मि. खन्ना हैं जो अभी हाल में इंगलैंड से आई. सी. एफ. होकर आये हैं।

दोनों आदमियों ने हाथ मिलाये।

मंजुला ने पूछा—सेवाश्रम तो खूब चल रहा है ? मैंने उसकी वार्षिक रिपोर्ट पत्रों में पढ़ी थी। आप यहाँ कहाँ ठहरे हुए हैं ?

विमल ने अपने होटल का नाम बतलाया।

खेल फिर शुरू हो गया। खन्ना ने कहा—खेल शुरू हो गया, चलो अन्दर चलें।

मंजुला ने कहा—तुम जाकर देखो, मैं ज़रा मिस्टर विमल से बातें करूँगी।

खन्ना ने विमल को जलती हुई आँखों से देखा और अकड़ता हुआ अन्दर चला गया। मंजुला और विमल बाहर आकर हरी-हरी घास पर बैठ गये। विमल का हृदय गर्व से फूला हुआ था। आशामय उल्लास की चाँदनी-सी हृदय पर छिटकी हुई थी।

मंजुला ने गम्भीर स्वर में पूछा—आपको मेरी याद काहे को आई होगी। कई बार इच्छा हुई कि आपको पत्र लिखूँ, लेकिन संकोच के मारे न लिख सकी। आप मज़े में तो थे।

विमल को उसका यह उलाहना बुरा लगा। कहाँ अभी हास्य-विनोद में मग्न थी, कहाँ उसे देखते ही गम्भीरता की पुतली बन गई। रूखे स्वर में बोला—हाँ, बहुत अच्छी तरह था। आप तो आराम से थीं ?

मंजुला आर्द्र कण्ठ से बोली—मेरे भाग्य में तो आराम लिखा ही नहीं है, मिस्टर विमल। पिछले साल पति का देहान्त हो गया। उन्होंने जितनी जायदाद छोड़ी उससे ज्यादा कर्ज़ छोड़ा। इन्हीं उलझनों में पड़ी रही। स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। डाक्टरों ने पहाड़ पर रहने की सलाह दी। तब से यहीं पड़ी हुई हूँ।

'आपने मुझे खत तक न लिखा।'

'आपके सिर योंही क्या कम बोझ है कि मैं अपनी चिन्ताओं का भार भी रख देती ?'

'फिर भी एक मित्र के नाते मुझे खबर तो देनी ही थी।'

मंजुला ने स्वर में श्रद्धा भरकर कहा—आपका काम इन झगड़ों में पड़ना नहीं है, विमल बाबू। आपको ईश्वर ने सेवा और त्याग के लिए रचा है। वही आपका क्षेत्र है। मैं जानती हूँ, आपकी मुझ पर दयादृष्टि है। मैं कह नहीं सकती, मेरी नज़रों में उसका कितना मूल्य है। जिसे कभी दया और प्रेम न मिला हो वह इनकी ओर लपके तो क्षमा के योग्य है। आप समझ सकते हैं, उनका परित्याग करके मैंने कितनी बड़ी कुबानी की है; मगर मैंने इसी को अपना कर्त्तव्य समझा। मैं सब कुछ सह लूँगी; पर आपको देवत्व के ऊँचे आसन से नीचे न गिराऊँगी। आप ज्ञानी हैं, संसार के सुख कितने अनित्य हैं, आप खूब जानते हैं। इनके प्रलोभन में न आइए। आप मनुष्य हैं। आपमें भी इच्छाएँ हैं; वासनाएँ हैं; लेकिन इच्छाओं पर विजय पाकर ही आपने यह ऊँचा पद पाया है। उसकी रक्षा कीजिए। और अध्यात्म ही आपकी मदद कर सकता है। उसी साधना से आपका जीवन सात्विक होगा और मन पवित्र होगा।

विमल ने अभी-अभी मंजुला को आमोद-प्रमोद में क्रीड़ा करते देखा था। खन्ना से उसका सम्बन्ध किस तरह का है, यह भी वह समझ रहा था। फिर भी इस उपदेश में उसे सच्ची सहानुभूति का सन्देश मिला। विलासिनी मंजुला उसे देवी के रूप में नज़र आई। उसके भीतर का अहंकार उसकी लोलुपता से बलवान् था। सद्भावना से भरकर बोला—देवीजी, आपने जिन शब्दों में मेरा सम्मान किया है उनके लिए आपका एहसानमन्द हूँ। कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

मंजुला ने उठते हुए कहा—आपकी कृपा-दृष्टि काफी है।

उसी वक्त खन्ना सिनेमा-हॉल से बाहर आता दिखाई दिया।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', सितम्बर, 1936 में प्रकाशित। 'कफन' में संकलित।]

कश्मीरी सेब

कल शाम को चौक में दो-चार जरूरी चीजें खरीदने गया था। पंजाबी मेवाफरोशों की दुकानें रास्ते ही में पड़ती हैं। एक दुकान पर बहुत अच्छे रंगदार, गुलाबी सेब सजे हुए नजर आये। जी ललचा उठा। आजकल शिक्षित समाज में विटामिन और प्रोटीन के शब्दों में विचार करने की प्रवृत्ति हो गई है। टमाटो को पहले कोई सेंत में भी न पूछता था। अब टमाटो भोजन का आवश्यक अंग बन गया है। गाजर भी पहले ग़रीबों के पेट भरने की चीज थी। अमीर लोग तो उसका हलवा ही खाते थे; मगर अब पता चला है कि गाजर में भी बहुत विटामिन है, इसलिए गाजर को भी मेजों पर स्थान मिलने लगा है। और सेब के विषय में तो यह कहा जाने लगा है कि एक सेब रोज खाइए तो आपको डाक्टरों की जरूरत न रहेगी। डाक्टर से बचने के लिए हम निमकौड़ी तक खाने को तैयार हो सकते हैं। सेब तो रस और स्वाद में अगर आम से बढ़कर नहीं है तो घटकर भी नहीं। हाँ, बनारस के लंगड़े और लखनऊ के दसहरी और बम्बई के अल्फाँसो की बात दूसरी है। उनके टक्कर का फल तो संसार में दूसरा नहीं है; मगर उनमें विटामिन और प्रोटीन है या नहीं, है तो काफ़ी है या नहीं, इन विषयों पर अभी किसी पश्चिमी डाक्टर की व्यवस्था देखने में नहीं आई। सेब को यह व्यवस्था मिल चुकी है। अब वह केवल स्वाद की चीज नहीं है, उसमें गुण भी है। हमने दुकानदार से मोल-भाव किया और आध सेर सेब माँगे।

दुकानदार ने कहा—बाबूजी बड़े मजेदार सेब आये हैं, खास कश्मीर के। आप ले जायँ, खाकर तबीयत खुश हो जायगी।

मैंने रूमाल निकालकर उसे देते हुए कहा—चुन-चुनकर रखना।

दूकानदार ने तराजू उठाई और अपने नौकर से बोला—लौंडे आध सेर कश्मीरी सेब निकाल ला। चुनकर लाना।

लौंडा चार सेब लाया। दुकानदार ने तौला, एक लिफ़ाफे में उन्हें रखा और रूमाल में बाँधकर मुझे दे दिया। मैंने चार आने उसके हाथ में रखे।

घर आकर लिफ़ाफ़ा ज्यों-का-त्यों रख दिया। रात को सेब या कोई दूसरा फल खाने का कायदा नहीं है। फल खाने का समय तो प्रातःकाल है। आज सुबह मुँह-हाथ धोकर जो नाश्ता करने के लिए एक सेब निकाला, तो सड़ा हुआ था। एक रुपये के आकार का छिलका गल गया था। समझा, रात को दुकानदार ने देखा न होगा। दूसरा निकाला। मगर यह आधा सड़ा हुआ था। अब सन्देह हुआ, दुकानदार ने मुझे धोखा तो नहीं दिया है। तीसरा सेब निकाला। यह सड़ा तो न था; मगर एक तरफ दबकर बिल्कुल पिचक गया था। चौथा देखा। वह यों तो बेदाग था; मगर उनमें एक काला सूराख था जैसा अक्सर बेरों में होता है। काटा तो भीतर वैसे ही धब्बे, जैसे किड़हे बेर में होते हैं। एक सेब भी खाने लायक नहीं। चार आने पैसों का इतना ग़म न हुआ जितना समाज के इस चारित्रिक पतन का। दुकानदार ने जान-बूझकर मेरे साथ धोखेबाजी का व्यवहार किया। एक सेब सड़ा हुआ होता, तो मैं उनको क्षमा के योग्य समझता। सोचता, उसकी निगाह न पड़ी होगी। मगर चार-के-चारों खराब निकल जायँ, यह तो साफ धोखा है। मगर इस धोखे में मेरा भी सहयोग था। मेरा उसके हाथ में रूमाल रख देना मानो उसे धोखा देने की प्रेरणा थी। उसने भाँप लिया कि यह महाशय अपनी आँखों से काम लेनेवाले जीव नहीं हैं और न इतने चौकस हैं कि घर से लौटाने आयें। आदमी बेईमानी तभी करता है जब उसे अवसर मिलता है। बेईमानी का अवसर देना, चाहे वह ढीलेपन से हो या सहज विश्वास से, बेईमानी में सहयोग देना है। पढ़े-लिखे बाबुओं और कर्मचारियों पर तो अब कोई विश्वास नहीं करता। किसी थाने या कचहरी या म्युनिसिपिलटी में चले जाइए, आपकी ऐसी दुर्गति होगी कि आप बड़ी-से-बड़ी हानि उठाकर भी उधर न जायेंगे। व्यापारियों की साख अभी तक बनी हुई थी। यों तौल में चाहे छटाँक-आध-छटाँक कस लें; लेकिन आप उन्हें पाँच की जगह भूल से दस के नोट दे आते थे तो आपको घबड़ाने की कोई जरूरत न थी। आपके रुपये सुरक्षित थे। मुझे याद है, एक बार मैंने मुहर्रम के मेले में एक खोंचे वाले से एक पैसे की रेवड़ियाँ ली थीं और पैसे की जगह अठन्नी दे आया था। घर आकर जब अपनी भूल मालूम हुई तो खोंचेवाले के पास दौड़ा गया। आशा नहीं थी कि वह अठन्नी लौटायेगा, लेकिन उसने प्रसन्नचित्त से अठन्नी लौटा दी और उलटे मुझसे क्षमा माँगी। और यहाँ कश्मीरी सेब के नाम से सड़े हुए सेब बेचे जाते हैं ! मुझे आशा है, पाठक बाजार में जाकर मेरी तरह आँखें न बन्द कर लिया करेंगे। नहीं उन्हें भी कश्मीरी सेब ही मिलेंगे।

[कहानी। 'हंस' अक्टूबर, 1936 में प्रकाशित। 'कफन' में संकलित।]

मिस पदमा

कानून में अच्छी सफलता प्राप्त कर लेने के बाद मिस पद्मा को एक नया अनुभव हुआ, वह था जीवन का सूनापन। विवाह को उन्होंने एक अप्राकृतिक बंधन समझा था और निश्चय कर लिया था कि स्वतन्त्र रहकर जीवन का उपभोग करूंगी। एम. ए. की डिग्री ली, फिर कानून पास किया और प्रैक्टिस शुरू कर दी। रूपवती थी, युवती थी, मृदुभाषिणी

थी और प्रतिभाशालिनी भी थी। मार्ग में कोई बाधा न थी। देखते-देखते वह अपने साथी नौजवान मर्द वकीलों को पीछे छोड़कर आगे निकल गयी और अब उसकी आमदनी कभी-कभी एक हज़ार से भी ऊपर बढ़ जाती। अब उतने परिश्रम और सिर-मगजन की आवश्यकता न रही। मुकदमे अधिकतर वही होते थे, जिनका उसे पूरा अनुभव हो चुका था, उनके विषय में किसी तरह की तैयारी की उसे जरूरत न मालूम होती। अपनी शक्तियों पर कुछ विश्वास भी हो गया था। कानून में कैसे विजय मिला करती है, इसके कुछ लटके भी उसे मालूम हो गये थे। इसलिए उसे अब बहुत अवकाश मिलता था और इसे वह किस्से-कहानियाँ पढ़ने, सैर करने, सिनेमा देखने, मिलने-मिलाने में खर्च करती थी। जीवन को सुखी बनाने के लिए किसी व्यसन की जरूरत को वह खूब समझती थी। उसने फूल और पौदे लगाने का व्यसन पाल लिया था। तरह-तरह के बीज और पौदे मँगाती और उन्हें उगते-बढ़ते, फूलते-फलते देखकर खुश होती; मगर फिर भी जीवन में सूनेपन का अनुभव होता रहता था। यह बात न थी कि उसे पुरुषों से विरक्ति हो। नहीं, उसके प्रेमियों की कमी न थी। अगर उसके पास केवल रूप और यौवन होता, तो भी उपासकों का अभाव न रहता; मगर यहाँ तो रूप और यौवन के साथ धन भी था। फिर रसिक-वृन्द क्यों चूक जाते ? पद्मा को विलास से घृणा थी नहीं, घृणा थी पराधीनता से, विवाह को जीवन का व्यवसाय बनाने से। जब स्वतन्त्र रहकर भोग-विलास का आनन्द उड़ाया जा सकता है, तो फिर क्यों न उड़ाया जाय ? भोग में उसे कोई नैतिक बाधा न थी, इसे वह केवल देह की एक भूख समझती थी। इस भूख को किसी साफ-सुथरी दुकान से भी शान्त किया जा सकता है। और पद्मा को साफ-सुथरी दुकान की हमेशा तलाश रहती थी। ग्राहक दुकान में वही चीज लेता है, जो उसे पसन्द आती है। पद्मा भी वही चीज चाहती थी। यों उसके दर्जनों आशिक थे—कई वकील, कई प्रोफेसर, कई डाक्टर, कई रईस। मगर ये सब-के-सब ऐय्याश थे—बेफिक्र, केवल भौंरे की तरह रस लेकर उड़ जाने वाले। ऐसा एक भी न था, जिस पर वह विश्वास कर सकती। अब उसे मालूम हुआ कि उसका मन केवल भोग नहीं चाहता, कुछ और भी चाहता है। वह चीज क्या थी ? पूरा आत्म-समर्पण और यह उसे न मिलती थी।

उसके प्रेमियों में एक मि. प्रसाद था—बड़ा ही रूपवान और धुरन्धर विद्वान्। एक कालेज में प्रोफेसर था। वह भी मुक्त-भोग के आदर्श का उपासक था और पद्मा उस पर फिदा थी। चाहती थी उसे बाँधकर रखे, सम्पूर्णतः अपना बना ले; लेकिन प्रसाद चंगुल में न आता था।

सन्ध्या हो गयी थी। पद्मा सैर करने जा रही थी कि प्रसाद आ गये। सैर करना मुल्तवी हो गया। बातचीत में सैर से कहीं ज्यादा आनन्द था और पद्मा आज प्रसाद से कुछ दिल की बात कहने वाली थी। कई दिन के सोच-विचार के बाद उसने कह डालने ही का निश्चय किया था।

उसने प्रसाद की नशीली आँखों से आँखें मिलाकर कहा—तुम यहीं मेरे बँगले में आकर क्यों नहीं रहते ?

प्रसाद ने कुटिल-विनोद के साथ कहा—नतीजा यह होगा कि दो-चार महीने में यह मुलाकात भी बन्द हो जायेगी।

'मेरी समझ में नहीं आया, तुम्हारा क्या आशय है।'

'आशय वही है, जो मैं कह रहा हूँ।'

'आखिर क्यों ?'

'मैं अपनी स्वतन्त्रता न खोना चाहूँगा, तुम अपनी स्वतन्त्रता न खोना चाहोगी। तुम्हारे पास तुम्हारे आशिक आयेंगे, मुझे जलन होगी। मेरे पास मेरी प्रेमिकाएँ आयेंगी, तुम्हें जलन होगी। मनमुटाव होगा, फिर वैमनस्य होगा और तुम मुझे घर से निकाल दोगी। घर तुम्हारा है ही ! मुझे बुरा लगेगा ही, फिर यह मैत्री कैसे निभेगी ?'

दोनों कई मिनट तक मौन रहे। प्रसाद ने परिस्थिति को इतने स्पष्ट बेलाग, लट्ठमार शब्दों में खोलकर रख दिया था कि कुछ कहने की जगह न मिलती थी !

आखिर प्रसाद ही को नुकता सूझा। बोला—जब तक हम दोनों यह प्रतिज्ञा न कर लें कि आज से मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरी हो, तब तक एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता।

'तुम यह प्रतिज्ञा करोगे ?'

'पहले तुम बतलाओ।'

'मैं करूँगी।'

'तो मैं भी करूँगा।'

'मगर इस एक बात के सिवा मैं और सभी बातों में स्वतन्त्र रहूँगी !'

'और मैं भी इस एक बात के सिवा हर बात में स्वतंत्र रहूँगा।'

'मंजूर।'

'मंजूर !'

'तो कब से ?'

'जब से तुम कहो।'

'मैं तो कहती हूँ, कल ही से।'

'तय। लेकिन अगर तुमने इसके विरुद्ध आचरण किया तो ?'

'और तुमने किया तो ?'

'तुम मुझे घर से निकाल सकती हो; लेकिन मैं तुम्हें क्या सजा दूँगा ?'

'तुम मुझे त्याग देना, और क्या करोगे ?'

'जी नहीं, तब इतने से चित्त को शान्ति न मिलेगी। तब मैं चाहूँगा तुम्हें जलील करना; बल्कि तुम्हारी हत्या करना।'

'तुम बड़े निर्दयी हो, प्रसाद ?'

'जब तक हम दोनों स्वाधीन हैं, हमें किसी को कुछ कहने का हक नहीं, लेकिन एक बार प्रतिज्ञा में बँध जाने के बाद फिर न मैं उसकी अवज्ञा सह सकूँगा, न तुम सह सकोगी। तुम्हारे पास दण्ड का साधन है, मेरे पास नहीं है। कानून मुझे कोई भी अधिकार नहीं देगा। मैं तो केवल अपने पशुबल से प्रतिज्ञा का पालन कराऊँगा और तुम्हारे इतने नौकरों के सामने मैं अकेला क्या कर सकूँगा ?'

'तुम तो चित्र का श्याम पक्ष ही देखते हो ! जब मैं तुम्हारी हो रही हूँ, तो यह मकान, नौकर-चाकर और जायदाद सब कुछ तुम्हारा है। हम-तुम दोनों जानते हैं कि ईर्ष्या से ज्यादा घृणित कोई सामाजिक पाप नहीं है। तुम्हें मुझसे प्रेम है या नहीं, मैं नहीं कह

सकती; लेकिन तुम्हारे लिए मैं सब कुछ सहने, सब कुछ करने को तैयार हूँ।'

'दिल से कहती हो पद्मा ?'

'सच्चे दिल से।'

'मगर न-जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं आ रहा है ?'

'मैं तो तुम्हारे ऊपर विश्वास कर रही हूँ।'

'यह समझ लो, मैं मेहमान बनकर तुम्हारे घर में न रहूँगा, स्वामी बनकर रहूँगा।'

'तुम घर के स्वामी ही नहीं, मेरे स्वामी बनकर रहोगे। मैं तुम्हारी स्वामिनी बन कर रहूँगी।'

2

प्रो. प्रसाद और मिस पद्मा दोनों साथ रहते हैं और प्रसन्न हैं। दोनों ही ने जीवन का जो आदर्श मन में स्थिर कर लिया था, वह सत्य बन गया है। प्रसाद को केवल दो सौ रुपये वेतन मिलता है; मगर अब वह अपनी आमदनी का दुगुना भी खर्च कर दे तो परवाह नहीं। पहले वह कभी-कभी शराब पीता था, अब रात-दिन शराब में मस्त रहता है। अब उसके लिए अलग अपनी कार है, अलग अपने नौकर हैं, तरह-तरह की बहुमूल्य चीजें मँगवाता रहता है और पद्मा बड़े हर्ष से उसकी सारी फिजूल-खर्चियाँ बर्दाश्त करती है। नहीं, बर्दाश्त करने का प्रश्न नहीं। वह खुद उसे अच्छे-से-अच्छे सूट पहनाकर अच्छे-से-अच्छे ठाठ में रखकर, प्रसन्न होती है। जैसी घड़ी इस वक्त प्रो. प्रसाद के पास है, शहर के बड़े-से-बड़े रईस के पास न होगी और पद्मा जितना ही उससे दबती है प्रसाद उतना ही उसे दबाता है। कभी-कभी उसे नागवार भी लगता है, पर किसी अज्ञात कारण से अपने को उसके वश में पाती है। प्रसाद को जरा भी उदास या चिन्तित देखकर उसका मन चंचल हो जाता है। उस पर आवाजें कसी जाती हैं; फबतियाँ चुस्त की जाती हैं। जो उसके पुराने प्रेमी थे. वे उसे जलाने और कुढ़ाने का प्रयास भी करते हैं; पर वह प्रसाद के पास आते ही सब कुछ भूल जाती है। प्रसाद ने उस पर पूरा आधिपत्य पा लिया है और उसने इसका ज्ञान पद्मा की बारीक आँखों से पढ़ा है और उसका आसन अच्छी तरह पा गया है।

मगर जैसे राजनीति के क्षेत्र में अधिकार दुरुपयोग की ओर जाता है, उसी तरह प्रेम के क्षेत्र में भी वह दुरुपयोग की ओर ही जाता है और जो कमजोर है, उसे तावान देना पड़ता है। आत्माभिमानी पद्मा अब प्रसाद की लौंडी थी और प्रसाद उसकी दुर्बलता का फायदा उठाने से क्यों चूकता ? उसने कील की पतली नोक चुभा ली थी और बड़ी कुशलता से उत्तरोत्तर उसे अन्दर ठोंकता जाता था। यहाँ तक कि उसने रात को देर में घर आना शुरू किया। पद्मा को अपने साथ न ले जाता, उससे बहाना करता कि मेरे सिर में दर्द है और जब पद्मा घूमने जाती तो अपनी कार निकाल लेता और उड़ जाता। दो साल गुजर गये थे और पद्मा को गर्भ था। वह स्थूल भी हो चली थी। उसके रूप में पहले की-सी नवीनता और मादकता न रह गई थी। वह घर की मुर्गी थी, साग बराबर।

एक दिन इसी तरह पद्मा लौटकर आयी, तो प्रसाद गायब थे। वह झुँझला उठी। इधर कई दिन से वह प्रसाद का रंग बदला हुआ देख रही थी। आज उसने कुछ स्पष्ट बातें कहने का साहस बटोरा। दस बज गये, ग्यारह बज गये, बारह बज गये, पद्मा उसके

इन्तजार में बैठी थी। भोजन ठण्डा हो गया, नौकर-चाकर सो गये। वह बार-बार उठती, फाटक पर जाकर नजर दौड़ाती। बारह-एक बजे के करीब प्रसाद घर आये।

पद्मा ने साहस तो बहुत बटोरा था; पर प्रसाद के सामने जाते ही उसे इतनी कमजोरी मालूम हुई। फिर भी उसने जरा कड़े स्वर में पूछा—आज इतनी रात तक कहाँ थे? कुछ खबर है, कितनी रात गयी ?

प्रसाद को वह इस वक्त असुन्दरता की मूर्ति-सी लगी। वह एक विद्यालय की छात्रा के साथ सिनेमा देखने गया था। बोला—तुमको आराम से सो जाना चाहिए था। तुम जिस दशा में हो, उसमें तुम्हें, जहाँ तक हो सके, आराम से रहना चाहिए।

पद्मा का साहस कुछ प्रबल हुआ—तुमसे मैं जो पूछती हूँ, उसका जवाब दो। मुझे जहन्नुम में भेजो !

'तो तुम भी मुझे जहन्नुम में जाने दो।।'

'तुम मेरे साथ दगा कर रहे हो, यह मैं साफ देख रही हूँ।'

'तुम्हारी आँखों की ज्योति कुछ बढ़ गयी होगी !'

'मैं इधर कई दिन से तुम्हारा मिजाज कुछ बदला हुआ देख रही हूँ।'

'मैंने तुम्हारे साथ अपने को बेचा नहीं है। अगर तुम्हारा जी मुझसे भर गया हो, तो मैं आज जाने को तैयार हूँ।'

'तुम जाने की धमकी क्या देते हो ! यहाँ तुमने आकर कोई बड़ा त्याग नहीं किया है।'

'मैंने त्याग नहीं किया है ? तुम यह कहने का साहस कर रही हो। मैं देखता हूँ, तुम्हारा मिजाज बिगड़ रहा है। तुम समझती हो, मैंने इसे अपंग कर दिया। मगर मैं इसी वक्त तुम्हें ठोकर मारने को तैयार हूँ, इसी वक्त, इसी वक्त !'

पद्मा का साहस जैसे बुझ गया था। प्रसाद अपना ट्रंक सँभाल रहा था। पद्मा ने दीन-भाव से कहा—मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं कही, जो तुम इतना बिगड़ उठे। मैं तो केवल तुमसे पूछ रही थी, कहाँ थे। क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं देना चाहते ? मैं कभी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नही करती और तुम मुझे बात-बात पर डाँटते रहते हो। तुम्हें मुझ पर जरा भी दया नहीं आती ! मुझे तुमसे कुछ भी तो सहानुभूति मिलनी चाहिए। मैं तुम्हारे लिए क्या कुछ करने को तैयार नहीं हूँ ? और आज जो मेरी दशा हो गयी है, तो तुम मुझसे आँखें फेर लेते हो···

उसका कण्ठ रुँध गया और मेज पर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगी। प्रसाद ने पूरी विजय पायी।

3

पद्मा के लिए मातृत्व अब बड़ा ही अप्रिय प्रसंग था। उस पर एक चिंता मँडराती रहती। कभी-कभी वह भय से काँप उठती और पछताती। प्रसाद की निरंकुशता दिन-दिन बढ़ती जाती थी। क्या करे, क्या न करे। गर्भ पूरा हो गया था, वह कोर्ट न जाती थी। दिन-भर अकेली बैठी रहती। प्रसाद सन्ध्या समय आते, चाय-वाय पीकर फिर उड़ जाते, तो ग्यारह-बारह बजे के पहले न लौटते। वह कहाँ जाते हैं, यह भी उससे छिपा न था। प्रसाद

को जैसे उसकी सूरत ने नफरत थी। पूर्ण गर्भ, पीला मुख, चिन्तित, सशंक, उदास। फिर भी वह प्रसाद को शृंगार और आभूषणों से बाँधने की चेष्टा से बाज न आती थी। मगर वह जितना ही प्रयास करती, उतना ही प्रसाद का मन उसकी ओर से फिरता था। इस अवस्था में शृंगार उसे और भद्दा लगता।

प्रसव-वेदना हो रही थी। प्रसाद का पता नहीं। नर्स मौजूद थी, लेडी डाक्टर मौजूद थी; मगर प्रसाद का न रहना पद्मा की प्रसव-वेदना को और भी दारुण बना रहा था।

बालक को गोद में देखकर उसका कलेजा फूल उठा, मगर फिर प्रसाद को सामने न पाकर उसने बालक की ओर से मुँह फेर लिया। मीठे फल में जैसे कीड़े पड़ गये हों।

पाँच दिन सौर-गृह में काटने के बाद जैसे पद्मा जेलखाने से निकली" नंगी तलवार बनी हुई। माता बनकर वह अपने में एक अद्भुत शक्ति का अनुभव कर रही थी।

उसने चपरासी को चेक देकर बैंक भेजा। प्रसव-सम्बन्धी कई बिल अदा करने थे। चपरासी खाली हाथ लौट आया।

पद्मा ने पूछा—रुपये ?

'बैंक के बाबू ने कहा, रुपये सब प्रसाद बाबू निकाल ले गये।'

पद्मा को गोली लग गयी। बीस हजार रुपये प्राणों की तरह संचित कर रखे थे, इसी शिशु के लिए। हाय ! सौर से निकलने पर मालूम हुआ, प्रसाद विद्यालय की एक बालिका को लेकर इंगलैण्ड की सैर करने चले गये। झल्लायी हुई घर में आयी, प्रसाद की तसवीर उठाकर जमीन पर पटक दी और उसे पैरों से कुचला। उसका जितना सामान था, उसे जमा करके दियासलाई लगा दी और उसके नाम पर थूक दिया।

एक महीना बीत गया था। पद्मा अपने बँगले के फाटक पर शिशु को गोद में लिए खड़ी थी। उसका क्रोध अब शोकमय निराशा बन चुका था। बालक पर कभी दया आती, कभी प्यार आता, कभी घृणा आती। उसने सड़क पर देखा, एक यूरोपियन लेडी अपने पति के साथ अपने बालक को बच्चों की गाड़ी में बिठाये लिये चली जा रही थी। उसने हसरत-भरी आँखों से उस खुशनसीब जोड़े को देखा और उसकी आँखें सजल हो गयीं।

[मूल स्रोत अज्ञात। उर्दू कहानी संग्रह 'जादे राह' (प्रथम संस्करण : 1936) में संकलित। हिन्दी रूप 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित।]

होली की छुट्टी

वर्नाक्युलर फाइनल पास करने के बाद मुझे एक प्राइमरी स्कूल में जगह मिली, जो मेरे घर से ग्यारह मील पर था। हमारे हेडमास्टर साहब को छुट्टियों में भी लड़कों को पढ़ाने की सनक थी। रात को लड़के खाना खाकर स्कूल में आ जाते और हेडमास्टर साहब चारपाई पर लेटकर अपने खर्राटों से उन्हें पढ़ाया करते। जब लड़कों में धौल-धप्पा शुरू हो जाता और शोर-गुल मचने लगता तब यकायक वह खरगोश की नींद से चौंक पड़ते और लड़कों को दो-चार तमाचे लगाकर फिर अपने सपनों के मजे लेने लगते। ग्यारह-बारह बजे रात

तक यही ड्रामा होता रहता, यहां तक कि लड़के नींद से बेकरार होकर वहीं टाट पर सो जाते। अप्रैल में सालाना इम्तहान होने वाला था, इसलिए जनवरी ही से हाय-तौबा मची हुई थी। नाइट स्कूलों पर इतनी रियायत थी कि रात की क्लासों में उन्हें न तलब किया जाता था, मगर छुट्टियां बिल्कुल न मिलती थीं। सोमवती अमावस आई और निकल गई, वसंत आया और चला गया, शिवरात्रि आई और गुजर गई, और इतवारों का तो जिक्र ही क्या है। एक दिन के लिए कौन इतना बड़ा सफर करता, इसलिए कई महीनों से मुझे घर जाने का मौका न मिला था। मगर अबकी मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि होली पर जरूर घर जाऊंगा, चाहे नौकरी से हाथ ही क्यों न धोना पड़े। मैंने एक हफ्ते पहले ही से हेडमास्टर साहब को अल्टीमेटम दे दिया कि बीस मार्च को होली की छुट्टी शुरू होगी और बंदा उन्नीस की शाम को रुखसत हो जाएगा। हेडमास्टर साहब ने मुझे समझाया कि अभी लड़के हो, तुम्हें क्या मालूम नौकरी कितनी मुश्किलों से मिलती है और कितनी मुश्किलों से निभती है, नौकरी पाना उतना मुश्किल नहीं जितना उसको निभाना। अप्रैल में इम्तहान होने वाला है, तीन-चार दिन स्कूल बंद रहा तो बताओ कितने लड़के पास होंगे ? साल-भर की सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा कि नहीं ? मेरा कहना मानो, इस छुट्टी में न जाओ, इम्तहान के बाद जो छुट्टी पड़े उसमें चले जाना। ईस्टर की चार दिन की छुट्टी होगी, मैं एक दिन के लिए भी [illegible] रोकूंगा।

मैं अपने मोर्चे पर कायम रहा, समझाने-बुझाने, डराने-धमकाने और जवाब-तलब किए जाने के हथियारों का मुझ पर असर न हुआ। उन्नीस को ज्यों ही स्कूल बंद हुआ, मैंने हेडमास्टर साहब को सलाम भी न किया और चुपके से अपने डेरे पर चला आया। उन्हें सलाम करने जाता तो वह एक-न-एक काम निकालकर मुझे रोक लेते—रजिस्टर में फीस की मीजान लगाते जाओ, औसत हाजिरी निकालते जाओ, लड़कों की कापियां जमा करके उन पर संशोधन और तारीख सब पूरी कर दो। गोया यह मेरा आखिरी सफर है और मुझे जिंदगी के सारे काम अभी खत्म कर देने चाहिए।

मकान पर आकर मैंने चटपट अपनी किताबों की पोटली उठाई, अपना हल्का लिहाफ कंधे पर रखा और स्टेशन के लिए चल पड़ा। गाड़ी पाँच बजकर पाँच मिनट पर जाती थी। स्कूल की घड़ी हाजिरी के वक्त हमेशा आधा घंटा तेज और छुट्टी के वक्त आधा घंटा सुस्त रहती थी। चार बजे स्कूल बंद हुआ था। मेरे खयाल में स्टेशन पहुंचने के लिए काफी वक्त था। फिर भी मुसाफिरों को गाड़ी की तरफ से आमतौर पर जो अंदेशा लगा रहता है, और जो घड़ी हाथ में होने पर भी और गाड़ी का वक्त ठीक मालूम होने पर भी दूर से किसी गाड़ी की गड़गड़ाहट या सीटी सुनकर कदमों को तेज और दिल को परीशान कर दिया करता है, वह मुझे भी लगा हुआ था। किताबों की पोटली भारी थी, उस पर कंधे पर लिहाफ, बार-बार हाथ बदलता और लपका चला जाता था। यहां तक कि स्टेशन कोई दो फर्लांग से नजर आया। सिगनल डाउन था। मेरी हिम्मत भी उस सिगनल की तरह डाउन हो गई, उम्र के तकाजे से एक सौ कदम दौड़ा जरूर मगर यह निराशा की हिम्मत थी। मेरे देखते-देखते गाड़ी आई, एक मिनट ठहरी और रवाना हो गई। स्कूल की घड़ी यकीनन आज और दिनों से भी ज्यादा सुस्त थी।

अब स्टेशन पर जाना बेकार था। दूसरी गाड़ी ग्यारह बजे रात को आएगी, मेरे

घरवाले स्टेशन पर कोई बारह बजे पहुंचेगी और वहां से मकान पर जाते-जाते एक बज जाएगा। इस सन्नाटे में रास्ता चलना भी एक मोर्चा था जिसे जीतने की मुझमें हिम्मत न थी। जी में तो आया कि चलकर हेडमास्टर को आड़े हाथों लूं मगर जब्त किया और पैदल चलने के लिए तैयार हो गया। कुल बारह मील ही तो हैं, अगर दो मील फी घंटा भी चलूं तो छः घंटे में घर पहुंच सकता हूं। अभी पांच बजे हैं, जरा कदम बढ़ाता जाऊं तो दस बजे यकीनन पहुंच जाऊंगा। अम्मा और मुन्नू मेरा इंतजार कर रहे होंगे, पहुंचते ही गरम-गरम खाना मिलेगा। कोल्हाड़े में गुड़ पक रहा होगा, वहां से गरम-गरम रस पीने को आ जाएगा और जब लोग सुनेंगे कि मैं इतनी दूर से पैदल चला आया हूं तो उन्हें कितना अचरज होगा! मैंने फौरन गंगा की तरफ पैर बढ़ाया। यह कस्बा नदी के किनारे था और मेरे गांव की सड़क नदी के उस पार से थी। मुझे इस रास्ते से जाने का कभी संयोग न हुआ था, मगर इतना सुना था कि कच्ची सड़क सीधी चली जाती है, परीशानी की कोई बात न थी, दस मिनट में नाव उस पार पहुंच जाएगी और बस फर्राटे भरता हुआ चल दूंगा। बारह मील कहने को तो होते हैं, हैं तो कुल छः कोस !

मगर घाट पर पहुंचा तो नाव में आधे मुसाफिर भी न बैठे थे। मैं कूदकर जा बैठा। खेवे के पैसे भी निकालकर दे दिए लेकिन नाव है कि वहीं अचल ठहरी हुई है। मुसाफिरों की संख्या काफी नहीं है, कैसे खुले। लोग तहसील और कचहरी से आते-जाते हैं और बैठते जाते हैं और मैं हूं कि अंदर-ही-अंदर भुना जाता हूं। सूरज नीचे दौड़ा चला जा रहा है, गोया मुझसे बाजी लगाए हुए है। अभी सफेद था, फिर पीला होना शुरू हुआ और देखते-देखते लाल हो गया। नदी के उस पार क्षितिज पर लटका हुआ, जैसे कोई डोल कुएं पर लटक रहा है। हवा में कुछ खुनकी भी आ गई और भूख भी मालूम होने लगी। मैंने आज घर जाने की खुशी और हड़बड़ी में रोटियां न पकाई थीं, सोचा था कि शाम को तो घर पहुंच जाऊंगा, लाओ एक पैसे के चने लेकर खा लूं। उन दानों ने इतनी देर तक तो साथ दिया, अब पेट की पेचीदगियों में जाकर न जाने कहां गुम हो गए। मगर क्या गम है, रास्ते में क्या दुकानें न होंगी, दो-चार पैसे की मिठाइयां लेकर खा लूंगा।

जब नाव उस किनारे पहुंची तो सूरज की सिर्फ आखिरी सांस बाकी थी, हालांकि नदी का पाट बिल्कुल पेंदे में चिमटकर रह गया था।

मैंने पोटली उठाई और तेजी से चला। दोनों तरफ चने के खेत थे जिनके ऊदे फूलों पर ओस का हल्का-सा पर्दा पड़ चला था। बेअख्तियार एक खेत में घुसकर बूट उखाड़ लिए और टूंगता हुआ भागा।

2

सामने बारह मील की मंजिल है, कच्चा सुनसान रास्ता, शाम हो गई है, मुझे पहली बार अपनी गलती मालूम हुई। लेकिन बचपन के जोश ने कहा कि क्या बात है, एक-दो मील तो दौड़ सकते हैं। बारह को मन में सत्तरह सौ साठ से गुणा किया, बीस हजार गज ही तो होते हैं। बारह मील के मुकाबिले में बीस हजार गज कुछ हल्के और आसान मालूम हुए। और जब दो-तीन मील रह जाएगा तब तो एक तरह से अपने गांव ही में हूंगा, उसका क्या शुमार। हिम्मत बंध गई। इक्के-दुक्के मुसाफिर भी पीछे चले आ रहे थे। और भी इत्मीनान हुआ।

अंधेरा हो गया है। मैं लपका जा रहा हूं। सड़क के किनारे दूर से एक झोंपडी नजर आती है। एक कुप्पी जल रही है। जरूर किसी बनिये की दुकान होगी। और कुछ न होगा तो गुड़ और चने तो मिल ही जाएंगे। कदम और तेज करता हूं। झोंपड़ी आती है। उसके सामने एक क्षण के लिए खड़ा हो जाता हूं। चार-पांच आदमी उकड़ूं बैठे हुए हैं, बीच में एक बोतल है, हर एक के सामने एक-एक कुल्हड़। दीवार से मिली हुई ऊंची गद्दी है, उस पर साहजी बैठे हुए हैं, उनके सामने कई बोतलें रखी हुई हैं। जरा और पीछे हटकर एक आदमी कड़ाही में सूखे मटर भून रहा है। उसकी सोंधी खुशबू मेरे शरीर में बिजली की तरह दौड़ जाती है। बेचैन होकर जेब में हाथ डालता हूं और एक पैसा निकालकर उसकी तरफ चलता हूं लेकिन पांव आप-ही-आप रुक जाते हैं—यह कलवरिया है।

खोंचे वाला पूछता है—क्या लोगे ?

मैं कहता हूं—कुछ नहीं।

और आगे बढ़ जाता हूं। दुकान भी मिली तो शराब की, गोया दुनिया में इंसान के लिए शराब ही सबसे जरूरी चीज है। यह सब आदमी धोबी और चमार होंगे, दूसरा कौन शराब पीता है, देहात में। मगर वह मटर का आकर्षक सोंधापन मेरा पीछा कर रहा है और मैं भागा जा रहा हूं।

किताबों की पोटली जी का जंजाल हो गई है, ऐसी इच्छा होती है कि इसे यहीं सड़क पर पटक दूं। उसका वजन मुश्किल से पांच सेर होगा, मगर इस वक्त वह मुझे मनभर से ज्यादा मालूम हो रही है। शरीर में कमजोरी महसूस हो रही है। पूरनमासी का चांद पेड़ों के ऊपर जा बैठा है और पत्तियों के बीच से जमीन की तरफ झांक रहा है। मैं बिल्कुल अकेला चला जा रहा हूं मगर दर्द बिल्कुल नहीं है, भूख ने सारी चेतना को दबा रखा है और खुद उन पर हावी हो गई है।

आहा हा, यह गुड़ की खुशबू कहां से आई ! कहीं ताजा गुड़ पक रहा है। कोई गांव करीब ही होगा। हां, वह आमों के झुरमुट में रोशनी नजर आ रही है। लेकिन वहां पैसे-दो पैसे का गुड़ कौन बेचेगा और यों मुझसे मांगा न जाएगा, मालूम नहीं लोग क्या समझें। आगे बढ़ता हूं, मगर जबान से राल टपक रही है। गुड़ से मुझे बड़ा प्रेम है। जब कभी किसी चीज की दुकान खोलने की सोचता था तो वह हलवाई की दुकान होती थी। बिक्री हो या न हो, मिठाइयां तो खाने को मिलेंगी। हलवाइयों को देखो, मारे मोटापे के हिल नहीं सकते। लेकिन वह बेवकूफ होते हैं, आरामतलबी के मारे तोंद निकाल लेते हैं, मैं कसरत करता रहूंगा। मगर गुड़ की वह धीरज की परीक्षा लेने वाली, भूख को तेज करने वाली खुशबू बराबर आ रही है। मुझे वह घटना याद आती है, जब अम्मां तीन महीने के लिए अपने मैके या मेरी ननिहाल गई थीं और मैंने तीन महीने में एक मन गुड़ का सफाया कर दिया था। यही गुड़ के दिन थे। नाना बीमार थे, अम्मां को बुला भेजा था। मेरा इम्तहान पास था इसलिए मैं उनके साथ न जा सका, मुन्नू को लेती गई। जाते वक्त उन्होंने एक मन गुड़ लेकर एक मटके में रखा और उसके मुंह पर एक सकोरा रखकर मिट्टी से बंद कर दिया। मुझे सख्त ताकीद कर दी कि मटका न खोलना। मेरे लिए थोड़ा-सा गुड़ एक हांड़ी में रख दिया था। वह हांड़ी मैंने एक हफ्ते में सफाचट कर दी। सुबह को दूध के साथ गुड़, दोपहर को रोटियों के साथ गुड़, तीसरे पहर दानों के साथ गुड़, रात को फिर दूध के साथ

गुड़। यहां तक जायज खर्च था जिस पर अम्मां को भी कोई एतराज न हो सकता। मगर स्कूल से बार-बार पानी पीने के बहाने घर में आता और दो-एक पिंडियां निकालकर खा लेता। उसकी बजट में कहां गुंजाइश थी। और मुझे गुड़ का कुछ ऐसा चस्का पड़ गया कि हर वक्त वही नशा सवार रहता। मेरा घर में आना गुड़ के सिर शामत आना था। एक हफ्ते में हांड़ी ने जवाब दे दिया। मगर मटका खोलने की सख्त मनाही थी और अम्मां के घर आने में अभी पौने तीन महीने बाकी थे। एक दिन तो मैंने बड़ी मुश्किल से जैसे-तैसे सब्र किया लेकिन दूसरे दिन एक आह के साथ सब्र जाता रहा और मटके की एक मीठी चितवन के साथ होश रुखसत हो गया। मैंने महापाप की भावना के साथ मटके को खोला और हांड़ी भर गुड़ निकालकर उसी तरह मटके को बंद कर दिया और संकल्प कर लिया कि इस हांड़ी को तीन महीने चलाऊंगा। चले या न चले, मैं चलाए जाऊंगा। मटके को वह सात मंजिल समझूंगा जिसे रुस्तम भी न खोल सका था। मैंने मटके की पिंडियों को कुछ इस तरह कैंची लगाकर रखा कि जैसे बाज दुकानदार दियासलाई की डिबियां भर देते हैं। एक हांड़ी गुड़ खाली हो जाने पर भी मटका मुंहोमुंह भरा था। अम्मां को पता ही न चलेगा, सवाल-जवाब की नौबत कैसे आएगी। मगर दिल और जबान में वह खींच-तान शुरू हुई कि क्या कहूं, और हर बार जीत जबान ही के हाथ रहती। यह दो अंगुल की जीभ दिल जैसे शहजोर पहलवान को नचा रही थी, जैसे मदारी बंदर को नचाये—उसको, जो आकाश में उड़ता है और सातवें आसमान के मंसूबे बांधता है और अपने जोम में फरऊन को भी कुछ नहीं समझता। बार-बार इरादा करता, दिन-भर में पांच पिंडियों से ज्यादा न खाऊं, लेकिन यह इरादा शराबियों की तोबा की तरह घंटे-दो घंटे से ज्यादा न टिकता। अपने को कोसता, धिक्कारता—गुड़ तो खा रहे हो मगर बरसात में सारा शरीर सड़ जाएगा, गंधक का मलहम लगाए घूमोगे, कोई तुम्हारे पास बैठना भी न पसंद करेगा। कसमें खाता, विद्या की, मां की, स्वर्गीय पिता की, गऊ की, ईश्वर की—मगर उनका भी वही हाल होता। दूसरा हफ्ता खत्म होते-होते हांड़ी भी खत्म हो गई। उस दिन मैंने बड़े भक्तिभाव से ईश्वर से प्रार्थना की—भगवान्, यह मेरा चंचल लोभी मन मुझे परेशान कर रहा है, मुझे शक्ति दो कि उसको वश में रख सकूं। मुझे अष्टधात की लगाम दो जो उसके मुंह में डाल दूं ! यह अभागा मुझे अम्मां से पिटवाने और घुड़कियां खिलवाने पर तुला हुआ है, तुम्हीं मेरी रक्षा करो तो बच सकता हूं। भक्ति की विह्वलता के मारे मेरी आंखों से दो-चार बूंद आंसुओं की भी गिरीं लेकिन ईश्वर ने भी इसकी सुनवाई न की और गुड़ की बुभुक्षा मुझ पर छाई रही, यहां तक कि दूसरी हांड़ी का मर्सिया पढ़ने की नौबत आ पहुंची।

संयोग से उन्हीं दिनों तीन दिन की छुट्टी हुई और मैं अम्मां से मिलने ननिहाल गया। अम्मां ने पूछा—गुड़ का मटका देखा है ? चींटे तो नहीं लगे ? सीलन तो नहीं पहुंची ? मैंने मटके को देखने की भी कसम खाकर अपनी ईमानदारी का सबूत दिया। अम्मां ने मुझे गर्व के नेत्रों से देखा और मेरे आज्ञा-पालन के पुरस्कार-स्वरूप मुझे एक हांड़ी निकाल लेने की इजाजत दे दी, हां, ताकीद भी कर दी कि मटके का मुंह अच्छी तरह बंद कर देना। अब तो वहां मुझे एक-एक दिन एक-एक युग मालूम होने लगा। चौथे दिन घर आते ही मैंने पहला काम जो किया वह मटका खोलकर हांडी भर गुड़ निकालना था। एकबारगी पांच पिंडियां उड़ा गया। फिर वही गुड़बाजी शुरू हुई। अब क्या गम है, अम्मां की इजाजत मिल गई थी।

सैयां भए कोतवाल, और आठ दिन में हांड़ी गायब ! आखिर मैंने अपने दिल की कमजोरी से मजबूर होकर मटके की कोठरी के दरवाजे पर ताला डाल दिया और उसकी कुंजी दीवार की एक मोटी संधि में डाल दी। अब देखें तुम कैसे गुड़ खाते हो। इस संधि में से कुंजी निकालने का मतलब यह था कि तीन हाथ दीवार खोद डाली जाए और यह हिम्मत मुझमें न थी। मगर तीन दिन में ही मेरे धीरज का प्याला छलक उठा और इन तीन दिनों में भी दिल की जो हालत थी वह बयान से बाहर है। शीरीं, यानी मीठे गुड़ की कोठरी की तरफ से बार-बार गुजरता और अधीर नेत्रों से देखता और हाथ मलकर रह जाता। कई बार ताले को खटखटाया, खींचा, झटके दिए, मगर जालिम जरा भी न हुमसा। कई बार जाकर उस संधि की जांच-पड़ताल की, उसमें झांककर देखा, एक लकड़ी से उसकी गहराई का अन्दाजा लगाने की कोशिश की मगर उसकी तह न मिली। तबीयत खोई हुई-सी रहती, न खाने-पीने में कुछ मजा था, न खेलने-कूदने में। वासना बार-बार युक्तियों के जोर से दिल को कायल करने की कोशिश करती। आखिर गुड़ और किस मर्ज की दवा है ! मैं उसे फेंक तो देता नहीं, खाता ही तो हूं, क्या आज खाया और क्या एक महीने बाद खाया, इसमें क्या फर्क है ! अम्मां ने मनाही की है बेशक, लेकिन उन्हें मुझे एक उचित काम से अलग रखने का क्या हक है? अगर वह आज कहें खेलने मत जाओ या पेड़ पर मत चढ़ो या तालाब में तैरने मत जाओ, या चिड़ियों के लिए कंपा मत लगाओ, तितलियां मत पकड़ो, तो क्या मैं माने लेता हूं ? आखिर मेरे भी कुछ अधिकार हैं या नहीं ! तो फिर इस एक मामले में क्यों अम्मां की मनाही पर अपनी इच्छाओं का बलिदान कर दूं ? आखिर चौथे दिन वासना की जीत हुई। मैंने तड़के उठकर एक कुदाल लेकर दीवार खोदना शुरू किया। संधि थी ही, खोदने में ज्यादा देर न लगी, आध घंटे के घनघोर परिश्रम के बाद दीवार से कोई गज भर लंबा और तीन इंच मोटा चप्पड़ टूटकर नीचे गिर पड़ा और संधि की तह में वह सफलता की कुंजी पड़ी हुई थी, जैसे समुंदर की तह में मोती की सीप पड़ी हो। मैंने झटपट उसे निकाला और फौरन दरवाजा खोला, मटके से गुड़ निकालकर हांड़ी में भरा और दरवाजा बंद कर दिया। मटके में इस लूटपाट से स्पष्ट कमी पैदा हो गई थी। हजार तरकीबें आजमाने पर भी उसका गढ़ा न भरा। मगर अबकी बार मैंने इस चटोरेपन का अम्मां की वापसी तक खात्मा कर देने के लिए कुंजी को कुएं में डाल दिया। किस्सा लंबा है, मैंने कैसे ताला तोड़ा, कैसे गुड़ निकाला और मटका खाली हो जाने पर कैसे उसे फोड़ा और उसके टुकड़े रात को कुएं में फेंके और अम्मां आईं तो मैंने कैसे रो-रोकर उनसे मटके के चोरी जाने की कहानी कही, यह बयान करने लगा तो यह घटना जो मैं आज लिखने बैठा हूं, अधूरी रह जाएगी।

चुनांचे इस वक्त गुड़ की उस मीठी प्यारी खुशबू ने मुझे बेसुध बना दिया मगर मैं सब्र करके आगे बढ़ा।

ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, शरीर थकान से चूर होता जाता था, यहां तक कि पांव कांपने लगे। कच्ची सड़क पर गाड़ियों के पहियों की लीक पड़ गई थी। जब कभी लीक में पांव चला जाता तो मालूम होता किसी गहरे गढ़े में गिर पड़ा हूं। बार-बार जी में आता, यहीं सड़क के किनारे लेट जाऊं। किताबों की छोटी-सी पोटली मनभर की लगती थी। अपने को कोसता था कि किताबें लेकर क्यों चला। दूसरी जबान का इम्तहान देने की तैयारी कर

रहा था मगर छुट्टियों में एक दिन भी तो किताब खोलने की नौबत न आएगी, खामखाह यह बोझा उठाए चला आता हूं। ऐसा जी झुंझलाता था कि इस मूर्खता के बोझ को वहीं पटक दूं। आखिर टांगों ने चलने से इंकार कर दिया। एक बार मैं गिर पड़ा और सम्हलकर उठा तो पांव थरथरा रहे थे। अब बगैर कुछ खाये पैर उठाना दूभर था, मगर यहां क्या खाऊं। बार-बार रोने को जी चाहता था। संयोग से एक ईख का खेत नजर आया; अब मैं अपने को न रोक सका। चाहता था कि खेत में घुसकर चार-पांच ईख तोड़ लूं और मजे से रस चूसता हुआ चलूं। रास्ता भी कट जाएगा और पेट में कुछ पड़ भी जाएगा। मगर मेंड़ पर पांव रखा ही था कि कांटों में उलझ गया। किसान ने शायद मेंड़ पर कांटे बिखेर दिए थे। शायद बेर की झाड़ी थी। धोती-कुर्ता सब कांटों में फंसा हुआ, पीछे हटा तो कांटों की झाड़ी साथ-साथ चली, कपड़े छुड़ाने लगा तो हाथ में कांटे चुभने लगे। जोर से खींचा तो धोती फट गई। भूख तो गायब हो गई, फिक्र हुई कि इस नई मुसीबत से क्योंकर छुटकारा हो। कांटों को एक जगह से अलग करता तो दूसरी जगह चिमट जाते, झुकता तो शरीर में चुभते, किसी को पुकारूं तो चोरी खुली जाती है, अजीब मुसीबत में पड़ा हुआ था। उस वक्त मुझे अपनी हालत पर रोना आ गया। कोई रेगिस्तानों की खाक छानने वाला आशिक भी इस तरह कांटों में न फंसा होगा ! बड़ी मुश्किल से आध घंटे में गला छूटा, मगर धोती और कुर्ते के माथे गई, हाथ और पांव छलनी हो गए वह घाते में। अब एक कदम आगे रखना मुहाल था। मालूम नहीं कितना रास्ता तय हुआ, कितना बाकी है, न कोई आदमी न आदमजाद, किससे पूछूं। अपनी हालत पर रोता हुआ जा रहा था। एक बड़ा गांव नजर आया। बड़ी खुशी हुई। कोई-न-कोई दुकान मिल ही जाएगी। कुछ खा लूंगा और किसी के सायबान में पड़ रहूंगा, सुबह देखी जाएगी।

मगर देहातों में लोग सरे-शाम सोने के आदी होते हैं। एक आदमी कुएं पर पानी भर रहा था। उससे पूछा तो उसने बहुत ही निराशाजनक उत्तर दिया—अब यहां कुछ न मिलेगा। बनिये नमक-तेल रखते हैं। हलवाई की दूकान एक भी नहीं। कोई शहर थोड़े ही है, इतनी रात तक दुकान खोले कौन बैठा रहे !

मैंने उससे बड़े विनती के स्वर में कहा—कहीं सोने की जगह मिल जाएगी ?

उसने पूछा—कौन हो तुम ? तुम्हारी जान-पहचान का यहां कोई है ?

"जान-पहचान का कोई होता तो तुमसे क्यों पूछता ?"

"तो भाई, अनजान आदमी को यहां नहीं ठहरने देंगे। इसी तरह कल एक मुसाफिर आकर ठहरा था, रात को एक घर में सेंध पड़ गई, सुबह को मुसाफिर का पता न था।"

"तो क्या तुम समझते हो, मैं चोर हूं ?"

"किसी के माथे पर तो लिखा नहीं होता, अंदर का हाल कौन जाने !"

"नहीं ठहराना चाहते न सही, मगर चोर तो न बनाओ। मैं जानता यह इतना मनहूस गांव है तो इधर आता ही क्यों ?"

मैंने ज्यादा खुशामद न की, जी जल गया। सड़क पर आकर फिर आगे चल पड़ा। इस वक्त मेरे होश ठिकाने न थे। कुछ खबर नहीं किस रास्ते से गांव में आया था और किधर चला जा रहा था। अब मुझे अपने घर पहुंचने की उम्मीद न थी। रात यों ही भटकते हुए गुजरेगी, फिर इसका क्या गम कि कहां जा रहा हूं। मालूम नहीं कितनी देर तक मेरे

दिमाग की यह हालत रही। अचानक एक खेत में आग जलती दिखाई पड़ी कि जैसे आशा का दीपक हो। जरूर वहां कोई आदमी होगा। शायद रात काटने को जगह मिल जाए। कदम तेज किए और करीब पहुंचा कि यकायक एक बड़ा-सा कुत्ता भूंकता हुआ मेरी तरफ दौड़ा। इतनी डरावनी आवाज थी कि मैं कांप उठा। एक पल में वह मेरे सामने आ गया और मेरी तरफ लपक-लपककर भूंकने लगा। मेरे हाथों में किताबों की पोटली के सिवा और क्या था, न कोई लकड़ी थी न पत्थर, कैसे भगाऊं, कहीं बदमाश मेरी टांग पकड़ ले तो क्या करूं। अंग्रेजी नस्ल का शिकारी कुत्ता मालूम होता था। मैं जितना ही धत्-धत् करता था उतना ही वह गरजता था। मैं खामोश खड़ा हो गया और पोटली जमीन पर रखकर पांव से जूते निकाल लिए, अपनी हिफाजत के लिए कोई हथियार तो हाथ में हो ! उसकी तरफ गौर से देख रहा था कि खतरानाक हद तक मेरे करीब आए तो उसके सिर पर इतने जोर से नालदार जूता मार दूं कि याद ही तो करे लेकिन शायद उसने मेरी नीयत ताड़ ली और इस तरह मेरी तरफ झपटा कि मैं कांप गया और जूते हाथ से छूटकर जमीन पर गिर पड़े। और उसी वक्त मैंने डरी हुई आवाज में पुकारा—अरे खेत में कोई है, देखो यह कुत्ता मुझे काट रहा है ! ओ महतो, देखो तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।

जवाब मिला—कौन है ?

"मैं हं राहगीर, तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।"

"नहीं, काटेगा नहीं, डरो मत। कहां जाना है ?"

"महमूदनगर।"

"महमूदनगर का रास्ता तो तुम पीछे छोड़ आए, आगे तो नदी है।"

मेरा कलेजा बैठ गया, रुआंसा होकर बोला—महमूदनगर का रास्ता कितनी दूर छूट गया है ?

"यही कोई तीन मील।"

और एक लहीम-शहीम आदमी हाथ में लालटेन लिए हुए आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। सर पर हैट था, एक मोटा फौजी ओवरकोट पहने हुए, नीचे निकर, पांव में फुलबूट, बड़ा लंबा-तड़ंगा, बड़ी-वड़ी मूंछें, गोरा रंग, साकार पुरुप-सौंदर्य। बोला—तुम तो कोई स्कूल के लड़के मालूम होते हो।

"लड़का तो नहीं हूं, लड़कों का मुदर्रिस हूं, घर जा रहा हूं। आज से तीन दिन की छुट्टी है।"

"तो रेल से क्यों नहीं गए ?"

"रेल छूट गई और दूसरी एक बजे छूटती है।"

"वह अभी तुम्हें मिल जाएगी। बारह का अमल है। चलो, मैं स्टेशन का रास्ता दिखा दूं।"

"कौन-से स्टेशन का ?"

"भगवन्तपुर का।"

"भगवन्तपुर ही से तो मैं चला हूं। बहुत पीछे छूट गया होगा।"

"बिल्कुल नहीं, तुम भगवन्तपुर स्टेशन से एक मील के अंदर खड़े हो। चलो, मैं तुम्हें स्टेशन का रास्ता दिखा दूं। अभी गाड़ी मिल जाएगी। लेकिन रहना चाहो तो मेरे

झोंपड़े में लेट जाओ। कल चले जाना।''

अपने ऊपर गुस्सा आया कि सर पीट लूं। पांच बजे से तेली के बैल की तरह घूम रहा हूं और अभी भगवन्तपुर से कुल एक मील आया हूं। रास्ता भूल गया। यह घटना भी याद रहेगी कि चला छः घंटे और तय किया एक मील। घर पहुंचने की धुन जैसे और भी दहक उठी।

बोला—नहीं, कल तो होली है। मुझे रात को पहुंच जाना चाहिए।

''मगर रास्ता पहाड़ी है, ऐसा न हो कोई जानवर मिल जाए। अच्छा चलो, मैं तुम्हें पहुचाए देता हूं, मगर तुमने बड़ी गलती की, अनजान रास्ते में रात को पैदल चलना कितना खतरनाक है। अच्छा चलो, मैं पहुंचाए देता हूं। खैर, यहीं खड़े रहो, मैं अभी आता हूं।''

कुत्ता दुम हिलाने लगा और मुझसे दोस्ती करने का इच्छुक जान पड़ा। दुम हिलाता हुआ, सिर झुकाए क्षमा-याचना के रूप में मेरे सामने आकर खड़ा हुआ। मैंने भी बड़ी उदारता से उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। क्षण भर में वह आदमी बंदूक कंधे पर रखे आ गया और बोला—चलो, मगर अब ऐसी नादानी न करना, खैरियत हुई कि मैं तुम्हें मिल गया। नदी पर पहुंच जाते तो जरूर किसी जानवर से मुठभेड़ हो जाती।

मैंने पूछा—आप तो कोई अंग्रेज मालूम होते हैं, मगर आपकी बोली बिल्कुल हमारे जैसी है ?

उसने हंसकर कहा—हां, मेरा बाप अंग्रेज था, फौजी अफसर। मेरी उम्र यहीं गुजरी है। मेरी मां उसका खाना पकाती थी। मैं भी फौज में रह चुका हूं। योरोप की लड़ाई में गया था, अब पेंशन पाता हूं। लड़ाई में मैंने जो दृश्य अपनी आंखों से देखे और जिन हालात में मुझे जिंदगी बसर करनी पड़ी और मुझे अपनी इंसानियत का जितना खून करना पड़ा उससे इस पेशे से मुझे नफरत हो गई और मैं पेंशन लेकर यहां चला आया। मेरे पापा ने यहीं एक छोटा-सा घर बना लिया था। मैं यहीं रहता हूं और आस-पास के खेतों की रखवाली करता हूं। यह गंगा की घाटी है। चारों तरफ पहाड़ियां हैं। जंगली जानवर बहुत लगते हैं। सूअर, नीलगाय, हिरन सारी खेती बर्बाद कर देते हैं। मेरा काम है, जानवरों से खेती की हिफाजत करना। किसानों से मुझे हल पीछे एक मन गल्ला मिल जाता है। वह मेरे गुजर-बसर के लिए काफी होता है। मेरी बुढ़िया मां अभी जिंदा है। जिस तरह पापा का खाना पकाती थी, उसी तरह अब मेरा खाना पकाती है। कभी-कभी मेरे पास आया करो, मैं तुम्हें कसरत करना सिखा दूंगा, साल-भर में पहलवान हो जाओगे।

मैंने पूछा—आप अभी तक कसरत करते हैं ?

वह बोला—हां, दो घंटे रोजाना कसरत करता हूं। मुगदर और लेजिम का मुझे बहुत शौक है। मेरा पचासवां साल है, मगर एक सांस में पांच मील दौड़ सकता हूं। कसरत न करूं तो इस जंगल में रहूं कैसे। मैंने खूब कुश्तियां लड़ी हैं। अपनी रेजीमेंट में खूब मजबूत आदमी था। मगर अब इस फौजी जिंदगी की हालतों पर गौर करता हूं तो शर्म और अफसोस से मेरा सर झुक जाता है। कितने ही बेगुनाह मेरी राइफल के शिकार हुए। मेरा उन्होंने क्या नुकसान किया था ? मेरी उनसे कौन-सी अदावत थी ? मुझे तो जर्मन और

आस्ट्रियन सिपाही भी वैसे ही सच्चे, वैसे ही बहादुर, वैसे ही खुशमिजाज, वैसे ही हमदर्द मालूम हुए जैसे फ्रांस या इंग्लैण्ड के। हमारी उनसे खूब दोस्ती हो गई थी, साथ खेलते थे, साथ बैठते थे, यह खयाल ही न आता था कि यह लोग हमारे अपने नहीं हैं। मगर फिर भी हम एक-दूसरे के खून के प्यासे थे। किसलिए ? इसीलिए कि बड़े-बड़े अंग्रेज सौदागरों को खतरा था कि कहीं जर्मनी उनका रोजगार न छीन ले। यह सौदागरों का राज है। हमारी फौजें उन्हीं के इशारों पर नाचने वाली कठपुतलियां हैं। जान हम गरीबों की गईं, जेबें गर्म हुईं मोटे-मोटे सौदागरों की। उस वक्त हमारी ऐसी खातिर होती थी, ऐसी पीठ ठोंकी जाती थी, गोया हम सल्तनत के दामाद हैं। हमारे ऊपर फूलों की बारिश होती थी, हमें गार्डन पार्टियां दी जाती थीं, हमारी बहादुरी की कहानियां रोजाना अखबारों में तस्वीरों के साथ छपती थीं। नाजुकबदन लेडियां और शहजादियां हमारे लिए कपड़े सीती थीं, तरह-तरह के मुरब्बे और अचार बना-बनाकर भेजती थीं। लेकिन जब सुलह हो गई तो उन्हीं जांबाजियों को कोई टके को भी न पूछता था। कितनों ही के अंग-भंग हो गए थे, कोई लूला हो गया था, कोई लंगड़ा, कोई अंधा। उन्हें एक टुकड़ा रोटी भी देने वाला कोई न था। मैंने कितनों ही को सड़क पर भीख मांगते देखा। तब से मुझे इस पेशे से नफरत हो गई। मैंने यहां आकर यह काम अपने जिम्मे ले लिया और खुश हूं। सिपहगिरी इसलिए है कि उससे गरीबों की जान-माल की हिफाजत हो, इसलिए नहीं कि करोड़पतियों की बेशुमार दौलत और बढ़े। यहां मेरी जान हमेशा खतरे में रहती है। कई बार मरते-मरते बचा हूं लेकिन इस काम में मर भी जाऊं तो मुझे अफसोस न होगा, क्योंकि मुझे यह तस्कीन होगी कि मेरी जिंदगी गरीबों के काम आई। और यह बेचारे किसान मेरी कितनी खातिर करते हैं कि तुमसे क्या कहूं। अगर मैं बीमार पड़ जाऊं और उन्हें मालूम हो जाए कि मैं उनके शरीर के ताजे खून से अच्छा हो जाऊंगा तो बिना झिझके अपना खून दे देंगे। पहले मैं बहुत शराब पीता था। मेरी बिरादरी को तो तुम जानते होगे। हममें बहुत ज्यादा लोग ऐसे हैं, जिनको खाना मयस्सर हो या न हो मगर शराब जरूर चाहिए। मैं भी एक बोतल शराब रोज पी जाता था। बाप ने काफी पैसे छोड़े थे। अगर किफायत से रहना जानता तो जिंदगी-भर आराम से पड़ा रहता। मगर शराब ने सत्यानाश कर दिया। उन दिनों मैं बड़े ठाठ से रहता था। कालर-टाई लगाए, छैला बना हुआ, नौजवान छोकरियों से आंखें लड़ाया करता था। घुड़दौड़ में जुआ खेलना, शराब पीना, क्लब में ताश खेलना और औरतों से दिल बहलाना, यही मेरी जिंदगी थी। तीन-चार साल में मैंने पचीस-तीस हजार रुपये उड़ा दिए। कौड़ी कफन को न रखी। जब पैसे खतम हो गए तो रोजी की फिक्र हुई। फौज में भर्ती हो गया। मगर खुदा का शुक्र है कि वहां से कुछ सीखकर लौटा। यह सच्चाई मुझ पर खुल गई कि बहादुर का काम जान लेना नहीं, बल्कि जान की हिफाजत करना है।

"योरोप से आकर एक दिन मैं शिकार खेलने लगा और इधर आ गया। देखा, कई किसान अपने खेतों के किनारे उदास खड़े हैं। मैंने पूछा क्या बात है ? तुम लोग क्यों इस तरह उदास खड़े हो ? एक आदमी ने कहा—क्या करें साहब, जिंदगी से तंग हैं। न मौत आती है न पैदावार होती है। सारे जानवर आकर खेत चर जाते हैं। किसके घर से लगान चुकाएं, क्या महाजन को दें, क्या अमलों को दें और क्या खुद खाएं ? कल इन्हीं खेतों को देखकर दिल की कली खिल जाती थी, आज इन्हें देखकर आंखों में आंसू आ जाते हैं।

जानवरों ने सफाया कर दिया।

"मालूम नहीं उस वक्त मेरे दिल पर किस देवता या पैगंबर का साया था कि मुझे उन पर रहम आ गया। मैंने कहा—आज से मैं तुम्हारे खेतों की रखवाली करूंगा। क्या मजाल कि कोई जानवर फटक सके। एक दाना जो जाए तो जुर्माना दूं। बस, उस दिन से आज तक मेरा यही काम है। आज दस साल हो गए, मैंने कभी नागा नहीं किया। अपना गुजर भी होता है और एहसान मुफ्त मिलता है और सबसे बड़ी बात यह है कि इस काम से दिल को खुशी होती है।"

नदी आ गई। मैंने देखा वही घाट है जहां शाम को किश्ती पर बैठा था। उस चांदनी में नदी जड़ाऊ गहनों से लदी हुई जैसे कोई सुनहरा सपना देख रही हो।

मैंने पूछा—आपका नाम क्या है ? कभी-कभी आपके दर्शन के लिए आया करूंगा।

उसने लालटेन उठाकर मेरा चेहरा देखा और बोला—मेरा नाम जैक्सन है। बिल जैक्सन। जरूर आना। स्टेशन के पास जिससे मेरा नाम पूछोगे, मेरा पता बतला देगा।

यह कहकर वह पीछे की तरफ मुड़ा, मगर यकायक लौट पड़ा और बोला—मगर तुम्हें यहां सारी रात बैठना पड़ेगा और तुम्हारी अम्मां घबरा रही होंगी। तुम मेरे कंधे पर बैठ जाओ तो मैं तुम्हें उस पार पहुंचा दूं। आजकल पानी बहुत कम है, मैं तो अक्सर तैर आता हूं।

मैंने एहसान से दबकर कहा—आपने यही क्या कम इनायत की है कि मुझे यहां तक पहुंचा दिया, वर्ना शायद घर पहुंचना नसीब न होता। मैं यहां बैठा रहूंगा और सुबह को किश्ती से पास उतर जाऊंगा।

"वाह, और तुम्हारी अम्मां रोती होंगी कि मेरे लाड़ले पर जाने क्या गुजरी ?"

यह कहकर मिस्टर जैक्सन ने मुझे झट उठाकर कंधे पर बिठा लिया और इस तरह बेधड़क पानी में घुसे कि जैसे सूखी जमीन है। मैं दोनों हाथों से उनकी गर्दन पकड़े हूं और कुछ हंस भी रहा हूं, फिर भी सीना धड़क रहा है और रगों में सनसनी-सी मालूम हो रही है। मगर जैक्सन साहब इत्मीनान से चले जा रहे हैं। पानी घुटने तक आया, फिर कमर तक पहुंचा, ओफ्फोह, सीने तक पहुंच गया। अब साहब को एक-एक कदम मुश्किल हो रहा है। मेरी जान निकल रही है। लहरें उनके गले लिपट रही हैं। मेरे पांव भी चूमने लगीं। मेरा जी चाहता है उनसे कहूं भगवान् के लिए वापस चलिए, मगर जबान नहीं खुलती। चेतना ने जैसे इस संकट का सामना करने के लिए सब दरवाजे बंद कर लिए। डरता हूं कहीं जैक्सन साहब फिसले तो अपना काम तमाम है। यह तो तैराक हैं, निकल जाएंगे, मैं लहरों की खुराक बन जाऊंगा। अफसोस आता है अपनी बेवकूफी पर कि तैरना क्यों न सीख लिया ? यकायक जैक्सन ने मुझे दोनों हाथों से कंधे के ऊपर उठा लिया। हम बीच धार में पहुंच गए थे। बहाव में इतनी तेजी थी कि एक-एक कदम आगे रखने में एक-एक मिनट लग जाता था। दिन को इस नदी में कितनी ही बार आ चुका था लेकिन रात को और इस मझधार में वह बहती हुई मौत मालूम होती थी। दस-बारह कदम तक मैं जैक्सन के दोनों हाथों पर टंगा रहा। फिर पानी उतरने लगा। मैं देख न सका, मगर शायद पानी जैक्सन के सर के ऊपर तक आ गया था। इसीलिए उन्होंने मुझे हाथों पर बिठा लिया था। जब उनकी गर्दन बाहर निकल आई तो जोर से हंसकर बोले—लो, अब पहुंच गए।

मैंने कहा—आपको आज मेरी वजह से बड़ी तकलीफ हुई।

जैक्सन ने मुझे हाथों से उतारकर फिर कंधे पर बिठाते हुए कहा—और मुझे आज जितनी खुशी हुई उतनी आज तक कभी न हुई थी, जर्मन कप्तान को कत्ल करके भी। अपनी मां से कहना मुझे दुआ दें।

घाट पर पहुंचकर मैं साहब से रुखसत हुआ, उसकी सज्जनता, निःस्वार्थ सेवा और अदम्य साहस का न मिटने वाला असर दिल पर लिए हुए। मेरे जी में आया, काश मैं भी इसी तरह लोगों के काम आ सकता।

तीन बजे रात को जब मैं घर पहुंचा तो होली में आग लग रही थी। मैं स्टेशन से दो मील सरपट दौड़ता हुआ गया। मालूम नहीं भुखे शरीर में इतनी ताकत कहां से आ गई थी।

अम्मां मेरी आवाज सुनते ही आंगन में निकल आई और मुझे छाती से लगा लिया और बोलीं—इतनी रात कहां कर दी, मैं तो सांझ से तुम्हारी राह देख रही थी, चलो खाना खा लो, कुछ खाया-पिया है कि नहीं ?

वह अब स्वर्ग में हैं। लेकिन उनका वह मुहब्बत-भरा चेहरा मेरी आंखों के सामने है और वह प्यार-भरी आवाज कानों में गूंज रही है।

मिस्टर जैक्सन से कई बार मिल चुका हूं। उसकी सज्जनता ने मुझे उसका भक्त बना दिया है। मैं उसे इंसान नहीं फरिश्ता समझता हूं।

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू में। मूल स्रोत अज्ञात। उर्दू कहानी-संग्रह 'जादे राह' (प्रथम संस्करण : 1936) में संकलित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

तथ्य

वह भेद अमृत के मन में हमेशा ज्यों-का-त्यों बना रहा और कभी न ख़ुला। न तो अमृत की नजरों से न उसकी बातों से और न रंग-ढंग से ही पूर्णिमा को कभी इस बात का नाम को भी भ्रम हुआ कि साधारण पड़ोसियों का जिस तरह बरताव होना चाहिए और लड़कपन की दोस्ती का जिस तरह निबाह होना चाहिए उसके सिवा अमृत का पेरे साथ और भी किसी प्रकार का सम्बन्ध है या हो सकता है। बेशक जब वह घड़ा लेकर कुएँ पर पानी खींचने के लिए जाती थी तब अमृत भी ईश्वर जाने कहाँ से वहाँ आ पहुँचता था और जबरदस्ती उसके हाथ से घड़ा छीनकर उसके लिए पानी खींच देता था और जब वह अपनी गाय को सानी देने लगती थी तब वह उसके हाथ से भूसे की टोकरी ले लेता था और गाय की नाँद में सानी डाल देता था। जब वह बनिये की दुकान पर कोई चीज लेने जाती थी तब अमृत भी अक्सर उसे रास्ते में मिल जाया करता था और उसका काम कर देता था।

पूर्णिमा के घर में कोई दूसरा लड़का या आदमी नहीं था। उनके पिता का कई साल पहले परलोकवास हो चुका था और उसकी माँ परदे में रहती थी। जब अमृत पढ़ने जाने लगता तब पूर्णिमा के घर जाकर पूछ लिया करता कि बाज़ार से कुछ मँगवाना तो नहीं है। उसके घर में खेती-बारी होती थी, गायें-भैंसें थीं और बाग-बगीचे भी थे। वह अपने घर वालों

की नजर बचाकर फसल की चीजें सौगात के तौर पर पूर्णिमा के घर दे आता था लेकिन पूर्णिमा उसकी इन खातिरदारियों को उसकी भलमनसाहत और खाने-पीने से सन्तुष्ट होने के सिवा और क्या समझे और क्यों समझे ? एक गाँव में रहने वाले चाहे किसी प्रकार का रक्त-सम्बन्ध या कोई रिश्तेदारी न रखते हों, लेकिन फिर भी गाँव के रिश्ते से भाई-बहन ही तो होते हैं। इसलिए इन खातिरदारियों में कोई खास बात न थी।

एक दिन पूर्णिमा ने उससे कहा भी, कि तुम दिन-भर मदरसे में रहते हो, मेरा जी घबराता है।

अमृत ने सीधी तरह से कह दिया—क्या करूँ, इम्तहान पास आ गया है।

'मैं सोचा करती हूँ कि जब मैं चली जाऊँगी, तब तुम्हें कैसे देखूँगी और तुम क्यों मेरे घर आओगे ?'

अमृत ने घबराकर पूछा—कहाँ चली जाओगी ?

पूर्णिमा लजा गई। फिर बोली—जहाँ तुम्हारी बहनें चली गईं, जहाँ सब लड़कियाँ चली जाती हैं।

अमृत ने निराश भाव से कहा—अच्छा, वह बात ?

इतना कहकर अमृत चुप हो गया। अभी तक यह बात कभी उसके ध्यान में ही नहीं आई थी कि पूर्णिमा कहीं चली भी जायगी। इतनी दूर तक सोचने की उसे फुरसत ही नहीं थी। प्रसन्नता तो वर्तमान में ही मस्त रहती है। यदि भविष्य की बातें सोचने लगे तो फिर प्रसन्नता ही क्यों रहे ?

और अमृत जितनी जल्दी इस दुर्घटना के होने की कल्पना कर सकता था, उससे पहले ही यह दुर्घटना एक खबर के रूप में सामने आ ही गई। पूर्णिमा के ब्याह की एक जगह बातचीत हो गई। अच्छा दौलतमन्द खानदान था और साथ ही इज्जतदार भी। पूर्णिमा की माँ ने उसे बहुत खुशी से मंजूर भी कर लिया। गरीबी की उस हालत में उसकी नज़रों में जो चीज सबसे ज़्यादा प्यारी थी, वह दौलत थी। और यहाँ पूर्णिमा के लिए सब तरह से सुखी रहकर जिन्दगी बिताने के सामान मौजूद थे। मानो उसे मुँहमाँगी मुराद मिल गई हो। इससे पहले वह मारे फिक्र के घुली जाती थी। लड़की के ब्याह का ध्यान आते ही उसका कलेजा धड़कने लगता था। अब मानो परमात्मा ने अपने एक ही कटाक्ष से उसकी सारी चिन्ताओं और विकलताओं का अन्त कर दिया।

अमृत ने सुना तो उसकी हालत पागलों की-सी हो गई। वह बेतहाशा पूर्णिमा के घर की तरफ दौड़ा, मगर फिर लौट पड़ा। होश ने उसके पैर रोक दिये। वह सोचने लगा कि वहाँ जाने से क्या फायदा ? आखिर उसमें उसका कसूर ही क्या है ? और किसी का क्या कसूर है ? अपने घर आया और मुँह ढककर लेट रहा। पूर्णिमा चली जायगी। फिर वह कैसे रहेगा ? वह विचलित-सा होने लगा। वह जिन्दा ही क्यों रहे? जिन्दगी में रखा ही क्या है? लेकिन यह भाव भी दूर हो गया। और उसका स्थान लिया उस निःस्तब्धता ने, जो तूफान के बाद आती है। वह उदासीन हो गया। जब पूर्णिमा जाती ही है, तो वह उसके साथ कोई सम्बन्ध क्यों रखे ? क्यों मिले-जुले ? और अब पूर्णिमा को उसकी परवाह ही क्यों होने लगी ? और परवाह थी ही कब ? वह आप ही उसके पीछे कुत्तों की तरह दुम हिलाता रहता था। पूर्णिमा ने तो कभी बात भी नहीं पूछी। और अब उसे क्यों न अभिमान हो ? एक

लखपति की स्त्री बनने जा रही है ! शौक से बने। अमृत भी जिन्दा रहेगा। मरेगा नहीं। यही इस जमाने की वफादारी की रस्म है।

लेकिन यह सारी तेजी दिल के अन्दर-ही-अन्दर थी और निरर्थक थी। भला उसमें इतनी हिम्मत कहाँ थी कि जाकर पूर्णिमा की माँ से कह दे कि पूर्णिमा मेरी है और मेरी ही रहेगी ! गजब हो जायगा। गाँव में आफत मच जायगी। ऐसी बातें न गाँव की कहानियों में कभी सुनी हैं और न देहातों ने कभी देखी हैं ?

और पूर्णिमा का यह हाल था कि दिन भर उसका रास्ता देखा करती थी। वह सोचती थी कि क्यों मेरे दरवाजे से होकर निकल जाता है और क्यों अन्दर नहीं आता ? कभी रास्ते में मुलाकात हो जाती है तो मानो उसकी परछाहीं से भागता है। वह पानी की कलसी लेकर कुएँ पर खड़ी रहती है और सोचती है कि वह आता होगा। लेकिन वह कहीं दिखाई ही नहीं देता।

एक दिन वह उसके घर गई और उससे जवाब माँगा। उसने पूछा—तुम आजकल आते क्यों नहीं ? बस उसी समय उसका गला भर आया। उसे याद आ गया कि अब वह इस गाँव में थोड़े ही दिनों की मेहमान है।

लेकिन अमृत चुपचाप ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। लापरवाही से उसने सिर्फ इतना कहा —इम्तहान पास आ गया है। फुरसत नहीं मिलती।

फिर कुछ ठहरकर उसने कहा—सोचता हूँ कि जब तुम जा ही रही हो....। वह कहना ही चाहता था कि—तो फिर अब मुहब्बत क्यों बढ़ाऊँ ! मगर उसे ध्यान आ गया कि बहुत मूर्खता की बात है। अगर कोई रोगी मरने जा रहा है, तो क्या इसी विचार से उसका इलाज छोड़ दिया जाता है कि वह मरेगा ही ? इसके विपरीत ज्यों-ज्यों उसकी हालत और भी ज्यादा खराब होती जाती है, त्यों-त्यों लोग और भी अधिक तत्परता से उसकी चिकित्सा करते हैं। और जब उसका अन्तिम समय आ जाता है, तब तो दौड़ धूप की हद ही नहीं रहती। उसने बात का रुख बदलकर कहा—सुना है, वह लोग भी बहुत मालदार हैं।

पूर्णिमा ने उसके ये अन्तिम शब्द सुने ही नहीं या उनका जवाब देने की जरूरत नहीं समझी। उसके कानों में तो जवाब का पहला हिस्सा ही गूँज रहा था ?

उसने बहुत ही दुःख पूर्ण भाव से कहा—तो इसमें मेरा क्या कसूर है ? मैं अपनी खुशी से तो जा नहीं रही हूँ ? जाना पड़ता है, इसलिए जा रही हूँ।

यह कहते-कहते मारे लज्जा से उसका चेहरा लाल हो गया। जितना उसे कहना चाहिए था, शायद उससे ज्यादा वह कह गई थी।

मुहब्बत में भी शतरंज की-सी चालें होती हैं। अमृत ने उसकी तरफ इस तरह देखा कि मानो वह इस बात की जाँच करना चाहता है कि इन शब्दों में कुछ अर्थ भी है या नहीं। क्या अच्छा होता कि उसकी आँखों में आर-पार देखने की शक्ति होती ! इस तरह तो सभी लड़कियाँ निराश भाव से बात करती हैं। मानो ब्याह होते ही उनकी जान पर आ बनेगी। मगर सभी लड़कियाँ एक-न-एक दिन अच्छे-अच्छे गहने और कपड़े पहन कर और पालकी में बैठकर चली जाती हैं। इन बातों से उसको कोई सन्तोष नहीं हुआ।

फिर डरते-डरते बोला—तब तुम्हें मेरी याद क्यों आयेगी ?

उसके माथे पर पसीना आ गया। उसे ऐसी बेढब शरमिन्दगी हुई कि जी चाहा कि कमरे से बाहर भाग जाऊँ। पूर्णिमा की ओर देखने की हिम्मत भी नहीं हुई। कहीं वह समझ न गई हो।

पूर्णिमा ने सिर झुकाकर मानो अपने दिल से कहा—तुम मुझे इतना निर्मोही समझते हो ! मैं बेकसूर हूँ और तुम मुझसे रूठते हो। तुम्हें इस समय मेरे साथ सहानुभूति होनी चाहिए थी। तुम्हें उचित था कि तुम मुझे ढाढ़स देते। और तुम मुझसे तने बैठे हो। तुम्हीं बतलाओ कि मेरे लिए और कौन-सा दूसरा रास्ता है। जो मेरे अपने हैं, वही मुझे गैर के घर भेज रहे हैं। वहाँ मुझ पर क्या बीतेगी ? मेरी क्या हालत होगी ? क्या यही ग़म मेरी जान लेने के लिए काफी नहीं है जो तुम उसमें अपना गुस्सा भी मिलाए देते हो ?

उसका गला फिर भर आया। आज पूर्णिमा को इस प्रकार दुःखी और उदास देखकर अमृत को विश्वास हो गया कि इसके अन्दर भी एक छिपी हुई वेदना है। उसका ओछापन और स्वार्थपरता मानो कालिख बनकर उसके चेहरे पर चमकने लगी। पूर्णिमा के इन शब्दों में पूरी सत्यता थी। और साथ ही कितनी फटकार और कितना अपमान भी भरा हुआ था! जो पराये हों उनसे शिकायत ही क्यों करे ? अवश्य ही ऐसी अवस्था में उसे पूर्णिमा को ढाढ़स दिलाना चाहिए था। यह उसका कर्तव्य उसे बहुत प्रसन्नता के साथ पूरा करना चाहिए था। पूर्णिमा ने प्रेम का एक नया आदर्श उसके सामने रख दिया था और उसका विवेक इस आदर्श से बचकर नहीं निकलने देता था। इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम भी एक स्वार्थ-त्याग है, परन्तु बहुत बड़ा और जिगर को जलाने वाला है।

उसने लज्जित होकर कहा—माफ करो पूर्णिमा ! मेरी भूल थी; बल्कि बेवकूफी थी।

2

पूर्णिमा का ब्याह हो गया। अमृत जी-जान से उसके ब्याह के प्रबन्ध में लगा रहा। दूल्हा अधेड़ था। तोंदल और भोंडा था और साथ ही बहुत घमंडी और बदमिज़ाज भी था। लेकिन अमृत ऐसी तत्परता से उसकी खातिरदारी कर रहा था कि मानो वह कोई देवता हो और उसकी एक ही मुस्कराहट उसे स्वर्ग में पहुँचा देगी। पूर्णिमा के साथ बातचीत करने का अमृत को अवसर ही नहीं मिला। और न उसने अवसर निकालने का कोई प्रयत्न ही किया। वह पूर्णिमा को जब देखता था, तब वह रोती ही रहती थी। और अमृत आँखों की जबान से जहाँ तक हो सकता था, बिना कुछ कहे ही उसे जितना ढाढ़स और तसल्ली दे सकता था, वह देता था और उसके प्रति सहानुभूति दिखलाता था।

तीसरे दिन पूर्णिमा रो-धोकर ससुराल के लिए विदा हो गई। अमृत ने उसी दिन शिवजी के मन्दिर में जाकर परम निष्ठा तथा भक्ति से भरे हुए दिल से प्रार्थना की कि पूर्णिमा सदा सुखी रहे। जब नया और ताजा ग़म हो तो फिर इधर-उधर के और फालतू विचारों का भला कहाँ प्रवेश हो सकता है ! दुःख तो आत्मा के रोगों का नाशक है। परन्तु मन में उसे एक तरह की शून्यता का अनुभव हो रहा था। मानो अब उसका जीवन उजाड़ हो गया था। अब उसका कोई उद्देश्य या कोई कामना नहीं रह गई थी।

3

तीन बरस बाद पूर्णिमा फिर मैके आई। इस बीच में अमृत का भी ब्याह हो गया था। और जीवन का जूआ गरदन पर रखे हुए लकीर पीटता चला जा रहा था। परन्तु उसके मन में एक ऐसी अस्पष्ट-सी वासना दबी हुई थी, जिसे वह कोई स्पष्ट रूप नहीं दे सकता था। वह वासना थर्मामीटर के पारे की तरह उसके अन्दर सुरक्षित थी। अब पूर्णिमा ने आकर उसमें गरमी पैदा कर दी थी और वह पारा चढ़कर सरसाम की सीमा तक जा पहुँचा था। उसकी गोद में दो बरस का एक प्यारा-सा बच्चा था; अमृत उस बच्चे को दिन-रात मानो गले से बाँधे रहता था। वह सबेरे और सन्ध्या उसे गोद में लेकर टहलने जाया करता था। और उसके लिए बाजार से तरह-तरह के खिलौने और मिठाइयाँ लाया करता था। सबेरा होते ही उसके जलपान के लिए हलुआ और दूध लेकर पहुँच जाता था। उसे नहलाता-धुलाता और उसके बाल-साफ करता था। उसके फोड़े-फुन्सियाँ धोकर उन पर मलहम लगाता था। ये सभी सेवाएँ उसने अपने जिम्मे ले ली थीं। बच्चा भी उसके साथ इतना हिल-मिल गया था कि पल-भर के लिए भी उसका गला न छोड़ता था। यहाँ तक कि कभी-कभी उसी के पास सो भी जाता था। और पूर्णिमा के आकर बुलाने पर भी उसके साथ नहीं जाता था।

अमृत पूछता—तुम किसके बेटे हो।

[illegible] कहता—टुमाले।

अमृत मारे आनन्द के मतवाला होकर उसे गले से लगा लेता था।

पूर्णिमा का रूप अब और भी निखर आया था। कली खिलकर फूल हो गई थी। अब उसके स्वभाव में अहमन्यता और अभिमान आ गया था और साथ ही बनाव-सिंगार से प्रेम भी हो गया था। सोने के गहनों से सजकर और रेशमी साड़ी पहनकर अब वह और भी अधिक आकर्षक हो गई थी। और ऐसा जान पड़ता था कि मानो वह अमृत से कुछ बचना चाहती है। बिना कोई विशेष आवश्यकता हुए उससे बहुत कम बोलती है। और जो कुछ बोलती भी है, वह इस ढंग से बोलती है कि मानो अमृत पर कोई एहसान कर रही है। अमृत उसके बच्चे के लिए इतनी जान देता है और उसकी फरमाइशों को कितने शौक से पूरा करता है, लेकिन ऊपर से देखने पर यही जान पड़ता था कि पूर्णिमा की निगाहों में उसकी इन सब सेवाओं का कोई मूल्य ही नहीं था। मानो सेवा करना अमृत का कर्तव्य ही है। और वह कर्तव्य उसे पूरा करना चाहिए। इसके लिए वह किसी प्रकार के धन्यवाद या कृतज्ञता का अधिकारी नहीं है।

जब बच्चा रोता है, तब वह उसे धमकाती है कि खबरदार, रोना नहीं। नहीं तो मामाजी तुमसे कभी न बोलेंगे। और इतना सुनते ही बच्चा चुप हो जाता है।

जब उसे किसी चीज की जरूरत होती है तब वह अमृत को बुलाकर मानो आज्ञा के रूप में उससे कह देती है। और अमृत भी तुरन्त उस आज्ञा का पालन करता है। मानो वह उसका गुलाम हो। और वह भी शायद यही समझती है कि मैंने अमृत से गुलामी का पट्टा लिखा लिया है।

छः महीने मैके रहकर पूर्णिमा फिर ससुराल चली गई। अमृत उसे पहुँचाने के लिए स्टेशन तक आया था। जब वह गाड़ी में बैठ गई तब अमृत ने बच्चा उसकी गोद में दे दिया। अमृत की आँखों से आँसू की बूँद टपक पड़ी और उसने मुँह फेर लिया और आँखों

पर हाथ फेरकर आँसू पोंछ डाला। पूर्णिमा को अपने आँसू कैसे दिखलाये ? क्योंकि उसकी आँखें तो बिलकुल खुश्क थीं। लेकिन फिर भी उसका जी नहीं मानता था। वह सोचता था कि न-जाने अब फिर कब मुलाकात हो !

पूर्णिमा ने कुछ अभिमान के साथ कहा—बच्चा कई दिन तक तुम्हारे लिए बहुत हुड़केगा।

अमृत ने भरे हुए गले से कहा—मुझे तो उम्र-भर भी इसकी सूरत नहीं भूलेगी।

'कभी-कभी एकाध पत्र तो भेज दिया करो।'

'भेजूँगा ?'

'मगर मैं जवाब नहीं दूँगी, यह समझ लो।'

'मत देना। मैं माँगता तो नहीं।....मगर याद रखना।'

गाड़ी चल पड़ी। अमृत उसकी खिड़की की ओर देखता रहा। गाड़ी के कोई एक फरलाँग निकल जाने पर उसने देखा कि पूर्णिमा ने खिड़की से सिर निकालकर उसकी तरफ देखा और फिर बच्चे को गोद में लेकर उसे जरा-सा दिखला दिया।

अमृत का हृदय उस समय उड़कर पूर्णिमा के पास पहुँच जाना चाहता था। वह इतना प्रसन्न है कि मानो उसका उद्देश्य सिद्ध हो गया हो।

4

उसी वर्ष पूर्णिमा की माँ का देहान्त हो गया। पूर्णिमा उस समय सफर में थी। वह अपनी माँ को अन्तिम समय में न देख सकी। जहाँ तक हो सकता था, अमृत ने पहले तो उसकी पूरी चिकित्सा की और उसके मर जाने पर उसका क्रिया कर्म भी कर दिया। ब्राह्मणों को भी और बिरादरी वालों को भी भोजन कराया, मानो स्वयं उसी की माँ मर गई हो। स्वयं उसके पिता का देहान्त हो ही चुका था, इसलिए वह आप ही अपने घर का मालिक हो गया था। कोई उसका हाथ पकड़ने वाला नहीं था।

पूर्णिमा अब भला किस नाते से मैके आती ? और फिर अब उसे इतनी फुरसत कहाँ थी ! अपने घर की मालकिन थी। घर किस पर छोड़कर आती ? उसे दो बच्चे और भी हुए। पहला लड़का बड़ा होकर स्कूल में पढ़ने लगा। छोटा देहात के मदरसे में पढ़ता था। अमृत साल में एक बार नाई को भेजकर उनकी सबकी खैर-सल्ला मँगा लिया करता था। पूर्णिमा सब प्रकार से सुखी और निश्चिन्त है, और उसकी तसल्ली के लिए इतना ही काफी था। अमृत के लड़के भी सयाने हो गये थे। वह घर-गृहस्थी की चिन्ताओं में फँसा रहता था। फिर उसकी उम्र भी चालीस से आगे निकल गई थी। परन्तु फिर भी पूर्णिमा की स्मृति अभी तक उसके हृदय के गम्भीरतर भाग में सुरक्षित थी।

5

अचानक एक दिन अमृत ने सुना कि पूर्णिमा के पति का देहान्त हो गया। परन्तु आश्चर्य यह था कि उसे कोई दुःख नहीं हुआ। वह यों ही अपने मन में यह निश्चय कर बैठा था कि इस खबीस बुड्ढे के साथ पूर्णिमा का जीवन कभी ईर्ष्या के योग्य नहीं हो सकता। कर्तव्य की विवशता और पातिव्रत धर्म के पालन के विचार से उसने कभी अपना हार्दिक

कष्ट प्रकट नहीं किया था। परन्तु यह असम्भव है कि सभी प्रकार के सुख और निश्चिन्तता के रहते हुए भी उस घृणित व्यक्ति के साथ उसे कोई विशेष प्रेम रहा हो। यह तो भारतवर्ष ही है, जहाँ ऐसी अप्सराएँ ऐसे अयोग्य कुपात्रों के गले बाँध दी जाती हैं। और नहीं तो यह पूर्णिमा किसी दूसरे देश में होती, तो उस देश के नवयुवक उस पर निछावर हो जाते। उसकी मरी वासनाएँ फिर जीवित हो गई। अब उसमें वह पहले वाली झिझक नहीं है। और न उसकी जबान पर वह पहले वाली मौन की मोहर ही है। और फिर पूर्णिमा भी अब स्वतन्त्र है। अवस्था के धर्म ने अवश्य ही उसे अधिक दयालु बना दिया होगा। वह शोखी, अल्हड़पन और लापरवाही तो कभी की विदा हो चुकी होगी। उस लड़कपन की जगह अब उसमें अनुभवी स्त्रियों की वे सब बातें आ गई होंगी, जो प्रेम का आदर करती हैं और उसकी इच्छुक होती हैं। वह पूर्णिमा के घर मातम-पुरसी करने जायगा और उसे अपने साथ ले आयेगा। और जहाँ तक हो सकेगा, उसकी सेवा करेगा। अब पूर्णिमा के केवल सामीप्य से ही उसका सन्तोष हो जायेगा। वह केवल उसके मुँह से यह सुनकर ही हार्दिक सन्तोष प्राप्त करेगा कि वह भी उसे याद करती है। अब भी उससे वही बचपन का-सा प्रेम करती है। बीस साल पहले उसने पूर्णिमा की जो सूरत देखी थी, उसका शरीर भरा हुआ था, गालों पर लाली थी, अंगों में कोमलता थी। उसकी खिंची हुई ठोड़ी थी जो मानो ऊमृत के भरे हुए कुण्ड के समान थी। उसकी मुस्कराहट मादक थी। बस उसका वही रूप अब भी बहुत ही थोड़े परिवर्तन के साथ उसकी आँखों में समाया हुआ था। और वह परिवर्तन उस एकान्त की आँखों में उसे और भी अधिक प्रिय जान पड़ने लगा था। अवश्य ही समय की प्रगति का उस पर कुछ-न-कुछ प्रभाव होगा। परन्तु पूर्णिमा के शरीर में किसी ऐसे परिवर्तन की वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था जिससे उसकी मनोहरता में कोई अन्तर आ जाय। और अब वह केवल ऊपरी रूप का उतना अधिक इच्छुक भी नहीं रह गया था, जितना उसके मधुर वचनों का भूखा था। वह उसकी प्रेमपूर्ण दृष्टि और उसके विश्वास का ही विशेष इच्छुक था। अपने पुरुषोचित आत्माभिमान के कारण कदाचित् वह यह भी समझता था कि वह पूर्णिमा की अतृप्त प्रेमभावना को अपनी नाज़बरदारियों और प्रेम के आवेश से सुरक्षित रखेगा और अपनी पिछली भूल-चूक का मार्जन कर डालेगा।

6

संयोग से पूर्णिमा स्वयं ही एक दिन अपने छोटे बच्चे के साथ अपने घर आ गई। उसकी एक विधवा मौसी थी जो उसकी माँ के साथ ही अपने वैधव्य के दिन काट रही थी। वह अभी तक जीती थी। इस प्रकार वह सूना घर फिर से बस गया।

जब अमृत ने यह समाचार सुना तब वह बड़े शौक से मानो मदमत्त होकर उसके घर की तरफ दौड़ा। वह अपने लड़कपन और जवानी की मधुर स्मृतियों को अपने मन की झोली में अच्छी तरह सँभालता हुआ ले जा रहा था। उस समय उसकी अवस्था ठीक उस छोटे बच्चे के समान थी जो अपने हमजोली को देखकर उसके साथ खेलने के लिए टूटे-फूटे खिलौने लेकर दौड़ पड़ता है।

लेकिन उसकी सूरत देखते ही उसका सारा शौक और सारी उमंग मानो बुझ-सी गई। वह निःस्तब्ध होकर खड़ा रह गया। पूर्णिमा उसके सामने आकर सिर झुकाकर खड़ी हो

गई। सफेद साड़ी के घूँघट से आधा मुँह छिपा हुआ था लेकिन कमर झुक गई थी। बाँहें सूत-सी पतली, पैर के पिछले भाग की रगें उभरी हुईं, आँसू बह रहे थे और चेहरे का रंग बिलकुल पीला पड़ गया था मानो कफ़न में लपेटी हुई लाश खड़ी हो।

पूर्णिमा की मौसी ने आकर कहा—बैठो बेटा ! देखते हो इसकी हालत सूखकर काँटा हो गई है। एक क्षण को भी आँसू नहीं थमते। सिर्फ़ एक समय सूखी रोटियाँ खाती है और किसी चीज से मतलब नहीं। नमक छोड़ दिया है, घी-दूध सब त्याग दिया है। बस रूखी रोटियों से काम। इस पर आये दिन व्रत रखती है। कभी एकादशी, कभी इतवार कभी मंगल। एक चटाई बिछाकर जमीन पर सोती है। घड़ी रात रहे उठकर पूजा-पाठ करने लगती है। लड़के समझाते हैं, मगर किसी की नहीं सुनती। कहती है कि जब भगवान् ने सुहाग ही उठा लिया, तो फिर सब कुछ मिथ्या है। जी बहलाने के लिए यहाँ आई थी। मगर यहाँ भी रोने के सिवा दूसरा काम नहीं। कितना समझाती हूँ कि बेटी, भाग्य में जो कुछ लिखा था, वह हुआ। अब सब्र करो। भगवान ने तुम्हें बाल-बच्चे दिए हैं ! उनको पालो। घर में ईश्वर का दिया सब कुछ है। चार को खिलाकर खा सकती हो। मन पवित्र होना चाहिए। शरीर को दुःख देने से क्या लाभ ? लेकिन सुनती ही नहीं। अब तुम समझाओ तो शायद माने।

अमृत ऊपर से देखने में तो निःस्तब्ध; परन्तु अन्दर हृदय-विदारक वेदना छिपाये हुए खड़ा था। मानो जिस नींव पर उसने जिन्दगी की इमारत खड़ी की थी, वह हिल गई हो। आज उसे मालूम हुआ कि जन्म भर उसने जिस वस्तु को तथ्य समझ रखा था, वह वास्तव में मृग-तृष्णा थी, अथवा केवल स्वप्न था। पूर्णिमा के इस विकट आत्म-संयम और तपस्वियों के-से आचरण के सामने उसकी समस्त वासनाओं और प्रेम की उमंगों का नाश हो गया था और उसके जीवन का यह नया तथ्य आकर उपस्थित हो गया था कि यदि मन में मिट्टी को देवता बनाने की शक्ति है तो मनुष्य को देवता बनाने की शक्ति है। पूर्णिमा उसी घृणित मनुष्य को देवता बनाकर उसकी पूजा कर रही थी।

उसने शान्त भाव से कहा—तपस्विनी को हम जैसे स्वार्थी लोग कैसे समझा सकते हैं मौसी ? हम लोगों का कर्त्तव्य इसके चरणों पर सिर झुकाना है, इसे समझाना नहीं।

पूर्णिमा ने मुँह पर का घूँघट हटाते हुए कहा—तुम्हारा बच्चा तुम्हें अभी तक पूछा करता है।

[हिन्दी कहानी। 'हंस', फरवरी, 1937 में प्रकाशित। 'नारी जीवन की कहानियां', प्रकाशक—हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई, प्रथम संस्करण 1938 में संकलित। यह पुस्तक सरस्वती प्रेस, बनारस से भी प्रकाशित हुई। उर्दू रूप 'हकीकत' शीर्पक से 'जादे राह' में संकलित।]

क्रिकेट मैच

1 जनवरी, 1935

आज क्रिकेट मैच में मुझे जितनी निराशा हुई मैं उसे व्यक्त नहीं कर सकता। हमारी

टीम दुश्मनों से कहीं ज्यादा मजबूत थी मगर हमें हार हुई और वे लोग जीत का डंका बजाते हुए ट्रॉफी उड़ा ले गये। क्यों ? सिर्फ इसलिए कि हमारे यहां नेतृत्व के लिए योग्यता शर्त नहीं। हम नेतृत्व के लिए धन-दौलत जरूरी समझते हैं। हिज हाइनेस कप्तान चुने गये, क्रिकेट बोर्ड का फैसला सबको मानना पड़ा। मगर कितने दिलों में आग लगी, कितने लोगों ने हुक्मे हाकिम समझकर इस फैसले को मंजूर किया, वह खेलने वालों से पूछिए। और जहां सिर्फ मुंह देखी है वहां उमंग कहां, जोश कहां, संकल्प कहां, खून की आखिरी बूंद गिरा देने का उत्साह कहां। हम खेले और जाहिरा दिल लगाकर खेले। मगर यह सच्चाई के लिए जान देने वालों की फौज न थी। खेल में किसी का दिल न था।

मैं स्टेशन पर खड़ा अपना तीसरे दर्जे का टिकट लेने की फिक्र में था कि एक युवती ने जो अभी कार से उतरी थी आगे बढ़कर मुझसे हाथ मिलाया और बोली—आप भी तो इसी गाड़ी से चल रहे हैं मि. जफर ?

मुझे हैरत हुई कि यह कौन लड़की है और इसे मेरा नाम क्योंकर मालूम हो गया। मुझे एक पल के लिए सकता-सा हो गया कि जैसे शिष्टाचार और अच्छे आचरण की सब बातें दिमाग से गायब हो गयी हों। सौन्दर्य में एक ऐसी शान होती है जो बड़ों-बड़ों का सिर झुका देती है। मुझे अपनी तुच्छता की ऐसी अनुभूति कभी न हुई थी। मैंने निजाम हैदराबाद मे हिज एक्सलेन्सी वायसराय से, महाराज मैसूर से हाथ मिलाया, उनके साथ बैठकर खाना खाया मगर यह कमजोरी मुझ पर कभी न छायी थी। बस यही जी चाहता था कि अपनी पलकों से उसके पांव चूम लूं। यह वह सलोनापन न था जिस पर हम जान देते हैं, न वह नजाकत जिसकी कवि लोग कसमें खाते हैं। उस जगह बुद्धि की कांति थी, गंभीरता थी, गरिमा थी, उमंग थी और थी आत्म-अभिव्यक्ति की निस्संकोच लालसा। मैंने सवाल-भरे अंदाज से कहा—जी हां।

यह कैसे पूछूं कि मेरी आपसे भेंट कब हुई। उसकी बेतकल्लुफी कह रही थी वह मुझसे परिचित है। मैं बेगाना कैसे बनूं। इसी सिलसिले में मैंने अपने मर्द होने का फर्ज भी अदा कर दिया—मेरे लिए कोई खिदमत ?

उसने मुस्कराकर कहा—जी हां, आपसे बहुत-से काम लूंगा। चलिए, अंदर वेटिंगरूम में बैठें। लखनऊ जा रहे होंगे ? मैं भी वहीं चल रही हूं।

वेटिंगरूम में आकर उसने मुझे आरामकुर्सी पर बिठाया और खुद एक कुर्सी पर बैठकर सिगरेट केस मेरी तरफ बढ़ाती हुई बोली—आज तो आपकी बोलिंग बड़ी भयानक थी, वर्ना हम लोग पूरी इनिंग से हारते।

मेरा ताज्जुब और भी बढ़ा। इस सुन्दरी को क्या क्रिकेट से भी शौक है। मुझे उसके सामने आरामकुर्सी पर बैठते झिझक हो रही थी। ऐसी बदतमीजी मैंने कभी न की थी। ध्यान उसी तरफ लगा था। तबीयत में कुछ घुटन-सी हो रही थी। रगों में वह तेजी और तबीयत में वह गुलाबी नशा न था जो ऐसे मौके पर स्वभावतः मुझ पर छा जाना चाहिए था। मैंने पूछा—क्या आप वहीं तशरीफ रखती थीं ?

उसने अपना सिगरेट जलाते हुए कहा—जी हां, शुरू से आखिर तक। मुझे तो सिर्फ आपका खेल जंचा। और लोग तो कुछ बेदिल से हो रहे थे और मैं उसका राज समझ रही हूं। हमारे यहां लोगों में सही आदमियों को सही जगह पर रखने का माद्दा ही नहीं है। जैसे

इस राजनीतिक पस्ती ने हमारे सभी गुणों को कुचल डाला हो। जिसके पास धन है उसे हर चीज का अधिकार है। वह किसी ज्ञान-विज्ञान के, साहित्यिक-सामाजिक जलसे का सभापति हो सकता है, इसकी योग्यता उसमें हो या न हो। नयी इमारतों का उद्‌घाटन उसके हाथों कराया जाता है, बुनियादें उसके हाथों रखवायी जाती हैं, सांस्कृतिक आंदोलनों का नेतृत्व उसे दिया जाता है, वह कान्वोकेशन के भाषण पढ़ेगा, लड़कों को इनाम बांटेगा, यह सब हमारी दासमनोवृत्ति का प्रसाद है। कोई ताज्जुब नहीं कि हम इतने नीचे और गिरे हुए हैं। जहां हुक्म और अख्तियार का मामला है वहां तो खैर मजबूरी है, हमें लोगों के पैर चूमने ही पड़ते हैं मगर जहां हम अपने स्वतंत्र विचार और स्वतंत्र आचरण से काम ले सकते हैं वहां भी हमारी जी हुजूरी की आदत हमारा गला नहीं छोड़ती। इस टीम का कप्तान आपको होना चाहिए था, तब देखती कि दुश्मन क्योंकर बाजी ले जाता। महाराजा साहब में इस टीम का कप्तान बनने की इतनी ही योग्यता है जितनी आपमें असेम्बली का सभापति बनने की या मुझमें सिनेमा ऐक्टिंग की।

बिल्कुल वही भाव जो मेरे दिल में थे मगर उसकी जबान से निकलकर कितने असरदार और कितने आंख खोलने वाले हो गये। मैंने कहा—आप ठीक कहती हैं। सचमुच हमारी कमजोरी है।

—आपको इस टीम में शरीक न होना चाहिए था।

—मैं मजबूर था।

इस सुन्दरी का नाम मिस हेलेन मुकर्जी है। अभी इंग्लैंड से आ रही है। यही क्रिकेट मैच देखने के लिए बंबई उतर गयी थी। इंग्लैंड में उसने डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त की है और जनता की सेवा उसके जीवन का लक्ष्य है। वहां उसने एक अखबार में मेरी तस्वीर देखी थी और मेरा जिक्र भी पढ़ा था तब से वह मेरे लिए अच्छा ख्याल रखती है। यहां मुझे खेलते देखकर वह और भी प्रभावित हुई। उसका इरादा है कि हिन्दुस्तान की एक नयी टीम तैयार की जाये और उसमें वही लोग लिए जाएं जो राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के अधिकारी हैं। उसका प्रस्ताव है कि मैं इस टीम का कप्तान बनाया जाऊं। इसी इरादे से वह सारे हिन्दुस्तान का दौरा करना चाहती है। उसके स्वर्गीय पिता डॉ. एन. मुकर्जी ने काफी सम्पत्ति छोड़ी है और वह उसकी सम्पूर्ण उत्तराधिकारिणी है। उसका प्रस्ताव सुनकर मेरा सर आसमान में उड़ने लगा। मेरी जिन्दगी का सुनहरा सपना इतने अप्रत्याशित ढंग से वास्तविकता का रूप ले सकेगा, यह कौन सोच सकता था। अलौकिक शक्ति में मेरा विश्वास नहीं मगर आज मेरे शरीर का रोआं-रोआं कृतज्ञता और भक्ति भावना से भरा हुआ था। मैंने उचित और विनम्र शब्दों में मिस हेलेन को धन्यवाद दिया।

गाड़ी की घण्टी हुई। मिस मुकर्जी ने फर्स्ट क्लास के दो टिकट मंगवाये। मैं विरोध न कर सका। उसने मेरा लगेज उठवाया, मेरा हैट खुद उठा लिया और बेधड़क एक कमरे में जा बैठी और मुझे भी अंदर बुला लिया। उसका खानसामा तीसरे दर्जे में बैठा। मेरी क्रिया-शक्ति जैसे खो गयी थी। मैं भगवान् जाने क्यों इन सब मामलों में उसे अगुवई करने देता था जो पुरुष होने के नाते मेरे अधिकार की चीज थी। शायद उसके रूप, उसकी बौद्धिक गरिमा, उसकी उदारता ने मुझ पर रोब डाल दिया था कि जैसे उसने कामरूप की जादूगरनियों की तरह मुझे भेड़ बना लिया हो और मेरी अपनी इच्छा-शक्ति लुप्त हो गयी

हो। इतमी ही देर में मेरा अस्तित्व उसकी इच्छा में खो गया था। मेरे स्वाभिमान की यह मांग थी कि मैं उसे अपने लिए फर्स्ट क्लास का टिकट न मंगवाने देता और तीसरे ही दर्जे में आराम से बैठता और अगर पहले दर्जे में बैठना था तो इतनी ही उदारता से दोनों के लिए खुद पहले दर्जे का टिकट लाता, लेकिन अभी तो मेरी क्रिया-शक्ति लुप्त गयी थी।

2 जनवरी—मैं हैरान हूं हेलेन को मुझसे इतनी हमदर्दी क्यों है, और यह सिर्फ दोस्ताना हमदर्दी नहीं है। इसमें मुहब्बत की सच्चाई है। दया में तो इतना आतिथ्य-सत्कार नहीं हुआ करता, और रही मेरे गुणों की स्वीकृति, तो में अक्ल से इतना खाली नहीं हूं कि इस धोखे में पड़ूं। गुणों की स्वीकृति ज्यादा-से-ज्यादा एक सिगरेट और एक प्याली चाय पा सकती है। यह सेवा-सत्कार तो मैं वहीं पाता हूं जहां किसी मैच में खेलने के लिए मुझे बुलाया जाता है। तो भी वहां भी इतने हार्दिक ढंग से मेरा सत्कार नहीं होता, सिर्फ रस्मी खातिरदारी बरती जाती है। उसने जैसे मेरी सुविधा और मेरे आराम के लिए अपने को समर्पित कर दिया हो। मैं तो शायद अपनी प्रेमिका के सिवा और किसी के साथ इस हार्दिकता का बर्ताव न कर सकता। याद रहे, मैंने प्रेमिका कहा है, पत्नी नहीं कहा। पत्नी की हम खातिरदारी नहीं करते, उससे तो खातिरदारी करवाना ही हमारा स्वभाव हो गया है और शायद सच्चाई भी यही है। मगर फिलहाल तो मैं इन दोनों नेमतों में से एक का भी हाल नहीं जानता। उसके नाश्ते, डिनर, लंच में तो मैं शरीक था ही, हर स्टेशन पर (वह डाक थी और खास-खास स्टेशनों पर ही रुकती थी) मेवे और फल मंगवाती और मुझे आग्रहपूर्वक खिलाती। कहां की क्या चीज मशहूर है इसका उसे खूब पता है। मेरे दोस्तों और घर वालों के लिए तरह-तरह के तोहफे खरीदे मगर हैरत यह है कि मैंने एक बार भी उसे मना न किया। मना क्योंकर करता, मुझसे पूछकर तो लाती नहीं। जब वह एक चीज लाकर मुहब्बत के साथ मुझे भेंट करती है तो मैं कैसे इन्कार करूं। खुद जाने क्यों मैं मर्द होकर भी उसके सामने औरत की तरह शर्मीला, कम बोलने वाला हो जाता हूं कि जैसे मेरे मुंह में जुबान ही नहीं। दिन की थकान की वजह से रात-भर मुझे बेचैनी रही। सर में हल्का-सा दर्द था मगर मैंने इस दर्द को बढ़ाकर कहा। अकेला होता तो शायद इस दर्द की जरा भी परवाह न करता मगर आज उसकी मौजूदगी में मुझे उस दर्द को जाहिर करने में मजा आ रहा था। वह मेरे सर में तेल की मालिश करने लगी और मैं खामखाह निढाल हुआ जाता था। मेरी बेचैनी के साथ उसकी परेशानी बढ़ती जाती थी। मुझसे बार-बार पूछती, अब दर्द कैसा है और मैं अनमने ढंग से कहता—अच्छा हूं। उसकी नाजुक हथेलियों के स्पर्श से मेरे प्राणों में गुदगुदी होती थी। उसका वह आकर्षक चेहरा मेरे सर पर झुका है, उसकी गर्म सांसें मेरे माथे को चूम रही हैं और मैं गोया जन्नत के मजे ले रहा हूं। मेरे दिल में अब उस पर फतेह पाने की ख्वाहिश झकोले ले रही है। मैं चाहता हूं वह मेरे नाज उठाये। मेरी तरफ से कोई ऐसी पहल न होनी चाहिए जिससे वह समझ जाये कि मैं उस पर लट्टू हो गया हूं। चौबीस घंटे के अन्दर मेरी मनःस्थिति में कैसे यह क्रांति हो जाती है, मैं क्योंकर प्रेम के प्रार्थी से प्रेम का पात्र बन जाता हूं। वह बदस्तूर उसी तल्लीनता से मेरे सिर पर हाथ रखे बैठी हुई है। तब मुझे उस पर रहम आ जाता है और मैं भी उस एहसास से बरी नहीं हूं मगर इस माशूकी में आज जो लुत्फ आया उस पर आशिकी निछावर है।

मुहब्बत करना गुलामी है, मुहब्बत किया जाना बादशाहत।

मैंने दया दिखलाते हुए कहा—आपको मेरी वजह से बड़ी तकलीफ हुई।

उसने उमगकर कहा—मुझे क्या तकलीफ हुई। आप दर्द से बेचैन थे और मैं बैठी थी। काश, यह दर्द मुझे हो जाता।

मैं सातवें आसमान पर उड़ा जा रहा था।

5 जनवरी—कल शाम को हम लखनऊ पहुंच गये। रास्ते में हेलेन से सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक प्रश्नों पर खूब बातें हुईं। ग्रेजुएट तो भगवान् की दया से मैं भी हूं और तब से फुर्सत के वक्त किताबें भी देखता ही रहा हूं, विद्वानों की संगत में भी बैठा हूं लेकिन उसके ज्ञान के विस्तार के आगे कदम-कदम पर मुझे अपनी हीनता का बोध होता है। हर एक प्रश्न पर उसकी अपनी राय है और मालूम होता है कि उसने छान-बीन के बाद वह राय कायम की है। उसके विपरीत मैं उन लोगों में हूं जो हवा के साथ उड़ते हैं, जिन्हें क्षणिक प्रेरणाएं उलट-पलटकर रख देती हैं। मैं कोशिश करता था कि किसी तरह उस पर अपनी अक्ल का सिक्का जमा दूं मगर उसके दृष्टिकोण मुझे बेजुबान कर देते थे। जब मैंने देखा कि ज्ञान-विज्ञान की बातों में मैं उससे न जीत सकूंगा तो मैंने एबीसीनिया और इटली की लड़ाई का जिक्र छेड़ दिया जिस पर मैंने अपनी समझ में बहुत कुछ पढ़ा था और इंगलैंड और फ्रांस ने इटली पर जो दबाव डाला है उसकी तारीफ में मैंने अपनी सारी वाक्-शक्ति खर्च कर दी। उसने एक मुस्कराहट के साथ कहा—आपका यह ख्याल है कि इंगलैण्ड और फ्रांस सिर्फ इंसानियत और कमजोर की मदद करने की भावना से प्रभावित हो रहे हैं तो आपकी गलती है। उनकी साम्राज्य-लिप्सा यह नहीं बर्दाश्त कर सकती कि दुनिया की कोई दूसरी ताकत फले-फूले। मुसोलिनी वही कर रहा है जो इंगलैण्ड ने कितनी ही बार किया है और आज भी कर रहा है। यह सारा बहुरूपियापन सिर्फ एबीसीनिया में व्यावसायिक सुविधाएं प्राप्त करने के लिए है। इंगलैण्ड को अपने व्यापार के लिए बाजारों की जरूरत है, अपनी बढ़ी हुई आबादी के लिए जमीन के टुकड़ों की जरूरत है, अपने शिक्षितों के लिए ऊंचे पदों की जरूरत है तो इटली को क्यों न हो। इटली जो कुछ कर रहा है ईमानदारी के साथ ऐलानिया कर रहा है। उसने कभी दुनिया के सब लोगों के भाईचारे का डंका नहीं पीटा, कभी शांति का राग नहीं अलापा। वह तो साफ कहता है कि संघर्ष ही जीवन का लक्ष्य है। मनुष्य की उन्नति लड़ाई ही के जरिए होती है। आदमी के अच्छे गुण लड़ाई के मैदान में ही खुलते हैं। सबकी बराबरी के दृष्टिकोण को वह पागलपन कहता है। वह अपना शुमार भी उन्हीं बड़ी कौमों में करता है जिन्हें रंगीन आबादियों पर हुकूमत करने का हक है। इसलिए हम उसकी कार्य-प्रणाली को समझ सकते हैं। इंगलैंड ने हमेशा धोखेबाजी से काम लिया है। हमेशा एक राष्ट्र के विभिन्न तत्त्वों में भेद डालकर या उनके आपसी विरोधों को राजनीति का आधार बनाकर उन्हें अपना पिछलग्गू बनाया है। मैं तो चाहती हूं कि दुनिया में इटली, जापान और जर्मनी खूब तरक्की करें और इंगलैंड का आधिपत्य टूटे। तभी दुनिया में असली जनतंत्र और शांति पैदा होगी। वर्तमान सभ्यता जब तक मिट न जाएगी, दुनिया में शांति का राज्य न होगा। कमजोर कौमों को जिंदा रहने का कोई हक नहीं, उसी तरह जिस तरह कमजोर पौधों को। सिर्फ इसलिए नहीं कि उनका

अस्तित्व स्वयं उनके लिए कष्ट का कारण है बल्कि इसलिए कि वही दुनिया के इस झगड़े और रक्तपात के लिए जिम्मेदार हैं।

मैं भला क्यों इस बात से सहमत होने लगा। मैंने जवाब तो दिया और इन विचारों का इतने ही जोरदार शब्दों में खंडन भी किया। मगर मैंने देखा कि इस मामले में वह संतुलित बुद्धि से काम नहीं लेना चाहती या नहीं ले सकती।

स्टेशन पर उतरते ही मुझे यह फिक्र सवार हुई कि हेलेन को अपना मेहमान कैसे बनाऊं। अगर होटल में ठहराऊं तो भगवान् जाने अपने दिल में क्या कहे। अगर घर ले जाऊं तो शर्म मालूम होती है। वहां ऐसी रुचि-संपन्न और अमीरों जैसे स्वभाव वाली युवती के लिए सुविधा की क्या सामग्रियां हैं। यह संयोग की बात है कि मैं क्रिकेट अच्छा खेलने लगा और पढ़ना-लिखना छोड़-छाड़कर उसी का हो रहा और एक स्कूल का मास्टर हूं मगर घर की हालत बदस्तूर है। वही पुराना, अंधेरा, टूटा-फूटा मकान, तंग गली में, वही पुराने रंग-ढंग, वही पुराना ढच्चर। अम्मां तो शायद हेलेन को घर में कदम ही न रखने दें। और यहां तक नौबत ही क्यों आने लगी, हेलेन खुद दरवाजे ही से भागेगी। काश, आज अपना मकान होता, सजा-संवरा, मैं इस काबिल होता कि हेलेन की मेहमानदारी कर सकता, इससे ज्यादा खुशनसीबी और क्या हो सकती थी लेकिन बेसरोसामानी का बुरा हो।

मैं यही सोच रहा था कि हेलेन ने कुली से असबाब उठवाया और बाहर आकर एक टैक्सी बुला ली। मेरे लिए इस टैक्सी में बैठ जाने के सिवा दूसरा चारा क्या बाकी रह गया था। मुझे यकीन है, अगर मैं उसे अपने घर ले जाता तो उस बेसरोसामानी के बावजूद वह खुश होती। हेलेन रुचि-संपन्न है मगर नखरेबाज नहीं है। वह हर तरह की आजमाइश और तजुर्बे के लिए तैयार रहती है। हेलेन शायद आजमाइशों को और नागवार तजुर्बों को बुलाती है। मगर मुझमें न यह कल्पना है न वह साहस।

उसने जरा गौर से मेरा चेहरा देखा होता तो उसे मालूम हो जाता कि उस पर कितनी शर्मिंदगी और कितनी बेचारगी झलक रही थी। मगर शिष्टाचार का निबाह तो जरूरी था, मैंने आपत्ति की—मैं तो आपको भी अपना मेहमान बनाना चाहता था मगर आप उल्टा मुझे होटल लिए जा रही हैं।

उसने शरारत से कहा—इसीलिए कि आप मेरे काबू से बाहर न हो जाएं। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की बात क्या होती कि आपके आतिथ्य-सत्कार का आनंद उठाऊं लेकिन प्रेम ईर्ष्यालु होता है, यह आपको मालूम है। वहां आपके इष्ट मित्र आपके वक्त का बड़ा हिस्सा लेंगे, आपको मुझसे बात करने का वक्त ही न मिलेगा और मर्द आमतौर पर कितने बेमुरव्वत और जल्द भूल जाने वाले होते हैं इसका मुझे अनुभव हो चुका है। मैं तुम्हें एक क्षण के लिए भी अलग नहीं छोड़ सकती। मुझे अपने सामने देखकर तुम मुझे भूलना भी चाहो तो नहीं भूल सकते।

मुझे अपनी इस खुशनसीबी पर हैरत ही नहीं, बल्कि ऐसा लगने लगा कि जैसे सपना देख रहा हूं। जिस सुंदरी की एक नजर पर मैं अपने को कुर्बान कर देता वह इस तरह मुझसे मुहब्बत का इजहार करे। मेरा तो जी चाहता था कि इसी बात पर उसके कदमों को पकड़कर सीने से लगा लूं और आंसुओं से तर कर दूं।

होटल में पहुंचे। मेरा कमरा अलग था। खाना हमने साथ खाया और थोड़ी देर तक

वहीं हरी-हरी घास पर टहलते रहे। खिलाड़ियों को कैसे चुना जाए, यही सवाल था। मेरा जी तो यही चाहता था कि सारी रात उसके साथ टहलता रहूं लेकिन उसने कहा—आप अब आराम करें, सुबह बहुत काम है। मैं अपने कमरे में जाकर लेट रहा, मगर सारी रात नींद नहीं आई। हेलेन का मन अभी तक मेरी आंखों से छिपा हुआ है, हर क्षण वह मेरे लिए पहेली होती जा रही है।

12 जनवरी—आज दिन-भर लखनऊ के क्रिकेटरों का जमाव रहा। हेलेन दीपक थी और पतिंगे उसके गिर्द मंडरा रहे थे। यहां मेरे अलावा दो लोगों का खेल हेलेन को बहुत पसंद आया—बृजेन्द्र और सादिक। हेलेन उन्हें ऑल इंडिया टीम में रखना चाहती थी। इसमें कोई शक नहीं कि दोनों इस फन के उस्ताद हैं लेकिन उन्होंने जिस तरह शुरुआत की है उससे तो यही मालूम होता है कि वह क्रिकेट खेलने नहीं अपनी किस्मत की बाजी खेलने आए हैं। हेलेन किस मिजाज की औरत है, यह समझना मुश्किल है। बृजेन्द्र मुझसे ज्यादा सुंदर है यह मैं स्वीकार करता हूं, रहन-सहन से पूरा साहब है। लेकिन पक्का शोहदा, लोफर। मैं नहीं चाहता कि हेलेन उससे किसी तरह का संबंध रखे। अदब तो उसे छू नहीं गया। बदजुबान परले सिरे का, बेहूदा गंदे मजाक, बातचीत का ढंग नहीं और मौके-महल की समझ नहीं। कभी-कभी हेलेन से ऐसे मतलब-भरे इशारे कर जाता है कि मैं शर्म से सिर झुका लेता हूं लेकिन हेलेन को शायद उसका बाजारूपन, उसका छिछोरापन महसूस नहीं होता। नहीं, वह शायद उसके गंदे इशारों का मजा लेती है। मैंने कभी उसके माथे पर शिकन नहीं देखी। यह मैं नहीं कहता कि यह हंसमुखपन कोई बुरी चीज है, न जिंदादिली का मैं दुश्मन हूं लेकिन एक लेडी के साथ तो अदब और कायदे का लिहाज रखना ही चाहिए।

सादिक एक प्रतिष्ठित कुल का दीपक है, बहुत ही शुद्ध-आचरण, यहां तक कि उसे ठंडे स्वभाव का भी कह सकते हैं, बहुत घमंडी, देखने में चिड़चिड़ा लेकिन अब वह भी शहीदों में दाखिल हो गया है। कल आप हेलेन को अपने शेर सुनाते रहे और वह खुश होती रही। मुझे तो उन शेरों में कुछ मजा न आया। इससे पहले मैंने इन हजरत को कभी शायरी करते नहीं देखा, यह मस्ती कहां से फट पड़ी है ? रूप में जादू की ताकत है और क्या कहूं। इतना भी न सूझा कि उसे शेर ही सुनाना है तो हसरत या जिगर या जोश के कलाम से दो-चार शेर याद कर लेता। हेलेन सबका कलाम पढ़े थोड़े ही बैठी है। आपको शेर कहने की क्या जरूरत मगर यही बात उनसे कह दूं तो बिगड़ जाएंगे, समझेंगे मुझे जलन हो रही है। मुझे क्यों जलन होने लगी। हेलेन की पूजा करने वालों में एक मैं ही हूं ? हां, इतना जरूर चाहता हूं कि वह अच्छे-बुरे की पहचान कर सके, हर आदमी से बेतकल्लुफी मुझे पसंद नहीं, मगर हेलेन की नजरों में सब बराबर हैं। वह बारी-बारी से सबसे अलग हो जाती है और सबसे प्रेम करती है। किसी की ओर ज्यादा झुकी हुई है, यह फैसला करना मुश्किल है। सादिक की धन-संपत्ति से वह जरा भी प्रभावित नहीं जान पड़ती। कल शाम को हम लोग सिनेमा देखने गए थे। सादिक ने आज असाधारण उदारता दिखाई। जेब से वह रुपया निकालकर सबके लिए टिकट लेने चले। मियां सादिक जो इस अमीरी के बावजूद तंगदिल आदमी हैं, मैं तो कंजूस कहूंगा, हेलेन ने उनकी उदारता को जगा दिया

है। मगर हेलेन ने उन्हें रोक लिया और खुद अंदर जाकर सबके लिए टिकट लाई। और यों भी वह इतनी बेदर्दी से रुपया खर्च करती है कि मियां सादिक के छक्के छूट जाते हैं। जब उनका हाथ जेब में जाता है, हेलेन के रुपये काउंटर पर जा पहुंचते हैं। कुछ भी हो, मैं तो हेलेन के स्वभाव-ज्ञान पर जान देता हूं। ऐसा मालूम होता है वह हमारी फरमाइशों का इन्तजार करती रहती है और उनको पूरा करने में उसे खास मजा आता है। सादिक साहब को उसने अलबम भेंट कर दिया जो योरोप के दुर्लभ चित्रों की अनुकृतियों का संग्रह है और जो उसने योरोप की तमाम चित्रशालाओं में जाकर खुद इकट्ठा किया है। उसकी आंखें कितनी सौंदर्य-प्रेमी हैं। बृजेन्द्र जब शाम को अपना नया सूट पहनकर आया, जो उसने अभी सिलाया है, तो हेलेन ने मुस्कराकर कहा—देखो कहीं नजर न लग जाय तुम्हें ! आज तो तुम दूसरे यूसुफ बने हुए हो। बृजेन्द्र बाग-बाग हो गया। मैंने जब लय के साथ अपनी ताजा गजल सुनाई तो वह एक-एक शेर पर उछल-उछल पड़ी। अद्भुत काव्यमर्मज्ञ है। मुझे अपनी कविता-रचना पर इतनी खुशी कभी न हुई थी मगर तारीफ जब सबका बुलौवा हो जाए तो उसकी क्या कीमत। मियां सादिक को कभी अपनी सुंदरता का दावा नहीं हुआ। भीतरी सौंदर्य से आप जितने मालामाल हैं बाहरी सौंदर्य से उतने ही कंगाल। मगर आज शराब के दौर में ज्योंही उनकी आंखों में सुर्खी आई, हेलेन ने प्रेम से पगे हुए स्वर में कहा—भई, तुम्हारी ये आंखें तो जिगर के पार हुई जाती हैं। और सादिक साहब उस वक्त उसके पैरों पर गिरते-गिरते रुक गए। लज्जा बाधक हुई। उनकी आंखों की ऐसी तारीफ शायद ही किसी ने की हो। मुझे कभी अपने रूप-रंग, चाल-ढाल की तारीफ सुनने की इच्छा नहीं हुई। मैं जो कुछ हूं, जानता हूं। मुझे अपने बारे में यह धोखा कभी नहीं हो सका कि मैं खूबसूरत हूं। यह भी जानता हूं कि हेलेन का यह सब सत्कार कोई मतलब नहीं रखता। लेकिन अब मुझे भी यह बेचैनी होने लगी कि देखो मुझ पर क्या इनायत होती है। कोई बात न थी, मगर मैं बेचैन रहा। जब मैं शाम को यूनिवर्सिटी ग्राउंड से खेल की प्रैक्टिस करके आ रहा था तो मेरे ये बिखरे हुए बाल कुछ और ज्यादा बिखर गए थे। उसने आसक्त नेत्रों से देखकर फौरन कहा—तुम्हारी इन बिखरी हुई जुल्फों पर निसार होने को जी चाहता है ! मैं निहाल हो गया, दिल में क्या-क्या तूफान उठे कह नहीं सकता।

मगर खुदा जाने क्यों हम तीनों में से एक भी उसकी किसी अदा या अंदाज या रूप की प्रशंसा शब्दों में नहीं कर पाता। हमें लगता है कि हमें ठीक शब्द नहीं मिलते। जो कुछ हम कह सकते हैं उससे कहीं ज्यादा प्रभावित हैं। कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं होती।

1 फरवरी—हम दिल्ली आ गए। इस बीच में मुरादाबाद, नैनीताल, देहरादून वगैरह जगहों के दौरे किए मगर कहीं कोई खिलाड़ी न मिला। अलीगढ़ और दिल्ली से कई अच्छे खिलाड़ियों के मिलने की उम्मीद है इसलिए हम लोग वहां कई दिन रहेंगे। एलेविन पूरी होते ही हम लोग बम्बई आ जाएंगे और वहां एक महीने प्रैक्टिस करेंगे। मार्च में आस्ट्रेलियन टीम यहां से रवाना होगी। तब तक वह हिन्दुस्तान में सारे पहले से निश्चित मैच खेल चुकी होगी। हम उससे आखिरी मैच खेलेंगे और खुदा ने चाहा तो हिन्दुस्तान की सारी शिकस्तों का बदला चुका देंगे। सादिक और बृजेन्द्र भी हमारे साथ घूमते रहे। मैं तो न चाहता था कि वे लोग आएं मगर हेलेन को शायद प्रेमियों के जमघट में मजा आता है।

हम सबके सब एक ही होटल में हैं और सब हेलेन के मेहमान हैं। स्टेशन पर पहुंचे तो सैकड़ों आदमी हमारा स्वागत करने के लिए मौजूद थे। कई औरतें भी थीं लेकिन हेलेन को न मालूम क्यों औरतों से आपत्ति है। उनकी संगत से भागती है, खासकर सुंदर औरतों की छाया से भी दूर रहती है हालांकि उसे किसी सुंदरी से जलने का कोई कारण नहीं है। यह मानते हुए भी कि हुस्न उस पर खत्म नहीं हो गया है, उसमें आकर्षण के ऐसे तत्त्व मौजूद हैं कि कोई परी भी उसके मुकाबले में नहीं खड़ी हो सकती। नख-शिख ही तो सब कुछ नहीं है। रुचि का सौंदर्य, बातचीत का सौंदर्य, अदाओं का सौंदर्य भी तो कोई चीज है। प्रेम उसके दिल में है या नहीं खुदा जाने लेकिन प्रेम के प्रदर्शन में वह बेजोड़ है। दिलजोई और नाजबरदारी के फन में हम जैसे दिलदारों को भी उससे शर्मिंदा होना पड़ता है। शाम को हम लोग नई दिल्ली की सैर को गए। दिलकश जगह है, खुली हुई सड़कें, जमीन के खूबसूरत टुकड़े, सुहानी रविशें। उसको बनाने में सरकार ने बेदिरेग रुपया खर्च किया है और बेजरूरत। यह रकम रिआया की भलाई पर खर्च की जा सकती थी मगर इसको क्या कीजिए कि जनसाधारण इसके निर्माण से जितने प्रभावित हैं उतने अपनी भलाई की किसी योजना से न होते। आप दस-पांच मदरसे ज्यादा खोल देते या सड़कों की मरम्मत में या खेती की जांच-पड़ताल में इस रुपये को खर्च कर देते मगर जनता को शान-शौकत, धन-वैभव से आज भी जितना प्रेम है उतना आपके रचनात्मक कामों से नहीं है। बादशाह की जो कल्पना उसके रोम-रोम में घुल गई है वह अभी सदियों तक न मिटेगी। बादशाह के लिए शान-शौकत जरूरी है। पानी की तरह रुपया बहाना जरूरी है। किफायतशार या कंजूस बादशाह चाहे वह एक-एक पैसा प्रजा की भलाई के लिए खर्च करे, इतना लोकप्रिय नहीं हो सकता। अंग्रेज मनोविज्ञान के पंडित हैं। अंग्रेज ही क्यों हर एक बादशाह जिसने अपने बाहुबल और अपनी बुद्धि से यह स्थान प्राप्त किया है स्वभावतः मनोविज्ञान का पंडित होता है। इसके बगैर जनता पर उसे अधिकार क्योंकर प्राप्त होता। खैर, यह तो मैंने यूं ही कहा। मुझे ऐसा अंदेशा हो रहा है कि शायद हमारी टीम सपना ही रह जाए। अभी से हम लोगों में अनबन रहने लगी है। बृजेन्द्र कदम-कदम पर मेरा विरोध करता है। मैं आम कहूं तो वह अदवदाकर इमली कहेगा और हेलेन को उससे प्रेम है। जिंदगी के कैसे-कैसे मीठे सपने देखने लगा था मगर बृजेन्द्र, कृतघ्न स्वार्थी बृजेन्द्र मेरी जिंदगी तबाह किए डालता है। हम दोनों हेलेन के प्रिय पात्र नहीं रह सकते, यह तय बात है; एक को मैदान से हटना पड़ेगा।

7 फरवरी—शुक्र है दिल्ली में हमारा प्रयत्न सफल हुआ। हमारी टीम में तीन नए खिलाड़ी जुड़े—जाफर, मेहरा और अर्जुनसिंह। आज उनके कमाल देखकर आस्ट्रेलियन क्रिकेटरों की धाक मेरे दिल से जाती रही। तीनों गेंद फेंकते हैं। जाफर अचूक गेंद फेंकता है, मेहरा सब्र की आजमाइश करता है और अर्जुन बहुत चालाक है। तीनों दृढ़ स्वभाव के लोग हैं, निगाह के सच्चे और अथक। अगर कोई इंसाफ से पूछे तो मैं कहूंगा कि अर्जुन मुझसे बेहतर खेलता है। वह दो बार इंगलैंड हो आया है। अंग्रेजी रहन-सहन से परिचित है और मिजाज पहचानने वाला भी अव्वल दर्जे का है, सभ्यता और आचार का पुतला। बृजेन्द्र का रंग फीका पड़ गया। अब अर्जुन पर खास कृपादृष्टि है और अर्जुन पर फतह

पाना मेरे लिए आसान नहीं है, मुझे तो डर है वह कहीं मेरी राह का रोड़ा न बन जाए।

25 फरवरी—हमारी टीम पूरी हो गई। दो प्लेयर हमें अलीगढ़ से मिले, तीन लाहौर से और एक अजमेर से और कल हम बम्बई आ गए। हमने अजमेर, लाहौर और दिल्ली में वहां की टीमों से मैच खेले और उन पर बड़ी शानदार फतह पाई। आज बम्बई की हिन्दू टीम से हमारा मुकाबला है और मुझे यकीन है कि मैदान हमारे हाथ रहेगा। अर्जुन हमारी टीम का सबसे अच्छा खिलाड़ी है और हेलेन उसकी इतनी खातिरदारी करती है कि मुझे जलन नहीं होती। इतनी खातिरदारी तो मेहमान की ही की जा सकती है। मेहमान से क्या डर। मजे की बात यह है कि हर व्यक्ति अपने को हेलेन का कृपा-पात्र समझता है और उससे अपने नाज उठवाता है। अगर किसी के सिर में दर्द है तो हेलेन का फर्ज है कि उसकी मिजाजपुर्सी करे, उसके सर में चंदन तक घिसकर लगा दे। मगर उसके साथ ही उसका रोब हर एक के दिल पर इतना छाया हुआ है कि कोई उसके किसी काम की आलोचना करने का साहस नहीं कर सकता। सब के सब उसकी मर्जी के गुलाम हैं। वह अगर सबके नाज उठाती है तो हुकूमत भी हर एक पर करती है। शामियाने में एक-से-एक सुंदर औरतों का जमघट है मगर हेलेन के कैदियों की मजाल नहीं कि किसी की तरफ देखकर मुस्करा भी सकें। हर एक के दिल पर ऐसा डर छाया रहता है कि जैसे वह हर जगह पर मौजूद है। अर्जुन ने एक मिस पर यूं ही कुछ नजर डाली थी, हेलेन ने ऐसी प्रलय की आंख से उसे देखा कि सरदार साहब का रंग उड़ गया। हर एक समझता है कि वह उसकी तकदीर की मालिक है और उसे अपनी तरफ से नाराज करके वह शायद जिंदा न रह सकेगा। और की तो मैं क्या कहूं, मैंने ही गोया अपने को उसके हाथों बेच दिया है। मुझे तो अब ऐसा लग रहा है कि मुझमें कोई ऐसी चीज खत्म हो गई है जो पहले मेरे दिल में डाह की आग-सी जला दिया करती थी। हेलेन अब किसी से बोले, किसी से प्रेम की बातें करे, मुझे गुस्सा नहीं आता। दिल पर चोट लगती जरूर है मगर उसका इजहार अकेले में आंसू बहाकर करने को जी चाहता है। वह स्वाभिमान कहां गायब हो गया नहीं कह सकता। अभी उसकी नाराजगी से दिल के टुकड़े हो गए थे कि एकाएक उसकी एक उचटती हुई-सी निगाह ने या एक मुस्कराहट ने गुदगुदी पैदा कर दी। मालूम नहीं उसमें वह कौन-सी ताकत है जो इतने हौसलामंद नौजवान दिलों पर हुकूमत कर रही है। उसे बहादुरी कहूं, चालाकी और फुर्ती कहूं, हम सब जैसे उसके हाथों की कठपुतलियां हैं। हममें अपनी कोई शख्सियत, कोई हस्ती नहीं है। उसने अपने सौंदर्य से, अपनी बुद्धि से, अपने धन से और सबसे ज्यादा सबको समेट सकने की अपनी ताकत से हमारे दिलों पर अपना आधिपत्य जमा लिया है।

1 मार्च—कल आस्ट्रेलियन टीम से हमारा मैच खत्म हो गया। पचास हजार से कम तमाशाइयों की भीड़ न थी। हमने पूरी इनिंग्स से उनको हराया और देवताओं की तरह पुजे। हममें से हर एक ने दिलोजान से काम किया और सभी यकसां तौर पर फूले हुए थे। मैच खत्म होते ही शहर वालों की तरफ से हमें एक शानदार पार्टी दी गई। ऐसी पार्टी तो शायद वाइसराय के सम्मान में भी न दी जाती होगी। मैं तो तारीफों और बधाइयों के बोझ

से दब गया। मैंने चवालीस रनों में पांच खिलाड़ियों का सफाया कर दिया था। मुझे खुद अपने भयानक गेंद फेंकने पर अचरज हो रहा था। जरूर कोई अलौकिक शक्ति हमारा साथ दे रही थी। इस भीड़ में बम्बई का सौंदर्य अपनी पूरी शान और रंगीनी के साथ चमक रहा था और मुझे दावा है कि सुंदरता की दृष्टि से यह शहर जितना भाग्यशाली है दुनिया का कोई दूसरा शहर शायद ही हो। मगर हेलेन इस भीड़ में भी सबकी दृष्टियों का केंद्र बनी हुई थी। यह जालिम महज हसीन नहीं है, मीठा बोलती भी है और उसकी अदाएं भी मीठी हैं। सारे नौजवान परवानों की तरह उस पर मंडरा रहे थे, एक-से-एक खूबसूरत, मनचले और हेलेन उनकी भावनाओं से खेल रही थी, उसी तरह जैसे वह हम लोगों की भावनाओं से खेला करती थी। महाराज कुमार जैसा सुंदर जवान मैंने आज तक नहीं देखा। सूरत से रोब टपकता है। उनके प्रेम ने कितनी सुंदरियों को दुःख दिया है कौन जाने। मर्दाना दिलकशी का जादू-सा बिखरता चलता है। हेलेन उनसे भी वैसी ही आजाद बेतकल्लुफी से मिली जैसे दूसरे हजारों नौजवानों से। उनके सौंदर्य का, उनकी दौलत का उस पर जरा भी असर न था। न जाने इतना गर्व, इतना स्वाभिमान उसमें कहां से आ गया है। कभी नहीं डगमगाती, कहीं रोब में नहीं आती, कभी किसी की तरफ नहीं झुकती। वही हंसी-मजाक है, वही प्रेम का प्रदर्शन, किसी के साथ कोई विशेषता नहीं, दिलजोई सबकी मगर उसी बेपरवाही की शान के साथ।

हम लोग सैर करके दस बजे रात को होटल पहुंचे तो सभी जिंदगी के नए सपने देख रहे थे। सभी के दिलों में एक धुकधुकी-सी हो रही थी कि देखें अब क्या होता है। आशा और भय ने सभी के दिलों में एक तूफान-सा उठा रखा था गोया आज हर एक के जीवन की एक स्मरणीय घटना होने वाली है। अब क्या प्रोग्राम है, इसकी किसी को खबर न थी। सभी जिंदगी के सपने देख रहे थे। हर एक के दिल पर एक पागलपन सवार था। हर एक को यकीन था कि हेलेन की खास दृष्टि उस पर है मगर यह अंदेशा भी हर एक के दिल में था कि खुदा न खास्ता कहीं हेलेन ने बेवफाई की तो यह जान उसके कदमों पर रख देगा, यहां से जिंदा घर जाना कयामत था।

उसी वक्त हेलेन ने मुझे अपने कमरे में बुला भेजा। जाकर देखता हूं तो सभी खिलाड़ी जमा हैं। हेलेन उस वक्त अपनी शर्बती बेलदार साड़ी में आंखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। मुझे उस पर झुंझलाहट हुई, इस आम मजमे में मुझे बुलाकर कवायद कराने की क्या जरूरत थी। मैं तो खास बर्ताव का अधिकारी था। मैं भूल रहा था कि शायद इसी तरह उनमें से हर एक अपने को खास बर्ताव का अधिकारी समझता हो।

हेलेन ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—दोस्तो, मैं कह नहीं सकती कि आप लोगों की कितनी कृतज्ञ हूं और आपने मेरी जिंदगी की कितनी बड़ी आरजू पूरी कर दी। आप में से किसी को मिस्टर रतनलाल की याद आती है ?

रतनलाल ! उसे भी कोई भूल सकता है ! वह जिसने पहली बार हिन्दुस्तान की क्रिकेट टीम को इंगलैंड की धरती पर अपने जौहर दिखाने का मौका दिया, जिसने अपने लाखों रुपये इस चीज की नजर किए और आखिर बार-बार की पराजयों से निराश होकर वहीं इंगलैंड में आत्महत्या कर ली। उसकी वह सूरत अब भी हमारी आंखों के सामने फिर रही है।

सबने कहा—खूब अच्छी तरह, अभी बात ही कै दिन की है।

"आज इस शानदार कामयाबी पर मैं आपको बधाई देती हूं। भगवान् ने चाहा तो अगले साल हम इंगलैंड का दौरा करेंगे। आप अभी से इस मोर्चे के लिए तैयारियां कीजिए। लुत्फ तो जब है कि हम वहां एक मैच भी न हारें, मैदान बराबर हमारे हाथ रहे। दोस्तो, यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। किसी लक्ष्य को पूरा करने के लिए जो काम किया जाता है उसी का नाम जिंदगी है। हमें कामयाबी वहीं होती है जहां हम अपने पूरे हौसले से काम में लगे हों, वही लक्ष्य हमारा स्वप्न हो, हमारा प्रेम हो, हमारे जीवन का केंद्र हो। हममें और इस लक्ष्य के बीच में और कोई इच्छा, कोई आरजू दीवार की तरह न खड़ी हो। माफ कीजिएगा, आपने अपने लक्ष्य के लिए जीना नहीं सीखा। आपके लिए क्रिकेट सिर्फ एक मनोरंजन है। आपको उससे प्रेम नहीं। इसी तरह हमारे सैकड़ों दोस्त हैं जिनका दिल कहीं और होता है, दिमाग कहीं और, और वह सारी जिंदगी नाकाम रहते हैं। आपके लिए मैं ज्यादा दिलचस्पी की चीज थी, क्रिकेट तो सिर्फ मुझे खुश करने का जरिया था। फिर भी आप कामयाब हुए। मुल्क में आप जैसे हजारों नौजवान हैं, जो अगर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए जीना और मरना सीख जाएं तो चमत्कार कर दिखाएं। आइए और वह कमाल हासिल कीजिए। मेरा रूप और मेरी रातें वासना का खिलौना बनने के लिए नहीं हैं। नौजवानों की आंखों को खुश करने और उनके दिलों में मस्ती पैदा करने के लिए जीना मैं शर्मनाक समझती हूं। जीवन का लक्ष्य इससे कहीं ऊंचा है। सच्ची जिंदगी वही है जहां हम अपने लिए नहीं सबके लिए जीते हैं।"

हम सब सिर झुकाए सुनते रहे और झल्लाते रहे। हेलेन कमरे से निकलकर कार पर जा बैठी। उसने अपने रवानगी का इंतजाम पहले ही कर लिया था। इसके पहले कि हमारे होश-हवास सही हों और हम परिस्थिति समझें, वह जा चुकी थी।

हम सब हफ्ते-भर तक बंबई की गलियों, होटलों, बंगलों की खाक छानते रहे, हेलेन कहीं न थी। और ज्यादा अफसोस यह है कि उसने हमारी जिंदगी का जो आइडियल रखा वह हमारी पहुंच से ऊंचा है। हेलेन के साथ हमारी जिंदगी का सारा जोश और उमंग खत्म हो गई।

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू में। उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना', जुलाई, 1937 में प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

एक अपूर्ण कहानी

बाबू सेवाराम ने बड़े-बड़े फ़िलासफ़रों का मुताला किया था। फ़लसफ़ा में एम. ए. थे, मगर ज़िन्दगी यक रास्ता मिराइन ईसवी से ज़्यादा बेहतर कोई रहनुमा न मिला था। इस्तदलाल की दुनिया में तो वो बर्गसन और जाटे कई-कई फ़िलासफ़रों के मोत्क़द थे, मगर दुनिया-ए-अमल में वो लज्जावती के पैरो थे। इसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कोई काम करके वो फ़लसफ़ियाना हमलों का निाना ना बनना चाहते थे। इसका नतीजा यह था कि घर में

लज्जावती का राज था। सेवाराम अपनी चारपाई आप बिछा लें, नौकर बैठा रहता था, लेकिन लज्जावती के इशारे पर काम करता था। वह कहीं बाहर से घर में आती तो घर में हलचल मच जाती, मगर सेवाराम घर में आये तो किसी को घर में ख़बर भी न होती थी। वह कॉलेज से लौटकर अपने कमरे में जाते, कपड़े उतारते, तब कुछ नाश्ता करने ख़ुद आते थे। आज वह अपने कमरे में न जाकर सीधे लज्जावती के पास आये। लज्जा ने उनके चेहरे की तरफ़ देखा, बोली, "कपड़े तो उतार देते। चेहरा कुछ उतरा हुआ है।"

सेवाराम ने किताबों का बण्डल चारपाई पर पटक दिया और खड़े-खड़े बोले, "एक नई मुसीबत आ खड़ी हुई है। मोहनी को किसी तरह समझा-बुझाकर यहाँ से रवाना करना चाहिए। प्रिंसिपल साहब ने आज मुझे बुरी तरह डाँटा।"

सेवाराम का चेहरा देखकर उनके फ़लसफ़ी होने का वहम भी नहीं हो सकता था। मोटे-मोटे होंठ, छोटी-छोटी आँखें, बड़ी-बड़ी मूँछें, फ़रबा जिस्म और तारकोल का-सा रंग। ऊँची अचकन पहनते थे और पाजामा भी ऊँचा ही पहनते थे।

[प्रकाशन तिथि अज्ञात। उर्दू पांडुलिपि से हिन्दी लिप्यंतर। 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

जुरमाना

ऐसा शायद ही कोई महीना जाना कि अलारक्खी के वेतन से कुछ जुरमाना न कट जाता। कभी-कभी तो उसे छः रुपये के पाँच रुपये ही मिलते, लेकिन वह सब कुछ सहकर भी सफाई के दरोगा मु. खैरात अली खाँ के चुंगल में कभी न आती। खाँ साहब की मातहती में सैकड़ों मेहतरानियाँ थीं। किसी की भी तलब न कटती, किसी पर जुर्माना न होता, न डाँट ही पड़ती। खाँ साहब नेकनाम थे, दयालु थे। मगर अलारक्खो उनके हाथों बराबर ताड़ना पाती रहती थी। वह कामचोर नहीं थी, बेअदब नहीं थी, फूहड़ नहीं थी, बदसूरत भी नहीं थी; पहर रात को इस ठण्ड के दिनों में वह झाडू लेकर निकल जाती और नौ बजे तक एक-चित्त होकर सड़क पर झाडू लगाती रहती। फिर भी उस पर जुर्माना हो जाता। उसका पति हुसेनी भी अवसर पाकर उसका काम कर देता, लेकिन अलारक्खी की क़िस्मत में जुर्माना देना था। तलब का दिन औरों के लिए हँसने का दिन था, अलारक्खी के लिए रोने का। उस दिन उसका मन जैसे सूली पर टँगा रहता। न जाने कितने पैसे कट जायँगे ? वह परीक्षा वाले छात्रों की तरह बार-बार जुर्माना की रकम का तख़मीना करती।

उस दिन वह थककर जरा दम लेने के लिए बैठ गई थी। उसी वक्त दारोग़ाजी अपने इक्के पर आ रहे थे। वह कितना कहती रही हजूरआली, मैं फिर काम करूँगी, लेकिन उन्होंने एक न सुनी थी, अपनी किताब में उसका नाम नोट कर लिया था। उसके कई दिन बाद फिर ऐसा ही हुआ। वह हलवाई से एक पैसे के सेवड़े लेकर खा रही थी। उसी वक्त दारोगा न जाने किधर से निकल पड़ा था और फिर उसका नाम लिख लिया गया था। न जाने कहाँ छिपा रहता है ? जरा भी सुस्ताने लगे कि भूत की तरह आकर खड़ा हो जाता है।

नाम तो उसने दो ही दिन लिखा था, पर जुर्माना कितना करता है—अल्ला जाने ! आठ आने से बढ़कर एक रुपया न हो जाय। वह सिर झुकाये वेतन लेने जाती और तख़मीने से कुछ ज्यादा ही कटा हुआ पाती। काँपते हुए हाथों से रुपये लेकर आँखों में आँसू भरे लौट आती। किससे फरियाद करे, दारोग़ा के सामने उसकी सुनेगा कौन ?

आज फिर वही तलब का दिन था। इस महीने में उसकी दूध पीती बच्ची को खाँसी और ज्वर आने लगा था। ठंड भी खूब पड़ी थी। कुछ तो ठंड के मारे और कुछ लड़की के रोने-चिल्लाने के कारण उसे रात-रात-भर जागना पड़ता था। कई दिन काम पर जाने में देर हो गई थी। दारोग़ा ने उसका नाम लिख लिया था। अबकी आधे रुपये कट जायेंगे। आधे भी मिल जायँ तो गनीमत है। कौन जाने कितना कटा है ? उसने तड़के बच्ची को गोद में उठाया और झाड़ू लेकर सड़क पर जा पहुँची। मगर वह दुष्ट गोद से उतरती ही न थी। उसने बार-बार दारोग़ा के आने की धमकी दी—अभी आता होगा, मुझे भी मारेगा, तेरे भी नाक-कान काट लेगा। लेकिन लड़की को अपने नाक-कान कटवाना मंजूर था, गोद से उतरना मंजूर न था; आखिर जब वह डराने-धमकाने, प्यारने-पुचकारने, किसी उपाय से न उतरी तो अलारक्खी ने उसे गोद से उतार दिया और उसे रोती-चिल्लाती छोड़कर झाड़ू लगाने लगी। मगर वह अभागिनी एक जगह बैठकर मन-भर रोती भी न थी। अलारक्खी के पीछे लगी हुई बार-बार उसकी साड़ी पकड़कर खींचती, उसकी टाँग से लिपट जाती, फिर जमीन पर लोट जाती और एक क्षण में उठकर फिर रोने लगती।

उसने झाड़ू तानकर कहा—चुप हो जा, नहीं तो झाड़ू से मारूँगी, जान निकल जायगी; अभी दारोग़ा दाढ़ीजार आता होगा...

पूरी धमकी मुँह से निकल भी न पाई थी कि दारोग़ा खैरातअली खां सामने आकर साइकिल से उतर पड़ा। अलारक्खी का रंग उड़ गया, कलेजा धक्-धक् करने लगा ! या मेरे अल्लाह, कहीं इसने सुन न लिया हो ! मेरी आँखें फूट जायँ। सामने से आया और मैंने देखा नहीं। कौन जानता था, आज पैरगाड़ी पर आ रहा है ? रोज तो इक्के पर आता था। नाड़ियों में रक्त का दौड़ना बन्द हो गया। झाड़ू हाथ में लिए निःस्तब्ध खड़ी रह गई।

दारोग़ा ने डाँटकर कहा—काम करने चलती है तो एक पुच्छिल्ला साथ ले लेती है। इसे घर पर क्यों नहीं छोड़ आई ?

अलारक्खी ने कातर स्वर में कहा—इसका जी अच्छा नहीं है हुजूर, घर पर किसके पास छोड़ आती।

'क्या हुआ है इसको !'

'बुखार आता है हुजूर !'

'और तू इसे यों छोड़कर रुला रही है। मरेगी कि जियेगी ?'

'गोद में लिये-लिये काम कैसे करूँ हुजूर !'

'छुट्टी क्यों नहीं ले लेती !'

'तलब कट जाती हुजूर, गुजारा कैसे होता ?'

'इसे उठा ले और घर जा। हुसेनी लौटकर आये तो इधर झाड़ू लगाने के लिए भेज देना।'

अलारक्खी ने लड़की को उठा लिया और चलने को हुई, तब दारोग़ा ने पूछा—मुझे

गाली क्यों दे रही थी ?

अलारक्खी की रही-सही जान भी निकल गई। काटो तो लहू नहीं। थर-थर काँपती बोली—नहीं हुजूर, मेरी आँखें फूट जायँ जो तुमको गाली दी हो।

और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

2

संध्या समय हुसेनी और अलारक्खी दोनों तलब लेने चले। अलारक्खी बहुत उदास थी।

हुसेनी ने सांत्वना दी—तू इतनी उदास क्यों है ? तलब ही न कटेगी—काटने दे अबकी से तेरी जान की कसम खाता हूँ, एक घूँट दारू या ताड़ी नहीं पिऊँगा।

'मैं डरती हूँ, बरखास्त न कर दे मेरी जीभ जल जाय ! कहाँ से कहाँ...

'बरखास्त कर देगा, कर दे, उसका अल्ला भला करे ! कहाँ तक रोयें !'

'तुम मुझे नाहक लिये चलते हो। सब-की-सब हँसेंगी।'

'बरखास्त करेगा तो पूछूँगा नहीं कि किस इलजाम पर बरखास्त करते हो, गाली देते किसने सुना ? कोई अन्धेर है, जिसे चाहे, बरखास्त कर दे और जो कहीं सुनवाई न हुई तो पंचों से फरियाद करूँगा। चौधरी के दरवाजे पर सर पटक दूँगा।'

'ऐसी ही एकता होती तो दारोग़ा इतना जरीमाना करने पाता ?'

जितना बड़ा रोग होता है उतनी दवा होती है, पगली !'

फिर भी अलारक्खी का मन शान्त न हुआ। मुख पर विषाद का धुआँ-सा छाया हुआ था। दारोग़ा क्यों गाली सुनकर भी बिगड़ा नहीं, उसी वक्त उसे क्यों नहीं बरखास्त कर दिया, यह उसकी समझ में न आता था। वह कुछ दयालु भी मालूम होता था। उसका रहस्य वह न समझ पाती थी, और जो चीज़ हमारी समझ में नहीं आती उसी से हम डरते हैं। केवल जुरमाना करना होता तो उसने किताब पर उसका नाम लिखा होता। उसको निकाल बाहर करने का निश्चय कर चुका है, तभी दयालु हो गया था। उसने सुना था कि जिन्हें फाँसी दी जाती है, उन्हें अन्त समय खूब पूरी-मिठाई खिलाई जाती है, जिससे मिलना चाहें उससे मिलने दिया जाता है। निश्चय बरखास्त करेगा।

म्युनिसिपैलिटी का दफ्तर आ गया। हजारों मेहतरानियाँ जमा थीं, रंग-बिरंग के कपड़े पहने, बनाव-सिंगार किये। पान-सिगरेट वाले भी आप गये थे, खोंचे वाले भी। पठानों का एक दल भी अपने असामियों से रुपये वसूल करने आ पहुँचा था। वह दोनों भी जाकर खड़े हो गये।

वेतन बँटने लगा। पहले मेहतरानियों का नम्बर था। जिसका नाम पुकारा जाता वह लपक कर जाती और अपने रुपये लेकर दारोग़ाजी को मुफ़्त की दुआएँ देती हुई चली जातीं। चम्पा के बाद अलारक्खी का नाम बराबर पुकारा जाता था। आज अलारक्खी का नाम उड़ गया था। चम्पा के बाद जहूरन का नाम पुकारा गया जो अलारक्खी के नीचे था।

अलारक्खी ने हताश आँखों से हुसेनी को देखा। मेहतरानियाँ उसे देख-देखकर कानाफूसी करने लगीं। उसके जी में आया, घर चली जाय। यह उपहास नहीं सहा जाता। ज़मीन फट जाती कि उसमें समा जाती।

एक के बाद दूसरा नाम आता गया और अलारक्खी सामने के वृक्षों की ओर देखती

रही। उसे अब इसकी परवा न थी कि किसका नाम आता है. कौन जाता है, कौन उसकी ओर ताकता है, कौन उस पर हँसता है।

सहसा अपना नाम सुनकर वह चौंक पड़ी ! धीरे से उठी और नवेली बहू की भाँति पग उठाती हुई चली। खजांची ने पूरे छः रुपये उसके हाथ पर रख दिये।

उसे आश्चर्य हुआ। खजांची ने भूल तो नहीं की ? इन तीन बरसों में पूरा वेतन तो कभी मिला नहीं। और अबकी तो आधा भी मिले तो बहुत है। वह एक सेकण्ड वहाँ खड़ी रही कि शायद खजांची उससे रुपया वापस माँगे। जब खजांची ने पूछा, अब क्यों खड़ी है जाती क्यों नहीं ? तब वह धीरे से बोली—यह तो पूरे रुपये हैं।

खजांची ने चकित होकर उसकी ओर देखा !

'तो और क्या चाहती है, कम मिलें ?'

'कुछ जरीमाना नहीं है ?'

'नहीं, अबकी कुछ जरीमाना नहीं है।'

अलारक्खी चली, पर उसका मन प्रसन्न न था। वह पछता रही थी कि दारोग़ाजी को गाली क्यों दी।

[कहानी। प्रथम प्रकाशन अज्ञात। कहानी-संग्रह 'कफन' में संकलित।]

मोटर के छींटे

क्या नाम कि प्रातःकाल स्नान-पूजा से निपट, तिलक लगा, पीताम्बर पहन, खड़ाऊँ पाँव में डाल, बगल में पत्रा दबा, हाथ में मोटा-सा शत्रु-मस्तक-भंजक ले एक जजमान के घर चला। विवाह की साइत विचारनी थी। कम-से-कम एक कलदार का डौल था। जलपाल ऊपर से। और मेरा जलपान मामूली जलपान नहीं है। बाबुओं को तो मुझे निमन्त्रित करने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। उनका महीने-भर का नाश्ता मेरा एक दिन का जलपान है। इस विषय में तो हम अपने सेठों-साहूकारों के कायल हैं ऐसा खिलाते हैं, ऐसा खिलाते हैं, और इतने खुले मन से कि चोला आनन्दित हो उठता है। जजमान का दिल देखकर ही मैं उनका निमन्त्रण स्वीकार करता हूँ। खिलाते समय किसी ने रोनी सूरत बनायी और मेरी क्षुधा गायब हुई। रोकर किसी ने खिलाया तो क्या ? ऐसा भोजन कम-से-कम मुझे नहीं पचता। जजमान ऐसा चाहिए कि ललकारता जाय—लो शास्त्रीजी, एक बालूशाही और मैं कहता जाऊँ··· नहीं जजमान अब नहीं !

रात खूब वर्षा हुई थी, सड़क पर जगह-जगह पानी जमा था। मैं अपने विचारों में मगन चला जाता था कि एक मोटर छप-छप करती हुई निकल गयी। मुँह पर छींटे पड़े। जो देखता हूँ, तो धोती पर मानो किसी ने कीचड़ घोलकर डाल दिया हो। कपड़े भ्रष्ट हुए, वह अलग, देह भ्रष्ट हुई, वह अलग, आर्थिक क्षति जो हुई, वह अलग। अगर मोटर वालों को पकड़ पाता, तो ऐसी मरम्मत करता कि वे भी याद करते। मन मसोसकर रह गया। इस वेश में जजमान के घर तो जा नहीं सकता था, अपना घर भी मील-भर से कम न था। फिर

आने-जाने वाले सब मेरी ओर देख-देखकर तालियाँ बजा रहे थे। ऐसी दुर्गति मेरी कभी नहीं हुई थी। अब क्या करोगे मन ? घर जाओगे, तो पण्डिताइन क्या कहेंगी ?

मैंने चटपट अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। इधर-उधर से दस-बारह पत्थर के टुकड़े बटोर लिये और दूसरी मोटर की राह देखने लगा। ब्रह्मतेज सिर पर चढ़ बैठा ! अभी दस मिनट भी न गुजरे होंगे कि एक मोटर आती हुई दिखायी दी ! ओहो वही मोटर थी। शायद स्वामी को स्टेशन से लेकर लौट रही थी। ज्योंही समीप आयी, मैंने एक पत्थर चलाया, भरपूर जोर लगाकर चलाया। साहब की टोपी उड़कर सड़क के उस बाजू पर गिरी। मोटर की चाल धीमी हुई। मैंने दूसरा फैर किया। खिड़की के शीशे चूर-चूर हो गये और एक टुकड़ा साहब बहादुर के गाल में भी लगा। खून बहने लगा। मोटर रुकी और साहब उतरकर मेरी तरफ आये और घूँसा तानकर बोले—सूअर हम तुमको पुलिस में देगा। इतना सुनना था कि मैंने पोथी-पत्रा जमीन पर फेंका और साहब की कमर पकड़कर अड़ंगी लगायी, तो कीचड़ में भद-से गिरे। मैंने चट सवारी गाँठी और गरदन पर एक पचीस रद्दे ताबड़तोड़ जमाये कि साहब चौंधिया गये। इतने में उनकी पत्नीजी उतर आयीं। ऊँची एड़ी का जूता, रेशमी साड़ी, गालों पर पाउडर, ओठों पर रंग, भवों पर स्याही, मुझे छाते से गोदने लगीं। मैंने साहब को छोड़ दिया और डंडा संभालता हुआ बोला—देवीजी, आप मरदों के बीच में न पडें, कहीं चोट-चपेट आ जाय, तो मुझे दुःख होगा।

साहब न अवसर पाया, तो संहलकर उठे और अपने बूटदार पैरों से मुझे एक ठोकर जमायी। मेरे घुटने में बड़ी चोट लगी। मैंने बौखलाकर डंडा उठा लिया। और साहब के पाँव में जमा दिया। वह कटे पेड़ की तरह गिरे। मेम साहब छतरी तानकर दौड़ीं। मैंने धीरे से उनकी छतरी छीनकर फेंक दी। ड्राइवर अभी तक बैठा था। अब वह भी उतरा और छड़ी लेकर मुझ पर पिल पड़ा। मैंने एक डंडा उसके भी जमाया, लोट गया। पचासों आदमी तमाशा देखने जमा हो गए। साहब भूमि पर पड़े-पड़े बोले—रेस्केल, हम तुमको पुलिस में देगा।

मैंने फिर डंडा सँभाला और चाहता था कि खोपड़ी पर जमाऊँ कि साहब ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं-नहीं, बाबा, हम पुलिस में नहीं जायगा माफी दो।

मैंने कहा—हाँ, पुलिस का नाम न लेना, नहीं तो यहीं खोपड़ी रंग दूँगा। बहुत होगा छः महीने की सजा हो जायगी, मगर तुम्हारी आदत छुड़ा दूँगा। मोटर चलाते हो, तो छींटे उड़ाते चलते हो, मारे घमण्ड के अन्धे हो जाते हो। सामने या बगल में कौन जा रहा है, इसका कुछ ध्यान ही नहीं रखते।

एक दर्शक ने आलोचना की—अरे महाराज, मोटरवाले जान-बूझकर छींटे उड़ाते हैं और जब आदमी लथपथ हो जाता है, तो सब उसका तमाशा देखते हैं और खूब हँसते हैं। आपने बड़ा अच्छा किया, कि एक को ठीक कर दिया।

मैंने साहब को ललकार कर कहा—सुनता है कुछ, जनता क्या कहती है। साहब ने उस आदमी की ओर लाल-लाल आँखों से देखकर कहा—तुम झूठ बोलता है, बिलकुल झूठ बोलता है।

मैंने डाँटा—अभी तुम्हारी हेकड़ी कम नहीं हुई, आऊँ फिर और दूँ एक सोंटा कसके?

साहब ने घिघियाकर कहा—अरे नहीं बाबा, सच बोलता है, सच बोलता है। अब तो खुश हुआ।

दूसरा दर्शक बोला—अभी जो चाहें कह दें, लेकिन ज्योंही गाड़ी पर बैठे, फिर वही हरकत शुरू कर देंगे। गाड़ी पर बैठते ही सब अपने को नवाब का नाती समझने लगते हैं।

दूसरे महाशय बोले—इससे कहिए थूककर चाटे।

तीसरे सज्जन ने कहा—नहीं, कान पकड़कर उठाइए-बैठाइए।

चौथा बोला—अरे ड्राइवर को भी। ये सब और बदमाश होते हैं। मालदार आदमी घमण्ड करे, तो एक बात है, तुम किस बात पर अकड़ते हो। चक्कर हाथ में लिया और आँखों पर परदा पड़ा।

मैंने यह प्रस्ताव स्वीकार किया। ड्राइवर और मालिक दोनों ही को कान पकड़कर उठाना-बैठाना चाहिए और मेम साहब गिनें। सुनो मेम साहब, तुमको गिनना होगा। पूरी सौ बैठकें। एक भी कम नहीं, ज्यादा जितनी चाहें, हो जायँ।

दो आदमियों ने साहब का हाथ पकड़कर उठाया, दो ने ड्राइवर-महोदय का। ड्राइवर बेचारे की टाँग में चोट थी, फिर भी वह बैठकें लगाने लगा। साहब की अकड़ अभी काफी थी। आप लेट गये और ऊल-जलूल बकने लगे। मैं उस समय रुद्र बना हुआ था। दिल में ठान लिया था कि इससे बिना सौ बैठकें लगवाये न छोड़ूँगा। चार आदमियों को हुक्म दिया कि गाड़ी को ढकेलकर सड़क के नीचे गिरा दो।

हुक्म की देर थी। चार की जगह पचास आदमी लिपट गये और गाड़ी को ढकेलने लगे। वह सड़क बहुत ऊँची थी। दोनों तरफ की जमीन नीची। गाड़ी नीचे गिरती और टूट-टाटकर ढेर हो जाती। गाड़ी सड़क के किनारे तक पहुँच चुकी थी, कि साहब काँखकर उठ खड़े हुए और बोले—बाबा, गाड़ी को मत तोड़ो, हम उठे-बैठेगा।

मैंने आदमियों को अलग हट जाने का हुक्म दिया; मगर सबों को एक दिल्लगी मिल गयी थी। किसी ने मेरी ओर ध्यान न दिया। लेकिन जब मैं डंडा लेकर उनकी ओर दौड़ा तब सब गाड़ी छोड़कर भागे और साहब ने आँखें बन्द करके बैठकें लगानी शुरू कीं।

मैंने दस बैठकों के बाद मेम साहब से पूछा—कितनी बैठकें हुई ?

मेम साहब ने रोब से जवाब दिया—हम नहीं गिनता।

'तो इस तरह साहब दिन-भर काँखते रहेंगे और मैं न छोड़ूँगा। अगर उनको कुशल से घर ले जाना चाहती हो, तो बैठकें गिन दो। मैं उनको रिहा कर दूँगा।'

साहब ने देखा कि बिना दंड भोगे जान न बचेगी, तो बैठकें लगाने लगे। एक, दो, तीन, चार, पाँच।

सहसा एक दूसरी मोटर आती दिखायी दी। साहब ने देखा और नाक रगड़कर बोले—पंडितजी, आप मेरा बाप है ! मुझ पर दया करो, अब हम कभी मोटर पर न बैठेंगे। मुझे भी दया आ गयी। बोला—नहीं, मोटर पर बैठने से मैं नहीं रोकता, इतना ही कहता हूँ कि मोटर पर बैठकर भी आदमियों को आदमी समझो।

दूसरी गाड़ी तेज चली आती थी। मैंने इशारा किया। सब आदमियों ने दो-दो पत्थर उठा लिये। उस गाड़ी का मालिक स्वयं ड्राइव कर रहा था। गाड़ी धीमी करके धीरे से सरक जाना चाहता था कि मैंने बढ़कर उसके दोनों कान पकड़े और खूब जोर से हिलाकर और

दोनों गालों पर एक-एक पड़ाका देकर बोला—गाड़ी से छींटा न उड़ाया करो, समझे। चुपके से चले जाओ।

यह महोदय बक-झक तो करते रहे; मगर एक सौ आदमियों को पत्थर लिये खड़ा देखा, तो बिना कान-पूँछ डुलाये चलते हुए।

उनके जाने के एक ही मिनट बाद दूसरी गाड़ी आयी। मैंने 50 आदमियों को राह रोक लेने का हुक्म दिया। गाड़ी रुक गयी। मैंने उन्हें भी चार पड़ाके देकर विदा किया; मगर यह बेचारे भले आदमी थे। मजे से चाँटें खाकर चलते हुए।

सहसा एक आदमी ने कहा—पुलिस आ रही है।

और सब-के-सब हुर्र हो गये ! मैं भी सड़क के नीचे उतर गया और एक गली में घुसकर गायब हो गया !

[प्रथम प्रकाशन अज्ञात। मानसरोवर, भाग-2 में संकलित।]

यह भी नशा, वह भी नशा

होली के दिन राय साहब पण्डित घसीटेलाल की बारहदरी में भंग छन रही थी कि सहसा मालूम हुआ, जिलाधीश मिस्टर बुल आ रहे हैं। बुल साहब बहुत ही मिलनसार आदमी थे और अभी हाल ही में विलायत से आए थे। भारतीय रीति-नीति के जिज्ञासु थे, बहुधा मेले ठेलों में जाते थे। शायद इस विषय पर कोई बड़ी किताब लिख रहे थे। उनकी खबर पाते ही यहां बड़ी खलबली मच गई। सब-के-सब नंग-धड़ंग, मूसरचंद बने भंग छान रहे थे। कौन जानता था कि इस वक्त साहब आएंगे। फुर-से भागे, कोई ऊपर जा छिपा, कोई घर में भागा, पर बिचारे राय साहब जहां के तहां निश्चय बैठे रह गए। आधा घंटे में तो आप कांख कर उठते थे और घंटे भर में एक कदम रखते थे, इस भगदड़ में कैसे भागते। जब देखा कि अब प्राण बचने का कोई उपाय नहीं है तो ऐसा मुंह बना लिया मानो वह जान बूझकर इस स्वदेशी ठाट से साहब का स्वागत करने को बैठे हैं। साहब ने बरामदे में आते ही कहा—हलो रायसाहब, आज तो आपका होली है ?

राय साहब ने हाथ बांधकर कहा—हां सरकार, होली है ?

बुल—खूब लाल रंग खेलता है ?

राय साहब—हां सरकार, आज के दिन की यही बहार है।

साहब ने पिचकारी उठा ली। सामने मटकों में गुलाल रखा हुआ था। बुल ने पिचकारी। भरकर पंडितजी के मुंह पर छोड़ दी तो पंडितजी नहीं उठे। धन्य भाग ! कैसे यह सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। वाह रे हाकिम ! इसे प्रजावात्सल्य कहते हैं। आह ! इस वक्त सेठ जोखनराम होते तो दिखा देता कि यहां जिला में अफसर इतनी कृपा करते हैं। बताएं आकर कि उन पर किसी गोरे ने पिचकारी छोड़ी है, जिलाधीश का कहना ही क्या। यह पूर्व-तपस्या का फल है, और कुछ नहीं। कोई पहले एक सहस्र वर्ष तपस्या करे, तब वह परम पद पा सकता है। हाथ जोड़कर बोले—धर्मावतार, आज जीवन सफल हो गया।

जब सरकार ने होली खेली है तो मुझे भी हुक्म मिले कि अपने हृदय की अभिलाषा पूरी कर लूं।

यह कहकर राय साहब ने गुलाल का एक टीका साहब के माथे पर लगा दिया।

बुल—इस बड़े बरतन में क्या रखा है, राय साहब ?

राय—सरकार, यह भंग है। बहुत विधिपूर्वक बनाई गई है हूजूर !

बुल—इसके पीने से क्या होगा ?

राय—हुजूर की आंखें खुल जाएंगी। बड़ी विलक्षण वस्तु है। सरकार।

बुल—हम भी पीयेगा।

राय साहब को जान पड़ा मानो स्वर्ग के द्वार खुल गए हैं और वह पुष्पकविमान पर बैठे ऊपर उड़े चले जा रहे हैं। ग्लास तो साहब को देना उचित न था, पर कुल्हड़ में देते संकोच होता था। आखिर बहुत ऊंच-नीच सोचकर ग्लास में भंग उंड़ेली और साहब को दी। साहब पी गए। मारे सुगंध के चित्त प्रसन्न हो गया।

2

दूसरे दिन राय साहब इस मुलाकात का जवाब देने चले। प्रातःकाल ज्योतिष से मुहूर्त पूछा। पहर रात गए साइत बनती थी, अतएव दिन भर खूब तैयारियां कीं। ठीक समय पर चले। साहब उस समय भोजन कर रहे थे। खबर पाते ही सलाम दिया। राय साहब अंदर गए तो शराब की दुर्गंध से नाक फटने लगी। बेचारे अंग्रेजी दवा न पीते थे। अपनी उम्र में शराब कभी न छुई थी। जी में आया कि नाक बंद कर लें, मगर डरे कि साहब बुरा न मान जाएं। जी मचला रहा था, पर सांस रोके बैठे हुए थे। साहब ने एक चुस्की ली और ग्लास मेज पर रखते हुए बोले—राय साहब हम कल आप का बंग पी गया, आज आपको हमारा बंग पीना पड़ेगा। आपका बंग बहुत अच्छा था। हम बहुत-सा खाना खा गया।

राय—हुजूर, लोग मदिरा हाथ से भी नहीं छूते। हमारे शास्त्रों में इसका छूना पाप कहा गया है।

बुल—(हंसकर) नहीं, नहीं, आपको पीना पड़ेगा राय साहब ! पाप-पुन कुछ नहीं है। यह हमारा बंग है, वह आपका बंग है। कोई फरक नहीं है। उससे भी नशा होता है, इससे भी नशा होता है, फिर फरक कैसा ?

राय—नहीं, धर्मावतार, मदिरा को हमारे यहां वर्जित किया गया है।

बुल—ऐसा कभी होने नहीं सकता। शास्त्र मना करेगा तो इसको भी मना करेगा, उसको भी मना करेगा। अफीम को भी मना करेगा। आप इसको पियें, डरें नहीं। बहुत अच्छा है।

यह कहते हुए साहब ने ग्लास में शराब उंड़ेलकर राय साहब के मुंह में लगा ही तो दी। राय साहब ने मुंह फेर लिया और आंखे वन्द करके दोनों हाथों से साहब को हटाने लगे। साहब की समझ में यह रहस्य न आता था। वह यही समझ रहे थे कि यह डर के मारे नहीं पी रहे हैं। अपने मजबूत हाथों से राय साहब की गरदन पकड़ी और ग्लास मुंह की तरफ बढ़ाया। राय साहब को अब क्रोध आ गया। साहब खातिर से सब कुछ कर सकते थे; पर धर्म नहीं छोड़ सकते थे। जरा कठोर स्वर में बोले—हुजूर, हम वैष्णव हैं। हम इसे

छूना भी पाप समझते हैं।

राय साहब इसके आगे ओर कुछ न कह सके। मारे आवेश के कंठावरोध हो गया। एक क्षण बाद जरा स्वर को संयत करके बोले—हुजूर, भंग पवित्र वस्तु है। ऋषि, मुनि, साधु महात्मा, देवी, देवता सब इसका सेवन करते हैं। सरकार, हमारे यहां इसकी बड़ी महिमा लिखी है। कौन ऐसा पण्डित है, जो बूटी न छानता हो। लेकिन मदिरा को तो सरकार, हम नाम लेना भी पाप समझते हैं।

बुल ने ग्लास हटा लिया और कुरसी पर बैठकर बोला—तुम पागल का माफिक बात करता है। धरम का किताब बंग और शराब दोनों को बुरा कहता है। तुम उसको ठीक नहीं समझता। नशा को इसलिए सारा दुनिया बुरा कहता है कि इससे आदमी का अकल खत्म हो जाता है। तो बंग पीने से पंडित और देवता लोग का अकल कैसे खत्म नहीं होगा, यह हम नहीं समझ सकता। तुम्हारा पंडित लोग बंग पीकर राक्षस क्यों नहीं होता! हम समझता है कि तुम्हारा पंडित लोग बंग पीकर खप्त हो गया है, तभी तो वह कहता है, यह अछूत है, वह नापाक है, रोटी नहीं खाएगा, मिठाई खाएगा। हम छू लें तो तुम पानी नहीं पीयेगा। यह सब खप्त लोगों का बात। अच्छा सलाम !

राय साहब की जान में जान आई। गिरते पड़ते बरामदे में आए, गाड़ी पर बैठे और घर की राह ली।

[कहानी। प्रथम प्रकाशन अज्ञात। 'कफन' में संकलित।]

उपहार स्वरूप
Gifted by
राजा राममोहन राय पुस्तकालय
प्रतिष्ठान द्वारा
RAJA RAMMOHUN ROY
LIBRARY FOUNDATION
BLOCK DD-34, SECTOR-1, SALT LAKE,
CALCUTTA-700 064